#1 अंतरराष्ट्रीय बेस्टसेलर

युवाल नोआ हरारी

सेपियन्स

मानव-जाति का संक्षिप्त इतिहास

अनुवाद : मदन सोनी

Hindi translation of the international bestseller *Sapiens*

VISIT…

LANZAROTE

Caliente.com

मानव-जाती का संक्षिप्त इतिहास

‘हमारे विश्वास चाहे जो भी हों, लेकिन मैं हम सभी को हमारी दुनिया के बुनियादी आख्यानों पर सवाल उठाने के लिए, अतीत की घटनाओं को वर्तमान के सरोकारों से जोड़कर देखने के लिए और विवादास्पद मुद्दों से ना डरने के लिए प्रोत्साहित करता हूँ’।

डॉ. युवाल नोआ हरारी ने ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय से इतिहास में पीएचडी की उपाधि प्राप्त की है और अब विश्व इतिहास में विशेषज्ञता हासिल करने के बाद वे हिब्रू विश्वविद्यालय यरुशलम में अध्यापन करते हैं। उनका अनुसन्धान व्यापक प्रश्नों पर केन्द्रित है, जैसे कि : इतिहास और जीव-विज्ञान का क्या सम्बन्ध है? क्या इतिहास में इंसाफ़ है? क्या इतिहास के विस्तार के साथ लोग सुखी हुए?

हरारी के ऑनलाइन कोर्स अ ब्रीफ़ हिस्टरी ऑफ़ ह्यूमनकाइंड में 65,000 लोगों ने हिस्सा लिया है। प्रस्तुत पुस्तक एक अन्तरराष्ट्रीय बेस्टसेलर है और दुनिया की 30 से ज़्यादा भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। 2012 में हरारी को पोलोन्स्की प्राइज़ फ़ॉर क्रिएटिविटी ऐंड ओरिजिनेलिटी इन द ह्यूमनिस्टिक डिसिप्लिन्स से सम्मानित किया गया था।

युवाल नोआ हरारी

सेपियन्स
मानव-जाति
का संक्षिप्त इतिहास

अनुवाद : मदन सोनी

MANJUL
मंजुल पब्लिशिंग हाउस

मंजुल पब्लिशिंग हाउस
कॉरपोरेट एवं संपादकीय कार्यालय
• द्वितीय तल, उषा प्रीत कॉम्प्लेक्स, 42 मालवीय नगर, भोपाल-462 003
विक्रय एवं विपणन कार्यालय
• 7/ 32, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002
वेबसाइट : www.manjulindia.com
वितरण केन्द्र
अहमदाबाद, बेंगलुरू, भोपाल, कोलकाता, चेन्नई,
हैदराबाद, मुम्बई, नई दिल्ली, पुणे

युवाल नोआ हरारी द्वारा लिखित मूल अंग्रेजी पुस्तक
सेपियन्स - अ ब्रीफ़ हिस्ट्री ऑफ़ ह्युमनकाइंड का हिन्दी अनुवाद

यह मूल अंग्रेजी संस्करण हार्विल सेकर द्वारा 2014 में पहली बार प्रकाशित

कॉपीराइट © युवाल नोआ हरारी, 2011
सर्वाधिकार सुरक्षित

यह हिन्दी संस्करण 2018 में पहली बार प्रकाशित

ISBN 978-93-88241-17-5

हिन्दी अनुवाद : मदन सोनी

चित्रांकन शोध : कैरोलाइन वुड
मानचित्र : नील गोवर

इस पुस्तक में विषय-वस्तु से सम्बन्धित सटीक जानकारी देने का प्रयास किया गया है। इसकी बिक्री के द्वारा प्रकाशक किसी भी प्रकार की कानूनी, लेखा अथवा अन्य पेशेवर सेवा प्रदान नहीं करेगा। यदि किसी भी प्रकार की कानूनी अथवा अन्य विशेषज्ञ से जुड़ी सहायता की आवश्यकता हो तो किसी सक्षम पेशेवर व्यक्ति की सेवा ली जा सकती है।

यह पुस्तक इस शर्त पर विक्रय की जा रही है कि प्रकाशक की लिखित पूर्वानुमति के बिना इसे या इसके किसी भी हिस्से को न तो पुन: प्रकाशित किया जा सकता है और न ही किसी भी अन्य तरीके से, किसी भी रूप में इसका व्यावसायिक उपयोग किया जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति ऐसा करता है तो उसके विरुद्ध कानूनी कार्रवाई की जाएगी।

मेरे पिता श्लोमो हरारी की प्रिय स्मृति में

विषय-सूची

भाग-I : संज्ञानात्मक क्रान्ति
- **1.** एक महत्त्वहीन प्राणी
- **2.** ज्ञान का वृक्ष
- **3.** आदम और ईव के जीवन का एक दिन
- **4.** बाढ

भाग-II : कृषि क्रान्ति
- **5.** इतिहास का सबसे बडा धोखा
- **6.** पिरामिडों का निर्माण
- **7.** भारी बोझ की स्मृति
- **8.** इतिहास में कोई न्याय नहीं है

भाग-III : मानव-जाति का एकीकरण
- **9.** इतिहास का तीर
- **10.** पैसे की ख़ुशबू
- **11.** साम्राज्यवादी आकांक्षाएँ
- **12.** मज़हब का सिद्धान्त
- **13.** सफलता का रहस्य

भाग-IV : वैज्ञानिक क्रान्ति
- **14.** अज्ञान की खोज
- **15.** विज्ञान और साम्राज्य का गठबन्धन
- **16.** पूँजीवादी पन्थ
- **17.** उद्योग के पहिये
- **18.** एक स्थायी क्रान्ति
- **19.** और उसके बाद वे हमेशा सुखपूर्वक रहे
- **20.** होमो सेपियन्स का अन्त

उपसंहार : वह प्राणी जो एक ईश्वर बन गया

आभार
अनुवादक के बारे में

भाग-I

संज्ञानात्मक क्रान्ति

1. दक्षिण फ़्रांस की शोवे-पों-द-अख़ गुफ़ा में लगभग 30,000 साल पहले बनी एक मनुष्य के हाथ की छाप।
किसी ने कहने की कोशिश की थी कि ‘मैं यहाँ था’!

1

एक महत्त्वहीन प्राणी

लगभग 13.5 अरब वर्ष पहले पदार्थ, ऊर्जा, देश और काल उस घटना की वजह से अस्तित्व में आए थे, जिसे 'बिग बैंग' के नाम से जाना जाता है। हमारे विश्व के इन बुनियादी लक्षणों की कहानी को भौतिकशास्त्र कहा जाता है।

पदार्थ और ऊर्जा अपने प्रकट होने के लगभग 300,000 साल बाद एटम नामक जटिल संरचनाओं में संयुक्त होने लगे और इसके बाद ये एटम अणुओं (मोलेक्यूल्स) में संयुक्त हो गए। एटमों, अणुओं और उनकी परस्पर क्रिया की इस कहानी को रसायनशास्त्र कहा जाता है।

लगभग 3.8 अरब वर्ष पहले पृथ्वी नामक ग्रह पर कुछ ख़ास अणुओं ने मिलकर जीवन नामक विशेष रूप से बड़ी और पेचीदा संरचनाओं को निर्मित किया। जीवों की इस कहानी को जीव-विज्ञान के नाम से जाना जाता है।

लगभग 70,000 साल पहले होमो सेपियन्स से सम्बन्धित जीवों ने इससे भी ज़्यादा विस्तृत संरचनाओं को रूप देना शुरू किया, जिन्हें संस्कृतियों के नाम से जाना है। इन मानवीय संस्कृतियों के उत्तरवर्ती विकास को इतिहास कहा जाता है।

इतिहास की प्रक्रिया को तीन महत्त्वपूर्ण क्रान्तियों ने आकार दिया : संज्ञानात्मक क्रान्ति (कॉग्नीटिव रिवोल्यूशन) ने लगभग 70,000 साल पहले इतिहास को क्रियाशील किया। कृषि क्रान्ति ने 12,000 साल पहले इसे तीव्र गति दी। वैज्ञानिक क्रान्ति, जो सिर्फ़ 500 साल पहले शुरू हुई थी, शायद इतिहास को ख़त्म कर सकती है और किसी पूरी तरह से भिन्न चीज़ की शुरुआत कर सकती है। इन तीन क्रान्तियों ने मनुष्यों और उनके सहचर जीवों को किस तरह प्रभावित किया है, यह पुस्तक इसी का क़िस्सा कहती है।

इतिहास के अस्तित्व में आने के बहुत पहले से मनुष्यों का अस्तित्व था। काफ़ी कुछ

आधुनिक मनुष्यों की तरह के प्राणी लगभग 25 लाख साल पहले प्रकट हुए थे, लेकिन असंख्य पीढ़ियों तक वे उन अनगिनत दूसरे जीवों से अलग नहीं दिखते थे, जिनके साथ वे अपने प्राकृतिक वास साझा करते थे।

20 लाख साल पहले पूर्वी अफ़्रीका की पदयात्रा करते हुए शायद आपका सामना मानव चरित्रों की चिर-परिचित भूमिका से हो सकता था : शिशुओं को सीने से लगाए चिन्तित माताएँ और मिट्टी में खेलते हुए निश्चिन्त बच्चों के समूह, समाज के आदेशों के ख़िलाफ़ लाल-पीले होते तुनकमिजाज़ नौजवान और थके हुए बुज़ुर्ग, जो सिर्फ़ इतना चाहते थे कि उन्हें चैन से रहने दिया जाए, स्थानीय सुंदरी को प्रभावित करने की कोशिश करते छाती ठोंकते मर्द और सयानी बूढ़ी कुलमाताएँ, जो ये सब कुछ पहले ही देख चुकी थीं। ये आदिम मनुष्य प्रेम करते थे, खेलते थे, क़रीबी दोस्तियाँ क़ायम करते थे और हैसियत तथा सत्ता के लिए होड़ करते थे, लेकिन यही सब चिंपांज़ी, लंगूर और हाथी भी किया करते थे। उनमें अलग से कुछ ख़ास नहीं था। किसी को भी, स्वयं मनुष्यों को भी, ज़रा भी आभास नहीं था कि एक दिन उनके वंशज चंद्रमा पर चलेंगे, एटम का विखण्डन करेंगे, जेनेटिक कोड की थाह लेंगे और इतिहास की पुस्तकें लिखेंगे। प्रागैतिहासिक मनुष्यों के बारे में जानने लायक़ सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे मामूली प्राणी थे, जिनका अपने पर्यावरण पर गुरिल्लाओं, जुगनुओं या जैली मछली से ज़्यादा प्रभाव नहीं था।

जीव-विज्ञानी जीवों को प्रजातियों में वर्गीकृत करते हैं। ऐसे प्राणी, जो अगर एक दूसरे से सहवास करने को प्रवृत्त होते हैं, प्रजननशील सन्तानों को जन्म देते हैं, तो वे एक ही प्रजाति से सम्बन्धित माने जाते हैं। घोड़ों और गधों दोनों का एक ही पूर्वज था और इन दोनों के कई शारीरिक लक्षण एक जैसे हैं, लेकिन वे एक दूसरे में कोई ख़ास यौनपरक दिलचस्पी नहीं रखते। अगर उन्हें उकसाया जाए, तो वे सहवास करेंगे, लेकिन उनकी सन्तान, जिसे खच्चर कहा जाता है, प्रजनन करने में अक्षम होती हैं। इसलिए गधे के डीएनए के उत्परिवर्तन (म्यूटेशन्स) घोड़ों में कभी संक्रमित नहीं हो सकते, ना ही इसका उलटा सम्भव है। नतीज़तन, इन दोनों तरह के प्राणियों को विकास के अलग रास्तों पर चलती दो भिन्न प्रजातियों में रखा जाता है। इसके विपरीत, एक बुलडॉग और स्पेनियल कुत्ता देखने में बहुत अलग लग सकते हैं, लेकिन वे एक ही प्रजाति के सदस्य हैं, जो एक ही डीएनए समूह साझा करते हैं। वे ख़ुशी-ख़ुशी सहवास करेंगे और उनके पिल्ले बड़े होकर दूसरे कुत्तों के साथ जोड़ा बनाएँगे और और भी पिल्लों को पैदा करेंगे।

जिन प्रजातियों का विकास एक साझा पूर्वज से होता है, उन्हें 'जीनस' (बहुवचन जीनेरा) शीर्षक के अन्तर्गत रखा जाता है। शेर (लॉयन), बाघ (टाइगर), तेंदुआ (लैपर्ड) और चीता (जैग्वार) पैन्थेरा जीनस के अन्तर्गत आने वाली विभिन्न प्रजातियाँ हैं। जीव-विज्ञानी प्राणियों को दोहरे लैटिन नाम से वर्गीकृत करते हैं, पहले जीनस और फिर प्रजाति। उदाहरण के लिए शेरों को पैन्थेरा लेयो कहा जाता है, पैन्थेरा जीनस की लेयो प्रजाति। सम्भवतः इस पुस्तक को पढ़ने वाला हर कोई एक होमो सेपियन्स है - जीनस होमो (मनुष्य) की सेपियन्स (बुद्धिमान) प्रजाति।

जीनेरा को परिवारों में वर्गीकृत किया जाता है, जैसे कैट्स (शेर, चीता, बिल्लियाँ), कुत्ते (भेड़िये, लोमड़ियाँ, सियार) और हाथी (हाथी, मैमथ, मैस्टोडन)। परिवार के सारे

सदस्यों के वंश का उद्गम एक संस्थापक कुलपिता या कुलमाता में होता है। उदाहरण के लिए घरेलू बिल्लियों से लेकर अत्यन्त उग्र शेर तक कैट परिवार के सारे सदस्य बिल्ली के समान एक विडाल (फ़ेलाइन) पूर्वज साझा करते हैं, जो 250 लाख साल पहले अस्तित्व में हुआ करता था।

होमो सेपियन्स भी एक परिवार से सम्बन्ध रखता है। यह मामूली-सा तथ्य इतिहास के उन रहस्यों में शामिल हुआ करता था, जिस पर सबसे ज़्यादा क़रीबी चौकसी रखी गई। मानव अपने आप को लम्बे समय तक पशुओं से अलग श्रेणी के रूप में देखना पसन्द करता था, परिवार से वंचित एक यतीम के रूप में, सहोदरों, चचेरे-फुफेरे-ममेरे भाई-बहनों से वंचित और सबसे महत्त्वपूर्ण यह कि माता-पिता-विहीन, लेकिन ऐसा क़तई नहीं है। हम इसे पसन्द करें या ना करें, लेकिन हम एक विशाल और ख़ास तौर से कोलाहलपूर्ण परिवार के सदस्य हैं, जिसे विशाल वानरों (ग्रेट एप्स) के नाम से जाना जाता है। हमारे सबसे क़रीबी जीवित रिश्तेदारों में चिंपांज़ी, गोरिल्ला और ओरांग-उटांग शामिल हैं। चिंपांज़ी सबसे क़रीबी हैं। महज़ साठ लाख साल पहले एक इकलौती मादा वानर की दो बेटियाँ थीं। उनमें से एक सारे चिंपांज़ियों की पूर्वज बन गई और दूसरी हमारी अपनी नानी है।

कोठरी में कंकाल

होमो सेपियन्स ने इससे भी ज़्यादा विचलित करने वाले एक रहस्य को छिपाकर रखा है। हमारे ना सिर्फ़ बड़ी तादाद में चचेरे-ममेरे-फुफेरे भाई-बहन हैं, बल्कि एक समय में अच्छी-ख़ासी तादाद में भाई-बहन भी हुआ करते थे। हमें अपने बारे में इस तरह सोचने की आदत है कि हम एकमात्र मनुष्य हैं, क्योंकि पिछले 10,000 सालों से हमारी प्रजाति वाक़ई एकमात्र मनुष्य प्रजाति रही है, लेकिन ह्यूमन शब्द का वास्तविक अर्थ 'होमो नामक जीनस से ताल्लुक रखने वाला प्राणी' है, और इस जीनस की होमो सेपियन्स के अलावा भी कई प्रजातियाँ हुआ करती थीं। इसके अतिरिक्त जैसा कि हम इस पुस्तक के आख़िरी अध्याय में देखेंगे, वह भविष्य बहुत दूर नहीं, जब हमें एक बार फिर ग़ैर-बुद्धिमान (नॉन-सेपियन्स) मनुष्यों से निपटना पड़ सकता है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए मैं बुद्धिमान मनुष्य (होमो सेपियन्स) प्रजाति के सदस्यों को दर्शाने के लिए अक्सर 'बुद्धिमान' ('सेपियन्स') पद का प्रयोग करूँगा, वहीं 'मनुष्य' पद का इस्तेमाल मैं होमो नामक जीनस के सारे मौजूदा सदस्यों के लिए करूँगा।

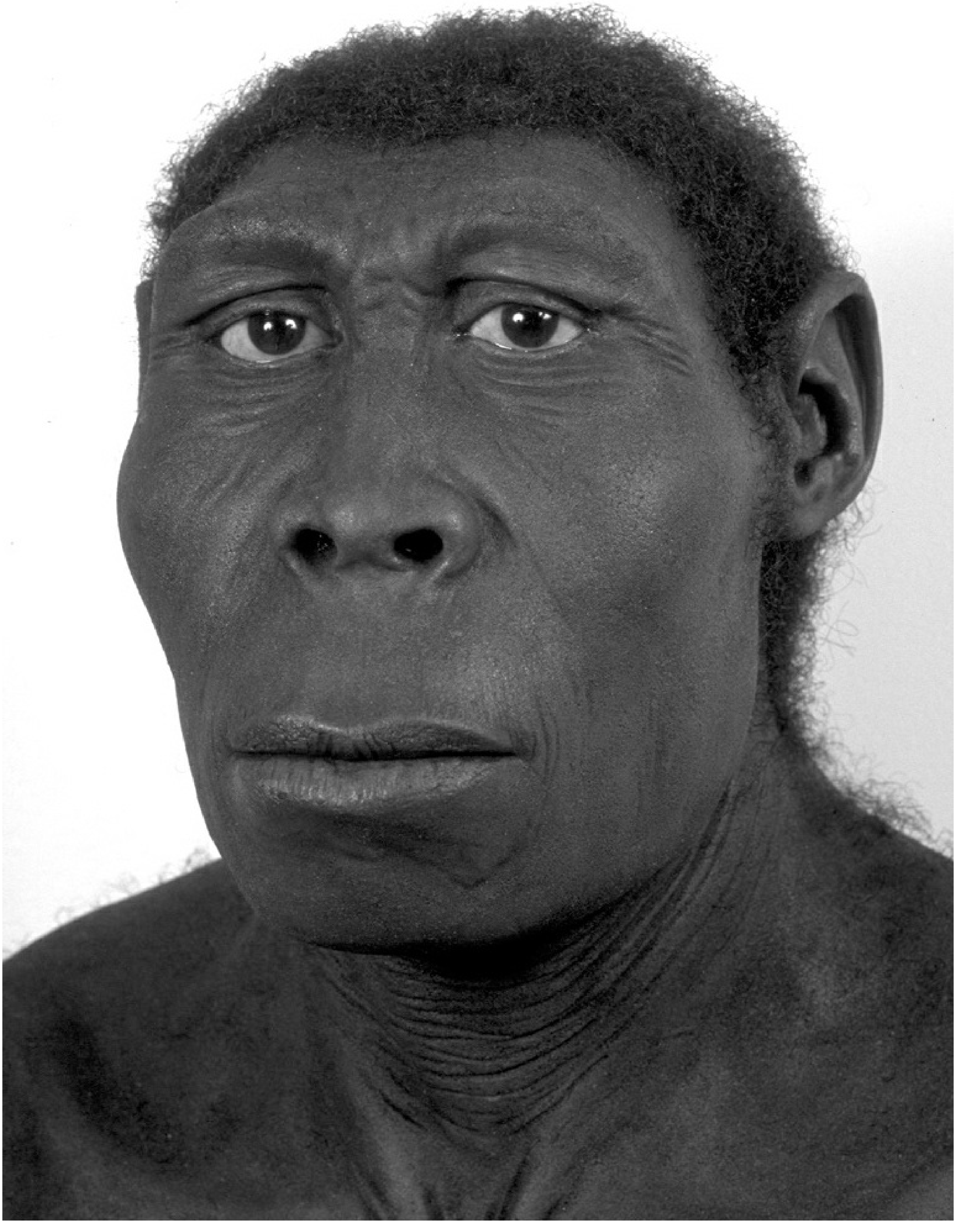

2. अनुमानित पुनर्रचना के मुताबिक़ हमारे सहोदर (बाएँ से दाएँ) : होमो रुडोल्फ़ेंसिस (पूर्वी अफ़्रीका); होमो इरेक्टस (पूर्वी एशिया) और होमो निएंडरथलेंसिस (यूरोप और पश्चिम एशिया)। सभी मनुष्य हैं।

मनुष्यों का पहला विकास लगभग 25 लाख साल पहले पूर्वी अफ़्रीका में वानरों के एक आरम्भिक जीनस ऑस्ट्रालोपीथीकस से हुआ था, जिसका मतलब है 'दक्षिणी

वानर’। लगभग 20 लाख साल पहले इनमें से कुछ आदिम पुरुष और स्त्रियाँ उत्तरी अफ़्रीका, यूरोप और एशिया के विस्तीर्ण इलाक़ों में बसने के लिए अपनी मातृभूमि छोड़कर यात्रा पर निकल गए। चूँकि उत्तरी यूरोप के बर्फ़ीले जंगलों में जीवित बने रहने के लिए उससे भिन्न लक्षण ज़रूरी थे, जो इंडोनेशिया के प्रवाहमान जंगलों में रहने के लिए आवश्यक थे, इसलिए मनुष्यों की आबादी विभिन्न दिशाओं में विकसित हुई। इसका परिणाम अनेक पृथक प्रजातियों के रूप में सामने आया, जिनमें से प्रत्येक प्रजाति के लिए वैज्ञानिकों ने एक आडम्बरपूर्ण लैटिन नाम प्रदान किया है।

यूरोप और पश्चिमी एशिया के मनुष्य होमो निएंडरथलेंसिस (‘निएंडर घाटी के मनुष्य’) के रूप में विकसित हुए, जिन्हें आमतौर पर मात्र ‘निएंडरथल्स’ कहा जाता है। हम सेपियन्स के मुक़ाबले स्थूलकाय और हृष्ट-पुष्ट निएंडरथल्स पश्चिम यूरेशिया के हिम युग की शीत जलवायु से अच्छी तरह अनुकूलित थे। एशिया के अधिकांश क्षेत्र होमो इरेक्टस, ‘तनकर खड़ा मनुष्य’, से आबाद थे, जो वहाँ क़रीब-क़रीब 20 लाख वर्षों तक बने रहे, और इस तरह वे अब तक की सबसे ज़्यादा टिकाऊ मनुष्य प्रजाति साबित हुए। इसकी कोई सम्भावना नहीं कि यह कीर्तिमान स्वयं हमारी प्रजाति भी तोड़ पाएगी। इसमें सन्देह है कि होमो सेपियन्स की प्रजाति आज से एक हज़ार साल बाद तक बनी रह सकेगी, इसलिए 20 लाख साल वाक़ई हमारी सामर्थ्य के बाहर हैं।

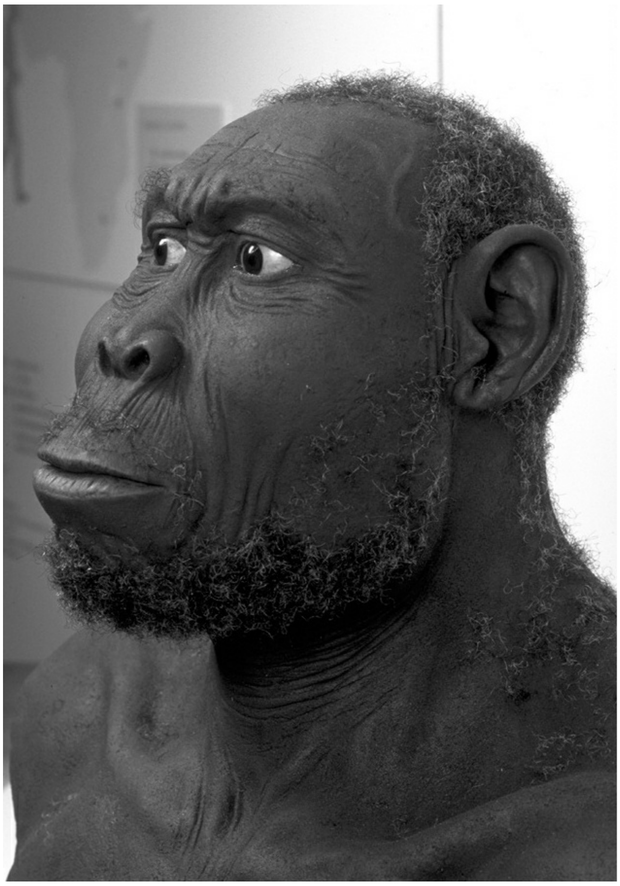

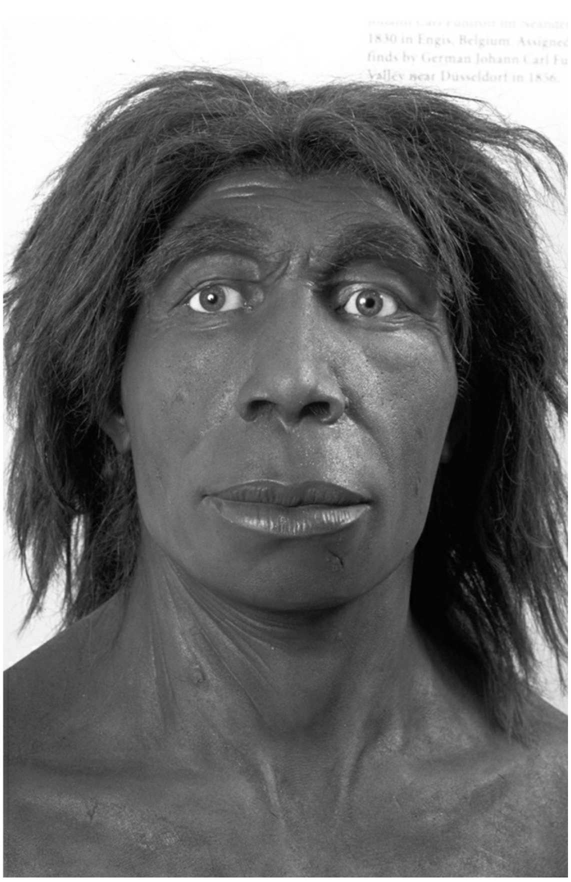
1830 in Engis, Belgium. Assigned
finds by German Johann Carl Fu
Valley near Dusseldorf in 1856.

इंडोनेशिया में जावा द्वीप पर होमो सोलोऐंसिस, ‘सोलो घाटी का मनुष्य’ नामक प्रजाति रहती थी, जो उष्णकटिबन्धीय जीवन के अनुकूल थी। एक अन्य इंडोनेशियाई

द्वीप - फ़्लोरेस नामक छोटा द्वीप - पर आदिम मनुष्य बौने होने की प्रक्रिया से गुज़रे। मनुष्य फ़्लोरेस के द्वीप पर पहली बार तब पहुँचे थे, जब समुद्र का स्तर असाधारण रूप से निचला था और मुख्य भूभाग से इस द्वीप तक आसानी से पहुँचा जा सकता था। जब समुद्र फिर उभार पर आया, तो कुछ लोग उस द्वीप पर फँस गए, जो संसाधनों की दृष्टि से कमज़ोर था। बड़े आकार के लोग, जिन्हें ज़्यादा भोजन की ज़रूरत थी, सबसे पहले मरे। छोटे आकार के लोग ज़्यादा बेहतर ढंग से जीवित बने रहे। कई पीढ़ियों के दौरान फ़्लोरेस के लोग बौने हो गए। विज्ञानियों द्वारा होमो फ़्लोरेसिएंसिस के नाम से ज्ञात यह अनूठी प्रजाति अधिकतम एक मीटर की लम्बाई तक पहुँची और उसका वज़न पच्चीस किलोग्राम से ज़्यादा नहीं होता था। इसके बावजूद वे पत्थर के औज़ार बनाने में सक्षम थे और कभी-कभी द्वीप के हाथियों तक का शिकार कर लेते थे, हालाँकि यह कहना उचित होगा कि वे हाथी भी बौनी प्रजाति के होते थे।

2010 में जब साइबेरिया में डेनिसोवा गुफा की खुदाई करते हुए विज्ञानियों को एक अंगुली की हड्डी का जीवाश्म प्राप्त हुआ, तो एक और सहोदर को गुमनामी से बाहर लाया गया। जेनेटिक विश्लेषण ने साबित किया कि यह अंगुली पहले अज्ञात एक मनुष्य प्रजाति से ताल्लुक रखती थी, जिसे होमो डेनिसोवा नाम दिया गया। कौन जानता है कि हमारे कितने खोए हुए सम्बन्धी दूसरी जलवायुओं, दूसरे द्वीपों की दूसरी गुफाओं में ढूँढ़ निकाले जाने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

जिस दौरान ये मनुष्य यूरोप और एशिया में विकसित हो रहे थे, पूर्वी अफ़्रीका में विकास की प्रक्रिया थमी नहीं थी। मनुष्यता के पालने ने अनेक नई प्रजातियों का पालन-पोषण जारी रखा, जैसे कि होमो रुडोल्फ़ेंसिस, 'रुडोल्फ़ झील का मनुष्य', होमो एर्गास्टर, 'कामकाजी मनुष्य', और बाद में ख़ुद हमारी प्रजाति, जिसे हमने निर्लज्ज ढंग से होमो सेपियन्स, यानी 'बुद्धिमान मनुष्य' नाम दे रखा है। इनमें से कुछ प्रजातियों के सदस्य विशालकाय थे और कुछ बौने थे। कुछ भयंकर शिकारी थे और कुछ वनस्पतियाँ एकत्र करने वाले विनम्र लोग थे। कुछ सिर्फ़ एक ही द्वीप पर रहे, जबकि बहुत से तमाम महाद्वीपों में भटके, लेकिन ये सब होमो जीनस के थे। वे सभी मनुष्य थे।

यह एक आम भ्रान्ति है, जिसके तहत इन प्रजातियों की एक सीधी वंशावली के रूप में कल्पना की जाती है, और माना जाता है कि एर्गास्टर ने इरेक्टस को जन्म दिया, इरेक्टस ने निएंडरथल्स को जन्म दिया और निएंडरथल्स हमारे रूप में विकसित हुए। यह एकरैखिक मॉडल इस ग़लत धारणा को जन्म देता है कि किसी एक ख़ास क्षण में सिर्फ़ किसी एक ही क़िस्म के मनुष्य पृथ्वी पर रहते थे, और यह कि तमाम आरम्भिक प्रजातियाँ हमारे महज़ पुराने मॉडल थे।

वास्तविकता यह है कि लगभग 20 लाख पहले से लेकर लगभग 10,000 साल पूर्व तक दुनिया एक ही समय में कई मनुष्य प्रजातियों का घर हुआ करती थी। और क्यों नहीं? आज लोमड़ियों, सूअरों और भालुओं की कई प्रजातियाँ हैं। सौ सहस्राब्दी पहले की पृथ्वी पर मनुष्य की कम से कम छह अलग-अलग प्रजातियाँ आवागमन करती थीं। यह हमारा बहु-प्रजातीय अतीत नहीं, बल्कि हमारी मौजूदा अनन्यता है, जो विचित्र है - और शायद अभियोगात्मक भी। जैसा कि हम जल्दी ही देखेंगे, हम सेपियन्स के पास अपने सहोदरों की स्मृति को कुचलने के भरपूर कारण हैं।

सोचने की क़ीमत

अपनी अनेक भिन्नताओं के बावजूद तमाम मनुष्य प्रजातियाँ कई पारिभाषिक लक्षणों को साझा करती हैं। इनमें सबसे ज़्यादा उल्लेखनीय यह है कि मनुष्यों के पास दूसरे प्राणियों के मुक़ाबले असाधारण रूप से बड़ा मस्तिष्क है। साठ किलोग्राम के वज़न वाले स्तनपायी प्राणियों के मस्तिष्क का औसत आकार 200 घन सेंटीमीटर होता है। 25 लाख साल पहले के सबसे प्राचीन पुरुषों और स्त्रियों के मस्तिष्क लगभग 600 घन सेंटीमीटर थे। आधुनिक सेपियन्स औसतन 1,200-1,400 घन सेंटीमीटर मस्तिष्क धारण करते हैं। निएंडरथल्स के मस्तिष्क इससे भी बड़े थे।

विकास-प्रक्रिया द्वारा बड़े मस्तिष्कों का चयन किया जाना हमें बहुत स्वाभाविक-सी बात लग सकती है। हम अपनी ज़बरदस्त बुद्धिमत्ता को लेकर इतने आसक्त हैं कि हम मानते हैं कि जहाँ तक दिमाग़ी शक्ति का सवाल है, वह जितनी ज़्यादा हो उतनी ही अच्छी है, लेकिन अगर ऐसा होता, तो बिल्ली परिवार ने ऐसी बिल्लियों को उत्पन्न किया होता, जो गणना (कैल्कुलस) कर सकतीं। समूचे प्राणियों के साम्राज्य में मानव जीनस ही ऐसी भीषण चिन्तनशील मशीनों के साथ क्यों प्रकट हुआ?

तथ्य यह है कि एक भारी-भरकम मस्तिष्क शरीर पर बहुत बड़ा बोझ है। उसे ढोना आसान नहीं है, ख़ास तौर से जब वह एक विशालकाय खोपड़ी के अन्दर बन्द हो। उसे ईंधन उपलब्ध कराना और भी मुश्किल है। सेपियन्स में मस्तिष्क शरीर के कुल वज़न का लगभग 2-3 प्रतिशत होता है, लेकिन जिस वक़्त शरीर आराम कर रहा होता है, उस वक़्त वह शरीर की 25 प्रतिशत ऊर्जा का उपभोग करता है। इसकी तुलना में दूसरे वानरों के मस्तिष्कों को विश्राम-काल में ऊर्जा के मात्र 8 प्रतिशत की ज़रूरत होती है। आदिम मनुष्यों ने अपने विशाल मस्तिष्कों की क़ीमत दो तरह से चुकाई। एक, उन्हें भोजन की तलाश में अपना ज़्यादातर समय बिताना पड़ता था। दूसरे, उनकी मांसपेशियाँ क्षीण हो गई थीं। जिस तरह कोई सरकार पैसे को प्रतिरक्षा के मद से शिक्षा के मद में स्थानान्तरित कर देती है, उसी तरह मनुष्यों ने ऊर्जा को बाँहों के ऊपरी हिस्से की मांसपेशियों से स्नायुओं में स्थानान्तरित कर दिया था। इसे पूर्व निश्चित नतीज़ा शायद ही कहा जा सके कि यह घास के मैदान (सवाना) में जीवित बने रहने की एक अच्छी रणनीति है। एक चिंपांज़ी किसी बुद्धिमान मनुष्य से तर्क में नहीं जीत सकता, लेकिन वह आदमी को लत्तों की बनी गुड़िया की तरह चीर सकता है।

आज बड़े मस्तिष्क काफ़ी कारगर हैं, क्योंकि हम कारें और बन्दूक़ें तैयार कर सकते हैं, जो हमें चिंपांज़ियों से ज़्यादा तेज़ भागने में सक्षम बनाती हैं और हम उनसे कुश्ती लड़ने के बजाय एक सुरक्षित दूरी से उन पर गोली दाग सकते हैं, लेकिन कारें और बन्दूक़ें हाल ही की चीज़ें हैं। बीस लाख से ज़्यादा वर्षों तक मनुष्यों का तन्त्रिका नेटवर्क लगातार विकसित होता रहा, लेकिन कुछ चकमक चाकुओं तथा नुकीली छड़ियों के अलावा मनुष्यों के पास दिखाने लायक़ बहुत कम था। तब वह क्या चीज़ थी, जिसने उन 20 लाख सालों के दौरान विशालकाय मानव मस्तिष्क के विकास को उत्प्रेरित किया? ईमानदारी से कहें, तो हम कुछ नहीं जानते।

एक अन्य अद्वितीय मानवीय लक्षण यह है कि हम अपने दो पैरों पर सीधे खड़े होकर

चलते हैं। सीधे खड़े होकर खेल या शत्रुओं के लिए घास के मैदान का निरीक्षण करना आसान है, और हाथ जो चलने के लिए ग़ैरज़रूरी हैं, पत्थर फेंकने या संकेत करने जैसे दूसरे कामों के लिए आज़ाद हैं। ये हाथ जितने ज़्यादा से ज़्यादा काम कर सकते थे, उतने ही इन हाथों के मालिक क़ामयाब थे, इसलिए विकासपरक दबाव स्नायुओं तथा हथेलियों और अँगुलियों की बढ़ती हुई एकाग्रता का कारण बना। नतीज़तन, मनुष्य अपने हाथों से मुश्किल से मुश्किल काम कर सकता है। ख़ास तौर से वे परिष्कृत औज़ार गढ़ सकते हैं और उनका इस्तेमाल कर सकते हैं। औज़ारों के निर्माण का पहला साक्ष्य 25 लाख साल पुराना हैं। औज़ारों का निर्माण तथा उपयोग वह कसौटी है, जिसके आधार पर पुरातत्त्वविद प्राचीन मनुष्यों की पहचान करते हैं।

लेकिन तनकर चलने का अपना नकारात्मक पहलू भी है। हमारे आद्य पूर्वजों का हड्डियों का ढाँचा लाखों सालों के दौरान एक ऐसे प्राणी को थामे रखने के लिए विकसित हुआ था, जो चारों पैरों पर चलता था और जिसका सिर अपेक्षाकृत छोटा था। तनकर खड़े होने की स्थिति के साथ सामंजस्य बैठाना ख़ासी चुनौती थी, ख़ास तौर से तब, जब ढाँचे को एक अतिरिक्त रूप से बड़े कपाल को थामना ज़रूरी था। मानवजाति ने अपनी बुलन्द दृष्टि और उद्यमशील हाथों की क़ीमत पीठ के दर्द और गर्दन के अकड़ने से चुकाई।

स्त्रियों को अतिरिक्त क़ीमत चुकानी पड़ी। एक तनी हुई चाल के लिए छोटे नितम्ब ज़रूरी थे, जो प्रसव नलिका को संकुचित करने वाले थे - और ये ठीक उस वक़्त जब शिशुओं के सिर उत्तरोत्तर बड़े हो रहे थे। प्रसवकालीन मृत्यु मनुष्य मादाओं के लिए एक बहुत बड़ा संकट बन गया। जिन स्त्रियों ने पहले बच्चे जने थे, जब शिशुओं के मस्तिष्क और सिर अपेक्षाकृत छोटे और लचीले हुआ करते थे, वे ज़्यादा क़ामयाब रहीं थीं और वे ज़्यादा बच्चों को जन्म देने के लिए जीवित रह सकीं। प्राकृतिक वरण ने परिणामतः शुरुआती प्रसवों को सहारा दिया। और, वाक़ई, दूसरे प्राणियों के मुक़ाबले मनुष्यों का जन्म समय से पहले हो जाता है, जबकि उनके जीवन से जुड़ी बहुत-सी कार्य प्रणालियाँ पूरी तरह से विकसित नहीं हुई होतीं। एक बछड़ा जन्म लेने के कुछ ही समय बाद दौड़ने लग सकता है, बिल्ली का बच्चा जन्म लेने के कुछ ही हफ़्तों बाद अपनी माँ को छोड़कर ख़ुद ही अपने भोजन की तलाश में निकल पड़ता है। इंसानी बच्चे असहाय होते हैं, वे भरण-पोषण, संरक्षण और शिक्षा के लिए कई वर्षों तक अपने बड़ों पर निर्भर रहते हैं।

इस चीज़ ने मानव जाति की असाधारण सामाजिक क्षमताओं और उसकी अनूठी सामाजिक समस्याओं में बड़ा योगदान किया है। पीछे लगे मुहताज बच्चों के साथ अकेली माताएँ अपनी सन्तानों और ख़ुद के लिए शायद ही पर्याप्त भोजन जुटा पाती थीं। बच्चों को बड़ा करने में परिवार के अन्य सदस्यों और पड़ोसियों की निरन्तर मदद ज़रूरी होती थी। मनुष्य को बड़ा करने में एक पूरा कुटुम्ब लगता है। इस तरह विकास ने उन लोगों का साथ दिया, जो मज़बूत सामाजिक बन्धन गढ़ने में सक्षम थे। साथ ही, चूँकि मनुष्य अपरिपक्व स्थिति में जन्मे होते हैं, उन्हें दूसरे प्राणियों के मुक़ाबले एक बड़ी सीमा तक शिक्षित और समाजीकृत किया जा सकता है। बहुत से स्तनपायी गर्भ से इस तरह निकलते हैं, जैसे आवां से चमकता हुआ मिट्टी का बर्तन निकलता है। नया आकार देने की कोई भी कोशिश उसमें खरोंचें पैदा कर सकती है या उन्हें तोड़ दे सकती है। मनुष्य भट्टी से निकले लचीले काँच की तरह गर्भ से निकलते हैं। उन्हें आश्चर्यजनक आज़ादी के साथ

घुमाया, ताना जा सकता है और आकार दिया जा सकता है। यही वजह है कि आज हम अपने बच्चों को ईसाई या बौद्ध, पूँजीवादी या समाजवादी, लड़ाकू या शान्तिप्रिय बनाने के लिए शिक्षित कर सकते हैं।

हम मानते हैं कि बड़ा मस्तिष्क, औज़ारों का इस्तेमाल, सीखने की उत्कृष्ट क्षमताएँ और जटिल सामाजिक संरचनाएँ बहुत बड़ी सुविधाएँ हैं। ये बात स्वतःसिद्ध लगती है कि इन चीज़ों ने मानव को पृथ्वी का सबसे ताक़तवर प्राणी बनाया है, लेकिन मनुष्य इन तमाम सुविधाओं को पूरे 20 लाख वर्षों तक भोगते रहे, जिस दौरान वे कमज़ोर और महत्त्वहीन बने रहे। लिहाज़ा, दस लाख साल पहले के मनुष्य अपने बड़े मस्तिष्कों और पत्थर के अपने पैने औज़ारों के बावजूद लगातार शिकारियों के भय में रहते थे, कभी-कभार ही बड़े शिकार किया करते थे, और मुख्यतः वनस्पतियाँ बटोर कर, कीड़ों को पकड़ कर, छोटे जानवरों का पीछा करके और ज़्यादा ताक़तवर मांसभक्षियों द्वारा छोड़ दिया गया सड़ा हुआ मांस खाकर अपना जीवनयापन करते थे।

शुरुआती पत्थर के औज़ारों का एक सबसे आम उपयोग हड्डियों को तोड़कर मज्जा निकालने के लिए होता था। कुछ शोधकर्ताओं का मानना है कि यह हमारा मूल सहारा था। जिस तरह कठफोड़वे पेड़ों के तनों से कीड़ों को निकालने में महारत हासिल कर लेते हैं, उसी तरह मनुष्यों ने हड्डियों से मज्जा निकालने में महारत हासिल कर ली थी। मज्जा क्यों? मान लीजिए कि आप शेरों के एक झुण्ड द्वारा एक जिराफ़ को मार गिराकर खाते हुए देखते हैं। उनका भोजन पूरा होने तक आप धीरज के साथ प्रतीक्षा करते है, लेकिन आपकी बारी अभी भी नहीं आई है क्योंकि पहले लकड़बग्घे और सियार मृत जानवर की उस जूठन को खाएँगे, और आप उनके इस काम में दख़लन्दाज़ी की हिमाकत नहीं कर सकते। इसके बाद ही आप और आपकी टोली सावधानी के साथ दाएँ-बाएँ देखते हुए उस लाश के कंकाल की ओर बढ़ेंगे, और बचे-खुचे खाने लायक़ मांस-तन्तुओं पर झपटेंगे।

यह हमारे इतिहास और मनोविज्ञान को समझने की एक कुंजी है। भोजन की शृंखला में मानव जीनस की स्थिति हाल ही के समय तक लगातार बीच की हुआ करती थी। लाखों वर्षों तक मनुष्यों ने छोटे प्राणियों का शिकार किया, जो कुछ बटोर सकते थे, उसे बटोरा, जिस दौरान वे बड़े शिकारियों द्वारा शिकार बनाए जाते रहे। ये महज़ 400,000 साल पहले की बात है, जब मनुष्यों की कई प्रजातियों ने नियमित रूप से बड़े शिकार करना शुरू किए, और ये - होमो सेपियन्स के अभ्युदय के साथ घटित - महज़ पिछले 100,000 सालों की घटना है कि मनुष्य भोजन-शृंखला के शिखर पर जा पहुँचा।

मध्यवर्ती स्थिति से शिखर पर लगाई गई इस शानदार छलांग के व्यापक नतीज़े हुए। शेर और शार्क जैसे जो दूसरे प्राणी इस पिरामिड के शिखर पर पहुँचे थे, वे लाखों वर्षों के दौरान धीरे-धीरे उस स्थिति तक पहुँचे थे। इस चीज़ ने पारिस्थितिकीय तन्त्र (इकोसिस्टम) की उन नियन्त्रणों और सन्तुलनों को विकसित करने में मदद की, जो शेरों और शार्कों को भारी तबाही मचाने से रोकते हैं। जब शेर ज़्यादा घातक होते गए, तब हिरणों ने और तेज़ दौड़ने, लकड़बग्घों ने बेहतर ढंग से सहयोग करने और गैंडों ने और ज़्यादा ग़ुस्सैल होने की सामर्थ्य विकसित कर ली। इसके विपरीत, मानव इतनी फुर्ती से शिखर पर जा पहुँचा कि पारिस्थितिकीय तन्त्र को तालमेल बैठाने का समय ही नहीं मिल सका। इसके

अलावा, ख़ुद मनुष्य तालमेल बैठाने में नाक़ामयाब रहे। महाद्वीप के सबसे शीर्षस्थ शिकारी तेजस्वी जीव हैं। लाखों वर्षों के प्रभुत्व ने उन्हें आत्मविश्वास से भर दिया है। सेपियन्स इसके विपरीत काफ़ी हद तक छोटे अविकसित देश की तरह हैं, जिसकी अर्थव्यवस्था विदेशी कंपनियों पर निर्भर होती है। अभी हाल ही के वक़्त तक घास के मैदान (सवाना) की एक कमज़ोर नस्ल रह चुकने के बाद हम अपनी स्थिति को लेकर भय और उद्विग्नताओं से भरे हैं। यह स्थिति हमें और भी क्रूर तथा ख़तरनाक बनाती है। इस अति-उतावली छलांग के नतीज़े में घातक युद्धों से लेकर पर्यावरण सम्बन्धी तबाहियों तक अनेक ऐतिहासिक आपदाएँ घटित हुई हैं।

रसोइयों की प्रजाति

शिखर पर पहुँचने की एक महत्त्वपूर्ण सीढ़ी आग को घरेलू बनाना था। कुछ मानव प्रजातियों ने कोई 800,000 साल पहले आग का कभी-कभार इस्तेमाल किया हो सकता है। 300,000 साल पहले तक आते-आते होमो इरेक्टस, निएंडरथल और होमो सेपियन्स के पूर्वज नियमित रूप से आग का इस्तेमाल करने लगे थे। मनुष्यों के पास अब रोशनी और गर्माहट का भरोसेमन्द संसाधन और शिकारी शेरों के ख़िलाफ़ एक घातक हथियार था। हो सकता है कि इसके बाद जल्दी ही मनुष्यों ने जानबूझकर अपने पड़ोस को जलाना शुरू कर दिया हो। एक सावधानीपूर्वक नियन्त्रित आग दुर्गम उजाड़ झुरमुटों को आखेटों से भरे उत्कृष्ट चरागाहों में बदल सकती थी। साथ ही जैसे ही आग बुझती होगी, वैसे ही प्रस्तर युग के उद्यमी धुआँ उगलते अवशेषों के बीच से गुज़रते हुए अधजले जानवरों, गुठलियों और कन्दमूलों को समेट लेने में समर्थ हो गए होंगे।

लेकिन आग ने जो सबसे अच्छा काम किया, वह था पकाना। गेहूँ, चावल और आलू जैसी भोजन की जिन वस्तुओं को मनुष्य इनके कुदरती रूपों में पचा नहीं पाते थे, वे पकाए जाने की वजह से हमारे मुख्य खाद्य पदार्थ बन गईं। आग ने ना केवल भोजन के रसायन को बदल दिया, बल्कि उसने उसकी जैविकी को भी बदल दिया। पकाने की क्रिया उन कीटाणुओं और परजीवियों को मार देती थी, जो भोजन में फैलकर उसको दूषित कर देते थे। फलों, गुठलियों, कीड़ों और मृत जानवरों के मांस के पक जाने से मनुष्यों को इन चीज़ों को चबाने और पचाने में बहुत ज़्यादा आसानी हो गई। जहाँ चिंपांज़ी को कच्चे भोजन को चबाने में हर दिन पाँच घण्टे लग जाते हैं, वहीं पका हुआ अन्न खाने के लिए लोगों को एक घण्टा पर्याप्त होता है।

पकाने की क्रिया के आगमन ने मनुष्यों को अनेक तरह के भोजनों को खाने, खाने की क्रिया में कम समय लगाने और छोटे दाँतों तथा छोटी आँतों से काम चलाने में सक्षम बना दिया। कुछ अध्येताओं का मानना है कि पकाने की क्रिया के आगमन, मनुष्य की अँतड़ियों के मार्ग के छोटे होने और मानव मस्तिष्क के विकास के बीच सीधा सम्बन्ध है। चूँकि लम्बी आँतें और विशाल मस्तिष्क दोनों ही बड़े पैमाने पर ऊर्जा का उपभोग करते हैं, इसलिए दोनों का होना मुश्किल में डालता है। पकाने की क्रिया ने आँतों को छोटा करके और उनकी ऊर्जा खपत को घटाकर निएंडरथल्स और सेपियन्स के लिए विशाल मस्तिष्क का रास्ता खोल दिया।

आग ने मनुष्य और दूसरे प्राणियों के बीच पहली महत्त्वपूर्ण खाई भी पैदा की। लगभग सभी प्राणियों की शक्ति उनकी कायाओं पर निर्भर करती है : उनकी मांसपेशियों की ताक़त, उनके दाँतों के आकार और उनके पंखों की चौड़ाई पर। वे हवाओं और जल-प्रवाहों का इस्तेमाल तो कर सकते हैं, लेकिन इन कुदरती बलों को नियन्त्रित नहीं कर सकते, और वे इनकी भौतिक बनावट के सामने हमेशा लाचार होते हैं। उदाहरण के लिए गिद्ध ज़मीन से उठते ऊष्म हवा के स्तम्भों (थर्मल कॉलम्स) को पहचान लेते हैं, अपने विशाल पंख फैलाते हैं और गर्म हवा को गुंजाइश देते हैं कि वह उन्हें ऊपर की ओर खींच सके, लेकिन गिद्ध इन स्तम्भों की स्थिति को नियन्त्रित नहीं कर सकते और उनकी अधिकतम क्षमता पूरी तरह से उनके पंखों के विस्तार के अनुपात में होती है।

जब मनुष्यों ने आग को घरेलू बना लिया, तो उन्होंने एक आज्ञानुवर्ती और सम्भाव्य रूप से असीम बल पर क़ाबू पा लिया। गिद्धों से भिन्न, मनुष्य यह तय कर सकते थे कि उन्हें कब और कहाँ एक लपट पैदा करनी है और वे कितने ही कामों के लिए आग का उपयोग कर सकते थे। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आग की शक्ति मानव शरीर के रूप, संरचना या सामर्थ्य से सीमित नहीं थी। एक अकेली औरत चकमक या आग की तीली से कुछ ही घण्टों में समूचे जंगल को जलाकर राख कर सकती थी। आग का घरेलू होना आने वाली चीज़ों का एक संकेत था।

हमारे बन्धुओं के रखवाले

आग के फ़ायदों के बावजूद 150,000 साल पहले तक मनुष्य हाशिए के प्राणी ही थे। वे अब शेरों को डरा कर भगा सकते थे, ठण्डी रातों के दौरान ख़ुद को गर्म रख सकते थे और कभी-कभी जंगलों को आग लगा सकते थे, लेकिन सारी प्रजातियों को एक साथ रखकर देखा जाता, तो वे इंडोनेशियाई द्वीपसमूह और इबेरियाई प्रायद्वीप के बीच रह रहे लाखों मनुष्यों से ज़्यादा कुछ नहीं थे, वे पारिस्थितिकीय राडार पर एक कौंध से ज़्यादा कुछ नहीं थे।

हमारी अपनी प्रजाति होमो सेपियन्स विश्व मंच पर प्रकट हो चुकी थी, लेकिन अब तक वह अफ़्रीका के एक कोने में अपने काम में लगी थी। हम ठीक-ठीक नहीं जानते कि होमो सेपियन्स के रूप में वर्गीकृत किए जा सकने वाले प्राणी मनुष्यों की आरम्भिक क़िस्म से कहाँ और कब विकसित हुई, लेकिन ज़्यादातर वैज्ञानिक इस बात पर एकमत हैं कि 150,000 वर्ष पहले का समय आते-आते पूर्वी अफ़्रीका उन सेपियन्स से आबाद हो चुका था, जो हमारी तरह दिखते थे। अगर उनमें से कोई आधुनिक मुर्दाघर में मिल जाए, तो स्थानीय पैथोलॉजिस्ट को उसमें कोई अनूठी चीज़ दिखाई नहीं देगी। आग की कृपा से उनके दाँत और जबड़े उनके पूर्वजों के मुक़ाबले छोटे थे, जबकि उनके मस्तिष्क विशाल थे, हमारे मस्तिष्कों के बराबर आकार के।

वैज्ञानिक इस बात पर भी सहमत हैं कि लगभग 70,000 साल पहले पूर्वी अफ़्रीका के सेपियन्स अरब प्रायद्वीप में फैल गए थे और वहाँ से वे बहुत तेज़ी से समूचे यूरेशियाई भू-भाग में फैल गए।

जब होमो सेपियन्स अरब पहुँचे, तब यूरेशिया के ज़्यादातर हिस्से में दूसरे मनुष्य

पहले से ही बस चुके थे। उनका क्या हुआ? इस बारे में दो परस्पर विरोधी अनुमान हैं। 'संकरण सिद्धान्त' (इंटरब्रीडिंग थ्योरी) आकर्षण, काम (सेक्स) और घुलने-मिलने की कहानी कहता है। जैसे ही अफ़्रीका से आए लोग दुनिया में फैले, उन्होंने दूसरी मनुष्य आबादियों के साथ मिलकर प्रजनन किया और आज के लोग इसी संकरण का नतीज़ा हैं।

उदाहरण के लिए सेपियन्स जब मध्यपूर्व और यूरोप पहुँचे, तो उनका सामना निएंडरथल्स से हुआ। ये मनुष्य सेपियन्स के मुक़ाबले ज़्यादा मांसल थे, उनके मस्तिष्क बड़े थे और वे बेहतर ढंग से ठण्डी जलवायु के अभ्यस्त थे। वे औज़ारों और आग का इस्तेमाल करते थे। वे अच्छे शिकारी थे और समझा जाता है कि अपने बीमारों और अशक्त लोगों की देखभाल किया करते थे। (पुरातत्त्वविदों ने उन निएंडरथल्स की हड्डियाँ खोज निकाली हैं, जो वर्षों गम्भीर शारीरिक अपंगता के साथ रहे थे। यह इस बात का साक्ष्य है कि उनके रिश्तेदारों ने उनकी देखभाल की थी)। व्यंगचित्रों में निएंडरथल्स का चित्रण अक्सर आद्यप्रारूपीय पशुवत और मूर्ख 'कन्दरावासी लोगों' के रूप में किया जाता रहा है, लेकिन हाल ही के साक्ष्यों ने उनकी छवि को बदला है।

संकरण सिद्धान्त के मुताबिक़, जब सेपियन्स निएंडरथल्स के देशों में फैल गए, तो सेपियन्स ने उनके साथ तब तक प्रजनन किया, जब तक कि दोनों आबादियाँ एक दूसरे में विलीन नहीं हो गईं। अगर ऐसा है, तो आज के यूरेशियाई विशुद्ध सेपियन्स नहीं हैं। वे सेपियन्स और निएंडरथल्स का मिश्रण हैं। इसी तरह, जब सेपियन्स पूर्वी एशिया पहुँचे, तो उन्होंने स्थानीय इरेक्टस के साथ प्रजनन किया, इस तरह चीनी और कोरियाई लोग सेपियन्स तथा इरेक्टस का मिश्रण हैं।

इसके विपरीत दृष्टिकोण, जिसे 'प्रतिस्थापन सिद्धान्त' (रिप्लेसमेंट थ्योरी) कहा जाता है, एक बिलकुल अलग ही कहानी कहता है - असामंजस्य, विकर्षण और शायद जातिसंहार तक की कहानी। इस अनुमान के अनुसार, सेपियन्स और दूसरे मनुष्यों की शरीर रचनाएँ भिन्न थीं और पूरी सम्भावना है कि इनके सहवास करने के ढंग और शरीर की गन्धें तक अलग थीं। एक दूसरे में उनकी कामपरक दिलचस्पियाँ बहुत कम रही होंगी। और अगर एक निएंडरथल्स रोमियो और एक सेपियन्स जूलियट के बीच इश्क़ हो भी जाता, तो वे प्रजननशील बच्चों को पैदा नहीं कर सकते थे। दोनों आबादियों को अलगाने वाली आनुवांशिक (जेनेटिक) खाई को पाटा नहीं जा सकता था। दोनों आबादियाँ पूरी तरह से पृथक बनी रहीं और जब निएंडरथल्स मर गए, या मार दिए गए, तो उनके जीन भी उन्हीं के साथ मर गए। इस दृष्टिकोण के मुताबिक़, सेपियन्स ने तमाम पिछली मानवीय आबादियों में घुले बग़ैर उनकी जगह ले ली। अगर ऐसा है, तो आज के तमाम मनुष्यों का उद्गम पूरी तरह से 70,000 साल पहले के पूर्वी अफ़्रीका में देखा जा सकता है। हम सब 'विशुद्ध सेपियन्स' हैं।

इस बहस पर बहुत कुछ निर्भर करता है। विकासवादी परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से 70,000 साल एक अपेक्षाकृत छोटा अन्तराल है। अगर प्रतिस्थापन सिद्धान्त सही है, तो सारे जीवित मनुष्यों का आनुवांशिक असबाब मोटे तौर पर एक समान है, और उनके बीच के नस्लपरक भेद नगण्य ठहरते हैं, लेकिन अगर संकरण सिद्धान्त सही है, तो अफ़्रीकियों, यूरोपीय लोगों और एशियाइयों के बीच के आनुवांशिक भेद हज़ारों साल पुराने हो सकते

हैं। यह एक राजनैतिक डायनामाइट है, जो विस्फोटक नस्लपरक सिद्धान्तों के लिए सामग्री उपलब्ध करा सकता है।

हाल के दशकों में प्रतिस्थापन सिद्धान्त इस क्षेत्र में एक आम समझ रही है। इसके पास एक अपेक्षाकृत सुदृढ़ पुरातात्त्विक आधार था और यह राजनैतिक दृष्टि से ज़्यादा उचित था (आधुनिक मानव आबादियों के बीच महत्त्वपूर्ण आनुवांशिक विविधताओं का दावा करके नस्लवाद के ‘भानुमति के पिटारे’ को खोलने की वैज्ञानिकों की कोई इच्छा नहीं थी), लेकिन 2010 में यह समझ समाप्त हो गई, जब निएंडरथल्स के जीन-समूह का नक़्शा तैयार करने के चार साल लम्बे उद्यम के परिणाम प्रकाशित हुए। जेनेटिक-विशेषज्ञ जीवाश्मों से निएंडरथल्स के इतने पर्याप्त सुरक्षित डीएनए एकत्र करने में सक्षम थे कि वे उनकी और समकालीन मनुष्यों के डीएनए की विस्तृत तुलना कर सकते थे। इन नतीज़ों ने वैज्ञानिक समुदाय को स्तब्ध कर दिया।

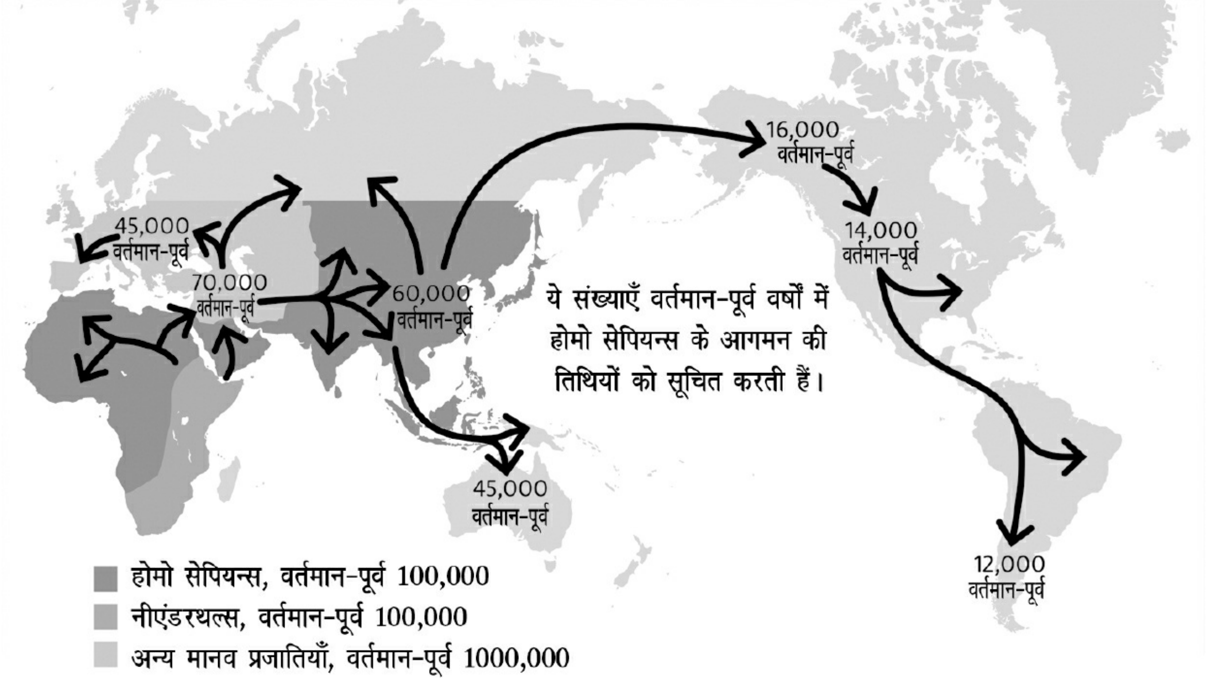
16,000 वर्तमान-पूर्व
45,000 वर्तमान-पूर्व
70,000 वर्तमान-पूर्व
60,000 वर्तमान-पूर्व
14,000 वर्तमान-पूर्व
ये संख्याएँ वर्तमान-पूर्व वर्षों में होमो सेपियन्स के आगमन की तिथियों को सूचित करती हैं।
45,000 वर्तमान-पूर्व
12,000 वर्तमान-पूर्व
■ होमो सेपियन्स, वर्तमान-पूर्व 100,000
■ नीएंडरथल्स, वर्तमान-पूर्व 100,000
■ अन्य मानव प्रजातियाँ, वर्तमान-पूर्व 1000,000

नक़्शा 1. होमो सेपियन्स की विश्व विजय।

पता चला कि मध्यपूर्व और यूरोप की आधुनिक आबादियों के विशिष्ट (यूनिक) मानवीय डीएनए का 1.4 प्रतिशत निएंडरथल्स का डीएनए है। ये बहुत बड़ी तादाद नहीं है, लेकिन यह महत्त्वपूर्ण है। दूसरा झटका कई महीनों बाद लगा, जब डेनिसोवा से मिली जीवाश्मीकृत अंगुली से निकाले गए डीएनए का नक़्शा तैयार किया गया। नतीज़े ने साबित किया कि आधुनिक मेलानेशियाई और ऑस्ट्रेलियाई आदिवासियों के विशिष्ट मानवीय डीएनए का 6 प्रतिशत डेनिसोवियाई डीएनए है।

अगर ये नतीज़े प्रामाणिक हैं - और इस बात को दिमाग़ में रखना महत्त्वपूर्ण है कि और भी शोध अभी जारी हैं और वे इन निष्कर्षों को पुष्ट कर सकते हैं या बदल सकते हैं, तो संकरणवादियों का कहना कम से कम कुछ हद तक सही है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रतिस्थापन सिद्धान्त पूरी तरह से ग़लत है। चूँकि निएंडरथल्स और

डेनिसोवन्स ने हमारे आज के जीन-समूह में थोड़े से डीएनए का योगदान किया है, इसलिए सेपियन्स और दूसरी मनुष्य प्रजातियों के बीच ‘विलयन’ की बात करना असम्भव है। यद्यपि इनके बीच के भेद इतने पर्याप्त बड़े नहीं थे कि वे जननक्षम सम्भोग को रोकते, लेकिन वे इस तरह के सम्पर्कों को बहुत विरल बनाने के लिए काफ़ी थे।

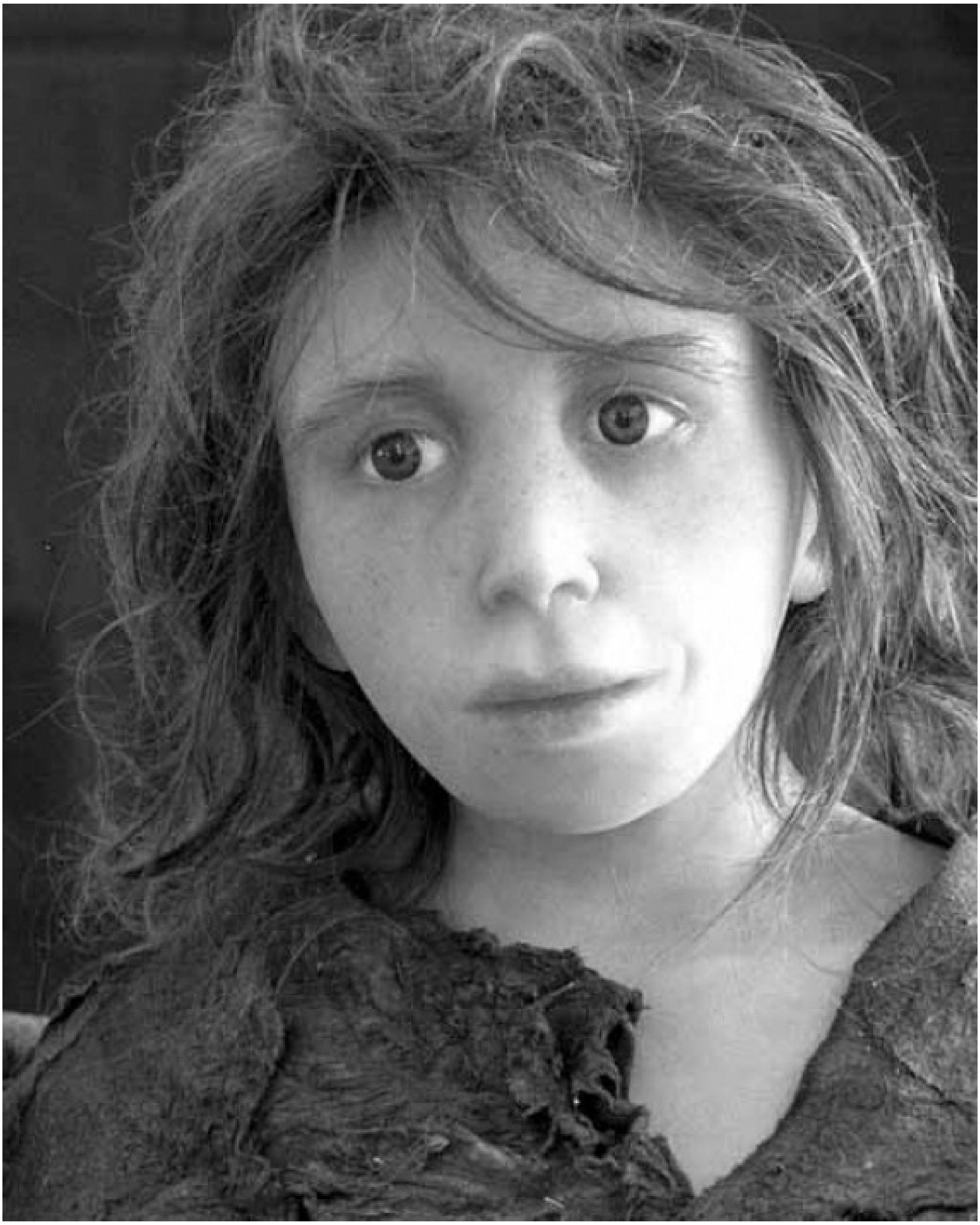

3. एक निएंडरथल बच्ची की अनुमानित पुनर्रचना। आनुवांशिक साक्ष्य इंगित करते हैं कि कम से कम कुछ निएंडरथलों की चमड़ी और बाल गौर वर्ण के रहे हो सकते हैं।

तब फिर हमें सेपियन्स, निएंडरथल्स और डेनिसोवन्स की जैविक सम्बद्धता को किस तरह समझना चाहिए? स्पष्ट है कि वे घोड़ों या बन्दरों की तरह पूरी तरह से भिन्न प्रजाति नहीं थे। दूसरी ओर, वे बुलडॉग और स्पेनियल की तरह एक ही प्रजाति के विभिन्न लोग भी नहीं थे। जैविक वास्तविकता स्याह और सफ़ेद नहीं होती। वहाँ महत्त्वपूर्ण अपरिभाषित इलाक़े भी होते हैं। एक उभयनिष्ठ पूर्वज से विकसित घोड़ों और गधों की तरह की हर दो प्रजातियाँ किसी समय में एक ही प्रजाति की दो आबादियाँ थीं, जैसे बुलडॉग और स्पाइनल। कोई ऐसा मुक़ाम निश्चय ही रहा होगा, जब दो आबादियाँ एक दूसरे से पहले ही पूरी तरह भिन्न रही होंगी, लेकिन जो कभी-कभार संसर्ग करने और सन्तानें उत्पन्न करने में सक्षम रही होंगी। इसके बाद एक और उत्परिवर्तन ने इस आख़िरी संयोजक सूत्र को काट दिया और वे विकास के अलग-अलग रास्तों पर चले गए।

लगता है कि लगभग 50,000 साल पहले सेपियन्स, निएंडरथल्स और डेनिसोवन्स उस सीमा-रेखा पर थे। वे लगभग पूरी तरह से अलग-अलग प्रजातियाँ थे। जैसा कि हम अगले अध्याय में देखेंगे, सेपियन्स पहले ही निएंडरथल्स और डेनिसोवन्स से बहुत भिन्न थे, सिर्फ़ अपने आनुवांशिक कोड और शारीरिक लक्षणों के मामले में ही नहीं, बल्कि अपनी संज्ञानात्मक और सामाजिक योग्यताओं के मामले में भी, फिर भी लगता है कि सेपियन्स और निएंडरथल्स के लिए तब भी, कभी-कभार जननक्षम सन्तानें पैदा करना सम्भव रहा होगा। इसलिए आबादी घुल-मिल नहीं गई, लेकिन निएंडरथाल के कुछ सौभाग्यशाली जीन्स को 'सेपियन्स एक्सप्रेस' में सवारी करने का मौक़ा मिल गया था। यह विचलित करने वाली - और शायद रोमांचक - बात है कि हम सेपियन्स ने एक समय में एक भिन्न प्रजाति के प्राणी के साथ संसर्ग किया हो सकता है और दोनों ने मिलकर सन्तानें उत्पन्न की हो सकती हैं।

लेकिन अगर निएंडरथल्स, डेनिसोवन्स और अन्य मनुष्य प्रजातियाँ सेपियन्स में विलीन नहीं हुईं, तो फिर वे ग़ायब क्यों हो गईं? ज़रा सेपियन्स समूह के बाल्कान घाटी में पहुँचने की कल्पना कीजिए, जहाँ निएंडरथल्स सैकड़ों हज़ारों साल से रह रहे थे। इन नवागन्तुकों ने उन हिरणों का शिकार करना और वे बीज (नट्स) और बेरियाँ बटोरना शुरू कर दिया, जो निएंडरथल्स की पारम्परिक भोजन सामग्री थे। सेपियन्स बेहतर टेक्नोलॉजी और श्रेष्ठ सामाजिक दक्षताओं के कारण शिकार और संग्रह करने के मामले में ज्यादा कुशल थे। उनके मुक़ाबले कम चतुर निएंडरथल्स को अपना पोषण करना उत्तरोत्तर मुश्किल होता गया। आबादी कमज़ोर होती गई और वे धीरे-धीरे मरते गए, शायद एक-दो सदस्यों को छोड़ कर, जो अपने सेपियन्स पड़ोसियों में शामिल हो गए।

एक और सम्भावना यह है कि संसाधनों को हासिल करने की होड़ भड़क कर हिंसा और जाति-संहार में बदल गई हो। सहिष्णुता सेपियन्स की विशेषता नहीं है। आधुनिक युगों में चमड़ी का रंग, बोली या धर्म का छोटा-सा भेद सेपियन्स के एक समूह को दूसरे समूह के विनाश के लिए भड़काने को काफ़ी रहा है। क्या प्राचीन सेपियन्स एक नितान्त भिन्न मनुष्य प्रजाति के प्रति अधिक सहिष्णु रहे होंगे? पूरी सम्भावना है कि जब सेपियन्स की मुठभेड़ निएंडरथल्स से हुई होगी, तो उसका नतीज़ा इतिहास के पहले और सबसे महत्त्वपूर्ण जाति-संहार के रूप में सामने आया होगा।

यह सब जिस किसी भी तरह हुआ हो, लेकिन निएंडरथल्स (और अन्य मनुष्य

प्रजातियाँ) इतिहास की एक सबसे बड़ी अटकल पेश करती हैं। कल्पना कीजिए कि यदि निएंडरथल्स या डेनिसोवन्स होमो सेपियन्स के साथ-साथ जीवित बने रहे होते,तो हालात ने क्या शक्ल ली होती। उस दुनिया में किस की संस्कृतियाँ, समाज और राजनैतिक संरचनाएँ प्रकट हुई होतीं, जिसमें एक साथ अनेक मनुष्य प्रजातियों का सहअस्तित्व रहा होता? उदाहरण के लिए धार्मिक आस्थाएँ किस रूप में सामने आई होतीं? क्या जेनेसिस की पोथी ने यह घोषणा की होती कि निएंडरथल्स आदम और ईव के वंशज हैं, क्या ईसा डेनिसोवन्स के पापों की ख़ातिर मरे होते, और क्या क़ुरान ने जिस किसी भी प्रजाति के तमाम नेक इंसानों के लिए ज़न्नत में जगह सुरक्षित की होतीं? क्या निएंडरथल्स रोमन सेना में या शाही चीन की विशाल नौकरशाही में अपनी सेवाएँ दे सके होते? क्या ‘अमेरिकन डिक्लेयरेशन ऑफ़ इंडिपेंडेंस’ इसे एक स्वतः सिद्ध वास्तविकता के रूप में स्वीकार करता कि होमो प्रजाति के सारे सदस्य जन्मजात रूप से बराबरी का दर्ज़ा रखते हैं? क्या कार्ल मार्क्स ने तमाम प्रजातियों के कामगारों से एकजुट होने का आह्वान किया होता?

पिछले 10,000 सालों से होमो सेपियन्स एकमात्र मानव प्रजाति होने का इस क़दर अभ्यस्त हो गया है कि हमारे लिए किसी दूसरी सम्भावना की कल्पना करना मुश्किल हो चुका है। भाइयों और बहनों के हमारे अभाव के कारण हमें यह कल्पना करना आसान हो गया है कि हम सृष्टि के प्रतिमान हैं और एक बहुत बड़ी खाई है, जो हमें शेष प्राणियों के साम्राज्य से अलग करती है। जब चार्ल्स डार्विन ने इस ओर इशारा किया था कि होमो सेपियन्स प्राणियों की महज़ एक और क़िस्म है, तो लोग बुरी तरह नाराज़ हो उठे थे। यहाँ तक कि बहुत से लोग आज भी इस पर विश्वास करने को तैयार नहीं होते। अगर निएंडरथल्स जीवित बने रहे होते, तो भी क्या हम अपने आपको अलग प्राणी मानते? सम्भवतः ठीक इसी वजह से हमारे पूर्वजों ने निएंडरथल्स को नेस्तनाबूत कर दिया होगा। वे इतने सुपरिचित थे कि अनदेखा नहीं कर सकते थे, लेकिन इतने भिन्न थे कि सह नहीं सकते थे।

सेपियन्स दोषी रहे हों या ना रहे हों, लेकिन जैसे ही वे एक नए ठिकाने पर पहुँचे, वैसे ही वहाँ की स्थानीय आबादी का लोप हो गया। होमो सोलोएंसिस का अन्तिम अवशेष लगभग 50,000 साल पहले का है। होमो डेनिसोवा इसके तुरन्त बाद लुप्त हो गए। निएंडरथल्स मोटे तौर पर 30,000 साल पहले चले गए। बौने-नुमा अन्तिम मानव फ़्लोरेस के द्वीप से लगभग 12,000 साल पहले ग़ायब हुए। वे अपने पीछे कुछ अस्थियाँ, कुछ पत्थर के औज़ार, हमारे डीएनए में कुछ जीन और ढेर सारे अनुत्तरित प्रश्न छोड़ गए। वे हम होमो सेपियन्स के पीछे अन्तिम मानव प्रजाति को भी छोड़ गए।

सेपियन्स की कामयाबी का रहस्य क्या था? किस तरह हम इतने सारे दूरदराज़ और पर्यावरण की दृष्टि से भिन्न स्थानों पर इतनी तेज़ी से अपने पैर जमा सके? हमने किस तरह दूसरी मानव प्रजातियों को गुमनामी में धकेल दिया? यहाँ तक कि मज़बूत, अक़्लमन्द, ठण्ड के अभ्यस्त निएंडरथल्स भी हमारे हमले को क्यों नहीं झेल सके? बहस ज़ोरों से जारी है। सबसे सम्भावित जवाब स्वयं वह चीज़ है, जो इस बहस को मुमकिन बनाती है : होमो सेपियन्स ने सबसे ऊपर अपनी अनूठी भाषा की वजह से दुनिया पर

विजय प्राप्त की है।

2

ज्ञान का वृक्ष

पिछले अध्याय में हमने देखा कि हालाँकि सेपियन्स 150,000 साल पहले पूर्वी अफ़्रीका को आबाद कर चुके थे, लेकिन उन्होंने पृथ्वी ग्रह के बाक़ी हिस्सों का अतिक्रमण करने और दूसरी मानव प्रजातियों को विनाश की ओर खदेड़ने की शुरुआत सिर्फ़ 70,000 साल पहले ही की। बीच की सहस्राब्दियों में, भले ही ये आदिम सेपियन्स ठीक हमारे जैसे ही दिखते थे और उनके मस्तिष्क हमारे जितने ही बड़े थे, लेकिन वे दूसरी मानव प्रजातियों पर कोई उल्लेखनीय बढ़त हासिल नहीं कर सके, वे विशेष परिष्कृत औज़ार तैयार नहीं कर सके और कोई अन्य साहसिक कार्य नहीं कर सके।

दरअसल, सेपियन्स और निएंडरथल्स के बीच की पहली ज्ञात मुठभेड़ में निएंडरथल्स की जीत हुई थी। लगभग 100,000 साल पहले कुछ सेपियन्स समूह उत्तर में लेवान्त आ गए थे, जो निएंडरथल्स का इलाक़ा था, लेकिन वे अपने पैर जमाने में क़ामयाब नहीं हो सके। इसकी वजह ख़तरनाक स्थानीय मूल निवासी, कठोर जलवायु या अपरिचित स्थानीय परजीवी रहे हो सकते हैं। वजह जो भी रही हो, सेपियन्स अन्ततोगत्वा, निएंडरथल्स को मध्यपूर्व के मालिकों के रूप में छोड़कर पीछे हट गए।

उपलब्धि का यह बुरा कीर्तिमान शोधकर्ताओं को इस अनुमान की ओर ले गया है कि इन सेपियन्स के मस्तिष्क की अन्दरूनी संरचना हमारे मस्तिष्क की अन्दरूनी संरचना से भिन्न रही होगी। वे हमारे जैसे दिखते थे, लेकिन उनकी संज्ञानात्मक क्षमताएँ - सीखने, याद रखने, सम्प्रेषित करने की क्षमताएँ - कहीं ज़्यादा सीमित थीं। ऐसे किसी प्राचीन सेपियन्स को अँग्रेज़ी पढ़ाने, उसे ईसाई धर्ममत के सत्य की ओर प्रवृत्त करने या उसमें विकासवाद के सिद्धान्त की समझ पैदा करने की कोशिश शायद निराशा जगाने वाली होती। इसके विपरीत, उसकी भाषा को सीखने और उसके सोचने के तरीक़े को समझने में हमें बहुत मुश्किल पेश आती।

लेकिन फिर, लगभग 70,000 साल पहले होमो सेपियन्स ने कुछ बेहद ख़ास तरह की चीज़ों की शुरुआत की। इस समय के आस-पास सेपियन्स के समूहों ने दूसरी बार अफ़्रीका से प्रस्थान किया। इस बार उन्होंने निएंडरथल्स और दूसरी मानव प्रजातियों को ना सिर्फ़ मध्य पूर्व से खदेड़ दिया, बल्कि पृथ्वी से ही खदेड़ दिया। उल्लेखनीय ढंग से छोटी-सी अवधि के भीतर सेपियन्स यूरोप और पूर्वी एशिया में पहुँच गए। लगभग 45,000 साल पहले उन्होंने किसी तरह खुले समुद्र को पार किया और ऑस्ट्रेलिया जा पहुँचे - वह महाद्वीप जो अब तक मनुष्यों से अछूता था। 70,000 साल पहले से लेकर 30,000 साल पहले के बीच की अवधि नावों, तेल के दीयों, तीर-कमानों और सुइयों (जो गर्म कपड़ों की सिलाई के ज़रूरी थीं) के आविष्कार की साक्षी बनी। जिन पहली वस्तुओं को विश्वसनीय ढंग से कला और जेवरों की संज्ञा दी जा सकती है, उनकी शुरुआत इसी युग से होती है, उसी तरह धर्म, वाणिज्य और सामाजिक स्तरीकरण के प्रथम अकाट्य प्रमाण की भी।

ज़्यादातर शोधकर्ता मानते हैं कि ये अपूर्व उपलब्धियाँ सेपियन्स की संज्ञानात्मक क्षमता में आई क्रान्ति की उपज थीं। उनका कहना है कि जिन लोगों ने निएंडरथल्स को विलुप्ति की ओर धकेला, ऑस्ट्रेलिया को उपनिवेशीकृत किया और स्टाडेल नर-सिंह (लायन-मैन) को तराशा, वे उतने ही अक़्लमन्द, रचनात्मक और संवेदनशील थे, जितने हम हैं।

अगर स्टाडेल गुफा के कलाकारों से हमारी मुलाक़ात हो जाती, तो वे हमारी भाषा सीख सकते थे और हम उनकी। हम जो कुछ भी जानते हैं, वह सब उन्हें समझा पाते - 'एलिस इन वंडरलैंड' के कारनामों से लेकर क़्वांटम भौतिकी के विरोधाभासों तक, सब कुछ। यही नहीं, वे हमें दुनिया को देखने के अपने समाज के ढंग के बारे में सिखा पाते।

70,000 और 30,000 साल पहले के बीच के वक़्त में सोचने और सम्प्रेषित करने के नए तरीक़ों के आविर्भाव को संज्ञानात्मक क्रान्ति (कॉग्नीटिव रिवोल्यूशन) की संज्ञा दी जा सकती है। इस क्रान्ति को किस चीज़ ने जन्म दिया? हम निश्चित तौर पर नहीं जानते। जिस सिद्धान्त को सबसे ज़्यादा मान्यता प्राप्त है, वह कहता है कि आकस्मिक जेनेटिक उत्परिवर्तनों (म्यूटेशन्स) ने सेपियन्स के मस्तिष्कों की अन्दरूनी वायरिंग को बदलकर उनको अपूर्व ढंग से सोचने और सर्वथा नई भाषा का इस्तेमाल करते हुए सम्प्रेषण करने में सक्षम बना दिया। हम इसे ज्ञान-वृक्ष परिवर्तन की संज्ञा दे सकते हैं।

यह परिवर्तन निएंडरथल्स के बजाय सेपियन्स के डीएनए में क्यों घटित हुआ? हमारा अनुमान है कि यह विशुद्ध संयोग था, लेकिन ज्ञान-वृक्ष परिवर्तन के कारणों से ज़्यादा इसके परिणामों को समझना महत्त्वपूर्ण है। सेपियन्स की नई भाषा में ऐसा क्या ख़ास था कि इसने हमें दुनिया को जीतने के क़ाबिल बना दिया?

यह पहली भाषा नहीं थी। हर प्राणी की किसी ना किसी तरह की भाषा होती है। यहाँ तक कि मधुमक्खियों और चीटियों जैसे कीड़े भी अच्छे तरीक़ों से संवाद करना जानते हैं, और वे भोजन के ठिकाने के बारे में एक दूसरे को सूचित करते हैं। ना ही यह पहली वाचिक भाषा थी। वानरों (एप्स) और बन्दरों की सभी प्रजातियों समेत कई प्राणियों की अपनी वाचिक भाषा है। उदाहरण के लिए, हरे बन्दर (ग्रीन मंकीज़) सम्प्रेषण के लिए विभिन्न क़िस्म की पुकारों का उपयोग करते हैं। प्राणी वैज्ञानिकों ने ऐसी ही एक पुकार की

पहचान की है, जिसका मतलब होता है, ‘सावधान! गिद्ध’! एक थोड़ी-सी भिन्न पुकार चेतावनी देती है, ‘सावधान! शेर’! जब शोधकर्ताओं ने बन्दरों के एक झुण्ड के सामने पहली तरह की पुकार की रिकॉर्डिंग बजाई, तो सारे बन्दर अपना-अपना काम रोककर डरे हुए ऊपर की ओर देखने लगे। जब उसी झुण्ड ने दूसरी पुकार की रिकॉर्डिंग, यानी शेर की चेतावनी सुनी, तो वे फुर्ती से एक पेड़ पर चढ़ गए। सेपियन्स हरे बन्दरों के मुक़ाबले भिन्न-भिन्न तरह की अनेक आवाज़ें निकाल सकते हैं, लेकिन ह्वेल मछलियों और हाथियों में बराबर की प्रभावशाली क्षमताएँ होती हैं।

एक तोता कोई भी ऐसी बात कह सकता है, जो अल्बर्ट आइंस्टीन कह सकते थे, साथ ही वह फ़ोन की घण्टी, दरवाज़े के ज़ोर से बन्द होने और सायरन के चिल्लाने की आवाज़ों की नक़ल भी कर सकता है। आइंस्टीन जिस किसी भी मामले में तोते से श्रेष्ठ रहे हों, लेकिन यह वाचिक मामले की श्रेष्ठता नहीं थी। तब फिर हमारी भाषा में ख़ास क्या है?

इसका सबसे आम जवाब यह है कि हमारी भाषा आश्चर्यजनक रूप से लचीली है। हम ध्वनियों और संकेतों की सीमित संख्या को जोड़कर अन्तहीन वाक्य बना सकते हैं। इस तरह हम अपनी आस-पास की दुनिया के बारे में सूचना की असाधारण मात्रा को निगल सकते हैं, उसका संग्रह कर सकते है और उसे सम्प्रेषित कर सकते हैं। एक हरा बन्दर अपने साथियों से चीख़ कर कह सकता है, ‘सावधान! शेर’!, लेकिन एक आधुनिक मानव अपने दोस्त से कह सकता है कि उसने आज सुबह, नदी के मोड़ के क़रीब एक शेर को बाइसन के झुण्ड का पीछा करते देखा है। वह इसके बाद उस इलाक़े की ओर जाने वाले विभिन्न रास्तों समेत एक़दम सही ठिकाने का वर्णन कर सकता है। इस सूचना के साथ उसके दल के सदस्य इकट्ठा होकर बातचीत कर सकते हैं कि क्या उन्हें शेर को खदेड़ने और बाइसन का शिकार करने नदी पर जाना चाहिए।

एक दूसरा अनुमान इस बात पर सहमत है कि हमारी अनूठी भाषा संसार के बारे में जानकारी साझा करने के लिए विकसित हुई, लेकिन जिस सबसे महत्त्वपूर्ण जानकारी को सम्प्रेषित करने की ज़रूरत थी, वह मनुष्यों के बारे में थी, ना कि शेरों और बाइसनों के बारे में। हमारी भाषा गपशप (गॉसिप) करने के एक तरीक़े के रूप में विकसित हुई। इस अनुमान के मुताबिक़, होमो सेपियन्स प्राथमिक तौर पर एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक सहकार जीवित बने रहने और प्रजनन करने के लिए हमारी कुंजी है। पुरुषों और स्त्रियों के लिए शेरों और बाइसनों के ठिकानों के बारे में जान लेना भर पर्याप्त नहीं है। उनके लिए कहीं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण यह जानना है कि उनके समूह में कौन किससे नफ़रत करता है, कौन किसके साथ सो रहा है, कौन ईमानदार है और कौन धोखेबाज़ है।

कुछ दर्जन व्यक्तियों के लगातार बदलते रिश्तों पर नज़र रखने के लिए हमें जानकारी की जो मात्रा हासिल करना और एकत्र करना अनिवार्य है, वह चौंका देने वाली है। पचास व्यक्तियों के समूह में प्रत्येक दो लोगों के बीच 1,225 रिश्ते होते हैं, और असंख्य तादाद में और भी जटिल सामाजिक संयोजन होते हैं। इस तरह की सामाजिक जानकारी में सारे वानर भी गहरी दिलचस्पी दिखाते हैं, लेकिन कारगर ढंग से गपशप करने में उन्हें कठिनाई होती है।

निएंडरथल्स और आदिम होमो सेपियन्स को भी शायद एक दूसरे की पीठ पीछे

बतियाने (एक बहु-निन्दित योग्यता, जो दरअसल लोगों की बड़ी तादाद के बीच आपसी सहकार के लिए अनिवार्य होती है) में बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ा होगा। आधुनिक सेपियन्स ने लगभग सत्तर हज़ार साल पहले जो नई भाषा संबंधी दक्षताएँ हासिल कीं, उसने उन्हें घण्टों आपस में बतियाने में सक्षम बनाया। कौन भरोसे के क़ाबिल है, इस बारे में विश्वसनीय सूचना का मतलब था कि छोटे समूह विस्तार पाकर बड़े समूहों में बदल सकते थे। इससे सेपियन्स परस्पर सहकार के अधिक प्रगाढ़ और उन्नत रूप विकसित कर सकते थे।

यह गपबाज़ी का सिद्धान्त एक मज़ाक़ जैसा लग सकता है, लेकिन बहुत से अध्ययन इसकी पुष्टि करते हैं। यहाँ तक कि आज भी मानवीय सम्प्रेषण का विराट हिस्सा - चाहे वह सम्प्रेषण ईमेल के रूप में हो, फ़ोन कॉल्स के रूप में हो या अख़बार के कॉलमों के रूप में हो - गपशप ही है। हम इसे इतने सहज तरीक़े से करते हैं कि लगता है, मानो हमारी भाषा इसी के लिए विकसित हुई है। क्या आपको लगता है कि इतिहास के प्रोफ़ेसर जब लंच के लिए एकत्र होते हैं, तो वे प्रथम विश्व युद्ध के कारणों के बारे में गपशप करते होंगे या परमाणु भौतिकीविद वैज्ञानिक सम्मेलनों के कॉफ़ी-ब्रेक के दौरान पदार्थ के सूक्ष्म अणुओं के बारे में बात करते होंगे? कभी-कभी, लेकिन ज़्यादातर वे उस प्रोफ़सर के बारे में कानाफ़ूसी करते हैं, जिसने अपने पति को छल करते हुए पकड़ा या विभागाध्यक्ष और डीन के झगड़े के बारे में या उन अफ़वाहों के बारे में कि उनके एक सहकर्मी ने अपने रिसर्च फ़ंड का इस्तेमाल लेक्सॅस कार ख़रीदने में कर लिया। गॉसिप सामान्यतः दुराचारों पर केन्द्रित होते हैं। अफ़वाहें फैलाने वाले लोग असली पत्रकार होते हैं, जो समाज को धोखेबाज़ों और मुफ़्तखोरों के बारे में सूचित करते हैं और इस तरह उनसे समाज की रक्षा करते हैं।

बहुत मुमकिन है कि गपबाज़ी का सिद्धान्त और 'नदी-के-क़रीब-शेर-है' का सिद्धान्त दोनों ही सही हों। तब भी हमारी भाषा का सच्चे अर्थों में अनूठा लक्षण मनुष्यों और शेरों के बारे में सूचना देने की इसकी सामर्थ्य नहीं है। इसके बजाय यह उन चीज़ों के बारे में सूचना देने की सामर्थ्य है, जिनका कोई अस्तित्व नहीं है। जहाँ तक हमारी जानकारी है, केवल सेपियन्स ही उन तमाम तरह की चीज़ों के बारे में बात कर सकते हैं, जिन्हें उन्होंने कभी भी देखा, छुआ या सूँघा नहीं है।

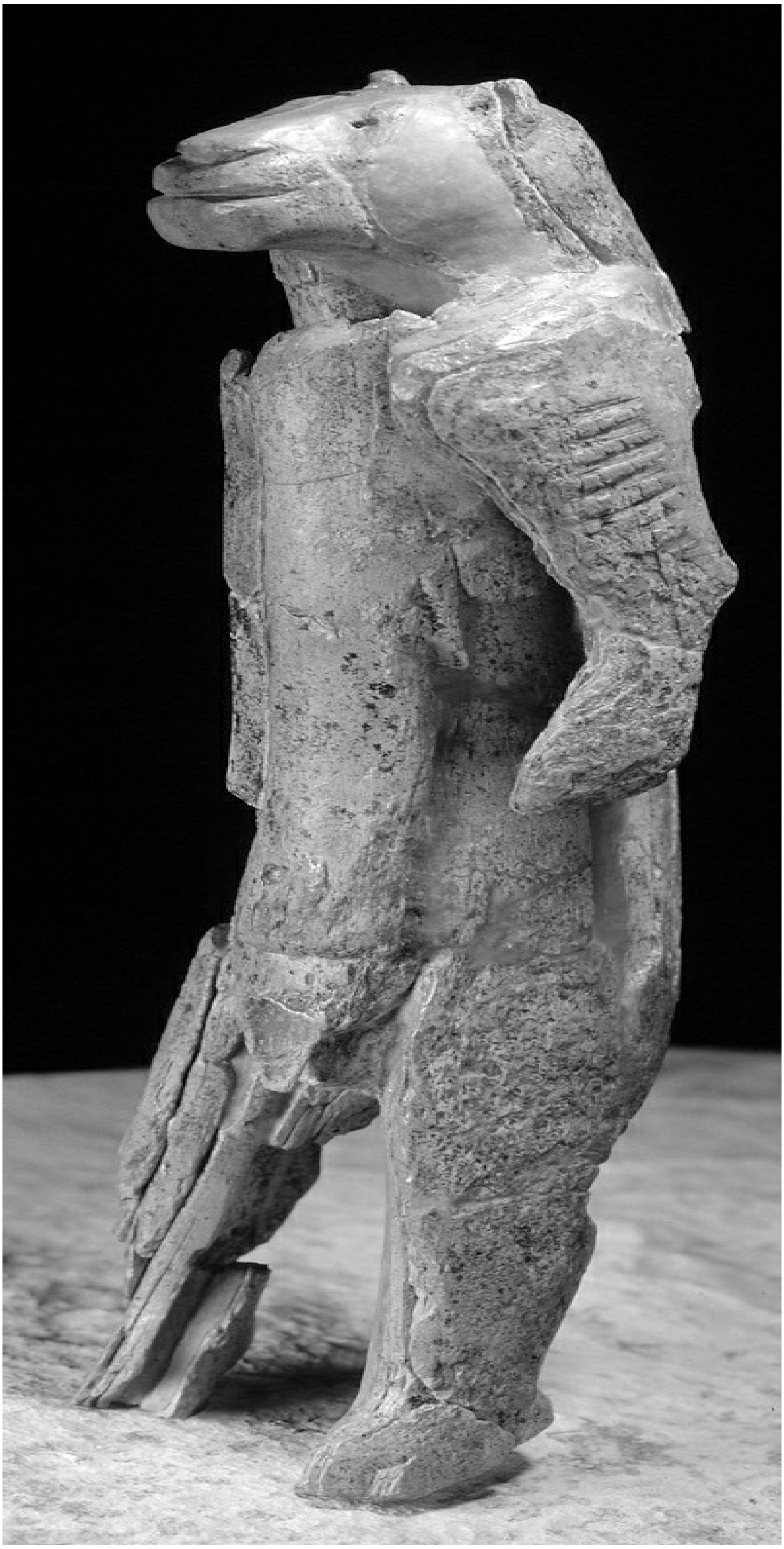

4. जर्मनी की स्टाडेल गुफा में पाई गई एक नर-सिंह (या नारी-सिंह) की हाथीदाँत की मूर्ति (लगभग 32,000 साल पुरानी) शरीर इंसान का है, लेकिन सिर सिंह जैसा है। यह कला और शायद धर्म और जिन चीज़ों का वास्तव में कोई अस्तित्व नहीं है, उनकी कल्पना कर सकने की इंसानी सामर्थ्य के भी पहले के निर्विवाद उदाहरणों में से एक है।

किंवदन्तियाँ, मिथक, देवता और धर्म पहली बार संज्ञानात्मक क्रान्ति के साथ प्रकट हुए। बहुत सारे प्राणी और मानव प्रजातियाँ पहले यह कह सकती थीं कि ‘सावधान! शेर’! संज्ञानात्मक क्रान्ति की वजह से होमो सेपियन्स ने यह कहने की क्षमता हासिल की कि ‘शेर हमारे क़बीले का रक्षक देवदूत है’। कल्पित चीज़ों के बारे में बात करने की यह सामर्थ्य सेपियन्स की भाषा की सबसे अनूठी विशेषता है।

इस बात पर सहमत होना अपेक्षाकृत आसान है कि सिर्फ़ होमो सेपियन्स ही उन चीज़ों के बारे में बात कर सकते हैं, जिनका अस्तित्व नहीं है और नाश्ते की पहले छह तरह की असम्भव चीज़ों की कल्पना कर सकते हैं। आप किसी बन्दर को यह विश्वास नहीं दिला सकते कि अगर वह आपको एक केला दे दे, तो उसे मरने के बाद बन्दरों के स्वर्ग में अन्तहीन केले मिलेंगे। यह बात महत्त्वपूर्ण क्यों है? आख़िरकार कल्पना (फ़िक्शन) ख़तरनाक ढंग से गुमराह या भ्रमित करने वाली हो सकती है। जो लोग परियों या यूनिकॉर्न की तलाश में जंगलों में भटकते हैं, उनके जीवित बने रहने की सम्भावनाएँ उन लोगों के मुक़ाबले कम प्रतीत होंगी, जो वहाँ मशरूम या हिरणों की तलाश में जाते हैं। अगर आप अस्तित्वहीन रक्षक देवदूतों की प्रार्थना करते हुए घण्टों गुज़ार देते हैं, तो क्या आप अपना क़ीमती वक़्त बरबाद नहीं कर रहे होते हैं। वह समय जो आप भोजन की तलाश, लड़ने और विवाहेतर सम्भोग करने में बेहतर ढंग से बिता सकते हैं?

लेकिन कल्पना ने हमें महज़ चीज़ों का अनुमान लगाने में ही सक्षम नहीं बनाया है, बल्कि सामूहिक रूप से ऐसा करने में भी सक्षम बनाया है। हम बाइबल के सृष्टि-कथा जैसे आम मिथकों, ऑस्ट्रेलियाई मूल निवासियों के ड्रीमटाइम जैसे मिथकों और आधुनिक राज्यों के राष्ट्रवादी मिथकों की रचना कर सकते हैं। इस तरह के मिथकों ने बड़ी संख्या में सेपियन्स को लचीले ढंग से आपसी सहयोग बरतने की अपूर्व सामर्थ्य प्रदान की। चीटियाँ और मधुमक्खियाँ भी बड़ी तादाद में साथ मिलकर काम कर सकती हैं, लेकिन वे ऐसा बहुत बेलोच ढंग से और क़रीबी सम्बन्धियों के साथ ही करती हैं। भेड़िये और चिंपांज़ी चीटियों के मुक़ाबले ज़्यादा लचीले ढंग से परस्पर सहयोग करते हैं, लेकिन वे ऐसा अपने जैसे उन थोड़े से व्यक्तियों के साथ मिलकर कर सकते हैं, जिन्हें वे क़रीब से जानते हैं। सेपियन्स असंख्य अजनबियों के साथ बेहद लचीले ढंग से सहयोग कर सकते हैं। यही कारण है कि सेपियन्स संसार पर हुकूमत करते हैं, जबकि चीटियाँ हमारी जूठन खाती हैं और चिंपांज़ी चिड़ियाघरों और अनुसंधान प्रयोगशालाओं में बन्द होते हैं।

प्यूज़ो की किंवदन्ती

हमारे चिंपांज़ी कज़िन सामान्यतः कई दर्जनों के झुण्ड में रहते हैं। वे घनिष्ठ मित्रताएँ क़ायम करते हैं, साथ मिलकर शिकार करते हैं और लंगूरों, चीतों तथा शत्रु चिंपांज़ियों के

ख़िलाफ़ कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ते हैं। उनकी सामाजिक संरचना पद के अनुसार वर्गीकृत होने की ओर उन्मुख होती है। प्रमुख सदस्य, जो हमेशा नर होता है, को 'प्रधान नर' की संज्ञा दी गई है। दूसरे नर और मादाएँ 'प्रधान नर' के सामने झुककर गुरगुराहट की आवाज़ निकालते हुए उसके प्रति अपनी अधीनता का प्रदर्शन करते हैं, वैसे ही जैसे मनुष्यों की प्रजा किसी राजा को झुककर सलाम करती है। 'प्रधान नर' अपने झुण्ड के भीतर सामाजिक समरसता क़ायम रखने का प्रयास करता है। अगर दो चिंपांज़ी आपस में लड़ेंगे, तो वह बीच-बचाव कर हिंसा को रोकेगा। अपनी अनुदारता के क्षण में वह इच्छित भोजन पर एकाधिकार जता सकता है और निचली श्रेणी के नरों को मादाओं के साथ संसर्ग करने से रोक सकता है।

जब दो नर 'प्रधान पद' के लिए संघर्ष कर रहे होते हैं, तो वे ऐसा करते हुए सामान्यतः झुण्ड के भीतर से समर्थकों का विस्तृत गठबन्धन तैयार कर लेते हैं, जिसमें नर और मादाएँ दोनों शामिल होते हैं। गठबन्धन में शामिल सदस्यों के बीच के सम्बन्ध दैनिक आत्मीय सम्पर्क आलिंगन, स्पर्श, चुम्बन, आपसी देखभाल और परस्पर उपकार पर आधारित होते हैं। जिस तरह चुनाव अभियान में लगे मानव राजनेता लोगों से हाथ मिलाते और बच्चों को चूमते घूमते हैं, उसी तरह चिंपांज़ी समूह के शीर्षस्थ पद के अभिलाषी अपना ज़्यादातर वक़्त चिंपांज़ी बच्चों का आलिंगन करने, पीठ ठोंकने और चूमने में बिताते हैं। 'प्रधान नर' इस पद को इसलिए नहीं जीत लेता कि वह शारीरिक रूप से ज़्यादा ताक़तवर होता है, बल्कि इसलिए कि वह एक बड़े और मज़बूत गठबन्धन का नेतृत्व करता है। ये गठबन्धन ना सिर्फ़ प्रधान हैसियत के खुले संघर्ष के दौरान, बल्कि लगभग तमाम रोज़मर्रा की गतिविधियों के दौरान भी केन्द्रीय भूमिका निभाते हैं। गठबन्धन के सदस्य ज़्यादातर समय साथ-साथ बिताते हैं, भोजन साझा करते हैं और मुश्किल वक़्त में एक दूसरे की मदद करते हैं।

उन समूहों के आकार की स्पष्ट सीमाएँ निर्धारित होती हैं, जिन्हें इस तरह रचा और क़ायम रखा जा सकता है। ये समूह काम कर सकें, इसके लिए इनके सारे सदस्यों का एक दूसरे से आत्मीय परिचय आवश्यक होता है। ऐसे दो चिंपांज़ी जो कभी मिले नहीं हैं, झगड़े नहीं हैं और जो कभी एक दूसरे की साफ़-सफ़ाई में संलग्न नहीं रहे हैं, वे नहीं जानते कि वे एक दूसरे पर भरोसा कर सकते हैं या नहीं, एक दूसरे की मदद करना उचित होगा या नहीं और उनमें से कौन श्रेष्ठ है। नैसर्गिक परिस्थितियों के अधीन एक आदर्श चिंपांज़ी झुण्ड में लगभग बीस से पच्चीस सदस्य होते हैं। जैसे ही किसी झुण्ड में चिंपांज़ियों की संख्या में इज़ाफ़ा होता है, वैसे ही सामाजिक व्यवस्था गड़बड़ा जाती है और अन्त में झुण्ड में दरार पैदा हो जाती है और कुछ प्राणी मिलकर एक नया झुण्ड बना लेते हैं। ऐसे बहुत थोड़े से उदाहरण हैं, जहाँ प्राणी वैज्ञानिकों ने सौ से ज़्यादा चिंपांज़ियों के झुण्ड देखे हैं। अलग-अलग झुण्ड अक्सर एक दूसरे का सहयोग नहीं करते और अधिकार-क्षेत्र तथा भोजन के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। शोधकर्ताओं ने झुण्डों के बीच लम्बे समय तक जारी लड़ाइयों और 'जातिसंहारक' गतिविधि के एक प्रकरण तक को दर्ज़ किया है, जिसमें एक झुण्ड ने पड़ोसी दल के ज़्यादातर सदस्यों का बाकायदा संहार किया था।

इसी तरह के ढर्रे शायद आदिम होमो सेपियन्स समेत शुरुआती दौर के मनुष्यों के

बीच भी प्रभावी रहे। चिंपांज़ियों की ही तरह मनुष्यों में भी वे सहज सामाजिक प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं, जिन्होंने हमारे पूर्वजों को मित्रताएँ करने और क्रमबद्धताएँ रचने और साथ मिलकर शिकार करने या लड़ने में सक्षम बनाया, हालाँकि चिंपांज़ियों की सहज सामाजिक प्रवृत्तियों की ही तरह मनुष्यों की ये प्रवृत्तियाँ छोटे आत्मीय समूहों के लिए ही अनुकूलित थीं। जब समूह काफ़ी बड़ा हो जाता था, तो इसकी सामाजिक व्यवस्था गड़बड़ा जाती थी और समूह भंग हो जाता था। यहाँ तक कि अगर कोई उपजाऊ घाटी 500 आदिम सेपियन्स का पोषण कर सकती थी, तब भी इतने सारे अजनबी किसी भी तरह से साथ नहीं रह सकते थे। उनके बीच इस पर सहमति कैसे बन सकती थी कि किसे उनका नेता होना चाहिए, किसे कहाँ शिकार करना चाहिए या किसे किसके साथ सहवास करना चाहिए?

संज्ञानात्मक क्रान्ति के बाद गपबाज़ी ने होमो सेपियन्स के ज़्यादा बड़े और स्थायी समूह तैयार करने में मदद की, लेकिन गपबाज़ी की भी अपनी सीमाएँ हैं। सामाजिक अनुसन्धान से यह बात सामने आई है कि गपबाज़ी से बँधे समूह का 'स्वाभाविक' आकार लगभग 150 व्यक्तियों का होता है। ज़्यादातर लोग 150 से ज़्यादा मनुष्यों से ना तो आत्मीय ढंग से परिचित हो सकते हैं और ना ही उनके बारे में गपबाज़ी कर सकते हैं।

आज भी मनुष्यों के संगठनों में एक निर्णायक सीमा रेखा इसी जादुई संख्या के आस-पास बैठती है। इस सीमा रेखा के अन्तर्गत ही समुदाय, कारोबार, सामाजिक नेटवर्क और सैन्य टुकड़ियाँ मुख्यतः आत्मीय परिचय और गपबाज़ी के आधार पर ख़ुद को क़ायम रख पाते हैं। व्यवस्था बनाए रखने के लिए औपचारिक ओहदों, पदों और क़ानून की पुस्तकों की कोई ज़रूरत नहीं है। तीस सैनिकों का एक दस्ता या सौ सैनिकों की एक कम्पनी तक आत्मीय सम्बन्धों के आधार पर न्यूनतम औपचारिक अनुशासन के साथ अच्छे ढंग से काम कर सकती है। एक सम्मानित सार्जेंट 'कम्पनी का राजा' बन सकता है और कमीशंड अधिकारियों पर भी अपनी शक्तियों का इस्तेमाल कर सकता है। एक छोटा पारिवारिक कारोबार बोर्ड ऑफ़ डायरेक्टर्स, सीईओ या लेखा विभाग के बिना टिका रह सकता है और फल-फूल सकता है।

लेकिन जैसे ही 150 व्यक्तियों की सीमा-रेखा लाँघी जाती है, तो स्थितियाँ उस तरह काम नहीं कर सकतीं। आप हज़ारों सैनिकों के डिवीज़न को उस तरह नहीं चला सकते, जिस तरह आप एक टुकड़ी को चला सकते हैं। क़ामयाब पारिवारिक कारोबार उस वक़्त संकट का सामना करने लगते हैं, जब उनमें विस्तार हो जाता है और वे ज़्यादा अमले को काम पर रख लेते हैं। अगर वे स्वयं में बदलाव करके नयापन नहीं लाते, तो दिवालिया हो जाते हैं।

होमो सेपियन्स इस निर्णायक सीमा-रेखा को कैसे लाँघ सके, जिन्होंने अन्ततः हज़ारों बाशिन्दों से भरे शहरों और करोड़ों लोगों पर शासन करते साम्राज्यों की स्थापना की? इसका रहस्य कल्पना के प्रकट होने में था। एक साझा मिथक में विश्वास करते हुए बड़ी संख्या में अजनबी सफलतापूर्वक परस्पर सहयोग कर सकते हैं।

किसी भी बड़े पैमाने की मानवीय सहकारिता की जड़ें उन साझा मिथकों में फैली होती हैं, जिनका अस्तित्व सिर्फ़ समाज की सामूहिक कल्पना में होता है, चाहे वह आधुनिक राज्य हो, मध्ययुगीन चर्च हो, कोई प्राचीन नगर हो या कोई आदिम क़बीला हो।

चर्च की जड़ें साझा धार्मिक मिथकों में फैली हैं। दो कैथोलिक जो कभी आपस में नहीं मिले, साथ-साथ धर्मयुद्ध के लिए जा सकते हैं या किसी अस्पताल के निर्माण के लिए निधि इकट्ठा कर सकते हैं क्योंकि वे दोनों विश्वास करते हैं कि ईश्वर ने मनुष्य के रूप में अवतार लिया था और हमें हमारे पापों से छुटकारा दिलाने के लिए ख़ुद को सूली पर लटकाए जाने दिया था। राज्य की जड़ें साझा राष्ट्रीय मिथकों में फैली हैं। दो सर्बियाई जो कभी आपस में नहीं मिले, एक दूसरे की जान बचाने के लिए अपनी जान जोख़िम में डाल सकते हैं क्योंकि दोनों सर्बियाई राष्ट्र, सर्बियाई मातृभूमि और सर्बियाई झण्डे के अस्तित्व में विश्वास करते हैं। न्यायिक व्यवस्थाओं की जड़ें विधिपरक मिथकों में फैली होती हैं। दो वकील जो कभी आपस में नहीं मिले, किसी सर्वथा अजनबी के बचाव के लिए संयुक्त प्रयास कर सकते हैं क्योंकि वे सब क़ानून, न्याय, मानवाधिकारों के अस्तित्व में विश्वास करते हैं - और उस पैसे में जिसका भुगतान फ़ीस के रूप में किया जाता है।

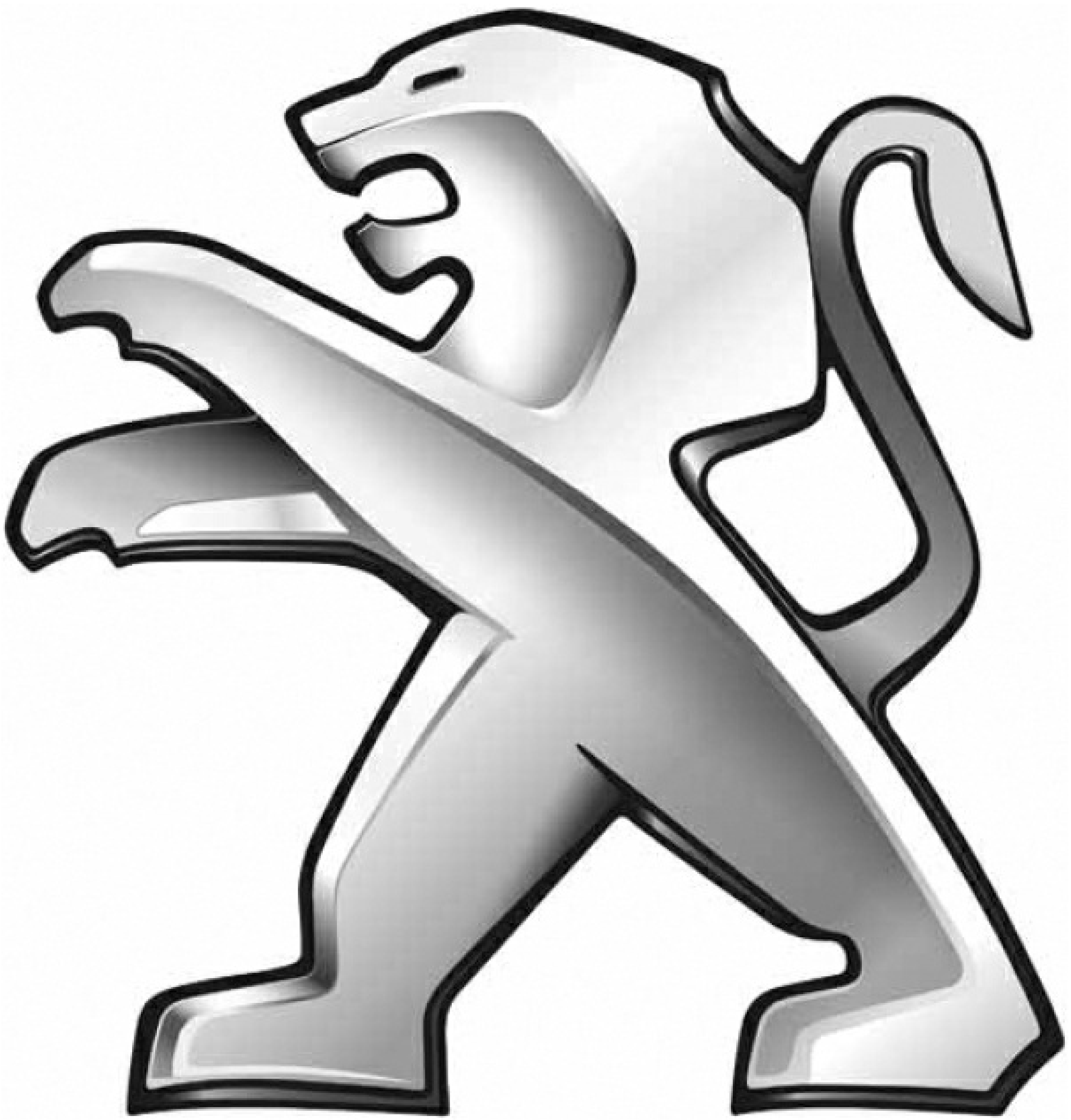

5. प्यूज़ो सिंह

तब भी इनमें से किसी भी चीज़ का अस्तित्व उन कहानियों के बाहर नहीं होता, जो लोगों ने गढ़ी होती हैं और जिन्हें वे एक दूसरे को सुनाते हैं। मनुष्यों की साझा कल्पना के बाहर विश्व में कोई देवता नहीं हैं, कोई राष्ट्र, कोई पैसा, कोई मानव अधिकार, कोई क़ानून और कोई न्याय नहीं है।

लोग आसानी से समझ लेते हैं कि 'आदिवासी' भूतों-प्रेतों और आत्माओं में विश्वास करते हुए और हर पूर्णिमा की रात को अलाव के चारों ओर सामूहिक रूप से नाचते हुए अपनी सामाजिक व्यवस्था को पुख़्ता करते हैं। जो चीज़ हम नहीं समझ पाते, वह यह है कि हमारी आधुनिक संस्थाएँ भी ठीक ऐसे ही आधारों पर काम करती हैं। उदाहरण के लिए व्यावसायिक कॉर्पोरेशनों की दुनिया को ही लें। व्यापार से जुड़े आधुनिक लोग और वकील शक्तिशाली ओझा हैं। उनमें और आदिवासी ओझाओं में प्रमुख अन्तर यह है कि आधुनिक वकील विचित्रतम क़िस्से सुनाते हैं। प्यूज़ो की किंवदन्ती हमें एक अच्छा उदाहरण उपलब्ध कराती है।

पेरिस से लेकर सिडनी तक कारों, ट्रकों और मोटरसाइकिलों पर आजकल एक चित्र देखने को मिलता है, जो कुछ-कुछ स्टाडेल नर-सिंह से मिलता-जुलता है। यह एक हुड की सजावट है, जिससे यूरोप की एक सबसे पुरानी और बड़ी कार निर्माता कम्पनी प्यूज़ो द्वारा निर्मित वाहनों को अलंकृत किया जाता है। प्यूज़ो की शुरुआत स्टाडेल गुफा से महज़ 300 किलोमीटर दूर वेलोंतिन्ये गाँव में एक छोटे-से पारिवारिक कारोबार के रूप में हुई थी। आज इस कम्पनी में सारी दुनियाभर में लगभग 200,000 लोग काम करते हैं, जिनमें से ज़्यादातर एक दूसरे के लिए पूरी तरह से अजनबी हैं। ये अजनबी इतने प्रभावशाली ढंग से आपस में सहयोग करते हैं कि 2008 में प्यूज़ो ने 15 लाख से ज़्यादा वाहनों का उत्पादन करते हुए लगभग 55 अरब यूरो का राजस्व कमाया।

हम किस अर्थ में कह सकते हैं कि प्यूज़ो एसए (कम्पनी का अधिकृत नाम) का अस्तित्व है? कई प्यूज़ो वाहन हैं, लेकिन ज़ाहिर है ये कम्पनी नहीं हैं। यहाँ तक कि अगर दुनिया के प्रत्येक प्यूज़ो को एक साथ कबाड़ में बदलकर लोहे के चूरे की क़ीमत पर बेच दिया जाए, तब भी प्यूज़ो एसए ग़ायब नहीं हो जाएगी। यह नई कारें बनाना जारी रखेगी और अपनी सालाना रिपोर्ट जारी करेगी। कम्पनी की अपनी फ़ैक्टरियाँ, मशीनें और शोरूम हैं। यह मैकेनिकों, लेखापालों और सेक्रेटरियों को काम पर रखे हुए है, लेकिन ये सब भी मिलकर प्यूज़ो नहीं हैं। कोई बड़ी भारी तबाही में प्यूज़ो का एक-एक कर्मचारी मारा जा सकता है, इसकी असेम्बली लाइनें और एक्ज़ीक्यूटिव ऑफ़िस नष्ट हो सकते हैं। तब भी कम्पनी पैसे उधार ले सकती है, नए कर्मचारी रख सकती है, नई फ़ैक्टरियाँ खड़ी कर सकती है और नई मशीनें ख़रीद सकती है। प्यूज़ो के मैनेजर और शेयरधारक हैं, लेकिन ये सब मिलकर भी कम्पनी नहीं हैं। इसके सारे मैनेजरों को बर्ख़ास्त किया जा सकता है और सारे शेयरों को बेच दिया जा सकता है, लेकिन स्वयं कम्पनी अक्षत बनी रहेगी।

इसका यह मतलब नहीं है कि प्यूज़ो अवध्य या अमर है। अगर कोई न्यायाधीश कम्पनी के विघटन का आदेश दे दे, तो इसकी फ़ैक्टरियाँ खड़ी रहेंगी और इसके कर्मचारी

एकाउंटेंट, मैनेजर और शेयरधारी जीवित बने रहेंगे - लेकिन प्यूज़ो एसए तत्काल समाप्त हो जाएगी। संक्षेप में, प्यूज़ो एसए भौतिक संसार के साथ कोई अनिवार्य सम्बन्ध रखती प्रतीत नहीं होती। क्या वाक़ई उसका कोई अस्तित्व है?

प्यूज़ो हमारी सामूहिक कल्पना की उपज है। क़ानूनविद इसे 'वैधानिक कल्पना' (लीगल फ़िक्शन) की संज्ञा देते हैं। इसकी ओर अंगुली उठाकर संकेत नहीं किया जा सकता, यह कोई भौतिक वस्तु नहीं है, लेकिन एक वैधानिक सत्ता के रूप में इसका अस्तित्व है। ठीक आपकी और मेरी तरह ही यह भी उस देश के क़ानून से बँधी है, जिसमें यह काम करती है। यह एक बैंक खाता खोल सकती है और सम्पत्ति की मालिक हो सकती है। यह कर का भुगतान करती है और इस पर मुक़दमा चलाया जा सकता। इस पर स्वामित्व रखने वाले या इसके लिए काम करने वाले किसी भी व्यक्ति से स्वतन्त्र इस पर अभियोग लगाया जा सकता है।

प्यूज़ो 'लिमिटेड लायबिलिटी कम्पनीज़' नामक वैधानिक कल्पना की एक विशेष विधा से ताल्लुक रखती है। इस तरह की कम्पनियों के पीछे निहित विचार मनुष्यता के सबसे बढ़िया आविष्कारों में से एक है। होमो सेपियन्स इन आविष्कारों के बग़ैर अनगिनत सहस्राब्दियों तक रहे। ज़्यादातर ज्ञात इतिहास के दौरान सम्पत्ति पर हाड़-मांस के मनुष्यों का ही स्वामित्व हो सकता था, उस तरह के मनुष्य दो पैरों पर खड़े होते थे और उनका एक बड़ा मस्तिष्क होता था। अगर तेरहवीं सदी में फ़्रांस ज़्याँ ने एक वैगन-मैन्युफ़ैक्चरिंग वर्कशॉप स्थापित की, तो फ़्रांस ज़्याँ ख़ुद ही वह कारोबार था। अगर उसके द्वारा बनाई गई वैगन ख़रीदे जाने के हफ़्ते भर बाद टूट जाती, तो नाराज़ ख़रीदार ने व्यक्तिगत रूप से ज़्याँ की नालिश कर दी होती। अगर ज़्याँ ने अपनी वर्कशाप खड़ी करने के लिए 1,000 स्वर्ण मुद्राएँ उधार ली होतीं और उसका कारोबार डूब जाता, तो उसे अपनी निजी सम्पत्ति - अपना मकान, अपनी गाय, अपनी ज़मीन - बेचकर वह क़र्ज़ चुकाना पड़ता। उसे अपने बच्चों तक को ग़ुलामी के लिए बेचना पड़ सकता था। अगर वह इतने पर भी क़र्ज़ अदा ना कर पाता, तो उसे राज्य द्वारा जेल में डाल दिया जा सकता था या उसके ऋणदाता उसे ग़ुलाम बना सकते थे। अपनी वर्कशाप की सारी ज़िम्मेदारियों के लिए वही असीमित रूप से पूरी तरह ज़िम्मेदार होता।

अगर आप उस युग में रहते होते, तो अपना ख़ुद का उद्योग शुरू करने से पहले आप शायद कई बार सोचते और निश्चय ही इस क़ानूनी स्थिति ने औद्योगिक उपक्रमों को हतोत्साहित किया। लोग नया कारोबार शुरू करने और आर्थिक जोख़िम उठाने से डरते थे। ऐसा कोई भी जोख़िम उठाना उपयुक्त नहीं लगता था, जो लोगों के परिवारों को कंगाली में झोंक सकता था।

इसीलिए लोगों ने सामूहिक रूप से मर्यादित दायित्वों वाली कम्पनियों (लिमिटेड लायबिलिटीज़ कम्पनीज़) के अस्तित्व की कल्पना की शुरुआत की। इस तरह की कम्पनियाँ वैधानिक तौर पर उन लोगों से स्वतन्त्र होती थीं, जिन्होंने उन्हें खड़ा किया होता था या जिन्होंने उनमें पैसा लगाया होता था या जो उनका प्रबन्ध देखते थे। पिछली कुछ सदियों के दौरान इस तरह की कम्पनियाँ आर्थिक अखाड़े में मुख्य खिलाड़ी बनकर उभरी हैं, और हम उनके इतने अभ्यस्त हो गए हैं कि हम यह भूल जाते हैं कि उनका अस्तित्व सिर्फ़ कल्पना में है। अमेरिका में मर्यादित दायित्व वाली कम्पनी के लिए 'कापरिशन'

कहा जाता है, जो इसलिए विडम्बनापूर्ण है क्योंकि यह पद 'कॉर्पस' (लैटिन में 'काया') से आया है - वह चीज़, जिसका कॉर्पोरेशन में अभाव होता है। बावजूद इसके कि इनकी कोई वास्तविक कायाएँ नहीं होतीं, अमेरिकी वैधानिक व्यवस्था कॉर्पोरेशनों को वैधानिक व्यक्तियों की तरह बरतती है, जैसे वे हाड़-मांस के मनुष्य हों।

और ऐसा ही 1896 में फ़्रांसीसी वैधानिक व्यवस्था ने किया, जब आर्ख़्माँ प्यूज़ो ने ऑटोमोबाइल का कारोबार शुरू करने का फ़ैसला किया। उसने अपने अभिभावकों से धातुकर्म की वह दुकान विरासत में प्राप्त की थी, जो स्प्रिंग, आरे और साइकिलें बनाती थी। इसके लिए उसने एक मर्यादित दायित्व वाली कम्पनी स्थापित की। उसने अपने नाम पर कम्पनी का नाम रखा, लेकिन वह उससे स्वतन्त्र थी। अगर कोई कार टूट जाती है, तो ख़रीददार प्यूज़ो की नालिश तो कर सकता है, लेकिन आर्ख़्माँ प्यूज़ो की नहीं। अगर कम्पनी ने लाखों फ़्रैंक उधार ले लिए होते और फिर वह दिवालिया हो गई होती, तो आर्ख़्माँ प्यूज़ो अपने लेनदारों का एक फ़्रैंक का भी ऋणी ना होता। आख़िरकार ऋण प्यूज़ो, यानी कम्पनी, को दिया गया था, होमो सेपियन्स आर्ख़्माँ प्यूज़ो को नहीं। आर्ख़्माँ प्यूज़ो का 1915 में निधन हो गया। प्यूज़ो यानी कम्पनी अभी भी ज़िन्दा है और चंगी है।

आर्ख़्माँ प्यूज़ो यानी इंसान ने प्यूज़ो यानी कम्पनी की स्थापना ठीक किस तरह की? ठीक उसी तरह, जिस तरह पुरोहितों और ओझाओं ने समूचे इतिहास के दौरान देवों और दानवों की सृष्टि की और जिस तरह हज़ारों फ़्रांसीसी क्यूग़ेज़ (पादरी) पैरिश चर्चों में हर इतवार को ईसा की काया रच रहे थे। यह सब क़िस्सागोई और उन क़िस्सों पर लोगों को विश्वास दिलाने के इर्द-गिर्द घूमता था। फ़्रांसीसी क्यूग़ेज़ के प्रकरण में निर्णायक महत्त्व का क़िस्सा कैथोलिक चर्च द्वारा सुनाया गया ईसा के जीवन और मृत्यु का क़िस्सा था। इस क़िस्से के मुताबिक़, अगर अपने पवित्र परिधान धारण किए कोई पादरी गम्भीरतापूर्वक सही समय पर सही शब्दों का प्रयोग करता है, तो साधारण ब्रेड और वाइन ईश्वर के शरीर और रक्त में बदल जाती हैं। पादरी ने कहा 'Hoc est corpus meum'! (लैटिन में 'ये मेरी काया है') और जादुई ढंग से ब्रेड ईसा की काया में बदल गई। यह देखकर कि पादरी ने समूची कार्रवाई उचित रीति और परिश्रम से निष्पादित की थी, लाखों धर्मपरायण कैथोलिक इस तरह आचरण करने लगे, जैसे उस पवित्रीकृत ब्रेड और वाइन में सचमुच ही ईश्वर का अस्तित्व था।

प्यूज़ो एसए के प्रकरण में निर्णायक महत्त्व का क़िस्सा वह फ़्रांसीसी विधि संहिता थी, जिसे फ़्रांसीसी संसद ने तैयार किया था। फ़्रांसीसी क़ानून निर्माताओं के मुताबिक, अगर एक प्रमाणित वकील ने उचित ईसाई संस्कारों और अनुष्ठानों का पालन किया होता था, अद्भुत रूप से सज्जित काग़ज़ पर सारे आवश्यक मन्त्र और शपथें लिखी होती थीं और दस्तावेज़ के नीचे अपने सुन्दर हस्ताक्षर अंकित किए होते थे, तो जादुई ढंग से एक नई कम्पनी शामिल हो जाती थी। जब 1896 में आर्ख़्माँ प्यूज़ो ने अपनी कम्पनी खड़ी करनी चाही, तो उसने एक वकील को पैसे देकर इन सारी पवित्र प्रक्रियाओं को निष्पादित कराया। जैसे ही वकील ने सारे उचित अनुष्ठान निष्पादित किए और सारे आवश्यक मन्त्रें और शपथों का उच्चारण किया, तो लाखों सदाचारी फ़्रांसीसी नागरिकों ने इस तरह आचरण करना शुरू कर दिया, जैसे प्यूज़ो कम्पनी का वास्तव में अस्तित्व था।

कारगर क़िस्से कहना आसान नहीं होता। मुश्किल क़िस्सा सुनाने में नहीं, बल्कि उस

पर विश्वास करने के लिए हर किसी को राज़ी करने में है। ज़्यादातर इतिहास इस प्रश्न के इर्द-गिर्द चक्कर लगाता है : ईश्वर, या राष्ट्रों, या मर्यादित दायित्वों वाली कम्पनियों के बारे में गढ़े गए ख़ास क़िस्सों पर विश्वास करने के लिए कोई व्यक्ति लाखों लोगों को किस तरह राज़ी करता है? जब भी इसमें क़ामयाबी मिलती है, तो यह सेपियन्स को अपरिमित शक्ति प्रदान करती है, क्योंकि यह लाखों अजनबियों को परस्पर सहयोग करने तथा साझा लक्ष्यों की दिशा में काम करने में सक्षम बनाती है। ज़रा यह कल्पना करने की कोशिश करिए कि अगर हम नदियों, वृक्षों और शेरों जैसी सिर्फ़ उन्हीं चीज़ों के बारे में बात कर सकते होते, जिनका वास्तव में अस्तित्व है, तो राज्यों या चर्चों या वैधानिक व्यवस्थाओं का निर्माण करना कितना मुश्किल हुआ होता।

वर्षों के दौरान लोगों ने क़िस्सों का अविश्वसनीय रूप से जटिल नेटवर्क बुना है। इस नेटवर्क के भीतर प्यूज़ो जैसी कल्पना ना सिर्फ़ अस्तित्व में हैं, बल्कि वे अपरिमित शक्तियाँ भी संचित करते हैं। क़िस्सों के इस नेटवर्क के माध्यम से लोग जिस तरह की चीज़ें रचते हैं, उन चीज़ों को अकादमिक क्षेत्र में 'कल्पनाओं', 'सामाजिक निर्मितियों', या 'कल्पित वास्तविकताओं' के रूप में जाना जाता है। कल्पित वास्तविकता झूठ नहीं है। मैं उस वक़्त झूठ बोलता हूँ, जब मैं कहता हूँ कि नदी के पास एक शेर है, जबकि मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि वहाँ कोई शेर नहीं है। झूठों में कोई विशेष बात नहीं होती। हरे बन्दर और चिंपांज़ी झूठ बोल सकते हैं। उदाहरण के लिए एक हरे बन्दर को 'सावधान! शेर'! की पुकार लगाते देखा गया है, जबकि आस-पास कोई शेर नहीं था। इस चेतावनी ने उस एक साथी बन्दर को आसानी से डरा कर भगा दिया था, जिसे अभी-अभी एक केला हाथ लग गया था। इस तरह उस झूठे बन्दर को लूट का वह माल अकेले हड़प लेने का मौक़ा मिल गया।

झूठ बोलने से भिन्न कल्पित वास्तविकता एक ऐसी चीज़ होती है, जिस पर हर कोई विश्वास करता है। जब तक यह सामूहिक विश्वास बना रहता है, तब तक वह कल्पित वास्तविकता संसार में अपने बल का प्रयोग करती रहती है। मुमकिन है कि स्टाडेल गुफा का मूर्तिकार 'नर-सिंह रक्षक दूत' के अस्तित्व में सचमुच ही विश्वास करता रहा हो। कुछ ओझा धूर्त होते हैं, लेकिन ज़्यादातर ऐसे होते हैं, जो सच्चे मन से देवों और दानवों के अस्तित्व में विश्वास करते हैं। ज़्यादातर करोड़पति लोग सचमुच पैसे और मर्यादित दायित्व वाली कम्पनियों के अस्तित्व में विश्वास करते हैं। ज़्यादातर मानवाधिकार कार्यकर्ता मानवाधिकारों के अस्तित्व में सच्चे मन से विश्वास करते हैं। उस वक़्त कोई झूठ नहीं बोल रहा था, जब 2011 में संयुक्त राष्ट्र ने लीबिया की सरकार से अपने नागरिकों के मानवाधिकारों का सम्मान करने की माँग की थी, बावजूद इसके कि संयुक्त राष्ट्र, लीबिया और मानवाधिकार सभी हमारी उपजाऊ कल्पना की उपज हैं।

इस तरह संज्ञानात्मक क्रान्ति के बाद से सेपियन्स लगातार दोहरी वास्तविकता में रह रहे हैं। एक ओर, नदियों, वृक्षों और शेरों की वस्तुनिष्ठ वास्तविकता और दूसरी ओर, देवताओं, राष्ट्रों और कॉर्पोरेशनों की कल्पित वास्तविकता। जैसे-जैसे समय गुज़रता गया, कल्पित वास्तविकता और भी शक्तिशाली होती गई कि नदियों, वृक्षों और शेरों तक का जीवन देवताओं, राष्ट्रों और कॉर्पोरेशनों जैसी कल्पित सत्ताओं की कृपा पर निर्भर करता

है।

जीन-समूह को बाईपास करते हुए

शब्दों से कल्पित वास्तविकता गढ़ने की सामर्थ्य ने अजनबियों को बड़ी तादाद में एक दूसरे के साथ कारगर तरीक़े से सहयोग करने में सक्षम बनाया, लेकिन इसने कुछ और भी किया। चूँकि बड़े पैमाने का मानवीय सहयोग मिथकों पर आधारित होता है, इसलिए मिथकों में बदलाव लाकर - भिन्न तरह के क़िस्से कहकर - लोगों के सहयोग करने के ढंग को बदला जा सकता है। सही परिस्थितियों के अधीन मिथक तेज़ी से बदल सकते हैं। 1789 में फ़्रांसीसी आबादी ने रातों-रात इस मिथक में विश्वास करने की जगह कि राजा अलौकिक ज्योति होते हैं, जनता की सम्प्रभुता के मिथक में विश्वास करना शुरू कर दिया। ऐसे ही संज्ञानात्मक क्रान्ति के बाद होमो सेपियन्स बदलती हुई ज़रूरतों के मुताबिक़, अपने व्यवहार में तेज़ी से बदलाव लाने में सक्षम हुए हैं। इस चीज़ ने सांस्कृतिक विकास का एक तेज़ रास्ता खोल दिया, जिस पर जेनेटिक विकास के ट्रैफ़िक जाम को बाईपास करते हुए चला जा सकता था। इस तेज़ मार्ग पर चलते हुए होमो सेपियन्स ने परस्पर सहयोग की अपनी योग्यता में दूसरे मानवों और अन्य प्राणियों की प्रजातियों को पीछे छोड़ दिया।

अन्य सामाजिक प्राणियों का व्यवहार काफ़ी हद तक उनके जीन से निर्धारित होता है। डीएनए कोई तानाशाह नहीं है। प्राणियों का व्यवहार पर्यावरण सम्बन्धी कारकों और वैयक्तिक विशिष्टताओं से भी प्रभावित होता है। तब भी, एक प्रदत्त परिवेश में एक ही प्रजाति के प्राणी समान ढंग से आचरण करने की ओर प्रवृत्त होंगे। सामाजिक आचरण में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन, सामान्य तौर पर, आनुवांशिक परिवर्तनों (म्यूटेशन्स) के बग़ैर घटित नहीं हो सकते। उदाहरण के लिए, आम चिंपांज़ियों की यह आनुवांशिक प्रवृत्ति होती है कि वे एक क्रमबद्ध झुण्ड में रहते हैं, जिसका मुखिया एक 'प्रधान नर' होता है। आपस में क़रीबी रिश्ता रखने वाली बोनोबो नामक प्रजाति के चिंपांज़ी सामान्यतः मादा गठबन्धनों के वर्चस्व वाले अपेक्षाकृत समतावादी झुण्डों में रहते हैं। सामान्य मादा चिंपांज़ी अपने बोनोबो रिश्तेदारों से सीख लेकर कोई नारीवादी क्रान्ति नहीं कर सकतीं। नर चिंपांज़ी संवैधानिक सभा में एकजुट होकर 'प्रधान नर' के पद को समाप्त कर यह घोषणा करने की कार्रवाई नहीं कर सकते कि आज के बाद से सारे चिंपांज़ियों को बराबरी का दर्ज़ा प्राप्त होगा। व्यवहार में इस तरह के नाटकीय परिवर्तन तभी घटित होंगे, जब चिंपांज़ियों के डीएनए में कोई परिवर्तन होगा।

इन्हीं वजहों से आदिम मनुष्यों ने किन्हीं क्रान्तियों की पहल नहीं की। जहाँ तक हम कह सकते हैं, सामाजिक बुनावटों में बदलाव, नई तकनीकों के आविष्कार और अजनबी वातावरणों में बसावट के पीछे आनुवांशिक परिवर्तन और पर्यावरण सम्बन्धी दबाव ज़्यादा रहे हैं, जबकि सांस्कृतिक उपक्रम कम रहे हैं। यही कारण है कि मनुष्यों को ये क़दम उठाने में सैकड़ों हज़ार वर्ष लगे। 20 लाख साल पहले आनुवांशिक परिवर्तनों का नतीज़ा होमो इरेक्टस नामक एक नई प्रजाति के अभ्युदय के रूप में सामने आया था। इसके उद्भव के साथ पत्थरों के औज़ारों की एक नई तकनीक का विकास हुआ, जिसे

आज इस प्रजाति के पारिभाषिक लक्षण के रूप में पहचाना जाता है। जब तक होमो इरेक्टस में कोई अगले आनुवांशिक बदलाव नहीं आए, तब तक इसके पत्थर के औज़ार मोटे तौर पर वही के वही बने रहे - लगभग 20 लाख सालों तक।

6. कैथोलिक धर्म गुरु संसर्ग और बच्चों की परिचर्या से परहेज़ करते हैं, भले ही ऐसा करने की उनके पास कोई आनुवांशिक या पारिस्थितिकीय कारण नहीं होता।

इसके विपरीत, जब से संज्ञानात्मक क्रान्ति घटित हुई, सेपियन्स अपने व्यवहार में तेजी से बदलाव लाने में सक्षम हुए। उन्होंने भावी पीढ़ियों में नए व्यवहार हस्तान्तरित किए, जिसके लिए उन्हें किसी आनुवांशिक या पर्यावरणपरक परिवर्तन की ज़रूरत नहीं पड़ी। एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण के रूप में कैथोलिक पुरोहिताई, बौद्ध मठीय प्रणालियों और चीनी हिजड़ा नौकरशाहियों जैसे उन निस्सन्तान कुलीनों पर विचार करें, जो बार-बार सामने आते रहे हैं। इस तरह के कुलीनों का अस्तित्व नैसर्गिक वरण के बुनियादी सिद्धान्त के ख़िलाफ़ है, क्योंकि समाज के ये प्रभावशाली सदस्य स्वेच्छा से सन्तानोत्पत्ति का त्याग करते हैं। जहाँ चिंपांज़ी 'प्रधान नर' यथासम्भव ज़्यादा से ज़्यादा मादाओं के साथ यौन संसर्ग करने की अपनी शक्ति का इस्तेमाल करते हैं और नतीज़तन बड़े अनुपात में अपने झुण्ड के नौजवानों के पिता बनते हैं, वहीं कैथोलिक प्रधान पुरुष काम और बच्चों की परिचर्या से पूरी तरह परहेज़ करता है। इस परहेज़ के पीछे भोजन के गम्भीर अभाव या सहवास-योग्य मादा के अभाव जैसी कोई विशिष्ट परिवेशपरक परिस्थितियाँ नहीं होतीं। ना ही यह किसी विचित्र आनुवांशिक परिवर्तन का नतीज़ा होता है। कैथोलिक चर्च एक पोप से दूसरे पोप तक 'ब्रह्मचर्य जीन' हस्तान्तरित करते हुए नहीं, बल्कि न्यू टेस्टामेंट और कैथोलिक धर्मविधान के क़िस्से हस्तान्तरित करते हुए सदियों से टिका रहा है।

दूसरे शब्दों में, जहाँ आदिम मनुष्यों के व्यवहार के ढाँचे दसियों हज़ारों वर्षों तक जस के तस बने रहे, वहीं सेपियन्स अपनी सामाजिक संरचनाओं को, अपने पारस्परिक सम्बन्धों की प्रकृति को, अपनी आर्थिक गतिविधियों को और ढेरों दूसरे व्यवहारों को एक-दो दशकों के भीतर बदल सके। ज़रा एक बर्लिन निवासी युवती पर विचार करें, जिसका जन्म 1900 में हुआ और जिसने सौ साल की परिवक्व उम्र पाई। उसने अपना बचपन विल्हेम द्वितीय के हान्सोलर्न साम्राज्य में बिताया, उसकी जवानी के वर्ष वाइमाग़र रिपब्लिक, नाज़ी थर्ड रैश और कम्युनिस्ट पूर्वी जर्मनी में बीते और उसकी मृत्यु लोकतान्त्रिक और पुनर्गठित जर्मनी में हुई। वह पाँच बेहद अलग-अलग सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्थाओं का हिस्सा बनी रह सकी, जबकि उसका डीएनए सर्वथा जस का तस बना रहा।

यह सेपियन्स की सफलता की कुंजी था। अगर एक निएंडरथल्स और एक सेपियन्स के बीच झगड़ा होता, तो निएंडरथल्स ने शायद सेपियन्स को मात दे दी होती, लेकिन सौ लोगों के बीच की तकरार में निएंडरथल्स के जीतने की कोई सम्भावना ना होती। निएंडरथल्स शेरों के ठिकाने की जानकारी साझा कर सकते थे, लेकिन वे शायद जनजातीय आत्माओं के क़िस्से नहीं सुना सकते थे और उन क़िस्सों में संशोधन भी नहीं कर सकते थे। कल्पना गढ़ने की सामर्थ्य के बग़ैर निएंडरथल्स बड़ी संख्या में प्रभावशाली ढंग से परस्पर सहयोग करने में असमर्थ थे, ना ही वे अपने सामाजिक व्यवहार को तेज़ी से बदलती चुनौतियों के अनुरूप ढाल सके।

यद्यपि हम किसी निएंडरथल्स के दिमाग़ में घुस कर यह नहीं जान सकते कि वे किस तरह सोचते थे, लेकिन उनके सेपियन्स प्रतिद्वन्द्वियों के मुक़ाबले उनकी संज्ञानात्मक

सीमाओं के बारे में हमारे पास परोक्ष प्रमाण मौजूद हैं। यूरोप के मध्यवर्ती भागों में सेपियन्स के 30,000 साल पुराने स्थलों की खुदाई में लगे पुरातत्त्वविदों को कभी-कभी भूमध्यसागरीय और अटलांटिक तटों की उनकी सीपियाँ मिल जाती हैं। पूरी सम्भावना है कि ये सीपियाँ सेपियन्स के विभिन्न समुदायों के बीच जारी रहे लम्बी दूरियों के व्यापार की मार्फ़त महाद्वीप के अन्दरूनी हिस्सों तक पहुँची हों। निएंडरथल्स के स्थलों में ऐसे किसी व्यापार का साक्ष्य नहीं मिलता। हर समूह स्थानीय सामग्रियों से अपने निजी औज़ार तैयार करता था।

एक और उदाहरण दक्षिण प्रशान्त महासागर से मिलता है। न्यू गिनी के उत्तर में न्यू आयलैंड में रहे सेपियन्स के समुदाय ख़ास तौर से तेज़ धार वाले औज़ार गढ़ने के लिए ऑब्सीडियन नामक ज्वालामुखीय काँच का इस्तेमाल किया करते थे। न्यू आयलैंड में हालाँकि ऑब्सीडियन का कोई कुदरती भण्डार नहीं है। प्रयोगशालाओं में किए गए परीक्षणों से यह बात सामने आई कि उनके द्वारा इस्तेमाल किया गया ऑब्सीडियन 400 किलोमीटर दूर स्थित एक द्वीप न्यू ब्रिटेन से लाया गया था। इन द्वीपों के कुछ निवासी निश्चय ही दक्ष नाविक रहे होंगे, जो लम्बी दूरियों पर स्थित एक द्वीप से दूसरे द्वीप के बीच व्यापार करते होंगे।

व्यापार एक बहुत व्यावहारिक गतिविधि लग सकती है। ऐसी गतिविधि, जिसके लिए कोई काल्पनिक आधार ज़रूरी नहीं है। तब भी तथ्य यह है कि सेपियन्स के अलावा कोई और प्राणी व्यापार नहीं करता और सेपियन्स के सारे व्यापारिक नेटवर्क, जिनके हमारे पास विस्तृत साक्ष्य हैं, कल्पनाओं पर आधारित थे। व्यापार बिना भरोसे के क़ायम नहीं रह सकता और अजनबियों पर भरोसा करना बहुत मुश्किल होता है। आज का वैश्विक व्यापारिक नेटवर्क डॉलर, फ़ेडरल रिज़र्व बैंक और कॉर्पोरेशनों के प्रतीकात्मक ट्रेडमार्क्स जैसी कल्पित चीज़ों से जुड़े हमारे विश्वास पर आधारित है। किसी आदिवासी समाज के दो अजनबी जब व्यापार करना चाहते हैं, तो वे अक्सर एक साझा ईश्वर, मिथकीय पूर्वज या किसी प्रतीकात्मक पशु के नाम पर आपसी भरोसा विकसित करते हैं।

अगर आदिम सेपियन्स ने इस तरह की कल्पनाओं पर विश्वास करते हुए सीपियों और ऑब्सीडियन का व्यापार किया था, तो यह बात तर्कसंगत लगती है कि उन्होंने जानकारियों का आदान-प्रदान भी किया होगा। इस तरह ज्ञान का उससे कहीं ज़्यादा सघन और व्यापक नेटवर्क तैयार किया होगा, जितना निएंडरथल्स और दूसरे आदिम मनुष्यों के काम आता होगा।

शिकार की तकनीकें इन भेदों का एक और उदाहरण उपलब्ध कराती हैं। निएंडरथल्स सामान्यतः अकेले या छोटे समूहों में शिकार किया करते थे। दूसरी ओर, सेपियन्स ने ऐसी तकनीकें विकसित की थीं, जो दर्जनों व्यक्तियों, बल्कि शायद विभिन्न समुदायों के बीच आपसी सहयोग पर निर्भर करती थीं। विशेष रूप से एक कारगर तरीक़ा जंगली घोड़ों जैसे पशुओं के समूचे झुण्ड को घेर लेना और फिर उन्हें किसी तंग रास्ते में खदेड़ना था,जहाँ एक साथ उनका वध करना आसान होता था। अगर सब कुछ योजना के मुताबिक़ हुआ, तो ये समुदाय सामूहिक उद्यम से एक ही दोपहर में टनों मांस, चर्बी और पशुओं की खाल एकत्र कर सकते थे और या तो महाभोज आयोजित कर इस विपुल सामग्री का उपभोग कर लेते थे या बाद में उसका उपयोग करने के लिए उसको

सुखाकर, धुआँ देकर या आर्कटिक इलाक़ों में उसको जमा कर रख लेते थे। पुरातत्त्वविदों ने ऐसे स्थलों की खोज की है, जहाँ पशुओं के समूचे झुण्डों का इसी तरह से सालाना वध किया जाता था। ऐसे भी स्थल हैं, जहाँ कृत्रिम फन्दे और बूचड़खाने तैयार करने के लिए बाड़े और अवरोध खड़े किए गए थे।

हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि निएंडरथल्स अपने पारम्परिक शिकार-स्थलों को सेपियन्स-नियन्त्रित बूचड़खानों में बदलते देखकर ख़ुश नहीं रहे होंगे, लेकिन अगर इन दोनों प्रजातियों के बीच हिंसा भड़क उठती थी, तो निएंडरथल्स जंगली घोड़ों से बेहतर स्थिति में नहीं होते थे। पारम्परिक और अचल ढंग से सहयोग कर रहे पचास निएंडरथल्स का 500 चपल और नए जोख़िम उठाने वाले सेपियन्स से कोई मुक़ाबला नहीं था। अगर सेपियन्स पहले दौर में हार भी जाते, तो भी वे फुर्ती से ऐसी नई युक्तियाँ ढूँढ़ निकाल सकते थे, जिनके दम पर वे अगली बार में फ़तह हासिल कर सकते थे।

संज्ञानात्मक क्रान्ति में क्या हुआ

नई दक्षताएँ	**व्यापक नतीजे़**
होमो सेपियन्स के चारों ओर की दुनिया के बारे में सूचना को बड़ी मात्रा में प्रसारित करने की दक्षता	जटिल कामों की योजना बनाना और उन्हें क्रियान्वित करना, जैसे कि शेरों से दूर रहना और बाइसन का शिकार करना
सेपियन्स के सामाजिक सम्बन्धों के बारे में सूचना को बड़ी मात्रा में प्रसारित करने की दक्षता	150 व्यक्तियों तक के अपेक्षाकृत बड़े और संसक्तिशील समूह
ऐसी चीज़ों के बारे में सूचना को प्रसारित करने की दक्षता, जिनका अस्तित्व नहीं है, जैसे कि आदिवासी आत्माएँ, राष्ट्र, मर्यादित दायित्व वाली कम्पनियाँ और मानवाधिकार	क. अजनबियों की बहुत बड़ी तादाद के बीच आपसी सहयोग ख. सामाजिक व्यवहार में तेज़ी से नवाचार

इतिहास और जीव-विज्ञान

सेपियन्स द्वारा आविष्कृत कल्पित वास्तविकताओं की अपरिमित विविधता और उसके नतीज़े में घटित व्यवहार की विविधता उस चीज़ के मुख्य घटक हैं, जिसे हम 'संस्कृतियां' की संज्ञा देते हैं। एक बार संस्कृतियाँ प्रकट हुईं, तो फिर उनमें परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया कभी थमती नहीं है, और इन्हीं अबाध परिवर्तनों को हम 'इतिहास' कहते हैं।

इसके फलस्वरूप संज्ञानात्मक क्रान्ति वह क्षण है, जब इतिहास ने जैविकी से अपने स्वाधीन होने की घोषणा कर दी। संज्ञानात्मक क्रान्ति के पहले तक तमाम मानव

प्रजातियों के कर्म जैविकी क्षेत्र से या आप चाहें तो कह लें कि 'प्रागितिहास' (प्रीहिस्टरी) से ताल्लुक रखते थे (मैं 'प्रागितिहास' शब्द के प्रयोग से बचने की कोशिश करता हूँ, क्योंकि इससे यह ग़लत अभिप्राय निकलता है कि संज्ञानात्मक क्रान्ति के पहले भी मनुष्य अपनी ख़ुद की किसी कोटि में था)। संज्ञानात्मक क्रान्ति के बाद होमो सेपियन्स के विकास की व्याख्या के हमारे प्राथमिक साधनों के रूप में ऐतिहासिक आख्यानों ने जीव-विज्ञान की जगह ले ली। ईसाइयत या फ़्रांसीसी क्रान्ति के अभ्युदय को समझने के लिए जीन, हार्मोन्स या जीवों की अन्तर्क्रिया को समझ लेना भर काफ़ी नहीं है। धारणाओं, छवियों और फ़न्तासियों को भी ध्यान में रखना ज़रूरी है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि होमो सेपियन्स और मानव संस्कृति को जीव-विज्ञान के नियमों से छूट मिल गई है। हम अभी भी जीव हैं और हमारी शारीरिक, भावनात्मक और संज्ञानात्मक क्षमताएँ अभी भी हमारे डीएनए से तय होती हैं। हमारे समाज उन्हीं मूलभूत घटकों से निर्मित हैं, जो निएंडरथल्स या चिंपांज़ियों के समाज के मूलभूत घटक हैं, और हम जितना ही इन मूलभूत घटकों - अनुभूतियों, भावनाओं, पारिवारिक सम्बन्धों का परीक्षण करते हैं, हम अपने और दूसरे वानरों के बीच उतना ही कम फ़र्क पाते हैं।

हालाँकि इन फ़र्कों को व्यक्ति या परिवार के स्तर पर देखना ग़लत होगा। अगर हम ख़ुद को और चिंपांज़ी को एक-एक या दस-दस की भी संख्या में आमने-सामने रखकर देखें, तो हम शर्मनाक ढंग से चिंपांज़ियों से मिलते-जुलते हैं। उल्लेखनीय फ़र्क तब दिखाई देना शुरू होता है, जब हम 150 व्यक्तियों की संख्या को पार करते है। जब हम 1,000-2,000 व्यक्तियों तक पहुँचते हैं, तो फ़र्क विस्मयकारी होकर उभरते हैं। अगर आपने हज़ारों चिंपांज़ियों को थियानमेन चौक, वॉल स्ट्रीट, वेटिकन या संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय पर एकत्र करने की कोशिश की होती, तो अराजकता की स्थिति पैदा हो जाती। इसके विपरीत, सेपियन्स इन जगहों पर नियमित रूप से हज़ारों की संख्या में एकत्र होते हैं। वे सब मिलकर ऐसे अनुशासित ढाँचे, जैसे कि व्यापारिक सम्पर्क नेटवर्क, सामूहिक उत्सव, राजनैतिक संस्थाएँ रचते हैं, जिन्हें वे अलग-थलग रहकर कभी ना रच पाते। हमारे और चिंपांज़ियों के बीच का वास्तविक फ़र्क़ उस मिथकीय गोंद में है, जो बड़ी तादाद में व्यक्तियों, परिवारों और समूहों को आपस में चिपकाती है। इस गोंद ने हमें सृष्टि का मालिक बना दिया है।

बेशक, हमें दूसरी दक्षताओं की ज़रूरत भी थी, जैसे औज़ारों को गढ़ने और उनका इस्तेमाल करने की दक्षता, लेकिन औज़ारों का निर्माण तब तक कोई ख़ास मायने नहीं रखता, जब तक कि उसमें बहुत से दूसरे लोगों के साथ आपसी सहयोग करने की दक्षता का योग नहीं होता। यह कैसे मुमकिन हुआ कि आज हमारे पास परमाणु बमों से लैस अन्तरमहाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र हैं, जबकि 30,000 साल पहले मात्र चकमक पत्थर की नोक वाले बरछे हुआ करते थे? अल्बर्ट आइंस्टीन के हाथों में प्राचीन काल के शिकारियों के मुक़ाबले बहुत कम फुर्तीलापन था, लेकिन बड़ी तादाद में अजनबियों के साथ सहयोग करने की हमारी क्षमता में असाधारण ढंग से वृद्धि हुई है। चकमक पत्थर की नोक वाले प्राचीन बरछे मिनटों में उस एक व्यक्ति द्वारा निर्मित कर लिए जाते थे, जो थोड़े से क़रीबी दोस्तों की सलाह और मदद पर निर्भर करता था। आधुनिक परमाणु बम को तैयार करने में दुनियाभर के लाखों अजनबियों का आपसी सहयोग ज़रूरी होता है - धरती की

गहराइयों से यूरेनियम की खुदाई करने वाले कामगारों से लेकर उन सैद्धान्तिक भौतिकीविदों तक का, जो सूक्ष्माणुओं की अन्तर्क्रिया का वर्णन करने के लिए लम्बे गणितीय सूत्र लिखते हैं।

संज्ञानात्मक क्रान्ति के बाद जीव-विज्ञान और इतिहास के सम्बन्ध का सारांश इस तरह प्रस्तुत किया जा सकता है :

1. जीव-विज्ञान होमो सेपियन्स के व्यवहार और क्षमताओं के बुनियादी मापदण्ड तय करता है। इतिहास में जो कुछ भी होता है, वह पूरा का पूरा इसी जीव वैज्ञानिक क्रीड़ा-स्थल के भीतर घटित होता है।
2. यह क्रीड़ा-स्थल हालाँकि असाधारण रूप से व्यापक होता है, जो सेपियन्स को विस्मयकारी ढंग से विविध क़िस्म के खेल खेलने की गुंजाइश देता है। कल्पना का आविष्कार करने की अपनी क्षमता के कारण सेपियन्स उत्तरोत्तर जटिल खेलों की रचना करते हैं, जिनमें हर नई पीढ़ी और भी विकास और इज़ाफ़ा करती है।
3. परिणामतः, सेपियन्स के व्यवहार करने के ढंग को समझने के लिए हमें उनके कृत्यों के ऐतिहासिक विकास का चित्रण करना अनिवार्य है। मात्र हमारे जीव वैज्ञानिक अवरोधों का उल्लेख करना रेडियो पर खेलों के समाचार देने वाले उस व्यक्ति जैसा कर्म होगा, जो वर्ल्ड कप फ़ुटबॉल चैम्पियनशिप में जाकर अपने श्रोताओं को मैदान में खिलाड़ियों की गतिविधियों का लेखा देने के बजाय खेल के मैदान का विस्तार से वर्णन करता है।

इतिहास के क्रीड़ा-स्थल में प्रस्तर युग के हमारे पूर्वजों ने कौन से खेल खेले थे? जहाँ तक हमारी जानकारी है, जिन लोगों ने कोई 30,000 साल पहले स्टाडेल नर-सिंह को उत्कीर्ण किया था, उनमें हमारी ही तरह की शारीरिक, भावनात्मक और बौद्धक क्षमताएँ थीं। जब वे सुबह सोकर उठते थे, तो क्या करते थे? वे नाश्ते में क्या खाते थे - और क्या दोपहर के भोजन में? उनके समाज किस तरह के हुआ करते थे? क्या वे एक पत्नी/पति से सम्बन्ध रखते थे और उनके परिवार में माता-पिता और सन्तान भर होते थे? क्या उनके कोई उत्सव, नैतिक संहिताएँ, खेल प्रतियोगिताएँ और धार्मिक अनुष्ठान थे? क्या वे युद्ध लड़ते थे? इस पुस्तक का अगला अध्याय युगों के पर्दों के पीछे झाँकते हुए इस बात का परीक्षण करता है कि संज्ञानात्मक क्रान्ति और कृषि क्रान्ति के बीच की सहस्राब्दियों में जीवन का क्या रूप हुआ करता था।

3

आदम और ईव के जीवन का एक दिन

अपने स्वभाव, इतिहास और मनोविज्ञान को समझने के लिए हमें अपने शिकारी-भोजन-संग्रहकर्ता पूर्वजों के दिमाग़ में उतरना होगा। हमारी प्रजाति के लगभग समूचे इतिहास के दौरान सेपियन्स भोजन के लिए भटकने वालों के रूप में रहे। पिछले 200 वर्ष, जिनके दौरान सेपियन्स निरन्तर बढ़ती हुई तादाद में मज़दूरों और कार्यालयीन कर्मचारियों के रूप में काम करते हुए अपना रोज़मर्रा भोजन जुटाते रहे, और उसके पहले के 10,000 वर्ष, जिनके दौरान ज़्यादातर सेपियन्स ने खेतिहरों और चरवाहों के रूप में अपना जीवन बिताया, वे सारे वर्ष उन दसियों हज़ारों सालों के मुक़ाबले में पलक झपकने की अवधि जैसे हैं, जिनके दौरान हमारे पूर्वजों ने शिकार और संग्रह किया था।

विकासवादी मनोविज्ञान का समृद्धिशाली क्षेत्र तर्क देता है कि हमारी आज की बहुत सी सामाजिक और मनोवैज्ञानिक विशेषताओं ने इसी लम्बे कृषि-पूर्व युग के दौरान आकार लिया है। इस क्षेत्र के अध्येताओं का मानना है कि आज भी हमारे मनो-मस्तिष्क शिकारी और संग्रहकर्ता जीवन के अनुरूप ढले हुए हैं। हमारी खाने की आदतें, हमारी तकरारें और हमारी काम-वासना उस विधि का परिणाम हैं, जिस विधि से हमारे शिकारी-संग्रहकर्ता मानस आज विशाल नगरों, हवाई जहाज़ों, टेलीफ़ोनों और कम्प्यूटरों से युक्त हमारे मौजूदा उत्तर-औद्योगिक पर्यावरण के साथ अन्तर्क्रिया करते हैं। यह पर्यावरण हमें पिछली पीढ़ियों के मुक़ाबले कहीं अधिक भौतिक संसाधन और लम्बे जीवन मुहैया कराता है, लेकिन यह अक्सर हमारे भीतर अलगावग्रस्त, अवसादग्रस्त और दबावग्रस्त होने का अहसास भी जगाता है। ऐसा क्यों है, इसे समझने के लिए विकासवादी मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि हमें शिकारी-संग्रहकर्ताओं की उस दुनिया की गहराई में जाने की ज़रूरत है, जिसने हमें आकार दिया है, वह दुनिया, जिसमें हम अब भी अवचेतन रूप से निवास करते हैं।

उदाहरण के लिए, लोग वह हाई-कैलोरी भोजन क्यों ठूँस-ठूँस कर खाते हैं, जो उनके शरीर का कोई ख़ास भला नहीं करता? आज के दौलतमन्द समाज मोटापे की महामारी से गुज़र रहे हैं, जो कि विकासशील देशों में भी तेज़ी से फैल रही है। जब तक हम भोजन की तलाश में भटकने वाले अपने पूर्वजों की भोजन सम्बन्धी आदतों पर विचार नहीं करते, तब तक यह एक पहेली बनी रहेगी कि क्यों हम बड़ी मात्रा में अत्यन्त मीठा और तेल-युक्त भोजन करते हैं। जिन घास के मैदानों (सवाना) और जंगलों में ये पूर्वज रहते थे, वहाँ हाई-कैलोरी मीठा भोजन अत्यन्त दुर्लभ था और भोजन-मात्र की आपूर्ति भी बहुत कम थी। 30,000 साल पहले के एक सामान्य भोजन-खोजी की पहुँच सिर्फ़ एक ही तरह के मीठे खाद्य पदार्थ तक थी - पका हुआ फल। अगर प्रस्तर युग की किसी स्त्री को अंजीर से लदा कोई पेड़ दिख जाता, तो इसके पहले कि वहाँ के लंगूर उन अंजीरों को खाकर पेड़ को उजाड़ देते, वह स्त्री वहीं खड़े-खड़े ज़्यादा से ज़्यादा अंजीर खा जाती। हाई-कैलोरी भोजन को भरपेट खाने की हमारे जीन में जन्मजात प्रवृत्ति थी। हम आज भले ही ज़रूरत से ज़्यादा भरे रेफ्रिज़रेटरों के साथ गगनचुम्बी अपार्टमेंट्स में रहते हों, लेकिन हमारे डीएनए अभी भी घास के मैदान (सवाना) में ही रहते हैं। इसी के कारण हम समूचा बेन ऐंड जेरी ठूँस कर उसके ऊपर से भारी-भरकम कोक भी गटक लेते हैं।

'भोजन ठूँसने के जीन' की यह परिकल्पना व्यापक तौर पर मान्य है। दूसरी परिकल्पनाएँ कहीं ज़्यादा विवादास्पद हैं। उदाहरण के लिए कुछ विकासवादी मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि प्राचीन युग के भोजन-खोजी समूहों में एक पति-पत्नी युगलों पर केन्द्रित छोटे परिवार नहीं होते थे। इसके बजाय, भोजन-खोजी लोग निजी सम्पत्ति, एकल पति-पत्नी सम्बन्धों और पितृत्व से वंचित समुदायों में रहते थे। इस तरह के समूह में एक स्त्री एक साथ कई पुरुषों के साथ संसर्ग कर सकती थी, कई पुरुषों (और स्त्रियों) के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बना सकती थी और समूह के सारे सदस्य, दल के बच्चों के पालन-पोषण में सहयोग करते थे। चूँकि किसी भी मर्द को यह पता नहीं होता था कि उन बच्चों में उसका अपना बच्चा कौन है, इसलिए मर्द सारे बच्चों के प्रति समान मात्रा में सहानुभूति रखते थे।

इस तरह की सामाजिक बनावट कोई उन्मुक्त यौन सम्बन्धों का कल्पना लोक (एक़्वेरियन यूटोपिया) नहीं है। प्राणियों, विशेष रूप से हमारे निकट सम्बन्धियों, चिंपांज़ियों और वानरों की दुनिया में इसके पर्याप्त दस्तावेज़ी प्रमाण उपलब्ध हैं। यहाँ तक कि आज भी ऐसी अनेक मानव संस्कृतियाँ हैं, जिनमें सामूहिक पितृत्व की प्रथा है, जैसे कि उदाहरण के लिए बारी इंडियन्स में। इस तरह के समाजों में प्रचलित विश्वास के मुताबिक़, किसी बच्चे का जन्म किसी एक पुरुष के शुक्राणु से नहीं, बल्कि स्त्री के गर्भ में शुक्राणुओं के जमाव से होता है। एक अच्छी माँ, ख़ासतौर से गर्भवती होने के दौरान यह सुनिश्चित करेगी कि वह कई पुरुषों के साथ सम्भोग करे, ताकि उसके बच्चे में एक अच्छे शिकारी के ही नहीं, बल्कि एक अच्छे कहानी सुनाने वाले, सबसे बलवान योद्धा और सबसे सहृदय प्रेमी के गुण आएँ (और उसे इन सबका पैतृक स्नेह प्राप्त हो)। अगर यह बात हास्यास्पद लगती हो, तो इस बात को ध्यान में रखें कि भ्रूण सम्बन्धी आधुनिक अध्ययनों के विकसित होने के पहले लोगों के पास इस बात का कोई ठोस प्रमाण नहीं होता था कि शिशुओं को कई सारे पिताओं के बजाय एक ही पिता जन्म देता है।

इस ‘प्राचीन कम्यून’ सिद्धान्त के समर्थकों का तर्क है कि आधुनिक दाम्पत्य सम्बन्धों की विशेषता बन चुकी नियमित बेवफ़ाइयाँ और बड़े पैमाने पर तलाक़ की घटनाएँ और साथ ही बड़ी मात्रा में मानसिक ग्रन्थियाँ, ये सब मनुष्यों को बलपूर्वक न्यूक्यिर फैमिलीज़ (पति-पत्नी और उनकी सन्तान तक सीमित एकल परिवार) और मोनोगैमॅस (एक पुरुष या स्त्री के साथ वैवाहिक सम्बन्ध) रिश्तों में झोंकने का नतीज़ा हैं, क्योंकि ऐसे परिवार और वैवाहिक रिश्ते हमारे जैविक सॉफ़्टवेयर से मेल नहीं खाते।

बहुत से अध्येता इस धारणा को बुरी तरह से नकारते हैं और इस बात पर बल देते हैं कि एक पति-पत्नी-सम्बन्ध और एकल परिवार की रचना करना मूलभूत मानवीय व्यवहार है। यद्यपि प्राचीन शिकारी-संग्रहकर्ता समाज आधुनिक समाजों के मुक़ाबले अधिक सामुदायिक और समतावादी होने की ओर प्रवृत्त हुआ करते थे, इन शोधकर्ताओं का मानना है कि तब भी ये समाज स्वतन्त्र टोलियों से मिलकर बने थे, जिनमें से हर टोली में एक ईर्ष्यालु पति-पत्नी और उनके बच्चे शामिल होते थे। इसीलिए आज एक पति-पत्नी-सम्बन्ध और एकल परिवार अधिसंख्य संस्कृतियों के मानक हैं (इसीलिए पुरुष और स्त्रियाँ अपने जीवन-साथियों और बच्चों के मामले में बहुत हक़ जताने का भाव रखते हैं और इसीलिए उत्तरी कोरिया और सीरिया जैसे आधुनिक राज्यों में भी राजनैतिक सत्ता पिता से पुत्र के हाथ में जाती है।

इस विवाद को हल करने और अपनी काम-प्रवृत्ति (सैक्सुअलिटी), समाज और राजनीति को समझने के लिए हमें अपने पूर्वजों की जीवन-परिस्थितियों को जानने और इस बात को जाँचने की ज़रूरत है कि 70,000 साल पहले हुई संज्ञानात्मक क्रान्ति और 12,000 साल पहले हुई कृषि क्रान्ति की शुरुआत के दरम्यान सेपियन्स किस तरह तरह का जीवन जीते थे।

दुर्भाग्य से, भोजन की खोज में भटकने वाले हमारे पूर्वजों के जीवन के बारे में बहुत थोड़ी-सी निश्चित बातें ज्ञात हैं। ‘प्राचीन कम्यून’ और ‘शाश्वत मोनोगेमी’ सम्प्रदायों के बीच की बहस थोथे साक्ष्य पर आधारित है। ज़ाहिर है कि हमारे पास भोजन-खोजियों के युग के कोई लिखित प्रमाण नहीं हैं और पुरातात्त्विक साक्ष्यों में मुख्यतः अस्थियों और पत्थर के औज़ारों के जीवाश्म शामिल हैं। लकड़ी, बाँस या चमड़े जैसी ज़्यादा जल्दी नष्ट होने वाली सामग्री से बनी वस्तुएँ सिर्फ़ विशेष परिस्थितियों में ही टिकी रह पाती हैं। यह आम धारणा कि कृषि-पूर्व के मनुष्य प्रस्तर युग में रहते थे, इसी पुरातात्त्विक पूर्वाग्रह पर आधारित ग़लतफ़हमी है। प्रस्तर युग को काष्ठ युग कहना ज़्यादा सटीक होगा, क्योंकि प्राचीन शिकारी-संग्रहकर्ताओं द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले ज़्यादातर औज़ार लकड़ी से निर्मित थे।

बची रह गई चीज़ों के आधार पर प्राचीन शिकारी-संग्रहकर्ताओं के जीवन की पुनर्रचना करना बहुत ज़्यादा समस्या से भरा है। प्राचीन भोजन-खोजियों और उनके कृषक तथा औद्योगिक वंशजों के बीच का सबसे स्पष्ट भेद यह है कि भोजन-खोजियों के पास सबसे पहले तो बहुत थोड़ी-सी वस्तुएँ हुआ करती थीं, और इसने उनकी ज़िन्दगियों में तुलनात्मक रूप से मामूली भूमिका निभाई। आधुनिक समृद्ध समाज के एक सामान्य सदस्य के पास उसके जीवन के दौरान लाखों वस्तुएँ होती हैं - कारों और मकानों से लेकर

इस्तेमाल कर फेंक दी जाने बच्चों की लंगोटियों और दूध के पैकटों तक। शायद ही कोई गतिविधि, कोई विश्वास या कोई भावना तक ऐसी हो, जो ख़ुद हमारे द्वारा ईजाद की गई वस्तुओं से प्रभावित ना होती हो। हमारी खाने की आदतें इसी तरह की वस्तुओं के अकल्पनीय ढेर से प्रभावित होती हैं, जिनमें चम्मचों और गिलासों से लेकर जेनेटिक इंजीनियरिंग प्रयोगशालाएँ और भीमकाय जहाज़ तक शामिल हैं। खेलने के लिए हम ढेरों खिलौनों का इस्तेमाल करते हैं, प्लास्टिक कार्डों से लेकर 100,000-सीट के स्टेडियमों तक। हमारे रोमांटिक और यौनपरक सम्बन्ध अंगूठियों, बिस्तरों, उत्तम वस्त्रों, सैक्सी चड्डियों, कंडोमों, फ़ैशनेबल रेस्तराओं, सस्ती सरायों, एयरपोर्ट लाउंजों, शादी हॉलों और कैटरिंग कम्पनियों से लैस होते हैं। धर्म हमारे जीवन में पवित्रता का संचार करने के लिए गोथिक चर्चों, मुस्लिम मस्जिदों, हिन्दू आश्रमों, टॉरा स्क्रोलों, तिब्बती प्रार्थना चक्रों, पादरियों के चोगों, मोबत्तियों, अगरबत्तियों, क्रिसमस ट्रीज़, माट्ज़ा बाल्स, क़ब्र-स्तम्भों और मूर्तियों का इस्तेमाल करते हैं।

जब तक हमें नया घर नहीं बदलना पड़ता, तब तक हमें अहसास ही नहीं होता कि हमारा सामान कितना सर्वव्यापी है। भोजन-खोजियों के पास जो कुछ भी होता था, उसे वे अपनी पीठ पर लादकर अपना घर हर महीने, हर हफ़्ते, और कभी-कभी हर दिन बदला करते थे। वहाँ कोई मूविंग कम्पनियाँ, वैगन और यहाँ तक कि बोझा ढोने वाले जानवर भी नहीं हुआ करते थे, जिनकी मदद से बोझ को हल्का किया जा सकता। नतीज़न, उन्हें बेहद ज़रूरी सामान से अपना काम चलाना पड़ता था। ऐसे में यह अनुमान लगाना तर्कसंगत होगा कि उनके मानसिक, धार्मिक और भावनात्मक जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा बिना वस्तुओं की मदद के संचालित होता था। अब से 100,000 साल बाद काम कर रहा कोई पुरातत्त्वविद किसी मस्जिद के खण्डहर से खोद निकाली गई हज़ारों वस्तुओं के सहारे मुस्लिम आस्था और आचार पद्धति की एक मुनासिब तसवीर गढ़ सकेगा, लेकिन प्राचीन शिकारी-संग्रहकर्ताओं के विश्वासों और अनुष्ठानों को समझने की कोशिश के मामले में हम ज़्यादातर लाचारी की हालत में हैं। यह काफ़ी कुछ वैसी ही दुविधा है, जिसका सामना भविष्य के इतिहासकार को उस सूरत में करना होगा, जब वह इक्कीसवीं सदी के अमेरिकी किशोरों के जीवन का चित्रण करने के लिए पूरी तरह से इन किशोरों के डाक से आए उन ख़तों पर निर्भर करेगा, जो बचे रह गए होंगे क्योंकि उनकी फ़ोन पर हुई बातचीतों, ईमेलों, ब्लॉगों और टैक्स्ट मैसेजों का कोई रिकॉर्ड शेष नहीं होगा।

इस तरह वस्तुओं पर भरोसा प्राचीन शिकारी-संग्रहकर्ताओं के वर्णन को पक्षपातपूर्ण बनाएगा। इसके उपचार का एक तरीक़ा आधुनिक भोजन-खोजी समाजों पर नज़र डालना है। इनका अध्ययन मानव वैज्ञानिक पर्यवेक्षणों के सहारे सीधे-सीधे किया जा सकता है, लेकिन आधुनिक भोजन-खोजी समाजों के आधार पर प्राचीन भोजन-खोजी समाजों के बारे में धारणा क़ायम करते समय सावधानी बरतना ज़रूरी है।

प्रथमतः, आधुनिक युग में बचे रह गए सारे भोजन-खोजी समाज आस-पास के खेतिहर और औद्योगिक समाजों से प्रभावित रहे हैं। नतीज़तन, यह मानना जोख़िमपूर्ण होगा कि जो कुछ भी इनके बारे में सही है, वही दसियों हज़ारों साल पहले भी सही था।

दूसरे, आधुनिक भोजन-खोजी समाज मुख्यतः खेती के लिए अनुपयुक्त कठिन जलवायुपरक परिस्थितियों और दुर्गम इलाक़ों में बची रह सकी हैं। ऐसे समाज, जिन्होंने

ख़ुद को दक्षिण अफ़्रीका के कालाहारी रेगिस्तान जैसी जगहों की कठोर परिस्थितियों में ढाल लिया है, वे यांग्ट्ज़ नदी घाटी जैसे उपजाऊ इलाक़ों के प्राचीन समाजों को समझने के लिए दिग्भ्रमित करने वाला मॉडल उपलब्ध करा सकते हैं। ख़ास तौर से, कालाहारी रेगिस्तान जैसे इलाक़ों की आबादी की सघनता उससे बहुत कम है, जितनी वह प्राचीन यांग्ट्ज़ के आस-पास हुआ करती थी और मानव-समूहों के आकार और संरचना तथा उनके बीच के सम्बन्धों के बुनियादी सवालों के सन्दर्भ में इसके व्यापक निहितार्थ हो सकते हैं।

तीसरे, शिकारी-संग्रहकर्ता समाजों की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वे एक दूसरे से कितने भिन्न हैं। वे दुनिया के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में ही भिन्न नहीं हैं, बल्कि एक ही क्षेत्र तक में भी भिन्न हैं। एक अच्छा उदाहरण वह व्यापक विविधता है, जो ऑस्ट्रेलियाई आदिवासियों के बीच जाकर बसने वाले प्रथम यूरोपीय लोगों ने इन आदिवासियों में देखी थी। अँग्रेज़ों की फ़तह के पहले, इस महाद्वीप पर 300,000 और 700,000 के बीच की संख्या में शिकारी-संग्रहकर्ता रहा करते थे, जो 200-600 जनजातियों में बँटे थे, जिनमें से प्रत्येक जनजाति अनेक क़बीलों में विभाजित थी। हर जनजाति की अपनी भाषा, अपना धर्म, अपने क़ायदे और रीति-रिवाज़ थे। जिसे आज दक्षिण ऑस्ट्रेलिया में एडिलेड के नाम से जाना जाता है, उसके आस-पास कई पितृवंशीय क़बीले रहते थे, जो अपनी वंश परम्परा को पैतृक पक्ष से जोड़कर देखते थे। ये क़बीले पूरी तरह क्षेत्रीय आधार पर आपस में जनजातियों में बँधे थे। इसके विपरीत, उत्तरी ऑस्ट्रेलिया की कुछ जनजातियाँ व्यक्ति की मातृक कुल-परम्परा को ज़्यादा महत्त्व देती थीं और व्यक्ति की जनजातीय पहचान उसके क्षेत्र के बजाय उसके कुलचिन्ह पर आधारित होती थी।

यह बात किसी भी समझदार व्यक्ति के लिए स्पष्ट होनी चाहिए कि प्राचीन शिकारी-संग्रहकर्ताओं में नस्लपरक और सांस्कृतिक विविधता समान रूप से प्रभावशाली थी और यह कि कृषि क्रान्ति की पूर्व सन्ध्या पर जो 50 लाख से 80 लाख तक भोजन-खोजी दुनिया को आबाद किए हुए थे, वे हज़ारों अलग-अलग भाषाओं और संस्कृतियों के साथ हज़ारों अलग-अलग जनजातियों में बँटे थे। ये अन्ततः संज्ञानात्मक क्रान्ति की मुख्य विरासतों में से एक थी। कल्पना के अभ्युदय के कारण पर्यावरण की दृष्टि से एक जैसी परिस्थितियों में रह रहे समान आनुवांशिक बनावट वाले लोग भी बहुत अलग-अलग तरह की कल्पित वास्तविकताओं को रचने में सक्षम थे, जो स्वयं को भिन्न मानकों और मूल्यों में व्यक्त करती थीं।

उदाहरण के लिए यह मानने के उचित कारण हैं कि जिस जगह आज ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी खड़ी है, 30,000 साल पहले वहाँ रहने वाला एक भोजन-खोजी क़बीला उस क़बीले से भिन्न भाषा बोलता होगा, जो उस जगह रहता था, जहाँ आज कैम्ब्रिज स्थित है। हो सकता है एक क़बीला लड़ाकू रहा हो और दूसरा शान्तिप्रिय रहा हो। हो सकता है कैम्ब्रिज वाला क़बीला सामुदायिक रहा हो, जबकि ऑक्सफ़ोर्ड वाला एकल परिवारों पर आधारित रहा हो। हो सकता है ऑक्सफ़ोर्ड वाले अपने संरक्षक देवदूतों की लकड़ी की मूर्तियाँ उकेरने में घण्टों का समय बिताते रहे हों, जबकि कैम्ब्रिज वाले नाचते हुए उपासना करते रहे हों। ऑक्सफ़ोर्ड वाले हो सकता है अवतार में विश्वास करते हों, जबकि कैम्ब्रिज

वाले इसे मूर्खता समझते हों। एक समाज में समलैंगिक यौन सम्बन्ध स्वीकृत रहे हो सकते हैं, जबकि दूसरे में इस तरह के सम्बन्ध नाजायज़ माने जाते रहे हों।

दूसरे शब्दों में, जहाँ आधुनिक भोजन-खोजियों के मानवशास्त्रीय पर्यवेक्षण प्राचीन भोजन-खोजियों के लिए उपलब्ध कुछ सम्भावनाओं को समझने में हमारी मदद कर सकते हैं, वहीं सम्भावनाओं का प्राचीन क्षितिज[*] ज़्यादा व्यापक था और इसका ज़्यादातर हिस्सा हमारी दृष्टि से ओझल है। होमो सेपियन्स की ‘नैसर्गिक जीवन-शैली’ को लेकर की जाने वाली उत्तेजित बहस से मुख्य मुद्दा नदारद है। संज्ञानात्मक क्रान्ति के बाद से सेपियन्स की कोई एक नैसर्गिक जीवन-शैली नहीं रही है। सम्भावनाओं के विस्मयकारी रंगपटल (पैलेट) के बीच से चुनने के लिए सिर्फ़ सांस्कृतिक विकल्प ही हैं।

मूल समृद्ध समाज

हम कृषि-पूर्व दुनिया के जीवन के बारे में क्या सामान्यीकरण कर सकते हैं? यह कहना सुरक्षित प्रतीत होता है कि बड़ी तादाद में लोग छोटे-छोटे समूहों में रहते थे, जिनमें कई दर्जन या बहुत से बहुत कई सौ व्यक्ति शामिल हुआ करते थे, और यह कि ये सारे व्यक्ति मनुष्य थे। इस आख़िरी बात को ध्यान में रखना महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह ज़ाहिर-सी बात नहीं है। कृषिक और औद्योगिक समाजों के ज़्यादातर सदस्य पालतू प्राणी होते हैं। वे निश्चय ही अपने मालिकों की बराबरी पर नहीं होते, लेकिन तब भी वे सदस्य तो होते ही हैं। आज न्यूज़ीलैंड नामक समाज में 45 लाख सेपियन्स और 500 लाख भेड़ हैं।

इस सामान्य नियम का सिर्फ़ एक अपवाद था : कुत्ता। कुत्ता पहला वह जानवर था, जिसे होमो सेपियन्स ने पालतू बनाया, और यह घटना कृषि क्रान्ति के पहले घटित हुई। विशेषज्ञों में ठीक-ठीक तिथि को लेकर मतभेद हैं, लेकिन हमारे पास 15,000 साल पहले से पालतू कुत्तों के होने के निर्विवाद प्रमाण उपलब्ध हैं। मुमकिन है कि वे इसके हज़ारों साल पहले से मनुष्यों के समूह में शामिल हो चुके हों।

कुत्तों का इस्तेमाल शिकार और लड़ाई के लिए और जंगली जानवरों तथा घुसपैठिया इंसानों के विरुद्ध चेतावनी व्यवस्था के तौर पर किया जाता था। पीढ़ियों के गुज़रने के साथ ये दोनों प्रजातियाँ एक दूसरे के साथ अच्छी तरह से संवाद करने के लिए सहविकसित होती गईं। अपने मानव साथियों की ज़रूरतों और भावनाओं के प्रति सर्वाधिक चौकस रहने वाले कुत्तों को अतिरिक्त संरक्षण और भोजन मिलता था, और उनके जीवन की सम्भावनाएँ बढ़ जाती थीं। इसी के साथ-साथ कुत्तों ने अपनी ज़रूरतों के लिए लोगों को नियन्त्रित करना सीख लिया। 15,000 साल लम्बे सम्बन्ध ने मनुष्यों और कुत्तों के बीच उससे ज़्यादा समझ विकसित की है, जितनी मनुष्यों और दूसरे प्राणियों के बीच विकसित हो सकी है। कभी-कभी तो मरे हुए कुत्तों को इंसानों की तरह अनुष्ठानपूर्वक दफ़नाया जाता था।

समूह के सदस्य एक दूसरे से बहुत अच्छी तरह परिचित थे, ज़िन्दगी भर दोस्तों और रिश्तेदारों से घिरे रहते थे। अकेलापन और निजता बहुत विरल थी। पड़ोसी समूह शायद संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा करते थे और आपस में लड़ते भी थे, लेकिन उनके बीच

दोस्ताना रिश्ते भी हुआ करते थे। वे सदस्यों का आदान-प्रदान करते थे, साथ मिलकर शिकार करते थे, विलासिता की वस्तुओं का लेन-देन करते थे, राजनैतिक गठबन्धन तैयार करते थे और धार्मिक त्यौहार मनाते थे। इस तरह का आपसी सहयोग होमो सेपियन्स की एक महत्त्वपूर्ण पहचान थी और वह उसे दूसरी मानव प्रजातियों से बेहतर बनाती थी। कभी-कभी पड़ोसी समूहों के साथ ये रिश्ते इतने घनिष्ठ होते थे कि वे आपस मिलकर एक क़बीला तैयार कर लेते थे, और साझा भाषा, साझा मिथकों और साझा मान्यताओं तथा साझा मूल्यों को अपना लेते थे।

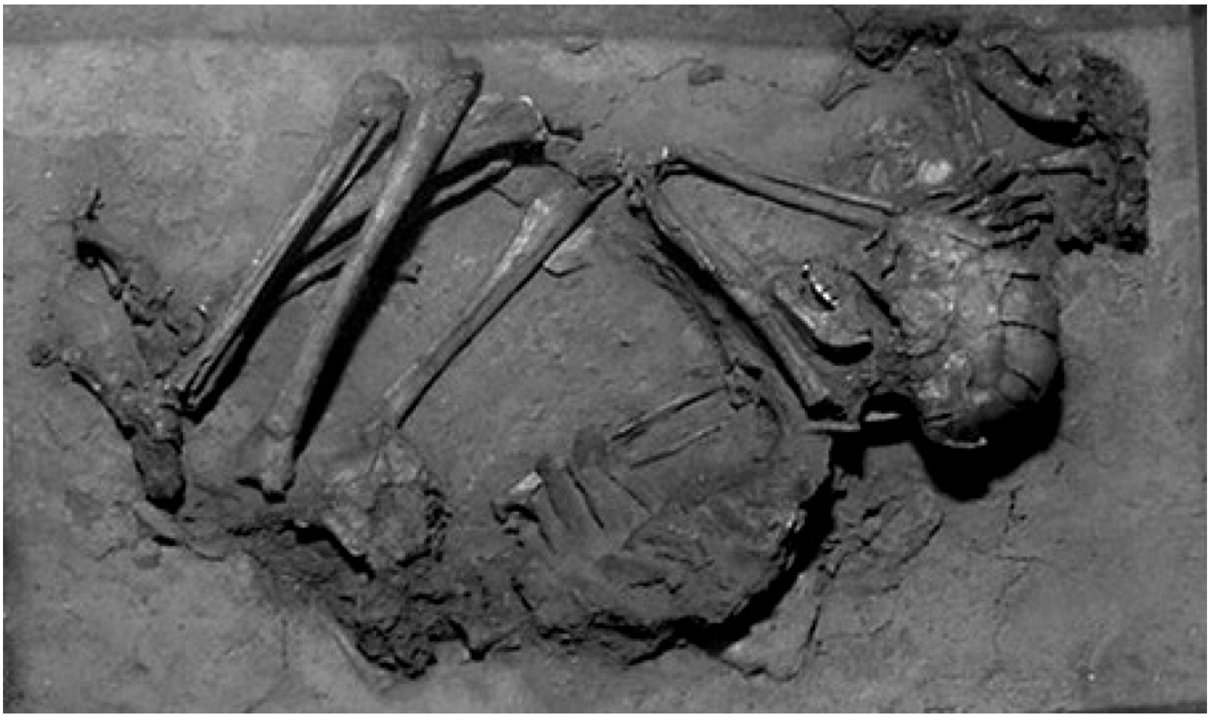

7. पहला पालतू जानवर? उत्तरी इज़रायल में पाई गई एक 12,000 साल पुरानी क़ब्र (किबुट्ज़ मायन बराक़ म्यूज़ियम)। इसमें एक पिल्ले (ऊपरी दाहिना कोना) की बग़ल में एक पचास साल की स्त्री का कंकाल रखा है। पिल्ले को स्त्री के सिर के क़रीब दफ़नाया गया था। उसका बायाँ हाथ कुत्ते पर जिस तरह रखा हुआ है, वह एक भावनात्मक रिश्ते की ओर इंगित करता लग सकता है। निश्चय ही दूसरी सम्भावित व्याख्याएँ भी हैं। मसलन, हो सकता है कि वह पिल्ला अगली दुनिया के द्वारपाल के लिए एक सौगात हो।

तब भी हमें इस तरह के बाहरी सम्बन्धों के महत्त्व को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर नहीं देखना चाहिए। भले ही संकट की घड़ियों में पड़ोसी समूह एक दूसरे के ज़्यादा क़रीब आ जाते थे, और भले ही वे कभी-कभार शिकार करने को इकट्ठा हो जाते थे, मिल-जुल कर दावतें करते थे, तब भी वे अपना अधिकांश वक़्त पूरी तरह से अलग-थलग रह कर और स्वतन्त्रतापूर्वक बिताते थे। व्यापारिक लेन-देन ज़्यादातर सीपियों, रत्नों और रंगों जैसी विलासितापूर्ण वस्तुओं तक सीमित था। इसका कोई प्रमाण नहीं है कि लोग फलों और मांस जैसी प्रमुख चीज़ों का व्यापारिक लेन-देन करते थे या एक समूह का अस्तित्व दूसरे समूह से चीज़ों को आयात करने पर निर्भर करता हो। समाज-राजनैतिक सम्बन्ध भी छिटपुट ही हुआ करते थे। प्रजाति स्थायी राजनैतिक तन्त्र की भूमिका नहीं निभाती थी और अगर इसके कोई अवसरानुकूल बैठक स्थल थे, तो भी कोई स्थायी नगर या संस्थाएँ नहीं थीं। एक औसत व्यक्ति अपने समूह से बाहर के किसी व्यक्ति से मिले या सम्पर्क

किए बिना कई महीने गुज़ार देता था और समूची ज़िन्दगी में उसका आमना-सामना कुछ सौ से ज़्यादा मनुष्यों से नहीं होता था। सेपियन्स की आबादी विशाल इलाक़ों में बहुत विरले ढंग से फैली हुई थी। कृषि क्रान्ति के पहले समूचे ग्रह के निवासी मनुष्यों की आबादी आज के काहिरा की आबादी से भी कम थी।

ज़्यादातर सेपियन्स के समूह भोजन की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकते हुए सड़क पर रहते थे। उनका आवागमन मौसमों की तब्दीली से, जानवरों के सालाना स्थानान्तरण और वनस्पतियों की पैदावार के आवर्तनों से प्रभावित होता था। वे सामान्यतः एक ही घरेलू दायरे में आते-जाते रहते थे, कई दर्जन और कई सौ वर्ग किलोमीटर के बीच के दायरे में।

कभी-कभार, किन्हीं प्राकृतिक आपदाओं, हिंसक तकरारों, जनसंख्या के दबावों की वजह से या करिश्माई नेता की पहल पर समूह नए इलाक़ों की तलाश में अपने इलाक़े से बाहर भी भटका करते थे। ये भटकाव मनुष्यों के विश्वव्यापी फैलाव में इंजन की भूमिका निभाते थे। अगर एक भोजन-खोजी दल हर चालीस साल में टूटता होगा और उससे अलग हुआ समूह पूरब में सौ किलोमीटर दूर किसी नए इलाक़े में जा बसता होगा, तो पूर्वी अफ़्रीका और चीन के बीच की दूरी लगभग 10,000 सालों में पार कर ली गई होगी।

अपवाद स्वरूप कुछ मामलों में, जब भोजन के स्रोत ख़ास तौर से विपुल थे, समूह वक़्ती या स्थायी शिविरों में बस जाया करते थे। भोजन को सुखाने, धुआँ देने या जम जाने की हद तक ठंडा करने की तकनीकों ने भी लम्बे समय तक एक जगह पर बने रहने को मुमकिन बनाया होगा। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि समुद्री भोजन और जलपक्षियों से समृद्ध समुद्रों और नदियों के किनारे मनुष्यों ने स्थायी मछुआरे गाँव बसा लिए - कृषि क्रान्ति से पहले के इतिहास की पहली स्थायी बस्तियाँ। ये मछुआरे गाँव कम से कम 45,000 साल पहले इंडोनेशियाई द्वीपों के तटों पर बसे हो सकते हैं। इन्होंने उन अड्डों की भूमिका निभाई हो सकती है, जहाँ से होमो सेपियन्स ने महासागर पार करने के अपने पहले उद्यम की शुरुआत की होगी : ऑस्ट्रेलिया पर धावा।

ज़्यादातर निवास-स्थलों पर सेपियन्स दल लचीले और अवसरानुकूल ढंग से अपना उदर-पोषण करते थे। वे दीमकें चुराते, झड़बेरियाँ तोड़ते, कन्दमूल खोदते, खरगोशों का पीछा करते और बाइसनों और भारी हाथियों का शिकार करते थे। ‘शिकारी मानव’ होने की लोकप्रिय छवि के बावजूद संग्रह करना सेपियन्स की मुख्य गतिविधि थी और यही उनकी मुख्य कैलोरी और चकमक, लकड़ी तथा बाँस जैसी कच्ची सामग्री का ज़रिया हुआ करता था।

सेपियन्स सिर्फ़ भोजन और दूसरी चीज़ों की खोज में ही नहीं भटकते थे, बल्कि वे ज्ञान की खोज में भी भटकते थे। जीवित बने रहने के लिए उन्हें अपने इलाक़े के विस्तृत मानसिक नक़्शे की भी ज़रूरत होती थी। भोजन की अपनी रोज़मर्रा की खोज की कार्यक्षमता को बढ़ाने के लिए उन्हें हर पौधे की विकास प्रक्रियाओं और हर जानवर की आदतों को समझना भी ज़रूरी था। उनके लिए यह जानना ज़रूरी था कि कौन-सा भोजन पोषक है, किसे खाने से बीमार पड़ जाते हैं और किस तरह खाने की दूसरी चीज़ों को इलाज़ की तरह इस्तेमाल किया जाना चाहिए। उनके मौसमों की गति को समझना

और यह जानना ज़रूरी था कि आँधी-तूफान या सूखे की सूचना देने वाले संकेत क्या होते हैं। उन्होंने हर जल-प्रवाह, हर अखरोट वृक्ष, भालू की हर गुफा और अपने आस-पास जमा हर चकमक पत्थर का बारीक़ी से अध्ययन किया था। हर व्यक्ति को यह समझना ज़रूरी था कि पत्थर का चाकू कैसे बनाया जाए, खरगोश को फँसाने का जाल कैसे तैयार किया जाए, और हिमस्खलनों, सर्पदंश या भूखे शेर का मुक़ाबला कैसे किया जाए। इन बहुत-सी योग्यताओं में पारंगत होने के लिए कई वर्षों का प्रशिक्षण और अभ्यास ज़रूरी होता था। एक औसत भोजन-खोजी मिनटों में किसी चकमक पत्थर को भाले की नोक में बदल लेता था। जब हम इस करतब की नक़ल करने की कोशिश करते हैं, तो बुरी तरह नाक़ामयाब होते हैं। हममें से ज़्यादातर लोग चकमक और बासाल्ट पत्थर के गुणों और उन्हें ठीक तरह से क्रियाशील करने की परिचालन विधि से नावाकिफ़ होते हैं।

दूसरे शब्दों में, एक औसत भोजन-खोजी को अपने परिवेश की अपने आधुनिक वंशजों के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा व्यापक, गहरी और विविध जानकारी होती थी। आज के औद्योगिक समाज में ज़्यादातर लोगों को जीवित बने रहने के लिए नैसर्गिक जगत के बारे में बहुत ज़्यादा जानने की ज़रूरत नहीं होती। एक कम्प्यूटर इंजीनियर, इंश्योरेंस एजेंट, इतिहास के अध्यापक या किसी फ़ैक्टरी के कामगार के रूप में जीवन चलाने के लिए आपको वाक़ई क्या जानने की ज़रूरत है? आपको अपने छोटे से उद्यम के बारे में भरपूर जानकारी होना भर ज़रूरी है, लेकिन जीवन की विपुल ज़रूरतों के सन्दर्भ में आप उन दूसरे विशेषज्ञों की मदद पर अविचारित ढंग से निर्भर करते हैं, जिनका ख़ुद का ज्ञान भी उनके अपने छोटे-से क्षेत्र तक सीमित होता है। सामूहिक स्तर पर आज का मनुष्य प्राचीन समूहों के मुक़ाबले बहुत ज़्यादा जानता है, लेकिन व्यक्तिगत स्तर पर प्राचीन खोजी लोग इतिहास के सबसे ज़्यादा जानकार और दक्ष लोग हुआ करते थे।

इस बात के कुछ साक्ष्य हैं कि भोजन-खोजी युग के बाद से औसत सेपियन्स के मस्तिष्क का आकार वास्तव में घटा है। उस युग में जीवित बने रहने के लिए हर किसी में उत्कृष्ट मानसिक क्षमताओं का होना ज़रूरी था। जब कृषि और उद्योग का आगमन हुआ, तो लोग अपने जीवन के लिए उत्तरोत्तर दूसरों की विशेषज्ञता पर निर्भर होते गए, और 'मन्द बुद्धि लोगों के लिए नए अवसर' खुलते गए। आप एक पनहारे या असेम्बली-लाइन वर्कर के रूप में काम करते हुए अपना जीवन गुज़ार सकते हैं और अपना साधारण जीन अगली पीढ़ी को सौंप सकते हैं।

भोजन-खोजी ना सिर्फ़ अपनी आस-पास के जानवरों, वनस्पतियों और वस्तुओं की दुनिया के ज्ञान में पारंगत थे, बल्कि अपने शरीरों और इन्द्रियों की आन्तरिक दुनिया के ज्ञान में भी निपुण थे। वे घास में हल्की-सी सरसराहट सुनकर पता लगा देते थे कि वहाँ कोई साँप तो नहीं है। वे फलों, मधुमक्खियों के छत्तों और पक्षियों के घोंसलों का पता लगाने के लिए वृक्षों की पत्तियों का सावधानीपूर्वक निरीक्षण किया करते थे, और अत्यन्त चुस्त और दक्ष तरीक़े से बैठना, चलना और दौड़ना जानते थे। शरीर का विविध और निरन्तर इस्तेमाल उन्हें मैराथन धावकों जैसा तन्दुरुस्त रखता था। उनके शरीरों में ऐसा फुर्तीलापन होता था, जैसा आज के लोग योग और ताइ ची का वर्षों अभ्यास करने के बाद भी हासिल नहीं कर पाते।

शिकारी-संग्रहकर्ताओं की जीवन-शैलियाँ अलग-अलग इलाक़ों और मौसमों के हिसाब से ख़ासी भिन्न हुआ करती थीं, लेकिन कुल मिलाकर लगता है कि भोजन-खोजियों ने उनके पदचिन्हों पर चलने बाद के खेतिहरों, गड़रियों, मज़दूरों और ऑफ़िस क्लर्कों के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा आरामदेह और फलदायी जीवन-शैली का आनन्द उठाया था।

जहाँ आज के समृद्ध समाजों में लोग हफ़्ते में चालीस से पैंतालीस घण्टे काम करते हैं, और विकासशील देशों में लोग हफ़्ते में साठ और अस्सी घण्टों तक काम करते हैं, वहीं कालाहारी रेगिस्तान जैसे नितान्त दुर्गम स्थलों पर रहने वाले आज के समय के शिकारी-संग्रहकर्ता हफ़्ते में औसतन पैंतीस से चालीस घण्टे काम करते हैं। वे हर तीन में से एक दिन शिकार करते हैं और संग्रह का काम प्रतिदिन तीन से छह घण्टे का वक़्त लेता है। सामान्य दिनों में समूह के उदर-पोषण के लिए इतना पर्याप्त होता है। क़तई मुमकिन है कि कालाहारी से बेहतर उपजाऊ क्षेत्रें में रहने वाले प्राचीन शिकार-संग्रहकर्ता भोजन और कच्चा माल हासिल करने में इससे भी कम समय ख़र्च करते हों। इसके अलावा, भोजन-खोजियों के गृहस्थी के कामकाज का बोझ भी बहुत हल्का होता था। ना उन्हें बरतन माँजने पड़ते थे, ना कार्पेट की धूल हटानी पड़ती थी, ना फ़र्श साफ़ करना पड़ता था, ना चड्डियाँ बदलना पड़ती थीं और ना बिलों का भुगतान करना पड़ता था।

भोजन-खोजी अर्थव्यवस्था ज़्यादातर लोगों के लिए उससे कहीं ज़्यादा दिलचस्प जीवन सुलभ कराती थी, जितना कृषि या उद्योग कराते हैं। आज एक चीनी फ़ैक्टरी की कर्मचारी सुबह लगभग सात बजे घर से निकलती है, प्रदूषित सड़कों से होकर फ़ैक्टरी पहुँचती है और हर दिन दस लम्बे और दिमाग़ को सुन्न कर देने वाले घण्टों तक एक ही मशीन पर एक ही तरह का काम करने के बाद शाम को लगभग सात बजे वापस घर पहुँचती है और घर पहुँचकर बर्तन साफ़ करती है व कपड़े धोती है। हो सकता है तीस हज़ार साल पहले एक चीनी भोजन-खोजी अपना शिविर छोड़ अपने साथियों के साथ सुबह आठ बजे निकलता हो। वे पास के जंगलों और चारागाहों में भटकते हुए मशरूम इकट्ठा करते, कन्दमूल खोदते, मेंढकों को पकड़ते और कभी-कभार शेर से बचकर भागते। दोपहर की शुरुआत में वे अपना भोजन तैयार करने शिविर में वापस आ जाते। इससे उन्हें गप लगाने, क़िस्से सुनाने, बच्चों के साथ खेलने और घर पर बने रहने के लिए ढेर सारा समय मिल जाता था। बेशक कभी-कभी उन्हें शेर दबोच लेता था या साँप काट लेता था, लेकिन दूसरी तरफ़ उन्हें वाहनों से होने वाली दुर्घटनाओं और औद्योगिक प्रदूषण से नहीं निपटना पड़ता था।

ज़्यादातर जगहों पर और ज़्यादातर समय भोजन-खोज आदर्श पोषण उपलब्ध कराता था। यह आश्चर्य की बात क़तई नहीं है - यह सैकड़ों हज़ारों साल तक मनुष्य का भोजन रहा था। मनुष्यों का शरीर इसके एक़दम अनुरूप ढला हुआ था। जीवाश्मीकृत कंकालों के साक्ष्य संकेत करते हैं कि प्राचीन भोजन-खोजियों के भूखे रहने या कुपोषण का शिकार होने की बहुत कम सम्भावनाएँ थीं और वे सामान्यतः अपने कृषक वंशजों के मुक़ाबले लम्बे और तगड़े होते थे। समझा जाता है कि औसत आयु मात्र तीस से चालीस वर्ष थी, लेकिन इसकी वजह मुख्यतः बड़ी तादाद में बाल मृत्यु की घटनाएँ थीं। जो बच्चे जोख़िम भरे शुरुआती वर्ष निकाल ले जाते थे, उनकी साठ वर्ष की उम्र तक पहुँचने की भरपूर सम्भावना होती थी। यहाँ तक कि कुछ अस्सी साल तक जी जाते थे। आधुनिक

भोजन-खोजियों में पैंतालीस साल की स्त्री बीस साल और जीवित रहने की उम्मीद कर सकती है और इन भोजन-खोजियों की 5.8 प्रतिशत आबादी साठ से ऊपर की उम्र की है।

भोजन खोजियों की क़ामयाबी का रहस्य, जिसने उनकी भूखे मरने और कुपोषण का शिकार होने से रक्षा की, उनके विविध क़िस्म के भोजन हुआ करते थे। कृषक लोग बहुत ही सीमित और असन्तुलित भोजन की ओर प्रवृत्त होते हैं। ख़ास तौर से पूर्व आधुनिक समय में खेतिहर आबादी का पोषण करने वाली ज़्यादातर कैलोरी किसी एक अनाज से मिलती थी - जैसे कि गेहूँ, आलू या चावल - जिसमें उन कुछ विटामिनों, खनिजों और दूसरे पोषक तत्त्वों का अभाव होता है, जिनकी ज़रूरत मनुष्य को होती है। पारम्परिक चीन का एक सामान्य किसान नाश्ते में चावल खाता था, दोपहर के भोजन में चावल खाता था और रात के भोजन में चावल खाता था। अगर वह सौभाग्यशाली होता, तो इसी भोजन की उम्मीद वह अगले दिन भी करता था। इसके विपरीत, प्राचीन भोजन-खोजी नियमित रूप से दर्जनों तरह की भोजन सामग्री खाया करता था। मुमकिन है कि किसान की भोजन खोजी परदादी ने नाश्ते में झड़बेरियाँ और मशरूम खाए हों, दोपहर के भोजन में फल, घोंघे और कछुआ खाए हों और रात के भोजन में जंगली प्याज़ के साथ खरगोश का गोश्त खाया हो। अगले दिन की खाने की फ़ेहरिस्त पूरी तरह भिन्न रही हो सकती थी। इस विविधता से प्राचीन भोजन-खोजी के लिए सारे ज़रूरी पोषक तत्त्वों का मिलना सुनिश्चित हो जाता था।

इसके अतिरिक्त, किसी एक क़िस्म के भोजन पर निर्भर ना होने के कारण उन्हें किसी एक भोजन का स्रोत ख़त्म जाने की हालत में किसी तरह की मुश्किल का सामना नहीं करना पड़ता था। जब सूखे, आग या भूकम्प से चावल या आलू की फ़सल बरबाद हो जाती है, तो कृषक समाजों को अकाल की तबाही झेलनी पड़ती है। भोजन-खोजी समाज प्राकृतिक आपदाओं से शायद ही बचे हुए हों। उनके जीवन में अभाव और भूख के दौर आते रहते थे, लेकिन वे सामान्यतः इस तरह की विपत्तियों से आसानी से निपट पाते थे। अगर उन्हें कुछ कच्ची भोजन-सामग्री से वंचित हो जाना पड़ता था, तो वे किन्हीं दूसरी प्रजातियों को बटोर सकते थे या उनका शिकार कर सकते थे, या किसी ऐसे इलाक़े में जा सकते थे, जिसमें भोजन की उतनी कमी नहीं होती थी।

प्राचीन भोजन-खोजियों को छूत के रोग भी कम झेलना पड़ते थे। ज़्यादातर छूत की बीमारियाँ (जैसे कि चेचक, खसरा और तपेदिक) जिन्होंने कृषक और औद्यागिक समाजों को त्रस्त किया है, वे कृषि क्रान्ति के बाद ही पालतू जानवरों से उत्पन्न हुई थीं और मनुष्यों में फैली थीं। प्राचीन भोजन-खोजी, जिन्होंने सिर्फ़ कुत्तों को पाला हुआ था, वे इस तरह की विपत्तियों से मुक्त थे। इसके अलावा, कृषक और औद्योगिक समाजों के ज़्यादातर लोग घनी और स्वास्थ्य की दृष्टि से गन्दी स्थायी बस्तियों में रहते थे, जो रोगों के आदर्श अड्डे होते हैं। भोजन खोजी धरती पर उन छोटे-छोटे समूहों में घूमते थे, जो महामारियों को टिकने नहीं दे सकते थे।

पौष्टिक और विविध क़िस्म का भोजन, काम करने का अपेक्षाकृत संक्षिप्त समय और छूत के रोगों की कमी जैसी चीज़ों के कारण बहुत से विशेषज्ञों ने कृषि-पूर्व भोजन- खोजी

समाजों को ‘मूल समृद्ध समाजों’ के रूप में परिभाषित किया है, हालाँकि इन प्राचीनों के जीवन को आदर्शीकृत करना ग़लत होगा। यद्यपि वे कृषक और औद्योगिक समाजों के ज़्यादातर लोगों के मुक़ाबले बेहतर जीवन जीते थे, तब भी उनकी दुनिया कठोर और निर्मम रही हो सकती है। अभाव और विपत्ति के दौर असामान्य नहीं थे, बाल-मृत्यु दर बहुत अधिक थी, और जो दुर्घटना आज एक मामूली-सी चीज़ हो सकती है, वह उस ज़माने में बहुत आसानी से मौत का पैग़ाम साबित हो सकती थी। बहुत-से लोग शायद घुमक्कड़ समूहों के आत्मीय वातावरण से आनन्दित होते होंगे, लेकिन वे बदक़िस्मत लोग, जिन्हें अपने साथियों के विद्वेष या उपहास को झेलना पड़ता होगा, उन्हें भीषण तक़लीफ़ उठानी पड़ती होगी। आधुनिक भोजन-खोजी आम तौर से उन बूढ़े या अपंग लोगों को ना केवल त्याग देते हैं, बल्कि मार भी देते हैं जो समूह के साथ तालमेल नहीं बैठा पाते। अवांछित शिशुओं और बच्चों को मार दिया जा सकता है, और ऐसे भी प्रकरण देखने में आए हैं, जिनमें धर्म से प्रेरित होकर मनुष्यों की बलि चढ़ा दी जाती है।

शिकारी-संग्रहकर्ता आचे, जो 1960 के दशक तक पैराग्वे के जंगलों में रहते थे, भोजन-आखेट के अँधेरे पक्ष की एक झलक उपलब्ध कराते हैं। जब समूह का कोई सम्मानित सदस्य मरता था, तो आचे एक छोटी बच्ची की हत्या कर दोनों को एक साथ दफ़ना दिया करते थे। जिन मानवशास्त्रियों ने आचे का साक्षात्कार लिया है, उन्होंने एक ऐसे प्रकरण का उल्लेख किया है, जिसमें एक समूह ने अधेड़ उम्र के एक ऐसे व्यक्ति को छोड़ दिया था, जो बीमार पड़ गया था और दूसरे लोगों के साथ चल पाने में असमर्थ हो गया था। उसे एक पेड़ के नीचे छोड़ दिया गया था। गिद्ध उसे अच्छा-ख़ासा भोजन समझकर उस पर मँडराने लगे, लेकिन वह आदमी चंगा हो गया और तेज़ी से भाग कर किसी तरह समूह के साथ हो लिया। उसका शरीर पक्षियों की बीट से ढँका हुआ था, इसलिए उसके बाद उसका उपनाम ‘गिद्ध बीट’ रख दिया गया।

जब कोई बूढ़ी आचे स्त्री बाक़ी समूह पर बोझ बन जाती थी, तो कोई नौजवान चुपचाप पीछे से जाकर उसके सिर पर कुल्हाड़ी मारकर उसकी हत्या कर देता था। एक आचे ने जंगल के अपने अच्छे दिनों के क़िस्से उत्सुक मानवशास्त्रियों को सुनाए थे। जैसी कि प्रथा थी, “मैं बूढ़ी स्त्रियों की हत्या किया करता था। मैं अपनी चाचियों की हत्या किया करता था...स्त्रियाँ मुझसे डरती थीं...अब, यहाँ गोरों के साथ मैं कमज़ोर हो गया हूँ”। जो बच्चे बिना बालों के पैदा होते थे, उन्हें अविकसित मानकर तुरन्त मार दिया जाता था। एक औरत ने याद करते हुए बताया कि उसकी पहली बच्ची को इसलिए मार दिया गया था क्योंकि समूह के आदमी एक और लड़की नहीं चाहते थे। एक अन्य अवसर पर एक आदमी ने एक छोटे बच्चे को मार दिया था, क्योंकि उसका ‘मूड ख़राब था और बच्चा रो रहा था’। एक अन्य बच्चे को ज़िन्दा दफ़ना दिया गया था क्योंकि वह हास्यास्पद प्रतीत होता था और दूसरे बच्चे उसे देखकर हँसते थे’।

हमें आचे लोगों के बारे में बहुत जल्दबाज़ी में राय क़ायम करने को लेकर हालाँकि सावधानी बरतनी होगी। जिन मानवशास्त्रियों ने उनके साथ रहते हुए वर्षों बिताए हैं, वे बताते हैं कि वयस्कों के बीच हिंसा की घटनाएँ बहुत विरल थीं। औरत और मर्द दोनों अपने जोड़ीदारों को बदलने के मामले में आज़ाद थे। वे हमेशा हँसते और मुस्कराते रहते थे, उनमें नेतृत्व को लेकर ऊँच-नीच का कोई क्रम नहीं था, और वे तानाशाह प्रवृत्ति के

लोगों से सामान्यतः दूर रहते थे। अपने थोड़े से सामान के साथ वे बेहद दरियादिल हुआ करते थे और क़ामयाबी या धन का उन्हें कोई मोह नहीं था। वे अपनी ज़िन्दगी में अच्छे परस्पर सामाजिक व्यवहार और आला दर्ज़े की दोस्ती को सबसे ज़्यादा महत्त्व देते थे। बच्चों, बीमारों और बूढ़ों की हत्याओं के प्रति उनका नज़रिया वैसा ही था, जिस तरह आज बहुत से लोगों का गर्भपात और इच्छामृत्यु को लेकर है। इस बात को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि आचे लोग पैराग्वे के किसानों के हाथों निर्मम तरीक़े से मार दिए गए। अपने दुश्मनों से बच निकलने की ज़रूरत ने शायद आचे लोगों को किसी भी ऐसे व्यक्ति के प्रति असाधारण रूप से कठोर रवैया अपनाने को विवश किया था, जो समूह पर बोझ बन सकता था।

वास्तविकता यह है कि हर मानव समाज की तरह आचे समाज बहुत जटिल था। हमें सतही जानकारी के आधार पर उसे राक्षसी साबित करने या उसका आदर्शीकरण करने से बचना चाहिए। आचे ना तो देवदूत थे और ना ही नरकदूत थे - वे मनुष्य थे। उसी तरह प्राचीन शिकारी-संग्रहकर्ता भी मनुष्य थे।

बतियाती हुई प्रेतात्माएँ

प्राचीन शिकारी-संग्रहकर्ताओं के आध्यात्मिक और मानसिक जीवन के बारे में हम क्या कह सकते हैं? अनुमान योग्य और वस्तुनिष्ठ कारकों के आधार पर हम कुछ आत्मविश्वास के साथ भोजन-खोजी अर्थव्यवस्था के मूल तत्त्वों का ख़ाका तैयार कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, हम यह हिसाब लगा सकते हैं कि एक व्यक्ति को जीवित बने रहने के लिए प्रति दिन कितनी कैलोरी आवश्यक थी, एक किलोग्राम अखरोट से कितनी कैलोरी हासिल की जाती थी और एक वर्ग किलोमीटर जंगल से कितने अखरोट एकत्र किए जा सकते थे। इन आँकड़ों के साथ हम उनके भोजन में अखरोट के सापेक्षिक महत्त्व के बारे में एक अक़्लमन्दीपूर्ण अनुमान लगा सकते हैं।

लेकिन अखरोट को वे भोगविलास समझते थे या नीरस भोजन समझते थे? क्या उनका विश्वास था कि अखरोट के वृक्षों में आत्माओं का वास था? क्या उन्हें अखरोट की पत्तियाँ सुन्दर लगती थीं? अगर कोई भोजन-खोजी लड़का किसी भोजन-खोजी लड़की को किसी रोमांटिक जगह पर ले जाना चाहता था, तो क्या अखरोट के दरख़्त की छाया पर्याप्त होती थी? विचारों, विश्वासों और अहसासों की दुनिया को समझना सहज ही मुश्किल काम है।

ज़्यादातर अध्येता इस बात पर सहमत हैं कि जीववादी (animistic) विश्वास प्राचीन भोजन-खोजियों में आमतौर पर मौजूद हुआ करते थे। जीववाद (animism, जो 'आत्मा' या 'जीव' के लिए लैटिन के –anima— से बना है) यह विश्वास है कि लगभग सर्वत्र, हर प्राणी, हर वनस्पति और हर कुदरती सृष्टि में चेतना और अनुभूतियाँ मौजूद होती हैं और वे सब सीधे-सीधे मनुष्य के साथ संवाद कर सकते हैं। इस तरह जीववादियों का यह विश्वास हो सकता है कि पहाड़ी के शिखर की विशाल चट्टान की आकांक्षाएँ और ज़रूरतें हैं। वह चट्टान लोगों के किसी कृत्य से ख़फ़ा हो सकती है और किन्हीं दूसरे कृत्यों से आनन्दित हो सकती है। वह चट्टान लोगों को डाँट सकती है या किसी अनुग्रह का

आग्रह कर सकती है। वहीं मनुष्य उस चट्टान को मनाने या धमकाने के लिए उसे सम्बोधित कर सकते हैं। सिर्फ़ चट्टान ही नहीं, बल्कि पहाड़ी की तलहटी का बलूत का वृक्ष भी एक सजीव सत्ता है, और उसी तरह पहाड़ी के नीचे बहती नदी, जंगल के बीच की खुली जगह में फूटता झरना, उसके इर्द-गिर्द उगी झाड़ियाँ, उस खुली जगह तक जाने का रास्ता, वहाँ का पानी पीते चूहे, लोमड़ियाँ और कौए भी सजीव सत्ताएँ हैं। जीववादी की दुनिया में चीज़ें और जीवित वस्तुएँ ही सजीव सत्ताएँ नहीं हैं। अशारीरिक सत्ताएँ भी हैं - मृतकों की आत्माएँ और शुभ और अशुभ सत्ताएँ, उस तरह की सत्ताएँ, जिन्हें हम आज दैत्यों, परियों और फ़रिश्तों की संज्ञा देते हैं।

जीववादी विश्वास करते हैं कि मनुष्यों और दूसरी सत्ताओं के बीच कोई अवरोध नहीं है। वे सब बोलने, गाने, नाचने और उत्सव मनाने के माध्यम से आपस में संवाद कर सकते हैं। कोई शिकारी हिरणों के झुण्ड को सम्बोधित कर उनमें से किसी एक से ख़ुद की बलि देने को कह सकता है। अगर शिकार क़ामयाब रहा, तो शिकारी मृत जानवर से क्षमा कर देने का अनुरोध कर सकता है। जब कोई बीमार पड़ता है, तो ओझा वह बीमारी पैदा करने वाली आत्मा से सम्पर्क कर उसे शान्त कर सकता है या उसे डरा कर भगा सकता है। अगर ज़रूरत पड़ी, तो ओझा दूसरी आत्माओं से मदद का आग्रह कर सकता है। सम्प्रेषण के इन सारे कृत्यों की विशेषता यह है कि सम्बोधित की गई सत्ताएँ स्थानीय सत्ताएँ होती हैं। वे सर्वत्र व्याप्त देवता नहीं हैं, बल्कि कोई ख़ास हिरण, कोई ख़ास वृक्ष, कोई ख़ास नदी या कोई ख़ास भूत होते हैं।

जिस तरह मनुष्य और दूसरी सत्ताओं के बीच कोई अवरोध नहीं है, उसी तरह उनके बीच कोई सख़्त क्रमबद्धता भी नहीं है। ग़ैर मानवीय सत्ताओं का अस्तित्व मनुष्यों की महज़ ज़रूरतें पूरी करने के लिए नहीं है। ना ही वे सर्वशक्तिमान देवता हैं, जो अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ दुनिया को चलाते हों। दुनिया ना तो मनुष्यों के इर्द-गिर्द घूमती है और ना ही किन्हीं अन्य सत्ताओं के समूह के इर्द-गिर्द घूमती है।

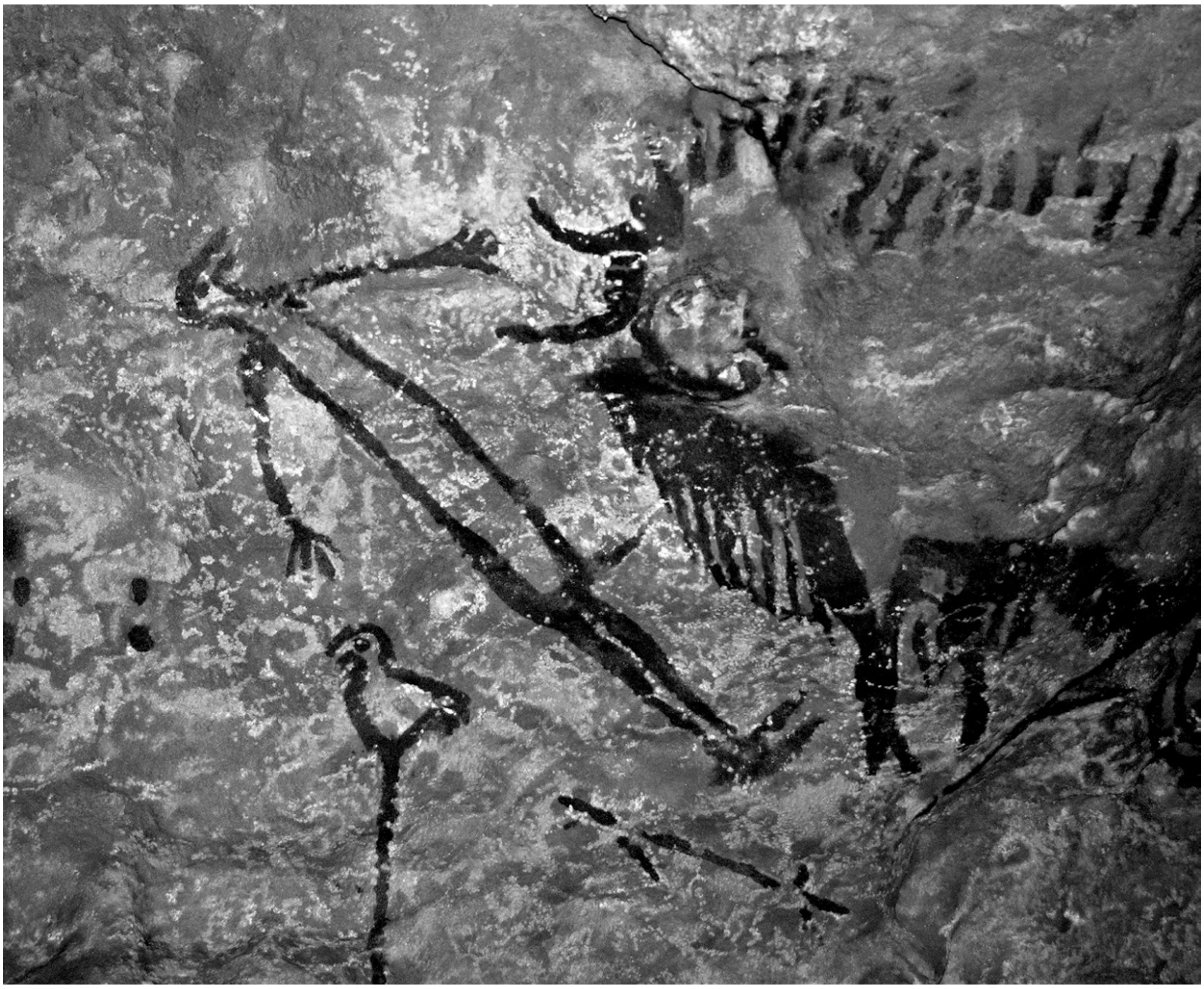

8. लैस्को गुफा का लगभग 15,000-20,000 साल पुराना एक चित्र। हम इसमें ठीक-ठीक क्या देखते हैं और चित्र का अर्थ क्या है? कुछ लोगों का कहना है कि इसमें हमें एक बाइसन द्वारा मारा जाता हुआ एक आदमी दिखाई देता है, जिसका सिर परिन्दे का है और उसका लिंग उत्तेजित है। आदमी के नीचे एक और पक्षी है, जो उस आदमी की मौत के वक़्त उसकी देह से निकली आत्मा का प्रतीक हो सकता है। अगर ऐसा है, तो यह तसवीर एक नीरस शिकार दुर्घटना का नहीं, बल्कि इस दुनिया से अगली दुनिया में जाते गलियारे का चित्रण करती है, लेकिन हमारे पास यह जानने का कोई तरीक़ा नहीं है कि इनमें से कोई भी अनुमान सही है या नहीं। यह एक ग़ोर्शाख़ परीक्षण (Rorschach test) है, जो आधुनिक अध्येताओं की पूर्व कल्पनाओं के बारे में ज़्यादा और प्राचीन भोजन-खोजियों के विश्वासों के बारे में बहुत कम बताता है।

जीववाद कोई विशिष्ट धर्म नहीं है। यह नितान्त अलग-अलग तरह के हज़ारों धर्मों, उपासना पद्धतियों और आस्थाओं का जातिवाचक (जेनेरिक) नाम है। जो चीज़ इन सब को 'जीववादी' बनाती है, वह है जगत के प्रति और उसमें मनुष्य की जगह के प्रति एक साझा दृष्टिकोण। यह कहना कि प्राचीन भोजन-खोजी शायद जीववादी थे, यह कहने जैसा है कि पूर्वआधुनिक कृषिवादी ज़्यादातर ईश्वरवादी थे। ईश्वरवाद (जो 'ईश्वर' के लिए ग्रीक भाषा के 'थेओस' से बना है) यह दृष्टिकोण है कि विश्व की व्यवस्था मनुष्यों और देवताओं नामक अलौकिक सत्ताओं के एक छोटे-से समूह के बीच के क्रमबद्ध (हायरार्किकल) सम्बन्ध पर आधारित है। यह कहना निश्चय ही सही है कि पूर्वआधुनिक कृषक ईश्वरवाद की ओर उन्मुख थे, लेकिन यह बात हमें कोई विस्तृत ब्यौरा नहीं देती। 'ईश्वरवादियों' का जातिवाचक सरनामा अठारहवीं सदी के पोलैंड के यहूदी रब्बियों, सत्रहवीं सदी के मैसाचुसेट्स की चुड़ैलों को जलाने वाले शुद्धतावादियों, मैक्सिको के

पन्द्रहवीं सदी के एज़्टेक पुरोहितों, ईरान के बारहवीं सदी के सूफ़ी रहस्यवादियों, दसवीं सदी के वाइकिंग योद्धाओं, दूसरी सदी के रोमन सैनिकों और पहली सदी के चीनी नौकरशाहों तक को अपने में समेटता है। इनमें से प्रत्येक दूसरों की आस्थाओं और उपासना पद्धतियों को विचित्र और विधर्मपूर्ण मानता था। 'जीववादी' भोजन-खोजियों के समूहों की आस्थाओं और उपासना-पद्धतियों के बीच का फ़र्क भी शायद बहुत बड़ा था। मुमकिन है कि उनके धार्मिक अनुभव अशान्त हों और विवादों, सुधारों तथा क्रान्तियों से भरे रहे हों।

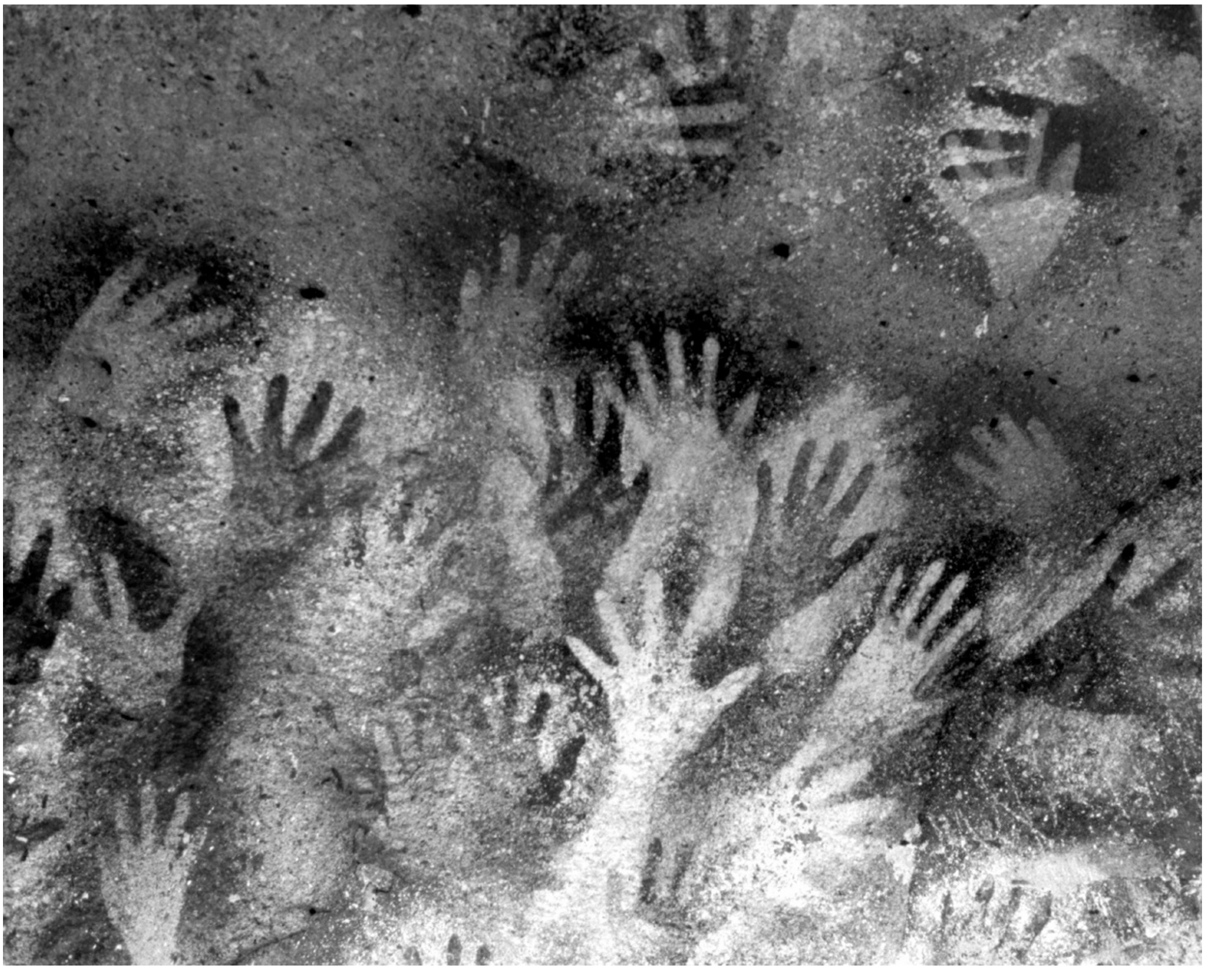

9. शिकारी-भोजन-संग्रहकर्ताओं ने हाथ के ये छापे लगभग 9,000 साल पहले अर्जेंटीना की 'हैंड्स केव' में बनाए थे। लगता है जैसे ये बहुत पहले मर चुके हाथ चट्टानों के भीतर से हमारी ओर बढ़ रहे हैं। यह प्राचीन भोजन-खोजी दुनिया का एक सबसे मार्मिक अवशेष है - लेकिन इसका क्या अर्थ है यह कोई नहीं जानता।

लेकिन ये सचेत सामान्यीकरण उसी हद तक सही हैं, जिस हद तक हम अनुमान कर सकते हैं। प्राचीन आध्यात्मिकता की तफ़सीलों को बयान करने की कोई भी कोशिश बेहद अनुमानपरक है, क्योंकि ऐसा लगभग कोई प्रमाण नहीं है, जिसका हम सहारा ले सकें और जो भी थोड़े-से साक्ष्य हमारे पास हैं - मुट्ठी भर वस्तुएँ और गुफा चित्र - उनकी व्याख्या हज़ारों तरह से की जा सकती है। भोजन-खोजी किस तरह महसूस करते थे, इसे जानने के बारे में दावा करने वाले अध्येताओं के अनुमान प्रस्तर युग के धर्मों से ज़्यादा स्वयं इन अध्येताओं के पूर्वाग्रहों पर रोशनी डालते हैं।

मक़बरों के अवशेषों, गुफा चित्रों और हड्डी की मूर्तियों के आधार पर तिल का ताड़ बनाने के बजाय साफ़ तौर पर यह स्वीकार करना बेहतर होगा कि प्राचीन भोजन-खोजियों के धर्मों के बारे में हमारे पास बेहद धुँधली धारणाएँ ही हैं। हम कल्पना कर लेते हैं कि वे जीववादी थे, लेकिन इससे कोई ख़ास जानकारी नहीं मिलती। हम नहीं जानते कि वे कौन-सी आत्माओं की प्रार्थना करते थे, कौन-से त्यौहार मनाते थे या किन चीज़ों को वे वर्जित मानते थे। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हम नहीं जानते कि वे कौन-से क़िस्से कहते थे। मानव इतिहास की हमारी समझ में यह एक सबसे बड़ा छेद है।

भोजन-खोजियों की समाजिक-राजनैतिक दुनिया एक और इलाक़ा है, जिसके बारे में हम लगभग कुछ भी नहीं जानते। जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है, अध्येता मूलभूत तथ्यों तक पर एकमत होने की स्थिति में नहीं हैं, जैसे कि निजी सम्पत्ति का अस्तित्व, एकल परिवार और एकविवाहवादी सम्बन्ध। सम्भव है कि अलग-अलग समूहों की अलग-अलग संरचनाएँ रही हों। कुछ क्रमबद्धता में विश्वास करने वाले, सख़्त और हिंसक और कठोरतम चिंपांज़ी समूह जैसे रहे हो सकते हैं, जबकि दूसरे स्थिर चित्त, अमन पसन्द और कामुक बोनोबो के झुण्ड जैसे रहे हों।

सुंगीर, रूस में पुरातत्त्वविदां ने 1955 में मैमथ (विशाल हाथियों) का शिकार करने वाली एक संस्कृति से जुड़े 30,000 साल पुराने क़ब्रिस्तान की खोज की थी। एक क़ब्र में उन्हें पचास साल के एक आदमी का कंकाल मिला था, जो मैमथ के दाँतों से बने मनकों की लड़ियों से ढँका हुआ था। इन लड़ियों में पिरोए हुए कुल मनकों की संख्या 3,000 थी। इस मृतक के सिर पर लोमड़ी के दाँतों से सज्जित एक टोप था और उसकी कलाइयों पर हाथीदाँत के पच्चीस कंगन थे। उसी जगह की अन्य क़ब्रों में बहुत थोड़ी-सी चीज़ें थीं। अध्येताओं ने इससे निष्कर्ष निकाला कि सुंगीर के मैमथ के शिकारी क्रमबद्धता में विश्वास रखने वाले समाज में रहते थे और वह मृतक सम्भवतः उस समूह या कई समूहों से मिलकर बनी समूची जनजाति का मुखिया रहा होगा। इसकी सम्भावना कम है कि एक समूह के कुछ दर्जन सदस्यों ने अपने स्तर पर क़ब्र की इतनी सारी चीज़ें तैयार की हों।

इसके बाद पुरातत्त्वविदों ने एक और दिलचस्प मक़बरे का पता लगाया। इसमें दो कंकाल थे, जो आमने-सामने दफ़न थे। एक कंकाल लगभग बारह या तेरह साल के लड़के का था, दूसरा नौ या दस साल की एक लड़की का था। लड़का हाथीदाँत के 5,000 मनकों से ढँका था। उसने लोमड़ी के दाँत वाला टोप और लोमड़ी के 250 दाँतों वाला एक बैल्ट पहन रखा था (इतने दाँतों के लिए कम से कम साठ लोमड़ियों के दाँत निकाले गए होंगे)। लड़की हाथीदाँत के 5,250 मनकों से सज्जित थी। दोनों बच्चों के चारों ओर छोटी मूर्तियाँ और हाथीदाँत की विभिन्न वस्तुएँ थीं। हाथीदाँत का एक मनका तैयार करने में एक दक्ष शिल्पी को शायद पैंतालीस मिनट लगते होंगे। दूसरे शब्दों में, बाक़ी चीज़ों को छोड़ ही दें, लेकिन उन दोनों बच्चों को जिन 10,000 हाथीदाँत के मनकों ने ढँक रखा था, उन्हें तैयार करने में 7,500 घण्टे की बारीक कारीगरी की दरकार रही होगी, अर्थात किसी अनुभवी शिल्पी का तीन साल से ऊपर का श्रम!

इसकी कोई सम्भावना प्रतीत नहीं होती कि इतनी कम उम्र में सुंगीर के बच्चों ने अपने आप को मुखिया या मैमथ का शिकारी साबित कर दिखाया हो। केवल सांस्कृतिक

विश्वास ही इस बात को स्पष्ट कर सकते हैं कि उन्हें इतने भव्य ढंग से क्यों दफ़नाया गया था। एक अनुमान यह है कि उन्हें यह हैसियत अपने माता-पिता से मिली होगी। वे शायद मुखिया के बच्चे थे, एक ऐसी संस्कृति में जो या तो परिवार के करिश्मे में विश्वास करती थी या उत्तराधिकार के सख़्त नियमों में। एक दूसरे अनुमान के मुताबिक़, इन बच्चों को इनके जन्म के समय किन्हीं बहुत पहले मर चुके लोगों की आत्माओं के रूप में देखा गया होगा। एक तीसरा अनुमान कहता है कि इन बच्चों को दफ़नाए जाने का यह संस्कार जीवन में उनकी हैसियत के बजाय उनके मरने के ढंग को प्रतिबिम्बित करता है। उनकी अनुष्ठानपूर्वक बलि दी गई होगी - शायद मुखिया के दफ़नाए जाने के अनुष्ठान के अंग के रूप में - और फिर उन्हें औपचारिक और प्रभावशाली उत्सव के साथ दफ़नाया गया होगा।

सही जवाब जो भी हो, सुंगीर के ये बच्चे इस बात के श्रेष्ठ साक्ष्यों में से एक हैं कि 30,000 साल पहले सेपियन्स ऐसी सामाजिक-राजनैतिक संहिताओं को आविष्कृत कर सके थे, जो हमारे डीएनए के हुक्म और अन्य मानव और प्राणी प्रजातियों की आचरण सम्बन्धी प्रतिमानों से बहुत आगे निकले हुए थे।

शान्ति या युद्ध?

अन्त में भोजन-खोजी समाजों में युद्ध की भूमिका का तीखा सवाल आता है। कुछ अध्येता शिकारी-संग्रहकर्ता समाजों की शान्तिमय स्वर्ग के रूप में कल्पना करते हैं और तर्क देते हैं कि युद्ध और हिंसा की शुरुआत कृषि क्रान्ति के बाद ही हुई, जब लोगों ने निजी सम्पत्ति को संचित करना शुरू कर दिया। दूसरे अध्येताओं का मानना है कि प्राचीन भोजन-खोजियों की दुनिया असाधारण रूप से क्रूर और हिंसक थी। दोनों ही तरह के विचार हवाई क़िले हैं, जो पुरातात्त्विक अवशेषों और आज के समय के भोजन-खोजियों के मानव वैज्ञानिक पर्यवेक्षणों के बहुत ही कमज़ोर क़िस्म के तन्तुओं के सहारे ज़मीनी वास्तविकता से जुड़े हैं।

मानव वैज्ञानिक साक्ष्य लुभावना, किन्तु बेहद उलझा हुआ है। भोजन-खोजी आज मुख्यतः आर्कटिक या कालाहारी जैसे अलग-थलग और ना रहने योग्य इलाक़ों में रहते हैं, जहाँ आबादी का घनत्व बहुत कम है और दूसरे लोगों से लड़ने के अवसर बहुत सीमित हैं। इसके अलावा, हाल की पीढ़ियों में भोजन-खोजी उत्तरोत्तर आधुनिक राज्यों की सत्ता के अधीन आते गए हैं, जिसने बड़े पैमाने की तकरारों के विस्फोट को रोक रखा है। यूरोपीय अध्येताओं के पास स्वतन्त्र भोजन-खोजियों की अपेक्षाकृत घनी आबादियों का पर्यवेक्षण करने के सिर्फ़ दो अवसर रहे हैं : उन्नीसवीं सदी में उत्तरी अमेरिका के उत्तर-पश्चिम में और उन्नीसवीं सदी तथा आरम्भिक बीसवीं सदी में उत्तरी ऑस्ट्रेलिया में। अमेरिंनडियन और ऑस्ट्रेलियाई मूल निवासी दोनों संस्कृतियों में बार-बार सशस्त्र टकराव होते रहे हैं, हालाँकि यह बहस करने योग्य है कि यह चीज़ 'कालातीत' परिस्थिति को दर्शाती है या यूरोपीय साम्राज्यवाद के प्रभाव को।

पुरातात्त्विक निष्कर्ष अपर्याप्त भी हैं और अस्पष्ट भी। ऐसा कोई भी युद्ध, जो दसियों हज़ार साल पहले हुआ था, उसके कौन से स्पष्ट संकेत देने वाले सुराग़ बचे रहे होंगे? उस

ज़माने में कोई क़िलेबन्दियाँ या दीवारें नहीं हुआ करती थीं, कोई तोपें या तलवारें और ढालें भी नहीं हुआ करती थीं। मुमकिन है कि युद्ध में प्राचीन भाले का इस्तेमाल किया गया हो, लेकिन वह तो शिकार के लिए भी इस्तेमाल किया गया हो सकता था। हड्डी का टूटा होना युद्ध के घाव या किसी दुर्घटना दोनों की ओर संकेत कर सकता है। ना ही किसी प्राचीन कंकाल में हड्डी के टूटने या कटे होने के निशानों का अभाव इस बात का निर्णायक सबूत हो सकता है कि जिस व्यक्ति का वह कंकाल है, वह अकाल मौत का शिकार नहीं हुआ होगा। मौत कोमल ऊतकों के घाव से भी हुई हो सकती है, जो हड्डियों पर कोई निशान नहीं छोड़ती। इससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण यह है कि पूर्व-औद्यागिक युद्ध के दौरान 90 प्रतिशत से भी ज़्यादा लोग हथियारों के बजाय भुखमरी, ठण्ड और बीमारियों का शिकार होकर मरे थे। कल्पना करिए कि 30,000 साल पहले एक जनजाति ने अपने पड़ोसी को हरा कर उसे भोजन-आखेट के वांछित मैदानों से खदेड़ दिया। इस निर्णायक लड़ाई में पराजित जनजाति के दस सदस्य मारे गए। अगले साल, पराजित जनजाति के सौ और सदस्य भूख, ठण्ड और बीमारियों की वजह से मर गए। इन 110 कंकालों के सम्पर्क में आए पुरातत्त्वविद बहुत आसानी से यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि इनमें से ज़्यादातर किसी प्राकृतिक आपदा के शिकार हुए होंगे। हम यह कैसे कह सकेंगे कि वे सब एक निर्मम युद्ध के शिकार हुए थे?

इस तरह पर्याप्त सचेत होकर हम अब पुरातात्त्विक निष्कर्षों की ओर रुख़ कर सकते हैं। पुर्तगाल में कृषि क्रान्ति से ठीक पहले के कालखण्ड के 400 कंकालों का एक सर्वेक्षण किया गया था। इनमें से केवल दो कंकाल ही ऐसे थे, जो हिंसा के निशान दर्शाते थे। इज़रायल में इसी कालखण्ड के 400 कंकालों के ऐसे ही एक सर्वेक्षण ने मात्र एक खोपड़ी में ऐसी एक दरार का पता लगाया, जिसे मानवीय हिंसा से जोड़कर देखा जा सकता था। डैन्यूब घाटी में पूर्व-कृषि युग के बहुत-से स्थलों से मिले 400 कंकालों के एक तीसरे सर्वेक्षण में अठारह कंकालों में हिंसा के साक्ष्य पाए गए। 400 में से अठारह की संख्या बहुत बड़ी नहीं लग सकती, लेकिन यह एक बड़ा प्रतिशत है। अगर वे अठारह के अठारह हिंसा का शिकार होकर मरे थे, तो इसका यह अर्थ होगा कि डैन्यूब घाटी में 4.5 प्रतिशत मौतें मानवीय हिंसा की वजह से हुई थीं। आज, युद्ध और अपराध दोनों को मिलाकर वैश्विक औसत सिर्फ़ 1.5 है। बीसवीं सदी के दौरान सिर्फ़ 5 प्रतिशत इंसानी मौतें मानवीय हिंसा की वजह से हुई थीं - और ये उस सदी की बात है, जिसमें इतिहास के सबसे रक्तरंजित युद्ध और भीषण नरसंहार हुए। अगर यह रहस्योद्घाटन सामान्य है, तो इसका मतलब है कि प्राचीन डैन्यूब घाटी बीसवीं सदी जितनी ही हिंसक थी।*

डैन्यूब घाटी के अवसादजनक निष्कर्षों को दूसरे इलाक़ों से हासिल उतने ही निराशाजनक निष्कर्षों की शृंखला से समर्थन मिलता है। सूडान के जब्ल सहाबा में 59 कंकालों वाला एक 12,000 साल पुराना क़ब्रिस्तान मिला था। तीर के फलक या भाले की नोक चौबीस यानी 40 प्रतिशत कंकालों की हड्डियों में चुभे थे या उनके क़रीब पड़े हुए थे। एक स्त्री के कंकाल में घाव के बारह निशान थे। बावेरिया की ऑफ़्नेट गुफा में पुरातत्त्वविदों को अड़तीस भोजन-खोजियों के अवशेष मिले, जिनमें मुख्यतः औरतें और बच्चे शामिल थे, जिन्हें दो क़ब्रों में फेंक दिया गया था। आधे कंकालों, जिनमें बच्चों और शिशुओं के कंकाल शामिल थे, पर डण्डे और चाकुओं जैसे इंसानी हथियारों की चोट के

निशान थे। वयस्क पुरुषों के कुछ कंकालों पर हिंसा के निकृष्टतम निशान थे। पूरी सम्भावना है कि ऑफ़्नेट में भोजन-खोजियों के समूचे दल का संहार कर दिया गया हो।

इनमें से कौन प्राचीन भोजन-खोजियों की दुनिया का बेहतर निरूपण करते हैं : इज़रायल और पुर्तगाल के शान्तिप्रिय कंकाल, या जब्ल सहाबा और ऑफ़्नेट के क़साई? जवाब है कि दोनों ही नहीं। जिस तरह भोजन-खोजी धर्मों और सामाजिक संरचनाओं की व्यापक विविधता को दर्शाते हैं, उसी तरह वे शायद हिंसा की दरों की विविधता का भी प्रदर्शन करते हैं। जहाँ कुछ इलाक़ों और कुछ कालखण्डों में शान्ति और अक्षोभ का वातावरण रहा होगा, वहीं दूसरे इलाक़े और दूसरे कालखण्ड प्रचण्ड हिंसा से विदीर्ण रहे होंगे।

ख़ामोशी का पर्दा

अगर प्राचीन भोजन-खोजियों की ज़िन्दगी के बड़े हिस्से के सिलसिले को फिर से गढ़ना मुश्किल है, तो विशेष घटनाएँ व्यापक तौर पर ऐसी हैं, जिनका पता नहीं लगाया जा सकता। जब सेपियन्स के किसी समूह ने पहली बार निएंडरथल्स की बसावट वाली घाटी में प्रवेश किया होगा, तो मुमकिन है कि बाद के वर्षों में असाधारण ऐतिहासिक तमाशा देखने को मिला हो। अगर ऐसा कोई टकराव हुआ होगा, तो दुर्भाग्य से उसका कोई भी प्रमाण बचा नहीं रहा होगा, सिवा, बहुत से बहुत, कुछ जीवाश्मीकृत अस्थियों और पत्थर के उन मुट्ठी भर औज़ारों के, जो सघनतम शोधपरक जिज्ञासाओं के समक्ष ख़ामोश बने रहते हैं। हम उनसे इंसानी शरीर रचना, इंसानी तकनीक, इंसानी भोजन और शायद इंसानी सामाजिक संरचना के बारे में कुछ सूचनाएँ निचोड़ सकते हैं, लेकिन वे पड़ोसी सेपियन्स समूहों के साथ विकसित गठबन्धन, इस गठबन्धन को आशीर्वाद देने वाली मृतकों की आत्माओं या आत्माओं के आशीर्वाद को हासिल करने के लिए ओझा को गुपचुप दिए गए हाथीदाँत के मनकों के बारे में कुछ भी उजागर नहीं करते। ख़ामोशी का यह पर्दा इतिहास के दसियों हज़ारों साल तक पड़ा रहता है। मुमकिन है कि इन लम्बी सहस्राब्दियों के दौरान युद्ध और क्रान्तियाँ हुई हों, उल्लासमय धार्मिक आन्दोलन हुए हों, गहन दार्शनिक सिद्धान्त पैदा हुए हों, अतुलनीय कलाकृतियों की रचना हुई हो। भोजन-खोजियों के सर्वत्र विजय हासिल करने वाले अपने नेपोलियन रहे हो सकते हैं, जो लक्ज़मबर्ग से आधे आकार के साम्राज्य पर राज करते रहे हों, प्रतिभाशाली बीथोवन हुए हों, जिनके पास भले ही सिम्फ़नी ऑपेरा का अभाव रहा हो, लेकिन जो अपनी बाँसुरियों की धुन से लोगों को द्रवित कर देते हों और मोहम्मद जैसे पैग़म्बर रहे हों, जिन्होंने सर्वव्यापी रचयिता खुदा की ज़बान के बजाय स्थानीय बलूत के वृक्ष की वाणी को प्रकट किया हो, लेकिन ये सब महज़ अनुमान हैं। ख़ामोशी का पर्दा इतना मोटा है कि हम इन चीज़ों के घटित होने के बारे में सुनिश्चित नहीं हो सकते - उनका विस्तार से वर्णन करना तो दूर की बात है।

अध्येता उन्हीं प्रश्नों को पूछने की ओर प्रवृत्त होते हैं, जिनके उत्तर की वे तर्कसंगत ढंग से अपेक्षा कर सकते हैं। शोध के जो साधन अभी तक अनुपलब्ध हैं,उनकी जब तक खोज नहीं कर ली जाती, तब तक हम शायद कभी नहीं जान पाएँगे कि प्राचीन भोजन-

खोजी किन चीज़ों में विश्वास करते थे या उन्होंने किस तरह के राजनैतिक नाटकों को अनुभव किया था। तब भी ऐसे प्रश्न पूछना बहुत ज़रूरी है जिनके कोई उत्तर उपलब्ध नहीं हैं, अन्यथा हम मानव-इतिहास के 70,000 सालों में से 60,000 सालों को इस बहाने ख़ारिज़ कर देने की ओर प्रवृत्त होंगे कि “जो लोग उस युग में रहते थे, उन्होंने कोई महत्त्व का काम नहीं किया था”।

वास्तविकता यह है कि उन्होंने बहुत सारे महत्त्वपूर्ण काम किए थे। ख़ास तौर से उन्होंने हमारे चारों ओर की दुनिया को उससे कहीं ज़्यादा बड़े पैमाने पर आकार दिया था, जितने का अहसास ज़्यादातर लोगों को है। लंबी दूरी की पैदल यात्रा करके साइबेरियाई टुंड्रा, मध्य ऑस्ट्रेलियाई रेगिस्तानों और अमेज़ोनियाई वर्षा वनों में गए लोगों का ऐसा विश्वास है कि उन्होंने ऐसे बेदाग़ क्षेत्रों में प्रवेश किया है, जो मनुष्य के हाथों से लगभग अछूते रहे हैं, लेकिन यह एक भ्रम है। भोजन-खोजी हमसे पहले वहाँ थे और उन्होंने सघनतम जंगलों और नितान्त वीरान बीहड़ों में भी ज़बरदस्त परिवर्तनों को अंज़ाम दिया था। पुस्तक का अगला अध्याय इस बात को स्पष्ट करता है कि किस तरह भोजन-खोजने वालों ने प्रथम कृषि ग्राम की स्थापना के बहुत पहले हमारे ग्रह के पर्यावरण को नया आकार दिया था। कहानी कहने वाले सेपियन्स के यायावर समूह प्राणियों के साम्राज्य की सबसे महत्त्वपूर्ण और सबसे ज़्यादा विनाशकारी शक्ति थे।

---

[*] ‘सम्भावनाओं का क्षितिज’ का अर्थ है विश्वासों, रीति-रिवाज़ों और अनुभवों का वह समूचा परिदृश्य, जो किसी समाज विशेष के समक्ष, उसकी पारिस्थितिकीय, प्रौद्योगिकीय और सांस्कृतिक सीमाओं के मद्देनज़र खुला होता है। हर समाज और हर व्यक्ति सामान्यतः सम्भावनाओं के अपने क्षितिज के एक बहुत छोटे-से अंश को टटोलता है।

[*] तर्क दिया जा सकता है कि सभी अठारह डैन्यूबियाई उस हिंसा की वजह से नहीं मरे थे, जिसके निशान उनके अवशेषों पर देखे जा सकते हैं। कुछ सिर्फ़ घायल हुए थे, लेकिन यह कोमल ऊतकों के ज़ख़्मों और युद्ध के साथ जुड़ी अदृश्य आपदाओं से हुई मौतों से प्रति सन्तुलित हो जाता है।

4

बाढ़

संज्ञानात्मक क्रान्ति के पहले, सारी प्रजातियों के मानव पूरी तरह से अफ़्रो-एशियाई भू-भाग में रहा करते थे। सही है कि वे पानी की संक्षिप्त दूरियों को तैर कर या कामचलाऊ बेड़ों के माध्यम से इन दूरियों को पार कर कुछ द्वीपों पर जा बसे थे। उदाहरण के लिए, फ़्लोरेस को कम से कम 850,000 साल पहले उपनिवेशीकृत कर लिया गया था। तब भी वे समुद्र में बहुत दूर जाने का जोख़िम उठाने में असमर्थ थे और उनमें से कोई भी अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया या मैडागास्कर, न्यूज़ीलैंड और हवाई जैसे सुदूर द्वीपों तक नहीं पहुँच सके थे।

समुद्री अवरोध ने सिर्फ़ मानवों को ही नहीं, बल्कि दूसरे बहुत-से अफ़्रो-एशियाई प्राणियों और वनस्पतियों को भी इस 'बाहरी दुनिया' में जाने से रोका। नतीज़तन, ऑस्ट्रेलिया और मैडागास्कर जैसे भू-भागों के जीव लाखों लाख वर्षों तक अलग-थलग विकसित होते रहे और अपने सुदूर अफ़्रो-एशियाई रिश्तेदारों से भिन्न आकार और स्वशव हासिल करते रहे। पृथ्वी ग्रह अनेक भिन्न-भिन्न पारिस्थितिक तन्त्रें (इको-सिस्टम्स) में विभाजित था, जिनमें से प्रत्येक तन्त्र प्राणियों और वनस्पतियों के अनूठे समागम से निर्मित था। होमो सेपियन्स इस जैविक अतिरेक का समापन करने वाला था।

संज्ञानात्मक क्रान्ति के बाद सेपियन्स ने अफ़्रो-एशिया से बाहर निकलने और बाहरी दुनिया में बसने के लिए ज़रूरी तकनीक, संगठनात्मक दक्षताएँ और शायद दूरदर्शिता भी हासिल कर ली। लगभग 45,000 साल पहले ऑस्ट्रेलिया का उपनिवेशीकरण उनकी पहली उपलब्धि थी। इस साहसिक करतब को स्पष्ट करने में विशेषज्ञों को बहुत मुश्किल पेश आती है। ऑस्ट्रेलिया पहुँचने के लिए मानवों को कई समुद्री चैनलों को पार करना ज़रूरी था, जिनमें से कुछ सौ किलोमीटर से ज़्यादा चौड़े थे और वहाँ पहुँचने पर उन्हें ख़ुद को लगभग रातों-रात नए पारिस्थितिकीय तन्त्र के अनुरूप ढालना ज़रूरी था।

सबसे ज़्यादा तर्कसंगत परिकल्पना कहती है कि इंडोनेशियाई द्वीपसमूह (जल ग्रीवाओं के माध्यम से एशिया और एक दूसरे से जुदा द्वीपों का एक समूह) में रह रहे सेपियन्स ने लगभग 45,000 साल पहले समुद्री यात्रा में दक्ष पहली मण्डलियाँ विकसित कर ली थीं। उन्होंने समुद्री जहाज़ों को संचालित करना सीख लिया था और वे लम्बी समुद्री दूरियों के मछुआरे, व्यापारी और खोजी बन चुके थे। इस चीज़ ने मानवीय क्षमताओं और जीवन-शैलियों में अपूर्व रूपान्तरण घटित किया होगा। समुद्र में गए प्रत्येक अन्य स्तनपायी जीव - सील मछलियों, दरियाई घोड़ों, डॉल्फ़िनों - को विशिष्ट अंग और एक जलस्फूर्त (हाइड्रोडायनामिक) काया विकसित करने के लिए विकास की युगों लम्बी प्रक्रिया से गुज़रना पड़ा था। अफ़्रीकी मैदानों में रहे वानरों के वंशज इंडोनेशिया के इन सेपियन्स को प्रशान्त महासागर का यात्री बनने के लिए ना तो अपने शरीर में मछलियों के पंख विकसित करने पड़े और ना ही उन्हें व्हेल मछली की तरह सिर के ऊपर अपनी नाक के स्थानान्तरित होने का इन्तज़ार करना पड़ा। इसके बजाय, उन्होंने नावें तैयार कीं और उनको चलाना सीख लिया। इन कौशलों ने उन्हें ऑस्ट्रेलिया पहुँचने और वहाँ बस जाने के सक्षम बनाया।

यह सही है कि पुरातत्त्वविद अभी कम से कम 45,000 साल पहले की नौकाओं, पतवारों या मछुआरे ग्रामों का पता नहीं लगा सके हैं (इनकी खोज मुश्किल भी होगी क्योंकि समुद्र के बढ़ते हुए स्तर ने प्राचीन इंडोनेशियाई तटीय रेखा को महासागर में सैकड़ों मीटर गहरे में दफ़ना दिया है), तब भी इस परिकल्पना की पुष्टि करने वाले मज़बूत परिस्थितिजन्य साक्ष्य हैं, ख़ास तौर से यह तथ्य कि ऑस्ट्रेलिया में बसने के बाद के हज़ारों वर्षों के दौरान सेपियन्स ने उसके उत्तर में बड़ी संख्या में छोटे और अलग-थलग पड़े द्वीपों में अपनी बस्तियाँ बसा ली थीं। इनमें से कुछ, जैसे कि बुका और मानुस, जो निकटतम भू-भाग से 200 किलोमीटर लम्बे समुद्री हिस्से से कटे थे। इस बात पर विश्वास करना मुश्किल है कि परिष्कृत जहाज़ों और नौकायन की दक्षता के बिना कोई मानुस तक पहुँच सका होगा और वहाँ बस्ती बसा सका होगा। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि इनमें से कुछ द्वीपों, जैसे कि न्यू आयलैंड और न्यू ब्रिटेन के बीच नियमित समुद्री व्यापार के पुष्ट प्रमाण उपलब्ध हैं।

शुरुआती मनुष्यों द्वारा ऑस्ट्रेलिया की यात्रा इतिहास की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटनाओं में एक है, कम से कम उतनी ही महत्त्वपूर्ण, जितनी कोलम्बस की अमेरिका यात्रा या अपोलो II का चन्द्र अभियान है। यह पहली बार था, जब कोई मनुष्य ना केवल अफ़्रो-एशियाई पारिस्थितिकीय तन्त्र को छोड़ने में कामयाब हो सका था, बल्कि पहली बार पृथ्वी का कोई स्तनपायी जीव अफ़्रो-एशिया को पार कर ऑस्ट्रेलिया जा सका था। इससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण वह था, जो मानवीय अग्रदूतों ने इस नई दुनिया में किया। जिस क्षण पहले आखेटक-संग्रहकर्ता ने ऑस्ट्रेलियाई समुद्र तट पर क़दम रखा, वह ठीक वह क्षण था, जब होमो सेपियन्स एक विशिष्ट भू-भाग में भोजन-शृंखला के सबसे ऊँचे पायदान पर पहुँच गया और उसके बाद से पृथ्वी ग्रह के इतिहास की सबसे घातक प्रजाति बन गया।

उसके पहले तक मनुष्यों ने कुछ नवाचारी अनुकूलनों और आचरणों का परिचय दिया था, लेकिन उनके पर्यावरण पर उनका प्रभाव नहीं के बराबर रहा था। उन्होंने

विभिन्न तरह के आवास-स्थलों पर जाकर बसने और उनके साथ तालमेल बैठाने में असाधारण कामयाबी का परिचय दिया था, लेकिन यह उन्होंने इन आवास-स्थलों में किसी तरह का ज़बरदस्त बदलाव लाए बग़ैर किया था। ऑस्ट्रेलिया में बसने वालों ने या ज़्यादा सटीक ढंग से कहें, तो उसे जीतने वालों ने महज़ अपना अनुकूलन नहीं किया, बल्कि उन्होंने ऑस्ट्रेलियाई पारिस्थितिकीय तन्त्र को इस क़दर बदल डाला कि वह पहचान के परे निकल गया।

रेतीले ऑस्ट्रेलियाई समुद्र तट पर उभरे मनुष्य के पहले पैर के निशान को समुद्र की लहरों ने तत्काल मिटा दिया, लेकिन जब ये आक्रान्ता अन्दरूनी भू-भाग की ओर बढ़े, तो उन्होंने अलग ही तरह के पैर का निशान छोड़ा, ऐसा जो कभी मिटने वाला नहीं था। वे जैसे-जैसे आगे बढ़ते गए, उनका सामना अज्ञात जन्तुओं के विचित्र संसार से होता गया, जिनमें 200 किलोग्राम का दो मीटर लम्बा कंगारू और आज के समय के बाघ जितना विशाल, बच्चे की थैली से युक्त वह शेर (मार्सूपियल लॉयन) शामिल था, जो उस महाद्वीप का सबसे बड़ा परभक्षी हुआ करता था। पेड़ों के बीच सरसराते कोआला (एक तरह के भालू), जो इतने बड़े थे कि उन्हें गले लगाकर प्यार नहीं किया जा सकता था, ना ही उन्हें क्यूट कहा जा सकता था और ज़मीन पर दौड़ते शुतुरमुर्ग से दुगुने आकार के ना उड़ सकने वाले पक्षी। झाड़ियों के बीच रेंगते ड्रैगन-नुमा गिरगिट और पाँच मीटर लम्बे साँप। जंगलों में भटकते ढाई टन वज़न के वोम्बेट, डाइप्रोटोडॉन। पक्षियों और रेंगने वाले जन्तुओं को छोड़कर ये सारे जानवर मार्सूपियल थे। कंगारुओं की तरह वे छोटे-छोटे, असहाय, भ्रूणनुमा बच्चों को जन्म देते थे और फिर उन्हें अपने पेट की थैलियों में रखकर दूध पिलाते हुए उनका पोषण करते थे। मार्सूपियल स्तनधारी अफ़्रीकी और एशियाई महाद्वीप में लगभग अज्ञात थे, लेकिन ऑस्ट्रेलिया में उनकी उपस्थिति केन्द्रीय थी।

कुछ हज़ार सालों के भीतर लगभग ये सारे विशालकाय जन्तु ग़ायब हो गए। पचास किलोग्राम या उससे ज़्यादा वज़न वाली चौबीस ऑस्ट्रेलियाई पशु प्रजातियों में से तेईस प्रजातियाँ लुप्त हो गईं। बड़ी तादाद में छोटी प्रजातियाँ भी ग़ायब हो गई। समूचे ऑस्ट्रेलियाई पारिस्थितिकीय तन्त्र के भीतर की खाद्य-शृंखला टूट गई और उसने नई शक्ल ले ली। लाखों वर्षों के ऑस्ट्रेलियाई पारिस्थितिकीय तन्त्र में आया यह सबसे बड़ा रूपान्तरण था। क्या यह सारी ग़लती होमो सेपियन्स की थी?

अभियुक्त के तौर पर अपराधी

कुछ अध्येता हमारी प्रजाति को निर्दोष साबित करते हुए सारा आरोप जलवायु (जो इस तरह के मामलों में बलि का बकरा होती है) के विचलनों के मत्थे मढ़ते हैं। तब भी इस बात पर विश्वास करना मुश्किल है कि होमो सेपियन्स पूरी तरह निर्दोष था। तीन ऐसे साक्ष्य हैं, जो जलवायु के बहाने को कमज़ोर बनाते हैं और हमारे पूर्वजों को ऑस्ट्रेलियाई विशाल जन्तुओं के लोप के अपराध का ज़िम्मेदार ठहराते हैं।

पहला, भले ही 45,000 साल पहले ऑस्ट्रेलिया की जलवायु में परिवर्तन आया था, लेकिन यह कोई असाधारण विप्लव नहीं था। यह समझ पाना मुश्किल है कि किस तरह महज़ मौसम के नए सिलसिले इतने भीषण पैमाने के लोप का कारण बने होंगे। आजकल

किसी भी और हर चीज़ को जलवायु-परिवर्तन के नतीज़े के रूप में देखने का ढर्रा बन गया है, लेकिन सच यह है कि पृथ्वी की जलवायु कभी चैन नहीं लेती। वह निरन्तर बदलती रहती है। इतिहास की हर घटना किसी जलवायु-परिवर्तन की पृष्ठभूमि में घटित हुई है।

ख़ास तौर से, हमारा ग्रह ठण्डे होने और गर्म होने के असंख्य चक्रों से गुज़रा है। पिछले दस लाख सालों के दौरान औसतन हर 100,000 सालों में एक हिम-युग रहा है। पिछला हिम-युग 75,000 से 15,000 साल पहले तक जारी रहा था। इसके दो शिखर काल रहे, पहला लगभग 70,000 साल पहले, और दूसरा लगभग 20,000 साल पहले, जो किसी हिम-युग के सन्दर्भ में कोई असामान्य रूप से गम्भीर घटना नहीं है। ऑस्ट्रेलिया में विशालकाय डाइप्रोटोडॉन 15 लाख साल पहले प्रकट हुआ और पिछले कम से कम दस हिम-युगों को आसानी से झेल गया। वह कोई 70,000 साल पहले आए अन्तिम हिम-युग के पहले शिखर काल के दौरान भी बचा रहा। तब फिर यह 45,000 साल पहले क्यों ग़ायब हो गया? बेशक, अगर डाइप्रोटोडॉन उस समय ग़ायब होने वाला एकमात्र विशालकाय जन्तु होता, तो यह एक निरी तुक्केबाज़ी हो सकती थी, लेकिन डाइप्रोटोडॉन के साथ-साथ ऑस्ट्रेलिया के 90 प्रतिशत से ज़्यादा विशाल जन्तुओं का लोप हुआ था। साक्ष्य परिस्थितिजन्य हैं, लेकिन यह कल्पना करना मुश्किल है कि सेपियन्स, महज़ संयोगवश, ऑस्ट्रेलिया में ठीक उस वक़्त पहुँचे होंगे जब ये सारे जानवर ठण्ड से अकड़कर मर रहे होंगे।

दूसरे, जब जलवायु परिवर्तन बड़े पैमाने पर विनाश का कारण बनता है, तो समुद्री जन्तु भी उसके उतने ही गम्भीर रूप से शिकार होते हैं, जितने थलीय निवासी होते हैं, लेकिन 45,000 साल पहले महासागरीय जीव-जगत के ग़ायब होने का कोई महत्त्वपूर्ण साक्ष्य नहीं है। मानवीय हस्तक्षेप ही इस बात को आसानी से स्पष्ट कर सकता है कि क्यों विनाश की लहर ने थलीय विशालकाय प्राणियों को मिटा दिया जबकि पास के महासागरीय जन्तुओं को बख़्श दिया। अपनी फलती-फूलती नौकायन क्षमताओं के बावजूद होमो सेपियन्स थलीय स्तर पर ज़बरदस्त ख़तरा था।

तीसरे, जब भी लोग बाहरी दुनिया के दूसरे हिस्से में जाकर बसे, तब-तब ख़ास ऑस्ट्रेलियाई तबाही से मिलते-जुलते विनाश बाद की सहस्राब्दियों में भी बार-बार घटित होते रहे। इन प्रकरणों में सेपियन्स का अपराध अकाट्य है। उदाहरण के लिए, न्यूज़ीलैंड के विशालकाय जन्तुओं - जिन्होंने 45,000 साल पहले के कथित 'जलवायु परिर्वतन' को बिना किसी ख़रोंच के झेल लिया था - को इस द्वीप पर पहली बार मनुष्यों के क़दम पड़ने के तुरन्त बाद विध्वंसकारी आधात झेलने पड़े थे। न्यूज़ीलैंड के प्रथम उपनिवेशवादी माओरिस इस द्वीप पर लगभग 800 साल पहले पहुँचे थे। कुछ ही सदियों के भीतर तमाम पक्षियों की 60 प्रतिशत प्रजातियों समेत स्थानीय विशाल जन्तुओं का अधिसंख्य हिस्सा लुप्त हो गया था।

यही नियति आर्कटिक महासागर (साइबेरियाई तट के 200 किलोमीटर उत्तर में) के रेंगल द्वीप की मैमथ प्रजाति की भी हुई। ये विशालकाय हाथी लाखों वर्षों तक उत्तरी गोलार्ध में फलते-फूलते रहे थे, लेकिन जैसे ही होमो सेपियन्स फैले - पहले यूरेशिया और फिर उत्तरी अमेरिका में - मैमथ अपनी जगह से चले गए। 10,000 साल के पहले का

समय आते-आते दुनिया में एक भी मैमथ नहीं बचा, सिवा सुदूर आर्कटिक द्वीपों, मुख्यतः रेंगल द्वीप पर बच रहे थोड़े-से मैमथ के। रेंगल के मैमथ कुछ और सहस्राब्दियों तक उन्नति करते रहे, और इसके बाद, जैसे ही कोई 4,000 साल पहले पहला मानव समुदाय इस द्वीप पर पहुँचा, मैमथ ग़ायब हो गए।

अगर ऑस्ट्रेलियाई तबाही अकेली घटना होती, तो हम मानवों को सन्देह का लाभ दे सकते थे, लेकिन ऐतिहासिक रिकॉर्ड होमो सेपियन्स को पारिस्थितिकीय सीरियल किलर के रूप में पेश करता है।

ऑस्ट्रेलिया में जाकर बसे तमाम मानवों के पास इस्तेमाल के लिए प्रस्तर युग की तकनीक थी, तब फिर वे पारिस्थितिकीय तबाही कैसे ला सके? तीन कारण हैं, जो बहुत अच्छी तरह से सटीक बैठते हैं।

विशाल प्राणी - ऑस्ट्रेलियाई विनाश के प्रमुख शिकार - धीमी गति से प्रजनन करते हैं। गर्भावस्था लम्बी होती है, हर गर्भावस्था से उत्पन्न सन्तानें थोड़ी-सी होती हैं, और गर्भावस्थाओं के बीच लम्बे अन्तराल होते हैं। इसके परिणामस्वरूप, अगर मनुष्य हर कुछ महीनों के अन्तराल से एक डाइप्रोटोडॉन का वध करते हैं, तो यह डाइप्रोटोडॉन के जन्मों की संख्या के मुक़ाबले उनकी मौतों की संख्या में बढ़ोत्तरी के लिए काफ़ी है। कुछ ही हज़ार सालों के भीतर अन्तिम और अकेली डाइप्रोटोडॉन मर जाएगी और उसके साथ ही उसकी समूची प्रजाति भी समाप्त हो जाएगी।

दरअसल, उनके आकारों के बावजूद डाइप्रोटोडॉन और ऑस्ट्रेलिया के दूसरे विशाल जन्तुओं का शिकार करना शायद उतना मुश्किल नहीं रहा होगा क्योंकि ये जानवर दो पैरों वाले अपने हत्यारों द्वारा एक़दम अकस्मात घर दबोचे गए होंगे। अफ़्रो-एशिया में पिछले बीस लाख सालों से विभिन्न मानव-प्रजातियाँ शिकार की ताक में घूमती और विकसित होती रही थीं। वे अपने आखेट कौशलों को धीरे-धीरे पैना करती रही थीं और लगभग 400,000 साल पहले से बड़े जानवरों का पीछा करना शुरू कर चुकी थीं। अफ़्रीका और एशिया के इन विशाल जन्तुओं ने मानवों से बचकर रहना सीख लिया था, इसलिए जब ये भीषण दरिन्दे - होमो सेपियन्स - अफ़्रो-एशियाई दृश्य में प्रकट हुए, तो ये बड़े जानवर पहले से ही जानते थे कि इन जन्तुओं से किस तरह दूरी बना कर रखी जाए, जो मानवों जैसे ही दिखते थे। इसके विपरीत, ऑस्ट्रेलियाई विशाल जानवरों को वक़्त ही नहीं मिला कि वे भाग खड़े होना सीख सकते। इंसान असामान्य रूप से ख़तरनाक नहीं दिखाई देते। उनके बड़े, तीखे दाँत या बलिष्ठ, लचीली कायाएँ नहीं होतीं। इसलिए पृथ्वी के अब तक के सबसे बड़े मार्सूपियल (पेट में थैली से युक्त) डाइप्रोटोडॉन ने जब पहली बार इस कमज़ोर-से दिखने वाले वानर प्रजाति के जीव होमो सेपियन्स को देखा होगा, तो उसने उस पर एक नज़र डाली होगी और फिर वापस अपना पत्तियाँ चबाना जारी रखा होगा। इन जानवरों को अपने भीतर मनुष्य प्रजाति के प्रति डर विकसित करना ज़रूरी था, लेकिन इसके पहले कि वे ऐसा कर पाते, वे ख़त्म हो चुके थे।

दूसरा कारण यह है कि जब तक सेपियन्स ऑस्ट्रेलिया पहुँचे, तब तक वे आग की खेती (फ़ायर एग्रीकल्चर) में महारत हासिल कर चुके थे। एक अजनबी और ख़तरनाक पर्यावरण का सामना करते हुए उन्होंने जानबूझकर दुर्गम और घने जंगलों को जला दिया,

जिससे घास के ऐसे खुले मैदान तैयार हो सके, जो शिकारों को ज़्यादा आसानी से आकर्षित करते थे और उनकी ज़रूरतों के मुताबिक़ बैठते थे। इस तरह उन्होंने कुछ ही सहस्राब्दियों के भीतर ऑस्ट्रेलिया के बहुत बड़े हिस्से की पारिस्थितिकी को बदल डाला।

इस दृष्टिकोण का समर्थन करते प्रमाणों का एक निकाय जीवाश्मीकृत वनस्पतियों का रिकॉर्ड है। 45,000 साल पहले ऑस्ट्रेलिया में युकेलिप्टस वृक्ष बहुत दुर्लभ हुआ करते थे, लेकिन होमो सेपियन्स के आगमन ने इस प्रजाति के स्वर्ण-युग की शुरुआत की। चूँकि युकेलिप्टस आग के प्रति विशेष प्रतिरोध बरतते हैं, इसलिए वे दूर-दूर तक और व्यापक रूप से फैलते गए और दूसरे वृक्ष और झाड़ियाँ ग़ायब होते गए।

वनस्पति की दुनिया में आए इन बदलावों ने शाकाहारी जानवरों तथा उन मांसाहारी जानवरों को प्रभावित किया, जो शाकाहारी जानवरों को खाते थे। पूरी तरह युकेलिप्टस की पत्तियों पर गुज़ारा करने वाले कोआला इन नए इलाक़ों में सुखपूर्वक चरते रहे। दूसरे ज़्यादातर जानवरों को भारी तकलीफ़ें उठानी पड़ीं। ऑस्ट्रेलिया की बहुत-सी खाद्य-शृंखलाएँ ध्वस्त हो गईं, जिसके नतीज़े में इस शृंखला की सबसे कमज़ोर कड़ियाँ लोप का शिकार हो गईं।

तीसरा कारण इस बात पर सहमति है कि आखेट और आग की खेती ने जानवरों के विनाश में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, लेकिन वह इस बात पर ज़ोर देती है कि हम जलवायु की भूमिका को पूरी तरह से नज़रअन्दाज़ नहीं कर सकते। लगभग 45,000 साल पहले जिन जलवायु परिवर्तनों ने ऑस्ट्रेलिया को आक्रान्त किया, उन्हीं ने पारिस्थितिकीय तन्त्र को अस्थिर कर दिया और उसे विशेष रूप से कमज़ोर और असुरक्षित बना दिया। सामान्य परिस्थितियों में यह तन्त्र शायद सँभल गया होता, जैसा कि पहले कई बार हो चुका था, लेकिन तभी ठीक इस संकट की घड़ी में मनुष्य मंच पर प्रकट हुए और उन्होंने इस नाज़ुक पारिस्थितिकीय तन्त्र को गर्त में धकेल दिया। जलवायु परिवर्तन के साथ मनुष्य द्वारा शिकार किए जाने का संयोग बड़े प्राणियों के लिए ख़ास तौर से विनाशकारी होता है, क्योंकि यह उन पर अलग-अलग कोणों से प्रहार करता है। जीवित बचे रहने की ऐसी अच्छी रणनीति खोजना मुश्किल है,जो एक साथ अनेक संकटों का मुक़ाबला करने में काम आ सके।

बिना अगले साक्ष्य के इन तीनों परिदृश्यों के बीच चयन करना मुश्किल है,लेकिन इस बात पर विश्वास करने के पर्याप्त कारण हैं कि अगर होमो सेपियन्स ऑस्ट्रेलिया ना गए होते, तो वह भू-भाग आज भी मार्सूपियल शेरों, डाइप्रोटोडियनों और विशालकाय कंगारुओं का घर होता।

स्लॉथ का अन्त

ऑस्ट्रेलियाई विशाल जन्तुओं का लोप शायद वह पहला महत्त्वपूर्ण निशान है, जो होमो सेपियन्स ने हमारे ग्रह पर छोड़ा। इसके बाद एक इससे भी बड़ा पारिस्थितिकीय विनाश हुआ, जो इस बार अमेरिका में हुआ। होमो सेपियन्स पश्चिमी गोलार्ध के भू-भाग में पहुँचने वाली पहली और एकमात्र प्रजाति थी, जो लगभग 16,000 साल पहले, यानी ईसवी सदी के 14,000 साल पहले वहाँ पहुँची। पहले अमेरिकी पैदल चलकर पहुँचे थे। ऐसा वे

इसलिए कर सके क्योंकि समुद्र के जलस्तर उस समय इतने नीचे थे कि एक ज़मीनी पुल उत्तर-पूर्वी साइबेरिया और उत्तर-पश्चिमी अलास्का को जोड़ता था। ऐसा नहीं कि यह आसान था - यात्रा दुष्कर थी, शायद ऑस्ट्रेलिया जाने वाले समुद्री मार्ग से ज़्यादा कठिन। इस मार्ग को पार करने के लिए सेपियन्स को सबसे पहले उस उत्तर साइबेरिया की चरम आर्कटिक परिस्थितियों का सामना करना सीखना ज़रूरी था, जहाँ जाड़ों में सूरज के दर्शन कभी नहीं होते और जहाँ तापमान शून्य से पचास डिग्री सेल्सियस नीचे तक गिर जाता है।

कोई भी पिछली मानव प्रजाति उत्तरी साइबेरिया जैसी जगहों को नहीं भेद सकी थी। यहाँ तक कि ठण्ड से अनुकूलित निएंडरथल्स ने भी अपने को अपेक्षाकृत गर्म और सुदूर दक्षिणी इलाक़ों तक ही सीमित रखा था, लेकिन होमो सेपियन्स ने बहुत ही चालाकी भरे समाधान ढूँढ निकाले, हालाँकि उनके शरीर बर्फ़ानी भू-भागों के बजाय अफ़्रीकी मैदानों में रहने के अनुकूल ढले हुए थे। जब सेपियन्स के घुमंतू समूह अपेक्षाकृत ठण्डे वातावरण में जाकर रहने लगे, तो उन्होंने बर्फ़ में पहने जाने वाले जूते और जानवरों के फरों और छालों के गर्म कपड़े बनाना सीख लिया, जिन्हें सुइयों की मदद से कसकर सिल दिया जाता था। उन्होंने नए हथियार और शिकार करने की परिष्कृत तकनीकें विकसित कर लीं, जिन्होंने उन्हें सुदूर उत्तर के मैमथ और अन्य बड़े शिकारों को मारने में सक्षम बनाया। जैसे-जैसे सेपियन्स की गर्म पोशाकें और शिकार-तकनीकें बेहतर होती गईं, वैसे-वैसे वे बर्फ़ से जमे हुए इलाक़ों में ज़्यादा से ज़्यादा गहरे धँसते चले जाने का दुस्साहसिक जोख़िम उठाते गए। और जैसे-जैसे वे उत्तर की ओर बढ़ते गए, उनकी पोशाकें, शिकार की रणनीतियाँ और जीवित बने रहने की दूसरी युक्तियाँ लगातार बेहतर होती गईं।

लेकिन वे कष्ट क्यों उठा रहे थे? आख़िर उन्होंने ख़ुद को साइबेरिया में निर्वासित करने का चयन क्यों किया? शायद कुछ समूह युद्धों, जनसंख्या सम्बन्धी दबावों या कुदरती आपदाओं की वजह से उत्तर की ओर भागने को विवश हुए। दूसरे समूह शायद जानवरों के प्रोटीन जैसी ज़्यादा सकारात्मक वजहों से उत्तर की ओर आकर्षित हुए हों। आर्कटिक भू-भाग रेंडियर और मैमथ जैसे विशाल और रसीले जानवरों से भरा हुआ था। हर मैमथ, मांस की विपुल मात्रा (जिसे बर्फ़ीले तापमान के कारण बाद के इस्तेमाल के लिए जमा कर भी रखा जा सकता था), स्वादिष्ट चरबी, रोएँदार गर्म छाल और मूल्यवान हाथी दाँत का स्रोत था। जैसा कि सुंगीर के शोध-निष्कर्षों से प्रमाणित होता है कि मैमथ-शिकारी बर्फ़ से जमे उत्तर में ना सिर्फ़ जीवित बने रहे, बल्कि वे भरपूर फले-फूले भी। जैसे-जैसे समय गुज़रता गया, ये समूह मैमथ, मास्टोडॉनों, गैंडों और रेंडियरों का पीछा करते हुए दूर-दूर तक और हर ओर फैलते गए। 14,000 ईसा पूर्व के आस-पास यह आखेट-खोज उन्हें उत्तर-पूर्वी साइबेरिया से अलास्का तक ले गई। निश्चय ही, उन्हें यह मालूम नहीं था कि वे एक नई दुनिया खोज निकाल रहे थे। मैमथ और इंसान दोनों के लिए अलास्का समान रूप से साइबेरिया का ही एक विस्तार था।

सबसे पहले अलास्का से बाक़ी अमेरिका के बीच का रास्ता हिमनदों (ग्लेशियरों) ने रोका, जिसने शायद बहुत थोड़े से ही अलग-थलग अग्रगामियों को दक्षिण की तरफ़ के आगे के भू-भागों की छानबीन करने की गुंजाइश दी, लेकिन लगभग 12,000 ईसा पूर्व की विश्वव्यापी स्तर की तापमान वृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग) ने हिम को पिघला दिया और एक

अपेक्षाकृत आसान मार्ग खोल दिया। इस नए गलियारे का फ़ायदा उठाते हुए लोग बड़ी तादाद में एक साथ आगे बढ़े और समूचे महाद्वीप में फैल गए। बावजूद इसके कि वे मूलतः आर्कटिक में विशाल जानवरों का आखेट करने के अभ्यस्त थे, लेकिन उन्होंने अपने को जल्दी ही जलवायु और पारिस्थितिकीय तन्त्रें की विस्मयकारी विविधताओं के अनुरूप ढाल लिया। साइबेरियाइयों के वंशज पूर्वी संयुक्त राज्य के घने जंगलों, मिसीसिपी डेल्टा के दलदलों, मैक्सिको के रेगिस्तानों और मध्य अमेरिका के शप छोड़ते जंगलों में बस गए। कुछेक ने अपने घर अमेज़ॉन बेसिन के रिवर वर्ल्ड में बसा डाले, कुछ ने अपनी जड़ें एंडियन पर्वत घाटियों या अर्जेंटीना के खुले मैदान में रोप लीं। और यह सब महज़ एक या दो सहस्राब्दियों के दौरान हुआ। 10,000 ईसा पूर्व तक आते-आते मनुष्य अमेरिका के सबसे दक्षिणी सिरे पर टिएरा डेल योगो के द्वीप में बस चुके थे। अमेरिका के आर-पार मनुष्यों का तूफ़ानी हमला होमो सेपियन्स की अतुलनीय चतुराई और अद्वितीय अनुकूलनीयता को प्रमाणित करता है। कोई भी दूसरा प्राणी इतनी बड़ी संख्या में मूलभूत रूप से अलग-अलग आवास-स्थलों तक इतनी तेज़ी से सर्वत्र लगभग समान जीन का इस्तेमाल करता हुआ कभी नहीं पहुँचा था।

अमेरिका में सेपियन्स की बसावट को रक्तपात से मुक्त शायद ही कहा जा सके। इसने अपने पीछे शिकार हुए जीवों के लम्बे निशान छोड़े। अमेरिका का प्राणी-जगत 14,000 साल पहले आज के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा समृद्ध था। जब पहले अमेरिकी अलास्का से दक्षिण की ओर कनाडा और संयुक्त राज्य के मैदानों की ओर बढ़े, तो उनका सामना मैमथ और मास्टोडॉनों, भालू के आकार के रोडेंटों, घोड़ों और ऊँटों के झुण्डों, वृहदाकार शेरों और दर्जनों बड़े आकार के ऐसे जन्तुओं से हुआ, जो आज पूरी तरह अज्ञात हैं। इनमें भयानक लम्बे घुमावदार दाँतों वाली बिल्लियाँ और आठ टन तक वज़न और छह मीटर तक ऊँचे विशालकाय स्लॉथ शामिल थे। दक्षिण अमेरिका में बड़े स्तनधारियों, रेंगने वाले जन्तुओं और पक्षियों का और भी ज़्यादा अनोखा जमावड़ा था। अमेरिका विकासपरक प्रयोगों की बहुत बड़ी प्रयोगशाला था। एक ऐसा स्थल, जहाँ अफ़्रीका और एशिया के लिए सर्वथा अज्ञात जीव और वनस्पतियाँ विकसित हुए थे और फले-फूले थे।

लेकिन अब और नहीं। सेपियन्स के आगमन के 2,000 साल के भीतर इनमें से ज़्यादातर अनूठी प्रजातियाँ समाप्त हो चुकी थीं। ताज़ा आकलन के मुताबिक़, उस छोटे-से अन्तराल के भीतर उत्तरी अमेरिका ने विशालकाय स्तनधारियों के सैंतालीस प्रकारों में से चौंतीस प्रकार खो दिए। दक्षिण अमेरिका ने साठ में से पचास खो दिए। लम्बे घुमावदार दाँतों वाली बिल्लियाँ 300 लाख सालों तक फलने-फूलने के बाद ग़ायब हो गईं। यही हश्र विशालकाय ज़मीनी स्लॉथों, वृहदाकार शेरों, स्थानीय अमेरिकी घोड़ों, स्थानीय अमेरिकी ऊँटों, विशालकाय रोडेंटों और मैमथ प्राणियों का हुआ। छोटे स्तनधारियों, रेंगने वाले जन्तुओं, पक्षियों और यहाँ तक कि कीड़ों और परजीवियों की हज़ारों प्रजातियाँ भी लुप्त हो गईं (जब मैमथ मरे, तो उन पर पलने वाले कीड़ों की सारी प्रजातियाँ भी उन्हीं के साथ गुमनामी में चली गईं)।

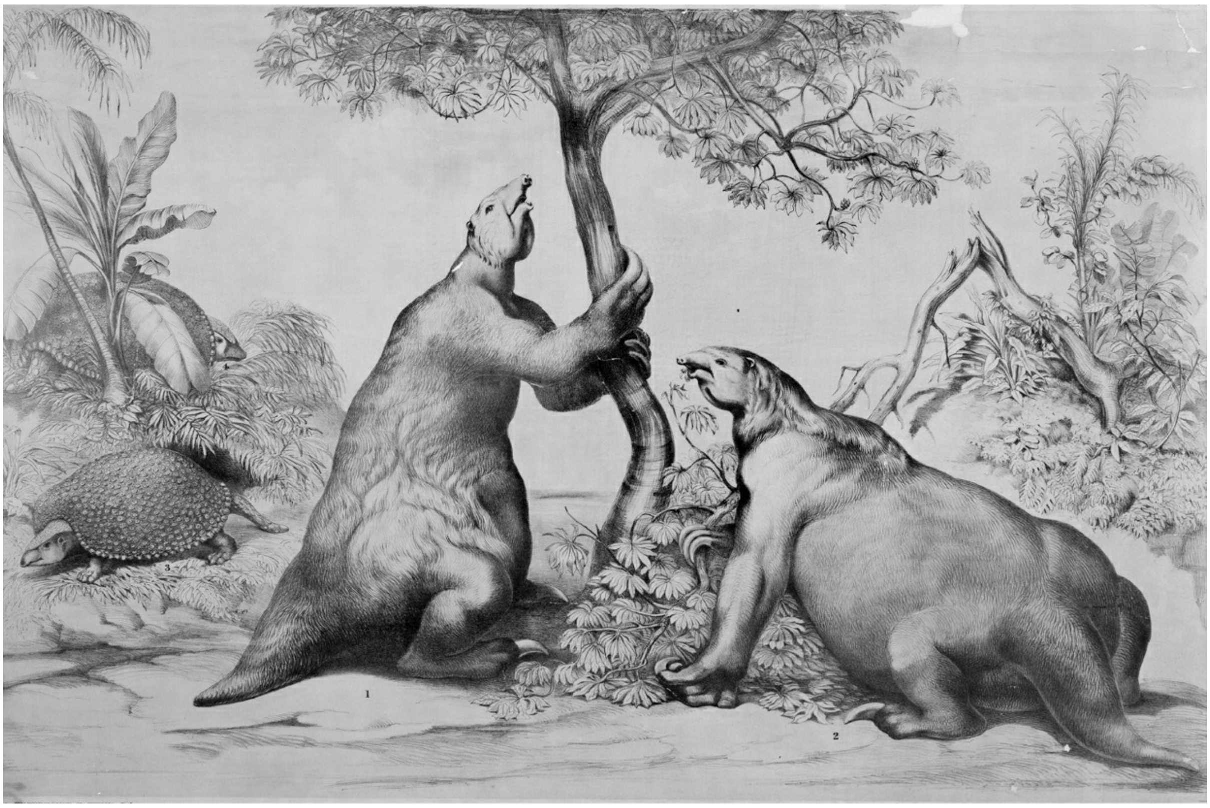

10. ज़मीन पर रहने वाले एक भीमकाय स्लॉथ (मैगाथेरियम) और एक भीमकाय वर्मी (ग्लिप्टोडॉन) की पुनर्निर्मित तसवीर। अब लुप्त हो चुके ये भीमकाय वर्मी जहाँ 3 मीटर लम्बे और 2 टन वज़नी हुआ करते थे, वहीं ज़मीन पर रहने वाले भीमकाय स्लॉथों की ऊँचाई 6 मीटर तक होती थी और वज़न 8 टन तक होता था।

दशकों से जीवाश्मविज्ञानी और जीवपुरातत्त्वविद - वे लोग, जो पशुओं के अवशेषों की खोज और उनका अध्ययन करते हैं - प्राचीन ऊँटों की जीवाश्मीकृत अस्थियों और भीमकाय ज़मीनी स्लॉथों के पथराए हुए मल की खोज में अमेरिका के मैदानों और पहाड़ों को छानबीन करते रहे हैं। जिस चीज़ की उन्हें तलाश है, जब वह मिल जाती है, तो इन ख़ज़ानों को सावधानी से पैक करके प्रयोगशालाओं में भेज दिया जाता है, जहाँ प्रत्येक अस्थि और प्रत्येक कोप्रोलाइट (जीवाश्मीकृत मल का तकनीकी नाम) का सतर्कतापूर्वक अध्ययन और काल-निर्धारण किया जाता है। ये विश्लेषण प्रायः एक ही तरह के नतीज़ों पर पहुँचते रहे हैं : सबसे ताज़ा लीद के गोले और सबसे हाल की ऊँट की अस्थियाँ उस काल की हैं, जब अमेरिका में मनुष्यों की बाढ़ आई थी, यानी लगभग ईसा पूर्व 12,000 और 9000 के बीच। सिर्फ़ एक इलाक़े में विज्ञानियों को अपेक्षाकृत बाद के लीद के गोले मिले हैं। अनेक कैरिबियाई द्वीपों पर, ख़ास तौर से क्यूबा और हिस्पानिओला में उन्हें लगभग 5000 ईसा पूर्व के ज़मीनी स्लॉथ की पाषाणीकृत लीद प्राप्त हुई है। यह ठीक वह समय है, जब प्रथम मानव किसी तरह कैरिबियाई समुद्र को पार कर इन दो बड़े द्वीपों पर जाकर बसे थे।

एक बार फिर, कुछ अध्येता होमो सेपियन्स को निर्दोष साबित करने और सारा दोष जलवायु परिवर्तन के मत्थे मढ़ने की कोशिश करते हैं (जिसके लिए उन्हें यह मानना पड़ता है कि किन्हीं रहस्यमय वजहों से कैरिबियाई द्वीपों का वातावरण 7,000 सालों तक स्थिर बना रहा,जबकि बाक़ी पश्चिमी गोलार्ध गर्माता रहा), लेकिन अमेरिका में लीद

के गोले को चकमा नहीं दिया जा सकता। हम अपराधी हैं। वास्तविकता यही है। अगर जलवायु परिवर्तन ने भी हमें उकसाया हो, तब भी मनुष्य का योगदान निर्णायक था।

नोआ की नौका

अगर हम ऑस्ट्रेलिया और अमेरिका में हुए सामूहिक विनाशों को मिला दें और उसमें उस छोटे पैमाने के विनाशों को जोड़ दें, जो अफ़्रो-एशिया में होमो सेपियन्स के फैलने के साथ हुए, जैसे कि तमाम अन्य मानव प्रजातियों का विनाश और उन विनाशों को भी इसमें शामिल कर दें, जो उस वक़्त हुए, जब प्राचीन भोजन-खोजी क्यूबा जैसे सुदूर द्वीपों पर जा बसे, तो इसका अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि सेपियन्स के उपनिवेशीकरण की पहली लहर प्राणी जगत पर आई सबसे बड़ी और सबसे तीव्र गति की पारिस्थितिकीय विपदाओं में से एक है। सबसे गहरा आधात झेलने वाले थे विशालकाय रोएँदार प्राणी। संज्ञानात्मक क्रान्ति के समय यह ग्रह ज़मीन पर रहने वाले 50 किलोग्राम से ज़्यादा वज़न वाले स्तनधारियों की लगभग 200 क़िस्मों का घर हुआ करता था। कृषि क्रान्ति के समय तक इनमें से लगभग सौ क़िस्में बची रह गईं। मनुष्यों द्वारा पहिए, लेखन-कला या लोहे के औज़ारों का आविष्कार किए जाने के बहुत पहले होमो सेपियन्स ने ग्रह के लगभग आधे विशाल पशुओं को विनाश की ओर धकेल दिया था।

कृषि क्रान्ति के बाद इस पारिस्थितिकीय दुःखान्त नाटक को इसके लघु रूप में असंख्य बार प्रस्तुत किया गया। एक के बाद एक द्वीप का पुरातात्त्विक रिकॉर्ड यही दुःखद कहानी कहता है। इस दुःखान्त नाटक की शुरुआत विशाल प्राणियों की एक समृद्ध और वैविध्यपूर्ण आबादी के दृश्य के साथ होती है, जिसमें मनुष्य का कोई नामोनिशान नहीं है। दूसरे दृश्य में एक मानवीय अस्थि, एक भाले की नोक या शायद बर्तन के किसी टूटे टुकड़े के साक्ष्य के रूप में सेपियन्स प्रकट होते हैं। तीसरा दृश्य इसके तुरन्त बाद आता है, जिसमें मर्द और औरतें मंच को घेरे होते हैं और अनेक छोटे प्राणियों के साथ-साथ ज़्यादातर बड़े प्राणी मंच से ग़ायब हो चुके होते हैं।

अफ़्रीका के मुख्य भू-भाग से लगभग 400 किलोमीटर पूर्व में स्थित मैडागास्कर का बड़ा द्वीप एक प्रसिद्ध उदाहरण पेश करता है। लाखों सालों तक अलग-थलग बने रहे इस द्वीप पर प्राणियों का एक अनूठा समूह विकसित हुआ। इन प्राणियों में गज पक्षी (एलिफ़ेंट बर्ड) नामक तीन मीटर ऊँचा और लगभग आधे टन वज़न वाला उड़ने में असमर्थ एक प्राणी - दुनिया का सबसे बड़ा पक्षी - और भूमण्डल के सबसे बड़े वानर भीमकाय लेमर शामिल थे। मैडागास्कर के ज़्यादातर अन्य बड़े प्राणियों के साथ-साथ ये गज पक्षी और भीमकाय लेमर 1,500 साल पहले सहसा ग़ायब हो गए - ठीक तब, जब प्रथम मानवों ने इस द्वीप पर अपने क़दम रखे।

प्रशान्त महासागर में विनाश की पहली लहर की शुरुआत लगभग 1500 ईसा पूर्व में हुई, जब पोलीनेशियाई कृषक सोलोमन द्वीपों, फ़िज़ी और न्यू कैलेडोनिया में आकर बस गए। उन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष ढंग से पक्षियों, कीड़ों, घोंघों और दूसरे स्थानीय बाशिन्दों की सैकड़ों प्रजातियों को मार डाला। वहाँ से विनाश की यह लहर सामोआ और टोंगा के अनूठे प्राणी जगत का सफ़ाया करती हुई धीरे-धीरे प्रशान्त महासागर के मध्य में पूर्व,

दक्षिण और उत्तर की तरफ़ (1200 ईसा पूर्व), मार्क़्विस द्वीप (1 ईसवी), ईस्टर द्वीप, कूक द्वीप और हवाई (500 ईसवी) और अन्त में न्यूज़ीलैंड (1200 ईसवी) की ओर बढ़ी।

ऐसी ही पारिस्थितिकीय तबाहियाँ उन हज़ारों द्वीपों में से प्रत्येक द्वीप पर घटित हुईं, जो अटलांटिक महासागर, हिन्द महासागर, आर्कटिक महासागर और भूमध्य सागर में बिखरे हुए हैं। पुरातत्त्वविदों ने छोटे से छोटे द्वीपों पर उन पक्षियों, कीड़ों और घोंघों के साक्ष्य खोजे हैं, जो वहाँ असंख्य पुश्तों तक रहे हैं और जो सिर्फ तभी लुप्त हुए हैं, जब प्रथम मानव कृषक वहाँ पहुँचे। केवल थोड़े से अत्यन्त दूर स्थित द्वीप ही आधुनिक समय तक इंसान की निगाहों से बचे रह सके हैं और ये द्वीप अपने प्राणी जगत को सुरक्षित बनाए हुए हैं। एक प्रसिद्ध उदाहरण लें, तो गालापगोस द्वीप उन्नीसवीं सदी तक मनुष्यों की बसावट से मुक्त रहे और इस तरह अपने प्राणी समूह को बचाए रख सके, जिसमें उनका वह विशालकाय कछुआ भी शामिल है, जो प्राचीन डाइप्रोटोडॉनों की तरह ही मनुष्यों से डरने का कोई संकेत नहीं देता।

विनाश की पहली लहर भोजन-खोजियों के प्रसार के साथ-साथ आई थी। इसके बाद विनाश की दूसरी लहर उठी, जिसके साथ कृषकों का प्रसार हुआ। यह हमें उस विनाश की तीसरी लहर का महत्त्वपूर्ण परिप्रेक्ष्य उपलब्ध कराती है, जो विनाश आज औद्योगिक गतिविधि के कारण हो रहा है। वृक्षों को गले लगाने वाले उन लोगों पर विश्वास मत करें, जिनका दावा है कि हमारे पूर्वज प्रकृति के साथ सामंजस्य के रिश्ते में रहते थे। औद्योगिक क्रान्ति के बहुत-बहुत पहले होमो सेपियन्स का समूचे जीव-जगत के बीच ज़्यादातर वनस्पतियों और जीव प्रजातियों को उनके विनाश की ओर धकेलने का कीर्तिमान रहा है। जीव-विज्ञान के ऐतिहासिक अभिलेखागार में हम सर्वाधिक विध्वंसकारी प्रजाति होने की सन्दिग्ध पहचान रखते हैं।

अगर ज़्यादातर लोग विनाश की पहली और दूसरी लहर के प्रति सजग रहे होते, तो वे शायद उस तीसरी लहर के प्रति कम लापरवाह रहे होते, जिसका वे हिस्सा हैं। अगर हम जानते होते कि हमने कितनी प्रजातियों को पहले ही जड़ से उखाड़ दिया है, तो हम उन प्रजातियों को बचाने के लिए ज़्यादा प्रेरित होते, जो अभी भी बची हैं। यह बात ख़ास तौर से महासागरों के विशाल प्राणियों के सन्दर्भ में प्रासंगिक है। इन विशाल समुद्री प्राणियों ने अपने ज़मीनी जोड़ीदारों से भिन्न संज्ञानात्मक और कृषि क्रान्तियों से अपेक्षाकृत कम कष्ट झेला है, लेकिन आज इनमें से कई प्राणी औद्योगिक प्रदूषण और समुद्री संसाधनों के अतिरेकपूर्ण मानवीय इस्तेमाल के परिणामस्वरूप विलुप्त होने के कगार पर हैं। अगर हालात मौजूदा रफ़्तार से जारी रहे, तो पूरी सम्भावना है कि व्हेल, षार्क, ट्यूना और डॉल्फ़िन गुमनामी के उसी गर्त में चले जाएँगे, जिसमें डाइप्रोटोडॉन, ज़मीनी स्लॉथ और मैमथ चले गए हैं। इस इंसानी प्रलय से दुनिया के बड़े जीवों के बीच जो एकमात्र जीव बचे रह जाएँगे, वे स्वयं इंसान होंगे और वे बाड़े के जानवर होंगे, जो नोआ की नौका में अर्दली की भूमिका निभाते हैं।

भाग-II

कृषि क्रान्ति

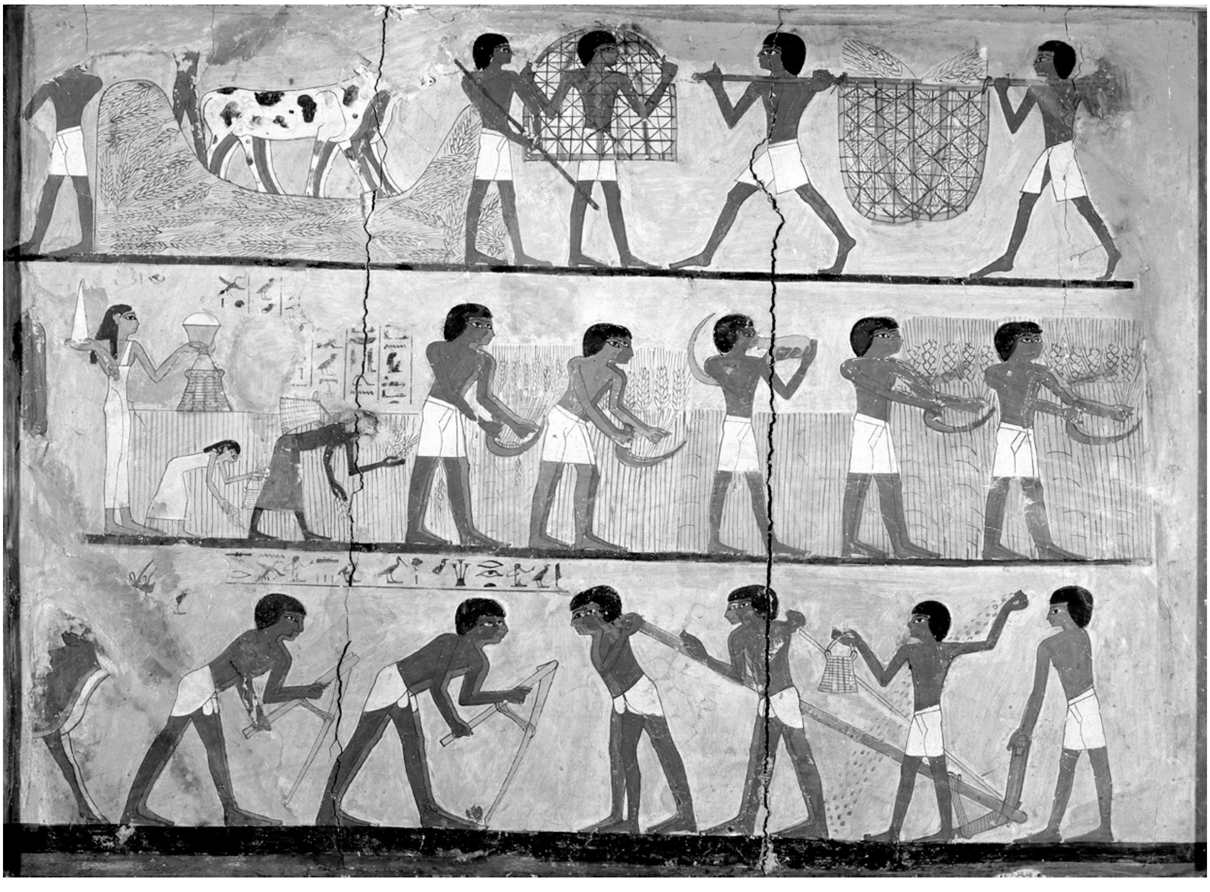

11. मिस्र की एक क़ब्र पर अंकित लगभग 3,500 वर्ष पुराना भित्ति-चित्र, जो खेती से सम्बन्धित विशिष्ट दृश्यों को दर्शाता है।

5

इतिहास का सबसे बडा धोखा

पिछले 25 लाख सालों तक मनुष्य उन वनस्पतियों को बटोरकर और उन पशुओं का शिकार कर अपना उदरपोषण करते रहे थे, जो उनके हस्तक्षेप के बिना रहते और प्रजनन करते आए थे। होमो इरेक्टस, होमो एर्गास्टर और निएंडरथल्स जंगली गूलर तोड़ते थे और जंगली भेड़ों का शिकार करते थे और यह करते हुए वे यह फ़ैसला नहीं लेते थे कि गूलर के वृक्षों को कहाँ उगना चाहिए, भेड़ों के झुण्ड को किस चरागाह में चरना चाहिए या कौन-सा बकरा किस बकरी का गर्भाधान करे। होमो सेपियन्स पूर्वी अफ़्रीका से मध्य पूर्व तक, यूरोप और एशिया तक और अन्ततः ऑस्ट्रेलिया और अमेरिका तक फैले, लेकिन जहाँ कहीं भी वे गए, सेपियन्स ने भी जंगली वनस्पतियाँ एकत्र कर और जंगली जानवरों का शिकार कर अपनी आजीविका को जारी रखा। और कुछ करने की ज़रूरत भी क्या है,जब आपकी जीवन-शैली आपको प्रचुर मात्रा में भोजन मुहैया कराती हो और सामाजिक संरचनाओं, धार्मिक आस्थाओं तथा राजनैतिक सक्रियता की समृद्ध दुनिया को सहारा देती हो?

यह सब 10,000 साल पहले बदल गया, जब सेपियन्स ने कुछ जीव और वनस्पति प्रजातियों के जीवन को नियन्त्रित करने की कोशिशो में अपना सारा समय ख़र्च करना शुरू कर दिया। सूर्योदय से सूर्यास्त तक मानव बीज बोते थे, पौधों को पानी देते थे, ज़मीन की निराई करते थे और भेड़ों को सबसे अच्छे चरागाहों में ले जाते थे। उनका ख़याल था कि यह काम उन्हें ज़्यादा से ज़्यादा फल, अनाज और मांस उपलब्ध कराएगा। यह मनुष्य की जीवन-पद्धति में एक क्रान्ति थी - कृषि क्रान्ति।

यह परिवर्तन 9500-8500 ईसा पूर्व के आस-पास दक्षिण-पूर्वी तुर्की, पश्चिमी ईरान और लेवान्त में घटित हुआ। इसकी शुरुआत धीमी गति से और सीमित भौगोलिक इलाक़े में हुई। गेहूँ के उत्पादन और बकरियों को पालने की शुरुआत लगभग 9000 ईसा पूर्व में

हुई। मटर और मसूर की खेती की शुरुआत लगभग 8000 ईसा पूर्व में, जैतून की 5000 ईसा पूर्व में और अंगूरों की 3500 ईसा पूर्व में हुई। कुछ जानवरों और वनस्पतियों जैसे कि ऊँटों और काजुओं का घरेलू इस्तेमाल और भी बाद में शुरू हुआ। 3500 ईसा पूर्व तक खेती और पालतूकरण की लहर समाप्त हो चुकी थी। यहाँ तक कि आज भी, हमारी सारी उन्नत तकनीक के साथ मनुष्यों का उदरपोषण करने वाली कैलोरी का 90 प्रतिशत हिस्सा उन मुट्ठी भर वनस्पतियों से आता है, जिन्हें हमारे पूर्वजों ने 9500 और 3500 ईसा पूर्व के बीच उगाना शुरू किया था - गेहूँ, चावल, मक्का, आलू, जौ और बाजरा। पिछले 2000 सालों के दौरान किसी भी उल्लेखनीय वनस्पति या जानवर का उत्पादन शुरू नहीं हुआ। अगर हमारे दिमाग़ वही हैं, जो शिकारी-संग्रहकर्ताओं के थे, तो हमारे भोजन वही हैं, जो प्राचीन कृषकों के हुआ करते थे।

किसी समय में अध्येताओं का ऐसा मानना था कि कृषि का विस्तार उसके एक मध्य-पूर्व उद्गम बिन्दु से दुनिया के चारों कोनों तक हुआ। आज अध्येता इस बात पर एकमत हैं कि दुनिया के दूसरे हिस्सों में कृषि का विकास वहाँ मध्य पूर्व के कृषकों की कृषि क्रान्ति के निर्यात की वजह से नहीं, बल्कि स्वतन्त्र रूप से हुआ। मध्य अमेरिका के लोगों ने मध्य-पूर्व की गेहूँ और मटर की खेती की किसी भी तरह की जानकारी के बग़ैर ही मक्के और सेम (बीन्स) की खेती शुरू की थी। मध्य अमेरिकी लोगों ने मैक्सिको या लेवान्त की कृषि सम्बन्धी गतिविधियों से पूरी तरह नावाकिफ़ रहते हुए आलू की खेती और लामाओं को पालने की शुरुआत की। चीन के प्रथम क्रान्तिकारियों ने चावल, जौ की पैदावार और सूअरों को पालने की शुरुआत की। उत्तरी अमेरिका के प्रथम बाग़बान वे थे, जिन्होंने गोर्ड की खोज में झाड़ों-झंखाड़ों की छानबीन करने से थककर कद्दू की खेती करने का फ़ैसला किया। न्यू गिनी के लोगों ने जहाँ गन्ने और केले का पालतूकरण किया, वहीं प्रथम पश्चिम अफ़्रीकी कृषकों ने अफ़्रीकी जौ, अफ़्रीकी चावल, ज्वार और गेहूँ को अपनी ज़रूरतों के अनुरूप ढाला। इन शुरुआती केन्द्रों से कृषि का दूर-दूर तक हर ओर विस्तार हुआ। ईसा की पहली सदी तक आते-आते दुनिया के अधिकांश हिस्से की विशाल आबादी कृषक बन गई।

क्या वजह है कि कृषि क्रान्ति का विस्फोट मध्य पूर्व, चीन और मध्य अमेरिका में हुआ, लेकिन ऑस्ट्रेलिया, अलास्का या दक्षिण अफ़्रीका में नहीं हुआ? बहुत सरल-सी वजह है : वनस्पतियों और प्राणियों की ज़्यादातर प्रजातियों को पालतू नहीं बनाया जा सकता। सेपियन्स स्वादिष्ट कुकरमुत्तों (ट्रफ़ल्स) को खोद सकते थे और झबरीले मैमथ का शिकार कर सकते थे, लेकिन इनमें से किसी प्रजाति को पालतू बनाना असम्भव था। फफूँद (कुकरमुत्ता) बहुत ज़्यादा दुष्प्राप्य था और वह विशालकाय जानवर (मैमथ) बहुत आक्रामक और हिंसक था। हमारे पूर्वजों ने जिन हज़ारों प्रजातियों का शिकार किया था और बटोरा था, उनमें से बहुत थोड़ी-सी ही ऐसी थीं, जो खेती करने और झुण्ड बनाकर पालने के उपयुक्त थीं। ये थोड़ी-सी प्रजातियाँ ख़ास जगहों पर रहा करती थीं और यही वे जगहें हैं, जहाँ कृषि क्रान्तियाँ घटित हुई थीं।

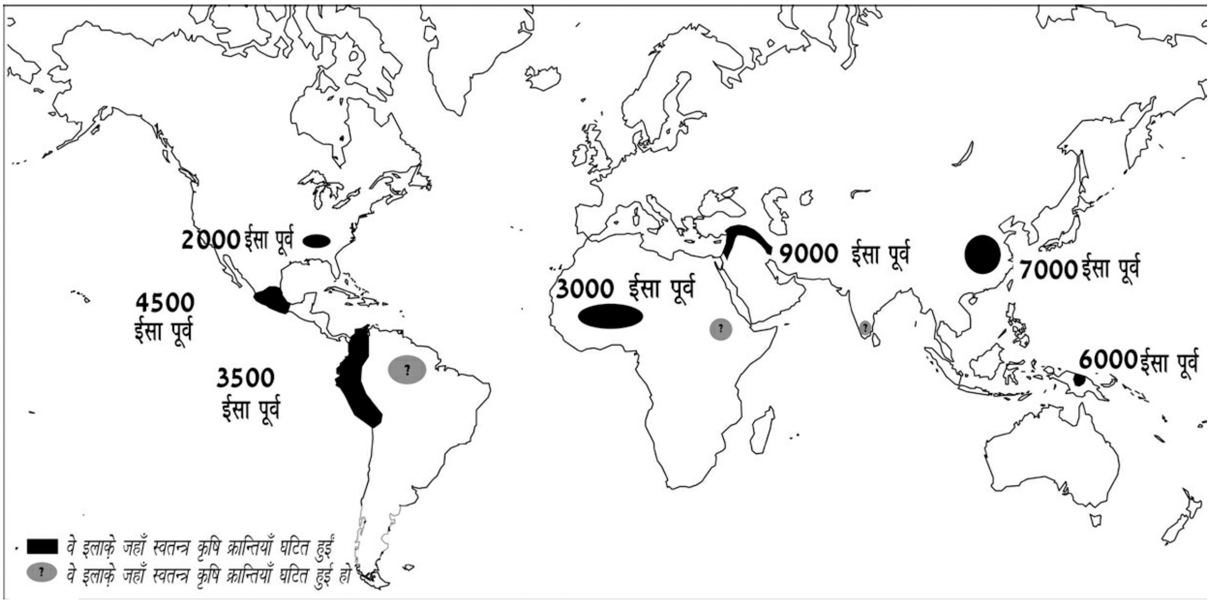
2000 ईसा पूर्व
4500 ईसा पूर्व
3500 ईसा पूर्व
3000 ईसा पूर्व
9000 ईसा पूर्व
7000 ईसा पूर्व
6000 ईसा पूर्व
?
■ वे इलाक़े जहाँ स्वतन्त्र कृषि क्रान्तियाँ घटित हुईं
● वे इलाक़े जहाँ स्वतन्त्र कृषि क्रान्तियाँ घटित हुई हो

नक़्शा 2. कृषि क्रान्ति के स्थल और तिथियाँ। आँकड़े विवादास्पद हैं और नक़्शा ताज़ा पुरातात्त्विक खोजों को शामिल करने के लिए लगातार नए सिरे से बनाया जाता रहा है।

अध्येताओं ने कभी घोषणा की थी कि कृषि क्रान्ति विकास की दिशा में मानव जाति की बहुत बड़ी छलांग थी। उन्होंने मनुष्य की दिमाग़ी ताक़त से परिचालित प्रगति की कहानी कही थी। विकास की प्रक्रिया ने धीरे-धीरे और भी अक़्लमन्द मनुष्यों को उत्पन्न किया। अन्ततः लोग इतने चतुर होते गए कि वे प्रकृति के रहस्यों को समझने में सक्षम हो गए, जिससे वे भेड़ों को पालने लगे और गेहूँ की खेती करने लगे। जैसे ही यह हुआ, उन्होंने ख़ुशी-ख़ुशी शिकारी-संग्रहकर्ता का थका देने वाला, ख़तरनाक और अक्सर कठिन जीवन त्याग दिया और सुखद, सन्तुष्ट कृषक जीवन का आनन्द लेने लगे।

यह एक कल्पना-लोक की कहानी है। इसका कोई प्रमाण नहीं है कि समय बीतने के साथ लोग ज़्यादा अक़्लमन्द हो गए थे। भोजन-खोजी प्रकृति के रहस्यों को कृषि क्रान्ति के बहुत पहले से समझने लगे थे, क्योंकि उनका जीवन उन जानवरों, जिनका वे शिकार करते थे और उन वनस्पतियों जिनका वे संग्रह करते थे, को क़रीब से समझने पर निर्भर करता था। कृषि क्रान्ति ने सरलतापूर्ण जीवनयापन के नए युग की शुरुआत करने के बजाय कृषकों को भोजन-खोजियों के जीवन के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा मुश्किल और कम सन्तोषदायी जीवन के सामने लाकर छोड़ दिया था। शिकारी-संग्रहकर्ता अपना समय कहीं ज़्यादा उत्तेजक और विविध तरीक़ों से बिताते थे और उनके सामने भुखमरी और बीमारी का ख़तरा कम हुआ करता था। कृषि क्रान्ति ने मनुष्यता के उपयोग के लिए भोजन की कुल मात्रा में वृद्धि निश्चय ही की, लेकिन अतिरिक्त भोजन का अर्थ बेहतर ख़ुराक और ज़्यादा आराम नहीं था। इसके बजाय वह जनसंख्या विस्फोटों और सिरचढ़े अभिजात्य वर्ग के रूप में फलित हुआ। एक औसत कृषक एक औसत भोजन-खोजी के मुक़ाबले ज़्यादा कठोर मेहनत करता था और बदले में एक बदतर ख़ुराक हासिल करता था। कृषि क्रान्ति इतिहास का सबसे बड़ा घोखा था।

ज़िम्मेदार कौन था? ज़िम्मेदार ना राजा थे, ना पुरोहित थे, ना व्यापारी थे। अपराधी थीं मुट्ठी भर वनस्पति प्रजातियाँ, जिनमें गेहूँ, चावल और आलू शामिल थे। इन

वनस्पतियों ने होमो सेपियन्स को पालतू बनाया ना कि होमो सेपियन्स ने इन्हें।

ज़रा गेहूँ की निगाह से कृषि क्रान्ति के बारे में सोचिए। दस हज़ार साल पहले गेहूँ महज़ एक जंगली घास थी, बहुत-सी घासों में से एक घास, जो मध्य पूर्व में एक छोटे से दायरे तक सीमित थी। अचानक, थोड़ी-सी संक्षिप्त सहस्राब्दियों के भीतर, इसकी पैदावार सारी दुनिया में होने लगी। उत्तरजीविता और पुनरुत्पादन के बुनियादी विकासवादी मापदण्ड के मुताबिक़, गेहूँ पृथ्वी के इतिहास की सबसे कामयाब वनस्पति बन चुका है। उत्तरी अमेरिका के विशाल मैदानों जैसे इलाक़ों में जहाँ 10,000 साल पहले गेहूँ का एक डण्ठल भी पैदा नहीं होता था, वहाँ आप सैकड़ों किलोमीटर तक चलते चले जाएँ, तो भी आपको गेहूँ के अलावा कोई दूसरी वनस्पति नज़र नहीं आएगी। वैश्विक पैमाने पर गेहूँ भूमण्डल की 25 लाख वर्ग किलोमीटर सतह को घेरता है, जो ब्रिटेन के आकार से लगभग दस गुना है। यह घास एक नाचीज़ से सर्वव्यापी में कैसे बदल गई?

गेहूँ ने यह अपने फ़ायदे के लिए होमो सेपियन्स को नियन्त्रित करते हुए किया। यह वानर-प्रजाति 10,000 साल पहले तक शिकार और संग्रह करते हुए अच्छा-ख़ासा चैन का जीवन जी रही थी, लेकिन इसके बाद इसने गेहूँ की खेती में ज़्यादा से ज़्यादा उद्यम लगाने की शुरुआत की। कुछ ही सहस्राब्दियों के भीतर मनुष्य दुनिया के बहुत-से हिस्सों में सुबह से शाम तक गेहूँ की फ़सल पर ध्यान देने के अलावा और किसी भी चीज़ की खेती पर बहुत कम ध्यान देने लगे। यह आसान नहीं था। गेहूँ उनसे बहुत ज़्यादा की माँग करता था। गेहूँ को चट्टानें और कंकड़-पत्थर पसन्द नहीं थे, इसलिए सेपियन्स इन सब चीज़ों से खेतों को साफ़ करने में कमर तोड़ मेहनत करने लगे। गेहूँ को अपनी जगह, पानी और पोषक तत्त्वों में दूसरी वनस्पतियों से साझा करना पसन्द नहीं था, इसलिए मर्द और औरतें पूरे दिन-दिन भर तीखी धूप में बैठकर खेतों की निराई करने लगे। गेहूँ बीमार पड़ जाता था, इसलिए सेपियन्स को कीड़ों और पाले पर निगाह रखनी पड़ती थी। गेहूँ खरगोशों से लेकर टिड्डी दल तक अनेक दूसरे प्राणियों के सामने असहाय था, जो उसे खाना पसन्द करते थे, इसलिए किसानों को उसकी रखवाली और रक्षा करनी पड़ती थी। गेहूँ प्यासा था, इसलिए मनुष्य झरनों और नदियों से पानी ढोकर उसकी सिंचाई करते थे। यहाँ तक कि इसकी भूख ने सेपियन्स को जानवरों का मल इकट्ठा करने पर मजबूर कर दिया,ताकि वे इसे उगाने वाली ज़मीन को पोषण मुहैया करा सकें।

होमो सेपियन्स का शरीर इस तरह के उद्यमों के अनुरूप ढला हुआ नहीं था। वह सेब के वृक्षों पर चढ़ने और हिरणों के पीछे दौड़ने का अभ्यस्त था, ना कि चट्टानें हटाने और पानी की बाल्टियाँ ढोने का। इसकी क़ीमत इंसानों की रीढ़ों, घुटनों, गर्दनों और तलुओं की मेहराबों को चुकानी पड़ी। प्राचीन कंकालों का अध्ययन संकेत करता है कि कृषि की दुनिया में प्रवेश ने अनेक क़िस्म की बीमारियों को जन्म दिया, जैसे कि स्लिप डिस्क, गठिया और हर्निया। इसके अलावा, खेती से जुड़े नए उद्यम इतने ज़्यादा समय की माँग करते थे कि लोगों को मजबूर होकर गेहूँ के खेतों के क़रीब स्थायी रूप से बस जाना पड़ा। इसने उनकी जीवन-पद्धति को पूरी तरह बदल दिया। हमने गेहूँ को घरेलू (डॉमेस्टिकेट) नहीं बनाया। उसने हमें घरेलू बनाया। 'Domesticate' शब्द लैटिन के domus से बना है, जिसका मतलब होता है 'घर'। वह कौन है, जो घर में रह रहा है? गेहूँ नहीं, सेपियन्स रह रहे हैं।

गेहूँ ने होमो सेपियन्स को किस तरह एक ख़ासे अच्छे जीवन के बदले एक दयनीय अस्तित्व को चुन लेने के लिए राज़ी किया? उसने इसके बदले में क्या दिया? उसने कोई बेहतर आहार उपलब्ध नहीं कराया। याद रखें, मनुष्य सर्वभक्षी वानर हैं जो तरह-तरह के भोजनों का लुत्फ़ उठाते हैं। कृषि क्रान्ति से पहले अनाज मनुष्य के आहार का एक बहुत छोटा-सा हिस्सा हुआ करते थे। अनाजों पर आधारित आहार खनिजों और विटामिनों की दृष्टि से कमज़ोर, पचाने की दृष्टि से मुश्किल, और आपके दाँतों और मसूड़ों के लिए वाक़ई बुरा होता है।

गेहूँ ने लोगों को आर्थिक सुरक्षा उपलब्ध नहीं कराई। एक किसान की ज़िन्दगी एक शिकारी-संग्रहकर्ता के मुक़ाबले कम सुरक्षित होती है। भोजन-खोजी अपने जीवित बने रहने के लिए दर्जनों प्रजातियों पर निर्भर करते थे और इसलिए भोजन के संरक्षित भण्डारों के बिना भी मुश्किल वक़्तों को सह सकते थे। अगर एक प्रजाति की उपलब्धता कम हो जाती थी, तो वे दूसरी बहुत-सी प्रजातियों का शिकार और संग्रह कर सकते थे। कृषक समाज, अभी बहुत हाल के वक़्त तक अपनी कैलोरी की बहुत बड़ी मात्रा के लिए घरेलू बना ली गई वनस्पतियों की बहुत थोड़ी-सी क़िस्मों पर निर्भर करते था। बहुत-से इलाक़ों में वे महज़ एक ही मुख्य भोज्य पदार्थ, जैसे कि गेहूँ, आलू या चावल पर निर्भर करते थे। अगर बारिश नहीं हुई या टिड्डी दल का हमला हो गया या फफूँद ने उस भोज्य पदार्थ की प्रजाति को दूषित करना सीख लिया, तो किसान हज़ारों और लाखों की तादाद में मरते थे।

12. न्यू गिनी में दो कृषि समुदायों के बीच आदिवासी संघर्ष (1960)। इस तरह के दृश्य कृषि क्रान्ति के बाद के हज़ारों सालों के दौरान शायद व्यापक रूप से देखने में आते थे।

ना ही गेहूँ मनुष्यों द्वारा की जाने वाली हिंसा के विरुद्ध कोई सुरक्षा उपलब्ध करा सकता था। शुरुआती दौर के कृषक अपने भोजन-खोजी पूर्वजों के मुक़ाबले अगर ज़्यादा नहीं तो उनके जितने ही हिंसक हुआ करते थे। कृषकों का माल-असबाब बहुत ज़्यादा

होता था और बुआई के लिए उन्हें ज़मीन की ज़रूरत होती थी। अगर छापामार पड़ोसियों के हाथों चरागाह ज़मीन को लूट लिया जाता था, तो इसका मतलब आजीविका का छिन जाना और भूखों मरने की नौबत आ जाना हो सकता था, इसलिए समझौते की बहुत कम गुंजाइश थी। जब एक भोजन-खोजी समूह के सामने कोई सबल प्रतिद्वन्द्वी बहुत ज़्यादा मुश्किलें खड़ी कर देता था, तो वह सामान्यतः उस जगह को छोड़कर चला जा सकता था। ऐसा करने की अपनी मुश्किलें और ख़तरे थे, लेकिन तब भी यह किया जा सकता था। जब कोई ताक़तवर दुश्मन किसी खेतिहर गाँव के लिए ख़तरा बन जाता था, तो वहाँ से पीछे हटने का मतलब खेतों, आवासों और अन्न के भण्डार से हाथ धो बैठना था। बहुत बार इस स्थिति से ऐसे शरणार्थियों को भूखों मरना पड़ा था। इसलिए किसान अपनी जगह बने रहकर आख़िरी दम तक लड़ते थे।

बहुत से मानववैज्ञानिक और पुरातात्त्विक अध्ययन इस ओर संकेत करते हैं कि ऐसे सीधे-सादे कृषक समाजों में जिनका गाँव और जनजाति से इतर और कोई भी राजनैतिक ढाँचा नहीं होता था, इंसानी हिंसा 15 प्रतिशत मौतों के लिए ज़िम्मेदार होती थी, जिनमें 25 प्रतिशत मौतें पुरुषों की होती थीं। समकालीन न्यू गिनी में हिंसा से 30 प्रतिशत पुरुषों की मौतें एक खेतिहर जनजाति समाज डानी और 35 प्रतिशत एक अन्य जनजातीय समाज ऐंगा में होती हैं। इक्वाडोर में शायद 50 प्रतिशत वोरानी अन्य मनुष्यों के हाथों मरते हैं। अन्ततः, शहरों, बादशाहतों और राज्यों जैसे बड़े सामाजिक ढाँचों के सहारे इंसानी हिंसा को नियन्त्रित किया गया, लेकिन इस तरह की विशाल और कारगर राजनैतिक संरचनाओं को खड़ा करने में हज़ारों साल लग गए।

ग्रामीण जीवन ने निश्चय ही शुरुआती दौर के कृषकों को जंगली जानवरों, बारिश और जाड़े से बेहतर बचाव जैसे कुछ तात्कालिक फ़ायदे पहुँचाए। तब भी एक औसत व्यक्ति के लिए फ़ायदों के मुक़ाबले नुक़सान ज़्यादा भारी पड़ते थे। इस बात को समझ पाना आज के समृद्ध समाज के लोगों के लिए मुश्किल है। चूँकि हमें समृद्ध और सुरक्षा मिली हुई हैं, और चूँकि हमारी समृद्ध और सुरक्षा कृषि क्रान्ति द्वारा खड़ी की गई बुनियादों पर आधारित हैं, इसलिए हम यह मानकर चलते हैं कि कृषि क्रान्ति एक अद्भुत प्रगति थी, लेकिन इतिहास के हज़ारों सालों को आज के नज़रिये से परखना ग़लत है। एक कहीं ज़्यादा प्रतिनिधिक दृष्टिकोण तीन साल की उस बच्ची से उभरता है, जो पहली सदी के चीन में इसलिए कुपोषण की शिकार होकर मर रही है क्योंकि उसके पिता की फ़सल बरबाद हो गई है। क्या वह कहेगी “भले ही मैं कुपोषण से मर रही हूँ, लेकिन 2000 साल बाद लोगों के पास भरपूर खाने को होगा और वे वातानुकूलित घरों में रह रहे होंगे, इसलिए मेरी यातना और बलिदान व्यर्थ नहीं हैं”?

तब फिर गेहूँ ने कुपोषण की शिकार उस चीनी लड़की समेत कृषकों को क्या दिया? इसने व्यक्तियों के तौर पर लोगों को कुछ नहीं दिया। तब भी इसने एक प्रजाति के रूप में होमो सेपियन्स को किसी चीज़ से नवाज़ा। गेहूँ की खेती ने क्षेत्र की प्रति इकाई को कहीं ज़्यादा भोजन मुहैया कराया और इस तरह होमो सेपियन्स को तीव्रतम गति से अपनी वंशवृद्धि करने में सक्षम बनाया। 13,000 ईसा पूर्व के आस-पास, जब लोग जंगली वनस्पतियाँ बटोरकर और शिकार करके अपना पेट भरते थे, तब फ़िलिस्तीन में जेरिको के मरुउद्यान के आस-पास का इलाक़ा बहुत से बहुत लगभग एक सौ अपेक्षाकृत तंदुरुस्त

और सुपोषित लोगों के घुमंतू समूह का भरण-पोषण कर पाता था। 8500 ईसा पूर्व के आस-पास, जब जंगली वनस्पतियों की जगह गेहूँ के खेतों ने ले ली, तब यह मरुद्यान उन 1,000 लोगों के एक बड़े, किन्तु तंग गाँव का भरण-पोषण करता था, जो बीमारियों और कुपोषण से कहीं ज़्यादा पीड़ित रहते थे।

विकास-प्रक्रिया का पैमाना ना तो भूख होती है और ना पीड़ा, बल्कि डीएनए छल्लों की प्रतिलिपियाँ होती हैं। जिस तरह किसी कम्पनी की आर्थिक क़ामयाबी को उसके कर्मचारियों की ख़ुशहाली से नहीं, बल्कि उसके बैंक-खाते में जमा डॉलरों की संख्या से मापा जाता है, उसी तरह किसी प्रजाति की विकासवादी सफलता को उसके डीएनए की प्रतिलिपियों से मापा जाता है। अगर उसके डीएनए की प्रतिलिपियाँ समाप्त हो जाती हैं, तो वह प्रजाति लुप्त हो जाती है, जिस तरह पैसे के बग़ैर कम्पनी दिवालिया हो जाती है। अगर किसी प्रजाति के पास डीएनए की बहुत सारी प्रतिलिपियाँ हैं, तो यह उसकी सफलता है, और वह प्रजाति फलती-फूलती है। इस दृष्टि से 1,000 प्रतिलिपियाँ सौ प्रतिलिपियों से हमेशा ही बेहतर हैं। कृषि क्रान्ति का सार यही है : बदतर परिस्थितियों में भी ज़्यादा से ज़्यादा लोगों को जीवित रखना।

लेकिन लोगों को इस विकासवादी गणना की परवाह क्यों करनी चाहिए? कोई भी स्वस्थ दिमाग़ व्यक्ति महज़ होमो सेपियन्स के जीन-समूह की प्रतिलिपियों की संख्या बढ़ाते जाने की ख़ातिर अपने जीवन-स्तर को क्यों गिराना चाहेगा? इस आदर्श से कोई सहमत नहीं था : कृषि क्रान्ति एक जाल था।

विलासिता का पिंजरा

कृषि का विस्तार एक बहुत ही क्रमिक प्रक्रिया थी, जो सदियों और सहस्राब्दियों तक फैली थी। मशरूम और फलों के बीजों का संग्रह करने वाले और हिरण तथा खरगोश का शिकार करने वाले होमो सेपियन्स के समूह ने अचानक गाँव में बस कर खेतों को जोतना, बोना और सिंचाई के लिए नदी से पानी लाना शुरू नहीं कर दिया था। परिवर्तन एक-एक सीढ़ी आगे बढ़ा और हर सीढ़ी पर रोज़मर्रा जीवन में छोटे-छोटे बदलाव आते गए।

होमो सेपियन्स लगभग 70,000 साल पहले मध्य पूर्व पहुँचे थे। अगले 50,000 सालों तक हमारे ये पूर्वज बिना खेती के फलते-फूलते रहे। उस इलाक़े के प्राकृतिक संसाधन वहाँ की मानव-आबादी का भरण-पोषण करने के लिए पर्याप्त थे। ख़ुशहाली के दिनों में लोग कुछ ज़्यादा बच्चे पैदा करते थे और अभाव के दिनों में कुछ कम। बहुत से स्तनधारी जीवों की ही तरह मनुष्यों में भी ऐसी हार्मोनल और जेनेटिक प्रक्रियाएँ होती हैं, जो प्रजनन को नियन्त्रित करने में मदद करती हैं। अच्छे समय में स्त्रियाँ तरुणाई की अवस्था में जल्दी पहुँच जाती हैं और उनके गर्भवती होने के अवसर कुछ ज़्यादा बढ़ जाते हैं। बुरे समयों में तरुणाई विलम्ब से आती है और उनकी उर्वरता में कमी आ जाती है।

आबादी के इन कुदरती नियन्त्रणों में सांस्कृतिक प्रक्रियाएँ भी जुड़ गईं थीं। शिशु और छोटे बच्चे, जो धीमी गति से चल पाते थे और ज़्यादा ध्यान दिए जाने की माँग करते थे, वे घुमंतू भोजन-खोजियों के लिए बोझ हुआ करते थे। लोग अपने बच्चों के बीच तीन या चार साल का अन्तर रखने की कोशिश करते थे। स्त्रियाँ यह सावधानी बरतने के

सिलसिले में अपने बच्चों को रात-दिन और ज़्यादा उम्र तक स्तनपान कराती थीं (रात-दिन स्तनपान कराने से गर्भवती होने की सम्भावना काफ़ी कम हो जाती है)। दूसरे तरीक़े थे यौन सम्बन्धों के मामले में पूर्ण या आंशिक परहेज़ (जिसे सम्भवतः सांस्कृतिक वर्जनाओं का समर्थन प्राप्त था), गर्भपात और कभी-कभार शिशु-हत्या।

इन लम्बी सहस्राब्दियों के दौरान लोग कभी-कभार गेहूँ खाते थे, लेकिन यह उनके आहार का छोटा-सा हिस्सा हुआ करता था। लगभग 18,000 साल पहले, अन्तिम हिम युग के बाद भूमण्डलीय तापमान वृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग) का काल-खण्ड आया। तापमान बढ़ा, तो बारिश में भी वृद्धि हुई। यह नई जलवायु मध्य पूर्व के गेहूँ और दूसरे अनाजों की पैदावार के लिए आदर्श थी, जिसमें वृद्धि और प्रसार हुआ। लोगों ने ज़्यादा मात्रा में गेहूँ खाना शुरू कर दिया और बदले में उन्होंने उसकी उपज में अनजाने वृद्धि की। चूँकि जंगली अनाज को साफ़, पीसे और पकाए बिना खाना असम्भव था, इसलिए लोग इन अनाजों को खाने लायक़ बनाने के लिए अपनी पीठ पर लाद कर अपने शिविरों में लाने लगे। गेहूँ के दाने छोटे और बड़ी संख्या में होते हैं, इसलिए कुछ अनाज शिविरों के रास्ते में गिर जाता था। समय बीतने के साथ मनुष्यों के आवागमन के इन रास्तों और शिविरों के क़रीब और गेहूँ पैदा होने लगा।

जब मानवों ने जंगलों और झाड़ों-झंखाड़ों को जलाया, तो इसने भी गेहूँ की मदद की। आग ने वृक्षों और झाड़ियों को साफ़ कर दिया, जिससे गेहूँ और दूसरी घासों को धूप, पानी और खाद पर एकाधिकार की गुंजाइश मिली। जिन जगहों पर गेहूँ विशेष रूप से विपुल मात्रा में था और शिकार तथा भोजन के अन्य संसाधन प्रचुरता से उपलब्ध थे, वहाँ के लोगों ने अपनी घुमंतू जीवन-शैली त्याग दी और वे वहाँ मौसमी तौर पर और यहाँ तक कि स्थायी शिविर बनाकर बस गए।

मुमकिन है, शुरू में उन्होंने फ़सल आने के दौरान चार हफ़्तों के शिविर लगाए हों। एक पीढ़ी बाद, जब गेहूँ के पौधों की तादाद बढ़ गई होगी और वे चारों ओर फैल गए होंगे, तो मुमकिन है फ़सली शिविर पाँच हफ़्तों तक, फिर छह हफ़्तों तक जारी रहे हों और अन्ततः वे स्थायी गाँव बन गए हों। इस तरह की बसावटों के साक्ष्य समूचे मध्य पूर्व में पाए गए हैं, विशेष रूप से लेवान्त में, जहाँ 12,500 ईसा पूर्व से 9500 ईसा पूर्व के बीच नातूफ़ियाई संस्कृति विकसित हुई थी। नातूफ़ियाई शिकारी और भोजन-संग्रहकर्ता थे, जो अपने उदर पोषण के लिए दर्जनों जंगली प्रजातियों पर निर्भर करते थे, लेकिन वे स्थायी गाँवों में रहते थे और अपना ज़्यादातर समय सघन रूप से भोजन-संग्रह करने और जंगली अनाजों को खाने योग्य बनाने के काम में लगाया करते थे। उन्होंने पत्थर के घर और अनाज रखने के कोठार तैयार किए थे। वे ज़रूरत के वक़्त के लिए अनाज संग्रह करके रखते थे। उन्होंने नए औज़ारों का आविष्कार किया, जैसे कि जंगली गेहूँ की फ़सल काटने के लिए पत्थर के हँसिए, और उसे पीसने के लिए पत्थर के मूसल और खरल।

9500 ईसा पूर्व के बाद के वर्षों में नातूफ़ियनों ने अनाज इकट्ठा करने और उसको खाने योग्य बनाने का काम जारी रखा, लेकिन उन्होंने और भी विस्तृत तरीक़ों से इन अनाजों की खेती शुरू कर दी। जंगली अनाजों को इकट्ठा करते समय वे अगले मौसम में खेतों में बोने के लिए फ़सल का एक हिस्सा बचाकर एक ओर रख देते थे। उनकी समझ में आ गया कि अनाजों को बेतरतीब ढंग से ज़मीन की सतह पर बिखेरने के बजाय

उसको ज़मीन में गहरे बोने से वे बेहतर परिणाम हासिल कर सकते हैं। इसलिए उन्होंने ज़मीन को खोदना और जोतना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे उन्होंने फ़सल को परजीवियों से बचाने के लिए खेतों की निराई भी शुरू कर दी और उनको पानी और खाद देना भी शुरू कर दिया। चूँकि ज़्यादातर उद्यम अनाज की खेती में लग गया, इसलिए भोज्य पदार्थों का संग्रह करने और शिकार करने के लिए कम समय बचने लगा। भोजन-खोजी किसान बन गए।

जंगली गेहूँ को इकट्ठा करने वाली स्त्रियों को घरेलू गेहूँ की खेती करने वाली स्त्रियों से अलग करने वाला कोई एक सोपान नहीं था, इसलिए यह कहना मुश्किल है कि खेती की दिशा में निर्णायक यात्रा की शुरुआत ठीक किस समय हुई, लेकिन 8500 ईसा पूर्व तक आते-आते मध्य पूर्व जेरिको जैसे गाँवों से भर गया था, जहाँ के निवासी कुछ घरेलू प्रजाति की खेती करने में अपना ज़्यादातर समय लगाते थे।

स्थायी गाँवों में बस जाने और भोजन की आपूर्ति में वृद्धि होने के साथ ही जनसंख्या बढ़ने लगी। घुमंतू जीवन-शैली को त्याग देने ने स्त्रियों को हर साल बच्चा पैदा करने में सक्षम बनाया। कम उम्र में बच्चों का माँ का दूध छुड़ा दिया जाता था - दलिया औ लपसी खिलाकर उनका पेट भरा जा सकता था। खेतों में काम करने के लिए अतिरिक्त हाथों की बुरी तरह ज़रूरत थी, लेकिन अतिरिक्त मुँह अतिरिक्त भोजन को जल्दी ही चाट जाते थे, इसलिए और ज़्यादा खेतों को उगाना ज़रूरी हो गया। जैसे-जैसे लोग रोगों से श्री बस्तियों में रहना शुरू करते गए, जैसे-जैसे बच्चे माँ के दूध के बजाय अन्न पर पलने लगे और जैसे-जैसे अपने दलिये को लेकर बच्चे की स्पर्धा ज़्यादा से ज़्यादा भाई-बहनों से बढ़ती गई, वैसे-वैसे बाल-मृत्यु दर में वृद्धि होती गई। ज़्यादातर कृषक समाजों में हर तीन में से एक बच्चा बीस साल की उम्र तक पहुँचने के पहले ही मर जाता था। तब भी जन्म दर में वृद्धि की गति मृत्यु दर में वृद्धि की गति से ज़्यादा थी, मनुष्यों ने बड़ी तादाद में बच्चों को पैदा करना जारी रखा।

समय के साथ ‘गेहूँ का सौदा’ उत्तरोत्तर महँगा पड़ने लगा। बच्चों की सामूहिक मौतें होतीं और वयस्कों को अपनी रोटी कमाने के लिए पसीना बहाना पड़ता था। 8500 ईसा पूर्व का जेरिको का एक औसत व्यक्ति 9500 ईसा पूर्व या 13,000 ईसा पूर्व के जेरिको के एक औसत व्यक्ति के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा मुश्किलों से भरा जीवन जी रहा था, लेकिन किसी को भी अहसास नहीं था कि क्या हो रहा था। हर अगली पीढ़ी सिर्फ़ अपने काम-काज के तरीक़ों में जहाँ-तहाँ छोटे-मोटे सुधार करते हुए अपनी पिछली पीढ़ी के जीवन के ढर्रे को जारी रखे हुए थी। विरोधाभास यह था कि ‘सुधारों’ की इस शृंखला ने इन किसानों के गले में और भी बोझ लटका दिया, हालाँकि इनमें से प्रत्येक सुधार से जीवन को और आसान बनाने की उम्मीद की गई थी।

लोगों ने ऐसी विनाशकारी भ्रान्तियाँ क्यों पालीं? उसी वजह से जिससे लोगों ने समूचे इतिहास के दौरान भ्रान्तियाँ पाली थीं। लोग अपने फ़ैसलों के पूरे नतीज़ों का सही आकलन करने में विफल रहे। जब भी उन्होंने थोड़ा-सा ज़्यादा काम करने का निर्णय लिया - जैसे कि बीजों को सतह पर छितराने के बजाय खेतों को खोदना - लोगों ने सोचा, “हाँ, हमें ज़्यादा मेहनत करनी पड़ेगी, लेकिन फ़सल भी तो भरपूर होगी! हमें मन्दी के सालों को लेकर चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं रह जाएगी। हमारे बच्चों को कभी भूखे

रहकर नहीं सोना पड़ेगा"। बात में दम था। अगर आप ज़्यादा मेहनत करेंगे, तो आपका जीवन बेहतर होगा। यह योजना थी।

योजना का पहला हिस्सा सरलता से पूरा हुआ। लोगों ने वाक़ई कड़ी मेहनत की, लेकिन लोगों ने यह अनुमान नहीं लगाया कि बच्चों की संख्या बढ़ेगी, जिसका मतलब होगा कि अतिरिक्त गेहूँ ज़्यादा बच्चों के बीच बँटेगा। ना ही इन शुरुआती दौर के किसानों ने इस बात को समझा कि कम स्तनपान कराने और ज़्यादा दलिया खिलाने से बच्चों का प्रतिरक्षी तन्त्र (इम्यून सिस्टम) कमज़ोर होगा और स्थायी बस्तियाँ बीमारियों का अड्डा होंगी। उन्होंने यह अनुमान नहीं लगाया कि भोजन के एक साधन पर अपनी निर्भरता को बढ़ाकर वे ख़ुद को दरअसल और भी ज़्यादा अकाल के विनाश के जोख़िम में झोंक रहे होंगे। ना ही इन किसानों ने यह अनुमान लगाया कि अच्छे वर्षों में उनके उफनते हुए अन्न भण्डार चोरों और दुश्मनों को ललचाएँगे, जिसकी वजह से उन्हें दीवारें खड़ी करनी पड़ेंगी और पहरेदारी करनी पड़ेगी।

लेकिन जब योजना नाक़ामयाब हो गई, तो किसानों ने खेती करना बन्द क्यों नहीं कर दिया दिया? कुछ तो इसलिए कि समाज को खड़ा करने और उसका रूपान्तरण करने में छोटे-छोटे बदलावों को पीढ़ियों का वक़्त लगा था और कुछ हद तक किसी को यह याद ही नहीं रह गया था कि वे कभी भिन्न तरीक़े से भी रहा करते थे। कुछ इसलिए कि जनसंख्या-वृद्धि ने मानव समाज के लिए उसकी पिछली अवस्था में लौटना असम्भव बना दिया था। अगर खेतों को जोतने की प्रक्रिया अपनाने ने किसी गाँव की आबादी को सौ से बढ़ाकर 110 कर दिया था, तो उनमें से कौन-से दस लोग इसलिए भूखे मरने को तैयार होते, ताकि बाक़ी लोग अपने अच्छे समय की ओर लौट सकते? वापसी असम्भव थी। पिंजरा एक झटके से बन्द हो चुका था।

एक ज़्यादा आसान जीवन की खोज ज़्यादा बड़ी मुसीबत का कारण बन गई, और यह आख़िरी बार नहीं हुआ था। ये हमारे साथ आज भी होता है। महाविद्यालयों में शिक्षित कितने सारे नौजवान बड़ी-बड़ी फ़र्मों में इस संकल्प के साथ कठोर परिश्रम की माँग करने वाली नौकरियाँ करते हैं कि वे कड़ी मेहनत करके इतना पैसा कमा लेंगे कि जब वे पैंतीस साल के हो जाएँगे, तो वे रिटायरमेंट ले लेंगे और वह पैसा उनकी ज़िन्दगी के वास्तविक लक्ष्यों को पूरा करने के काम आएगा? लेकिन जब तक वे उस उम्र तक पहुँचते हैं, तो उनके सिर पर ढेर सारे क़र्ज़ होते हैं, बच्चे स्कूलों में होते हैं, उपनगरों में मकान होते हैं, जिनके लिए हर परिवार को दो-दो कारों की ज़रूरत होती है और यह अहसास साथ लगा रहता है कि अच्छी शराब और महँगी विदेशी यात्राओं के बिना ज़िन्दगी रहने लायक़ नहीं होती। उनसे क्या उम्मीद की जाती है कि वे वापस जाकर अपनी जड़ों की तलाश करेंगे? नहीं, वे अपने उद्यमों को दुगुना कर देते हैं और कड़ी मेहनत करना जारी रखते हैं।

इतिहास के थोड़े से फ़ौलादी नियमों में से एक नियम यह है कि विलासिताएँ ज़रूरतें बनने की ओर प्रवृत्त होती हैं और नई ज़िम्मेदरियों का कारण बनती हैं। एक बार जब लोग किसी ख़ास विलासिता के अभ्यस्त हो जाते हैं, तो उस वक़्त वे उसके महत्त्व को नहीं समझते। इसके बाद वे उस पर निर्भर करने लगते हैं। अन्त में वे एक ऐसे मुक़ाम पर पहुँच जाते हैं, जहाँ वे उसके बिना रह ही नहीं सकते। हम अपने ही वक़्त का एक चिर-परिचित

उदाहरण लें। पिछले कुछ दशकों के दौरान हमने समय बचाने वाले ऐसे असंख्य उपकरणों को ईजाद किया है, जिनसे यह उम्मीद की जाती है कि वे हमारी ज़िन्दगियों को ज़्यादा आरामदेह बनाएँगे - वाशिंग मशीन, वैक्यूम क्लीनर्स, बर्तन धोने वाली मशीनें, टेलिफ़ोन, मोबाइल फ़ोन, कम्प्यूटर और ईमेल। पहले ख़त लिखने, लिफ़ाफ़े पर पता अंकित करने, टिकट चिपकाने और फिर उसे डाक के डिब्बे तक ले जाने में ढेर-सा वक़्त लगता था। ख़त का जवाब हासिल करने में कई-कई दिन या हफ़्ते या महीनों तक लग जाते थे। आज मैं आनन-फानन एक ईमेल लिखकर भूमण्डल के किसी भी कोने में भेज सकता हूँ और (अगर मेरा पता ऑनलाइन है तो) मिनट भर के भीतर उसका जवाब हासिल कर सकता हूँ। मैंने सारी झंझटों और वक़्त को बचा लिया, लेकिन क्या मैं ज़्यादा निश्चिन्त ज़िन्दगी जी रहा हूँ?

दुर्भाग्य से ऐसा नहीं है। कछुआ चाल वाली (पोस्ट ऑफ़िस वाली) डाक के ज़माने में लोग आमतौर से तभी ख़त लिखा करते थे, जब उन्हें कोई महत्त्वपूर्ण या ज़रूरी बात कहनी होती थी। जो दिमाग़ में आया, उसे लिख देने के बजाय वे अपनी बात पर और उसको शब्दों में बाँधने के ढंग पर गम्भीरता से विचार करते थे। वे इसी तरह के सुविचारित जवाब की उम्मीद भी करते थे। ज़्यादातर लोग महीने में थोड़े से ख़त लिखा करते थे और उन्हें थोड़े से जवाब मिला करते थे और कभी-कभार ही तत्काल जवाब देने ज़रूरत महसूस करते थे। आज मुझे हर दिन दर्जन भर ईमेल आते हैं, तमाम ऐसे लोगों के ईमेल जो तत्काल जवाब की अपेक्षा करते हैं। हम सोचते थे कि हम समय बचा रहे हैं। इसके बजाय हमने जीवन की चक्की को पहले के मुक़ाबले दस गुना तेज़ी से घुमाया और अपनी दिनचर्या को कहीं ज़्यादा उद्विग्नता और क्षोभ से भर लिया।

जहाँ-तहाँ नई तकनीक का विरोध करने वाला ऐसा कोई व्यक्ति मिल जाता है, जो ईमेल अकाउंट खोलने से इनकार करता है। उसी तरह जैसे हज़ारों साल पहले मनुष्यों के कुछ समूहों ने खेती करने से इनकार कर दिया था और इस तरह वे विलासिता के फन्दे में क़ैद होने से बच गए थे, लेकिन कृषि क्रान्ति के लिए उसमें किसी क्षेत्र के हर समूह के शामिल होने की दरकार नहीं थी। उसने सिर्फ़ एक ही समूह को शामिल किया। जैसे ही एक बारगी एक समूह बसा और उसने हल चलाना शुरू किया, चाहे मध्य पूर्व या मध्य अमेरिका में, वैसे ही कृषि के प्रसार को रोकना असम्भव हो गया। चूँकि खेती ने तेज़ी के साथ जनसंख्या-वृद्धि की परिस्थितियाँ निर्मित कर दी थीं, किसानों ने महज़ अपनी संख्या के बूते पर भोजन-खोजियों को पछाड़ दिया। उनके पास दो ही विकल्प थे - या तो वे अपने शिकारगाहों को खेतों और चरागाहों में बदल जाने के लिए छोड़कर भाग जाते या ख़ुद भी हल सँभाल लेते। दोनों ही स्थितियों में उनका पुराना जीवन मरणोन्मुख था।

विलासिता के फन्दे के इस क़िस्से में एक महत्त्वपूर्ण सीख छिपी है। एक आसान ज़िन्दगी की मानव जाति की खोज ने परिवर्तन के ऐसे अपरिमित बल को उत्पन्न किया, जिसने दुनिया को इस तरह बदल कर रख दिया, जिसकी ना तो किसी ने कल्पना की थी और ना आकांक्षा की थी। कृषि क्रान्ति की साजिश किसी ने नहीं रची थी, ना ही किसी ने अनाज की खेती पर मनुष्य को निर्भर बनाने की कोशिश की थी। यह थोड़े से पेटों को भरने और थोड़ी सी सुरक्षा हासिल करने के उद्देश्य से लिए गए बहुत से तुच्छ फ़ैसलों का उत्तरोत्तर बढ़ता प्रभाव था, जिसने प्राचीन भोजन-खोजियों को चिलचिलाती धूप में पानी

ढोने पर मजबूर कर दिया था।

दैवीय हस्तक्षेप

उपर्युक्त परिदृश्य स्पष्ट करता है कि कृषि क्रान्ति किस तरह ग़लत अनुमान पर आधारित एक भूल थी। यह क़तई मुमकिन है। इतिहास इससे भी ज़्यादा मूर्खतापूर्ण भूलों से भरा हुआ है, लेकिन एक और सम्भावना भी है। मुमकिन है कि यह एक सुविधाजनक ज़िन्दगी की खोज ना रही हो, जिसने इस रूपान्तरण को घटित किया। मुमकिन है कि सेपियन्स की कोई और अभिलाषाएँ रही हों और उन्हें पूरा करने के लिए वे अपनी ज़िन्दगियों को जान-बूझकर मुश्किल बनाना चाहते रहे हों।

विज्ञानी सामान्यतः ऐतिहासिक घटनाक्रमों के लिए कठोर आर्थिक और जनसंख्यापरक कारकों को ज़िम्मेदार ठहराने की कोशिश करते हैं। ये उनकी तार्किक और गणितीय पद्धतियों के अनुकूल बैठने वाली बात है। आधुनिक इतिहास के मामले में अध्येता विचारधारा और संस्कृति जैसे अभौतिक कारकों को ध्यान में लेने को टाल नहीं सकते। लिखित साक्ष्य उन्हें मजबूर करता है। यह साबित करने के लिए हमारे पास ऐसे पर्याप्त दस्तावेज़, ख़त और संस्मरण हैं कि द्वितीय विश्वयुद्ध भोजन की कमी या जनसंख्या के दबावों का नतीज़ा नहीं था, लेकिन नातूफ़ियाई संस्कृति का हमारे पास कोई दस्तावेज़ नहीं है, इसलिए प्राचीन युगों की चर्चा करते समय भौतिकतावादी सम्प्रदाय का बोलबाला होता है। यह साबित करना मुश्किल है कि साक्षरता पूर्व युग के लोग आर्थिक अनिवार्यता की जगह आस्था से उत्प्रेरित रहे हो सकते थे।

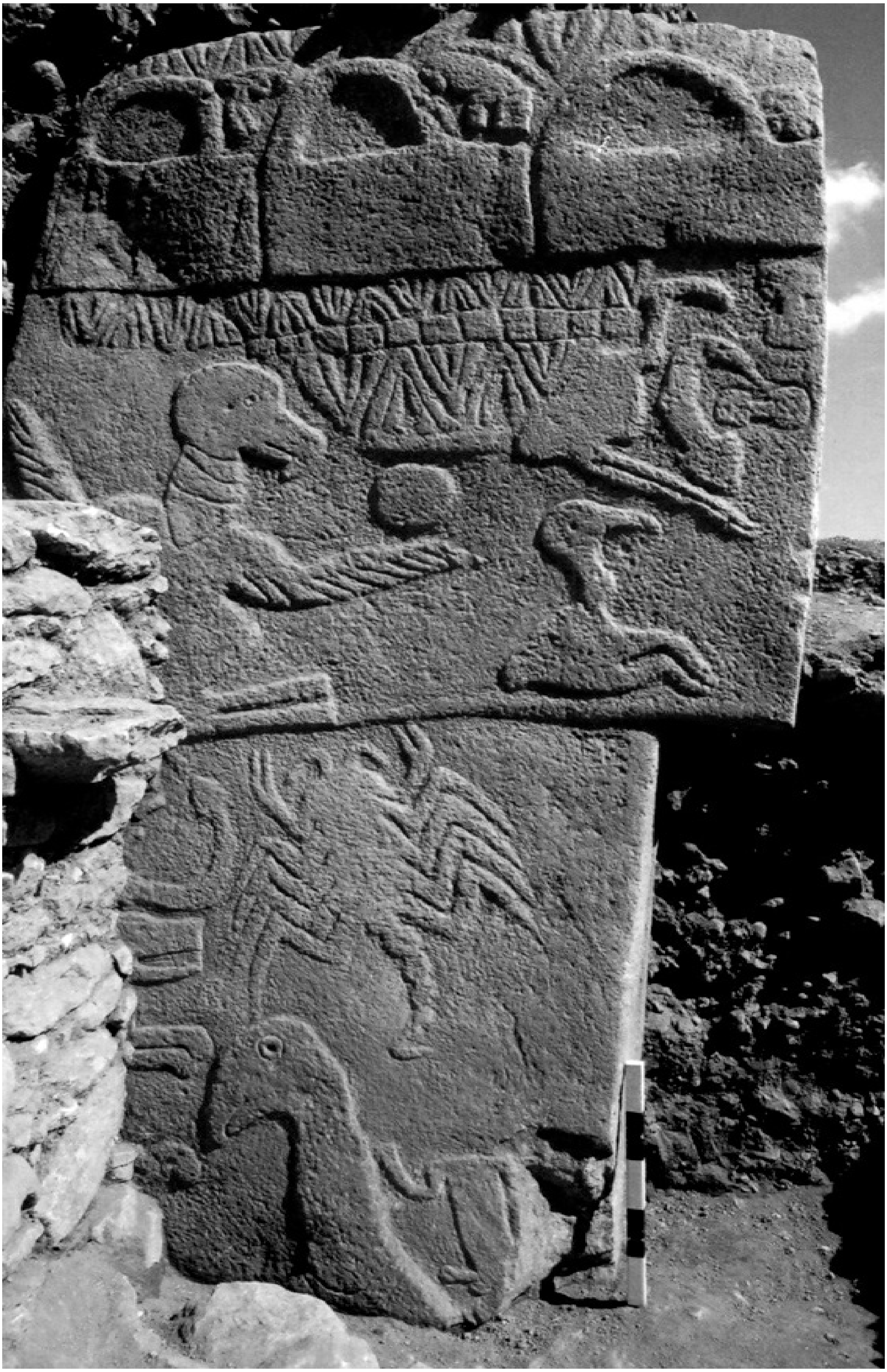

12. गोबेक्ली तेपे के एक स्मारक के अवशेष (अगले पृष्ठ पर)। दाएँ : पत्थर का एक अलंकृत स्तम्भ (लगभग 5 मीटर ऊँचा)।

तब भी कुछ विरले मामलों में सौभाग्य से हमें कुछ स्पष्ट संकेत देने वाले सुराग़ हाथ लग ही जाते हैं। 1995 में पुरातत्त्वविदों ने दक्षिण-पूर्व तुर्की में गोबेक्ली तेपे नामक स्थल पर खुदाई शुरू की। प्राचीनतम परतों में भी उन्हें किसी बसावट, किन्हीं मकानों या रोज़मर्रा गतिविधियों के कोई निशान नहीं मिले, लेकिन उन्हें असाधारण उत्कीर्णनों से सज्जित विशालकाय स्तम्भों वाले ढाँचे ज़रूर मिले। पत्थर का प्रत्येक स्तम्भ सात टन तक वज़न का और पाँच मीटर ऊँचा था। पास ही की एक खदान में उन्हें आधा तराशा गया एक स्तम्भ मिला, जिसका वज़न पचास टन था। कुल मिलाकर उन्होंने दस से ज़्यादा विशाल ढाँचों को खोद निकाला, जिनमें सबसे बड़ा लगभग तीस मीटर का था।

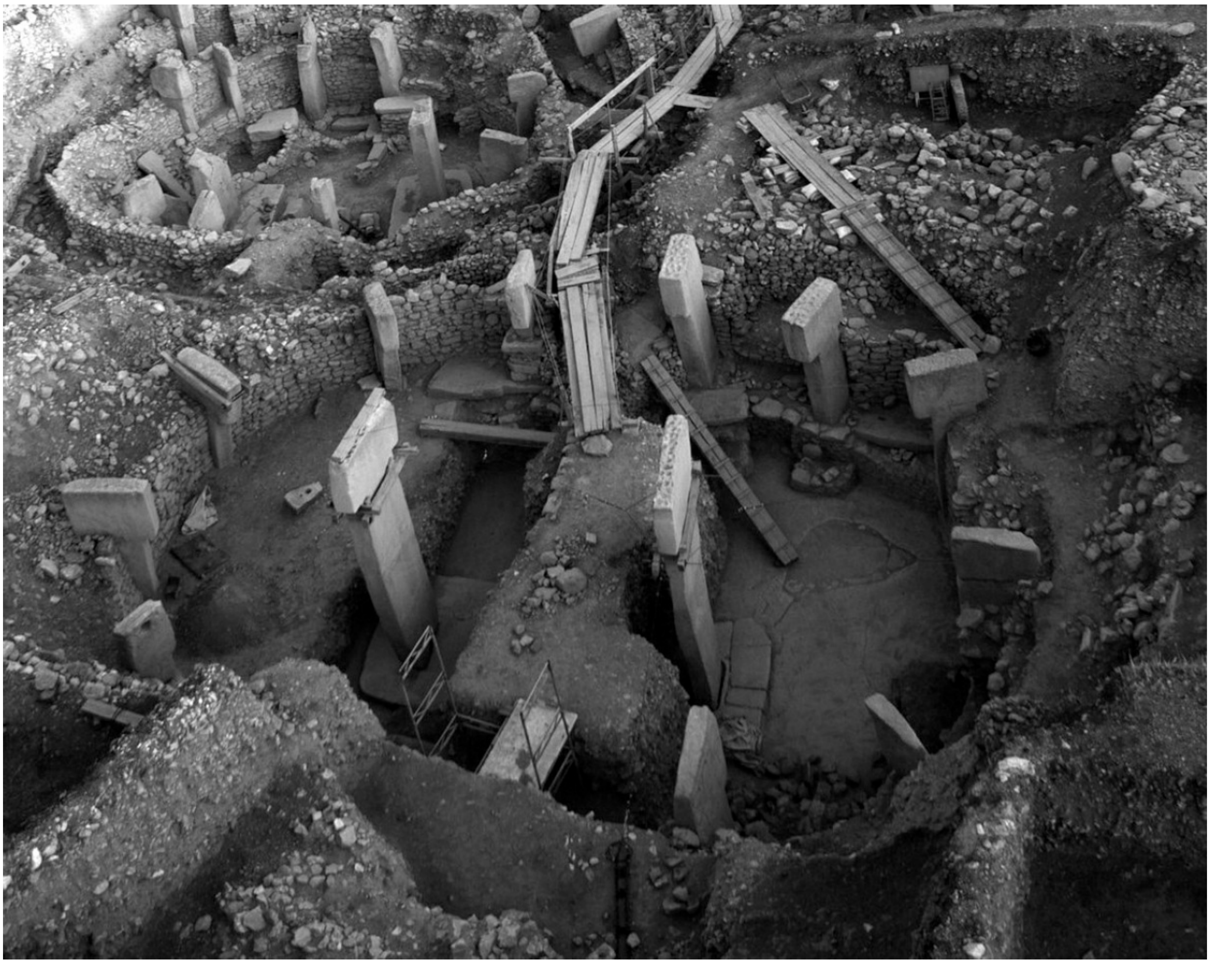

पुरातत्त्वविद दुनियाभर में फैले स्थलों पर इस तरह के विशाल ढाँचों से भली-भाँति परिचित हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध उदाहरण ब्रिटेन का स्टोनहेंज है, लेकिन जब उन्होंने गोबेक्ली तेपे का अध्ययन किया, तो उन्हें एक विस्मयकारी तथ्य का पता चला। स्टोनहेंज 2500 साल ईसा पूर्व पुराना है और उसका निर्माण एक विकसित कृषक समाज ने किया था। गोबेक्ली तेपे के ढाँचे 9500 ईसा पूर्व पुराने हैं और सारे उपलब्ध प्रमाण इस ओर संकेत करते हैं कि उनका निर्माण शिकारी-भोजन-संग्रहकर्ताओं द्वारा किया गया था।

पुरातत्त्वविदों के समुदाय को शुरुआत में इन खोजों का श्रेय देना मुश्किल प्रतीत हुआ, लेकिन एक के बाद एक परीक्षणों ने इन ढाँचों की पुरानी तिथि और इनके निर्माण-कर्ताओं के कृषि-पूर्व समाजों के होने की पुष्टि की। प्राचीन भोजन-खोजियों की क्षमताएँ और उनकी संस्कृतियों की पेचीदगी उससे कहीं ज़्यादा प्रभावशाली प्रतीत होती है, जितने का अनुमान पहले किया जाता रहा था।

एक भोजन-खोजी समाज ने इस तरह के ढाँचों का निर्माण क्यों किया होगा? इनका कोई ज़ाहिर उपयोगितापरक उद्देश्य नहीं है। वे ना तो मैमथ के बूचड़ख़ाने थे ना बारिश से बचने या शेरों से छिपने के आश्रय-स्थल थे। इससे हमारे पास यही अनुमान बच रहता है कि इनका निर्माण किसी रहस्यमय सांस्कृतिक उद्देश्य से किया गया था, जिसकी गुत्थी सुलझाना पुरातत्त्वविदों के लिए बड़ी चुनौती है। उद्देश्य जो भी रहा हो, लेकिन भोजन-खोजियों का यह काम इतना महत्त्वपूर्ण तो था ही कि उन्होंने इस पर अपार उद्यम और समय ख़र्च किया। गोबेक्ली तेपे के निर्माण का एकमात्र प्रयोजन विभिन्न समूहों से जुड़े हज़ारों भोजन-खोजियों का लम्बे समय तक एक दूसरे के साथ सहयोग करना रहा होगा। एक परिष्कृत रूप से धार्मिक या वैचारिक व्यवस्था ही इस तरह के उद्यमों को सहारा दे सकी होगी।

गोबेक्ली तेपे में एक और सनसनीख़ेज़ रहस्य निहित है। आनुवांशिकी विज्ञानी वर्षों से कृषि-उत्पादित गेहूँ के उद्गमों का पता लगाने में जुटे रहे हैं। हाल की खोजें संकेत करती हैं कि कृषि-उत्पादित गेहूँ की कम से एक क़िस्म 'एन्कॉर्न ह्वीट' का उद्गम काराज़ेदाग हिल्स में है, जो गोबेक्ली तेपे से लगभग तीस किलोमीटर की दूरी पर स्थित है।

यह शायद ही एक संयोग हो सकता है। पूरी सम्भावना है कि गोबेक्ली तेपे का सांस्कृतिक केन्द्र किसी रूप में मानव-जाति द्वारा किए गए गेहूँ के शुरुआती कृषिपरक-उत्पादन से जुड़ा रहा हो और मानव-जाति गेहूँ से जुड़ी रही हो। इन विशाल ढाँचों का निर्माण और इस्तेमाल करने वाले लोगों का उदर-पोषण करने के लिए ख़ास तौर से बड़ी मात्रा में भोजन की ज़रूरत रही होगी। यह बहुत मुमकिन है कि भोजन-खोजियों ने जंगली गेहूँ का संचय करने का काम छोड़कर गेहूँ की सघन खेती को अपना लिया हो। ऐसा उन्होंने अपनी सामान्य भोजन-आपूर्ति को बढ़ाने के लिए नहीं, बल्कि धार्मिक स्थल के निर्माण और संचालन को सहारा देने के लिए किया हो। जो पारम्परिक तसवीर उभरती है, उसके मुताबिक़ अगुआई करने वाले पहले गाँव की स्थापना करते थे और जब गाँव में समृद्ध आ जाती थी, तो वे उसके बीच में धार्मिक स्थल तैयार करते थे, लेकिन गोबेक्ली तेपे संकेत देता है कि धार्मिक स्थान का निर्माण पहले हुआ और फिर उसके इर्द-गिर्द एक गाँव बस गया।

क्रान्ति के शिकार

मनुष्यों और अनाजों के बीच किया गया शैतानी समझौता (फ़ाउस्टियन बार्गेन) हमारी प्रजाति द्वारा किया गया एकमात्र सौदा नहीं था। एक और भी सौदा किया गया था, जिसका ताल्लुक भेड़ों, बकरियों, सूअरों और मुर्गों जैसे प्राणियों की नियति से था। जंगली भेड़ों का पीछा करने वाले खानाबदोश समूहों ने उन रेवड़ों की संरचना को धीरे-

धीरे बदल दिया, जिनका वे शिकार करते थे। मनुष्यों को यह बात समझ में आ गई कि सिर्फ़ वयस्क मेढ़ों और बूढ़ी या बीमार भेड़ों का शिकार करना ही उनके हित में है। स्थानीय रेवड़ की दीर्घकालीन जीवनी-शक्ति की हिफ़ाज़त को ध्यान में रखते हुए वे उर्वर मादाओं और मेमनों को बख़्शने लगे। दूसरा क़दम शेरों, भेड़ियों और प्रतिद्वन्द्वी मानव-समूहों को दूर खदेड़ कर परभक्षियों से रेवड़ का बचाव करना रहा हो सकता है। इसके बाद मुमकिन है कि समूह के लोग रेवड़ को बेहतर ढंग से नियन्त्रित करने और उसका बचाव करने के उद्देश्य से उसको तंग घाटियों में घेर कर रखने लगे हों। अन्त में लोगों ने मानवीय ज़रूरतों के मुताबिक़ भेड़ों को सावधानीपूर्वक चुनना शुरू कर दिया। जो मेढ़े ज़्यादा आक्रामक होते थे, जो मानवीय नियन्त्रण के प्रति सबसे ज़्यादा विरोध प्रदर्शित करते थे, उन्हें सबसे पहले काटा जाता था। इसी तरह सबसे ज़्यादा दुबली-पतली और जिज्ञासु (भेड़ चाल से अलग) क़िस्म की मादाओं को पहले काटा जाता था (गड़रियों को ऐसी भेड़ें पसन्द नहीं आतीं, जो अपनी जिज्ञासा के चलते झुण्ड से दूर चली जाती हैं)। हर नई पीढ़ी के साथ भेड़ें ज़्यादा मोटी और आज्ञाकारी तथा कम जिज्ञासु होती गईं। वाह! मेरी के पास एक छोटा-सा मेमना था और जहाँ कहीं मेरी जाती मेमना भी वहीं जाता।

या फिर शिकारी किसी मेमने को पकड़कर और उसे 'अपनाकर' ख़ुशहाली के दिनों में उसे मोटा कर सकते थे और फिर तंगी के मौसम में उसे काट सकते थे। बाद में कोई ऐसा वक़्त आया, जब उन्होंने बड़ी तादाद में ऐसे मेमनों को पालना शुरू कर दिया। इनमें से कुछ तरुण हो गए और उन्होंने प्रजनन करना शुरू कर दिया। सबसे ज़्यादा आक्रामक और उपद्रवी मेमनों को सबसे पहले काटा जाता था। जो सबसे ज़्यादा नियन्त्रण में रहने वाले और सबसे ज़्यादा आकर्षक मेमने होते थे, उन्हें लम्बे समय तक जीवित रहने दिया जाता था और प्रजनन करने की छूट जाती थी। इसका परिणाम था पालतू और आज्ञाकारी भेड़ों का झुण्ड।

इस तरह के पालतू जानवर - भेड़ें, मुर्गे, बन्दर और अन्य जानवर - भोजन (मांस, दूध, अण्डे), कच्चा माल (खाल, ऊन) और शारीरिक श्रम उपलब्ध कराते थे। सामान ढोने, हल खींचने, कूटने-पीसने और ऐसे ही दूसरे काम, जिनमें अब तक मानवीय श्रम लगता था, अब उत्तरोत्तर जानवरों से कराए जाने लगे। ज़्यादातर कृषक समाजों में लोग पौधों की खेती पर ध्यान देते थे, जानवरों को पालना दूसरे नम्बर की गतिविधि थी, लेकिन कुछ स्थलों पर एक नए क़िस्म का समाज भी प्रकट हुआ, जो बुनियादी तौर पर जानवरों के शोषण पर आधारित था : पशुपालक गड़रियों के क़बीले।

जैसे-जैसे मनुष्य दुनिया भर में फैलते गए, वैसे-वैसे उनके पालतू जानवर भी फैलते गए। दस हज़ार साल पहले तक सीमित अफ़्रो-एशियाई पर्यावरणों में रहने वाली भेड़ों, गाय-बैलों, बकरियों और मुर्गों की संख्या कुछ लाख से ज़्यादा नहीं थी। आज दुनिया में एक अरब भेड़ें, एक अरब सूअर, एक अरब से ज़्यादा गाय-बैल, और पच्चीस अरब से ज़्यादा मुर्गे हैं, जो समूचे भूमण्डल में फैले हैं। पालतू मुर्गा अब तक का सबसे ज़्यादा व्यापक पालतू पक्षी है। होमो सेपियन्स के बाद पालतू गाय-बैल, सूअर और भेड़ें दुनिया के दूसरे, तीसरे और चौथे नम्बर के सर्वाधिक व्यापक बड़े स्तनधारी हैं। संकुचित विकासवादी दृष्टिकोण डीएनए की प्रतिलिपियों की संख्या के आधार पर सफलता का

आकलन करता है। इसके मुताबिक़ कृषि क्रान्ति मुर्गों, गाय-बैलों, सूअरों और भेड़ों के लिए एक अद्भुत वरदान थी।

दुर्भाग्य से विकासवादी दृष्टिकोण क़ामयाबी का एक अधूरा पैमाना है। यह व्यक्तियों के दुःख-सुख को ध्यान में रखे बग़ैर हर चीज़ को जीवित बने रहने और प्रजनन करते रहने के मापदण्ड से परखता है। पालतू मुर्गे और गाय-बैल भले ही विकासवादी सफलता की कहानी कहते हों, लेकिन वे दुनिया के अब तक के सबसे ज़्यादा दयनीय प्राणी भी हैं। पशुओं का पालतूकरण अनेक नृशंस तौर-तरीक़ों पर आधारित था, जो बाद की सदियों के गुज़रने के साथ-साथ और भी क्रूरतापूर्ण होते गए।

एक जंगली मुर्गे का जीवन-काल लगभग सात से बारह बरस और गाय-बैल का लगभग बीस से पच्चीस बरस का होता है। जंगलों में ज़्यादातर मुर्गे और गाय-बैल इससे काफ़ी पहले मर जाते थे, लेकिन तब भी उनके पास काफ़ी बरसों तक ज़िन्दा रहने के अवसर होते थे। इसके विपरीत बड़ी तादाद में पालतू मुर्गों और गाय-बैलों को कुछ ही हफ़्तों और कुछ ही महीनों की उम्र के बीच काट दिया जाता है क्योंकि आर्थिक नज़रिये से यह हमेशा से वध किए जाने की सबसे अच्छी उम्र मानी जाती रही है। (अगर एक मुर्गा तीन महीने में ही अधिकतम वज़न हासिल कर लेता है, तो फिर उसे तीन साल तक खिलाते-पिलाते रहने का क्या फ़ायदा है?)

अण्डे देने वाली मुर्गियों, दुधारू गायों और बोझा ढोने वाले जानवरों को कभी-कभी कुछ ज़्यादा वर्षों तक जीने की छूट दे दी जाती है, लेकिन इसके लिए उन्हें एक ऐसी जीवन-शैली के अधीन रहने की क़ीमत चुकानी पड़ती है, जो उनकी उत्कण्ठाओं और लालसाओं के सन्दर्भ में पूरी तरह बेगानी होती है। मसलन, यह मानना तर्कसंगत होगा कि बैल को कोड़े फटकारते एक वानर की दासता के तले बैलगाड़ी में जुतने और हल ढोने के बजाय दूसरे बैलों और गायों के साथ घास के खुले मैदानों में भटकना अच्छा लगता है।

बैलों, घोड़ों, गधों और ऊँटों को बोझा ढोने वाले आज्ञाकारी जानवरों में बदलने के लिए उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों पर लगाम कसना और उनके सामाजिक रिश्तों को तोड़ना, उनकी आक्रामकता और कामवासना को नियन्त्रित करना और उनकी आवाजाही की स्वतन्त्रता में कटौती करना ज़रूरी होता है। किसानों ने इसके लिए उन्हें बाड़ों और पिंजरों में बन्द करने, नकेलों और ज़ीनों से कसने, चाबुकों और अंकुषों से नियन्त्रित करने और अंग-भंग कर देने जैसी युक्तियाँ विकसित कर लीं। पालतूकरण की प्रक्रिया में नरों को बधिया करना लगभग हमेशा शामिल होता है। यह चीज़ नरों की आक्रामकता को क़ाबू करती है और रेवड़ के प्रजनन को मनमाफ़िक ढंग से नियन्त्रित करने में मनुष्यों को सक्षम बनाती है।

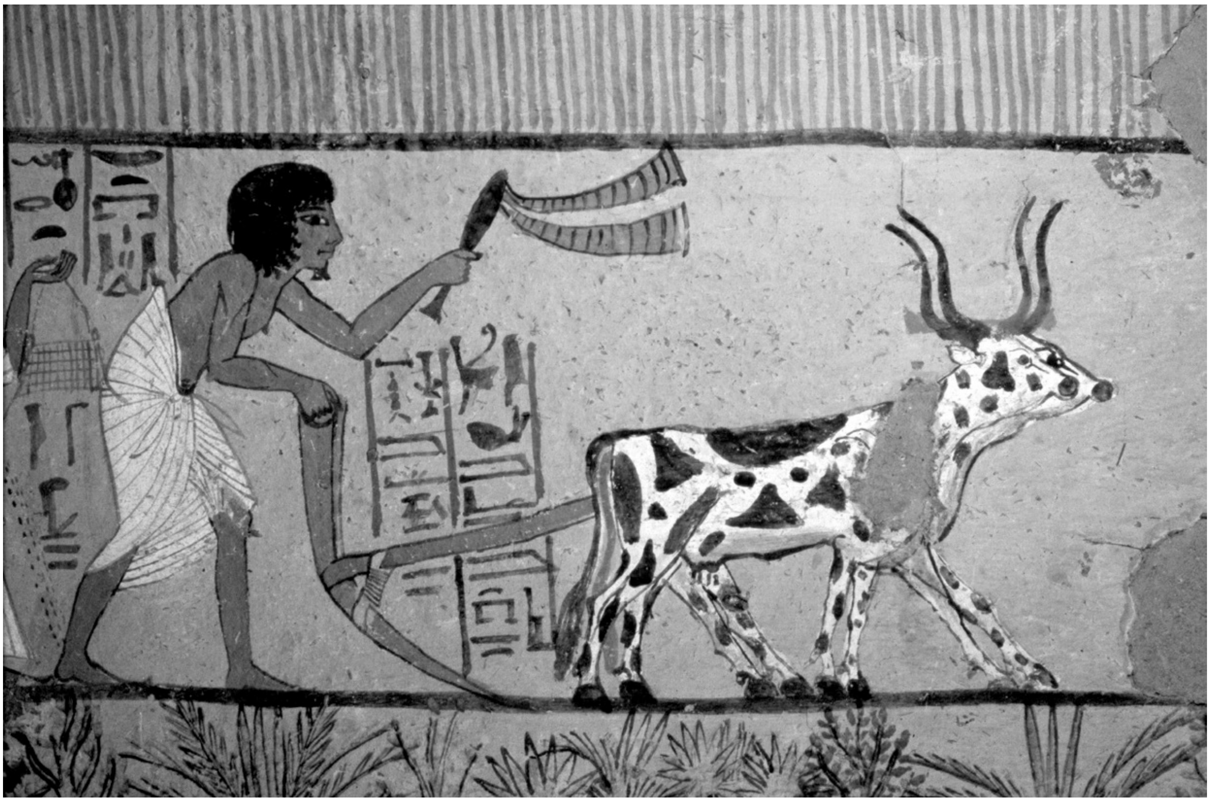

14. लगभग 1200 ईसा पूर्व का मिस्र की एक क़ब्र पर अंकित चित्र। बैलों का जोड़ा खेत जोत रहा है। जंगल में मवेशी एक जटिल सामाजिक संरचना के साथ झुण्डों में अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ घूमा करते थे। बधिया किया हुआ और पालतू बना लिया गया बैल एक सँकरे बाड़े में चाबुक से क़ाबू में रहते हुए अपना जीवन बरबाद करता था। वह अकेला या जोड़े में उस तरह की कड़ी मशक्कत में जुता रहता था, जो ना तो उसकी शारीरिक क्षमता से मेल खाती थी, ना उसकी सामाजिक और भावनात्मक ज़रूरतों से। जब कोई बैल हल खींचने में असमर्थ हो जाता था, तो उसको काट दिया जाता था। (मिस्र के उस किसान की झुकी हुए मुद्रा पर ध्यान दें, जो काफ़ी कुछ बैल की ही तरह देह, दिमाग़ और सामाजिक रिश्तों को कुचल देने वाली कड़ी मेहनत करते हुए अपना जीवन बिताता था।)

अनेक न्यू गिनियाई समाजों में पारम्परिक रूप से किसी व्यक्ति की समृद्धि का निर्धारण इस बात से होता था कि उसके पास कितने सूअर थे। यह सुनिश्चित करने के लिए कि सूअर भाग ना जाएँ, न्यू गिनी के किसान हर सूअर की नाक का एक छोटा-सा टुकड़ा काट देते थे। इससे सूअर जब सूँघने की कोशिश करता था, तो उसे तेज़ दर्द होता था। चूँकि सूअर सूँघे बग़ैर अपना भोजन या यहाँ तक कि अपना रास्ता भी नहीं खोज सकते, यह अंग-भंग उन्हें पूरी तरह से उनके इंसानी मालिकों के अधीन बना देता है। न्यू गिनी के एक अन्य इलाक़े में सूअरों की आँखें निकाल लेने की प्रथा रही है, ताकि वे अपना रास्ता भी नहीं देख सकें।

जानवरों को अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ चलने पर मज़बूर करने के डेरी उद्योग के अपने ढंग रहे हैं। गायें, बकरियाँ और भेड़ें तभी दूध देती हैं, जब वे बछड़ों, और मेमनों को जन्म देती हैं और जब तक उनके ये बच्चे स्तनपान करते हैं। इन जानवरों के दूध की आपूर्ति को जारी रखने के लिए किसान के लिए ज़रूरी होता है कि स्तनपान के लिए बछड़े और मेमने हों, लेकिन उन्हें दूध पर एकाधिकार से वंचित रखना भी अनिवार्य होता है। इसके लिए समूचे इतिहास के दौरान अपनाया जाता रहा आम तरीक़ा बछड़ों और मेमनों का उनके जन्म के कुछ समय बाद वध कर उनकी माँ का सारा दूध निकालते रहना और उन्हें

फिर से गर्भवती बनाना रहा है। यह अभी भी काफ़ी व्यापक तौर पर अपनाई जाने वाली तकनीक है। बहुत से आधुनिक डेरी फ़ार्मों में एक दुधारू गाय काटे जाने के पहले सामान्यतः पाँच साल जीवित रहती है। इन पाँच सालों के दौरान वह लगभग लगातार गर्भवती बनी रहती है और जन्म देने के साठ से 120 दिनों के भीतर उसका गर्भाधान करा दिया जाता है, ताकि दूध का अधिकतम उत्पादन सुरक्षित बना रह सके। उसके बछड़ों को जन्म लेने के कुछ ही समय बाद उससे जुदा कर दिया जाता है। बछियों को दुधारू गायों की अगली पीढ़ी के तौर पर पाला जाता है, जबकि बछड़ों को मांस उद्योग के हाथों में सौंप दिया जाता है।

एक अन्य तरीक़ा बछड़ों और मेमनों को उनकी माँओं के क़रीब बनाए रखना, लेकिन तरह-तरह की युक्तियों के सहारे उन्हें बहुत ज़्यादा दूध पीने से रोकना है। इसका सबसे सरल तरीक़ा मेमने या बछड़े को स्तनपान की छूट देना और दूध का प्रवाह शुरू होते ही उसे वहाँ से दूर भगा देना है। इस तरीक़े को सामान्यतः माँ और बच्चे दोनों का विरोध झेलना पड़ता है। गड़रियों के कुछ क़बीले बछड़ों या मेमनों को मार दिया करते थे, उनका मांस खा लेते थे और उनकी चमड़ी के ढाँचे को घास से भर देते थे। इसके बाद इस घास से भरे हुए बच्चे को उसकी माँ के सामने खड़ा कर दिया जाता था, ताकि उसकी मौजूदगी उसे दूध पैदा करने के लिए प्रोत्साहित करे। सूडान के न्यूएर क़बीले ने तो यहाँ तक किया कि वे घास से भरे जानवरों पर उनकी माँ का मूत्र चुपड़ देते थे, ताकि इन नक़ली बछड़ों से पहचानी हुई जीवित गन्ध आ सके। न्यूएर क़बीले की एक और युक्ति यह थी कि वे बछड़े के मुँह पर काँटों का एक छल्ला बाँध देते थे, जो माँ को चुभता था और वह बछड़े को स्तनपान करने से रोकती थी। ऊँटों का प्रजनन करने वाले सहारा के तुआरेग लोग ऊँट के बच्चों की नाक के कुछ हिस्से और ऊपरी होंठ में छेद कर देते थे या उसे काट देते थे, जिससे उन्हें स्तनपान करने में तकलीफ़ होती थी और इस तरह वे बहुत ज़्यादा स्तनपान करने से हतोत्साहित होते थे।

सारे कृषक समाज अपने पालतू जानवरों के प्रति इतने क्रूर नहीं थे। कुछ पालतू जानवरों का जीवन ख़ासा अच्छा भी हो सकता था। ऊन के लिए पाली जाने वाली भेड़ें, पालतू कुत्ते और बिल्लियाँ, युद्ध और घुड़दौड़ में इस्तेमाल किए जाने वाले घोड़े अक्सर आरामदेह परिस्थितियों में रहते थे। कहा जाता है कि रोमन सम्राट कालिगुला ने इंसीटेटॅस नामक अपने प्रिय घोड़े को कौंसल के पद पर नियुक्त करने की योजना बनाई थी। समूचे इतिहास के दौरान गड़रिये और किसान अपने जानवरों के प्रति लगाव प्रदर्शित करते रहे हैं और उनकी अच्छी देखभाल करते रहे हैं, उसी तरह जैसे ग़ुलामों को रखने वाले बहुत से लोग अपने ग़ुलामों के प्रति लगाव रखते थे और उनका ख़याल रखते थे। यह संयोग नहीं था कि राजा और पैगम्बर ख़ुद को गड़रिया कहते थे और अपनी प्रजा की देखभाल करने के अपने और देवताओं के ढंग की तुलना गड़रियों द्वारा उसकी रेवड़ की देखभाल करने के ढंग से करते थे।

15. मांस के एक औद्योगिक फ़ार्म में एक आधुनिक बछड़ा। बछड़े को जन्म लेने के तुरन्त बाद उसकी माँ से अलग कर एक इतने छोटे-से पिंजरे में बन्द कर दिया जाता है, जो बछड़े के अपने शरीर से ज़्यादा बड़ा नहीं होता। इस पिंजरे में बछड़ा अपना समूचा जीवन - औसतन लगभग चार महीने - बिताता है। इस दौरान वह अपने पिंजरे से कभी बाहर नहीं निकलता, ना ही उसे दूसरे बछड़ों के साथ खेलने की छूट होती है। यहाँ तक कि उसे चलने की भी छूट नहीं होती, ताकि उसकी मांसपेशियाँ मज़बूत ना हो पाएँ। कोमल मांसपेशियों का मतलब है मुलायम और रसीला टिक्का। बछड़े को पहली बार चलने, अपनी मांसपेशियों को फैलाने और दूसरे बछड़ों को छूने का मौक़ा तब मिलता है, जब वह बूचड़ख़ाने के रास्ते पर होता है। विकासवादी पदावली में गोधन पशुओं की अब तक की सबसे क़ामयाब नस्ल का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी के साथ वे इस ग्रह के कुछ सबसे ज़्यादा दयनीय प्राणियों में भी शामिल हैं।

तब भी गड़रिये के बजाय रेवड़ के नज़रिये से देखने पर इस धारणा से बच पाना मुश्किल है कि पालतू जानवरों के विशाल हिस्से के लिए कृषि क्रान्ति एक भयावह तबाही थी। विकासवादी 'सफलता' अर्थहीन है। लुप्त होने की कगार पर खड़ा एक दुर्लभ गैंडा शायद उस बछड़े के मुक़ाबले ज़्यादा सन्तुष्ट होगा, जो अपना संक्षिप्त-सा जीवन एक छोटे से कटघरे में बिताता है, जिस दौरान उसे इसलिए हृष्ट-पुष्ट बनाया जाता है, ताकि उसे मारकर ज़ायकेदार टिक्के तैयार किए जा सकें। अपनी तरह के अन्तिम प्राणियों के बीच एक प्राणी होने से उस सन्तुष्ट गैंडे का सन्तोष कम नहीं हो जाता। बछड़े की प्रजाति की संख्यावाचक सफलता उस पीड़ा के बदले कोई ख़ास सान्त्वना नहीं है, जो एक बछड़ा व्यक्तिगत रूप से भोगता है।

विकासवादी सफलता और वैयक्तिक पीड़ा के बीच की यह विसंगति शायद वह सबसे बड़ी सीख है, जो हम कृषि क्रान्ति से हासिल कर सकते हैं। गेहूँ और मक्के जैसी वनस्पतियों के आख्यान का अध्ययन करने पर विशुद्ध विकासवादी परिप्रेक्ष्य का शायद

कोई अर्थ हो, लेकिन गाय-बैल, भेड़ और सेपियन्स जैसे प्राणियों के मामले में हमें इस पर विचार करना ही होगा कि विकासवादी सफलता व्यक्तिगत अनुभव में क्या शक्ल लेती है। इनमें से प्रत्येक की संवेदनाओं और भावनाओं की अपनी जटिल दुनिया है। आने वाले अध्यायों में हम बार-बार यह देखेंगे कि किस तरह हमारी प्रजाति की सामूहिक शक्ति और ऊपरी कामयाबी में हुई ज़बरदस्त वृद्धि और अतिशय वैयक्तिक पीड़ा आपस में जुड़ी हुई हैं।

6

पिरामिडों का निर्माण

कृषि क्रान्ति इतिहास की सबसे विवादास्पद घटनाओं में से एक है। इस क्रान्ति के कुछ समर्थकों का दावा है कि इसने मानव-जाति की समृद्ध और प्रगति का रास्ता खोला। कुछ दूसरे हैं, जो इस पर ज़ोर देते हैं कि यह तबाही की ओर ले गई। उनका कहना है कि यह इतिहास का वह निर्णायक मोड़ था, जहाँ सेपियन्स ने प्रकृति के साथ अपनी घनिष्ठ सहजीविता को झटक कर अलग कर दिया और वह लालच और अलगाव की दिशा में तेज़ी से दौड़ पड़ा। यह रास्ता जिस किसी भी दिशा में ले गया हो, वहाँ से वापसी असम्भव थी। कृषि ने आबादी में इतने आमूलचूल ढंग और इतनी तेजी से वृद्धि कर दी थी कि कोई भी जटिल कृषक समाज अगर शिकार और संग्रह की ओर लौटता, तो वह अपने को क़ायम नहीं रख पाता। 10,000 ईसा पूर्व के आस-पास कृषि में क़दम रखने के पहले पृथ्वी लगभग 50-80 लाख ख़ानाबदोष भोजन-खोजियों का घर हुआ करती थी। ईसा की पहली सदी के आते-आते सिर्फ़ 10.20 लाख भोजन-खोजी बचे रह गए (मुख्यतः ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका और अफ़्रीका में), लेकिन उनकी संख्या दुनिया के 2500 लाख किसानों के सामने बौनी पड़ चुकी थी।

किसानों का विराट हिस्सा स्थायी बस्तियों में रहता था, सिर्फ़ थोड़े-से ही ख़ानाबदोश गड़रिये थे। एक जगह बस जाने की प्रक्रिया ने ज़्यादातर लोगों के इलाक़ों को बुरी तरह सिकोड़ दिया। प्राचीन शिकारी-भोजन-संग्रहकर्ता जिन क्षेत्रें में रहते थे, वे दर्जनों ही नहीं, बल्कि सैकड़ों वर्ग किलोमीटर जगहों को घेरते थे। अपनी पहाड़ियों, नदियों, जंगलों और खुले आसमान समेत समूचा क्षेत्र उनका ‘घर’ हुआ करता था। दूसरी तरफ़, किसान अपने ज़्यादातर दिन छोटे-से खेत या बाग़ में काम करते हुए गुज़ारते थे और उनका घरेलू जीवन लकड़ी, पत्थर या मिट्टी के कुछ दर्जन मीटर आकार के तंग ढाँचे वाले मकान तक सीमित था। सामान्य किसान ने इस ढाँचे के प्रति ज़बरदस्त लगाव विकसित कर लिया था। यह

एक व्यापक क्रान्ति थी, जिसका जितना प्रभाव मानस पर पड़ा था, उतना ही स्थापत्य पर पड़ा था। इसके बाद से 'मेरे घर' के प्रति लगाव और पड़ोसियों के प्रति अलगाव एक बेहद आत्म-केन्द्रित प्राणी की मनोवैज्ञानिक विशिष्टता बन गई।

ये नए कृषि क्षेत्र ना सिर्फ़ प्राचीन भोजन-खोजियों के क्षेत्रें से बहुत ज़्यादा छोटे थे, बल्कि बहुत ज़्यादा बनावटी भी थे। आग के इस्तेमाल के अलावा, शिकारी-भोजन-संग्रहकर्ताओं ने उन इलाक़ों में बहुत थोड़े से सुविचारित बदलाव किए थे, जिनमें वे भटका करते थे। दूसरी तरफ़, किसान उन कृत्रिम मानव-निर्मित टापुओं पर रहते थे, जिन्हें उन्होंने बड़ी मेहनत से आस-पास की निर्जन भूमि से तराश कर तैयार किया था। उन्होंने जंगलों को काटा, नहरें खोदीं, खेतों को साफ़ किया, मकान बनाए, हल चलाए और सुव्यवस्थित कतारों में फलों के वृक्ष रोपे। इससे जो कृत्रिम बसेरा निर्मित हुआ, वह सिर्फ़ इंसानों और 'उनके' पौधों और जानवरों के लिए था और उसको अक्सर दीवारों या बाड़ों से घेर दिया गया होता था। किसान परिवार स्वच्छन्द जंगली वनस्पतियों और जंगली जानवरों को वहाँ से दूर रखने का भरसक प्रयत्न करते थे। अगर घुसपैठिये किसी तरह अन्दर घुस भी आते, तो उन्हें बाहर खदेड़ दिया जाता था। अगर वे ज़िद करते, तो उनके इंसानी दुश्मन उन्हें नेस्तनाबूत करने के तरीक़े तलाश लेते। ख़ास तौर से घरों के इर्द-गिर्द मज़बूत सुरक्षा तन्त्र खड़े किए जाते थे। कृषि के उदय काल से लेकर आज तक टहनियों, स्वाटरों, जूतों और ज़हरीले छिड़कावों से लैस करोड़ों मनुष्य उन परिश्रमी चीटियों, रहस्यमय कॉक्रोचों, साहसिक मकड़ियों और भटके हुए भँवरों के खिलाफ़ अथक जंग लड़ते रहे हैं, जो इंसानी निवास-स्थलों में लगातार घुसपैठ करते रहते हैं।

इतिहास के अधिकांश दौर में ये मानव-निर्मित अहाते, बीहड़ प्रकृति के विस्तार से घिरे बहुत छोटे बने रहे हैं। पृथ्वी की सतह लगभग 5100 लाख वर्ग किलोमीटर में फैली है, जिसमें से 1550 लाख वर्ग किलोमीटर हिस्सा ज़मीनी है। 1400 ईसवी तक किसानों की बहुत बड़ी तादाद अपनी वनस्पतियों और पशुओं के साथ महज़ 110 लाख वर्ग किलोमीटर के इलाक़े, यानी पृथ्वी की सतह के 2 प्रतिशत हिस्से में जमी थी। अन्यत्र हर कहीं या तो बहुत ठण्डा था, बहुत गर्म था, बहुत सूखा था, बहुत नम था या खेती की दृष्टि से अनुपयुक्त था। इस बहुत ही छोटे से 2 प्रतिशत ने वह मंच तैयार किया, जिस पर इतिहास प्रकट हुआ।

अपने इन कृत्रिम द्वीपों को छोड़कर जाना लोगों को बहुत मुश्किल लगा। वे नुक़सान का गम्भीर जोख़िम उठाए बग़ैर अपने घर, खेत और अनाज के कोठार छोड़कर नहीं जा सकते थे। इसके अलावा समय के गुज़रने के साथ-साथ वे और चीज़ें जोड़ते गए - आसानी से ना ले जाई जा सकने वाली ऐसी वस्तुएँ, जिन्होंने उन्हें एक जगह पर बाँध दिया। प्राचीन किसान हमें बेहद ग़रीब लग सकते हैं, लेकिन उनके एक सामान्य परिवार के पास उससे ज़्यादा चीज़ें हुआ करती थीं, जितनी भोजन-खोजियों के एक समूचे क़बीले पास हुआ करती थीं।

भविष्य का आगमन

जहाँ कृषि का स्थान सिकुड़ा, वहीं कृषि के समय का विस्तार हुआ। भोजन-खोजी

सामान्यतः अपना समय अगले सप्ताह या अगले महीने के बारे में सोचने में बरबाद नहीं करते थे। किसान अपनी कल्पना में भविष्य के कई-कई वर्षों और दशकों की यात्रा करते रहते थे।

भोजन-खोजियों ने भविष्य को ख़ारिज़ कर रखा था, क्योंकि वे तंगी की हालत में रहते थे और उन्हें अपने भोजन को परिरक्षित करके रखने या सामान जमा करने में कठिनाई होती थी। निश्चय ही वे साफ़ तौर पर आगे की कुछ योजनाएँ बनाते थे। शोवे, लैस्को और आल्तामीरा के गुफा चित्र बनाने वालों का निश्चय ही यह इरादा रहा होगा कि ये चित्र कई पीढ़ियों तक क़ायम रहें। सामाजिक गठबन्धन और राजनैतिक शत्रुताएँ दीर्घकालिक मसले थे। किसी उपकार का बदला चुकाने या किसी नाइंसाफ़ी का बदला लेने में अक्सर सालों लग जाया करते थे। तब भी शिकार और भोजन-संग्रह की कामचलाऊ अर्थव्यवस्था में इस क़िस्म की दीर्घकालिक योजनाओं की एक स्पष्ट सीमा होती थी। विरोधाभास यह था कि यह चीज़ भोजन-खोजियों को बहुत सारी चिन्ताओं से बरी रखती थी। ऐसी चीज़ों को लेकर चिन्ता करने का कोई अर्थ नहीं था, जिन पर वे कोई असर नहीं डाल सकते थे।

कृषि क्रान्ति ने भविष्य को हमेशा के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण बना दिया। किसानों के लिए भविष्य को अनिवार्य रूप से हमेशा ध्यान में रखना होता था और उसकी तामील में लगे रहना होता था। कृषिपरक अर्थव्यवस्था उत्पादन के मौसमी चक्र पर आधारित थी, जिसमें जुताई-बोआई के कई महीने और फिर फ़सल काटने की संक्षिप्त चरम अवधियाँ शामिल होती थीं। भरपूर फ़सल की कटाई के अन्त में रात को उस सबका जश्न मना सकते थे, लेकिन हफ़्ते-दो हफ़्ते के भीतर ही वे पौ फटने के समय से लेकर पूरे-पूरे दिन भर के लिए खेतों में व्यस्त हो जाते थे। भले ही आज के लिए, अगले हफ़्ते के लिए, और अगले महीने के लिए पर्याप्त भोजन उपलब्ध होता था, लेकिन उन्हें अगले साल की और फिर उससे भी अगले साल की चिन्ता करनी होती थी।

भविष्य की चिन्ता की जड़ें ना सिर्फ़ उत्पादन के मौसमी चक्र में स्थित थीं, बल्कि वे कृषि के बुनियादी अनिश्चय में भी निहित थीं। चूँकि ज़्यादातर गाँव घरेलू पौधों की सीमित क़िस्मों की खेती करते थे और सीमित क़िस्म के पालतू जानवरों को पालते थे। वे सूखों, बाढ़ों और फ़सलों की महामारियों की दया पर निर्भर करते थे। भविष्य के लिए अन्न का भण्डार सुरक्षित रखने की वजह से किसानों को अपने उपभोग की ज़रूरत से ज़्यादा मात्रा में उत्पादन करना होता था। अगर उनकी बुखारी में अनाज ना भरा होता, कोठार में जैतून के तेल के घड़े ना भरे होते, रसोईघर में पनीर और शहतीरों से लटकते सॉसेज ना होते, तो दुर्भाग्यशाली वर्षों में उन्हें भूख से मरना पड़ता था। दुर्भाग्यशाली वर्षों का आना आगे-पीछे तय ही था। जो किसान यह मानकर चलता था कि दुर्भाग्यशाली वर्ष नहीं आएँगे, वह ज़्यादा दिन जीवित नहीं रहता था।

नतीज़तन, कृषि की एकदम शुरुआत से ही भविष्य की चिन्ताएँ मानव-मस्तिष्क के रंगमंच पर सबसे प्रमुख अभिनेता बन गई थीं। जहाँ किसान अपने खेतों की सिंचाई के लिए बारिश पर निर्भर थे, वहीं बारिश के मौसम की शुरुआत का मतलब था कि किसान हर सुबह हवा को सूँघते और आँखों पर ज़ोर डालते क्षितिज की ओर ताका करते थे। क्या बादल हैं? क्या बारिश समय पर आएगी? क्या बारिश पर्याप्त होगी? कहीं तूफ़ान बीज़ों

को उड़ा तो नहीं ले जाएँगे, अंकुरों को नष्ट तो नहीं कर देंगे? इस बीच, युफ्रेटीज़, सिन्धु और यलो नदियों की घाटियों में दूसरे किसान, उतनी ही कँपकँपी के साथ पानी की उठान पर निगाह रखे होते थे। उन्हें ज़रूरत होती थी कि नदियों में बाढ़ आए, ताकि वे पर्वतीय क्षेत्र से बहकर आती उत्कृष्ट उपजाऊ मिट्टी को चारों ओर फैला दें और सिंचाई के उनके विस्तीर्ण तन्त्रें को पानी से भर दें, लेकिन बहुत ज़्यादा उठान लेती या ग़लत वक़्त पर आने वाली बाढ़ उनके खेतों को उतनी ही क्षति पहुँचा सकती थीं, जितनी सूखे से पहुँचती थी।

भविष्य को लेकर किसानों की चिन्ता सिर्फ़ इसलिए नहीं थी कि इस चिन्ता की बहुत-सी वजहें होती थीं, बल्कि इसलिए भी होती थी कि वे इसके लिए कुछ कर सकते थे। वे कोई दूसरा खेत तैयार कर सकते थे, सिंचाई के लिए कोई दूसरी नहर खोद सकते थे और ज़्यादा फ़सलें बो सकते थे। गर्मी के दिनों में भोजन जमा करने वाली चींटी की तरह उत्तेजित और कठोर परिश्रमी चिन्ताकुल किसान पसीना बहाता जैतून के उन वृक्षों को रोपता था, जिनका तेल भविष्य में उसके बच्चों या नाती-पोतों द्वारा निकाला जाता और जिस भोजन के लिए वह उस समय लालायित होता, उसे वह जाड़ों तक के लिए या अगले साल तक के लिए मुल्तवी कर देता।

कृषि-कर्म से जुड़े तनाव के नतीज़े दूरगामी थे। वह बड़े स्तर की राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्थाओं की बुनियाद था। दुर्भाग्य से मेहनती किसान लगभग कभी भी वह भावी आर्थिक सुरक्षा हासिल नहीं कर पाते थे, जिसके लिए वे वर्तमान के अपने कठिन परिश्रम के दौरान इतनी बुरी तरह लालायित रहते थे। हर कहीं, शासक और अभिजात्य वर्ग अचानक से पैदा हो जाता, जो किसानों के उपजाए अतिरिक्त भोजन पर पलता था और इन किसानों के पास गुज़ारा चलाने लायक़ अन्न ही बच पाता था। इस ज़ब्तशुदा अतिरिक्त अन्न ने राजनीति, युद्धों, कला और दर्शन के लिए ईंधन उपलब्ध कराया। उसने महल, क़िले, स्मारक और धार्मिक स्थल खड़े किए। आधुनिक युग के बहुत बाद के दौर तक 90 प्रतिशत से ज़्यादा मनुष्य कृषक थे, जो अपना खून-पसीना एक कर अपनी ज़मीन जोतने हर सुबह उठ जाया करते थे। जो अतिरिक्त फ़सल वे उत्पन्न करते थे, उससे अभिजात्य वर्ग - राजाओं, सरकारी मुलाज़िमों, सैनिकों, पुरोहितों, कलाकारों और चिन्तकों - के उस एक छोटे-से हिस्से का उदर-पोषण होता था, जो इतिहास लिखते हैं। इतिहास वह कर्म है, जो बहुत थोड़े से लोग करते रहे हैं, जबकि बाक़ी सारे लोग खेतों को जोतते रहे और पानी की बाल्टियाँ ढोते रहे।

कल्पित व्यवस्था

किसानों द्वारा पैदा किए गए अतिरिक्त अन्न और परिवहन की नई तकनीकों ने मिलकर अन्ततः इस बात की गुंजाइश पैदा की कि पहले गाँवों, फिर क़स्बों और अन्त में बड़े शहरों में उत्तरोत्तर बड़ी तादाद में लोग ठुँसते गए, जिन्हें नए राज्य और वाणिज्यिक तन्त्र आपस में जोड़ते थे।

तब भी इन नए अवसरों का लाभ उठाने के लिए अतिरिक्त अन्न और उन्नत परिवहन भर काफ़ी नहीं थे। यह तथ्य कि कोई एक ही क़स्बे के हज़ार लोगों या एक ही राज्य के दस लाख लोगों का उदर-पोषण कर सकता है, इस बात की गारंटी नहीं है कि ये लोग इस

बात पर एकमत हो सकते हैं कि ज़मीन और पानी का बँटवारा कैसे किया जाए, विवादों और झगड़ों को कैसे सुलझाया जाए और अकाल या युद्ध के दिनों में किस तरह का आचरण किया जाए। और अगर किसी समझौते पर नहीं पहुँचा जा सकता, तो झगड़े खड़े हो जाते हैं, भले ही माल गोदाम भरे पड़े हों। इतिहास की ज़्यादातर लड़ाइयों और क्रान्तियों की वजह भोजन की कमी नहीं थी। फ़्रांसीसी क्रान्ति का नेतृत्व सम्पन्न वकीलों ने किया था, भूख से बेज़ार किसानों ने नहीं। रोमन रिपब्लिक अपनी सत्ता की ऊँचाई पर ईसा पूर्व पहली सदी में उस वक़्त पहुँचा था, जब समूचे भूमध्यसागर से आए ख़ज़ानों ने रोमनों को इतना समृद्ध कर दिया था कि जितने की कल्पना उनके पूर्वजों ने सपने में भी नहीं की थी, लेकिन अधिकतम समृद्ध के उस क्षण में ही रोमन राजनैतिक व्यवस्था अनेक घातक गृहयुद्धों में ढेर हो गई थी। 1991 में युगोस्लाविया के पास अपने सारे निवासियों का पेट भरने के लिए पर्याप्त से अधिक संसाधन थे और तब भी वह देश भयानक रक्तपात से टुकड़े-टुकड़े हो गया था।

इन विपत्तियों की जड़ में समस्या यह है कि मनुष्य लाखों सालों के दौरान कुछ दर्जन व्यक्तियों के छोटे-छोटे क़बीलों के रूप में विकसित हुए थे। कृषि क्रान्ति को नगरों, राज्यों और साम्राज्यों से अलग करने वाली मुट्ठी भर सहस्राब्दियाँ समय की दृष्टि से इतनी पर्याप्त नहीं थीं कि वे सामूहिक सहयोग की प्रवृत्ति को विकसित होने की गुंजाइश दे सकतीं।

इस तरह की जैविक प्रवृत्तियों के अभाव के बावजूद भोजन-खोजी युग के दौरान एक दूसरे से अपरिचित सैकड़ों लोग अपने साझा मिथकों की वजह से परस्पर सहयोग करने में सक्षम थे, लेकिन यह सहयोग ढीला और सीमित था। हरेक सेपियन्स क़बीला अपने जीवन को स्वतन्त्र रूप से जीना और अपनी ज़्यादातर ज़रूरतों को पूरा करने की तैयारियों में लगा रहता था। कृषि क्रान्ति के बाद की घटनाओं से पूरी तरह अनजान 20,000 साल पहले का एक आद्य समाजशास्त्री आसानी से यह निष्कर्ष निकाल सकता था कि मिथकों का दायरा ख़ासा सीमित होता है। पुरखों की आत्माओं और क़बीले के प्रतीक इतने पर्याप्त सशक्त तो थे कि वे 500 लोगों को कौड़ियों का लेन-देन करने, कभी-कभार त्यौहार मनाने और किसी निएंडरथल्स क़बीले को नेस्तनाबूत करने के लिए एकजुट होने में सक्षम बना देते थे, लेकिन वे इससे ज़्यादा कारगर नहीं थे। उस प्राचीन समाजशास्त्री ने शायद सोचा होगा कि मिथक करोड़ों लोगों को रोज़ाना के स्तर पर एक दूसरे के साथ सहयोग करने में तो सक्षम नहीं बना सकते।

लेकिन यह ग़लत साबित हुआ। पता चला कि मिथक इतने शक्तिशाली होते हैं कि कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। जब कृषि क्रान्ति ने भीड़-भरे शहरों और शक्तिशाली साम्राज्यों के अवसर खोल दिए, तो लोगों ने आवश्यक सामाजिक सूत्र गढ़ने के लिए महान देवताओं, मातृभूमियों और ज्वाइंट स्टॉक कम्पनियों के बारे में कहानियाँ गढ़ लीं। जहाँ मनुष्य का विकास उसकी सामान्य घोंघे की रेंगती हुई रफ़्तार से हो रहा था, वहीं मानव कल्पना जन सहयोग के ऐसे विस्मयकारी नेटवर्क गढ़ रही थी, जो पृथ्वी पर कभी देखने में नहीं आए थे।

8500 ईसा पूर्व के आस-पास दुनिया की सबसे बड़ी बस्तियाँ जेरिको जैसे उन ग्रामों के रूप में उभरीं, जिनमें कुछ सौ व्यक्ति रहा करते थे। 7000 ईसा पूर्व तक आते-आते अनातोलिया के कैटलहोयुक नगर में 5,000 और 10,000 के बीच व्यक्ति रहते थे। पूरी

सम्भावना है कि उस समय यह दुनिया की सबसे बड़ी बस्ती रही हो। ईसा पूर्व चौथी और पाँचवीं सहस्राब्दियों के दौरान फ़र्टाइल क्रेसेंट में दसियों हज़ारों निवासियों से आबाद नगर विकसित हो गए, जिनमें से प्रत्येक नगर का आस-पास के गाँवों में दबदबा हुआ करता था। 3100 ईसा पूर्व में समूची निचली नील घाटी पहले मिस्र राज्य के रूप में संगठित हो गई। इसके फ़ैरो (राजा) हज़ारों वर्ग किलोमीटर के इलाक़ों और सैकड़ों हज़ारों लोगों पर शासन करते थे। 2250 ईसा पूर्व के आस-पास सरगॉन द ग्रेट ने अक्कादिआन नामक पहला साम्राज्य खड़ा किया। इस साम्राज्य के अधीन दस लाख से ज़्यादा प्रजा थी और 5,400 सैनिकों की फ़ौज थी। 1000 ईसा पूर्व और 500 ईसा पूर्व के दरम्यान मध्य पूर्व में विशाल साम्राज्य प्रकट हुए : उत्तर असीरियाई साम्राज्य, बेबिलोनियाई साम्राज्य, और फ़ारसी साम्राज्य। ये लाखों लोगों पर हुकूमत करते थे और इनके नियन्त्रण में दसियों हज़ार सैनिक थे।

221 ईसा पूर्व में चिन राजवंश ने चीन को एकीकृत किया और इसके कुछ ही समय बाद रोम ने भूमध्यसागरीय बेसिन को एकीकृत किया। 400 लाख चिन प्रजा से वसूले जाने वाले कर का भुगतान सैकड़ों हज़ारों सैनिकों की फ़ौज और 100,000 से ज़्यादा कर्मचारियों वाली जटिल नौकरशाही को किया जाता था। रोमन साम्राज्य अपने सर्वाधिक उत्कर्ष के काल में अपनी 1000 लाख की प्रजा से कर प्राप्त करता था। इस राजस्व से 250,000-500,000 सैनिकों की फ़ौज, सड़कों के उस नेटवर्क का जिसे 1,500 साल बाद आज भी इस्तेमाल किया जाता है और उन रंगशालाओं तथा मुक्ताकाशी मंचों का ख़र्च चला करता था, जहाँ आज के दिन तक प्रदर्शन होते हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह सब बहुत प्रभावशाली है, लेकिन इसके आधार पर हमें फ़ैरोनीय मिस्र या रोमन साम्राज्य के 'जन सहकार तन्त्रों' के बारे में कोई सुहावने भ्रम नहीं पाल लेने चाहिए। 'सहकार' हमें बहुत परोपकारवादी धारणा प्रतीत होती है, लेकिन यह हमेशा स्वैच्छिक नहीं होती और कभी-कभार ही समतावादी होती है। मानवीय सहकार के ज़्यादातर तन्त्र दमन और शोषण के उपयोग के अनुरूप ढाले जाते रहे हैं। किसानों को इन तेज़ी से फलते-फूलते सहयोग तन्त्रें की क़ीमत अपने बहुमूल्य अतिरिक्त खाद्यान्नों से चुकानी पड़ती थी और उस वक़्त इन किसानों का सारा उत्साह ठण्डा पड़ जाता था, जब कर वसूल करने वाला अपनी साम्राज्यवादी क़लम के एक झटके से पूरे साल भर की उनकी कड़ी मेहनत पर पानी फेर देता था। प्रसिद्ध रोमन मुक्ताकाशी मंच ज़्यादातर ग़ुलामों द्वारा तैयार किए गए थे, ताकि उन मंचों पर रईस और निठल्ले रोमन दूसरे ग़ुलामों की क्ररतापूर्ण पेशेवर लड़ाइयों का आनन्द ले सकते। यहाँ तक कि जेलें और कंसन्ट्रेशन कैम्प भी सहयोग तन्त्र हैं और ये सिर्फ़ इसलिए काम कर सकते हैं क्योंकि हज़ारों अजनबी किसी तरह अपने कृत्यों के बीच समन्वय स्थापित कर पाते हैं।

ये सारे सहकार तन्त्र (कोऑपरेशन नेटवर्क्स) - प्राचीन मेसोपोटामिया के नगरों से लेकर चिन और रोमन साम्राज्यों तक - 'कल्पित व्यवस्थाएँ' थीं। इन्हें क़ायम रख सकने वाले सामाजिक मानक ना तो अन्तर्निहित सहज प्रवृत्तियों पर आधारित थे और ना निजी जान-पहचानों पर आधारित थे, बल्कि साझा मिथकों में विश्वास पर आधारित थे।

मिथक समूचे साम्राज्यों को कैसे थामे रख सकते हैं? हम इस तरह के एक उदाहरण की चर्चा पहले भी कर चुके हैं : प्यूज़ो। अब हम इतिहास के उन दो मिथकों पर ग़ौर करते

हैं जो सबसे ज़्यादा प्रसिद्ध हैं : 1776 ईसा पूर्व का द कोड ऑफ़ हम्मूराबी, जिसने सैकड़ों हज़ारों की संख्या में प्राचीन बेबिलोनियाइयों के लिए सहकार नियमावली की भूमिका निभाई थी और 1776 ईसवी की द अमेरिकन डिक्लेयरेशन ऑफ़ इंडिपेंडेंस, जो आज भी लाखों आधुनिक अमेरिकी लोगों के लिए सहकार नियमावली की भूमिका निभाती है।

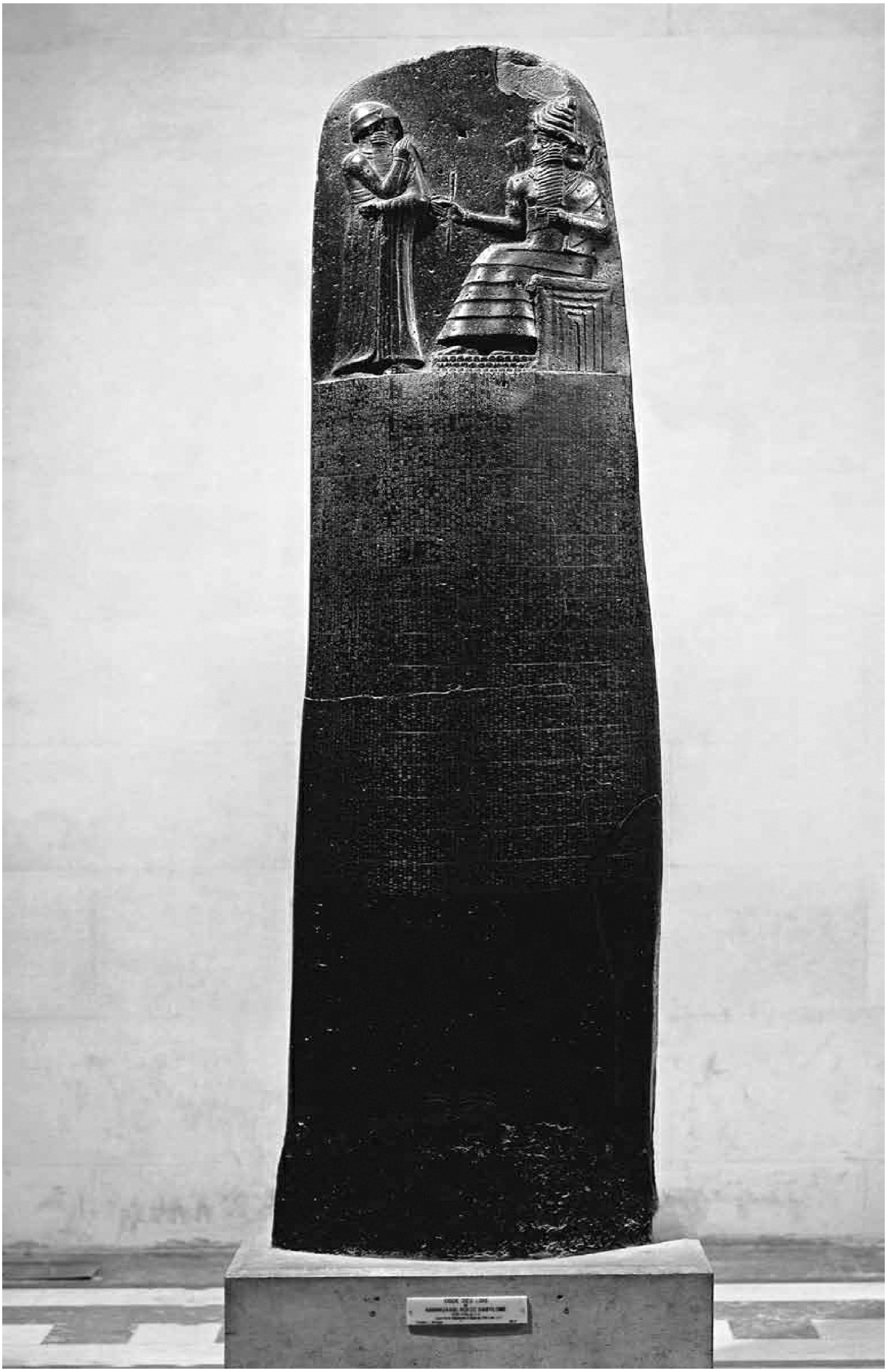

16. एक शिलालेख, जिस पर हम्मूराबी की संहिता अंकित है, लगभग 1776 ईसा पूर्व।

1776 ईसा पूर्व में बेबीलोन दुनिया का सबसे बड़ा नगर था। बेबिलोनियाई साम्राज्य शायद दुनिया का सबसे बड़ा साम्राज्य था, जिसकी प्रजा की संख्या दो लाख से ज़्यादा थी। इसकी हुकूमत मेसोपोटामिया के ज़्यादातर हिस्सों में थी, जिनमें आधुनिक इराक़ का अधिकांश भाग और आज के सीरिया और ईरान के कुछ हिस्से शामिल थे। बेबीलोन का राजा हम्मूराबी था, जो आज सबसे ज़्यादा प्रसिद्ध है। उसकी प्रसिद्ध मुख्यतः उस मज़मून की वजह से है, जिसमें उसका नाम अंकित है : हम्मूराबी की विधि संहिता। यह मज़मून उन क़ानूनों और अदालती फ़ैसलों का संग्रह है, जिनका लक्ष्य हम्मूराबी को एक आदर्श शहंशाह के रूप में प्रस्तुत करना, समूचे बेबीलोन साम्राज्य में अधिक समरूप वैधानिक व्यवस्था के आधार की भूमिका निभाना, और भावी पीढ़ियों के लिए इस बात की सीख देना था कि न्याय क्या है और एक न्यायसंगत राजा का आचरण कैसा होता है।

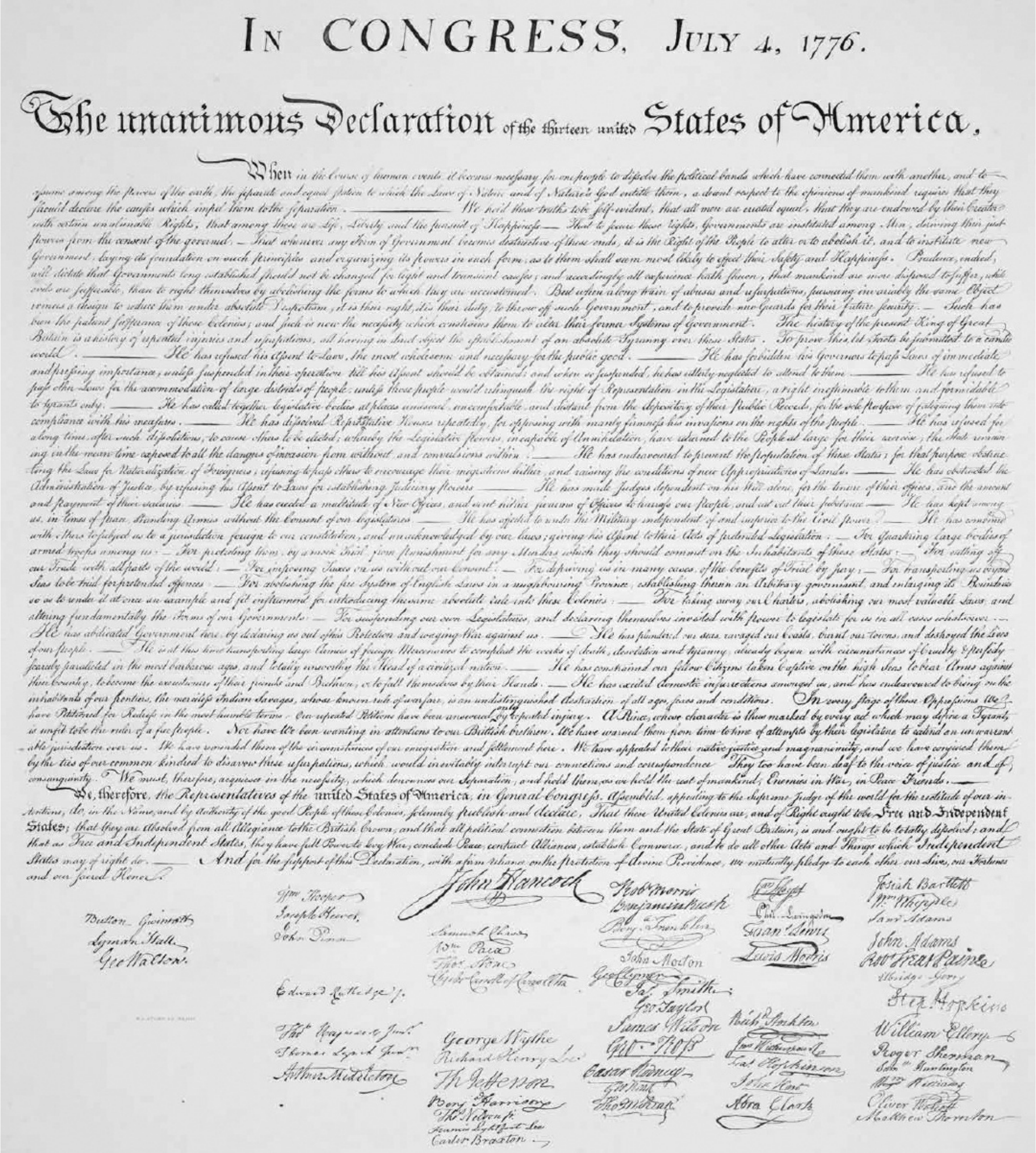

IN CONGRESS, JULY 4, 1776.

The unanimous Declaration of the thirteen united States of America,

17. 4 जुलाई 1776 को हस्ताक्षरित संयुक्त राज्य अमेरिका का स्वाधीनता का घोषणा-पत्र।

भावी पीढ़ियों ने इसका अनुसरण किया। प्राचीन मेसोपोटामिया के बुद्धिजीवियों और नौकरशाह अभिजात्य वर्ग ने इस मज़मून को विधि-सम्मत रूप दिया और हम्मूराबी के मरने और उसके साम्राज्य के खण्डहरों में बदल जाने के बहुत बाद तक नवदीक्षित शिष्य उसकी प्रतिलिपियाँ तैयार करते रहे। इसलिए हम्मूराबी संहिता (कोड) प्राचीन मेसोपोटामिया की सामाजिक व्यवस्था के आदर्श को समझने का एक अच्छा स्रोत है।

इस मज़मून की शुरुआत यह कहते हुए होती है कि एन्यू, एन्लिल और मार्डुक देवताओं - जो कि मेसोपोटेमियाई देवताओं की मण्डली के अग्रणी देवता हैं - ने ‘मुल्क़ में न्याय की स्थापना के लिए, उत्पातियों और पापियों का नाश करने के लिए, ताक़तवर

लोगों को कमज़ोरों का दमन करने से रोकने के लिए’ हम्मूराबी को नियुक्त किया था। इसके बाद यह मज़मून 300 न्यायिक फ़ैसलों की फ़ेहरिस्त पेश करता है, इस सूत्र के साथ कि “अगर ऐसा-ऐसा होता है, तो फ़ैसला यह होगा”। उदाहरण के लिए, 196-9 और 209.14 फ़ैसलों में कहा गया है :

196. अगर एक श्रेष्ठ जन किसी अन्य श्रेष्ठ जन को अन्धा कर दे, तो उसको अन्धा कर देना चाहिए।
197. अगर वह किसी अन्य श्रेष्ठ जन की हड्डी तोड़ दे, तो उसकी भी हड्डी तोड़ देना चाहिए।
198. अगर वह किसी सामान्य जन को अन्धा कर दे या किसी सामान्य जन की हड्डी तोड़ दे, तो उसका मूल्य आँका जाएगा और उसको चाँदी के साठ सिक्के देने होंगे।
199. अगर वह किसी श्रेष्ठ जन के ग़ुलाम को अन्धा कर दे या किसी श्रेष्ठ जन के ग़ुलाम की हड्डी तोड़ दे, तो उसका मूल्य आँका जाएगा और उसे उस ग़ुलाम की (चाँदी में आँकी गई) क़ीमत के आधे हिस्से का भुगतान करना होगा।

209. अगर कोई श्रेष्ठ जन किसी श्रेष्ठ वर्ग की स्त्री को चोट पहुँचाता है और उसकी वजह से उस स्त्री का गर्भपात हो जाता है, तो उसका मूल्यांकन किया जाएगा और उसे उस गर्भपात के बदले में चाँदी के दस सिक्के देने होंगे।
210. अगर वह स्त्री मर जाती है, तो चोट पहुँचाने वाले की बेटी को मार देना चाहिए।
211. अगर वह किसी सामान्य वर्ग की स्त्री को चोट पहुँचाता है, जिससे उस स्त्री का गर्भपात हो जाता है, तो उसका मूल्यांकन किया जाएगा और उसे चाँदी के पाँच सिक्के देने होंगे।
212. अगर वह स्त्री मर जाती है, तो उसका मूल्यांकन किया जाएगा और उसे चाँदी के तीस सिक्कों का भुगतान करना होगा।
213. अगर वह श्रेष्ठ वर्ग की किसी ग़ुलाम स्त्री को चोट पहुँचाता है, जिससे उस स्त्री का गर्भपात हो जाता है, तो उसका मूल्यांकन किया जाएगा और उसको चाँदी के दो सिक्कों का भुगतान करना होगा।
214. अगर वह ग़ुलाम स्त्री मर जाती है, तो उस पर उचित विचार किया जाएगा और उसे चाँदी के बीस सिक्कों का भुगतान करना होगा।

अपने फ़ैसलों की फ़ेहरिस्त पेश करने के बाद हम्मूराबी पुनः घोषणा करता है कि;

> ये न्यायसंगत फ़ैसले हैं जो सुयोग्य सम्राट हम्मूराबी ने निर्धारित किए हैं और इनके माध्यम से देश को सत्य और जीवन के उचित मार्ग की ओर प्रेरित किया है... मैं हम्मूराबी हूँ, उदात्त सम्राट। मैं उस मानव-जाति के प्रति लापरवाह या असावधान नहीं रहा हूँ, जिसकी ज़िम्मेदारी एन्लिल देवता ने मुझे सौंपी है और जिसका मार्गदर्शन करने का काम मार्डुक देवता ने मुझे सौंपा है।

हम्मूराबी की संहिता दावा करती है कि बेबिलोनियाई समाज व्यवस्था देवताओं द्वारा निर्दिष्ट न्याय के सार्वभौमिक और शाश्वत सिद्धान्तों पर आधारित है। इसमें क्रमबद्धता (हायरार्की) का सिद्धान्त सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। संहिता के मुताबिक़, लोग दो लिंगों और

तीन वर्गों में विभाजित हैं : श्रेष्ठ जन, सामान्य जन और ग़ुलाम। प्रत्येक लिंग और वर्ग का अलग-अलग मूल्य है। एक सामान्य वर्ग की स्त्री के जीवन का मूल्य चाँदी के तीस सिक्कों के बराबर है और ग़ुलाम स्त्री के जीवन का मूल्य चाँदी के बीस सिक्कों के बराबर है, वहीं सामान्य वर्ग के पुरुष की आँख का मूल्य चाँदी के साठ सिक्कों के बराबर है।

संहिता परिवारों के भीतर भी एक सख़्त क्रम निर्धारित करती है, जिसके मुताबिक़ बच्चे स्वतन्त्र व्यक्ति नहीं हैं, बल्कि अभिभावकों की सम्पत्ति हैं। इसलिए अगर एक श्रेष्ठ जन किसी दूसरे श्रेष्ठ जन की बेटी की हत्या कर देता है, तो सज़ा के तौर पर हत्यारे की बेटी को मार दिया जाएगा। यह बात हमें विचित्र जान पड़ेगी कि हत्यारे को कोई नुक़सान नहीं पहुँचता, जबकि उसकी निर्दोष बच्ची को मार दिया जाता है, लेकिन हम्मूराबी और बेबीलोन वासियों के लिए यह सर्वथा न्यायसंगत चीज़ प्रतीत होती है। हम्मूराबी की संहिता इस मान्यता पर आधारित थी कि अगर राजा की सारी प्रजा ऊँच-नीच के क्रम के भीतर अपनी-अपनी हैसियत को स्वीकार करती है और उसके मुताबिक़ आचरण करती है, तो साम्राज्य के लाखों निवासी कारगर ढंग से परस्पर सहयोग कर सकेंगे। तब उनका समाज अपने सदस्यों के लिए पर्याप्त खाद्यान्न का उत्पादन कर सकेगा, उसका कारगर तरीक़े से वितरण कर सकेगा, शुत्रओं से अपनी रक्षा कर सकेगा और अपने अधिकार-क्षेत्र का विस्तार कर सकेगा, ताकि वह और अधिक सम्पत्ति और बेहतर सुरक्षा अर्जित कर सके।

हम्मूराबी की मृत्यु के लगभग 3,500 साल बाद उत्तरी अमेरिका के तेरह ब्रितानी उपनिवेशों के निवासियों ने महसूस किया कि इंग्लैंड का सम्राट उनके साथ अन्याय बरत रहा है। इन निवासियों के प्रतिनिधि फ़िलाडेल्फ़िया नगर में एकत्र हुए, और 4 जुलाई 1776 को इन उपनिवेशों ने घोषणा कर दी कि उनके बाशिन्दे अब के बाद से ब्रितानी हुकूमत के अधीन नहीं होंगे। उनके स्वाधीनता के घोषणापत्र (डिक्लेयरेशन ऑफ़ इंडिपेंडेंस) में न्याय के सार्वभौमिक और शाश्वत सिद्धान्तों की घोषणा की गई थी, जो हम्मूराबी के न्याय-सिद्धान्तों की ही तरह दैवीय शक्ति से उत्प्रेरित थे, लेकिन अमेरिकी देवता द्वारा निर्दिष्ट सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त बेबीलोन के देवताओं द्वारा निर्दिष्ट सिद्धान्त से थोड़ा भिन्न था। अमेरिकी स्वाधीनता का घोषणा-पत्र दावा करता है कि :

> हम इन वास्तविकताओं को स्वतःसिद्ध मानते हैं कि सारे मनुष्यों की रचना उन्हें समान मानकर की गई है, उनके सृजनकर्ता ने उन्हें कुछ ख़ास अन्तर्निहित अधिकार प्रदान किए हैं। इनमें जीवन, स्वतन्त्रता और सुख की खोज के अधिकार शामिल हैं।

हम्मूराबी की संहिता की तरह ही यह अमेरिकी संस्थापक दस्तावेज़ भी आश्वासन देता है कि अगर मनुष्य इसके पवित्र सिद्धान्तों के मुताबिक़ आचरण करेंगे, तो लाखों मनुष्य एक न्यायपूर्ण और समृद्ध समाज में सुरक्षित और शान्तिपूर्ण जीवन जीते हुए कारगर ढंग से परस्पर सहयोग कर सकेंगे। हम्मूराबी की संहिता की ही तरह अमेरिकी स्वाधीनता घोषणा-पत्र महज़ अपने देश-काल तक सीमित दस्तावेज़ नहीं था। इसे भावी पीढ़ियों ने भी स्वीकार किया था। पिछले 200 सालों से अमेरिका के स्कूली बच्चे इसे अपनी कॉपियों पर उतारते रहे हैं और याद करते रहे हैं।

ये दोनों मज़मून हमारे सामने एक स्पष्ट दुविधा की स्थिति पैदा करते हैं। हम्मूराबी की संहिता और अमेरिकी स्वाधीनता घोषणा-पत्र दोनों ही न्याय के सार्वभौमिक और शाश्वत

सिद्धान्तों की रूपरेखा प्रस्तुत करने का दावा करते हैं, लेकिन जहाँ अमेरिकी लोगों के मुताबिक़, सारे लोग समान हैं, वहीं बेबिलोनियनों के मुताबिक़,लोग निश्चित रूप से असमान हैं। ज़ाहिर है अमेरिकी कहेंगे कि वे सही हैं और हम्मूराबी ग़लत है। ज़ाहिर है कि हम्मूराबी ने मुँहतोड़ जवाब दिया होता कि वह सही है और अमेरिकी ग़लत हैं। दरअसल, वे दोनों ही ग़लत हैं। हम्मूराबी और अमेरिकी संस्थापक पिताओं दोनों ने ही एक ऐसी वास्तविकता - जैसे कि समानता या ऊँच-नीच - की कल्पना की थी, जो न्याय के सार्वभौमिक और अडिग सिद्धान्तों से नियन्त्रित है, लेकिन इस तरह के सार्वभौमिक सिद्धान्तों का अस्तित्व सिर्फ़ सेपियन्स की उपजाऊ कल्पना में ही है और उन मिथकों में है, जिन्हें वे ईजाद करते हैं और एक दूसरे को सुनाते हैं। इन सिद्धान्तों की कोई वस्तुनिष्ठ वैधता नहीं है।

हमारे लिए यह स्वीकार करना आसान है कि ‘श्रेष्ठ जनों’ और ‘सामान्य जनों’ के बीच लोगों का विभाजन एक मनगढ़न्त बात है। तब भी यह धारणा कि सारे मनुष्य समान हैं, एक मिथक भी है। आख़िर किस अर्थ में सारे मनुष्य एक दूसरे से समान होते हैं? क्या मनुष्य की कल्पना से बाहर या परे कोई ऐसी वस्तुपरक वास्तविकता है, जहाँ हम सचमुच समान हैं? क्या सारे मनुष्य जैविक रूप से एक दूसरे के समान हैं? हम अमेरिकी स्वाधीनता घोषणा-पत्र की सबसे प्रसिद्ध पंक्ति का जीव-विज्ञान की पदावली में अनुवाद करके देखते हैं :

> हम इन वास्तविकताओं को स्वतःसिद्ध मानते हैं कि सारे मनुष्यों का सृजन समान रूप से हुआ है। उनके सृजनकर्ता ने उन्हें कुछ ख़ास अन्तर्निहित अधिकार प्रदान किए हैं। इनमें जीवन, स्वतन्त्रता और सुख की खोज के अधिकार शामिल हैं।

जीव-विज्ञान के मुताबिक़, लोगों का ‘सृजन’ नहीं किया गया था। वे विकास की प्रक्रिया की उपज हैं। और उनका विकास निश्चय ही ‘समान’ रूप से नहीं हुआ है। समानता की धारणा पेचीदा ढंग से सृजन की धारणा से गुँथी है। अमेरिकी लोगों को समानता की धारणा ईसाइयत से प्राप्त हुई है, जिसका तर्क है कि हर व्यक्ति के पास एक ऐसी आत्मा है, जिसका सृजन अलौकिक रूप से हुआ है और ईश्वर की दृष्टि में सारी आत्माएँ समान हैं, लेकिन अगर हम ईश्वर, सृजन और आत्मा के ईसाई मिथकों में विश्वास नहीं करते, तो फिर इसका क्या अर्थ रह जाता है कि सारे लोग ‘समान’ हैं? विकास की प्रक्रिया भेद पर आधारित है, ना कि समानता पर। हर व्यक्ति किंचित भिन्न जेनेटिक कोड धारण करता है और वह जन्म से ही भिन्न तरह के पर्यावरणीय प्रभावों के अधीन होता है। इससे वे भिन्न लक्षण विकसित होते हैं, जो अपने में जीवित बने रहने के भिन्न तरह के अवसर समाहित किए होते हैं। इसलिए ‘सृजन समान रूप से हुआ है’ का अनुवाद ‘विकास भिन्न ढंग से हुआ है’ की पदावली में होना चाहिए।

जिस तरह लोगों का कभी सृजन नहीं हुआ था, उसी तरह जीव-विज्ञान के मुताबिक़, ऐसा कोई ‘सृजनकर्ता’ भी नहीं है, जिसने लोगों को कोई चीज़ ‘प्रदान’ की हो। सिर्फ़ एक प्रयोजन-हीन, अन्धी विकास-प्रक्रिया है, जिससे व्यक्तियों का जन्म होता है। इसलिए ‘उनके सृजनकर्ता ने प्रदान किए हैं’ का अनुवाद महज़ ‘जन्मे हैं’ की पदावली में होना चाहिए।

इसी तरह जैविकी की दुनिया में अधिकार जैसी कोई चीज़ नहीं है। वहाँ सिर्फ़ अंग हैं,

क्षमताएँ और चारित्रिकताएँ हैं। पक्षी उड़ते हैं, तो इसलिए नहीं कि उन्हें उड़ने का अधिकार है, बल्कि इसलिए कि उनके पंख होते हैं। और यह भी सही नहीं है कि ये अंग, क्षमताएँ और चारित्रिकताएँ 'अन्तर्निहित' हैं। इनमें से कइयों में लगातार परिवर्तन होते रहते हैं और वे समय के साथ पूरी तरह समाप्त भी हो सकते हैं। शुतुरमुर्ग़ ऐसा पक्षी है, जो अपनी उड़ने की क्षमता खो चुका है। इसलिए 'अन्तर्निहित अधिकार' का अनुवाद 'परिवर्तनीय चारित्रिकताओं' की पदावली में होना चाहिए।

और वे कौन-सी चारित्रिकताएँ हैं, जो मनुष्यों में विकसित हुई हैं? 'जीवन' निश्चय ही है, लेकिन 'स्वतन्त्रता?' जीव-विज्ञान में ऐसी कोई चीज़ नहीं होती। समानता, अधिकार और मर्यादित दायित्व वाली कम्पनियों की ही तरह स्वतन्त्रता वह चीज़ है, जिसे लोगों ने ईजाद किया है और जिसका अस्तित्व सिर्फ़ उनकी कल्पना में है। जीव-विज्ञान की दृष्टि से यह कहने का कोई अर्थ नहीं है कि मनुष्य लोकतान्त्रिक समाजों में स्वतन्त्र होते हैं और तानाशाह व्यवस्थाओं स्वतन्त्र नहीं होते। और 'सुख'? जीव वैज्ञानिक शोध अब तक सुख की कोई परिभाषा करने या उसे वस्तुपरक ढंग से मापने में नाक़ामयाब रहा है। ज़्यादातर जीववैज्ञानिक अध्ययन केवल आनन्द के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं, जिसे ज़्यादा आसानी से परिभाषित किया जा सकता है और मापा जा सकता है। इसलिए 'जीवन, स्वतन्त्रता और सुख की खोज' का अनुवाद 'जीवन और आनन्द की खोज' की पदावली में होना चाहिए।

इस तरह अमेरिकी स्वाधीनता घोषणा-पत्र की उस पंक्ति का जीववैज्ञानिक पदावली में यह अनुवाद होगा :

> हम इन वास्तविकताओं को स्वतःसिद्ध मानते हैं कि सारे मनुष्य भिन्न तरह से विकसित हुए हैं। वे कुछ निश्चित परिवर्तनीय चारित्रिकताओं के साथ जन्मे हैं। इनमें जीवन और आनन्द की खोज की चारित्रिकताएँ शामिल हैं।

समानता और मानवाधिकार के पक्षघर इस तर्क-पद्धति से भड़क सकते हैं। उनका सम्भावित जवाब होगा कि "हम जानते हैं कि लोग जीव वैज्ञानिक तौर पर समान नहीं हैं, लेकिन अगर हम यह विश्वास करते हैं कि हम सब तत्त्वतः समान हैं, तो इससे हम एक सन्तुलित और समृद्ध समाज की रचना कर सकेंगे"। इसको लेकर मेरी कोई आपत्ति नहीं है। जब मैं 'कल्पित व्यवस्था' कहता हूँ, तो मेरा मतलब ठीक यही है। हम किसी व्यवस्था विशेष में विश्वास इसलिए नहीं करते कि वह वस्तुपरक तौर पर सही होती है, बल्कि इसलिए करते हैं कि उसमें यह विश्वास हमें कारगर तरीक़े से परस्पर सहयोग करने और एक बेहतर समाज बनाने के सक्षम बनाता है। कल्पित व्यवस्थाएँ पापपूर्ण साजिश या बेकार मरीचिकाएँ नहीं हैं। इसके विपरीत वे वह एकमात्र तरीक़ा है, जिससे बड़ी तादाद में मनुष्य कारगर ढंग से परस्पर सहयोग कर सकते हैं, लेकिन ध्यान रहे कि अगर हम्मूराबी को ऊँच-नीच के अपने सिद्धान्त का बचाव करना होता, तो वह ठीक इसी तर्क का इस्तेमाल कर सकता था : "मैं जानता हूँ कि श्रेष्ठ जन, सामान्य जन और ग़ुलाम जन्मजात रूप से भिन्न लोग नहीं हैं, लेकिन अगर हम ऐसा मान लेते हैं कि वे जन्मजात रूप से भिन्न हैं, तो इससे हम एक सन्तुलित और समृद्ध समाज की रचना कर सकेंगे"।

सच्चे आस्थावान

बहुत मुमकिन है कि ऊपर के पैराग्राफ़ों को पढ़ते हुए बहुत-से पाठक अपनी कुर्सियों में कसमसाए हों। हम में से ज़्यादातर लोगों की शिक्षा-दीक्षा हुई ही इस तरह है कि हम इस तरह की प्रतिक्रिया करें। यह स्वीकार करना आसान है कि हम्मूराबी की संहिता एक मिथक थी, लेकिन हम यह सुनने को तैयार नहीं कि मानव अधिकार भी मिथक हैं। अगर लोगों के दिमाग़ में यह बात बैठ जाए कि मानवाधिकारों का अस्तित्व सिर्फ़ हमारी कल्पना में है, तो क्या इस बात का ख़तरा नहीं है कि हमारा समाज धराशायी हो जाएगा? ईश्वर के बारे में वॉल्तेयर ने कहा था "यह सही है कि ईश्वर नहीं है, लेकिन यह बात मेरे नौकर को मत कहना, नहीं तो वह रात में मेरी हत्या कर देगा"। ठीक यही बात ऊँच-नीच के अपने सिद्धान्त के बारे में हम्मूराबी ने भी कही होती और थॉमस जैफ़रसन ने मानव अधिकारों के बारे में कही होती। होमो सेपियन्स के कोई नैसर्गिक अधिकार नहीं हैं, जिस तरह मकड़ियों, लकड़बग्घों और चिंपांज़ियों के कोई नैसर्गिक अधिकार नहीं हैं, लेकिन यह बात हमारे नौकरों को मत बताना, नहीं तो वे रात में हमारी हत्या कर देंगे।

इस तरह के डर सर्वथा उचित हैं। एक कुदरती व्यवस्था एक टिकाऊ व्यवस्था होती है। इसकी कोई सम्भावना नहीं कि गुरुत्वाकर्षण बल कल से अपना काम करना बन्द कर देगा, भले ही लोग उसमें विश्वास करना बन्द कर दें। इसके विपरीत, एक कल्पित व्यवस्था के सिर पर हमेशा उसके ढह जाने का ख़तरा मँडराता रहता है, क्योंकि वह मिथकों पर टिकी होती है और मिथक उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं, जिस क्षण लोग उन पर विश्वास करना बन्द कर देते हैं। एक कल्पित व्यवस्था की हिफ़ाज़त करने के लिए निरन्तर और कठिन प्रयास अनिवार्य होते हैं। इनमें से कुछ प्रयास हिंसा और उत्पीड़न की शक्ल ले लेते हैं। सेनाएँ, पुलिस बल, अदालतें और कारागार लोगों को एक कल्पित व्यवस्था के मुताबिक़ आचरण करने को बाध्य करने के लिए निरन्तर काम करते रहते हैं। अगर प्राचीन बेबीलोन का कोई नागरिक अपने पड़ोसी को अन्धा कर देता था, तो 'आँख के बदले आँख' के क़ानून को प्रयोग में लाने के लिए कुछ हिंसा सामान्यतः अनिवार्य होती थी। जब 1860 में बहुसंख्यक अमेरिकी नागरिक इस नतीज़े पर पहुँचे कि अफ़्रीकी ग़ुलाम मनुष्य हैं और इसलिए उन्हें आज़ादी के हक़ का इस्तेमाल करना चाहिए, तो दक्षिणी राज्यों को इस बात पर राज़ी करने के लिए एक रक्तरंजित गृह युद्ध से गुज़रना पड़ा।

लेकिन, कल्पित व्यवस्था को सिर्फ़ हिंसा के सहारे ही क़ायम नहीं रखा जा सकता। इसके लिए सच्चे आस्थावानों की भी उतनी ही ज़रूरत होती है। प्रिंस तैलेग़ाँ ने अपने गिरगिटनुमा जीवन की शुरुआत लुई XVI के अधीन की। बाद में क्रान्तिकारी और नेपोलियन हुकूमतों के लिए काम किया। इसके बाद उन्होंने बहाल राजतन्त्र के प्रति वफ़ादरी बरतते हुए उसके लिए काम किया। हुकूमत के दशकों लम्बे अनुभव के बाद उन्होंने यह कहते हुए उपसंहार किया था कि "संगीनों से आप बहुत से काम कर सकते हैं, लेकिन उन पर बैठना किंचित असुविधाजनक होता है"। एक अकेला पादरी अक्सर सौ सैनिकों का काम करता है - कहीं ज़्यादा आसानी और कारगर तरीक़े से। इसके अलावा संगीनें कितनी ही कारगर क्यों ना हों, लेकिन यह ज़रूरी होता है कि कोई उनका इस्तेमाल करे। आख़िर सैनिक, जेलर, न्यायाधीश और पुलिस किसी ऐसी कल्पित व्यवस्था को क़ायम क्यों रखेंगे, जिसमें उनका कोई विश्वास नहीं होगा? मनुष्यों की तमाम

सामूहिक गतिविधियों में सबसे कठिन है हिंसा की गतिविधि को संगठित करना। यह कहते ही कि कोई सामाजिक व्यवस्था सैन्य बल के बूते पर क़ायम है, तुरन्त ही यह सवाल खड़ा हो जाता है : सैन्य व्यवस्था को कौन क़ायम रखता है? किसी सेना को पूरी तरह बलपूर्वक संगठित रखना असम्भव है। कम से कम कुछ कमांडरों और सैनिकों का तो किसी ना किसी चीज़ में सच्चा विश्वास होना अनिवार्य है, फिर वह ईश्वर हो, गौरव हो, मातृभूमि हो, पौरुष हो या पैसा हो।

इससे भी ज़्यादा दिलचस्प प्रश्न उन लोगों से ताल्लुक रखता है, जो सामाजिक पिरामिड के शीर्ष पर खड़े होते हैं। अगर वे किसी कल्पित व्यवस्था में ख़ुद ही विश्वास नहीं रखते, तो फिर वे उस व्यवस्था को बलपूर्वक लागू क्यों करना चाहेंगे? आम तौर से यह तर्क दिया जाता है कि कुलीन वर्ग ऐसा अपने संशयात्मक (सिनिकल) लालच की वजह से कर सकता है, लेकिन एक संशयवादी (सिनिक) जो किसी भी चीज़ में विश्वास नहीं करता, उसके लालची होने की सम्भावना नहीं है। होमो सेपियन्स की वस्तुपरक जैविक आवश्यकताएँ ज़रा में पूरी हो जाती हैं। जैसे ही वे ज़रूरतें पूरी हुईं, वैसे ही पिरामिड खड़े करने, दुनिया का भ्रमण करते हुए छुट्टियाँ बिताने, चुनाव अभियानों के लिए आर्थिक सहायता देने और अपने पसन्दीदा आतंकवादी संगठनों को प्रायोजित करने पर ज़्यादा से ज़्यादा पैसा ख़र्च किया जा सकता है। इसके अलावा शेयर बाज़ार में उस पैसे का निवेश कर और अधिक पैसा कमाया जा सकता है - ये सब ऐसी गतिविधियाँ हैं, जो एक संशयवादी के लिए निहायत ही अर्थहीन प्रतीत होंगी। ग्रीक दार्शनिक डियोजेनेस, जिसने संशयवादी सम्प्रदाय की स्थापना की थी, एक पाइप (बैरल) में रहता था। एक दिन जब वह धूप सेंक रहा था, तो सिकन्दर महान ने उसके पास जाकर उससे पूछा, “क्या मैं आपकी कुछ मदद कर सकता हूँ”? इस पर इस संशयवादी ने उस सर्वशक्तिमान विश्वविजेता को जवाब दिया : “हाँ, एक काम है, जो आप मेरे लिए कर सकते हैं। मेहरबानी करके थोड़ा-सा एक तरफ़ हट जाइए। आप मेरी धूप रोक रहे हैं”।

यही वजह है कि संशयवादी साम्राज्य खड़े नहीं करते और यही वजह है कि एक कल्पित व्यवस्था केवल तभी क़ायम रखी जा सकती है, जब आबादी का एक बड़ा हिस्सा - ख़ास तौर से अभिजात्य वर्ग और सुरक्षा बलों का एक बड़ा तबका - उस व्यवस्था में सच्चा विश्वास करता है। ईसाइयत 2,000 वर्षों तक ना टिकी रही होती अगर बहुसंख्यक बिशपों और पादरियों का ईसा पर विश्वास उठ गया होता। अमेरिकी लोकतन्त्र 250 सालों तक टिका ना रह सका होता अगर बहुसंख्यक राष्ट्रपतियों और काँग्रेस के सदस्यों का मानव अधिकारों पर विश्वास उठ गया होता। आधुनिक आर्थिक तन्त्र एक दिन भी ना टिक सका होता अगर बहुसंख्यक निवेशकों और बैंककर्मियों का पूँजीवाद पर विश्वास उठ गया होता।

कारागार की दीवारें

ईसाइयत, लोकतन्त्र या पूँजीवाद जैसी कल्पित व्यवस्थाओं में लोगों के विश्वास को आप किस तरह प्रेरित करते हैं? सबसे पहले, आप कभी स्वीकार नहीं करते कि वह व्यवस्था कल्पित है। आप हमेशा इस पर ज़ोर देते हैं कि जिस व्यवस्था ने समाज को थाम रखा है,

वह देवताओं या कुदरत के नियमों द्वारा गढ़ी गई एक वस्तुपरक वास्तविकता है। लोग अ-समान हैं, इसलिए नहीं कि हम्मूराबी का ऐसा कहना था, बल्कि इसलिए कि एन्लिल और मार्डुक* ने ऐसा विधान रचा था। लोग समान हैं, इसलिए नहीं कि थॉमस जैफ़रसन* का कहना था, बल्कि इसलिए कि ईश्वर ने ही उन्हें इस तरह रचा था। मुक्त बाज़ार सर्वश्रेष्ठ अर्थ व्यवस्था है, इसलिए नहीं कि एडम स्मिथ का ऐसा कहना था, बल्कि इसलिए कि ये कुदरत के अपरिवर्तनीय नियम हैं।

आप लोगों का आमूलचूल शिक्षण भी करते हैं। उनके पैदा होने के क्षण से ही आप उन्हें कल्पित व्यवस्था के उन सिद्धान्तों की याद दिलाते रहते हैं, जो हर चीज़ में समाविष्ट होते हैं। वे परी कथाओं में समाविष्ट होते हैं, नाटकों, कलाकृतियों, गीतों, तहज़ीब, राजनैतिक प्रचार, स्थापत्य, व्यंजन तैयार करने की विधियों और फ़ैशन में समाविष्ट होते हैं। उदाहरण के लिए, आज लोग समानता में विश्वास करते हैं, इसलिए सम्पन्न परिवार के बच्चों में जीन्स पहनना फ़ैशन है, जो मूलतः कामकाजी वर्ग की पोशाक हुआ करती थी। मध्य युग में लोग वर्ग-विभाजन में विश्वास करते थे, इसलिए उस समय का कोई भी कुलीन पुरुष किसान का कुर्ता ना पहनता होगा। तब के ज़माने में 'सर' या 'मैडम' का सम्बोधन एक दुर्लभ विशेषाधिकार था, जो कुलीनों के लिए आरक्षित था और जिसे अक्सर ख़ून की क़ीमत चुका कर हासिल किया जाता था। आज का कोई भी विनम्र पत्र, वह चाहे किसी को भी सम्बोधित हो, 'डियर सर या मैडम' के साथ शुरू होता है।

मानविकी और सामाजिक विज्ञानें अपनी ज़्यादातर ऊर्जा यह समझाने में ख़र्च करती हैं कि किस तरह कल्पित व्यवस्था जीवन की टेपेस्ट्री में बुनी हुई है। पुस्तक में उपलब्ध इस सीमित जगह में हम सिर्फ़ सतह को ही खुरच सकते हैं। तीन ऐसे मुख्य कारक हैं, जो लोगों को इस बोध से दूर रखते हैं कि उनके जीवन को नियोजित करने वाली व्यवस्था का अस्तित्व सिर्फ़ उनकी कल्पना में है :

क. कल्पित व्यवस्था भौतिक जगत में अंतःस्थापित है। हालाँकि कल्पित व्यवस्था का अस्तित्व हमारे मस्तिष्कों में ही होता है, तब भी इसे हमारे आस-पास की भौतिक वास्तविकता में गूँथा जा सकता है, यहाँ तक कि उसे पत्थर तक में जड़ा जा सकता है। ज़्यादातर पश्चिमी लोग आज व्यक्तिवाद (इंडिविजुअलिज़म) में विश्वास करते हैं। उनका मानना है कि हर मनुष्य एक विशिष्ट व्यक्ति है, जिसका महत्त्व इस बात पर निर्भर नहीं करता कि दूसरे लोग उसके बारे में क्या सोचते हैं। हम में से हर एक के भीतर रोशनी की एक चमकती हुई किरण मौजूद है, जो हमारे जीवन को मूल्य और अर्थवत्ता प्रदान करती है। आधुनिक पश्चिमी स्कूलों में अध्यापक और अभिभावक बच्चों से कहते हैं कि अगर उनके सहपाठी उनका मज़ाक़ उड़ाएँ, तो उन्हें उसकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। दूसरे नहीं, बल्कि वे ख़ुद अपने वास्तविक मूल्य को समझते हैं।

आधुनिक स्थापत्य में यह मिथक कल्पना से बाहर आकर पत्थर और गारे की शक्ल ले लेता है। आदर्श आधुनिक मकान कई छोटे-छोटे कमरों में बँटे होते हैं, ताकि हर बच्चे को दूसरों की निगाह से छिपी और अधिकतम स्वायत्तता उपलब्ध कराती एक निजी जगह मिल सके। इस निजी कमरे में लगभग निरपवाद रूप से एक दरवाज़ा होता है और अधिकांश घरों में यह एक स्वीकृत रिवाज़ है कि बच्चा उस दरवाज़े को उड़का कर और

शायद अन्दर से बन्द कर के रखता है। यहाँ तक कि अभिभावकों को भी बिना दस्तक दिए और इजाज़त लिए बग़ैर अन्दर जाने की मनाही होती है। कमरा बच्चे की मर्ज़ी के मुताबिक़ सजा होता है और दीवारों पर रॉक-स्टारों के पोस्टर और फ़र्श पर गन्दे मोजे पड़े होते हैं। ऐसी जगह में बड़ा होने वाला इंसान अपने आप को 'एक व्यक्ति' के रूप में कल्पित किए बिना नहीं रह सकता, जिसका वास्तविक मूल्य बाहर से नहीं, बल्कि उसके अन्दर से उत्पन्न होता है।

मध्ययुग के कुलीन पुरुष व्यक्तिवाद में विश्वास नहीं करते थे। लोगों का महत्त्व सामाजिक विन्यास के भीतर उसकी हैसियत और इस बात से निर्धारित होता था कि दूसरे लोग उसके बारे में क्या कहते थे। उपहास का पात्र बनना एक भयानक अपमान की बात होती थी। ये कुलीन पुरुष अपने बच्चों को किसी भी क़ीमत पर अपनी नेकनामी बरकरार रखने की शिक्षा देते थे। आधुनिक व्यक्तिवाद की ही तरह, मध्ययुगीन मूल्य व्यवस्था कल्पना से बाहर आकर मध्ययुगीन क़िलों के पत्थरों में अभिव्यक्त हुई थी। इन क़िलों में बच्चों के लिए (बल्कि किसी के लिए भी) निजी कमरे शायद ही होते थे। किसी मध्ययुगीन सामन्त के किशोर बच्चे का क़िले की दूसरी मंज़िल पर कोई निजी कक्ष नहीं होता था, जिसकी दीवारों पर रिचर्ड द लियोनहार्ट और किंग ऑर्थर के पोस्टर होते और ऐसा कोई दरवाज़ा होता, जिसे खोलने की इजाज़त उसके अभिभावकों को ना होती। वह एक बड़े हॉल में दूसरे अनेक नौजवानों के साथ सोता था। वह हमेशा सार्वजनिक निगाहों में होता था और उसे हमेशा इस बात का ध्यान रखना होता था कि दूसरे क्या देखते और कहते थे। इस तरह की परिस्थितियों में बड़ा होने वाला कोई भी इंसान स्वाभाविक ही इस निष्कर्ष पर पहुँचता था कि मनुष्य का वास्तविक मूल्य सामाजिक विन्यास के भीतर उसकी हैसियत से और इस बात से निर्धारित होता है कि दूसरे लोग उसके बारे में क्या कहते हैं।

ख. कल्पित व्यवस्था हमारी आकांक्षाओं को गढ़ती है। ज़्यादातर लोग इस बात को स्वीकार नहीं करना चाहते कि उनके जीवन को नियन्त्रित करने वाली व्यवस्था कल्पित है, लेकिन वस्तुतः हर व्यक्ति एक पहले से मौजूद कल्पित व्यवस्था के भीतर पैदा हुआ होता है और उसकी आकांक्षाओं को उस व्यवस्था के प्रभावशाली मिथकों ने गढ़ा होता है। इस तरह हमारी निजी आकांक्षाएँ कल्पित व्यवस्था के सबसे महत्त्वपूर्ण बचाव बन जाते हैं।

उदाहरण के लिए, आज के पश्चिमी लोगों की सबसे ज़्यादा चहेती आकांक्षाएँ उन रोमांटिक, राष्ट्रवादी, पूँजीवादी और मानवतावादी मिथकों द्वारा गढ़ी गई हैं, जो सदियों से आस-पास बने रहे हैं। लोग अक्सर एक दूसरे को सलाह देते हैं कि 'अपने दिल की आवाज़ सुनो', लेकिन दिल दोहरा गुप्तचर (डबल एजेंट) है, जो आम तौर से अपने निर्देश अपने समय के प्रभावशाली मिथकों से प्राप्त करता है और स्वयं 'अपने दिल की आवाज़ सुनो' की यह सिफ़ारिश उन्नीसवीं सदी के रोमांटिक मिथकों और बीसवीं सदी के उपभोक्तावादी मिथकों के मिश्रण द्वारा हमारे दिमाग़ों में बैठाई गई थी। उदाहरण के लिए, कोका कोला कम्पनी ने 'डाइट कोक। डू वाट फ़ील्स गुड' के नारे के साथ दुनिया भर में डाइट कोक को बेचा है।

यहाँ तक कि जिन आकांक्षाओं को लोग अपनी सर्वाधिक निजी आकांक्षाओं की तरह

देखते हैं, वे भी आम तौर से कल्पित व्यवस्था द्वारा नियोजित होती हैं। उदाहरण के लिए हम विदेश में छुट्टियाँ बिताने की लोकप्रिय आकांक्षा को ही लें। इसमें स्वाभाविक या ज़ाहिर-सा कुछ भी नहीं है। चिंपाज़ियों का कोई नर मुखिया पड़ोसी चिंपांज़ी झुण्ड में जाकर छुट्टियाँ बिताने में अपनी ताक़त का इस्तेमाल करने के बारे में कभी नहीं सोचेगा। प्राचीन मिस्र के कुलीन लोग पिरामिडों के निर्माण और शवों की ममी बनाने में अपनी सम्पत्ति ख़र्च करते थे, लेकिन उनमें से किसी ने बेबीलोन में जाकर ख़रीदारी करने या फ़ीनीशिया में जाकर छुट्टियाँ बिताने के बारे में कभी नहीं सोचा। आज लोग विदेश में छुट्टियाँ बिताने पर ढेर सारा पैसा ख़र्च करते हैं क्योंकि वे रोमांटिक उपभोक्तावाद के मिथकों में सच्ची आस्था रखते हैं।

18. गीज़ा का ग्रेट पिरामिड। यह उस तरह की चीज़ है, जिस पर प्राचीन मिस्र के सम्पन्न लोग अपना पैसा ख़र्च किया करते थे।

रोमांटिसिज़्म हमसे कहता है कि हमें अपनी मानवीय सम्भावनाओं का पूरा लाभ उठाने के लिए ज़्यादा से ज़्यादा अनुभव हासिल करने चाहिए। हमें ख़ुद को भावनाओं के विशाल फलक के प्रति खुला छोड़ देना चाहिए, हमें तरह-तरह के रिश्तों का स्वाद चखना चाहिए, हमें विभिन्न क़िस्म की रसोइयों को आज़माना चाहिए और हमें अलग-अलग तरह की संगीत-शैलियों का आनन्द लेना सीखना चाहिए। अपनी दिनचर्या के ढर्रे से आज़ाद होने का एक सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि हम अपने चिर-परिचित माहौल को पीछे छोड़कर दूर देशों की यात्रा पर निकल जाएँ, जहाँ हम दूसरे समाजों की संस्कृतियों, गन्धों, स्वादों और मानकों को ‘अनुभव’ कर सकें। हमें बार-बार इस बारे में रोमांटिक मिथक सुनने को मिलते हैं कि “किस तरह अमुक नए अनुभव ने मेरी आँखें खोल दीं और मेरी

ज़िन्दगी को बदल दिया”।

उपभोक्तावाद हमसे कहता है कि अगर हम सुख प्राप्त करना चाहते हैं, तो हमें ज़्यादा से ज़्यादा चीज़ों और सुविधाओं का उपभोग करना चाहिए। अगर हमें किसी चीज़ का अभाव या किसी चीज़ में कोई कमी महसूस होती है, तो शायद हमें कोई चीज़ (कार, नए कपड़े, ऑर्गेनिक खाद्य सामग्री) ख़रीदने या किसी सुविधा (हाउसकीपिंग, रिलेशनशिप थेरेपी और योग की क्लास) के उपयोग की ज़रूरत है। टेलिविज़न का हर विज्ञापन इस बारे में एक और छोटी-सी किंवदन्ती होता है कि किस तरह किसी उत्पाद या सुविधा का उपभोग हमारी ज़िन्दगी को बेहतर बनाता है।

रोमांटिसिज़्म, जो विविधता को प्रोत्साहित करता है, उपभोक्तावाद के साथ एकदम ठीक फ़िट बैठता है। इन दोनों के गठबन्धन ने अन्तहीन ‘अनुभवों के बाज़ार’ को जन्म दिया है, जिस पर पर्यटन का आधुनिक उद्योग खड़ा हुआ है। पर्यटन उद्योग हवाई टिकट और होटल बेडरूम नहीं बेचता। वह अनुभव बेचता है। पेरिस कोई शहर नहीं है, ना ही हिन्दुस्तान कोई देश है - ये दोनों अनुभव हैं, जिनका उपभोग हमारी सीमाओं का विस्तार कर सकता है, हमारी मानवीय सम्भावनाओं को चरितार्थ कर सकता है और हमें ज़्यादा सुखी बना सकता है। नतीज़तन, जब किसी अरबपति का उसकी बीवी के साथ का रिश्ता किसी मुश्किल दौर से गुज़र रहा होता है, तो वह उसे पेरिस की महँगी यात्रा पर ले जाता है। यह यात्रा किसी स्वाधीन आकांक्षा को प्रतिबिम्बित नहीं करती, बल्कि रोमांटिक उपभोक्तावाद के मिथकों में एक उत्कट विश्वास को प्रतिबिम्बित करती है। प्राचीन मिस्र के किसी रईस आदमी ने अपनी बीवी को बेबीलोन की यात्रा पर ले जाने में अपने रिश्ते के संकट का समाधान खोजने का सपना कभी नहीं देखा होता। इसके बजाय, उसने उसके लिए वह आलीशान मक़बरा बनवाया होता, जो उसकी बीवी हमेशा से चाहती रही थी।

प्राचीन मिस्र के कुलीन लोगों की तरह, अधिकांश संस्कृतियों के अधिकांश लोग पिरामिड खड़े करने में अपने जीवन लगाते हैं। सिर्फ़ इन पिरामिडों के नाम, रूप और आकार अलग-अलग संस्कृतियों के मुताबिक़ बदलते रहते हैं। मसलन, वे स्विमिंग पूल और सदाबहार लॉन से युक्त किसी उपमहानगरीय कॉटेज की शक्ल ले सकते हैं, या किसी ऐसे पैंटहाउस की शक्ल ले सकते हैं, जहाँ से दिखने वाले नज़ारे से लोग ईर्ष्या करें। सबसे पहले तो बहुत कम लोग होते हैं, जो उन मिथकों पर ही सवाल उठाते हों, जो हमारे मन में पिरामिड खड़े करने की इच्छा जगाते हैं।

ग. कल्पित व्यवस्था अन्तर-आत्मपरक होती है। अगर मैं किसी अतिमानवीय उद्यम के बूते पर अपनी निजी आकांक्षाओं को कल्पित व्यवस्था की पकड़ से आज़ाद करने में कामयाब हो जाता हूँ, तो ऐसा करने वाला मैं महज़ एक व्यक्ति ही हूँ। कल्पित व्यवस्था को बदलने के लिए मुझे मेरे साथ सहयोग करने के लिए लाखों अजनबी लोगों को राज़ी करना होगा क्योंकि कल्पित व्यवस्था कोई आत्मपरक व्यवस्था नहीं है, जिसका अस्तित्व सिर्फ़ स्वयं मेरी कल्पना में हो, बल्कि यह एक अन्तर-आत्मपरक व्यवस्था है, जिसका अस्तित्व हज़ारों लाखों लोगों की सामूहिक कल्पना में है।

इसे समझने के लिए हमें ‘वस्तुपरक’, ‘आत्मपरक’ और ‘अन्तर-आत्मपरक’ के बीच के फ़र्क़ को समझना ज़रूरी है।

किसी वस्तुपरक तथ्य का अस्तित्व मानवीय चेतना और मानवीय विश्वासों से स्वतन्त्र रूप में होता है। उदाहरण के लिए, रेडियोएक्टिविटी कोई लोक-विश्वास नहीं है। रेडियोएक्टिव उत्सर्जन लोगों द्वारा की गई इनकी खोज के बहुत-बहुत पहले से होते आ रहे हैं और वे ख़तरनाक होते हैं, भले ही लोग उनमें विश्वास करें या ना करें। रेडियोएक्टिविटी की खोज करने वालों में से एक मेरी क्यूरी को रडियोएक्टिव पदार्थों के अपने अध्ययन के लम्बे वर्षों के दौरान इस बात की जानकारी नहीं थी कि वे शरीर को नुक़सान पहुँचा सकते हैं। भले ही वह नहीं जानती थी कि रेडियोएक्टिविटी उसकी जान ले सकती थी, तब भी उसकी मौत एप्लास्टिक एनीमिया नामक उस बीमारी से हुई, जो रेडियोएक्टिव पदार्थों के अतिशय सम्पर्क में आने की वजह से होती है।

आत्मपरक वह चीज़ है, जिसका अस्तित्व किसी एक व्यक्ति की चेतना और विश्वासों पर निर्भर करता है। अगर उस व्यक्ति विशेष के विश्वासों में परिवर्तन हो जाता है, तो वह चीज़ ग़ायब हो जाती है या बदल जाती है। बहुत-से बच्चे किसी ऐसे कल्पित दोस्त के अस्तित्व में विश्वास करते हैं, जो बाक़ी दुनिया को दिखाई और सुनाई नहीं देता। इस कल्पित दोस्त का अस्तित्व पूरी तरह से उस बच्चे की आत्मपरक चेतना में होता है और जब बच्चा बड़ा होकर उस पर विश्वास करना बन्द कर देता है, तो वह कल्पित दोस्त ग़ायब हो जाता है।

अन्तर-आत्मपरक वह चीज़ है, जिसका अस्तित्व बहुत सारे व्यक्तियों की आत्मपरक चेतना को आपस में जोड़ने वाले सम्प्रेषण-तन्त्र के भीतर होता है। अगर किसी एक व्यक्ति के विश्वास बदल जाते हैं या वह व्यक्ति मर भी जाता है, तो इससे कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ता, लेकिन अगर उस सम्प्रेषण-तन्त्र के ज़्यादातर व्यक्ति मर जाते हैं या उन सबके विश्वास बदलाव जाते हैं, तो वह अन्तर-आत्मपरक तथ्य बदल जाएगा या ग़ायब हो जाएगा। अन्तर-आत्मपरक तथ्य ना तो अनिष्टपूर्ण छल हैं, ना ही महत्त्वहीन पहेलियाँ हैं। उनका अस्तित्व रेडियोएक्टिविटी जैसे भौतिक तथ्यों से भिन्न होता है, लेकिन तब भी दुनिया पर उनका प्रभाव भीषण हो सकता है। इतिहास की अनेक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चालक शक्तियाँ अन्तर-आत्मरक हैं : क़ानून, पैसा, देवता, राष्ट्र।

उदाहरण के लिए, प्यूज़ो, प्यूज़ो कम्पनी के सीईओ का काल्पनिक दोस्त नहीं है। इस कम्पनी का अस्तित्व लाखों लोगों की साझा कल्पना में है। सीईओ इस कम्पनी के अस्तित्व में विश्वास करता है क्योंकि कम्पनी का संचालक मण्डल भी उसमें विश्वास करता है, उसी तरह कम्पनी के वकील, पास के आफ़िस के सचिव, बैंक के रोकड़िये, स्टॉक एक्सचेंज के दलाल और फ़्रांस से लेकर ऑस्ट्रेलिया तक के कारों के डीलर विश्वास करते हैं। यदि सीईओ अचानक प्यूज़ो कंपनी के अस्तित्व में विश्वास करना बंद कर दें, तो वह तत्काल स्वयं को पास के मानसिक चिकत्सालय में पाएँगे और कोई अन्य उनकी कुर्सी पर बैठ जाएगा।

इसी तरह, डॉलर, मानव अधिकार और संयुक्त राज्य अमेरिका का अस्तित्व करोड़ों लोगों की साझा कल्पना में है और कोई भी एक व्यक्ति इनके अस्तित्व को जोख़िम में नहीं डाल सकता। अगर अकेला मैं डॉलर, मानव अधिकारों या संयुक्त राज्य अमेरिका में विश्वास करना बन्द कर दूँ, तो इससे कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ेगा। कल्पित व्यवस्थाएँ अन्तर-आत्मपरक होती हैं, इसलिए उन्हें बदलने के लिए हमें एक साथ अरबों लोगों की

चेतना को बदलना अनिवार्य है, जो आसान काम नहीं है। इस बड़े पैमाने का परिवर्तन किसी राजनैतिक दल, किसी वैचारिक आन्दोलन या किसी धार्मिक पन्थ जैसे किसी जटिल संगठन की मदद से ही लाया जा सकता है, लेकिन ऐसे किसी जटिल संगठन को खड़ा करने के लिए अनेक अजनबी लोगों को परस्पर सहयोग के लिए राज़ी करना ज़रूरी है। यह तभी मुमकिन होगा, जब ये अजनबी किन्हीं साझा कल्पनाओं में विश्वास करते हों। वर्तमान कल्पित व्यवस्था को बदलने के लिए हमें पहले वैकल्पिक कल्पित व्यवस्था में विश्वास करना होगा।

मसलन, प्यूज़ो कम्पनी को भंग करने के लिए हमें फ़्रांसीसी वैधानिक व्यवस्था जैसी किसी अधिक शक्तिशाली चीज़ की कल्पना करनी होगी। फ़्रांसीसी वैधानिक व्यवस्था को भंग करने के लिए हमें फ़्रांस राज्य जैसी किसी अधिक शक्तिशाली चीज़ की कल्पना करनी होगी। और अगर हम उसको भी भंग करना चाहें, तो हमें उससे भी ज़्यादा किसी शक्तिशाली चीज़ की कल्पना करनी होगी।

कल्पित व्यवस्था से बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं है। जब हम अपने जेल की दीवारें तोड़कर आज़ादी की ओर भागते हैं, तब हम दरअसल किसी उससे बड़ी जेल के ज़्यादा विस्तीर्ण व्यायाम-स्थल (एक्सरसाइज़ यार्ड) की ओर भाग रहे होते हैं।

---

[*] एन्लिल मेसोपोटामिया के देवताओं की मण्डली के सर्वोच्च देवताओं में से एक थे और मार्डुक प्राचीन मेसोपोटामिया के एक परवर्ती देवता और बेबीलोन नगर के संरक्षक देवता थे।

[*] थॉमस जैफ़रसन अमेरिका के संस्थापकों में से एक और अमेरिकी स्वाधीनता के घोषणा-पत्र (डिक्लेयरेशन ऑफ़ इंडिपेंडेंस) के प्रमुख रचयिता थे। वह बाद में संयुक्त राज्य अमेरिका के तीसरे राष्ट्रपति भी बने।

7

भारी बोझ की स्मृति

विकास की प्रक्रिया ने मनुष्य को फ़ुटबॉल खेलने की योग्यता से नहीं नवाज़ा था। बेशक, उसने ठोकर मारने के लिए पैरों, फ़ाउल करने के लिए कोहनियों और गालियाँ बकने के लिए मुँह को उत्पन्न किया, लेकिन यह कुल मिलाकर हमारे लिए इतने ही उपयोग का है कि हम अकेले ही पेनल्टी किक्स का अभ्यास कर सकें। दिन के किसी भी तीसरे पहर स्कूल के मैदान में जो अजनबी हमें मिलते हैं, उनके साथ खेलने के लिए हमें ना सिर्फ़ टीम के उन दस खिलाड़ियों के साथ मिलकर काम करना ज़रूरी है, जिनसे हम पहले कभी नहीं मिले हैं, बल्कि हमें यह भी जानना ज़रूरी है कि प्रतिद्वन्द्वी टीम के ग्यारह खिलाड़ी भी उन्हीं नियमों के तहत खेल रहे हैं। दूसरे प्राणी, जो रस्मी आक्रामकता में अजनबियों के साथ संलग्न होते हैं, ऐसा सहज प्रवृत्ति-वश करते हैं - सारी दुनिया के पिल्लों में आपसी घुला-मस्ती खेलने के नियम उनके जीन में आनुवांशिक तौर पर मौजूद होते हैं, लेकिन इंसानी किशोरों में फ़ुटबॉल के कोई जीन नहीं होते। इसके बावजूद वे सर्वथा अजनबियों के साथ खेल सकते हैं, तो इसलिए क्योंकि उन सबने फ़ुटबॉल की तकनीकों के एक जैसे ढाँचे को सीख लिया होता है। ये तकनीकें पूरी तरह कल्पित होती हैं, लेकिन अगर उन्हें हर कोई साझा करता है, तो हम सब उस खेल को खेल सकते हैं।

यही बात, एक बड़े पैमाने पर, एक महत्त्वपूर्ण फ़र्क़ के साथ हुकूमतों, चर्चों और व्यापारिक तन्त्रें पर लागू होती है। फ़ुटबॉल के नियम अपेक्षाकृत सरल और संक्षिप्त होते हैं, काफ़ी कुछ उन नियमों की तरह जो किसी भोजन-खोजी क़बीले या छोटे-से गाँव के लिए आवश्यक होते हैं। हर खिलाड़ी उन्हें आसानी से अपने दिमाग़ में रख सकता है और तब भी वहाँ गीतों, छवियों और ख़रीदारी की सूची के लिए गुंजाइश बनी रह सकती है, लेकिन परस्पर सहकार की जिन बड़ी व्यवस्थाओं में बाइस नहीं, बल्कि हज़ारों या लाखों मनुष्य शामिल होते हैं, उनके लिए जानकारी की विशाल मात्रा को बरतने और दिमाग़ में

रखने की ज़रूरत होती है, उससे कहीं बहुत ज़्यादा मात्रा को जितनी को एक अकेला इंसानी दिमाग़ समाहित और संसाधित (प्रोसेस) कर सकता है।

चीटियों और मधुमक्खियों जैसी कुछ दूसरी प्रजातियों में पाए जाने वाले बड़े समाज स्थिर और लचीले होते हैं क्योंकि उन्हें क़ायम रखने के लिए आवश्यक ज़्यादातर जानकारी जीन-समूह में कूटबद्ध (निहित) होती है। उदाहरण के लिए एक मादा मधुमक्खी का लार्वा विकसित होकर रानी या कामगार में से कुछ भी बन सकता है, जो इस पर निर्भर करता है कि उसे किस तरह का भोजन मिला है। उसका डीएनए दोनों भूमिकाओं के लिए आवश्यक आचरणों में सहज ही ढला होता है - चाहे वह शाही तहज़ीब हो या सर्वहारा की परिश्रमशीलता हो। मधुमक्खियों का झुण्ड बेहद जटिल सामाजिक संरचना हो सकती है, जिसमें कई तरह के कामगार शामिल होते हैं - उदाहरण के लिए फ़सल इकट्ठा करने वाले (हार्वेस्टर), परिचारिकाएँ, सफ़ाई कर्मचारी, लेकिन शोधकर्ता अभी तक वकील मधुमक्खियों का पता लगाने में नाक़ामयाब रहे हैं। मधुमक्खियों को वकीलों की ज़रूरत नहीं पड़ती क्योंकि इस बात का कोई ख़तरा नहीं है कि वे सफ़ाईकर्मी मधुमक्खियों को जीवन, स्वतन्त्रता और सुख की खोज के उनके हक़ों से वंचित करते हुए छत्ते के निर्माण में बाधा डालने की कोशिश कर सकती हैं।

लेकिन मनुष्य ऐसी हरक़तें हर समय करते रहते हैं। चूँकि सेपियन्स की सामाजिक व्यवस्था कल्पित होती है, इसलिए मनुष्य बुनियादी जानकारी को क्रियाशील बनाए रखने के लिए उसे अपने डीएनए की अनुकृतियाँ तैयार करते हुए और उन्हें अपनी सन्तति को सौंपते हुए महफ़ूज़ नहीं रख सकते। विधियों, रीति-रिवाज़ों, पद्धतियों, परिपाटियों को टिकाए रखने के लिए एक सचेत उद्यम ज़रूरी है, अन्यथा सामाजिक व्यवस्था बहुत जल्दी ढह जाएगी। उदाहरण के लिए, राजा हम्मूराबी ने यह विधान तैयार किया कि लोग श्रेष्ठ जनों, सामान्य जनों और ग़ुलामों की कोटियों में विभाजित हैं। यह कोई क़ुदरती विभाजन नहीं है - मनुष्य के जीन में इसका कोई नामोनिशान नहीं है। अगर बेबीलोन के निवासी इस ‘सत्य’ को याद ना रख सके होते, तो उनके समाज ने काम करना बन्द कर दिया होता। इसी तरह, जब हम्मूराबी ने अपना डीएनए अपनी सन्तान को हस्तान्तरित किया, तो उसमें उसका यह फ़ैसला कूटबद्ध नहीं था कि किसी सामान्य जन की हत्या करने वाले श्रेष्ठ जन को चाँदी के तीस सिक्कों का भुगतान करना होगा। हम्मूराबी को अपने बेटों को अपने साम्राज्य के क़ानूनों में इरादतन दीक्षित करना ज़रूरी था और यही काम उसके बेटों और पोतों को भी करना पड़ा होगा।

साम्राज्य जानकारी की विशाल तादाद को उत्पन्न करते हैं। क़ानूनों के अलावा, साम्राज्यों को सौदों और करों, सैन्य आपूर्ति तथा तिज़ारती जहाज़ों की सूची और त्यौहारों तथा जीतों के कैलेंडरों का हिसाब रखना होता है। लाखों सालों से लोग जानकारी को एक ही जगह में संचित करते आए हैं : अपने मस्तिष्कों में। दुर्भाग्य से मानव मस्तिष्क साम्राज्य के आकार के डेटाबेस के भण्डारण के लिहाज़ से बहुत उपयुक्त उपकरण नहीं है। इसकी तीन मुख्य वजहें हैं।

पहली वजह यह है कि इसकी क्षमता सीमित है। यह सही है कि कुछ लोगों की स्मरण शक्ति चमत्कृत करने वाली होती है और प्राचीन युगों में याददाश्त का व्यवसाय करने वाले (मैमोरी प्रोफ़ेशनल्स) होते थे, जो अपने दिमाग़ में समूचे प्रान्तों की भौगोलिक

स्थितियों और समूचे राज्यों की विधि संहिताओं को संचित करके रख सकते थे। तब भी, इसकी एक सीमा है, जिसको स्मरण शक्ति के उस्ताद भी नहीं लाँघ सकते। हो सकता है किसी वकील को कॉमनवेल्थ ऑफ़ मैसाचुसेट्स की समूची विधि संहिता कण्ठस्थ हो, लेकिन उसे मैसाचुसेट्स में सलेम विच मुकदमों के बाद की हर वैधानिक कार्यवाही के विवरणों की कोई स्मृति ना हो।

दूसरी वजह यह है कि मनुष्य मरते हैं और उनके साथ उनके मस्तिष्क भी मर जाते हैं। मस्तिष्क में संचित कोई भी जानकारी एक सदी से भी कम के समय में मिट जाने वाली होती है। बेशक एक मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क में स्मृति का स्थानान्तरण मुमकिन है, लेकिन कुछ ही स्थानान्तरणों के बाद उस जानकारी के विकृत या लुप्त हो जाने की सम्भावना होती है।

तीसरी और सबसे महत्त्वपूर्ण वजह यह है कि मानव मस्तिष्क इस तरह ढला है कि वह केवल ख़ास क़िस्म की जानकारी को संचित और संसाधित कर सकता है। प्राचीन शिकारी-भोजन-संग्रहकर्ताओं को जीवित बने रहने के लिए हज़ारों प्रजातियों की वनस्पतियों और जीवों के रूपाकारों, गुणों और आचरण के तौर-तरीक़ों को याद रखना पड़ता था। उन्हें यह याद रखना होता था कि पूरी सम्भावना है कि एल्म के पेड़ तले शरद ऋतु में उगने वाला झुर्रीदार पीला मशरूम ज़हरीला हो, जबकि जाड़ों में बलूत के पेड़ के तले उगा वैसा ही दिखने वाला मशरूम पेट-दर्द की अच्छी दवा है। शिकारी-भोजन-संग्रहकर्ताओं को क़बीले की रायों और उनके आपसी रिश्तों को भी दिमाग़ में रखना होता था। अगर लूसी चाहती थी कि उसे सताने वाले जॉन को रोकने में क़बीले का कोई सदस्य उसकी मदद करे, तो उसे यह याद रखना महत्त्वपूर्ण था कि पिछले हफ़्ते जॉन का मेरी से झगड़ा हो गया था, इसलिए मेरी उसकी सम्भावित और उत्सुक सहयोगी हो सकती है। नतीज़तन, विकास-प्रक्रिया के दबाव ने मानव मस्तिष्क को वानस्पतिक, जैविक, भौगोलिक और सामाजिक जानकारियों की विपुल मात्रा को सहेज कर रखने के अनुरूप ढाला है।

लेकिन जब कृषि क्रान्ति के बाद असामान्य रूप से जटिल समाजों का प्रादुर्भाव होने लगा, तो एक बिलकुल नई तरह की जानकारी महत्त्वपूर्ण हो उठी : संख्याएँ। भोजन-खोजी बड़ी तादाद में गणितीय आँकड़ों का प्रबंधन करने के लिए कभी बाध्य नहीं हुए थे। मसलन, किसी भोजन-खोजी को जंगल के हर पेड़ के फलों की संख्या को याद रखने की ज़रूरत नहीं थी। इसलिए मानव-मस्तिष्क संख्याओं का भण्डारण और उनका प्रबंधन करने के अनुरूप नहीं ढला था, लेकिन एक बड़े राज्य का प्रबन्धन करने के लिए गणितीय आँकड़े केन्द्रीय महत्त्व रखते थे। क़ानून बनाना और सरपरस्त देवताओं के क़िस्से कहना भर पर्याप्त नहीं था। कर भी वसूलने होते थे। सैकड़ों हज़ारों लोगों पर कर लगाने के लिए यह अनिवार्य था कि लोगों की आय और सम्पत्तियों के आँकड़े, किए गए भुगतान के आँकड़े, बकाया राशि के आँकड़े, क़र्ज़ों और ज़ुर्मानों के आँकड़े, रियायतों और छूटों के आँकड़े एकत्र किए जाते। इससे लाखों की संख्या में आँकड़े तैयार हुए, जिन्हें संचित करके रखना और प्रोसेस करना ज़रूरी था। बिना इस क्षमता के राज्य को कभी यह पता नहीं चल पाता कि उसके संसाधन क्या हैं और किन नए संसाधनों का वह लाभ उठा सकता है। जब इन सारी संख्याओं को स्मृति में दर्ज़ करने, याद करने और

उनका प्रबंधन करने की नौबत आई, तो ज़्यादातर मानव-मस्तिष्क ओवरडोज़ के शिकार हो गए या सुन्न पड़ गए।

इस दिमाग़ी सीमा ने मानव समूहों के आकार और जटिलता को बुरी तरह बाधित कर दिया। जब किसी समाज के लोगों और सम्पत्ति की तादाद एक निर्णायक सीमारेखा को पार कर जाती, तो गणितीय आँकड़ों की बड़ी तादाद को संचित और प्रोसेस करना आवश्यक हो जाता। और चूँकि मानव-मस्तिष्क यह नहीं कर सकता था, इसलिए व्यवस्था धराशायी हो जाती। कृषि क्रान्ति के बाद हज़ारों सालों तक मनुष्यों के सामाजिक तन्त्र अपेक्षाकृत छोटे और सरल बने रहे।

इस समस्या पर क़ाबू पाने वाले प्रथम लोग प्राचीन सुमेरियाई थे, जो दक्षिण मेसोपोटामिया में रहते थे। वहाँ उपजाऊ दलदली मैदानों पर पड़ती तीखी धूप ने भरपूर फ़सलों और समृद्ध नगरों को जन्म दिया था। जैसे-जैसे आबादी बढ़ती गई, वैसे-वैसे उनके कार्यव्यापार में समन्वय स्थापित करने के लिए आवश्यक जानकारी की तादाद भी बढ़ती गई। 3500 ईसा पूर्व और 3000 ईसा पूर्व के बीच के वर्षों में कुछ अज्ञात सुमेरियाई धुरन्धरों ने मानव-मस्तिष्क से बाहर सूचना को संचित और प्रोसेस करने की एक पद्धति ईजाद कर ली, एक ऐसी पद्धति जो गणितीय आँकड़ों का बड़ी तादाद में प्रबंधन करने के लिए ही विशेष रूप से बनी थी। इस तरह सुमेरियाई लोगों ने अपनी सामाजिक व्यवस्था को इंसानी दिमाग़ की सीमाओं से आज़ाद कर, नगरों, हुकूमतों और साम्राज्यों के प्रादुर्भाव का रास्ता खोल दिया। सुमेरियाई लोगों द्वारा ईजाद इस डेटाप्रोसेसिंग पद्धति का नाम था ‘लेखन’।

हस्ताक्षरित, कुशीम

लेखन भौतिक संकेत-चिह्नों के माध्यम से जानकारी को संचित करने की एक विधि है। सुमेरियाई लेखन-पद्धति ने यह काम दो तरह के संकेत-चिह्नों का संयोजन करके किया, जिन्हें मिट्टी की पट्टियों पर धँसा दिया जाता था। 1, 10, 60, 600, 3,600 और 36,000 के संकेत थे (सुमेरियाइयों ने आधार-6 और आधार-10 की संख्यावाचक पद्धतियों के संयोजन का प्रयोग किया था। उनकी बेस-6 पद्धति ने हमें अनेक महत्त्वपूर्ण विरासतों से नवाज़ा है, जिनमें चौबीस घण्टों में दिन का विभाजन और 360 डिग्रियों में वृत्त का विभाजन शामिल हैं)। दूसरी तरह के संकेत-चिह्न लोगों, पशुओं, माल, इलाक़ों, तिथियों आदि का प्रतिनिधित्व करते थे। इन दोनों तरह के सकेत-चिह्नों के संयोजन से सुमेरियाई उससे कहीं बहुत ज़्यादा आँकड़ों का संचय कर सकते थे, जितने आँकड़ों को कोई इंसानी दिमाग़ याद रख सकता था या कोई डीएनए शृंखला कूटबद्ध कर सकती थी।

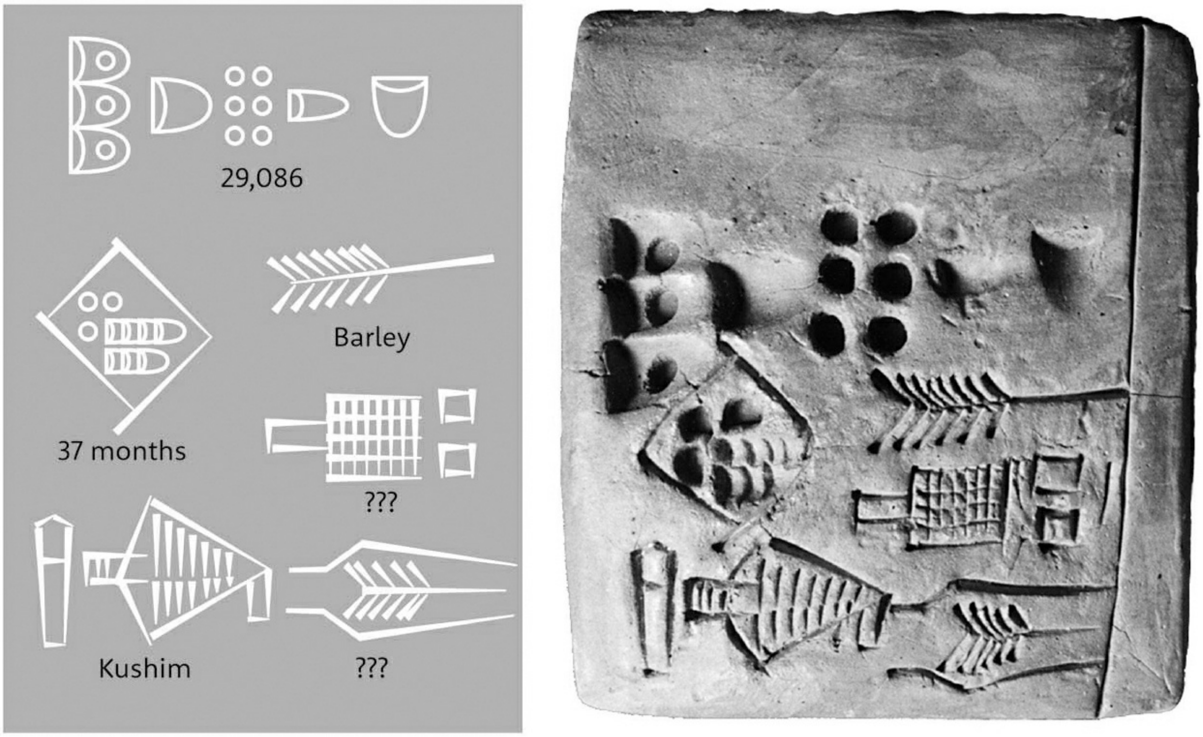

19. लगभग 3400-3000 ईसा पूर्व के उरुक नगर में मिट्टी की एक तख़्ती, जिस पर प्रशासनिक इबारत अंकित है। 'कुशीम' किसी पदाधिकारी के पद का नाम भी हो सकता है या किसी ख़ास व्यक्ति का नाम भी हो सकता है। अगर 'कुशीम' सचमुच कोई व्यक्ति था, तो वह इतिहास का पहला ऐसा व्यक्ति हो सकता है, जिसका नाम हमें ज्ञात है। इसके पहले मानवीय इतिहास के लिए दिए गए सारे नाम - निएंडरथल्स, नातूफ़ियन्स, शोवे केव, गोबेक्ली तेपे - आधुनिक समय में ईजाद किए गए हैं। हमें कोई अन्दाज़ा नहीं है कि गोबेक्ली तेपे के निर्माता उस जगह को वास्तव में किस नाम से पुकारते थे। लेखन के आने के साथ हम इतिहास को उसके नायकों के कानों से सुनना शुरू कर रहे हैं। जब 'कुशीम' के पड़ोसी उसे पुकारते होंगे, तो मुमकिन है कि वे वाक़ई आवाज़ लगाते हों 'कुशीम'! यह बात अर्थपूर्ण है कि इतिहास के पहले लिखित नाम का ताल्लुक एक मुनीम से है, किसी पैगम्बर, कवि या किसी महान विजेता से नहीं।

इस आरम्भिक दौर में लेखन तथ्यों और आकृतियों तक ही सीमित था। महान सुमेरियाई उपन्यास, अगर ऐसा कोई उपन्यास कभी था, तो मिट्टी की पट्टी पर कभी नहीं लिखा गया। लिखना बहुत ज़्यादा समय लेने वाला काम था और पढ़ने वाले बहुत थोड़े-से थे, इसलिए बहुत ज़रूरी रिकॉर्ड रखने के अलावा इसका कोई दूसरा उपयोग करने की किसी को कोई वजह महसूस नहीं हुई। अगर हम 5000 साल पहले के अपने पूर्वजों के यहाँ से आते प्रज्ञा के प्रथम शब्दों की ओर उम्मीद से देखते हैं, तो हमें गहरी निराशा हाथ लगती है। जो प्राचीनतम सन्देश हमारे इन पूर्वजों ने हमारे लिए छोड़ा है, वह मसलन इस तरह का है : '29,086 मात्रा जौ 37 महीने कुशीम'। इस वाक्य का सबसे सर्वाधिक सम्भावित अर्थ यह है : '37 महीनों के दरम्यान जौ की कुल 29,086 मात्रा प्राप्त हुई, कुशीम'। आह, इतिहास के पहले मज़मूनों में कोई दार्शनिक अन्तर्दृष्टि, कोई कविता, अनुश्रुति, क़ानून, यहाँ तक कि कोई शाही जीतों का बयान नहीं है। वे नीरस आर्थिक दस्तावेज़, करों के भुगतान के रिकॉर्ड, क़र्ज़ों और सम्पत्ति के मालिकाना हक़ के संग्रह मात्र हैं।

प्राचीन युग का सिर्फ़ एक ही अन्य तरह का मज़मून है, जो बचा हुआ है, और वह और भी कम दिलचस्प है : शब्दों की सूची, जिसकी नवदीक्षित लिपिकों द्वारा प्रशिक्षण

अभ्यास के तौर पर बार-बार प्रतिलिपियाँ तैयार की गई हैं। अगर एक ऊबे हुए छात्र ने भी बिक्री के किसी बिल की प्रतिलिपि तैयार करने के बजाय अपनी कुछ कविताएँ काग़ज़ पर उतारनी चाही होतीं, तो वह भी यह ना कर सका होता। सबसे आरम्भिक दौर का सुमेरियाई लेखन पूर्ण लिपि होने के बजाय आंशिक लिपि है। पूर्ण लिपि उन भौतिक संकेत-चिह्नों की व्यवस्था है, जो बोलचाल की भाषा को कमोबेश पूरी तरह प्रतिबिम्बित करते हैं। इसलिए वह कविता समेत, उस सब कुछ को अभिव्यक्त कर सकती है, जो लोग कह सकते हैं। दूसरी ओर, आंशिक लिपि उन भौतिक संकेत-चिह्नों की व्यवस्था है, जो गतिविधियों के एक सीमित क्षेत्र से ताल्लुक रखने वाली ख़ास तरह की जानकारी को ही प्रतिबिम्बित करते हैं। लैटिन लिपि, प्राचीन मिस्र की चित्रलिपि (हाइरोग्लिफ़िक्स) और उत्कीर्ण लिपि (ब्रेल) पूर्ण लिपियाँ हैं। इन लिपियों का इस्तेमाल आप टैक्स रजिस्टर, प्रेम कविताएँ, इतिहास की पुस्तकें, व्यंजन बनाने की विधियाँ और व्यापारिक नियम लिखने के लिए कर सकते हैं। इसके विपरीत, एकदम आरम्भिक दौर की सुमेरियाई लिपि, जैसे कि आधुनिक गणितीय प्रतीक और सांगीतिक स्वरलिपियाँ, आंशिक लिपियाँ हैं। आप गणितीय लिपि का इस्तेमाल गणनाओं के लिए कर सकते हैं, लेकिन उसका इस्तेमाल आप प्रेम कविताएँ लिखने के लिए नहीं कर सकते।

इस चीज़ ने सुमेरियाइयों को विचलित नहीं किया कि उनकी लिपि कविता लिखने के लिए अनुपयुक्त थी। इसका आविष्कार उन्होंने बोलचाल की भाषा की नक़ल तैयार करने के लिए नहीं किया था, बल्कि उन कामों को करने के लिए किया था, जो काम बोलचाल की भाषा नहीं कर सकती थी। ऐसी कुछ संस्कृतियाँ थीं, जैसे कि पूर्व-कोलम्बियाई एंडीज़, जो समूचे इतिहास के दौरान सिर्फ़ आंशिक लिपियों का ही इस्तेमाल करती रहीं और जो अपनी लिपियों की सीमाओं से अविचलित बनी रहीं तथा उन्होंने उसके पूर्ण संस्करण की कभी कोई ज़रूरत महसूस नहीं की। एंडियाई लिपि सुमेरियाई लिपि से काफ़ी भिन्न थी। दरअसल, वह इतनी भिन्न थी कि बहुत-से लोग शायद यह तर्क देंगे कि वह लिपि ही नहीं थी। वह मिट्टी की पट्टिका या काग़ज़ पर लिखी हुई नहीं थी। इसके बजाय वह कीपो नामक रंगीन डोरियों में गाँठें लगाकर लिखी जाती थी। हर कीपो में ऊन या सूत से बनी विभिन्न रंगों की कई डोरियाँ होती थीं। हर डोरी में अलग-अलग जगहों पर कई गाँठें लगाई जाती थीं। अकेली एक कीपो में सैकड़ों डोरियाँ और हज़ारों गाँठें हो सकती थीं। विभिन्न रंगों की विभिन्न डोरियों की विभिन्न गाँठों के संयोजन से, उदाहरण के लिए, कर संग्रह और सम्पत्ति के मालिकाना हक़ जैसी चीज़ों से सम्बन्धित गणितीय आँकड़ों की बड़ी तादाद का रिकॉर्ड रखा जा सकता था।

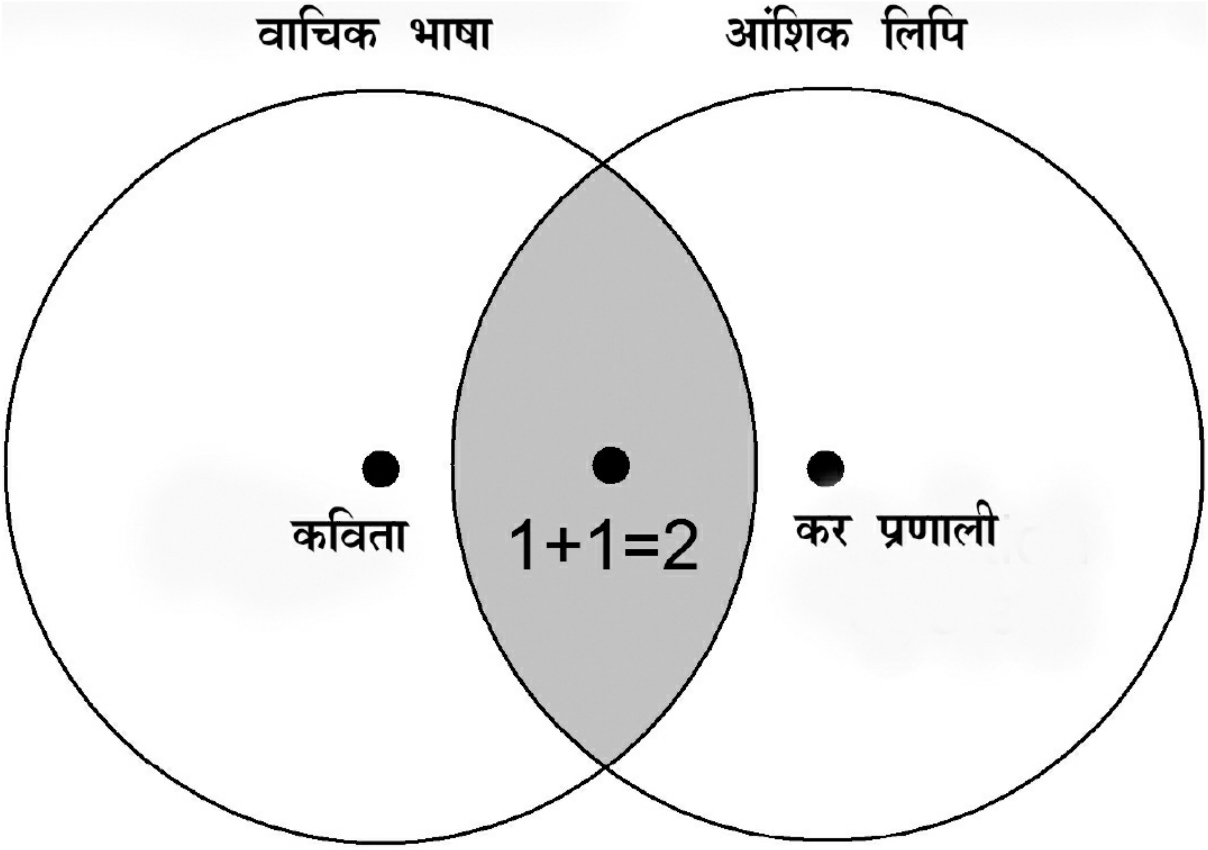
वाचिक भाषा
आंशिक लिपि
कविता
1+1=2
कर प्रणाली

आंशिक लिपि वाचिक भाषा के समूचे विस्तार को व्यक्त नहीं कर सकती, लेकिन वह उन चीज़ों को अभिव्यक्त कर सकती है, जो वाचिक भाषा के दायरे से बाहर की हैं। सुमेरियाई जैसी आंशिक लिपियों और गणितीय लिपियों का उपयोग कविता लिखने के लिए नहीं किया जा सकता, लेकिन वे कर प्रणाली सम्बन्धी हिसाब-किताब बहुत अच्छी तरह से रख सकती हैं।

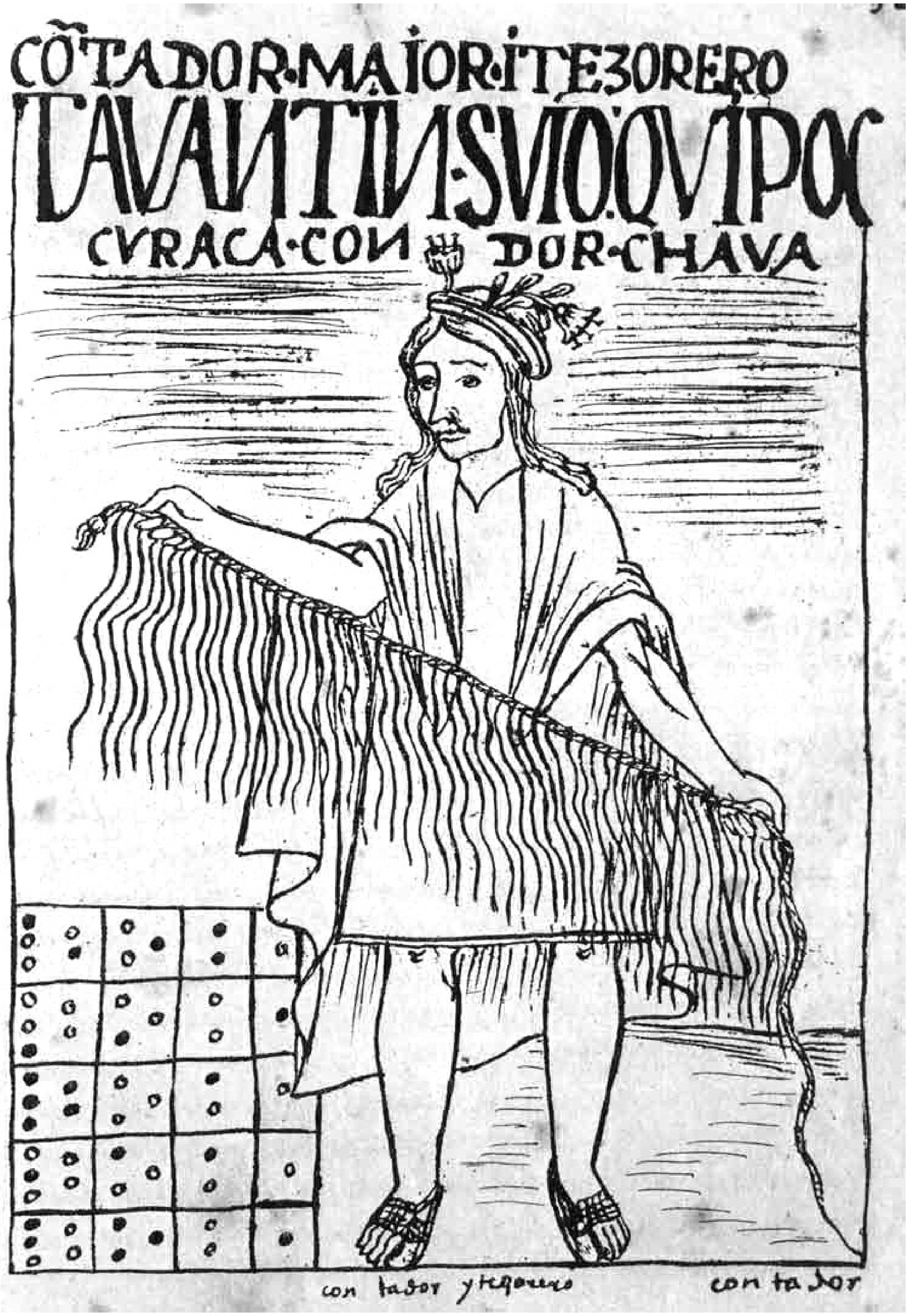
CÕTADOR·MAIOR·I TEZORERO
TAVANTINSVIO.QVIPOC
CVRACA·CON DOR·CHAVA
con tador y tezorero
con tador

20. कीपो को थामे हुए एक आदमी। यह इंका साम्राज्य के पतन के बाद की एक स्पेनी पाण्डुलिपि में चित्रित है।

सैकड़ों, बल्कि शायद हज़ारों सालों तक कीपो नगरों, हुकूमतों, और साम्राज्यों के कारोबारों के लिए अनिवार्य थीं। उन्होंने पूरी कामयाबी हासिल की इंका साम्राज्य के अधीन, जो 100-120 लाख लोगों पर शासन करता था और जिसके विस्तार में आज के समय के पेरू, इक़्वाडोर और बोलीविया के साथ-साथ चिली, अर्जेंटीना और कोलम्बिया के हिस्से शामिल थे। कीपो की वजह से ही इंका बड़ी तादाद में आँकड़ों को संचित और प्रोसेस कर सके, जिसके बग़ैर वे उस तरह के जटिल प्रशासनिक तन्त्र को ना सँभल सके होते, जो इतने विशाल साम्राज्य के लिए ज़रूरी होता है।

दरअसल, कीपो इतने कारगर और अचूक थे कि दक्षिण अमेरिका की स्पेनी फ़तह के बाद के शुरुआती वर्षों में स्वयं स्पेनी लोगों ने अपने नए साम्राज्य के प्रबन्धन के काम में कीपो का प्रयोग किया था। समस्या यह थी कि स्पेनी लोग स्वयं कीपो को अंकित करना और पढ़ना नहीं जानते थे, जिसकी वजह से वे स्थानीय अनुभवी व्यक्तियों पर निर्भर थे। महाद्वीप के इन नए हुक्मरानों ने पाया कि इस चीज़ ने उन्हें कमज़ोर स्थिति में ला दिया था - कीपो के स्थानीय विशेषज्ञ उनके अधिपतियों को आसानी से गुमराह कर सकते थे और ठग सकते थे। इसलिए जब स्पेन का प्रभुत्व ज़्यादा मज़बूती के साथ स्थापित हो गया, तो कीपो का प्रयोग धीरे-धीरे बन्द होता गया और नए साम्राज्य का रिकॉर्ड पूरी तरह से लैटिन लिपि और अंकों में रखा जाने लगा। बहुत थोड़े से कीपो स्पेनी आक्रमण को झेल सके और जो बचे रह सके, उनमें से ज़्यादातर अपाठ्य हैं, क्योंकि दुर्भाग्य से कीपो को पढ़ने की कला लुप्त हो चुकी है।

नौकरशाही के चमत्कार

मेसोपोटामियाई लोगों ने अन्ततः नीरस गणितीय आँकड़ों से इतर चीज़ों को लिखने का मन बनाना शुरू किया। 3000 ईसा पूर्व और 2500 ईसा पूर्व के दरम्यान सुमेरियाई पद्धति में और संकेत-चिह्न समाहित होते गए, जिनकी वजह से यह धीरे-धीरे उस पूर्ण लिपि में बदल गई, जिसे आज हम स्फ़ानलिपि (क्यूनीफ़ॉर्म) के नाम से जानते हैं। 2500 ईसा पूर्व तक आते-आते सम्राट शासनादेश जारी करने के लिए स्फ़ानलिपि का प्रयोग करने लगे थे, पादरी देववाणियों को दर्ज़ करने के लिए इसका उपयोग करने लगे थे और अपेक्षाकृत कमतर हैसियत के नागरिक निजी ख़तों के लिए इसका उपयोग करने लगे थे। लगभग उसी समय, मिस्रवासियों ने एक और पूर्ण लिपि विकसित कर ली थी, जिसे चित्रलिपि के नाम से जाना जाता है। दूसरी पूर्ण लिपियाँ चीन में 1200 ईसा पूर्व के आस-पास और मध्य अमेरिका में 1000.500 ईसा पूर्व के आस-पास विकसित हुईं।

इन शुरुआती केन्द्रों से पूर्ण लिपियाँ तरह-तरह के नए रूपाकार और अनूठे उद्यमों के साथ दुनिया के सुदूर और व्यापक हिस्सों में फैलती गईं। लोग कविताएँ, इतिहास-ग्रन्थ, रोमांस, नाटक, भविष्यवाणियाँ और पाककला की पुस्तकें लिखने लगे। तब भी लेखन का सबसे महत्त्वपूर्ण काम बड़ी तादाद में गणितीय आँकड़ों का संचय करना बना रहा और इस काम पर आंशिक लिपि का विशेषाधिकार बना रहा। हिब्रू बाइबल, ग्रीक इलियड, हिन्दू महाभारत और बौद्ध त्रिपिटक सबकी शुरुआत मौखिक कृतियों के रूप में हुई। कई पीढ़ियों तक ये मौखिक रूप से प्रसारित होती रहीं और अगर लेखन का कभी आविष्कार

ना भी हुआ होता, तो भी शायद बनी रहतीं, लेकिन कर पंजीकरणों (टैक्स रजिस्ट्रीज़) और जटिल नौकरशाहियों का जन्म आंशिक लिपियों के साथ ही हुआ और ये दोनों चीज़ें आज तक स्यामी जुड़वांओं की तरह एक दूसरे से अटूट रूप से जुड़ी हैं - कम्प्यूटरीकृत डेटा बेसों और स्प्रैडशीट्स की क्रिप्टिक एंट्रीज़ के बारे में सोचें।

जैसे-जैसे ज़्यादा से ज़्यादा चीज़ें लिखी जाने लगीं और ख़ास तौर से प्रशासनिक अभिलेखागार विशालकाय रूप लेता गया, वैसे-वैसे नई समस्याएँ सामने आने लगीं। किसी व्यक्ति के दिमाग़ में संचित सूचना को हासिल करना आसान है। मेरे दिमाग़ में अरबों आँकड़े भरे हैं, तब भी मैं फुर्ती से लगभग एक झटके से इटली की राजधानी का नाम याद कर सकता हूँ, उसके तत्काल बाद याद कर सकता हूँ कि 11 सितम्बर 2001 को मैं क्या कर रहा था और फिर अपने घर से यरुशलम की हिब्रू यूनिवर्सिटी के रास्ते का नक़्शा तैयार कर सकता हूँ। मस्तिष्क यह कैसे करता है, यह एक रहस्य ही है, लेकिन हम सब जानते हैं कि मस्तिष्क की उसमें दर्ज़ सूचनाओं को बहाल करने की प्रक्रिया विस्मयकारी ढंग से कारगर है, सिवा उस वक़्त के जब आप यह याद करने की कोशिश कर रहे होते हैं कि आपने कार की चाबियाँ कहाँ रख दी हैं।

हालाँकि आप कीपो कार्डों या पट्टियों में सहेज कर रखी गई सूचना को हासिल और बहाल कैसे करेंगे? अगर आपके पास दस या सौ पट्टियाँ हों, तो समस्या नहीं है, लेकिन तब क्या होगा अगर आपने हज़ारों पट्टियाँ जमा कर रखी हैं, जैसा कि हम्मूराबी के समकालीन मारी के राजा ज़िमरी लिम ने किया था?

पलभर के लिए कल्पना कीजिए कि यह 1776 ईसा पूर्व का समय है। दो मारी निवासी गेहूँ के खेत के स्वामित्व को लेकर लड़ रहे हैं। जैकब का दावा है कि वह खेत उसने तीस साल पहले इसाउ से ख़रीदा था। इसाउ का जवाब है कि दरअसल उसने वह खेत जैकब को तीस साल के लिए किराये पर दिया था और अब जबकि वह अवधि पूरी हो चुकी है, वह खेत को वापस चाहता है। पहले तो वे चिल्लाते हैं, झगड़ा करते हैं और एक दूसरे को धकियाते हैं, लेकिन बाद में उन्हें अक़्ल आती है कि वे अपना विवाद उस शाही अभिलेखागार में जाकर निपटा सकते हैं, जहाँ उस हुकूमत के जमीन-ज़ायदाद सम्बन्धी तमाम सौदे और बिक्री सम्बन्धी बिल सँभल कर रखे गए हैं। अभिलेखागार पहुँचने पर उन्हें बार-बार एक कर्मचारी से दूसरे कर्मचारी के पास चक्कर लगाने पड़ते हैं। वे कई बार हर्बल टी ब्रेक के दौरान इन्तज़ार करते रहते हैं, फिर उन्हें अगले दिन आने को कहा जाता है और अन्ततः उन्हें एक बड़बड़ाता हुआ क्लर्क सम्बन्धित मिट्टी की पट्टियाँ देखने के लिए ले जाता है। क्लर्क दरवाज़ा खोलता है और उन्हें एक विशाल कक्ष में ले जाता है, जिसमें फ़र्श से लेकर भीतरी छत तक कतारबद्ध मिट्टी की हज़ारों पट्टियाँ रखी हैं। आश्चर्य की बात नहीं है कि क्लर्क के चेहरे पर चिड़चिड़ाहट है। वह कैसे पता लगाए कि उस विवादास्पद खेत की तीस साल पहले लिखी गई डीड किस जगह रखी हुई है? अगर उसको वह मिल भी जाती है, तो वह उसकी दोबारा जाँच करके यह किस तरह सुनिश्चित कर सकेगा कि वह तीस साल पुराना दस्तावेज़ ही उस खेत से सम्बन्धित सबसे ताज़ा दस्तावेज़ है? अगर वह उसको नहीं ढूँढ़ पाता, तो क्या इससे यह साबित हो जाता है कि इसाउ ने उस खेत को कभी बेचा या किराये पर दिया ही नहीं था? या अगर वह दस्तावेज़ खो गया हो या अभिलेखागार में हुए बारिश के पानी के रिसाव से मिट्टी की

लुगदी में बदल गया हो तो?

ज़ाहिर है कि मिट्टी की पट्टी पर किसी दस्तावेज़ की छाप ले लेना भर एक कारगर, अचूक और सुविधाजनक डेटाप्रोसेसिंग की गारंटी के लिए काफ़ी नहीं है। इसके लिए ज़रूरत है कैटलॉग जैसी व्यवस्थापन पद्धतियों की, फ़ोटोकॉपी मशीन जैसी प्रतिलिपियाँ तैयार कर सकने वाली पद्धतियों की, सूचना को फुर्ती और अचूक ढंग से निकाल लाने वाली कम्प्यूटर ऐल्गरिदम जैसी पद्धतियों की, और एक ऐसे पंडिताऊ (लेकिन उम्मीद है, ख़ुशमिजाज़) लाइब्रेरियन की, जो इन उपकरणों का इस्तेमाल करना जानता हो।

इन पद्धतियों को ईजाद करना लेखन को ईजाद करने से कहीं ज़्यादा मुश्किल साबित हुआ। बहुत-सी लेखन-पद्धतियों का विकास स्वतन्त्र रूप से उन संस्कृतियों में हुआ था, जो देश और काल के लिहाज़ से एक दूसरे से बहुत दूर थीं। हर दशक में पुरातत्त्वविद कुछ और भूली-बिसरी लिपियों को ढूँढ़ निकालते हैं। इनमें से कुछ मिट्टी में किए गए सुमेरियाई उत्कीर्णनों से भी पुरानी साबित हो सकती हैं, लेकिन इनमें से ज़्यादातर कौतूहल का विषय ही बनी हुई हैं क्योंकि इन्हें खोजने वाले इनकी कैटलॉगिंग करने और इनमें संचित सूचनाओं को बहाल करने के दक्ष तरीक़ों को खोजने में नाक़ामयाब रहे हैं। सुमेर को, उसी तरह फ़ैरो संबंधी मिस्र, प्राचीन चीन और इंका साम्राज्य को जो चीज़ विशिष्ट बनाती है, वह यह है कि इन संस्कृतियों ने लिखित दस्तावेज़ों का अभिलेखागार तैयार करने, कैटलॉगिंग करने और उन्हें बहाल करने की अच्छी तकनीकें विकसित की थीं। उन्होंने प्रतिलिपिकारों, क्लर्कों, लाइब्रेरियनों और लेखापालों के स्कूलों में भी निवेश किया था।

आधुनिक पुरातत्त्वविदों द्वारा खोजा गया प्राचीन मेसोपोटामिया का एक स्कूली लेखन-अभ्यास हमें लगभग 4000 साल पहले के इन छात्रें की ज़िन्दगी की एक झलक उपलब्ध कराता है :

> मैं जाकर बैठ गया और मेरे अध्यापक ने मेरी पट्टी को पढ़ा। उसने कहा, ‘इसमें कोई चीज़ ग़ायब है’!
> और उसने मुझे बेंत से मारा।
> एक प्रभारी ने मुझसे कहा, ‘तुमने बिना इजाज़त के अपना मुँह क्यों खोला’?
> और उसने मुझे बेंत से मारा।
> नियमों के एक प्रभारी ने कहा, ‘तुम बिना मेरी इजाज़त के खड़े कैसे हुए’?
> और उसने मुझे बेंत से मारा।
> दरबान ने कहा, ‘तुम बिना मेरी इजाज़त के बाहर क्यों जा रहे हो’?
> और उसने मुझे बेंत से मारा।
> सुमेरियाई अध्यापक ने कहा, ‘तुमने अक्कादिआन[*] में बात क्यों की’?
> और उसने मुझे बेंत से मारा।
> मेरे अध्यापक ने कहा, ‘तुम्हारी लिखावट ठीक नहीं है’।
> और उसने मुझे बेंत से मारा।

प्राचीन प्रतिलिपिकारों ने पढ़ना और लिखना ही नहीं सीखा था, बल्कि सूचीपत्रें, शब्दकोशों, कलेंडरों, फ़ॉर्मों और पट्टियों का उपयोग करना भी सीखा था। उन्होंने सूचीपत्र तैयार करने तथा सूचना को बहाल करने और उसकी प्रोसेसिंग करने की उससे बिलकुल भिन्न तकनीकों का अध्ययन करके उन्हें अपने आचरण और सोच-विचार का हिस्सा बना लिया था, जो दिमाग़ द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली तकनीकों से बिलकुल भिन्न थीं। दिमाग़ में सारी सूचनाएँ आपस में मुक्त साहचर्य के रिश्ते में होती हैं। जब मैं अपनी पत्नी

के साथ नए घर के मॉर्टगेज पर दस्तख़त करने जाता हूँ, तो मुझे उस पहले स्थान की भी याद आती है, जहाँ हम साथ रहे थे, जिससे मुझे न्यू ऑर्लियन में मनाए गए अपने हनीमून की याद आती है, जो मुझे घड़ियालों की याद दिलाता है, जिससे मुझे ड्रैगनों की याद आती है, जिससे मुझे द रिंग ऑफ़ द निबेलुंगन की याद आती है। अचानक से, जिसका शुरू में ख़ुद मुझे भी होश नहीं रहता, मैं ज़ीग्फ़्रीड से जुड़ी धुन गुनगुनाने लगता हूँ, जिसे सुनकर मेरे सामने बैठा बैंक क्लर्क कुछ हैरान-सा होकर मुझे देखता है। नौकरशाही में चीज़ों को अलग-अलग रखना ज़रूरी होता है। वहाँ एक दराज़ होम मॉर्टगेज़ के लिए होता है, दूसरा विवाह प्रमाण-पत्रें के लिए होता है, तीसरा टैक्स रजिस्टरों के लिए होता है, और चौथा मुकदमों के लिए होता है। अगर ऐसा ना हो, तो आप कोई चीज़ कैसे ढूँढ पाएँगे? जो चीज़ें एक से ज़्यादा दराज़ों से ताल्लुक रखती हैं, जैसे कि वैग्नेरियाई म्यूज़िक ड्रामे (मैं उन्हें 'संगीत' की कोटि में रखूँ या 'नाटक' की, या उनके लिए कोई अलग ही कोटि बनाऊँ?) वे बहुत बड़ा सिरदर्द होती हैं। इसलिए आपको दराज़ों को जोड़ते, घटाते और नए सिरे से क्रमबद्ध करते रहना होता है।

दराज़ों की इस क़िस्म की व्यवस्था को संचालित करने वाले लोगों को अपना काम करने के लिए मनुष्यों की तरह सोचना बन्द कर क्लर्कों और लेखपालों की तरह सोचना शुरू करना होता है। जैसा कि प्राचीन काल से लेकर आज तक हर कोई जानता है कि क्लर्क और लेखापाल अ-मानवीय ढंग से सोचते हैं। वे फ़ाइलिंग कैबिनेट की तरह सोचते हैं। यह उनकी ग़लती नहीं है। अगर वे उस तरह से नहीं सोचेंगे, तो उनके दराज़ अस्त-व्यस्त हो जाएँगे और उनके लिए वे सेवाएँ दे पाना सम्भव नहीं रह जाएगा, जिनकी दरकार उनकी सरकारों, कम्पनियों या संगठनों को होती है। मानव इतिहास पर पड़ा लिपि का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव ठीक-ठीक यही है : इसने धीरे-धीरे मनुष्य के सोचने और संसार को देखने के ढंग को बदल दिया। मुक्त साहचर्य और समग्रतावादी विचार की जगह वर्गीकरण और नौकरशाही ने ले ली।

अंकों की भाषा

सदियों के बीतने के साथ सूचनाओं को संसाधित करने की पद्धतियाँ मनुष्य के सोचने के कुदरती ढंग से हमेशा से ज़्यादा भिन्न होती गईं - और हमेशा से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण भी होती गईं। एक महत्त्वपूर्ण क़दम नौवीं सदी ईसवी के पहले कभी उठाया गया, जब एक नई आंशिक लिपि ईजाद की गई, ऐसी लिपि जो गणितीय आँकड़ों को अपूर्व दक्षता के साथ संचित और संसाधित कर सकती थी। यह आंशिक लिपि दस संकेत-चिह्नों से मिलकर बनी थी, जो 0 से 9 तक की संख्याओं का प्रतिनिधित्व करते थे। भ्रामक रूप से, इन संकेत-चिह्नों को अरबी अंकां के नाम से जाना जाता है, जबकि इन्हें सबसे पहले हिन्दुओं ने ईजाद किया था (इससे भी ज़्यादा भ्रामक यह है कि आधुनिक अरब अंकों के एक ऐसे सेट का इस्तेमाल करते हैं, जो पश्चिमी अंकों के सेट से ख़ासा भिन्न दिखाई देता है), लेकिन अरबों को इसका श्रेय इसलिए मिलता है क्योंकि जब उन्होंने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया, तो उन्होंने इस पद्धति को देखा, इसकी सम्पूर्णता को समझा, इसका परिष्कार किया और समूचे मध्य पूर्व और फिर यूरोप में इसका प्रसार किया। जब अरबी

अंकों में बहुत से दूसरे संकेत-चिह्नों (जैसे कि जोड़, घटाना, और गुणा के संकेत-चिह्न) को शामिल किया गया, तो आधुनिक गणितीय संकेत-पद्धति अस्तित्व में आई।

यद्यपि यह लेखन-पद्धति आंशिक लिपि ही बनी हुई है, लेकिन यह दुनिया की सबसे प्रभावशाली भाषा बन चुकी है। लगभग सारे राज्य, सारी कम्पनियाँ, संगठन और संस्थाएँ - वे चाहे अरबी बोलती हों, हिन्दी बोलती हों, अँग्रेज़ी या नॉर्वीजी बोलती हों - अपनी सूचनाओं के संचय और संधारण के लिए गणितीय लिपि का ही प्रयोग करती हैं। गणितीय लिपि में रूपान्तरित की जा सकने वाली हर सूचना को विलक्षण गति और दक्षता के साथ संचित, प्रकट और संसाधित किया जाता है।

इसलिए सरकारों, संगठनों और कम्पनियों के निर्णयों को प्रभावित करने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को अनिवार्य है कि वह संख्याओं में बात करना सीखे। विशेषज्ञ 'ग़रीबी', 'ख़ुशहाली' और 'ईमानदारी' जैसी धारणाओं तक को संख्याओं ('ग़रीबी रेखा', 'आत्मपरक खुशहाली स्तर' 'साख श्रेणी') में निरूपित करने की भरसक कोशिश करते हैं। भौतिकी और अभियान्त्रिकी जैसे ज्ञान के पूरे के पूरे क्षेत्रें का मानवीय बोलचाल की भाषा से लगभग पूरा सम्पर्क टूट चुका है और वे पूरी तरह से गणितीय लिपि के बूते पर चल रहे हैं।

अभी हाल ही गणितीय लिपि ने एक और भी क्रान्तिकारी लेखन-पद्धति को जन्म दिया है, जो कम्प्यूटरीकृत बायनरी लिपि है, जिसमें सिर्फ़ दो ही संकेत-चिह्न होते हैं : 0 और 1।

$$\begin{aligned}
\ddot{\mathrm{r}}_i = \sum_{j\neq i} \frac{\mu_j(\mathrm{r}_j-\mathrm{r}_i)}{r_{ij}^3}\Bigg\{1- \frac{2(\beta-\gamma)}{c^2}\sum_{l\neq i}\frac{\mu_l}{r_{il}} - \frac{2\beta-1}{c^2}\sum_{k\neq j}\frac{\mu_k}{r_{jk}} + \gamma\left(\frac{\mathrm{s}_i}{c}\right)^2 \\
+ (1-\gamma)\left(\frac{\mathrm{s}_j}{\mathrm{c}}\right)^2 - \frac{2(1+\gamma)}{\mathrm{c}^2}\,\dot{\mathrm{r}}_i\cdot\dot{\mathrm{r}}_j - \frac{3}{2c^2}\left[\frac{(\mathrm{r}_i-\mathrm{r}_j)\cdot\mathrm{r}_j}{r_{ij}}\right]^2 \\
+ \frac{1}{2c^2}\,(\mathrm{r}_j-\mathrm{r}_i)\cdot\ddot{\mathrm{r}}_j\Bigg\} \\
+ \frac{1}{c^2}\sum_{j\neq i}\frac{\mu_i}{{r_{ij}}^3}\,\{\,[\mathrm{r}_i-\mathrm{r}_j]\cdot[(2+2\gamma)\,\dot{r}_i-(1+2\gamma)\,\dot{\mathrm{r}}_j]\,\}\,(\dot{\mathrm{r}}_i-\dot{\mathrm{r}}_j) \\
+ \frac{3+4\gamma}{2c^2}\sum_{j\neq i}\frac{\mu_j\ddot{\mathrm{r}}_j}{r_{ij}}
\end{aligned}$$

सापेक्षता के सिद्धांत के अनुसार गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव से द्रव्यमान के त्वरण 'आई' की गणना का समीकरण। ज़्यादातर आम लोग जब ऐसा कोई समीकरण देखते हैं, तो वे अक्सर घबरा जाते हैं और उनका दिमाग़ सुन्न पड़ जाता है। उनकी स्थिति ऐसे हिरण जैसी हो जाती है, जो तेज़ गति से आ रहे वाहन की

हेडलाइट के सामने फँस जाता है। इस तरह की प्रतिक्रिया स्वाभाविक है और यह ज्ञान और जिज्ञासा के अभाव को प्रकट नहीं करती। कुछ दुर्लभ अपवादां को छोड़ दें, तो इंसानी मस्तिष्क सापेक्षता और मात्रत्मक यांत्रिकी जैसी अवधारणाओं के बारे में सोचने के लिए अक्षम है। भौतिकशास्त्री यद्यपि ऐसा करने में सफल हो पाते हैं, लेकिन वे सोचने के परम्परागत साधनों से ऐसा करने के बजाय डेटाप्रोसेसिंग सिस्टमां की बाहरी मदद से नया सोचना सीख पाते हैं। सोचने की उनकी प्रक्रिया का निर्णायक हिस्सा उनके मस्तिष्क में नहीं, बल्कि कम्प्यूटर के भीतर या क्लास रूम के ब्लैक बोर्ड पर चलता है।

लेखन का जन्म मानव चेतना की नौकरानी के रूप में हुआ था, लेकिन वह उत्तरोत्तर उसकी मालकिन बनती जा रही है। हमारे कम्प्यूटरों को होमो सेपियन्स के बात करने, महसूस करने और सपने देखने के ढंग को समझने में दिक़्क़त होती है। इसलिए हम होमो सेपियन्स को संख्याओं की उस भाषा में बतियाना, महसूस करना और सपने देखना सिखा रहे हैं, जिसे कम्प्यूटरों द्वारा समझा जा सके।

और यह क़िस्सा यहीं ख़त्म नहीं हो जाता। कृत्रिम बुद्धि (आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस) का अनुशासन पूरी तरह से कम्प्यूटरों की बायनरी लिपि पर आधारित एक नई तरह की बुद्धि को रचने की कोशिश कर रहा है। द मैट्रिक्स और द टर्मिनेटर जैसी साइंस-फ़िक्शन फ़िल्में उस दिन की बात करती हैं, जब बायनरी लिपि मनुष्यता के जुए को उतार फेंकती हैं। जब मनुष्य इस विद्रोही लिपि पर क़ाबू पाने की कोशिश करते हैं, तो बदले में यह लिपि मानव प्रजाति को ही मिटा डालने की कोशिश करती है।

---

[*] जब अक्कादिआन बोलचाल की भाषा बन गई थी, तब भी सुमेरियाई भाषा प्रशासन और इस तरह लेखन के दर्ज़ किए जाने की भी भाषा बनी रही। प्रतिलिपिकार बनने के महत्त्वांकांक्षियों को इस तरह सुमेरियाई बोलना होती थी।

8

इतिहास में कोई न्याय नहीं है

कृषि क्रान्ति के बाद की सहस्राब्दियों में मानव इतिहास को समझते हुए एक ही मुख्य प्रश्न उभरता है : मनुष्यों ने स्वयं को जन-सहकार के तन्त्रें में किस तरह संगठित किया, जबकि उनमें इस तरह के तन्त्रें को क़ायम रखने के लिए आवश्यक सहज जैविक प्रवृत्तियों का अभाव था? इसका संक्षिप्त जवाब यह है कि मनुष्यों ने कल्पित व्यवस्थाओं की रचना की और लिपियों को ईजाद किया। इन दो ईजादों ने उस खाई को भर दिया, जिसे हमारी जैविक विरासत ने छोड़ा था।

लेकिन, इन तन्त्रें का उभरना बहुतों के लिए एक सन्देहास्पद वरदान था। इन तन्त्रें को सहारा देने वाली कल्पित व्यवस्थाएँ ना तो निष्पक्ष थीं, ना ईमानदार थीं। उन्होंने लोगों को श्रेणीबद्ध क्रम में विन्यस्त कृत्रिम समूहों में बाँट दिया। ऊपर की श्रेणी के लोग सुविधाओं और सत्ता का सुख भोगते थे, वहीं निचले पायदान के लोग पक्षपात और दमन के शिकार थे। उदाहरण के लिए हम्मूराबी की संहिता ने श्रेष्ठ जनों, सामान्य जनों और ग़ुलामों की एक श्रेणी तैयार की। श्रेष्ठ जनों को जीवन की सारी अच्छी चीज़ें हासिल थीं। सामान्य जनों को बचा-खुचा हासिल था। ग़ुलाम अगर शिकायत करते थे, तो उनकी पिटाई होती थी।

1776 में अमेरिकी लोगों द्वारा खड़ी की गई कल्पित व्यवस्था ने भी तमाम लोगों की समानता के दावे के बावजूद एक श्रेणीबद्ध क्रम तैयार किया। उसने एक ऐसा श्रेणीबद्ध क्रम तैयार किया, जो उससे लाभान्वित पुरुषों और उसके द्वारा अशक्त छोड़ दी गई स्त्रियों के बीच भेद करता था। उसने ऊँच-नीच का एक ऐसा क्रम तैयार किया, जिसमें एक ओर गोरे थे, जो स्वतन्त्रता का आनन्द लेते थे और दूसरी तरफ़ वे अश्वेत तथा अमेरिकी इंडियन थे, जिन्हें कमतर कोटि का इंसान समझा जाता था और इसलिए जो पुरुषों के समान हक़ों को साझा नहीं करते थे। जिन लोगों ने स्वाधीनता के घोषणा-पत्र पर

हस्ताक्षर किए थे, उनमें से ज़्यादातर ग़ुलामों के मालिक थे। उन्होंने इस घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर करने के बाद अपने ग़ुलामों को आज़ाद नहीं किया था, ना ही उन्होंने अपने आप को पाखण्डी समझा। उनकी दृष्टि में पुरुषों के अधिकारों का नीग्रो लोगों से कोई ख़ास ताल्लुक नहीं था। अमेरिकी व्यवस्था ने अमीरों और ग़रीबों के बीच भी एक श्रेणीबद्ध क्रम प्रतिष्ठित किया। समृद्ध अभिभावकों द्वारा अपना पैसा और क़ारोबार अपने बच्चों को सौंप दिए जाने से उत्पन्न असमानता उस समय बहुत से अमेरिकी लोगों को कोई ख़ास बड़ी समस्या नहीं लगती थी। उनकी नज़रों में समानता का मतलब सिर्फ़ इतना था कि रईसों और ग़रीबों पर एक ही तरह के क़ानून लागू होते थे। बेरोज़गारी से जुड़े फ़ायदों, सभी के लिए शिक्षा या स्वास्थ्य बीमा से इसका कोई लेना देना नहीं था। आज़ादी के निहितार्थ भी तब आज के मुक़ाबले में भिन्न थे। 1776 में उसका मतलब यह नहीं था कि अधिकारहीन लोग (अश्वेत या इंडियन या, उम्मीद है, स्त्रियाँ तो निश्चय ही नहीं) शक्ति हासिल कर सकें और उसका प्रयोग कर सकें। इसका महज़ इतना मतलब था कि राज्य, असामान्य परिस्थितियों को छोड़कर, किसी नागरिक की निजी सम्पत्ति को ज़ब्त नहीं कर सकता था या उससे यह नहीं कह सकता था कि वह उसका किस तरह इस्तेमाल करे। इस तरह अमेरिकी लोगों ने सम्पत्ति के श्रेणीबद्ध क्रम को जारी रखा, जिसे कुछ लोग ईश्वर का आदेश समझते थे और दूसरे कुछ लोग इसे कुदरत के अडिग नियमों के अनुकरण के रूप में देखते थे। यह दावा किया जाता था कि कुदरत योग्यता को सम्पत्ति से नवाज़ती थी और निष्क्रियता के लिए दण्डित करती थी।

इन सारे भेदों - स्वतन्त्र व्यक्तियों और ग़ुलामों के बीच, गोरों और कालों के बीच, अमीरों और ग़रीबों के बीच के भेदों - की जड़ें गढ़े गए क़िस्सों में हैं। (पुरुषों और स्त्रियों के श्रेणीबद्ध क्रम की चर्चा बाद में की जाएगी)। तब भी यह इतिहास का एक कठोर नियम है कि प्रत्येक कल्पित श्रेणीबद्ध क्रम अपने कल्पित उद्गमों से इनकार करता है और कुदरती तथा अपरिहार्य होने का दावा करता है। मसलन, जो लोग स्वतन्त्र व्यक्तियों और ग़ुलामों के बीच के श्रेणीबद्ध क्रम को कुदरती और उचित मानते रहे हैं, उनका तर्क रहा है कि ग़ुलामी मनुष्य की ईजाद की गई चीज़ नहीं है। हम्मूराबी ने इसे देवताओं के हुक्म के रूप में देखा था। अरस्तू का तर्क था कि ग़ुलामों की 'ग़ुलाम प्रकृति' होती है, जबकि स्वतन्त्र लोगों की 'स्वतन्त्र प्रकृति' होती है। समाज में उनकी हैसियत उनकी जन्मजात प्रकृति का प्रतिबिम्ब मात्र है।

गोरों की श्रेष्ठता में विश्वास करने वालों से नस्लपरक श्रेणीबद्ध क्रम के बारे में पूछिए, और आपको नस्लों के बीच जैविक फ़र्कों के बारे में एक छद्मवैज्ञानिक भाषण सुनने को मिल जाएगा। पूरी सम्भावना है कि आपसे कहा जाए कि कॉकेशियाई (सफ़ेद नस्ल) के ख़ून या जीन में ही कोई ऐसी बात है कि वह गोरों को कुदरती तौर पर ही ज़्यादा बुद्धिमान, नैतिक और मेहनती बनाती है। किसी कट्टर पूँजीवादी से सम्पत्ति के श्रेणीबद्ध क्रम के बारे में पूछिए, और पूरी सम्भावना है कि आपको सुनने को मिले कि यह योग्यताओं के बीच के वास्तविक अन्तर का अपरिहार्य परिणाम है। इस नज़रिये के मुताबिक़, अमीरों के पास ज़्यादा पैसा होता है क्योंकि वे ज़्यादा सक्षम और परिश्रमी होते हैं। इसलिए अगर अमीर लोगों को बेहतर चिकित्सा, बेहतर शिक्षा और बेहतर पोषण हासिल होता है, तो किसी को परेशान होने की ज़रूरत नहीं है। अमीरों को जो भी लाभ

मिलते हैं, वे उनके सर्वथा योग्य हैं।

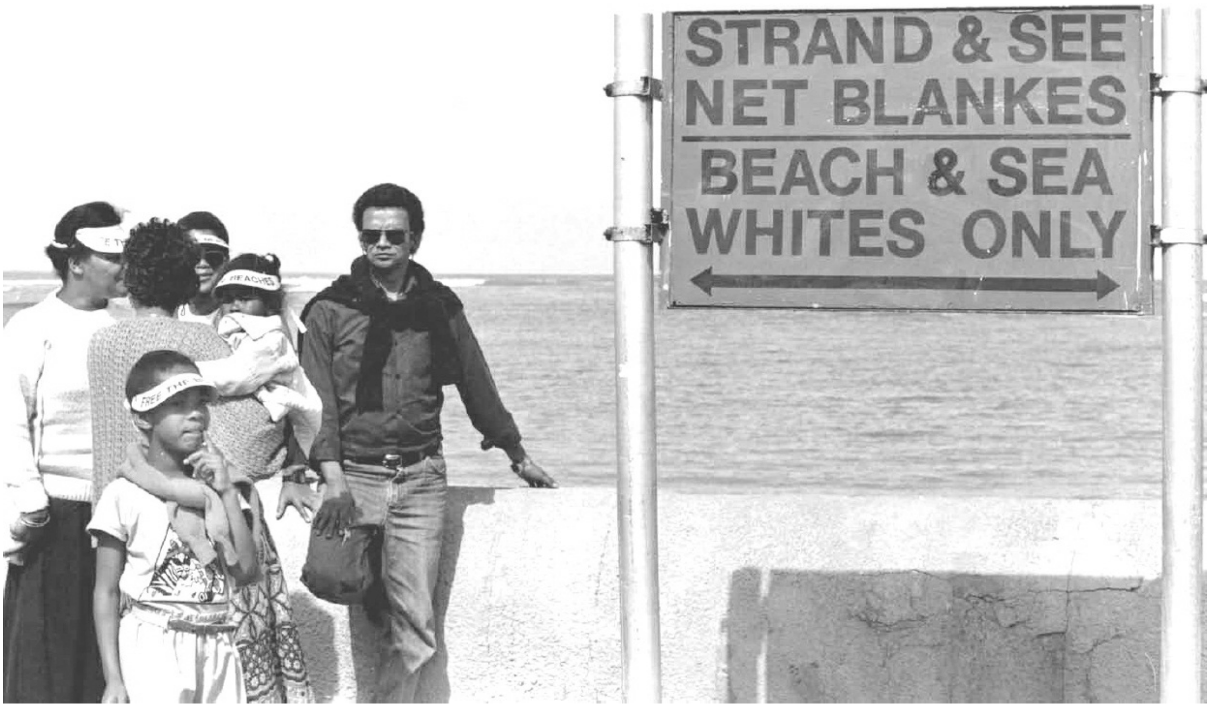

21. दक्षिण अफ़्रीकी समुद्र तट पर रंगभेद-नीति के ज़माने का एक साइन-बोर्ड, जिसमें इस समुद्र-तट का सिर्फ़ 'गोरे' लोगों के इस्तेमाल का निर्देश अंकित है। आम तौर से अपेक्षाकृत हल्के रंग की चमड़ी वाले लोगों को काली चमड़ी वाले लोगों के मुक़ाबले धूप से झुलसने का ख़तरा ज़्यादा होता है। तब भी दक्षिण अफ़्रीकी समुद्र-तटों के विभाजन के पीछे कोई जीववैज्ञानिक तर्क नहीं था। अपेक्षाकृत हल्के रंग की चमड़ी वाले लोगों के लिए आरक्षित समुद्र-तटों का पराबैंगनी विकिरण (अल्ट्रा-वॉयलेट रेडिएशन) का स्तर दूसरे समुद्र-तटों के मुक़ाबले कम नहीं था।

जाति-व्यवस्था का पालन करने वाले हिन्दुओं का विश्वास है कि दैवीय शक्तियों ने ही एक जाति को दूसरी जाति से श्रेष्ठ बनाया है। हिन्दुओं की एक प्रसिद्ध सृष्टि-कल्पना के अनुसार देवताओं ने पुरुष नामक एक आद्य सत्ता की काया से दुनिया की रचना की थी। सूर्य की रचना पुरुष के नेत्र, चन्द्रमा की रचना पुरुष के मस्तक, ब्राह्मणों की रचना उसके मुख, क्षत्रियों की रचना उसकी भुजाओं, वैश्यों की रचना उसकी जंघाओं और शूद्रों की रचना उसके पैरों से हुई। इस व्याख्या को स्वीकार करते ही ब्राह्मणों और शूद्रों के बीच के फ़र्क़ उतने ही स्वाभाविक और शाश्वत हैं, जितना फ़र्क़ सूर्य और चन्द्रमा के बीच है। प्राचीन चीनियों का मानना था कि जब देवी नू वा ने मिट्टी से मनुष्यों की रचना की, तो उसने कुलीनों को चिकनी पीली मिट्टी से गूँथा, जबकि सामान्य जनों को भूरे कीचड़ से गढ़ा गया।

तब भी हमारी श्रेष्ठतम समझ के अनुसार, ये सारे श्रेणीबद्ध क्रम मनुष्य की कल्पना की उपज हैं। ब्राह्मणों और शूद्रों की रचना देवताओं द्वारा किसी आद्य सत्ता के शरीर के विभिन्न हिस्सों ने नहीं की गई थी। इसके बजाय दोनों जातियों के बीच का भेद कोई 3000 साल पहले उत्तर शरत में मनुष्यों द्वारा ईजाद नियमों और मानकों से रचा गया था। अरस्तू की धारणा के विपरीत, ग़ुलामों और स्वतन्त्र लोगों के बीच कोई ज्ञात जैविक भेद नहीं है। मानवीय नियमों और मानकों ने ही कुछ लोगों को ग़ुलामों में और कुछ को उनके

मालिकों में बदल दिया। कालों और गोरों के बीच कुछ तथ्यात्मक जैविक भेद हैं, जैसे कि चमड़ी के रंग और बालों का प्रकार, लेकिन इसका कोई प्रमाण नहीं कि इन फ़र्कों का विस्तार बुद्धि और नैतिकता तक है।

ज़्यादातर लोग दावा करते हैं कि उनका सामाजिक श्रेणीबद्ध क्रम कुदरती और न्यायसंगत है, जबकि दूसरे समाजों के श्रेणीबद्ध क्रम छद्म और हास्यास्पद मापदण्डों पर आधारित हैं। आधुनिक पश्चिमी लोगों को नस्लपरक श्रेणीबद्ध क्रम का मखौल उड़ाने की शिक्षा दी गई है। वे उन क़ानूनों से बहुत स्तम्भित रह जाते हैं, जो कालों के गोरों के इलाक़ों में रहने या उनके गोरों के स्कूलों में पढ़ने या गोरों के अस्पतालों में इलाज़ कराने पर प्रतिबन्ध लगाते हैं, लेकिन अमीर और ग़रीब का श्रेणीबद्ध क्रम - जो अमीरों को अलग-थलग और अधिक भव्य क्षेत्रें में रहने, अलग-थलग और अधिक प्रतिष्ठित स्कूलों में पढ़ने और अलग-थलग तथा बेहतर साधन-सम्पन्न अस्पतालों में चिकित्सा हासिल करने का अधिकार देता है - बहुत से अमेरिकी और यूरोपीय लोगों को सर्वथा विवेकपूर्ण लगता है। तब भी यह एक प्रमाणित तथ्य है कि ज़्यादातर अमीर महज़ इसलिए अमीर हैं क्योंकि वे अमीर परिवार में पैदा हुए हैं, जबकि ज़्यादातर ग़रीब सिर्फ़ इसलिए आजीवन ग़रीब बने रहेंगे क्योंकि वे एक ग़रीब परिवार में पैदा हुए थे।

दुर्भाग्य से ऐसा लगता है कि जटिल मानवीय समाजों के लिए कल्पित श्रेणीबद्ध क्रम और अन्यायपूर्ण भेदभाव ज़रूरी हैं। निश्चय ही सारे श्रेणीबद्ध क्रम नैतिक रूप से एक जैसे नहीं हैं और कुछ समाजों को दूसरे समाजों के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा अतिवादी क़िस्म के भेदभावों को भोगना पड़ता है, तब भी अध्येताओं की जानकारी में ऐसा कोई विशाल समाज नहीं है, जो भेदभाव को पूरी तरह से त्यागने में समर्थ रहा हो। अक्सर लोग आबादी को श्रेष्ठ जन, सामान्य जन और ग़ुलाम, गोरे और काले, कुलीन और असभ्य, ब्राह्मण और शूद्र या अमीर और ग़रीब जैसी कल्पित कोटियों में वर्गीकृत करते हुए अपने समाजों में व्यवस्था रचते रहे हैं। इन कोटियों ने कुछ लोगों को वैधानिक, राजनैतिक या सामाजिक तौर पर दूसरे लोगों से श्रेष्ठ बनाते हुए लाखों मनुष्यों के बीच के रिश्तों का नियमन किया है।

श्रेणीबद्ध क्रम एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे सर्वथा अजनबियों को यह समझने में सक्षम बनाते हैं कि निजी तौर पर परिचय स्थापित करने के लिए आवश्यक वक़्त और ऊर्जा ख़र्च किए बग़ैर एक दूसरे से किस तरह से पेश आया जाए। जॉर्ज बर्नार्ड शॉ के नाटक 'पिग्मेलियन' में हेनरी हिगन्स को यह समझने के लिए कि एलिज़ा डोलिटल के साथ किस तरह सम्बन्ध स्थापित किया जाए, उसके साथ आत्मीय परिचय स्थापित करने की ज़रूरत महसूस नहीं होती। उसको बात करते हुए सुनने मात्र से उसे पता चल जाता है कि वह एक निम्न वर्ग की सदस्य है, जिसे वह अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ बरत सकता है - उदाहरण के लिए, फूल बेचने वाली एक लड़की को डचिस के रूप में पेश करने के अपने दाँव में उसे एक प्यादे की तरह बरतना। किसी फूल बेचने वाले के यहाँ काम करने वाली आधुनिक एलिज़ा को यह जानना ज़रूरी होता है कि हर दिन दुकान में आने वाले दर्जनों लोगों को गुलाब और ग्लैडिओलस बेचने के लिए कितनी कोशिश ज़रूरी है। वह हर व्यक्ति की रुचियों और उसके बटुए की रक़म के बारे में विस्तृत

पूछताछ नहीं कर सकती। इसके बजाय, वह सामाजिक संकेतों का सहारा लेती है - व्यक्ति का पहनावा, उसकी उम्र और अगर वह पॉलिटिकली करेक्ट नहीं है, तो उसकी चमड़ी का रंग, जिनके आधार पर वह उस एकाउंटिंग फ़र्म पार्टनर, जो अपनी माँ के जन्मदिन पर लम्बे डण्ठलों वाले महँगे गुलाबों के लिए बड़ा ऑर्डर दे सकता है, और उस सन्देशवाहक लड़के के बीच फ़र्क़ कर सकती है, जो मुस्कान बिखेरने वाली सेक्रेटरी के लिए डेज़ी का एक गुच्छा भर ख़रीद सकता है।

बेशक, कुदरती योग्यताओं के भेद सामाजिक क्षमताओं के भेद तैयार करने में भी भूमिका निभाते हैं, लेकिन अभिरूचि और चरित्र की ये विविधताएँ सामान्यतः कल्पित श्रेणीबद्ध क्रमों के माध्यम से प्रभावित होती हैं। यह दो महत्त्वपूर्ण ढंगों से होता है। पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण यह कि ज़्यादातर योग्यताएँ पोषित और विकसित किए जाने की माँग करती हैं। अगर कोई व्यक्ति एक ख़ास तरह की प्रतिभा के साथ पैदा हुआ होता है, तब भी अगर उस प्रतिभा को प्रोत्साहित नहीं किया गया, पैना नहीं किया गया और प्रयोग में नहीं लाया गया, तो वह सामान्य तौर पर छिपी रह जाएगी। हर किसी को अपनी योग्यताओं को विकसित करने के समान अवसर नहीं मिलते। उन्हें इस तरह का अवसर मिल पाता है या नहीं, यह समाज के कल्पित श्रेणीबद्ध क्रम में उनकी जगह पर निर्भर करता है। हैरी पॉटर एक अच्छा उदाहरण है। उसे अपने प्रतिष्ठित जादूगर परिवार से हटाया गया और जादू की कोई क्षमता नहीं रखने वाले लोगों ने उसे पाला। वह जादू के किसी अनुभव के बग़ैर होगवार्ट्स पहुँचता है। अपनी अनूठी योग्यताओं की शक्तियों और ज्ञान पर मज़बूत पकड़ बनाने के लिए उसे सात पुस्तकें पढ़नी पड़ती हैं।

दूसरे, अगर विभिन्न वर्गों से सम्बन्धित लोग ठीक वैसी ही योग्यताएँ विकसित कर भी लें, तो इसकी सम्भावना नहीं है कि उन्हें बराबर की क़ामयाबी मिल जाए, क्योंकि उन्हें भिन्न तरह के नियमों के अधीन खेलना होगा। अगर हिन्दुस्तान में अँग्रेज़ों के राज के दौरान एक अछूत, एक ब्राह्मण, एक कैथोलिक आयरिश व्यक्ति और एक प्रोटेस्टेंट अँग्रेज़ किसी तरह बिलकुल एक-सी व्यापारिक सूझबूझ विकसित कर लेते, तब भी उन्हें अमीर बनने के समान अवसर उपलब्ध नहीं होते। आर्थिक खेल की फ़िक्सिंग सरकारी प्रतिबन्धों और अनधिकृत रुकावटों के माध्यम से होती थी।

दुष्चक्र

सारे समाज कल्पित श्रेणीबद्ध क्रमों पर आधारित होते हैं, लेकिन ज़रूरी नहीं कि ये क्रम हर समाज में एक जैसे हों। ये भेद क्यों होते हैं? क्या वजह है कि पारम्परिक हिन्दुस्तानी समाज ने जाति के आधार, ऑटोमन समाज ने धर्म के आधार और अमेरिकी समाज ने नस्ल के आधार पर लोगों को वर्गीकृत किया? ज़्यादातर मामलों में श्रेणीबद्ध क्रम संयोगजन्य ऐतिहासिक परिस्थितियों से जन्मा था और बाद की अनेक पीढ़ियों के दौरान जैसे-जैसे उसके प्रति विभिन्न समूहों के निहित स्वार्थ विकसित होते गए, वैसे-वैसे वह श्रेणीबद्ध क्रम स्थायी और परिष्कृत होता गया।

उदाहरण के लिए, बहुत से अध्येताओं का अनुमान है कि हिन्दू जाति-व्यवस्था ने तब रूप लिया था, जब लगभग 3000 साल पहले इंडो-आर्यन कौम ने हिन्दुस्तान पर

आक्रमण कर वहाँ के स्थानीय लोगों को अपने अधीन कर लिया था। इन आक्रान्ताओं ने एक स्तरीकृत समाज विकसित किया, जिसमें - ज़ाहिर है - उन्होंने प्रमुख हैसियतों (पुरोहितों और क्षत्रियों की हैसियतों) पर क़ब्ज़ा कर लिया और स्थानीय निवासियों को अनुचर और ग़ुलाम बना दिया। इन आक्रान्ताओं को, जिनकी संख्या बहुत थोड़ी-सी थी, अपनी विशेष हैसियत और विशिष्ट पहचान के मिट जाने का भय सताता था। इस ख़तरे को पहले से ही दूर करने के उद्देश्य से उन्होंने आबादी को जातियों में विभाजित किया, जिनमें से हर जाति को विशेष व्यवसाय करना या समाज में विशिष्ट भूमिका निभाना ज़रूरी था। हर जाति की अलग वैधानिक हैसियत, सुविधाएँ और कर्त्तव्य थे। जातियों के मेलजोल - सामाजिक अन्तर्क्रिया, विवाह, यहाँ तक कि साथ बैठकर भोजन करने तक पर भी प्रतिबन्ध था। और ये भेद महज़ क़ानूनी नहीं थे, बल्कि वे धार्मिक लोक-विश्वास और अनुष्ठान का स्वाभाविक अंग बन गए।

शासकों का तर्क था कि जाति-व्यवस्था किसी ऐतिहासिक संयोग का नतीज़ा नहीं, बल्कि एक सनातन वैश्विक वास्तविकता है। शुचिता और अशुचिता की धारणाएँ हिन्दू धर्म के मूलभूत तत्त्वों में शामिल थीं और उनका उपयोग सामाजिक पिरामिड को मज़बूत बनाने के लिए किया गया। पवित्र हिन्दुओं को सिखाया गया कि दूसरी जाति के लोगों का स्पर्श ना सिर्फ़ उन्हें निजी तौर पर अपवित्र करेगा, बल्कि पूरे समाज को भी अपवित्र बना देगा और इसलिए ऐसे लोगों से उन्हें घृणा करनी चाहिए। इस तरह की धारणाएँ सिर्फ़ हिन्दुओं की ही विशेषताएँ नहीं हैं। समूचे इतिहास के दौरान, और लगभग सारे समाजों में अपवित्रता और शुचिता की धारणाएँ सामाजिक और राजनैतिक विभाजनों को मज़बूत बनाने में प्रमुख भूमिका निभाती रही हैं और अनेक कुलीन वर्गों द्वारा अपनी विशेष हैसियत को बरकरार रखने के लिए इनका दुरुपयोग किया गया है। अशुचिता का भय पूरी तरह से पुरोहितों और राजकुमारों की धूर्तता नहीं है। इसकी जड़ें सम्भवतः जीवित बने रहने की उन जैविक प्रक्रियाओं में फैली हैं, जो मनुष्यों में रोगों के सम्भावित वाहकों, जैसे कि बीमार इंसानों और शवों के प्रति स्वाभाविक विकर्षण की भावनाएँ जगाती हैं। अगर आप किसी भी इंसानी समुदाय - स्त्रियों, यहूदियों, जिप्सियों, समलैंगिकों, कालों - को अलग-थलग बनाए रखना चाहते हैं, तो इसका सबसे अच्छा तरीक़ा हर किसी के दिमाग़ में यह बात बैठा देना है कि ये लोग प्रदूषण के स्रोत हैं।

हिन्दू वर्ण-व्यवस्था और उससे जुड़े शुचिता के नियम हिन्दुस्तानी संस्कृति में गहरे पैठ गए। इंडो-आर्यन आक्रमण के भुलाए जा चुकने के बहुत बाद तक हिन्दुस्तानियों ने वर्ण-व्यवस्था में विश्वास और वर्णों के संकरण (मिश्रण) से होने वाली अशुचिता से घृणा करना जारी रखा। ये वर्ण परिवर्तन से निरापद नहीं थे। दरअसल, समय के गुज़रने के साथ, मुख्य वर्ण उप-जातियों में विभाजित हुए। अन्ततः मूलभूत चार वर्ण 3000 जातियों ('जाति' का शाब्दिक अर्थ है 'जन्म') में बदल गए, लेकिन जातियों के इस प्रसार ने वर्ण-व्यवस्था के उस बुनियादी नियम में कोई बदलाव नहीं किया, जिसके मुताबिक़ हर व्यक्ति का जन्म एक विशिष्ट कुल में हुआ है और इसके विधानों का किसी भी तरह का उल्लंघन व्यक्ति और समूचे समाज को दूषित कर देता है। किसी व्यक्ति की जाति उसके व्यवसाय, उसके योग्य भोजन, उसके निवास-स्थान और उसके योग्य वर/वधू का निर्धारण कर देती है। आम तौर से कोई अपनी ही जाति में विवाह कर सकता है या कर सकती है और

उसकी सन्तानों को विरासत में वही जातीय हैसियत प्राप्त होती है।

जब भी कभी कोई नया व्यवसाय विकसित होता था या लोगों का कोई नया समूह प्रकट होता था, तब हिन्दू समाज के भीतर एक जायज़ स्थान हासिल करने के लिए उनका किसी जाति के रूप में अपनी पहचान बनाना ज़रूरी होता था। जो समूह किसी जाति के रूप में अपनी पहचान नहीं बना पाते थे, वे सच्चे अर्थों में बहिष्कृत होते थे - इस स्तरीकृत समाज में उन्हें सबसे निचली सीढ़ी भी मयस्सर नहीं होती थी। वे अछूत कहे जाने लगे। उन्हें बाक़ी समाज से अलग रहना पड़ता था और कचरे के ढेर से जूठन बटोरने जैसे अपमानजनक और घृणित तरीक़ों से अपनी आजीविका जुटानी पड़ती थी। सबसे निचली जाति के लोग भी उनसे घुलने-मिलने, उनके साथ बैठकर खाने, उन्हें छूने और निश्चय ही उनके साथ वैवाहिक रिश्ता बनाने में परहेज़ करते थे। आधुनिक हिन्दुस्तान में विवाह और काम के मसले आज भी जाति-व्यवस्था से ज़बरदस्त ढंग से प्रभावित हैं, बावजूद इसके कि हिन्दुस्तान की लोकतान्त्रिक सरकार द्वारा इस तरह के भेदभावों को तोड़ने और हिन्दुओं को यह समझाने की तमाम कोशिशें की गई हैं कि जातीय मिश्रण से कोई दूषण नहीं होता।

अमेरिका में शुचिता

ऐसे ही दुष्चक्र ने आधुनिक अमेरिका में नस्लपरक श्रेणीबद्ध क्रम को जारी रखा है। सोलहवीं सदी से अठारहवीं सदी तक यूरोपीय विजेताओं ने अमेरिका की खदानों और बाग़ानों में काम करने के लिए लाखों अफ़्रीकी ग़ुलामों का आयात किया। उन्होंने यूरोप या पूर्वी एशिया के बजाय अफ़्रीका से ग़ुलामों को आयात करने का चयन तीन परिस्थितिजन्य कारणों से किया। पहला यह कि अफ़्रीका ज़्यादा क़रीब था, इसलिए वियतनाम के बजाय सेनेगल से ग़ुलामों को लाना सस्ता था।

दूसरा यह कि अफ़्रीका में पहले से ही ग़ुलामों का एक सुविकसित क़ारोबार मौजूद था (जहाँ से मुख्यतः मध्य पूर्व में ग़ुलामों का निर्यात किया जाता था), जबकि यूरोप में ग़ुलामी बहुत विरल थी। स्वाभाविक ही नए सिरे से एक नया बाज़ार तैयार करने के बजाय पहले से मौजूद बाज़ार से ग़ुलामों को ख़रीदना ज़्यादा आसान था।

तीसरा और सबसे महत्त्वपूर्ण कारण यह था कि वर्जीनिया, हैती और ब्राज़ील जैसे स्थानों के अमेरिकी बाग़ानों में मलेरिया और पीत ज्वर फैला हुआ था और इन बीमारियों का उद्गम अफ़्रीका में हुआ था। अफ़्रीकी लोगों ने कई पीढ़ियों के दौरान इन बीमारियों के प्रति आंशिक आनुवांशिक प्रतिरोधक क्षमता विकसित कर ली थी, जबकि यूरोपीय पूरी तरह से अरक्षित थे और समूह के समूह मरते थे। इसलिए एक बाग़ान मालिक के लिए यह अक़्लमन्दी की बात थी कि वह किसी यूरोपीय ग़ुलाम या इकरारनामे से बँधे मज़दूर के बजाय एक अफ़्रीकी ग़ुलाम में अपना पैसा लगाता। विरोधाभास यह था कि आनुवांशिक श्रेष्ठता (प्रतिरोधक क्षमता के अर्थ में) सामाजिक हीनता में रूपान्तरित हुई : सिर्फ़ इसलिए कि अफ़्रीकी लोग यूरोपीय लोगों के मुक़ाबले उष्णकटिबन्धीय जलवायु के लिए ज़्यादा माकूल थे, वे यूरोपीय मालिकों के ग़ुलाम बन गए। इन परिस्थितिजन्य वजहों से अमेरिका के नए विकसित होते समाजों का विभाजन गोरे यूरोपीय लोगां के कुलीन वर्ग

और काले अफ़्रीकी लोगों की पराधीन जाति में होना था।

लेकिन अगर लोग यह कहना पसन्द नहीं करते कि वे किसी ख़ास नस्ल या मूल के ग़ुलामों को रखते हैं, तो महज़ इसलिए नहीं कि यह आर्थिक दृष्टि से व्यावहारिक है। हिन्दुस्तान के आर्य विजेताओं की तरह अमेरिका के गोरे यूरोपीय भी सिर्फ़ आर्थिक रूप से सफल नहीं दिखना चाहते थे, बल्कि पवित्र, न्यायपूर्ण और निष्पक्ष भी दिखना चाहते थे। इस विभाजन को उचित ठहराने के लिए धार्मिक और वैज्ञानिक लोक-विश्वासों से काम लिया गया। धर्मशास्त्रियों ने तर्क दिया कि अफ़्रीकी नोआ के बेटे उस हैम के वंशज हैं, जिसको उसके पिता ने यह शाप दिया हुआ था कि उसकी सन्तानें ग़ुलाम होंगी। जीव-विज्ञानियों ने तर्क दिया कि काले गोरों के मुक़ाबले कम बुद्धिमान होते हैं और उनका नैतिक बोध अल्प विकसित होता है। डॉक्टरों का आरोप था कि काले लोग गन्दगी में रहते हैं और बीमारियाँ फैलाते हैं - दूसरे शब्दों में, वे दूषण का स्रोत होते हैं।

इन लोक-विश्वासों ने अमेरिकी संस्कृति और सामान्य तौर पर पश्चिमी संस्कृति में लोगों के दिलों के तारों को छू लिया। जिन परिस्थितियों ने ग़ुलामी को उत्पन्न किया था, उनके लुप्त हो जाने के बाद भी इन लोगों ने अपने वर्चस्व का प्रयोग करना जारी रखा। उन्नीसवीं सदी के शुरुआती दौर में साम्राज्यवादी ब्रिटेन ने ग़ुलामी को ग़ैरक़ानूनी करार दे दिया और अटलांटिक ग़ुलाम-व्यापार को बन्द कर दिया। उसके बाद के दशकों में समूचे अमेरिकी महाद्वीप में ग़ुलामी को धीरे-धीरे ग़ैरक़ानूनी घोषित कर दिया गया। उल्लेखनीय है कि यह इतिहास में पहला और एकमात्र ऐसा वक़्त था, जब ग़ुलामी-प्रथा वाले समाजों ने स्वेच्छापूर्वक ग़ुलामी को ख़त्म कर दिया था, लेकिन इसके बावजूद कि ग़ुलाम आज़ाद कर दिए गए, ग़ुलामी को उचित ठहराने वाले लोक-विश्वास अपनी जड़ें जमाए रहे। नस्लों के विभाजन को नस्लवादी क़ानूनों और सामाजिक रीति-रिवाज़ों के माध्यम से बरक़रार रखा गया।

नतीज़ा था कारण-प्रभाव का एक आत्म प्रबल होने वाला सिलसिला अर्थात एक दुष्चक्र। उदाहरण के लिए, गृह युद्ध के तुरन्त बाद के दक्षिणी संयुक्त राज्य पर ग़ौर करें। 1865 में संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के तेरहवें संशोधन के माध्यम से ग़ुलामी को ग़ैरक़ानूनी घोषित कर दिया गया और चौदहवें संशोधन ने व्यवस्था दी कि नस्ल के आधार पर किसी को नागरिकता और क़ानून के समान संरक्षण से वंचित नहीं किया जा सकता, लेकिन ग़ुलामी की दो सदियों का मतलब था कि काले लोगों के ज़्यादातर परिवार ज़्यादातर गोरे परिवारों के मुक़ाबले में बहुत अधिक ग़रीब और बहुत कम शिक्षित थे। 1865 में अलबामा में जन्मे एक काले व्यक्ति के पास अच्छी शिक्षा और अच्छे वेतन वाली नौकरी हासिल करने के अवसर उसके गोरे पड़ोसी के मुक़ाबले काफ़ी कम होते थे। 1880 और 1890 के दशकों में जन्मे उसके बच्चों के जीवन की शुरुआत भी वैसी ही दुर्बल परिस्थितियों के साथ हुई - उनका जन्म भी एक अशिक्षित, ग़रीब परिवार में हुआ।

लेकिन सारा क़िस्सा आर्थिक दुर्बलता तक ही सीमित नहीं है। अलबामा ऐसे बहुत से ग़रीब गोरों का भी घर था, जिनके पास उन अवसरों का अभाव था, जो उनकी नस्ल के सम्पन्न भाइयों-बहनों को उपलब्ध थे। इसके अतिरिक्त, औद्योगिक क्रान्ति और बाहरी लोगों के आगमन की लहरों ने संयुक्त राज्य अमेरिका को एक अत्यन्त परिवर्तनशील समाज में बदल दिया था, जहाँ ग़रीबी भी फ़ुर्ती से अमीरी में बदल सकती थी। अगर पैसा

ही सब कुछ था, तो नस्लों के बीच के स्पष्ट विभाजन को जल्दी ही धुँधला जाना चाहिए था, ख़ास तौर से परस्पर विवाहों के माध्यम से।

लेकिन ऐसा नहीं हुआ। 1865 तक आते-आते गोरे और उसी तरह बहुत से काले भी इसे एक सामान्य तथ्य मानने लगे थे कि काले, गोरों के मुक़ाबले कम बुद्धिमान, ज़्यादा आक्रामक और लम्पट, ज़्यादा आलसी और शारीरिक साफ़-सफ़ाई के मामले में ज़्यादा लापरवाह होते हैं। इस तरह वे हिंसा, चोरी, बलात्कार और रोगों के - दूसरे शब्दों में प्रदूषण के - कारक थे। अगर 1995 में अलबामा का एक काला व्यक्ति किसी चमत्कारवश अच्छी शिक्षा हासिल करने और बैंक टेलर जैसी किसी अच्छी नौकरी के लिए आवेदन करने में क़ामयाब हो जाता, तो उसके स्वीकार किए जाने की सम्भावनाएँ उतने ही योग्य गोरे प्रत्याशी के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा बदतर होती थीं। काला होने के नाते स्वभाव से ही अविश्वसनीय, आलसी और कम बुद्धिमान होने का जो लांछन उस पर लगा हुआ होता था, वह उसके ख़िलाफ़ साजिश रच देता था।

आप सोच सकते हैं कि लोग धीरे-धीरे समझ गए होंगे कि ये लांछन तथ्य होने के बजाय लोक-विश्वास हैं और समय गुज़रने के साथ काले लोग अपने को गोरों जितना ही योग्य, क़ानून का पाबन्द और स्वच्छ साबित करने में कामयाब रहे होंगे। दरअसल, हुआ इसका उल्टा - समय के गुज़रने के साथ ये पूर्वाग्रह और भी ज़्यादा मज़बूत होते गए। चूँकि सारी अच्छी नौकरियों पर गोरों का क़ब्ज़ा था, यह विश्वास करना और आसान हो गया कि काले लोग वाक़ई हीन होते हैं। “देखो”, औसत गोरे नागरिक ने कहा, “काले लोगों को आज़ाद हुए पीढ़ियाँ गुज़र गईं, तब भी कहीं कोई काले प्रोफ़ेसर, वकील, डॉक्टर या बैंक टेलर तक दिखाई नहीं देते। क्या यह इस बात का सबूत नहीं है कि काले लोग साफ़ तौर पर कम बुद्धिमान और कम मेहनती होते हैं”? इस दुष्चक्र में फँसे कालों को अच्छी नौकरियों में नहीं लिया जाता था क्योंकि उन्हें मूर्ख मान लिया गया था और उनकी हीनता का प्रमाण अच्छी नौकरियों में कालों का अभाव था।

यह दुष्चक्र यहीं समाप्त नहीं हुआ। काले-विरोधी लांछन जैसे-जैसे मज़बूत होते गए, वे ‘जिम क्रो’ क़ानूनों और मानकों की उस व्यवस्था में रूपान्तरित हो गए, जिसका उद्देश्य नस्लवादी ढाँचे को क़ायम रखना था। कालों पर प्रतिबन्ध लगा दिए गए कि वे चुनावों में मतदान नहीं कर सकते, गोरों के स्कूलों में नहीं पढ़ सकते, गोरों की दुकानों से ख़रीदारी नहीं कर सकते, गोरों के रेस्तराओं में खा-पी नहीं सकते और गोरों के होटलों में सो नहीं सकते। इस सब का औचित्य यह था कि काले गन्दे, सुस्त और दुष्ट होते हैं, इसलिए गोरों को उनसे बचाए रखना ज़रूरी है। गोरे बीमारी के भय से उस होटल में नहीं सोना चाहते थे, जिसमें काले सोते थे, उस रेस्तराँ में नहीं खाना चाहते थे, जिसमें काले खाते थे। क्रूर व्यवहार और बुरा प्रभाव पड़ने के डर से वे अपने बच्चों को उन स्कूलों में नहीं भेजना चाहते थे,जिनमें काले बच्चे पढ़ते थे। वे कालों को चुनावों में मतदान नहीं करने देना चाहते थे, क्योंकि काले अज्ञानी और अनैतिक थे। इन डरों की पुष्टि उन वैज्ञानिक अध्ययनों से की गई, जिन्होंने यह ‘साबित’ किया कि काले सचमुच ही कम शिक्षित होते हैं, बहुत-सी बीमारियाँ उनमें आम होती हैं, और यह कि उनकी अपराध दर बहुत ऊँची होती है (इन अध्ययनों ने इस तथ्य को नज़रअन्दाज़ किया कि ये ‘तथ्य’ कालों के ख़िलाफ़ बरते गए गए भेदभाव का परिणाम थे)।

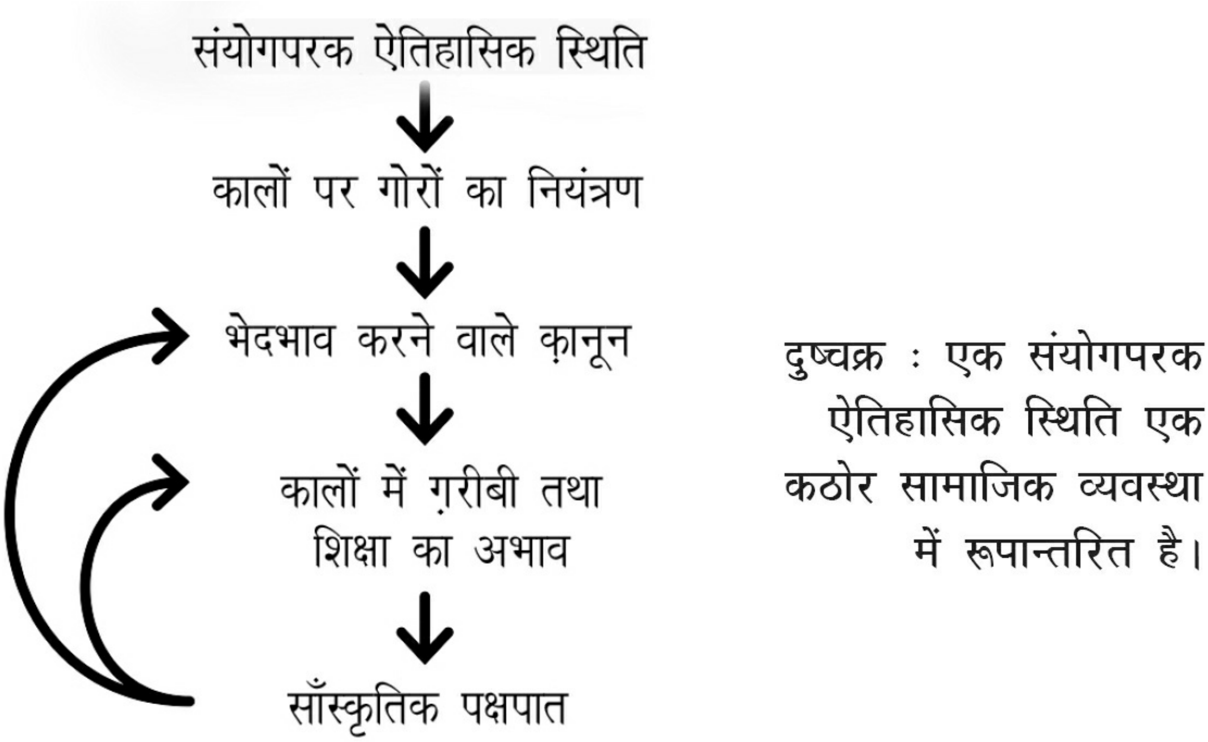
संयोगपरक ऐतिहासिक स्थिति
कालों पर गोरों का नियंत्रण
भेदभाव करने वाले क़ानून
कालों में ग़रीबी तथा शिक्षा का अभाव
साँस्कृतिक पक्षपात
दुष्चक्र : एक संयोगपरक ऐतिहासिक स्थिति एक कठोर सामाजिक व्यवस्था में रूपान्तरित है।

दुष्चक्र : एक संयोगपरक ऐतिहासिक स्थिति एक कठोर सामाजिक व्यवस्था में रूपान्तरित है।

बीसवीं सदी के मध्य तक आते-आते संघीय राज्यों (कॉन्फ़ीडेरेट स्टेट्स) में यह अलगाव शायद उन्नीसवीं सदी के आख़िरी दौर के मुक़ाबले कहीं बदतर हालत में पहुँच चुका था। क्लेनॉन किंग नामक एक काले छात्र ने 1958 में मिसीसिपी यूनिवर्सिटी में दाख़िले के लिए आवेदन दिया था। उसे जबरन पागलखाने में भेज दिया गया था। उसके प्रकरण की सुनवाई करने वाले न्यायाधीश ने निर्णय दिया कि अगर एक काला व्यक्ति यह सोचता है कि उसे मिसीसिपी यूनिवर्सिटी में दाख़िला मिल सकता है, तो उसे निश्चय ही पागल होना चाहिए।

अमेरिकी दक्षिणवासियों के लिए (और बहुत-से उत्तरवासियों के लिए) काले पुरुषों और गोरी स्त्रियों के बीच यौन-सम्बन्ध या विवाह से ज़्यादा घिनौनी चीज़ और कोई नहीं थी। नस्लों के बीच यौन-सम्बन्ध सबसे बड़ी वर्जना बन गई और इसके कैसे भी उल्लंघन या सन्दिग्ध उल्लंघन को ग़ैरक़ानूनी ढंग के प्राणदण्ड (लिंचिंग) की शक्ल में दी जाने वाली तत्काल और फ़ौरी सज़ा के योग्य माना जाता था। गोरों की नस्लपरक श्रेष्ठता में विश्वास रखने वाले ख़ुफ़िया संगठन कू क्लक्स क्लान ने ऐसी बहुत-सी हत्याएँ कराई थीं। वे हिन्दू ब्राह्मणों को शुचिता के नियमों के बारे में कुछ उपयोगी सीखें दे सकते थे।

समय के साथ नस्लवाद नए-नए सांस्कृतिक रणक्षेत्रें में फैलता गया। अमेरिकी सौन्दर्य की संस्कृति सुन्दरता के गोरों के मापदण्डों के इर्द-गिर्द विकसित हुई थी। गोरी नस्ल की जिस्मानी ख़ासियतें - उदाहरण के लिए उजली चमड़ी, भूरे और सीधे बाल, छोटी ऊपर की ओर उठी हुई नाक - को सुन्दर माना गया। कालों के ख़ास लक्षण - काली चमड़ी, काले और घने बाल, चपटी नाक - को कुरूप माना गया। इन पूर्वाग्रहों ने कल्पित श्रेणीबद्ध क्रम की जड़ों को मानव चेतना की और भी गहरी तहों में फैला दिया।

इस तरह के दुष्चक्र सदियों ही नहीं, बल्कि सहस्राब्दियों तक जारी रह सकते हैं और

उस कल्पित श्रेणीबद्ध क्रम को स्थायी बनाए रख सकते हैं, जो कभी किसी ऐतिहासिक संयोग से उपजा था। अन्यायपूर्ण पक्षपात समय के गुज़रने के साथ और भी बदतर होता जाता है, उसमें सुधार नहीं आता। पैसा, पैसे के पास भागता है, और ग़रीबी, ग़रीबी के पास। शिक्षा, शिक्षा के पास भागती है और अज्ञान, अज्ञान के पास। जो लोग एक बार इतिहास द्वारा शिकार बनाए जा चुके होते हैं, उनके दोबारा शिकार बनाए जाने की पूरी सम्भावना होती है। और जिन्हें इतिहास ने सुविधाएँ बख़्शी हैं, उनके और भी सुविधासम्पन्न होने की सम्भावनाएँ होती हैं।

अधिकांश सामाजिक-राजनैतिक श्रेणीबद्ध क्रमों का कोई तार्किक या जीव-वैज्ञानिक आधार नहीं होता। वे लोक-विश्वास का सहारा पाकर खड़ी संयोगजन्य घटनाओं के स्थायीकरण के सिवा और कुछ नहीं हैं। इतिहास का अध्ययन करने की एक सही वजह यही है। अगर कालों और गोरों या ब्राह्मणों और शूद्रों के बीच का विभाजन जीव-वैज्ञानिक वास्तविकताओं पर टिका होता - यानी, अगर ब्राह्मणों के मस्तिष्क शूद्रों के मस्तिष्कों से बेहतर होते - तो मानव समाज को समझने के लिए जीव-विज्ञान पर्याप्त होता। चूँकि होमो सेपियन्स के विभिन्न समूहों के बीच के जैविक भेद वस्तुतः नगण्य हैं, इसलिए हिन्दुस्तानी समाज की पेचीदगियों या अमेरिकी समाज की नस्लपरक आचरण-पद्धति को जीव-विज्ञान के सहारे नहीं समझा जा सकता। इन चीज़ों को हम उन घटनाओं, परिस्थितियों और शक्ति-सम्बन्धों के अध्ययन से ही समझ सकते हैं, जिन्होंने निरी कपोल-कल्पनाओं को क्रूर और बेहद वास्तविक - सामाजिक संरचनाओं में बदल दिया होता है।

लिंग भेद

अलग-अलग समाज अलग-अलग तरह के कल्पित सोपानक्रमों को अपनाते हैं। नस्ल आधुनिक अमेरिकी लोगों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है, लेकिन मध्ययुग के मुसलमानों के लिए अपेक्षाकृत महत्त्वहीन थी। वर्ण मध्ययुगीन हिन्दुस्तान के लिए जीवन-मरण का प्रश्न था, जबकि आधुनिक यूरोप के लिए यह वास्तव में अस्तित्वहीन चीज़ है, लेकिन एक श्रेणीबद्ध क्रम ऐसा है, जो तमाम ज्ञात मानव-समाजों में सर्वोच्च महत्त्व का रहा है : लैंगिक श्रेणीबद्ध क्रम। हर कहीं के समाजों ने अपने को पुरुषों और स्त्रियों में विभाजित किया हुआ है। लगभग हर कहीं पुरुषों को बेहतर सुलूक मिलता रहा है, कम से कम कृषि क्रान्ति के बाद से।

कुछ प्राचीनतम चीनी मज़मून अस्थियों पर उकेरी गई भविष्यवाणियाँ हैं, जो 1200 ईसा पूर्व के समय की हैं। एक अस्थि पर यह सवाल उकेरा हुआ था : 'क्या लेडी हाओ का प्रसव भाग्यशाली होगा'? जिसका जवाब यह लिखा हुआ था : 'अगर शिशु का जन्म डिंज के दिन हुआ, तो भाग्यशाली; अगर गेंग के दिन हुआ, तो बहुत मांगलिक'। लेकिन लेडी हाओ जिआयिन के दिन बच्चे को जन्म देने वाली थीं। मज़मून का अन्त इस उदास पर्यवेक्षण के साथ होता है : 'तीन सप्ताह और एक दिन बाद, जिआयिन के दिन शिशु का जन्म हुआ। भाग्यशाली नहीं। वह एक लड़की थी'। 3,000 से ज़्यादा साल बाद जब चीन ने 'एक बच्चा' की नीति का क़ानून बनाया, तो बहुत से चीनी परिवारों ने लड़की के जन्म

को दुर्भाग्य की तरह देखना ज़ारी रखा। अभिभावक लड़का प्राप्त करने की एक और कोशिश करके देखने के लिए अक्सर नवजात बच्ची को फेंक देते थे या मार डालते थे।

बहुत से समाजों में स्त्रियाँ महज़ पुरुषों, ज़्यादातर मामलों में अपने पिताओं, पतियों या भाइयों की सम्पत्ति हुआ करती थीं। बहुत-सी क़ानूनी व्यवस्थाओं में बलात्कार सम्पत्ति के अतिक्रमण के अन्तर्गत आता है - दूसरे शब्दों में, इस अत्याचार की शिकार वह स्त्री नहीं, जिसके साथ बलात्कार हुआ है, बल्कि वह पुरुष है, जो उस स्त्री का मालिक है। ऐसी स्थिति में इसका वैधानिक उपचार मालिकाना हक़ का हस्तान्तरण था - बलात्कारी को स्त्री के पिता या भाई को वधु शुल्क (ब्राइड प्राइस) का भुगतान करना होता था, जिससे वह स्त्री बलात्कारी की सम्पत्ति बन जाती थी। बाइबल व्यवस्था देती है कि “अगर कोई पुरुष किसी ऐसी कुँवारी लड़की से मिलता है, जिसकी मँगनी नहीं हुई है और उसको पकड़ता है और उसके साथ लेटता है, और वे पकड़े जाते हैं, तो उस स्त्री के साथ लेटने वाले पुरुष को उस नवयुवती के पिता के लिए चाँदी के पचास सिक्के देने होंगे। इसके बाद वह लड़की उस पुरुष की बीवी बन जाएगी” (ड्यूटेरॉनॉमी 22:28.9)। प्राचीन हिब्रू इसे एक जायज़ व्यवस्था मानते थे।

जो स्त्री किसी पुरुष की सम्पत्ति नहीं होती थी, उसके साथ बलात्कार किसी भी तरह से अपराध नहीं माना जाता था, उसी तरह जैसे सड़क पर पड़ा सिक्का उठा लेना चोरी नहीं मानी जाती। और अगर कोई पति अपनी ही बीवी के साथ बलात्कार करता था, तो उसने कोई अपराध नहीं किया होता था। दरअसल, यह विचार कि कोई पति अपनी बीवी के साथ बलात्कार कर सकता है, अपने आप में एक विरोधाभासी बात थी। पति होने का मतलब अपनी बीवी की यौन भावना पर आपका पूरा नियन्त्रण होना था। यह कहना कि किसी पति ने अपनी बीवी के साथ ‘बलात्कार’ किया है, उतनी ही कुतर्कपूर्ण बात थी, जितनी यह कहना कि किसी आदमी ने अपना बटुआ चुरा लिया है। इस तरह की सोच प्राचीन मध्य पूर्व तक सीमित नहीं थी। 2006 तक तिरेपन देश ऐसे थे, जहाँ अपनी बीवी के साथ बलात्कार करने पर पति पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता था। जर्मनी तक में वैवाहिक बलात्कार को क़ानून की कोटि में लाने के लिए 1997 में ही क़ानूनों में संशोधन किया गया था।

पुरुषों और स्त्रियों के बीच विभाजन क्या हिन्दुस्तान की वर्ण-व्यवस्था और अमेरिका की नस्ल व्यवस्था की तरह कल्पना की उपज है या यह बहुत गहराई तक फैली जैविक जड़ों से युक्त एक कुदरती विभाजन है? और अगर यह वाक़ई कुदरती विभाजन है, तो क्या पुरुषों को स्त्रियों से मिली वरीयता के भी कोई जीव वैज्ञानिक स्पष्टीकरण हैं?

पुरुषों और स्त्रियों के बीच की कुछ सांस्कृतिक, वैधानिक और राजनैतिक विषमताएँ दोनों लिंगों के बीच के ज़ाहिर से भेदों को प्रतिबिम्बित करती हैं। गर्भधारण हमेशा से स्त्रियों का काम रहा है, क्योंकि पुरुषों में गर्भाशय नहीं होता। तब भी इस ठोस सार्वभौमिक तत्त्व के इर्द-गिर्द हर समाज उन सांस्कृतिक धारणाओं और मानकों की परत दर परत जमा करता रहा है, जिनका जैविकी से कोई ख़ास ताल्लुक नहीं है। समाज पौरुष और नारीत्व के साथ ऐसे अनेक गुण-धर्मों को जोड़ते रहे हैं, जिनमें से ज़्यादातर का कोई दृढ़ जैविक आधार नहीं होता है।

उदाहरण के लिए, ईसा पूर्व पाँचवीं सदी के लोकतान्त्रिक एथेंस में गर्भाशय धारण करने वाले किसी व्यक्ति की कोई स्वतन्त्र वैधानिक हैसियत नहीं थी और सार्वजनिक सभाओं में उसकी भागीदारी या उनमें उसके न्यायाधीश बनने पर प्रतिबन्ध था। कुछ अपवादों को छोड़कर, ऐसा व्यक्ति अच्छी शिक्षा का लाभ नहीं उठा सकता था, ना ही वह व्यापार या दार्शनिक विमर्श में संलग्न हो सकता था। एथेंस के किसी भी राजनेता के पास, इसके महान दार्शनिकों, वक्ताओं, कलाकारों या व्यापारियों में से किसी के पास भी गर्भाशय नहीं था। क्या किसी व्यक्ति के पास गर्भाशय का होना उसे जैविक तौर पर इन व्यवसायों के अयोग्य बनाता है? प्राचीन एथेंसवासियों का ऐसा ही सोचना था। आधुनिक एथेंसवासी असहमत हैं। आज के एथेंस में स्त्रियाँ मतदान करती हैं, सार्वजनिक संस्थाओं के लिए चुनी जाती हैं, भाषण देती हैं, आभूषणों से लेकर इमारतों और सॉफ़्टवेयर तक हर चीज़ को डिज़ाइन करती हैं, और विश्वविद्यालयों में जाती हैं। जितनी क़ामयाबी के साथ ये काम पुरुष करते हैं उतनी ही क़ामयाबी के साथ इन कामों को करने में इन स्त्रियों के गर्भाशय उनके आड़े नहीं आते। यह सच है कि राजनीति और व्यापार में उनका प्रतिनिधित्व अभी भी नीचे है - ग्रीस की संसद में सिर्फ़ 12 प्रतिशत स्त्रियाँ ही हैं, लेकिन राजनीति में उनकी भागीदारी को लेकर कोई वैधानिक रुकावट नहीं है और अधिकांश ग्रीकों का सोचना है कि सार्वजनिक संस्थाओं में स्त्रियों का काम करना निहायत सामान्य बात है।

बहुत से आधुनिक ग्रीक यह भी सोचते हैं कि सिर्फ़ स्त्रियों के प्रति कामाकर्षण महसूस करना और सिर्फ़ अपने से विपरीत लिंग वाले व्यक्ति के साथ ही यौन-सम्बन्ध स्थापित करना पुरुष होने का अनिवार्य लक्षण है। इसे वे एक सांस्कृतिक पूर्वाग्रह की तरह नहीं, बल्कि एक जैविक वास्तविकता की तरह देखते हैं - विपरीत लिंगों वाले दो लोगों के बीच सम्बन्ध प्राकृतिक है और दो समलैंगिकों के बीच सम्बन्ध अप्राकृतिक है। वस्तुतः, अगर पुरुष एक दूसरे के प्रति यौन आकर्षण महसूस करते हैं, तो प्रकृति माता को इस पर कोई आपत्ति नहीं होती। ये कुछ ख़ास संस्कृतियों में ढली हुई इंसानी माताएँ हैं, जो तमाशा खड़ा कर देती हैं अगर उनके बेटे का किसी पड़ोसी लड़के के साथ यौन-सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। माँ की ये बदमिजाज़ियाँ जीव वैज्ञानिक अनिवार्यताएँ नहीं हैं। अच्छी ख़ासी संख्या में ऐसी मानवीय संस्कृतियाँ रही हैं, जो समलैंगिक सम्बन्धों को ना सिर्फ़ वैध मानती रही हैं, बल्कि सामाजिक तौर पर रचनात्मक भी मानती रही हैं। प्राचीन ग्रीस इसका एक उल्लेखनीय उदाहरण है। इलियाड में कहीं यह नहीं आता कि थेतीस को पेट्रोक्लॅस के साथ अपने बेटे अकिलीज़ के रिश्तों को लेकर कोई आपत्ति थी। मैसेडोन की रानी ओलम्पियास प्राचीन दुनिया की सबसे ज़्यादा तेज़-मिज़ाज और बलशाली स्त्रियों में से एक थी, और उसने अपने ख़ुद के पति किंग फ़िलिप तक का वध करा दिया था। तब भी जब उसका बेटा, अलेक्ज़ेंडर द ग्रेट, अपने प्रेमी हैफ़िस्तियॉन को अपने घर डिनर पर लेकर आया था, तो उसे कोई झटका नहीं लगा था।

जो चीज़ जैविक रूप से निर्धारित है, उसे हम उस चीज़ से कैसे अलग कर सकते हैं, जिसको लोग महज़ जीव वैज्ञानिक लोक-विश्वासों के आधार पर उचित ठहराते हैं? अतीत के अनुभवों पर आधारित एक व्यावहारिक पैमाना यह है कि 'जैविकी सक्षम बनाती है, संस्कृति वर्जित करती है'। जैविकी सम्भावनाओं के एक बहुत व्यापक परिदृश्य

के प्रति सहिष्णु होने की इच्छुक होती है। यह संस्कृति है, जो लोगों को कुछ सम्भावनाओं को साकार करने की गुंजाइश देती है, जबकि कुछ को वर्जित करती है। जैविकी स्त्रियों को सक्षम बनाती है कि वे बच्चों को जन्म दे सकें - कुछ संस्कृतियाँ स्त्रियों को इस सम्भावना को साकार करने की गुंजाइश देती हैं। जैविकी पुरुषों को एक दूसरे के साथ यौन सम्बन्ध का आनन्द लेने में सक्षम बनाती है - कुछ संस्कृतियाँ उन्हें इस सम्भावना को साकार करने से रोकती हैं।

संस्कृति यह तर्क देने की ओर प्रवृत्त होती है कि वह केवल उस चीज़ को वर्जित करती है, जो अप्राकृतिक है, लेकिन जीव-विज्ञान के परिप्रेक्ष्य से अप्राकृतिक कुछ भी नहीं है। जो कुछ भी सम्भव है, वह इसीलिए प्राकृतिक भी है। ऐसे किसी सच्चे अप्राकृतिक आचरण, जो प्रकृति के नियमों के विरुद्ध जाता हो, का अस्तित्व ही मुमकिन नहीं है, इसलिए उस पर रोक लगाने की कोई ज़रूरत ही नहीं होगी। किसी संस्कृति ने कभी पुरुषों को प्रकाश-संश्लेषण करने से, स्त्रियों को प्रकाश की गति से तेज़ दौड़ने से या नैगेटिव रूप से आविष्ट इलेक्ट्रॉनों को एक दूसरे के प्रति आकर्षित होने से रोकने की परवाह नहीं की।

वास्तव में, 'प्राकृतिक' और 'अप्राकृतिक' की हमारी धारणाएँ जीव-विज्ञान की नहीं, बल्कि ईसाई धर्मशास्त्र की देन हैं। 'प्राकृतिक' का धर्मशास्त्रीय अर्थ है 'उस ईश्वर के उद्देश्यों के अनुरूप होना जिसने प्रकृति को रचा है'। ईसाई धर्मशास्त्रियों का तर्क था कि ईश्वर ने मानव देह की रचना इस उद्देश्य के साथ की है कि उसके विभिन्न अंग एक ख़ास ध्येय को पूरा करें। अगर हम अपने अंगों का उपयोग ईश्वर द्वारा कल्पित ध्येयों को पूरा करने के लिए करते हैं, तो यह एक प्राकृतिक गतिविधि है। ईश्वर की मंशा से भिन्न उनका इस्तेमाल करना अप्राकृतिक है, लेकिन विकास-प्रक्रिया का कोई उद्देश्य नहीं है। अंगों का विकास किसी उद्देश्य से नहीं हुआ और उनके बरते जाने का ढंग निरन्तर परिवर्तनशील है। मनुष्य के शरीर में ऐसा एक भी अंग नहीं है, जो वह काम करता हो, जो उसके मूल रूप ने तब किया था, जब वह सैकड़ों लाखों साल पहले पहली बार अस्तित्व में आया था। अंग एक निश्चित भूमिका निभाने के लिए विकसित होते हैं, लेकिन एक बार अस्तित्व में आने के बाद उन्हें दूसरे उपयोगों के अनुरूप भी ढाला जा सकता है। उदाहरण के लिए, मुँह इसलिए अस्तित्व में आया था क्योंकि एकदम आरम्भिक दौर के बहुकोशीय जीवों को अपने शरीरों में पोषक तत्त्व पहुँचाने के लिए एक रास्ते की ज़रूरत थी। उस उद्देश्य के लिए हम अपने मुँह का इस्तेमाल अभी भी करते हैं, लेकिन हम उसका इस्तेमाल चूमने, बोलने और अगर हम रैम्बो हुए तो हैंड ग्रैनेडों से पिन खींचने के लिए भी करते हैं। क्या इनमें से कोई भी उपयोग महज़ इसलिए अप्राकृतिक है कि 6000 लाख साल पहले के हमारे कृमी-नुमा पूर्वज अपने मुँह से इस तरह के काम नहीं किया करते थे?

इसी तरह, पंख भी अपनी समूची वायुगतिकीय (एरोडाइनामिक) महिमा के साथ अचानक प्रकट नहीं हो गए थे। उनका विकास उन अंगों से हुआ था, जो एक अन्य उद्देश्य पूरा करते थे। एक परिकल्पना के मुताबिक़, कीड़ों के पंख लाखों साल पहले उड़ानरहित कीटों के शरीरों के उभारों से विकसित हुए थे। उभार-युक्त कीटों का सतही भाग उभार-रहित कीटों के सतही भाग से बड़ा था, और इसने उन्हें अधिक मात्रा में धूप सोखने और इस तरह गर्म बने रहने में सक्षम बनाया। धीमी विकास प्रक्रिया के दौरान ये सौर हीटर बड़े

हो गए। अधिकतम धूप को सोखने के लिहाज़ से उत्तम इसी संरचना (बड़ा-सारा सतही भाग, हल्का वज़न) ने, संयोग से, इन कीड़ों को कूदते-उछलते समय हल्की-सी उठान दी। जिनके उभार ज़्यादा बड़े थे, वे और भी आगे की ओर उछल-कूद सकते थे। कुछ कीड़े इन चीज़ों का इस्तेमाल कर हवा में तैरने लगे, और यहाँ से उन पंखों की दिशा में एक छोटी-सी शुरुआत हुई, जो कीटों को वाक़ई हवा में धकेल सकते थे। अगली बार जब कोई मच्छर आपके कान में भिनभिनाए, तो उस पर अप्राकृतिक व्यवहार करने का इल्ज़ाम लगाइए। अगर वो तमीज़दार हुआ और जो कुछ ईश्वर ने उसको दिया है, उससे सन्तुष्ट हुआ, तो वह अपने पंखों का इस्तेमाल सिर्फ़ सौर पैनलों के रूप में ही करेगा।

इसी तरह की बहुउद्यमशीलता (मल्टीटास्किंग) हमारे यौन अंगों और यौन आचरण पर लागू होती है। काम-भावना का विकास सबसे पहले प्रजनन और सहवास के लिए सम्भावित साथी की थाह लेने के रोमांस के लिए हुआ था, लेकिन बहुत से प्राणी अब दोनों चीज़ों का इस्तेमाल उन कई तरह के सामाजिक उद्देश्यों के लिए करते हैं, जिनका उनकी अपनी छोटी-छोटी नक़लें तैयार करने से कोई लेना-देना नहीं होता। उदाहरण के लिए, चिंपांज़ी काम-भावना का इस्तेमाल राजनैतिक गठबन्धन तैयार करने, आत्मीयता विकसित करने और तनाव को शान्त करने के लिए करते हैं। क्या ये अप्राकृतिक है?

काम-तत्तव (सैक्स) और लैंगिकता (जेंडर)

तब इस तर्क का कोई ख़ास अर्थ नहीं रह जाता कि स्त्रियों की कुदरती भूमिका प्रजनन करना है या समलैंगिकता अप्राकृतिक है। पौरुष और स्त्रीत्व को परिभाषित करने वाले ज़्यादातर क़ानून, कसौटियाँ, औचित्य और शर्तें जैविक वास्तविकता से ज़्यादा मानवीय कल्पना को प्रतिबिम्बित करते हैं।

जैविक तौर पर मनुष्य नरों और मादाओं में विभाजित हैं। नर होमो सेपियन्स वह है, जिसमें एक X क्रोमज़ोम और एक Y क्रोमज़ोम होता है। मादा वह है, जिसमें दो X क्रोमज़ोम होते हैं, लेकिन ‘पुरुष’ और ‘स्त्री’ जैविक कोटियों के नहीं, बल्कि सामाजिक कोटियों के नाम हैं। जहाँ अधिकांश मानव समाजों में बहुत अधिक मामलों में पुरुष नर हैं और स्त्रियाँ मादाएँ हैं, ये सामाजिक पद ऐसे ढेरों विश्वासों और प्रवृत्तियों का बोझ धारण किए हुए हैं, जिनका जीववैज्ञानिक पदों से अगर कोई सम्बन्ध है भी, तो वह महज़ कमज़ोर-सा सम्बन्ध ही है। एक पुरुष XY क्रोमज़ोमों, अण्डकोषों और ढेरों टेस्टास्टरोन जैसे ख़ास जैविक गुणों से सम्पन्न सेपियन्स नहीं है।

मादा = एक जीववैज्ञानिक कोटि		**स्त्री = एक सांस्कृतिक कोटि**	
प्राचीन एथेंस	**आधुनिक एथेंस**	**प्राचीन एथेंस**	**आधुनिक एथेंस**

XX क्रोमज़ोम	XX क्रोमज़ोम	मतदान नहीं कर सकती	मतदान कर सकती है
गर्भ	गर्भ	न्यायाधीश नहीं हो सकती	न्यायाधीश हो सकती है
डिम्बाशय	डिम्बाशय	सरकारी पद नहीं सँभाल सकती	सरकारी पद सँभाल सकती है
कम टेस्टास्टरोन	कम टेस्टास्टरोन	इसका फ़ैसला ख़ुद नहीं कर सकती कि किससे विवाह करना है	इसका फ़ैसला ख़ुद कर सकती है कि किससे विवाह करना है
ज़्यादा एस्ट्रोजन	ज़्यादा एस्ट्रोजन	आम तौर से निरक्षर	आम तौर से साक्षर
दूध उत्पन्न करने में सक्षम	दूध उत्पन्न करने में सक्षम	वैधानिक तौर पर पिता या पति के स्वामित्व में	वैधानिक तौर पर स्वाधीन
ठीक एक जैसी स्थिति		**बहुत अलग स्थितियाँ**	

इसके बजाय, वह अपने समाज की कल्पित मानवीय व्यवस्था के एक ख़ास खाँचे में फिट बैठता है। उसकी संस्कृति के लोक-विश्वास उसको कुछ ख़ास तरह की मर्दाना भूमिकाएँ (जैसे सेना में नौकरी करना) सौंपते हैं। इसी तरह, स्त्री दो X क्रोमज़ोमों, गर्भाशय और ढेरों एस्ट्रोजन से युक्त सेपियन्स नहीं है। इसके बजाय, वह एक कल्पित मानवीय व्यवस्था की मादा सदस्य है। उसके समाज के लोक-विश्वास उसके लिए विशिष्ट स्त्रैण भूमिकाएँ (बच्चों का पालन-पोषण), अधिकार (हिंसा के विरुद्ध सुरक्षा) और कर्तव्य (अपने पति की आज्ञा का पालन) सौंपते हैं। चूँकि पुरुषों और स्त्रियों की ये भूमिकाएँ, अधिकार और कर्तव्य जैविकी के बजाय लोक-विश्वासों से परिभाषित होती हैं, इसलिए 'पुरुषत्व' और 'स्त्रीत्व' के अर्थ एक समाज से दूसरे समाज के बीच बहुत अधिक बदलते रहे हैं।

स्थिति को अधिक स्पष्ट बनाने के उद्देश्य से अध्येता आम तौर से 'काम-तत्त्व' (सैक्स), जो कि जैविक कोटि है, और 'लैंगिकता' (जेंडर), जो कि सांस्कृतिक कोटि है, के बीच भेद करते हैं। काम-तत्त्व नरों और मादाओं के बीच विभाजित है और इस विभाजन के लक्षण तथ्यपरक हैं और समूचे इतिहास के दौरान अचल बने रहे हैं। लिंग पुरुषों और स्त्रियों के बीच 'पुल्लिंग'/'स्त्रीलिंग' में विभाजित है (और कुछ संस्कृतियाँ दूसरी कोटियों को भी मान्यता देती हैं)। तथाकथित 'मर्दाना' और 'स्त्रैण' लक्षण अन्तर-आत्मपरक हैं और लगातार परिवर्तित होते रहते हैं। उदाहरण के लिए, प्राचीन एथेंस की स्त्रियों और आधुनिक एथेंस की स्त्रियों से अपेक्षित आचरण, आकांक्षाओं, वेषभूषा, यहाँ

तक कि देह-मुद्राओं के बीच व्यापक अन्तर हैं।

काम-तत्त्व बहुत आसान चीज़ है, लेकिन लैंगिकता एक गम्भीर मसला है। नर जाति का सदस्य होना संसार की सबसे आसान चीज़ है। इसके लिए आपको महज़ एक X और एक Y क्रोमज़ोम के साथ जन्म लेने भर की ज़रूरत है। मादा जाति का सदस्य होना भी उतना ही आसान है। यह काम एक जोड़ा X क्रोमज़ोम से हो जाएगा। इसके विपरीत, एक पुरुष या स्त्री होना एक बहुत ही जटिल और परिश्रमसाध्य उद्यम है। चूँकि ज़्यादातर पुल्लिंग और स्त्रीलिंग गुण जैविक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक होते हैं, इसलिए कोई भी समाज स्वतः ही हरेक नर को पुरुष और हरेक मादा को स्त्री का ताज नहीं पहना देता। ना ही ये उपाधियाँ ऐसे सम्मान हैं, जिनके एक बार हासिल हो जाने के बाद उन पर निर्भर रहा जा सकता हो। नरों को आजीवन, पालने से लेकर क़ब्र तक, अन्तहीन अनुष्ठानों और कृत्यों के माध्यम से अपने पौरुष को साबित करते रहना होता है। और स्त्री का काम कभी पूरा नहीं होता - उसे लगातार ख़ुद और दूसरों को समझाते रहना होता है कि वह पर्याप्त स्त्री है।

कामयाबी की गारंटी नहीं होती है। पुरुष, ख़ास तौर से लगातार अपने पुरुषत्व के दावे से वंचित हो जाने के ख़ौफ़ में रहते हैं। समूचे इतिहास के दौरान पुरुष महज़ इसलिए कि लोग यह कहें कि ‘वह एक असल मर्द है’ अपनी ज़िन्दगी तक का बलिदान करने का जोख़िम उठाने को तैयार रहे हैं।

पुरुष में ऐसा क्या है, जो इतना अच्छा है?

कम से कम कृषि क्रान्ति के बाद से ज़्यादातर मानव-समाज पितृसत्तात्मक समाज रहे हैं,जो पुरुषों को स्त्रियों से ज़्यादा महत्त्व देते थे। इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि कोई समाज ‘पुरुष’ और ‘स्त्री’ को किस तरह परिभाषित करता था, पुरुष होना हमेशा बेहतर हुआ करता था। पितृसत्तात्मक समाज पुरुषों को मर्दानगी का आचरण करने की शिक्षा देते हैं और स्त्रियों को स्त्रियोचित ढंग से सोचने और आचरण करने की शिक्षा देते हैं और इन सीमाओं को लाँघने का दुस्साहस करने वाले किसी भी व्यक्ति को दण्डित करते हैं, हालाँकि जो इन शिक्षाओं का पालन करते हैं, उन्हें पुरस्कृत नहीं किया जाता। पौरुषपूर्ण माने जाने वाले गुणों को उन गुणों से ज़्यादा महत्त्व दिया जाता है, जिन्हें स्त्रैण गुण माना जाता है और स्त्रीत्व के आदर्श को मूर्त रूप देने वाले समाज के सदस्यों को कम हासिल होता है, बजाय उनके जो पुरुषत्व के आदर्श का उदाहरण होते हैं। स्त्रियों के स्वास्थ्य और शिक्षा पर थोड़े-से संसाधनों को ख़र्च किया जाता है, उन्हें थोड़े-से आर्थिक अवसर, कमतर राजनैतिक शक्तियाँ और आवाजाही की कमतर स्वतन्त्रता उपलब्ध होती है। लैंगिकता वह दौड़ है, जिसमें शामिल कुछ दौड़ने वाले सिर्फ़ कांस्य पदक के लिए ही प्रतिस्पर्धा करते हैं।

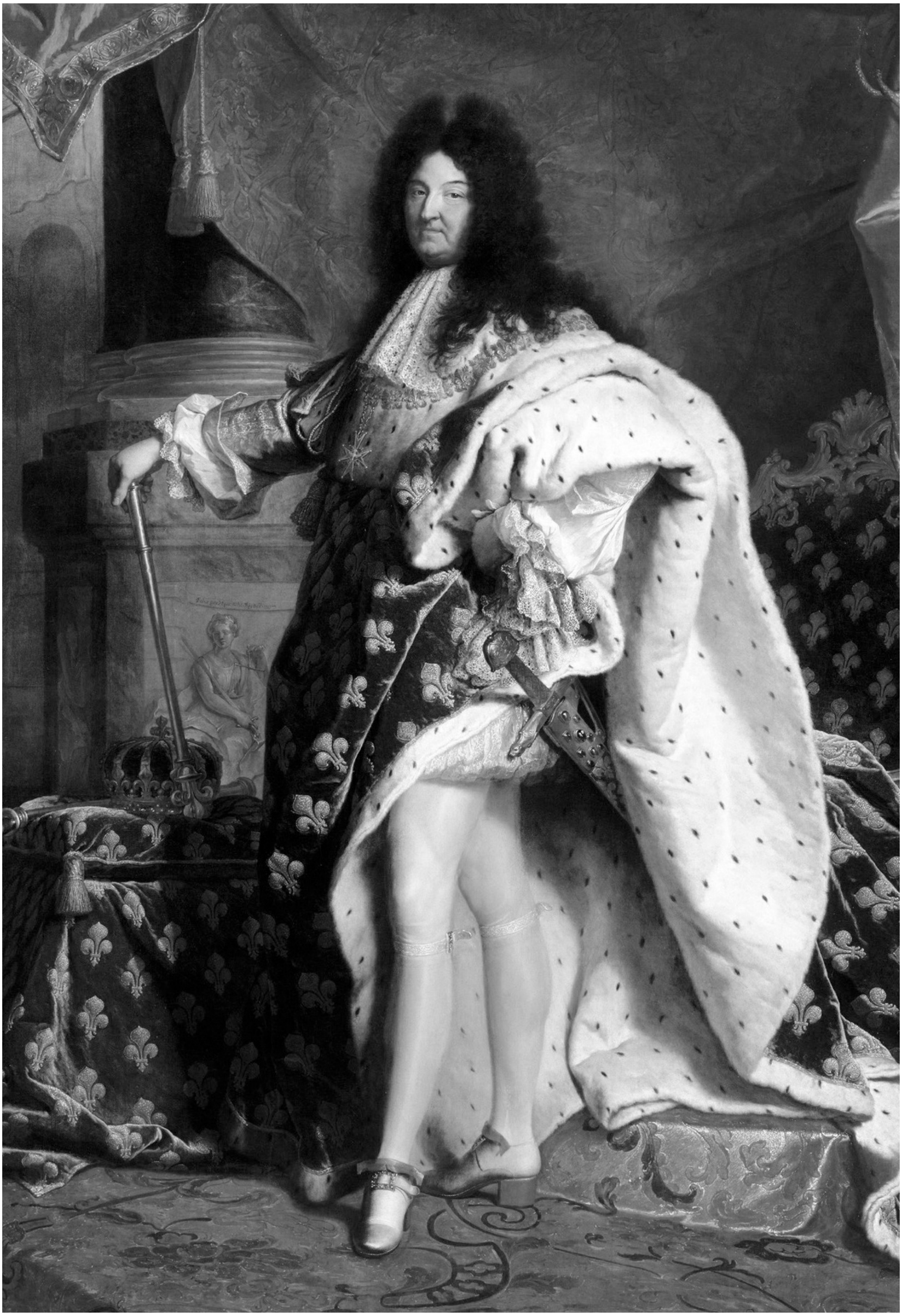

22. अठारहवीं सदी की मर्दानगी : फ़्रांस के सम्राट लुई XIV की अधिकृत तसवीर। लम्बे विग, जुराबों, ऊँची एड़ी के जूतों, नर्तक की मुद्रा - और विशाल तलवार पर ध्यान दें। समकालीन अमेरिका में (तलवार को

छोड़कर) ये सारी चीज़ें स्त्रीत्व की निशानियाँ मानी जाएँगीं, लेकिन अपने वक़्त में लुई पौरुष और पुंसत्व का आदर्श समझे जाते थे।

23. इक्कीसवीं सदी की मर्दानगी : बराक ओबामा की अधिकृत तसवीर। विग, जुराबों, ऊँची एड़ी के जूतों -

और तलवार का क्या हुआ? प्रभावशाली मर्द इतने सुस्त और नीरस कभी नहीं दिखते थे, जितने वे आज दिखते हैं। ज़्यादातर इतिहास के दौरान प्रभावशाली पुरुष रंगीले और भड़कीले हुआ करते थे, जैसे कि पंख युक्त साफ़े धारण किए अमेरिकन इंडियन मुखिया और रेशम और हीरों से सजे-धजे हिन्दू महाराजा। समूचे प्राणी जगत में नर मादाओं के मुक़ाबले ज़्यादा रंगीन और साज-सज्जा से युक्त होते हैं - मोर के पिछले हिस्सों और शेर की अयालों को याद करें।

यह सही है कि मुट्ठी भर स्त्रियों ने अपनी प्रमुख हैसियत बनाई है, जैसे कि मिस्र की क्लियोपेट्रा, चीन की साम्राज्ञी वू ज़ेतियन (700 ईसवी) और इंग्लैंड की एलिज़ाबेथ प्रथम, लेकिन ये ऐसे अपवाद हैं, जिनसे सामान्य स्थिति पर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। एलिज़ाबेथ के समूचे पैंतालीस वर्षीय शासन काल के दौरान संसद के सारे सदस्य पुरुष थे, शाही नौसेना और सेना के सारे अधिकारी पुरुष थे, सारे वकील और न्यायाधीश पुरुष थे, सारे बिशप और आर्चबिशप पुरुष थे, सारे डॉक्टर और शल्य चिकित्सक पुरुष थे, सारे विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के सारे छात्र और प्रोफ़ेसर पुरुष थे, सारे मेयर और ज़िलों के हाकिम पुरुष थे और लगभग सारे लेखक, वास्तुविद्, कवि, दार्शनिक, चित्रकार, संगीतकार और वैज्ञानिक पुरुष थे।

पितृसत्ता लगभग सभी कृषि-प्रधान और औद्योगिक समाजों में मानक व्यवस्था रही है। इसने राजनैतिक विप्लवों, सामाजिक क्रान्तियों और आर्थिक रूपान्तरणों को दृढ़तापूर्वक झेला है। उदाहरण के लिए, मिस्र को सदियों के दौरान अनेक बार फ़तह किया गया। उस पर असीरियाइयों, फ़ारसियों, मैसेडोनियाइयों, रोमनों, अरबों, मैमेलुकों, तुर्कों और अँग्रेज़ों ने क़ब्ज़ा किया - और उसका समाज हमेशा पितृसत्तात्मक बना रहा। मिस्र फ़ैरोनिक विधान, रोमन विधान, मुस्लिम विधान, ऑटोमन विधान और अँग्रेज़ विधान से शासित रहा - और इन सारे विधानों ने उन लोगों के ख़िलाफ़ भेदभाव बरता, जो 'असल मर्द' नहीं थे।

चूँकि पितृसत्ता इस क़दर सार्वभौमिक है, यह किसी ऐसे दुष्चक्र की उपज हो सकती है, जिसकी शुरुआत किसी संयोग से हुई हो। यह ख़ास तौर से ध्यान देने योग्य बात है कि 1492 के पहले भी अमेरिका और अफ़्रो-एशिया के ज़्यादातर समाज पितृसत्तात्मक थे, बावजूद इसके कि हज़ारों सालों से उनका आपस में कोई सम्पर्क नहीं रहा था। अगर अफ़्रो-एशिया की पितृसत्ता किसी संयोग की उपज थी, तो एज़्टेक और इंका पितृसत्तात्मक क्यों थे? इसकी कहीं ज़्यादा सम्भावना है कि भले ही विभिन्न संस्कृतियों में 'पुरुष' और 'स्त्री' की निश्चित परिभाषा में भेद हैं, इसका कोई सार्वभौमिक जैविक कारण है, जिससे कि लगभग सारी संस्कृतियाँ पौरुष को स्त्रीत्व से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण मानती हैं। यह कारण क्या है यह हम नहीं जानते। परिकल्पनाएँ बहुत सारी हैं, लेकिन विश्वसनीय उनमें से कोई भी नहीं है।

बाहुबल

सबसे आम परिकल्पना इस ओर संकेत करती है कि पुरुष स्त्रियों के मुक़ाबले मज़बूत होते हैं और उन्होंने स्त्रियों को बलात् अधीन बनाने के लिए अपनी शारीरिक ताक़त का ज़बरदस्त प्रयोग किया। इसी दावे का एक ज़्यादा सूक्ष्म संस्करण यह तर्क देता है कि पुरुषों की सामर्थ्य उन्हें उन कामों पर एकाधिकार स्थापित करने की गुंजाइश देती है, जो

कड़ी मेहनत की माँग करते हैं, जैसे कि हल चलाना और फ़सल काटना। यह चीज़ भोज्य उत्पादों पर उनका नियन्त्रण क़ायम करती है, जो नतीज़तन उनके राजनैतिक वर्चस्व में रूपान्तरित हो जाती है।

बाहुबल पर यह ज़ोर दो समस्याएँ पैदा करता है। पहली, यह कथन कि 'पुरुष स्त्रियों के मुक़ाबले मज़बूत होते है' सिर्फ़ औसत रूप से, और कुछ निश्चित क़िस्म की सामर्थ्यों के सन्दर्भ में ही सही है। स्त्रियाँ सामान्यतः भूख, बीमारी और थकान से पुरुषों के मुक़ाबले कम प्रभावित होती हैं। ऐसी बहुत-सी स्त्रियाँ हैं, जो बहुत सारे मर्दों के मुक़ाबले तेज़ दौड़ सकती हैं और ज़्यादा वज़न उठा सकती हैं। इससे भी बढ़कर और इस परिकल्पना के सामने सबसे बड़ी समस्या खड़ी करने वाली बात यह है कि स्त्रियों को समूचे इतिहास के दौरान मुख्यतः उन कामों से बाहर रखा गया है, जो बहुत कम शारीरिक उद्यम की माँग करते हैं (जैसे कि पुरोहिताई, क़ानून और राजनीति), जबकि उन्हें खेती, शिल्प उद्योग और गृहस्थी के कठोर शारीरिक श्रम में लगाकर रखा गया है। अगर सामाजिक शक्ति का बँटवारा सीधे-सीधे शारीरिक सामर्थ्य या आन्तरिक बल के सन्दर्भ में किया गया होता, तो स्त्रियों के हिस्से में कहीं ज़्यादा सामाजिक शक्ति आनी चाहिए थी।

इससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मनुष्यों की दुनिया में शारीरिक सामर्थ्य और सामाजिक शक्ति के बीच कोई सीधा रिश्ता है ही नहीं। आम तौर से साठ साल से ऊपर के लोग बीस-तीस साल के लोगों पर हुक्म चलाते हैं, बावजूद इसके कि ये बीस-तीस साल के लोग उम्र में अपने से बड़ों के मुक़ाबले ज़्यादा ताक़तवर होते हैं। अलबामा में उन्नीसवीं सदी के मध्य के एक सामान्य भूमिपति को उसके कपास के खेत में काम कर रहा कोई भी ग़ुलाम कुछ पलों में ही पटकनी दे सकता था। मिस्र के प्राचीन राजाओं या कैथोलिक पोपों के चुनाव के लिए बॉक्सिंग की प्रतियोगिताओं का आयोजन नहीं किया जाता था। भोजन-खोजियों के समाजों में राजनैतिक वर्चस्व सामान्यतः उत्कृष्ट सामाजिक दक्षताओं से सम्पन्न लोगों का होता है, ना कि उनका जिनकी मांसपेशियाँ सबसे ज़्यादा विकसित होती हैं। आपराधिक संगठनों का सरगना ज़रूरी तौर पर सबसे हट्टा-कट्टा आदमी नहीं होता। वह अक्सर एक अपेक्षाकृत बुज़ुर्ग व्यक्ति होता है, जो शायद ही कभी अपने मुक्कों का इस्तेमाल करता हो। इन गन्दे कामों के लिए वह नौजवान और क़ाबिल लोगों को रखता है। जो व्यक्ति ऐसा सोचता है कि वह डॉन को पीटकर उसके गिरोह को अपने क़ब्ज़े में कर लेगा उसे अपनी ग़लती से सीखने के लिए पर्याप्त लम्बा जीवन मिलने की कोई सम्भावना नहीं है। यहाँ तक चिंपांज़ियों में भी उनका नेता दूसरे नरों और मादाओं के साथ गठबन्धन तैयार कर अपनी यह हैसियत बनाता है, नासमझ हिंसा के बूते पर नहीं।

दरअसल, मानव इतिहास दर्शाता है कि बाहुबल और सामाजिक शक्ति के बीच अक्सर एक विपरीत रिश्ता रहा है। ज़्यादातर समाजों में ये निचले वर्ग के लोग होते हैं, जो शारीरिक श्रम करते हैं। इससे भोजन-शृंखला में होमो सेपियन्स की स्थिति को समझा जा सकता है। अगर फूहड़ जिस्मानी क़ाबिलियतें ही महत्त्वपूर्ण होतीं, तो सेपियन्स ने ख़ुद को सीढ़ी के बीच के पायदान पर पाया होता, लेकिन उनकी दिमाग़ी और सामाजिक दक्षताओं ने उन्हें सबसे ऊपर प्रतिष्ठित किया है। इसलिए यही स्वाभाविक है कि प्राणियों की प्रजाति के भीतर भी शक्ति-शृंखला का निर्धारण पशुबल से ज़्यादा दिमाग़ी और

सामाजिक क़ाबिलियतों से होगा। इसलिए यह विश्वास करना मुश्किल है कि इतिहास का सबसे ज़्यादा प्रभावशाली और सबसे ज़्यादा टिकाऊ सामाजिक सोपानक्रम स्त्रियों को भौतिक बलप्रयोग से दबाने की पुरुषों की क़ाबिलियत पर खड़ा हुआ है।

समाज के बदतर लोग

एक और परिकल्पना यह स्पष्ट करती है कि पुरुष वर्चस्व ताक़त का नहीं, बल्कि आक्रामकता का परिणाम है। विकास-प्रक्रिया के लाखों वर्षों ने पुरुषों को स्त्रियों के मुक़ाबले बहुत ज़्यादा हिंसक बना दिया है। इस परिकल्पना के मुताबिक़, जब तक नफ़रत, लालच और दुर्व्यवहार का प्रश्न होता है, स्त्रियाँ पुरुषों की बराबरी कर सकती हैं, लेकिन जब कोई विकल्प शेष नहीं रह जाता, तो पुरुष कठोर शारीरिक हिंसा में लिप्त होने के प्रति कहीं ज़्यादा उत्साहित होते हैं। यही वजह है कि समूचे इतिहास के दौरान युद्ध पर पुरुषों का परमाधिकार रहा है।

युद्ध के दिनों में सशस्त्र बलों पर पुरुषों के नियन्त्रण ने उन्हें नागरिक समाज का नियंता भी बना दिया। इसके बाद उन्होंने नागरिक समाज पर अपने नियन्त्रण का इस्तेमाल ज़्यादा से ज़्यादा युद्ध लड़ने के लिए किया और जितने ज़्यादा युद्ध होते गए, उतना ही समाज पर पुरुषों का नियन्त्रण बढ़ता गया। इस प्रतिक्रिया-चक्र (फ़ीडबैक लूप) से युद्ध की सर्वव्यापकता और पितृसत्ता की सर्वव्यापकता दोनों का कारण स्पष्ट हो जाता है।

पुरुषों और स्त्रियों की हार्मोन सम्बन्धी और संज्ञानात्मक प्रणालियों के हाल के अध्ययनों ने इस धारणा की पुष्टि की है कि पुरुषों में वाक़ई कहीं ज़्यादा आक्रामक और हिंसक प्रवृत्तियाँ होती हैं, और इसलिए वे औसतन, आम सैनिकों के रूप में काम करने की दृष्टि से ज़्यादा उपयुक्त होते हैं। तब भी अगर यह मान भी लिया जाए कि आम सैनिक सारे के सारे पुरुष होते हैं, तो क्या इससे यह नतीज़ा निकलता है कि युद्ध का प्रबन्धन करने वाले और उसके नतीज़ों का फ़ायदा उठाने वाले भी पुरुष ही होने चाहिए? इसका कोई अर्थ नहीं है। यह तो कुछ इस तरह की बात हुई कि चूँकि कपास की खेती में लगे सारे ग़ुलाम काले होते हैं, इसलिए भूमिपति भी काले ही होंगे। जिस तरह पूर्णतः काले कामगार बल को पूर्णतया गोरे प्रबन्धक तन्त्र द्वारा नियन्त्रित किया जा सकता है, उसी तरह पूर्णतः पुरुष सेना को पूर्णतः या कम से कम आंशिक स्त्री शासन द्वारा नियन्त्रित क्यों नहीं किया जा सकता? वस्तुतः समूचे इतिहास के दौरान अनेक समाजों में शीर्षस्थ अधिकारी निचले ओहदे (रैंक) से शुरुआत कर ऊपर तक नहीं पहुँचते थे। अभिजात्य, अमीर और शिक्षित लोगों को स्वतः ही अधिकारी का ओहदा दे दिया जाता था और उन्हें निचले ओहदे पर एक दिन भी काम नहीं करना पड़ता था।

जब नेपोलियन के अपराजेय प्रतिद्वन्द्वी ड्यूक ऑफ़ वेलिंग्टन को अठारह साल की उम्र में ब्रिटिश सेना में भर्ती किया गया था, तो उसे तुरन्त अधिकारी नियुक्त कर दिया गया था। फ़्रांस के ख़िलाफ़ लड़ाइयों के दौरान उसने अपने एक कुलीन साथी को लिखा था कि “आम सैनिकों के रूप में हमारे यहाँ धरती के बदतर लोग काम कर रहे हैं”। सामान्य सैनिकों को आम तौर से समाज के अत्यन्त ग़रीब तबके से या जातीय अल्पसंख्यकों

(जैसे आयरिश कैथोलिक) के बीच से चुना जाता था। सेना के ऊँचे ओहदों तक पहुँचने के उनके अवसर नगण्य होते थे। ऊँचे ओहदे नवाबों (ड्यूकों), राजकुमारों और राजाओं के लिए आरक्षित थे, लेकिन सिर्फ़ नवाबों के लिए ही क्यों, उनकी पत्नियों (डचिस) के लिए क्यों नहीं?

अफ़्रीका में फ़्रांसीसी साम्राज्य की स्थापना और रक्षा सेनेगलियों, अल्ज़ीरियाइयों और कामगार वर्ग के फ़्रांसीसी पुरुषों ने की थी। साधारण सैनिकों में कुलीन फ़्रांसीसी पुरुषों का प्रतिशत नगण्य था, लेकिन अभिजात्य वर्ग के जिस छोटे-से तबके ने फ़्रांसीसी सेना का नेतृत्व किया था, जो साम्राज्य पर हुकूमत करता था और जो उसके फलों का स्वाद चख रहा था, उस छोटे-से तबके में कुलीन फ़्रांसीसी पुरुषों का प्रतिशत बहुत बड़ा था। सिर्फ़ फ़्रांसीसी पुरुष ही क्यों, फ़्रांसीसी स्त्रियाँ क्यों नहीं?

चीन में सेना को असैनिक नौकरशाही के अधीन रखने की लम्बी परम्परा हुआ करती थी, इसलिए वहाँ का दीवानी हाकिम, जिसने कभी तलवार नहीं उठाई होती थी, अक्सर युद्ध का संचालन करता था। चीनी कहावत थी कि “कीलें बनाने के लिए आप अच्छा लोहा बरबाद नहीं करते”, जिसका मतलब होता था कि असल प्रतिभाशाली लोग असैनिक नौकरशाही में काम करते हैं, ना कि सेना में। तब फिर ये सारे दीवानी हाकिम पुरुष ही क्यों होते थे?

आप युक्तिसंगत ढंग से यह तर्क नहीं दे सकते कि स्त्रियों की शारीरिक दुर्बलता या उनमें टेस्टास्टरोन का कमतर स्तर उनको कामयाब दीवानी हाकिम, जनरल और राजनेता होने से रोकता था। युद्ध का संचालन करने के लिए आपको निश्चय ही आन्तरिक बल की ज़रूरत होती है, लेकिन बहुत ज़्यादा शारीरिक सामर्थ्य या आक्रामकता की ज़रूरत नहीं होती। युद्ध शराबघरों के दंगे नहीं हैं। वे बहुत जटिल योजनाएँ हैं, जिनके लिए असाधारण स्तर का व्यवस्थापन, आपसी सहयोग और तुष्टीकरण आवश्यक होता है। अपने मुल्क़ में अमन क़ायम रखने और दूसरे मुल्क़ों से सहयोग हासिल करने की योग्यता और यह समझने की योग्यता कि दूसरे लोगों (ख़ास तौर से आपके शत्रुओं) के दिमाग़ में क्या चल रहा है, जीत की कुंजी होती है। इसीलिए एक आक्रामक क्रूर व्यक्ति युद्ध के संचालन की दृष्टि से अक्सर एक बदतर चयन होता है।

इसके लिए कहीं ज़्यादा बेहतर होता है दूसरों के साथ मिलकर काम करने वाला व्यक्ति, जिसमें बहलाने-फुसलाने, कूटनीति बरतने और चीज़ों को विभिन्न परिप्रेक्ष्यों से देखने की समझ होती है। साम्राज्य खड़े करने वाले इन्हीं सब चीज़ों से मिलकर बनते हैं। सैन्य तौर पर अयोग्य ऑगस्टस एक टिकाऊ साम्राज्य खड़ा करने में क़ामयाब रहा था। इस तरह उसने एक ऐसी चीज़ हासिल की थी, जो जूलियस सीज़र और अलेक्ज़ेंडर द ग्रेट दोनों के हाथ से फ़िसल गई थी, जो कि कहीं ज़्यादा बेहतर जनरल थे। उसके समकालीन प्रशंसक और आधुनिक इतिहासकार दोनों ही उसके इस अद्भुत कमाल का श्रेय उसकी क्लेमेन्तिया - उदारता और दयालुता - को देते हैं।

स्त्रियों पर अक्सर यह ठप्पा लगाया जाता रहा है कि वे कूटनीति बरतने और बहलाने-फफ़सलाने के मामले में पुरुषों से बेहतर होती हैं और उनकी शोहरत रही है कि वे दूसरों के नज़रिये से चीज़ों को देखने की कमाल की क़ाबिलियत रखती हैं। अगर इन ठप्पों में ज़रा भी सच्चाई है, तो स्त्रियों को लड़ाई के मैदानों का गन्दा काम टेस्टास्टरोन-

आवेशित, किन्तु सरल-दिमाग़ मर्दानों के लिए छोड़कर उत्कृष्ट राजनेता और साम्राज्य-निर्मात्री हो सकना चाहिए था। आम लोक-विश्वासों के बावजूद, वास्तविक दुनिया में ऐसा शायद ही होता है। क्यों नहीं होता, यह बहुत स्पष्ट नहीं है।

पितृसत्तात्मक जीन

एक तीसरी तरह की जैविक व्याख्या है, जो क्रूरतापूर्ण बल और हिंसा को कम महत्त्व देती है और यह सुझाती है कि विकास-प्रक्रिया के लाखों वर्षों के दौरान स्त्रियों और पुरुषों ने जीवित बने रहने और प्रजनन करने की भिन्न तरह की युक्तियाँ विकसित की थीं। प्रजनन करने में सक्षम स्त्रियों का गर्भाधान करने के अवसर के लिए एक दूसरे से होड़ करते पुरुषों के बीच किसी व्यक्ति के प्रजनन करने के अवसर मुख्यतः ख़ुद को दूसरे पुरुषों से बेहतर साबित करने और दूसरे पुरुषों को मात देने की उनकी क़ाबिलियत पर निर्भर करते थे। समय के गुज़रने के साथ, जो मर्दाना जीन अगली पीढ़ी तक पहुँचने में क़ामयाब रहे, वे सर्वाधिक महत्त्वाकांक्षी, आक्रामक और प्रतिस्पर्धी पुरुषों के जीन थे।

दूसरी तरफ़, स्त्री को उसका गर्भाधान करने के इच्छुक पुरुष को हासिल करने में कोई समस्या नहीं थी, लेकिन अगर वह चाहती थी कि उसके बच्चे उसके लिए नाती-पोते मुहैया कराएँ, तो उसे उन बच्चों को कष्ट से भरे नौ महीनों तक अपने गर्भ में धारण करना, फिर वर्षों तक उनका पालन-पोषण करना ज़रूरी था। उस अवधि के दौरान उसके पास भोजन कमाने के बहुत कम अवसर होते थे और उसे ढेर सारी मदद की ज़रूरत होती थी। उसे एक पुरुष की ज़रूरत होती थी। अपने और अपने बच्चों के जीवन की सुरक्षा के मद्देनज़र स्त्री के पास सिवा उस पुरुष के द्वारा थोपी गई किन्हीं भी शर्तों को मानने के अलावा और कोई विकल्प नहीं होता था, जो उसके आस-पास बने रहने और उसके बोझ को कुछ हल्का करने को तैयार होता था। समय के गुज़रने के साथ, जो स्त्री-जीन अगली पीढ़ी तक पहुँचने में कामयाब रहे, वे उन स्त्रियों के थे, जो आज्ञाकारी परिचारिकाएँ हुआ करती थीं। जिन स्त्रियों ने सत्ता हासिल करने की लड़ाई में अपना बहुत ज़्यादा वक़्त ख़र्च किया, उन्होंने वे शक्तिशाली जीन भावी पीढ़ियों के लिए नहीं छोड़े।

इस परिकल्पना के मुताबिक़, जीवित बने रहने की इन भिन्न युक्तियों के परिणामस्वरूप पुरुष पहले से ही महत्त्वाकांक्षी और प्रतिस्पर्धी होने और राजनीति तथा व्यापार में उत्कृष्टता हासिल करने के गुणों से सम्पन्न हैं, जबकि स्त्रियाँ पुरुषों के रास्ते से हटकर बच्चों का पालन-पोषण करने में अपना जीवन लगा देने की ओर प्रवृत्त हुईं।

लेकिन यह दृष्टिकोण भी अनुभवजन्य साक्ष्यों पर खरा उतरता प्रतीत नहीं होता। ख़ास तौर से समस्यात्मक यह धारणा है कि बाहरी मदद पर स्त्रियों की निर्भरता ने उन्हें दूसरी स्त्रियों के बजाय पुरुषों पर निर्भर बनाया और यह कि पुरुष प्रतिस्पर्धाशीलता ने पुरुषों को सामाजिक तौर पर शक्तिशाली बनाया। ऐसी बहुत-सी प्राणी प्रजातियाँ हैं, जैसे कि हाथी और बोनोबो चिंपांज़ी, जिनके यहाँ परनिर्भर मादाओं और प्रतिस्पर्धी नरों के बीच की क्रिया-प्रतिक्रिया मातृसत्तात्मक समाज के रूप में सामने आती है। चूँकि मादाओं को बाहरी मदद की ज़रूरत होती है, वे अपनी सामाजिक दक्षताओं को विकसित करने और सहयोग तथा तुष्टीकरण से काम लेना सीखने की ओर प्रवृत्त होती हैं। वे ऐसी पूर्ण-

मादा सामाजिक मण्डलियाँ विकसित कर लेती हैं, जो हर सदस्य की उसके बच्चों के पालन-पोषण में मदद करती हैं। नर इस दौरान लड़ने और प्रतिस्पर्धा करने में लगे रहते हैं। उनकी सामाजिक दक्षताएँ और सामाजिक सम्बन्ध अल्पविकसित रह जाते हैं। बोनोबो और हाथियों के समाज सहयोगशील मादाओं की सशक्त मण्डलियों द्वारा नियन्त्रित होते हैं, जबकि आत्म-केन्द्रित और असहयोगी नरों को हाशिये पर धकेल दिया जाता है, हालाँकि बोनोबो मादाएँ नरों के मुक़ाबले औसतन कमज़ोर होती हैं, लेकिन मादाएँ ऐसे नरों को पीटने के लिए गिरोह तैयार कर लेती हैं, जो अपनी सीमाओं को लाँघते हैं।

अगर यह बोनोबो और हाथियों के यहाँ मुमकिन है, तो होमो सेपियन्स के यहाँ क्यों नहीं? सेपियन्स अपेक्षाकृत कमज़ोर प्राणी हैं, जिनका कल्याण बड़ी तादाद में परस्पर सहयोग करने की उसकी क़ाबिलियत में निहित है। अगर ऐसा है, तो हमें उम्मीद करनी चाहिए कि परनिर्भर स्त्रियाँ, भले ही वे पुरुषों पर निर्भर करती हैं, परस्पर सहयोग की अपनी उत्कृष्ट सामाजिक दक्षताओं का उपयोग आक्रामक, स्वायत्त और आत्म-केन्द्रित पुरुषों को मात देने में करेंगी।

यह कैसे होता है कि एक प्रजाति में जिसकी क़ामयाबी मुख्यतः परस्पर सहयोग पर निर्भर करती है, वहाँ कथित रूप से कमतर सहयोगी व्यक्ति (पुरुष) उन व्यक्तियों (स्त्रियों) को नियन्त्रित करते हैं, जो कथित रूप से ज़्यादा सहयोगधर्मी होते हैं? फ़िलहाल हमारे पास इसका कोई अच्छा जवाब नहीं है। हो सकता है कि आम धारणाएँ सिरे से ग़लत हों। हो सकता है होमो सेपियन्स प्रजाति के नरों की विशेषता उनकी शारीरिक शक्ति, आक्रामकता और प्रतिस्पर्धाशीलता ना होकर उनकी श्रेष्ठ सामाजिक दक्षताएँ और परस्पर सहयोग की प्रवृत्ति हो। हम नहीं जानते।

लेकिन हम जो जानते हैं, वह यह है कि पिछली सदी के दौरान लैंगिक भूमिकाएँ ज़बरदस्त क्रान्तियों के दौर से गुज़री हैं। ज़्यादा से ज़्यादा समाज आज पुरुषों और स्त्रियों को समान क़ानूनी हैसियत, राजनैतिक अधिकार और आर्थिक अवसर उपलब्ध करा रहे हैं, हालाँकि लैंगिक अन्तराल अभी भी अच्छा ख़ासा बना हुआ है, घटनाएँ असाधारण गति से घटित हो रही हैं। 1913 में जब नारी मताधिकार के लिए संघर्ष करने वाले संगठन के सदस्यों ने स्त्रियों के मताधिकार की अपनी हास्यास्पद माँग से संयुक्त राज्य अमेरिका की जनता को हतप्रभ कर दिया था, तब किसने कल्पना की थी कि 2013 में संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के पाँच न्यायाधीश, जिनमें से तीन स्त्रियाँ थीं, (चार पुरुष न्यायाधीशों की आपत्तियों को ख़ारिज़ करते हुए) समलैंगिक विवाहों को वैधानिक दर्ज़ा देने के पक्ष में निर्णय लेंगे?

ये नाटकीय परिवर्तन ही लैंगिकता के इतिहास को इतना विस्मयकारी बनाते हैं। अगर, जैसा कि आज स्पष्ट तौर पर साबित किया जा रहा है कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था जैविक तथ्यों के बजाय बेबुनियाद लोक-विश्वासों पर आधारित है, तो फिर इस व्यवस्था की सार्वभौमिकता और स्थायित्व का क्या कारण है?

भाग-III

मानव-जाति का एकीकरण

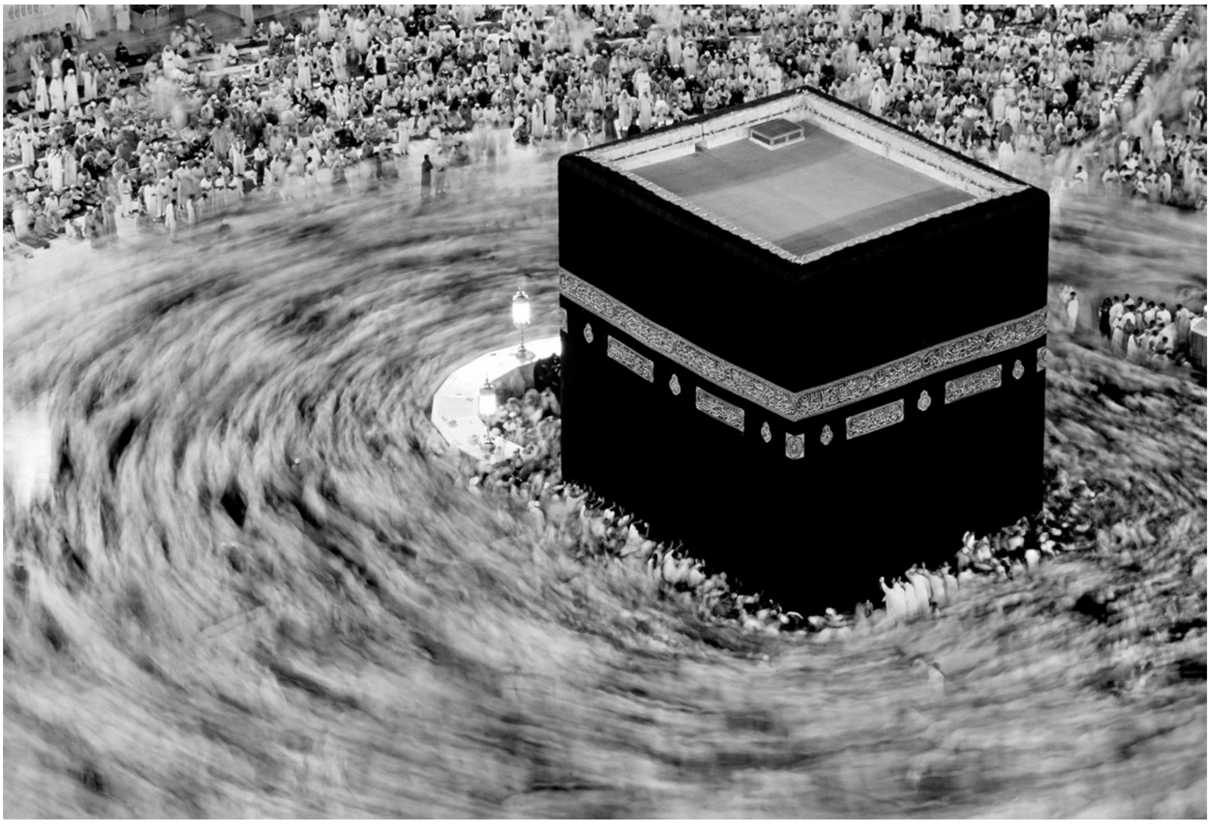

24. मक्का में काबा की परिक्रमा करते हुए हजयात्री।

9

इतिहास का तीर

कृषि क्रान्ति के बाद जहाँ मानव-समाज ज़्यादा बड़े और पेचीदा होते गए, वहीं सामाजिक व्यवस्था को क़ायम रखने वाली कल्पित संरचनाओं ने और भी व्यापक रूप ले लिया। लोक-विश्वास और क़िस्से लोगों को लगभग पैदा होने के समय से ही ख़ास ढंग से सोचने, कुछ निश्चित मापदण्डों के मुताबिक़ आचरण करने और कुछ निश्चित चीज़ों की ख़्वाहिश करने की आदत डालते थे। इस तरह उन्होंने उन कृत्रिम प्रवृत्तियों को जन्म दिया, जिन्होंने लाखों की संख्या में एक दूसरे से अपरिचित लोगों को आपस में सहयोग करने में सक्षम बनाया। कृत्रिम प्रवृत्तियों का यह तन्त्र 'संस्कृति' के नाम से जाना जाता है।

बीसवीं सदी के पहले अर्द्धांश के दौरान अध्येताओं ने सिखाया कि हर संस्कृति अपने में सम्पूर्ण और सामंजस्यपूर्ण होती है। वह एक ऐसा अपरिवर्तनीय सत्त्व धारण किए होती है, जिसने उसे हमेशा के लिए परिभाषित कर दिया होता है। हर मानव समूह की अपनी एक निजी विश्वदृष्टि और सामाजिक, वैधानिक तथा राजनैतिक व्यवस्थापन की एक पद्धति होती है, जो उतने ही निर्विघ्न तरीक़े से काम करती है, जितने निर्विघ्न ढंग से ग्रह सूर्य का चक्कर लगाते हैं। इस दृष्टिकोण के मुताबिक़, जिन संस्कृतियों को उनकी अपनी स्वाभाविक गति पर छोड़ दिया जाता है, उनमें कोई बदलाव नहीं होते। वे समान गति से समान दिशा में बढ़ती रहती हैं। कोई बाहर से प्रयुक्त बल ही उनमें परिवर्तन ला सकता है। मानव-शास्त्र के ज्ञाताओं, इतिहासकारों और राजनीतिज्ञों ने 'समोआई संस्कृति' या 'तस्मानियाई संस्कृति' का इस तरह हवाला दिया था, जैसे एक ही तरह के विश्वास, मानक और मूल्य समोआइयों और तस्मानियाइयों की अनन्त काल से पहचान बने रहे हों।

आज ज़्यादातर अध्येता इस निष्कर्ष पर पहुँचे चुके हैं कि वास्तविकता इसके विपरीत है। हर संस्कृति के अपने ख़ास विश्वास, मानक और मूल्य होते हैं, लेकिन ये निरन्तर

बदलते रहते हैं। संस्कृति अपने पर्यावरण में आए बदलावों की प्रतिक्रिया या पड़ोसी संस्कृतियों के साथ आदान-प्रदान के माध्यम से अपने को रूपान्तरित कर सकती है, लेकिन संस्कृतियाँ अपनी अन्दरूनी गतियों के कारण भी परिवर्तनों से गुज़रती हैं। पारिस्थितिक दृष्टि से एक स्थिर पर्यावरण में मौजूद पूरी तरह से अलग-थलग पड़ी कोई संस्कृति भी परिवर्तन से बच नहीं सकती। भौतिकी के नियमों से भिन्न, जो कि असंगतियों से मुक्त होते हैं, हर मानव-निर्मित व्यवस्था आन्तरिक अन्तर्विरोधों से भरी होती है। संस्कृतियाँ इन अन्तर्विरोधों से लगातार सामंजस्य बनाने की कोशिश करती रहती हैं और यह प्रक्रिया परिवर्तन को उकसाती है।

उदाहरण के लिए, मध्ययुगीन यूरोप में अभिजात्य वर्ग ईसाइयत और शौर्य दोनों ही चीज़ों में विश्वास करता था। एक आम कुलीन पुरुष सुबह चर्च जाता था और सन्तों के जीवन के बारे में पादरी की लम्बी-लम्बी तकरीरें सुना करता था। पादरी कहता था, "घमण्डों का घमण्ड, सब कुछ घमण्ड है। दौलत, काम वासना और ख्याति ख़तरनाक प्रलोभ्न होते हैं। तुम्हें इनसे ऊपर उठना चाहिए और ईसा के पदचिह्नों पर चलना चाहिए। उन्हीं की तरह विनम्र बनो, हिंसा और असंयम से बचो और अगर कोई तमाचा मारे, तो अपना दूसरा गाल भी उसकी तरफ़ कर दो"। विनम्र और उदास मनःस्थिति के साथ घर लौटकर यह कुलीन पुरुष अपनी सबसे उत्तम रेशमी पोशाक पहनकर सामन्त के गढ़ में दावत के लिए जाता था। वहाँ वाइन पानी की तरह बहती थी, लोक कवि लांसलॉट और ग्वुएनेविअॅर के गीत गाते थे और मेहमान लोग गन्दे चुटकुले और ख़ूनी युद्धों के क़िस्से सुनाते थे। सामन्त घोषणा करते, "शर्मनाक ज़िन्दगी जीने से बेहतर मर जाना है। अगर कोई व्यक्ति आपकी प्रतिष्ठा को चुनौती देता है, तो ख़ून ही उस अपमान को धो सकता है। ज़िन्दगी में इससे बेहतर क्या है कि दुश्मन आपके सामने से दुम दबाकर भाग जाएँ और उनकी ख़ूबसूरत बेटियाँ आपके पैरों पर पड़ी काँप रही हों"?

यह अन्तर्विरोध कभी भी पूरी तरह हल नहीं हुआ, लेकिन जैसे-जैसे यूरोपीय अभिजात्य वर्ग, पुरोहित वर्ग और सामान्य जन ने इस अन्तर्विरोध को सुलझाने की कोशिशें कीं, वैसे-वैसे उनकी संस्कृति बदलती गई। इसका हल खोजने की एक कोशिश ने धर्मयुद्धों (क्रूसेड्स) को जन्म दिया। धर्मयुद्ध में योद्धा (नाइट्स) एक ही झटके में अपनी सैन्य वीरता और अपनी धार्मिक भक्ति दोनों का प्रदर्शन कर सकते थे। इसी अन्तर्विरोध ने टेम्पलर्स और हॉस्पिटेलर्स जैसी सैन्य व्यवस्थाओं को जन्म दिया, जिन्होंने ईसाइयत और शौर्य दोनों के आदर्शों को और भी मज़बूती के साथ एक दूसरे से मिलाने की कोशिश की। यह अन्तर्विरोध किंग ऑर्थर और होली ग्रेल के क़िस्सों जैसे मध्ययुगीन कला और साहित्य के बहुत बड़े हिस्से के लिए भी ज़िम्मेदार था। कैमलॉट यह साबित करने की कोशिश के अलावा और क्या था कि एक अच्छा शूरवीर एक अच्छा ईसाई भी हो सकता है और ऐसा होना भी चाहिए, और अच्छे ईसाई ही सबसे अच्छे शूरवीर बन सकते हैं?

एक अन्य उदाहरण आधुनिक राजनैतिक व्यवस्था है। फ़्रांसीसी क्रान्ति के बाद से लोग हमेशा यह सोचते थे कि दुनिया धीरे-धीरे समानता और वैयक्तिक स्वतन्त्रता दोनों को बुनियादी मूल्यों की तरह देखने लगी है, लेकिन ये दोनों मूल्य एक दूसरे के विरोध में जाते हैं। समानता को तभी सुनिश्चित किया जा सकता है, जब उन लोगों की स्वतन्त्रताओं

में कटौती की जाए, जो सम्पन्न हैं। यह गारंटी कि हर व्यक्ति अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ चलने के लिए स्वतन्त्र होगा, अपरिहार्य रूप से समानता में कटौती कर देती है। 1789 के बाद के समूचे राजनैतिक इतिहास को इस अन्तर्विरोध को सुलझाने की अनेक कोशिशों के रूप में देखा जा सकता है।

जिस किसी ने भी चार्ल्स डिकन्स का लिखा एक उपन्यास पढ़ा है, वह जानता है कि उन्नीसवीं सदी के यूरोप की उदारवादी शासन-व्यवस्थाएँ व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को उस सूरत में भी प्राथमिकता देती थीं, जबकि ऐसा करने का मतलब दिवालिया ग़रीब परिवारों को जेलों में ठूँस देना और अनाथों को जेबकतरी सीखने के अलावा और कोई विकल्प ना छोड़ना होता था। जिस किसी ने भी अलेक्ज़ेंडर सोलनित्सिन का उपन्यास पढ़ा है, वह जानता है कि किस तरह साम्यवाद के समतावादी आदर्श ने ऐसी क्रूरताओं को जन्म दिया था, जो रोज़मर्रा जीवन के हर पहलू को नियन्त्रित करने की कोशिश करती थीं।

समकालीन अमेरिकी राजनीति भी इसी अन्तर्विरोध के इर्द-गिर्द चक्कर लगाती है। डेमोक्रेट एक ज़्यादा समानतापूर्ण समाज चाहते हैं, भले ही इसके वास्ते ग़रीबों, वृद्धों और अशक्तों की मदद के लिए निधि जुटाने में करों में वृद्धि क्यों ना करना पड़े, लेकिन इससे मनमाफ़िक ढंग से पैसे ख़र्च करने की व्यक्तियों की स्वतन्त्रता बाधित होती है। सरकार को मेरे ऊपर स्वास्थ्य बीमा कराने का दबाव क्यों डालना चाहिए, जबकि मैं अपने पैसे का इस्तेमाल अपने बच्चों को कॉलेज में पढ़ाने के लिए करना चाहता हूँ? दूसरी तरफ़ रिपब्लिकन व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को उच्चतम सीमा तक ले जाना चाहते हैं, भले ही इससे अमीरों और ग़रीबों की आय के बीच का अन्तराल क्यों ना बढ़ता हो और बहुत से अमेरिकी स्वास्थ्य बीमा का आर्थिक भार उठाने के अयोग्य क्यों ना रह जाएँ।

जिस तरह मध्ययुगीन संस्कृति शौर्य और ईसाइयत के बीच तालमेल नहीं बैठा पाई, उसी तरह आधुनिक दुनिया स्वतन्त्रता और समानता के बीच तालमेल नहीं बैठा पाती, लेकिन यह कोई खोट नहीं है। इस तरह के अन्तर्विरोध प्रत्येक मानव संस्कृति का अविभाज्य हिस्सा होते हैं। वस्तुतः वे संस्कृति के इंजन हैं, जो हमारी प्रजाति की सृजनात्मकता और गतिशीलता के लिए ज़िम्मेदार हैं। जिस तरह दो विवादी स्वर एक साथ बजाए जाने पर संगीत-रचना को आगे बढ़ने को बाध्य करते हैं, उसी तरह हमारे विचारों, धारणाओं और मूल्यों की विसंगति हमें सोचने, पुनर्मूल्यांकन करने और आलोचना करने को बाध्य करती है। स्थिरता नीरस मस्तिष्कों का खेल मैदान होती है।

अगर तनाव, टकराव और हल ना होने वाले धर्मसंकट हर संस्कृति का मसला हैं, तो किसी ख़ास संस्कृति से ताल्लुक रखने वाले मनुष्य के लिए परस्पर विरोधी विश्वास रखना और परस्पर विरोधी मूल्यों के हाथों विभाजित होना अनिवार्य है। यह किसी भी संस्कृति का ऐसा अनिवार्य लक्षण है कि इसका एक नाम तक मौजूद है : संज्ञानात्मक असंगति। संज्ञानात्मक असंगति को अक्सर मानव मन की विफलता के रूप में देखा जाता है, जबकि वस्तुतः यह एक अनिवार्य गुण है। अगर लोग अन्तर्विरोधी विश्वासों और मूल्यों को धारण करने में असमर्थ रहे होते, तो शायद किसी भी मानव संस्कृति को स्थापित करना और क़ायम रखना असम्भव हो गया होता।

अगर आप वाक़ई, मसलन, पास की मस्जिद में जाने वाले मुसलमानों को समझना चाहते हैं, तो उन पूर्वकालीन मूल्यों का पता लगाने की कोशिश मत कीजिए, जिनमें हर

मुसलमान गहरा विश्वास करता है। इसके बजाय मुस्लिम संस्कृति के धर्मसंकटों को जानने की कोशिश कीजिए, उन स्थलों को जानने की कोशिश कीजिए, जहाँ मूल्यों के बीच युद्ध छिड़ा है और मापदण्डों के बीच हाथापाई जारी है। यह ठीक वह जगह है, जहाँ मुसलमान दो अनिवार्यताओं के बीच लड़खड़ा रहे होते हैं। यहाँ आप उन्हें बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।

गुप्तचर उपग्रह

मानव संस्कृतियाँ निरन्तर परिवर्तनशील हैं। क्या यह परिवर्तन पूरी तरह बेतरतीब है या उसमें कुल मिलाकर कोई पैटर्न है? दूसरे शब्दों में, क्या इतिहास की कोई दिशा है?

जवाब है, हाँ। सहस्राब्दियों के दौरान छोटी, सरल संस्कृतियाँ धीरे-धीरे आपस में मिलकर बड़ी और पेचीदा सभ्यताओं में बदल जाती हैं, जिससे दुनिया में थोड़ी-सी विशाल-संस्कृतियाँ (मेगा-कल्चर्स) बनती हैं, जिनमें से हरेक बड़ी और पेचीदा है। यह निश्चय ही एक अनगढ़ क़िस्म का सामान्यीकरण है, जो स्थूल स्तर पर ही सही है। सूक्ष्म स्तर पर ऐसा प्रतीत होता है कि किसी वृहत-संस्कृति में मिल जाने वाले संस्कृतियों के प्रत्येक समूह के सन्दर्भ में एक वृहत-संस्कृति होती है, जो टुकड़ों-टुकड़ों में बँटी होती है। एशिया के विशाल भू-भाग और यूरोप के कुछ हिस्सों तक पर प्रभुत्व क़ायम करने के लिए फैला मंगोल साम्राज्य अन्ततः टुकड़ों में बँट गया। सैकड़ों लाखों लोगों का धर्मान्तरण करने वाली ईसाइयत उसी के साथ असंख्य सम्प्रदायों में टूटकर बिखर गई। लैटिन भाषा समूचे पश्चिमी और मध्य यूरोप में फैली और फिर टूट कर उन स्थानीय बोलियों में बँट गई, जो ख़ुद अन्ततः राष्ट्रीय भाषाएँ बन गईं, लेकिन यह टूटनें एकत्व की दिशा की ओर बढ़ते अनवरत प्रवाह में तात्कालिक तब्दीलियाँ हैं।

इतिहास की दिशा को समझना वास्तव में नज़रिये पर निर्भर करता है। जब हम इतिहास के प्रति विहंगम दृष्टि अपनाते हैं, जो घटनाक्रम को दशकों और शताब्दियों की पदावली में जाँचती है, तब यह कहना मुश्किल होता है कि इतिहास एकता की दिशा में बढ़ता है या विविधता की, लेकिन दीर्घकालिक प्रक्रियाओं को समझने के लिए विहंगम दृष्टि काफ़ी अदूरदर्शी होती है। बेहतर होगा अगर हम इसके बजाय अन्तरिक्षीय गुप्तचर उपग्रह (कॉस्मिक स्पाई सेटेलाइट) का नज़रिया अपनाएँ, जो शताब्दियों के बजाय सहस्राब्दियों का बारीकी से निरीक्षण करता है। इस नज़रिये से देखने पर यह बात एकदम साफ़ हो जाती है कि इतिहास अविराम एकता की ओर बढ़ रहा है। ईसाइयत का साम्प्रदायिक विभाजन और मंगोल साम्राज्य का ध्वंस महज़ इतिहास के राजमार्ग के गति-अवरोधकों पर लगने वाले दचके हैं।

इतिहास की सामान्य दिशा को समझने का सबसे अच्छा तरीक़ा मनुष्य की उन स्वतन्त्र दुनियाओं की गिनती करना है, जो किसी भी प्रदत्त क्षण में पृथ्वी पर मौजूद रही हैं। आज हम समूचे ग्रह को एक एकल इकाई के रूप में समझने के अभ्यस्त हो गए हैं, लेकिन इतिहास के अधिकांश दौर में पृथ्वी वस्तुतः मनुष्यों की अलग-थलग दुनियाओं का जमावड़ा हुआ करती थी।

तस्मानिया को लीजिए, जो दक्षिण ऑस्ट्रेलिया का एक मझोले आकार का द्वीप है।

लगभग ईसा पूर्व 10,000 साल पहले जब हिम युग के अंत ने समुद्र के स्तर को ऊँचा उठा दिया था, तब यह द्वीप ऑस्ट्रेलिया के मुख्य भू-भाग से कट गया था। कुछ हज़ार शिकारी-भोजन-खोजी इस द्वीप पर छूट गए थे और उन्नीसवीं सदी में यूरोपीय लोगों के आगमन के समय तक उनका किन्हीं भी दूसरे मनुष्यों से कोई सम्पर्क नहीं था। 12,000 सालों तक कोई भी नहीं जानता था कि तस्मानियाई वहाँ रहते थे और वे यह नहीं जानते थे कि दुनिया में किसी और का भी अस्तित्व था। उनके अपने युद्ध थे, राजनैतिक संघर्ष थे, सामाजिक हलचलें थीं और राजनैतिक घटनाएँ थीं। तब भी जहाँ तक चीन के सम्राटों या मेसोपोटामिया के शासकों का प्रश्न था, तस्मानिया उनके लिए बृहस्पति के किसी चन्द्रमा पर स्थित मुल्क़ जैसा था। तस्मानियाई अपनी ही दुनिया में रहते थे।

अमेरिका और यूरोप भी अपने ज़्यादातर इतिहासों के दौरान दो अलग दुनियाएँ थीं। 378 ईसवी में रोमन सम्राट वालेंस, एड्रियनोपल के युद्ध में गोथों के हाथ पराजित होकर मारा गया था। उसी साल तिकाल का राजा चक टोक इचाक, तियोतिआकन की सेना के हाथों पराजित होकर मारा गया। (तिकाल एक महत्त्वपूर्ण माया नगर राज्य था, जबकि तियोतिआकन उस समय का अमेरिका का सबसे बड़ा नगर था, जिसकी आबादी 250,000 थी - परिमाण में उतना ही बड़ा जितना उसका समकालीन रोम था)। रोम की पराजय और तियोतिआकन के अभ्युदय के बीच किसी तरह का कोई सम्बन्ध नहीं था। दोनों एक दूसरे के लिए इस क़दर अज्ञात थे कि तियोतिआकन के लिए रोम मंगल ग्रह पर अवस्थित होने जैसा था और रोम के लिए तियोतिआकन शुक्र पर।

पृथ्वी पर मनुष्यों की कितनी भिन्न-भिन्न दुनियाओं का सहअस्तित्व था? 10,000 ईसा पूर्व के आस-पास हमारे ग्रह पर ऐसी कई हज़ार दुनियाएँ मौजूद थीं। 2000 ईसा पूर्व तक आते-आते इनकी संख्या सैकड़ों या बहुत-से-बहुत कुछ हज़ारों में सिकुड़ गई थी। 1450 ईसवी तक इनकी संख्याएँ और भी ज़बरदस्त रूप से कम हो गईं। उस समय, यूरोपीय अन्वेषण के ठीक पहले, पृथ्वी पर तब भी अच्छी ख़ासी संख्या में तस्मानिया जैसी छोटी-छोटी दुनियाएँ मौजूद थीं, लेकिन लगभग 90 प्रतिशत मनुष्य एक ही वृहत-दुनिया में रहते थे : अफ़्रो-एशिया की दुनिया। एशिया का ज़्यादातर हिस्सा, यूरोप का ज़्यादातर हिस्सा और और अफ़्रीका का ज़्यादातर हिस्सा (जिसमें अच्छी-ख़ासी तादाद में उप-सहाराई अफ़्रीका के टुकड़े शामिल थे) महत्त्वपूर्ण स्तर पर सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक रिश्तों में आपस में जुड़ चुके थे।

दुनिया की आबादी के शेष दसवें हिस्से का ज़्यादातर भाग अच्छे ख़ासे आकार और संश्लेष वाली चार दुनियाओं में विभाजित था :

1. मेसोअमेरिकी दुनिया, जिसके दायरे में ज़्यादातर मध्य अमेरिका और उत्तरी अमेरिका के कुछ हिस्से शामिल थे।
2. एंडियाई दुनिया, जिसके दायरे में ज़्यादातर पश्चिमी-दक्षिणी अमेरिका शामिल था।
3. ऑस्ट्रेलियाई दुनिया, जिसके दायरे में ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप शामिल था।
4. ओशियानिक दुनिया, जिसके दायरे में हवाई से लेकर न्यूज़ीलैंड तक, दक्षिण-पश्चिमी प्रशान्त महासागर के ज़्यादातर द्वीप शामिल थे।

अगले 300 सालों तक अफ़्रो-एशियाई दैत्य बाक़ी सारी दुनियाओं को निगलता रहा।

इसने मेसोअमेरिकी दुनिया को 1521 में उस वक़्त लील लिया, जब स्पेनियों ने एज़्टेक साम्राज्य को जीत लिया। इसी समय, फ़र्दिनान्द मैगेलन की भूमण्डलीय समुद्री यात्रा के दौरान इसने ओशियानिक दुनिया का पहला कौर भी निगला और इसके बाद जल्दी ही इसने अपनी फ़तह को पूरा कर लिया। एंडियाई दुनिया 1532 में उस वक़्त ढह गई, जब स्पेनी विजेता ने इंका साम्राज्य को कुचल दिया। पहले यूरोपीय लोगों ने ऑस्ट्रेलियाई महाद्वीप पर 1606 में क़दम रखा और जब 1788 में अँग्रेज़ उपनिवेशीकरण की ज़ोरदार शुरुआत हुई, तो उस अक्षत दुनिया का अन्त हो गया। पन्द्रह साल बाद अँग्रेज़ों ने तस्मानिया में अपनी पहली बस्ती बसाई और इस तरह मनुष्यों की अन्तिम स्वायत्त दुनिया को अफ़्रो-एशियाई प्रभाव-क्षेत्र के अधीन कर लिया।

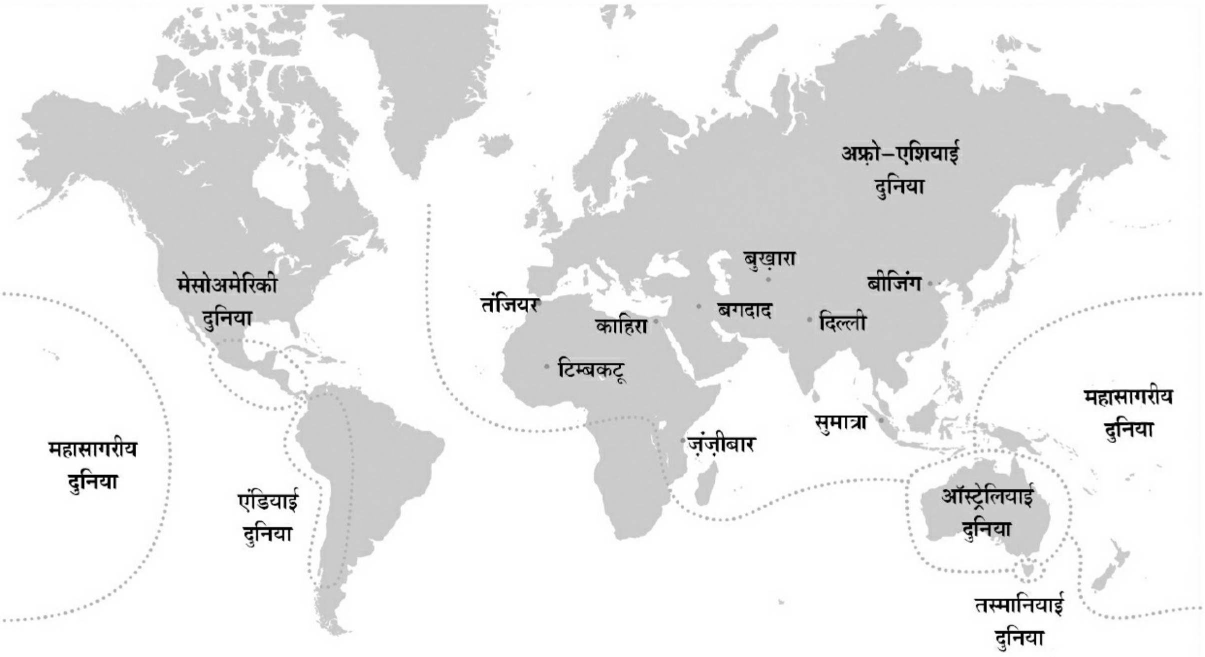

नक़्शा 3. 1450 ईसवी में पृथ्वी। अफ़्रो-एशियाई दुनिया के भीतर के नामांकित स्थल वे जगहें थीं, जहाँ की यात्राएँ चौदहवीं सदी में मुसलमान यात्री इब्न बतूता ने की थीं। तंजियर, मोरक्को के मूल निवासी इब्न बतूता ने टिम्बकटू, ज़ंज़ीबार, दक्षिणी रूस, मध्य एशिया, हिन्दुस्तान, चीन और इंडानेशिया की यात्राएँ की थीं। उसकी यात्राएँ आधुनिक युग की पूर्व-सन्ध्या पर अफ़्रो-एशिया की एकता की मिसाल पेश करती हैं।

अफ़्रो-एशियाई दैत्य ने जो निगला था, उस सबको पचाने में उसे कई सदियाँ लगीं, लेकिन यह प्रक्रिया अटल थी। आज लगभग सारे मानव एक ही तरह की भू-राजनैतिक व्यवस्था (समूचा ग्रह अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर मान्य देशों में विभाजित है), एक ही तरह की अर्थव्यवस्था (पूँजीवादी बाज़ार की शक्तियाँ भूमण्डल के सुदूरतम कोनों तक पर अपना निर्णायक प्रभाव डालती हैं), एक ही तरह की विधि व्यवस्था (मानव अधिकार और अन्तरराष्ट्रीय कानून हर स्थान पर वैध हैं) और एक ही तरह की वैज्ञानिक व्यवस्था (ईरान, इज़रायल, ऑस्ट्रेलिया और अर्जेंटीना के विशेषज्ञ परमाणुओं की संरचना या तपेदिक के इलाज़ के बारे में एक जैसे दृष्टिकोण रखते हैं) साझा करते हैं।

यह एकल भूमण्डलीय संस्कृति समरूप नहीं है। जिस तरह एक ही जैविक काया में अलग-अलग तरह के अंग और कोशिकाएँ होती हैं, उसी तरह हमारी एकल भूमण्डलीय

संस्कृति में विभिन्न क़िस्म की जीवन-शैलियाँ और न्यू यॉर्क के शेयर-दलालों से लेकर अफ़गान गड़रियों तक विभिन्न क़िस्म के लोग शामिल हैं। तब भी वे सब घनिष्ठ रूप से जुड़े हैं और असंख्य तरीक़ों से एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। वे अभी भी बहस करते हैं और लड़ते हैं, लेकिन वे बहस करते हुए एक ही तरह की अवधारणाओं का इस्तेमाल करते हैं और लड़ते हुए एक ही तरह के हथियारों का इस्तेमाल करते हैं। 'सभ्यताओं का संघर्ष' वास्तविक रूप में बहरों के बीच के संवाद जैसा है। कोई नहीं समझ पाता कि दूसरा क्या कह रहा है। आज जब ईरान और संयुक्त राज्य अमेरिका एक दूसरे के ख़िलाफ़ तलवारें भाँजते हैं, तब वे दोनों ही राष्ट्र-राज्यों, पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं, अन्तरराष्ट्रीय अधिकारों और परमाणु भौतिकी की भाषा में बात करते हैं।

हम अभी भी 'प्रामाणिक' संस्कृति की काफ़ी बात करते हैं, लेकिन अगर 'प्रामाणिक' से हमारा अभिप्राय किसी ऐसी चीज़ से है, जो स्वतन्त्र रूप से विकसित हुई है और जो बाहरी प्रभावों से मुक्त प्राचीन स्थानीय परम्पराओं से निर्मित है, तो धरती पर कोई प्रामाणिक संस्कृतियाँ नहीं बची हैं। पिछली कुछ सदियों के दौरान भूमण्डलीय प्रभावों की बाढ़ में तमाम संस्कृतियाँ पहचान के परे जाने की हद तक बदल चुकी थीं।

इस भूमण्डलीकरण का एक सबसे दिलचस्प उदाहरण है 'देशी' भोजन ('एथ्निक' क्विज़ीन)। एक इतालवी रेस्तराँ में हम टोमेटो सॉस के साथ स्पागेटी मिलने की उम्मीद करते हैं, पोलिश और आयरिश रेस्तराओं में भरपूर आलुओं के मिलने की उम्मीद करते हैं, अर्जेंटीना के रेस्तराँ में हम दर्जनों प्रकार के बीफ़स्टीक में से चयन कर सकते हैं, हिन्दुस्तानी रेस्तराँ में लगभग हर व्यंजन में लाल मिर्च पड़ी होती है और किसी भी स्विस कैफ़े की ख़ासियत होती है फेंटी हुई मलाई के ढेर तले मोटी हॉट चॉकलेट, लेकिन इनमें से कोई भी भोजन इन देशों का पैदाइशी भोजन नहीं है। टमाटर, लाल मिर्च और कोका ये सब मूलतः मैक्सिको के हैं। ये चीज़ें यूरोप और एशिया में स्पेनियों द्वारा मैक्सिको पर विजय प्राप्त करने के बाद ही पहुँचीं थीं। जूलियस सीज़र और दान्ते एलिघिएरी ने कभी अपने काँटों (फ़ोर्क्स) पर टमाटर में लिथड़ी स्पागेटी को नहीं घुमाया था (तब तो काँटों का भी आविष्कार नहीं हुआ था), विलियम टेल ने कभी चॉकलेट का स्वाद नहीं चखा था और बुद्धि ने कभी अपने खाने में मिर्च का पाउडर नहीं छिड़का था। आलू को पोलैंड और आयरलैंड पहुँचे 400 साल से ज़्यादा नहीं हुए हैं। अर्जेंटीना में 1492 में जो एकमात्र स्टीक आप हासिल कर सकते थे, वह इलामा से आया था।

हॉलीवुड की फ़िल्मों ने प्लेन्स इंडियन्स की छवि को अपने पूर्वजों के रीति-रिवाज़ों की हिफ़ाज़त के लिए यूरोपीय अग्रदूतों की गाड़ियों को साहसपूर्वक दौड़ाने वाले बहादुर घुड़सवारों के रूप में स्थापित कर दिया है, लेकिन ये अमेरिकी मूल निवासी घुड़सवार किसी प्राचीन प्रामाणिक संस्कृति के रक्षक नहीं थे। इसके बजाय वे उस बड़ी सैन्य और राजनैतिक क्रान्ति की पैदाइश थे, जिसने सत्रहवीं और अठारहवीं सदियों में पश्चिमोत्तर अमेरिका के मैदानों को आक्रान्त कर लिया था, जो कि यूरोपीय घोड़ों के आगमन का नतीज़ा था। 1492 में अमेरिका में कोई घोड़े नहीं थे। उन्नीसवीं सदी की शू और अपाची संस्कृति की कई आकर्षक विशेषताएँ हैं, लेकिन यह 'प्रामाणिक' से कहीं ज़्यादा एक आधुनिक संस्कृति थी - वैश्विक शक्तियों का परिणाम।

25. शू सरदार (1905)। 1492 के पहले ना तो शू के पास घोड़े थे और ना ही विशाल मैदानों की किन्हीं अन्य जनजातियों के पास थे।

भूमण्डलीय परिकल्पना

व्यावहारिक दृष्टि से देखें, तो भूमण्डलीय एकीकरण की प्रक्रिया का सबसे महत्त्वपूर्ण दौर पिछली कुछ शताब्दियों के दौरान आया, जब साम्राज्य विकसित हुए और व्यापार सघन हुआ। अफ़्रो-एशिया, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया और ओशियानिक द्वीपों के लोगों के बीच निरन्तर मज़बूत होते सम्बन्ध विकसित हुए। इस तरह मैक्सिको की लाल मिर्च हिन्दुस्तानी भोजन में शामिल हुई और स्पेन के गाय-बैलों ने अर्जेंटीना में चरना शुरू कर दिया, लेकिन वैचारिक दृष्टि से देखें, तो इससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण घटना ईसा पूर्व पहले सहस्राब्दी में घटित हुई, जब वैश्विक व्यवस्था के विचार ने अपनी जड़ें जमाई। इसके पहले हज़ारों सालों तक इतिहास धीरे-धीरे भूमण्डलीय एकता की दिशा में बढ़ तो रहा था, लेकिन समूची दुनिया पर शासन करने वाली वैश्विक व्यवस्था का विचार ज़्यादातर लोगों के लिए अजनबी था।

होमो सेपियन्स इस तरह विकसित हुए कि उन्होंने लोगों को 'हम' और 'वे' में विभाजित रूप में देखना शुरू कर दिया। आप जो भी रहे हों, पर आपके एकदम आस-पास का समूह 'हम' था, बाक़ी सारे लोग 'वे' थे। दरअसल, कोई भी सामाजिक प्राणी कभी भी अपनी सूमची प्रजाति के हितों से परिचालित नहीं होता। कोई चिंपांज़ी, चिंपांज़ी प्रजाति के हितों की परवाह नहीं करता, कोई भी घोंघा घांघों की भूमण्डलीय प्रजाति की ख़ातिर

अपना पंजा नहीं उठाएगा, कोई भी मुखिया शेर तमाम शेरों का राजा बनने की कोशिश नहीं करता और किसी को भी कभी मधुमक्खियों के किसी भी छत्ते के दरवाज़े पर यह नारा लिखा नहीं मिल सकता : "दुनिया की कामगार मधुमक्खियों- एक हो जाओ"!

लेकिन संज्ञानात्मक क्रान्ति के साथ ही होमो सेपियन्स इस मामले में उत्तरोत्तर अपवाद होते गए। लोगों ने उन नितान्त अजनबियों के साथ नियमित सहयोग करना शुरू कर दिया, जिन्हें वे 'भाइयों' और 'दोस्तों' के रूप में कल्पित करते थे। तब भी यह भाईचारा सार्वभौमिक नहीं था। अगली घाटी या पर्वत-शृंखला के पार कहीं आप 'वे' को महसूस कर सकते थे। जब प्रथम फ़ैरो, मीनीस ने 3000 ईसा पूर्व के आस-पास मिस्र को एकीकृत किया था, तो मिस्रवासियों के लिए यह बात स्पष्ट थी कि मिस्र की एक सीमा है और उस सीमा के परे बर्बर लोग घात लगाए बैठे हैं। ये बर्बर अजनबी, डरावने और उसी हद तक दिलचस्प थे कि उनके पास वह ज़मीन या वे प्राकृतिक संसाधन थे, जिनकी मिस्रवासियों को ज़रूरत थी। लोगों द्वारा गढ़ी गई तमाम कल्पित व्यवस्थाएँ मानव जाति के एक बड़े हिस्से को नज़रअन्दाज़ करने की ओर प्रवृत्त रहीं।

ईसा पूर्व पहली सहस्राब्दी में तीन सम्भावित वैश्विक व्यवस्थाओं का प्रादुर्भाव हुआ, जिसके पक्षधर पहली बार समूची दुनिया और समस्त मानव प्रजाति को नियमों की एक एकल व्यवस्था के अधीन शासित एक इकाई के रूप में कल्पित कर सके। हर कोई, कम से कम सम्भावित रूप से 'हम' था। अब कोई 'वे' नहीं थे। ऐसी पहली वैश्विक व्यवस्था आर्थिक थी : वित्तीय व्यवस्था। दूसरी वैश्विक व्यवस्था राजनैतिक थी : साम्राज्यवादी व्यवस्था। तीसरी वैश्विक व्यवस्था धार्मिक थी : बौद्ध, ईसाइयत और इस्लाम जैसे सार्वभौमिक धर्मों की व्यवस्था।

व्यापारी, विजेता और पैगम्बर वे पहले लोग थे, जो 'हम बनाम वे' के युग्मपरक विकासवादी विभाजन से ऊपर उठ सके और मानव-जाति की सम्भावित एकता का पूर्वानुमान कर सके। व्यापारियों के लिए पूरी दुनिया एक बाज़ार थी और सारे मनुष्य सम्भावित ग्राहक थे। उन्होंने एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था विकसित करने की कोशिश की, जो हर कहीं, हर किसी पर लागू हो सकती। विजेताओं के लिए सारी दुनिया एक एकल साम्राज्य थी और सारे मनुष्य सम्भावित प्रजा थे और पैगम्बरों के लिए सारी दुनिया में एक ही सत्य था और सारे मनुष्य सम्भावित आस्तिक थे। उन्होंने भी एक ऐसी व्यवस्था खड़ी करने की कोशिश की, जो हर कहीं हर किसी पर लागू हो सकती।

पिछली तीन सहस्राब्दियों के दौरान लोगों ने इस भूमण्डलीय स्वप्न को साकार करने के उत्तरोत्तर महत्त्वाकांक्षी उपक्रम किए। अगले तीन अध्यायों में इसी पर चर्चा होगी कि पैसे, साम्राज्यों और वैश्विक धर्मों का किस तरह प्रसार हुआ और किस तरह इन्होंने आज की एकीकृत दुनिया की बुनियाद रखी। कहानी की शुरुआत हम इतिहास के सबसे बड़े विजेता से करते हैं, असाधारण सहनशीलता और अनुकूलनशीलता से सम्पन्न और इसलिए लोगों को अत्यन्त समर्पित शिष्यों में बदल लेने की क़ाबिलियत रखने वाला विजेता। यह विजेता है पैसा। जो लोग समान देवता में विश्वास नहीं करते या समान राजा का आदेश नहीं मानते, वे भी समान पैसे का इस्तेमाल करने को तत्पर होते हैं। ओसामा बिन लादेन अमेरिकी संस्कृति, अमेरिकी धर्म और अमेरिकी राजनीति के प्रति अपनी सारी नफ़रत के बावजूद अमेरिकी डॉलर्स से बहुत प्रेम करता था। जहाँ देवता और सम्राट

नाक़ामयाब रहे, वहाँ पैसे ने किस तरह क़ामयाबी हासिल की?

10

पैसे की ख़ुशबू

1519 में एर्नान कोर्तेस और उसके विजेताओं ने उस मैक्सिको को अपने क़ब्ज़े में ले लिया, जो अब तक मनुष्यों की एक अलग-थलग पड़ी दुनिया थी। एज़्टेकों (जैसा कि वहाँ रहने वाले लोग ख़ुद को कहते थे) ने तत्काल ध्यान दिया कि इन विदेशियों ने एक ख़ास तरह की पीली धातु के प्रति असाधारण दिलचस्पी दिखाई थी। दरअसल, वे लगातार उसकी चर्चा करते लगते थे। यहाँ के मूल निवासी सोने से अपरिचित नहीं थे - वह सुन्दर था और उसे आसानी से उपयोग में लाया जा सकता था, इसलिए वे आभूषण और मूर्तियाँ बनाने में उसका इस्तेमाल किया करते थे और कभी-कभार सोने की धूल का इस्तेमाल वे विनिमय के साधन के रूप में भी करते थे, लेकिन जब कोई एज़्टेक कोई चीज़ ख़रीदना चाहता था, तो वह कोका बीन्स या कपड़े के थान के रूप में भुगतान करता था। इसलिए सोने के प्रति स्पेनियों का आकर्षण उनकी समझ से परे था। आख़िर उस धातु में ऐसी क्या ख़ास बात थी, जिसे ना तो खाया, ना पिया या ना बुना जा सकता था और जो इतनी कोमल थी कि ना ही उसका इस्तेमाल औज़ारों या हथियारों को बनाने में किया जा सकता था? जब इन मूल निवासियों ने कोर्तेस से पूछा कि स्पेनियों के मन में सोने के प्रति इतना आकर्षण क्यों है, तो विजेता ने जवाब दिया, “मुझे और मेरे साथियों को दिल की बीमारी है, जिसको सोने से ठीक किया जा सकता है”।

जिस अफ़्रो-एशियाई दुनिया से स्पेनी लोग आए थे, उस दुनिया में सोने के प्रति सनक वाक़ई एक महामारी थी। सबसे कठोर दुश्मन भी उसी अनुपयोगी पीली धातु के पीछे भागता था। मैक्सिको की फ़तह के तीन सौ साल पहले कार्तेस के पूर्वजों और उनकी सेना ने आइबेरिया और उत्तरी अफ़्रीका की मुसलमान हुकूमतों के ख़िलाफ़ रक्तरंजित धर्मयुद्ध छेड़े थे। ईसा के अनुयायियों और अल्लाह के अनुयायियों ने हज़ारों की संख्या में

एक दूसरे की हत्याएँ की थीं, खेतों और बग़ीचों को उजाड़ दिया था और ख़ुशहाल नगरों को दहकते हुए खण्डहरों में बदल दिया था - यह सब ईसा और अल्लाह की महान महिमा की ख़ातिर किया गया था।

जैसे-जैसे ईसाइयों का वर्चस्व बढ़ता गया, अपनी जीतों का प्रदर्शन उन्होंने ना सिर्फ़ मस्जिदों को ध्वस्त कर चर्चें खड़ी करके किया, बल्कि सोने और चाँदी के नए सिक्के जारी करके भी किया, जिन पर क्रॉस का चिह्न और विधर्मियों से लड़ने में मदद के लिए ईश्वर के प्रति धन्यवाद-ज्ञापन अंकित होता था। इस नई मुद्रा के साथ-साथ विजेताओं ने मिलारेस नामक एक और तरह का सिक्का भी ढाला, जिसमें किंचित अलग सन्देश अंकित था। ईसाई विजेताओं द्वारा तैयार किए गए ये वर्गाकार सिक्के धाराप्रवाह अरबी लिपि से अलंकृत थे, जो घोषणा करती थी : "अल्लाह के अलावा और कोई ख़ुदा नहीं है और मोहम्मद अल्लाह के पैग़म्बर हैं"। यहाँ तक कि मेल्ग्युइल और आग्द के कैथोलिक बिशप तक इन लोकप्रिय मुस्लिम सिक्कों की विश्वसनीय प्रतिकृतियाँ जारी करते थे और ईश्वर-भीरु ईसाई उन्हें खुशी-खुशी स्वीकार करते थे।

सहिष्णुता पहाड़ी के दूसरी तरफ़ भी फल-फूल रही थी। उत्तरी अफ़्रीका में मुसलमान व्यापारियों ने फ़्लोरेंटाइन फ़्लोरिन, वेनीशियाई डकट और निआपोलिटन गिग्लिआटो जैसे ईसाई सिक्कों का इस्तेमाल करते हुए कारोबार का संचालन किया। ईसाई काफ़िरों के ख़िलाफ़ जिहाद का ऐलान करने वाले मुसलमान हुक्मरान तक ख़ुशी-ख़ुशी उन सिक्कों की मार्फ़त महसूल हासिल करते थे, जो ईसा और उनकी वर्जिन मॅदर का स्मरण कराते थे।

यह कितने का है?

शिकारी-संग्रहकर्ताओं के पास कोई पैसा नहीं था। हर क़बीला शिकार करता था, संग्रह करता था और मांस से लेकर औषधि तक, चप्पल से लेकर टोना-टोटका तक, अपनी ज़रूरत की लगभग हर चीज़ तैयार करता था। अलग-अलग क़बीलों के सदस्य अलग-अलग कामों में माहिर हो सकते थे, लेकिन वे सौजन्य और अनुग्रह की अर्थव्यवस्था के मार्फ़त अपनी चीज़ों और सेवाओं को साझा करते थे। मुत में दिए गए मांस के एक टुकड़े के साथ प्रतिदान की उम्मीद जुड़ी होती थी - उदाहरण के लिए मुत चिकित्सकीय सहयोग की। क़बीला आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर था(सिर्फ़ थोड़ी-सी विरली चीज़ें जो स्थानीय स्तर पर उपलब्ध नहीं हो सकती थीं - जैसे कि सीपियाँ, रंग, ऑब्सीडियन आदि - उन्हें बाहरी लोगों से हासिल करना होता था। यह काम आमतौर से सरल वस्तु-विनिमय के माध्यम से किया जा सकता था : "हम आपको सुन्दर सीपियाँ देंगे और आप हमें उत्कृष्ट क़िस्म का चकमक पत्थर देंगे"।

कृषि क्रान्ति की शुरुआत के साथ इसमें कोई ख़ास बदलाव नहीं आया। ज़्यादातर लोगों ने छोटे अन्तरंग समुदायों में रहना जारी रखा। काफ़ी हद तक शिकारी-संग्रहकर्ता क़बीले की ही तरह हर गाँव स्वावलम्बी आर्थिक इकाई था, जो आपसी सौजन्य और अनुग्रह और बाहरी लोगों के साथ थोड़े-बहुत वस्तु-विनिमय की मदद से अपना काम चलाता था। एक ग्रामीण विशेष रूप से जूते बनाने में माहिर हो सकता था, दूसरा

औषधियाँ तैयार करने और चिकित्सा करने में माहिर हो सकता था, इसलिए जब ग्रामीण नंगे पैर या बीमार होते थे, तो उन्हें मालूम होता था कि कहाँ जाना चाहिए, लेकिन गाँव छोटे थे और उनकी अर्थव्यवस्थाएँ सीमित थीं, इसलिए कोई पूर्णकालिक मोची और वैद्य नहीं होता था।

नगरों और हुकूमतों के उदय और परिवहन की आधारभूत सुविधाओं में सुधार ने विशेषज्ञता के नए अवसर पैदा किए। सघन रूप से बसे नगरों ने ना सिर्फ़ पेशेवर मोचियों और डॉक्टरों, बल्कि बढ़ई, पुरोहितों और वकीलों को भी पूर्णकालिक रोज़गार मुहैया कराया। जिन गाँवों की अच्छी वाइन, जैतून का तेल या मिट्टी के बर्तन तैयार करने की ख्याति थी, उन्होंने पाया कि जो चीज़ वे तैयार करते थे, उसमें लगभग पूरी तरह विशेषज्ञता हासिल कर अपनी ज़रूरत की अन्य चीज़ों के लिए दूसरी बस्तियों के साथ उसका व्यापार करना लाभदायक होगा। यह चीज़ बहुत मायने रखती थी। जलवायु और मिट्टी में फ़र्क़ होता है, इसलिए अपने पड़ोस की घटिया वाइन क्यों पी जाए, जबकि आप ऐसी जगह से बेहतर क़िस्म की वाइन ख़रीद सकते हैं, जहाँ की मिट्टी और जलवायु बेहतर क़िस्म की अंगूरी वाइन के लिए अनुकूल बैठती है? अगर आपके आस-पास की मिट्टी मज़बूत और ख़ूबसूरत बर्तन तैयार कर सकती है, तो उन बर्तनों के बदले आप दूसरी चीज़ें ख़रीद सकते हैं। इससे भी बढ़कर बात यह कि वाइन और बर्तन बनाने वाले पूर्णकालिक कारीगर, डॉक्टर और वकील भी, सभी के हित के लिए अपनी विशेषज्ञता को और धारदार बना सकते हैं, लेकिन विशेषज्ञता ने एक समस्या पैदा की - विशेषज्ञों के बीच आप वस्तु-विनिमय की व्यवस्था कैसे करेंगे?

सौजन्य और अनुग्रह की अर्थव्यवस्था उस वक़्त काम नहीं करती, जब बड़ी तादाद में एक दूसरे से अपरिचित लोग आपस में सहयोग करने की कोशिश करते हैं। एक बहन या पड़ोसी को मुत सहायता उपलब्ध कराना एक बात है, लेकिन ऐसे परदेसियों की मदद करना बिलकुल दूसरी बात है, जो मुमकिन है कभी भी आपके उपकार का बदला नहीं चुका सकें। आप वस्तु-विनिमय का सहारा ले सकते हैं, लेकिन वस्तु-विनिमय तभी कारगर होता है, जब सीमित मात्रा में वस्तुओं का लेन-देन किया जाता है। वह एक जटिल अर्थव्यवस्था की बुनियाद नहीं हो सकता।

वस्तु-विनिमय की सीमाओं को समझने के लिए कल्पना कीजिए कि आपका एक ऐसे पहाड़ी गाँव में सेब का बाग़ान है, जहाँ समूचे प्रान्त के सबसे ख़स्ता, सबसे मीठे सेब पैदा होते हैं। आप अपने बाग़ान में इतनी तगड़ी मेहनत करते हैं कि आपके जूते फट जाते हैं। इसलिए आप अपनी खच्चर गाड़ी पर सवार होकर नदी के पार के क़स्बे के बाज़ार में जाते हैं। आपके पड़ोसी ने आपको बताया था कि बाज़ार के दक्षिणी सिरे पर एक मोची ने उसके लिए इतने मज़बूत जूते बनाकर दिए थे कि वे पाँच साल तक चले थे। आप उस मोची की दुकान पर पहुँचते हैं और अपने जूतों के बदले उसे अपने कुछ सेब देने की पेशकश करते हैं।

मोची हिचकिचाता है। उसे भुगतान के तौर पर कितने सेबों की माँग करनी चाहिए? हर रोज़ दर्जन भर ग्राहकों से उसका आमना-सामना होता है, जिनमें से कुछ सेबों के बोरे लेकर आते हैं, कुछ गेहूँ, बकरियाँ या कपड़े लिए होते हैं - सब चीज़ें अलग-अलग गुणवत्ता की होती हैं। कुछ दूसरे ऐसे भी होते हैं, जो राजा के नाम सिफ़ारिशी ख़त लिखने

या पीठ दर्द ठीक कर देने की अपनी विशेषज्ञता मुहैया कराने की पेशकश करते हैं। पिछली बार मोची ने सेबों के बदले जूतों का लेन-देन तीन महीने पहले किया था और तब उसने तीन बोरे सेबों की माँग की थी। या चार की? लेकिन उन सेबों से याद आया कि वे घाटी के खट्टे सेब थे, अच्छे पहाड़ी सेब नहीं थे। दूसरी तरफ़, उस पिछली बार वे सेब स्त्रियों के छोटे जूतों के बदले दिए गए थे। ये आदमी मर्दाना आकार के जूते बनाने को कह रहा है। फिर, हाल के हफ़्तों में क़स्बे के जानवरों में एक बीमारी फैल गई है और चमड़ा मुश्किल से मिल पा रहा है। चमड़ा पकाने वाले पहले की तुलना में चमड़े के बदले दुगने तैयारशुदा जूतों की माँग करने लगे हैं। क्या इन सब चीज़ों को भी ध्यान में रखना चाहिए?

वस्तु-विनिमय की अर्थव्यवस्था में मोची और सेब उगाने वाले किसान को हर दिन नए सिरे से दर्जनों वस्तुओं के सापेक्षिक मूल्य को समझना होगा। अगर बाज़ार में सौ अलग-अलग तरह की वस्तुओं का लेन-देन होता है, तो ख़रीदार और विक्रेता को 4,950 तरह की विनिमय-दरों को जानना ज़रूरी होगा। और अगर 1,000 अलग-अलग तरह की वस्तुओं का लेन-देन होता है, तो ख़रीदार और विक्रेता को 499, 500 तरह की विनिमय-दरों की बाज़ीगरी करनी होगी! आप यह हिसाब कैसे रख पाएँगे?

स्थिति और भी बदतर हो जाती है। अगर आप किसी तरह यह हिसाब लगा भी लें कि एक जोड़ा जूते कितने सेबों के बराबर होते हैं, तब भी वस्तु-विनिमय हमेशा मुमकिन नहीं है। आख़िरकार, व्यापार के लिए यह ज़रूरी होता है कि प्रत्येक पक्ष के लिए वह चीज़ स्वीकार हो, जो दूसरा पक्ष देने की स्थिति में है। तब क्या होगा अगर मोची को सेब पसन्द ना हों, और उस वक़्त उसकी असल ज़रूरत तलाक़ हो? ठीक है कि तब वह किसान किसी ऐसे वकील को ढूँढ़ सकता है, जिसको सेब पसन्द हों और इस तरह वह तीन तरफ़ा सौदा पक्का कर सकता है, लेकिन उस स्थिति में क्या होगा, जब उस वकील के पास पहले से ही पर्याप्त सेब हों और उसे वास्तव में अपने बाल कटवाने की ज़रूरत हो?

कुछ समाजों ने एक ऐसी केन्द्रीय वस्तु-विनिमय व्यवस्था स्थापित कर इस समस्या का हल निकालने की कोशिश की, जो विशेषज्ञ किसानों और निर्माताओं से वस्तुएँ ख़रीदती थी और फिर वस्तुओं को उन लोगों में वितरित कर देती थी, जिन्हें उनकी ज़रूरत होती थी। इस तरह का सबसे बड़ा और सबसे प्रसिद्ध प्रयोग सोवियत संघ में किया गया था और वह दर्दनाक ढंग से नाक़ामयाब रहा था। “हर कोई अपनी योग्यताओं के मुताबिक़ काम करेगा और अपनी ज़रूरत के मुताबिक़ चीज़ें प्राप्त करेगा” के निर्णय का व्यावहारिक हश्र यह हुआ कि “हर कोई जितना बन पड़ेगा, उतना कम काम करेगा और जितना ज़्यादा से ज़्यादा हथिया सकेगा उतना हासिल करेगा”। कुछ ज़्यादा संयत और ज़्यादा क़ामयाब प्रयोग दूसरे अवसरों पर किए गए, उदाहरण के लिए इंका साम्राज्य में, लेकिन ज़्यादातर समाजों ने बड़ी संख्या में विशेषज्ञों को आपस में जोड़ने का अधिक आसान तरीक़ा खोज लिया - उन्होंने पैसा विकसित कर लिया।

सीपियाँ और सिगरेटें

पैसे की रचना अनेक बार और अनेक जगहों पर हुई। इसके विकास के लिए किसी तरह

के प्रौद्योगिकीय ईजाद की ज़रूरत नहीं पड़ी - यह विशुद्ध रूप से एक दिमाग़ी क्रान्ति थी। इसके लिए एक ऐसी नई अन्तर-आत्मपरक वास्तविकता की ज़रूरत पड़ी, जिसका अस्तित्व पूरी तरह से लोगों की साझा कल्पना में था।

सिक्के और नोट पैसा नहीं हैं। पैसा वह कोई भी वस्तु है, जिसका उपयोग लोग अन्य वस्तुओं के मूल्य के व्यवस्थित निरूपण के लिए करना चाहते हैं, ताकि उसके माध्यम से वे वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय कर सकें। पैसा लोगों को एक वस्तु के बदले दूसरी वस्तु का आसानी से विनिमय करने और सम्पत्ति का सुविधाजनक ढंग से संग्रह करने के लिए क्रय-विक्रय-योग्य विभिन्न वस्तुओं (जैसे कि सेब, जूते और तलाक़) के मूल्य की फ़ुर्ती और आसानी से तुलना करने में सक्षम बनाता है। दुनिया में कई तरह के पैसे रहे हैं। इनमें सबसे जाना-माना पैसा है सिक्का, जो कि मुद्रित धातु का एक मानकीकृत टुकड़ा है, लेकिन पैसा सिक्कों के ईजाद के बहुत पहले से अस्तित्व में रहा है और संस्कृतियाँ दूसरी कई चीज़ों - जैसे कि कौड़ियों, गाय-बैलों, चमड़ा, नमक, अनाज, मनकों, कपड़ों और इकरारी रुक्कों - को मुद्रा की तरह बरतते हुए फलती-फूलती रही हैं। समूचे अफ़्रीका, दक्षिण एशिया और समुद्री महाद्वीपों में 4000 वर्षों तक पैसे के रूप में कौड़ियों का इस्तेमाल होता रहा। अँग्रेज़ी राज के दौरान युगांडा में बीसवीं सदी के शुरुआती वर्षों तक कौड़ियों में करों का भुगतान किया जा सकता था।

आधुनिक जेलों और युद्ध बन्दियों के शिविरों में पैसे के रूप में अक्सर सिगरेटों का इस्तेमाल होता रहा है। धूम्रपान ना करने वाले क़ैदी तक सिगरेटों को भुगतान के रूप में स्वीकार करने और दूसरी वस्तुओं और सुविधाओं का मूल्य सिगरेट से आँकने को तैयार होते रहे हैं। आश्वित्ज़ से जीवित बचकर लौटा एक व्यक्ति आश्वित्ज़ कैम्प में मुद्रा के रूप में सिगरेट के इस्तेमाल के बारे में बताता है, “हमारी अपनी मुद्रा हुआ करती थी, जिसके मूल्य पर कोई भी व्यक्ति सवाल नहीं उठाता था : सिगरेट। हर चीज़ की क़ीमत सिगरेट में बताई जाती थी... ‘सामान्य’ दिनों में, यानी, जब गैस चैम्बर्स के कैंडीडेट लगातार आ रहे होते थे, तब एक पाव रोटी बारह सिगरेट की होती थी, मार्जरीन के 300 ग्राम के पैकेज की क़ीमत तीस सिगरेट होती थी, एक घड़ी की क़ीमत अस्सी से 200 सिगरेट तक होती थी, एक लीटर अल्कोहल की क़ीमत 400 सिगरेट होती थी”।

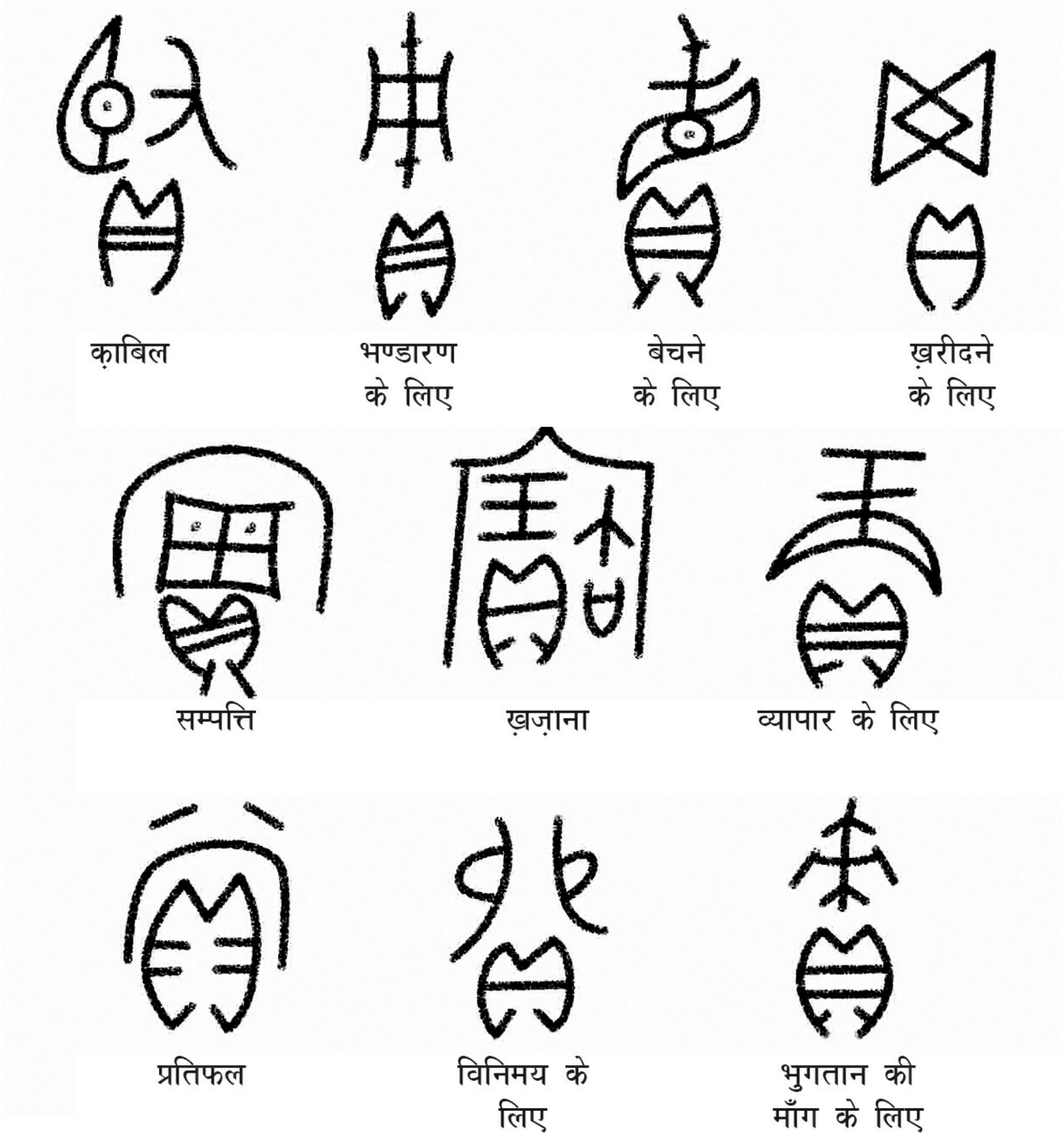
क़ाबिल
भण्डारण के लिए
बेचने के लिए
ख़रीदने के लिए
सम्पत्ति
ख़ज़ाना
व्यापार के लिए
प्रतिफल
विनिमय के लिए
भुगतान की माँग के लिए

26. प्राचीन चीन की लिपि के अनुसार कौड़ी पैसे का प्रतीक थी, जिसका आशय विनिमय और पुरस्कार से समझा जाता था।

वस्तुतः सिक्के और नोट आज भी पैसे का एक विरला रूप ही हैं। 2006 में दुनिया में कुल पैसा 4730 खरब डॉलर था, जबकि कुल सिक्के और बैंक नोट 470 खरब डॉलर के थे। कुल पैसे के 90 प्रतिशत से ज़्यादा हिस्से - हमारे लेखे में आ रहे 4000 खरब से ज़्यादा डॉलर - का अस्तित्व सिर्फ़ कम्प्यूटर सर्वरों में है। तदनुसार, ज़्यादातर कारोबारी लेन-देन, वास्तविक नक़दी के किसी भी तरह के विनिमय के बग़ैर एक कम्प्यूटर फ़ाइल से दूसरी कम्प्यूटर फ़ाइल में इलेक्ट्रॉनिक डेटा भेजते हुए किया जाता है। उदाहरण के लिए, केवल एक अपराधी ही नोटों से भरा सूटकेस थमाते हुए मकान ख़रीदता है। अगर लोग इलेक्ट्रॉनिक डेटा के मार्फ़त वस्तुओं और सुविधाओं के विनिमय के लिए तैयार हैं, तो ये डेटा चमचमाते सिक्कों और कड़क नोटों से भी बेहतर हैं - हल्के, कम भारी-भरकम और

नज़र रखने के लिहाज़ से ज़्यादा आसान।

बहुआयामी वाणिज्यिक व्यवस्थाओं के काम करने के लिए किसी ना किसी तरह का पैसा अनिवार्य है। पैसे की अर्थव्यवस्था में एक मोची के लिए विभिन्न क़िस्म के जूतों की क़ीमत भर जानना ज़रूरी है - जूतों और सेबों या बकरियों के बीच के विनिमय मूल्य को याद रखने की कोई उसे ज़रूरत नहीं है। पैसा सेबों के विशेषज्ञों को सेबों के लिए लालायित मोचियों की तलाश से भी मुक्त रखता है, क्योंकि इस अर्थव्यवस्था में हर कोई हमेशा पैसा चाहता है, जिसका मतलब है कि आप जो कुछ चाहते हैं या जिस किसी भी चीज़ की आपको ज़रूरत है, उसका आप पैसे से विनिमय कर सकते हैं। मोची आपसे पैसा प्राप्त कर ख़ुश होगा, क्योंकि उसे जिस किसी भी चीज़ की ज़रूरत है - सेब, बकरियाँ या तलाक़ - वह उस पैसे के बदले में प्राप्त कर सकता है।

इस तरह पैसा विनिमय का सार्वभौमिक माध्यम है, जो लोगों को लगभग किसी भी चीज़ को लगभग किसी भी चीज़ में बदलने में सक्षम बनाता है। शारीरिक ताक़त उस वक़्त दिमाग़ी ताक़त में बदल जाती है, जब एक सेवामुक्त सैनिक अपनी नौकरी से प्राप्त पैसों से अपने साथी की ट्यूशन की फ़ीस चुकाता है। ज़मीन उस वक़्त वफ़ादारी में बदल जाती है, जब एक नवाब अपने नौकरों की मदद के लिए अपनी सम्पत्ति बेचता है। स्वास्थ्य उस वक़्त न्याय में बदल जाता है, जब एक चिकित्सक अपनी फ़ीस के पैसों से एक वकील कर लेती है - या किसी न्यायाधीश को रिश्वत देती है। यहाँ तक कि यौन-संसर्ग भी मुक्ति में बदल सकता है, जैसा कि पन्द्रहवीं सदी की वेश्याएँ करती थीं, जब वे पैसा लेकर लोगों के साथ सोती थीं और फिर उस पैसे से कैथोलिक चर्च से अपने पापों के लिए क्षमा ख़रीदती थीं।

आदर्श क़िस्म के पैसे लोगों को ना सिर्फ़ एक चीज़ को दूसरी चीज़ में बदलने में सक्षम बनाते हैं, बल्कि सम्पत्ति का भण्डारण करने में भी सक्षम बनाते हैं। बहुत-सी मूल्यवान चीज़ों का भण्डारण नहीं किया जा सकता - जैसे कि समय या सौन्दर्य। कुछ चीज़ें ऐसी होती हैं, जिन्हें थोड़े समय के लिए ही बचाकर रखा जा सकता है, जैसे कि स्ट्राबेरीज़। दूसरी कुछ चीज़ें ज़्यादा टिकाऊ होती हैं, लेकिन उन्हें बचाकर रखने के लिए बहुत सारी जगह और महँगी सुविधाओं और देखभाल की ज़रूरत होती है। उदाहरण के लिए अनाज को सालों तक रखा जा सकता है, लेकिन इसके लिए आपको बड़े-बड़े माल गोदाम बनाने और उसको चूहों, धुन, पानी, आग और चोरों से बचाने के लिए लगातार रखवाली करने की ज़रूरत होती है। पैसा, फिर वह काग़ज़, कम्प्यूटर बिट्स या कौड़ियों जैसी जिस किसी भी शक्ल में हो, इन समस्याओं को हल कर देता है। कौड़ियाँ सड़ती नहीं हैं, चूहों को पसन्द नहीं आतीं, आग से बची रहती हैं और उन्हें आसानी से सेफ़ में ताला बन्द करके रखा जा सकता है।

धन का इस्तेमाल करने के लिए सिर्फ़ उसे संग्रह करके रखना भर काफ़ी नहीं होता। इसके लिए उसे एक जगह से दूसरी जगह भेजने की भी अक्सर ज़रूरत पड़ती है। धन के कुछ रूप ऐसे होते हैं, जैसे कि अचल सम्पत्ति, जिसे एक जगह से दूसरी जगह भेजा ही नहीं जा सकता। गेहूँ और चावल जैसी वस्तुओं का परिवहन भी मुश्किल से ही किया जा सकता है। किसी सुदूर प्रान्त के पैसा-विहीन इलाक़े में रहने वाले सम्पत्तिशाली किसान की कल्पना कीजिए। उसकी सम्पत्ति में मुख्यतः उसका मकान और धान के खेत शामिल

हैं। यह किसान अपने साथ अपना मकान और धान के खेत लेकर नहीं जा सकता। उसे इन चीज़ों का टनों चावलों से विनिमय करना होगा, लेकिन इतने सारे चावल की ढुलाई बहुत भारी और ख़र्चीली होगी। पैसा इन समस्याओं को हल कर देता है। यह किसान अपनी ज़ायदाद को बोरी भर कौड़ियों में बेच सकता है, जिन्हें वह जहाँ कहीं भी आसानी से ले जा सकता है।

क्योंकि पैसा सम्पत्ति का आसानी और सस्ते में रूपान्तरण, भण्डारण और परिवहन कर सकता है, इसने बहुआयामी वाणिज्यिक तन्त्रें और गतिशील बाज़ारों के प्रादुर्भाव में एक बुनियादी महत्त्व रखने वाला योगदान किया। पैसे के बिना वाणिज्यिक तन्त्र और बाज़ार अपने आकार, आयाम और गति में बहुत सीमित रह जाने के लिए अभिशप्त होते।

पैसा किस तरह काम करता है?

कौड़ियों और डॉलरों का मूल्य सिर्फ़ हमारी साझा कल्पना में होता है। इनका मूल्य कौड़ियों या काग़ज़ की रासायनिक बनावट या इनके रंग या आकार में अन्तर्निहित नहीं होता। दूसरे शब्दों में, पैसा कोई भौतिक वास्तविकता नहीं है - यह एक मानसिक अवधारणा है। यह पदार्थ को मानस में बदलते हुए काम करता है, लेकिन यह क़ामयाब क्यों होता है? आख़िर कोई भी व्यक्ति मुट्ठी भर कौड़ियों के बदले उपजाऊ धान का एक खेत देने को क्यों तैयार होना चाहेगा? आख़िर आप किसी को हैम्बर्गर पकड़ा देने, स्वास्थ्य बीमा का प्रचार करने या तीन घिनौने बिगड़ैल बच्चों की रखवाली करने को क्यों तैयार हैं, जबकि अपने इन परिश्रमों के बदले आपको रंगीन काग़ज़ के कुछ टुकड़े हाथ लगने वाले हैं?

लोग इस तरह के काम करने को उस वक़्त तैयार होते हैं, जब वे अपनी सामूहिक कल्पना पर भरोसा करने लगते हैं। भरोसा वह कच्चा माल है, जिससे तमाम तरह के सिक्के ढलते हैं। जब एक सम्पन्न किसान बोरे भर कौड़ियों के बदले अपना सारा सामान बेचकर दूसरे प्रान्त की यात्रा पर चला गया था, तो उसने भरोसा किया था कि अपने गन्तव्य पर पहुँचने पर वहाँ के लोग उसको उन कौड़ियों के बदले चावल, मकान और खेत बेचने को तैयार होंगे। पैसा इसी रूप में एक आपसी भरोसे की प्रणाली है, और आपसी भरोसे की कैसी भी प्रणाली नहीं है : पैसा आपसी भरोसे की अब तक ईजाद की गई सर्वाधिक सार्वभौमिक और सर्वाधिक कारगर प्रणाली है।

इस भरोसे की रचना राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों के एक पेचीदा और दीर्घकालिक ताने-बाने ने की थी। आख़िर मैं कौड़ियों या सोने के सिक्कों या डॉलरों में विश्वास क्यों करता हूँ? क्योंकि मेरे पड़ोसी उनमें विश्वास करते हैं। और मेरे पड़ोसी उनमें इसलिए विश्वास करते हैं क्योंकि हमारा राजा उनमें विश्वास करता है और कर के रूप में उनकी माँग करता है। एक डॉलर लीजिए और उसको ग़ौर से देखिए। आप पाएँगे कि वह महज़ एक रंगीन काग़ज़ का टुकड़ा है, जिसके एक तरफ़ संयुक्त राज्य अमेरिका के सेक्रेटरी ऑफ़ ट्रैज़री के दस्तख़त हैं और दूसरी तरफ़ यह नारा दर्ज़ है कि ‘इन गॉड वी ट्रस्ट’ (‘हम ईश्वर में भरोसा रखते हैं’)। हम भुगतान के रूप में इस डॉलर को स्वीकार कर

लेते हैं क्योंकि हम ईश्वर और संयुक्त राज्य अमेरिका के सेक्रेटरी ऑफ़ ट्रैज़री में भरोसा रखते हैं। भरोसे की यह निर्णायक भूमिका इस बात को स्पष्ट करती है कि क्यों हमारी वित्तीय व्यवस्थाएँ हमारी राजनैतिक, सामाजिक और वैचारिक व्यवस्थाओं के साथ सख़्ती से बँधी हैं, क्यों शेयर बाज़ार का उठना या गिरना इस बात पर निर्भर हो सकता है कि उस ख़ास सुबह व्यापारी कैसा महसूस कर रहे हैं।

शुरुआत में जब पैसे के प्रथम रूपों की रचना हुई थी, तो लोगों के मन में इस तरह भरोसा नहीं था, इसलिए उन चीज़ों को ‘पैसे’ के रूप में परिभाषित करने की ज़रूरत थी, जिनका अपना स्वाभाविक मूल्य था। इतिहास का पहला ज्ञात पैसा - सुमेरियाई जौ पैसा - इसका एक अच्छा उदाहरण है। सुमेर में इसका आविर्भाव 3000 ईसा पूर्व के आस-पास हुआ था, ठीक उसी समय और स्थान और ठीक उन्हीं परिस्थितियों के अधीन, जिनमें लेखन का आविर्भाव हुआ था। जिस तरह सघन होती प्रशासनिक गतिविधियों की ज़रूरतों के जवाब में लेखन विकसित हुआ था, उसी तरह जौ पैसा सघन होती आर्थिक गतिविधियों की ज़रूरतों के जवाब में विकसित हुआ था।

जौ पैसा सीधे-सीधे जौ ही था - तमाम दूसरी चीज़ों और सेवाओं का मूल्य आँकने तथा उनका विनिमय करने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली जौ की एक निर्धारित मात्र। इसमें सबसे आम पैमाना था सिला, जो मोटे तौर पर एक लीटर के बराबर होता था। एक सिला जौ के बराबर के मानक कटोरे बड़ी तादाद में बनाए जाते थे, जिससे जब कभी लोगों को कोई भी चीज़ बेचने या ख़रीदने की ज़रूरत होती थी, तो उन्हें जौ की ज़रूरी मात्रा को मापना आसान होता था। तनख़्वाहें भी जौ के सिलास के रूप में निर्धारित और प्रदान की जाती थीं। एक पुरुष मज़दूर महीने में साठ सिला कमाता था, स्त्री मज़दूर तीस सिला कमाती थी। एक फ़ोरमैन की आय 1,200 से 5,000 सिला के बीच हो सकती थी। एक निहायत ही पेटू फ़ोरमैन भी महीने भर में 5,000 लीटर जौ नहीं खा सकता था, लेकिन खाने से बचे हुए सिलाओं का उपयोग वह तमाम दूसरी चीज़ें - तेल, बकरियाँ, ग़ुलाम, और खाने की दूसरी चीज़ें - ख़रीदने में कर सकता था।

बावजूद इसके कि जौ का अपना अन्तर्निहित स्वाभाविक मूल्य था, लोगों को इस बात के लिए राज़ी करना आसान नहीं होता था कि वे उसे महज़ दूसरी वस्तुओं जैसी एक और वस्तु की तरह बरतने के बजाय पैसे की तरह बरतें। ऐसा क्यों था? यह समझने के लिए ज़रा सोचिए कि तब क्या होता, अगर आप एक बोरा जौ लेकर स्थानीय बाज़ार में जाते और एक कमीज़ या पीत्ज़ा ख़रीदने की कोशिश करते। दुकानदार शायद आपसे किसी जमानत की माँग करते। तब भी, जौ में प्रथम पैसे सिक्के के तौर पर भरोसा क़ायम करना आसान था, क्योंकि जौ का एक अन्तर्निहित जैविक मूल्य है। मनुष्य उसे खा सकते हैं। दूसरी तरफ़, जौ का भण्डारण और परिवहन करना मुश्किल काम था। पैसे के इतिहास में निर्णायक मोड़ तब आया, जब लोगों ने उस पैसे पर विश्वास हासिल किया, जिसमें अन्तर्निहित मूल्य का अभाव था, लेकिन जिसे सहेज कर रखना और एक जगह से दूसरी जगह ले जाना आसान था। इस तरह का पैसा ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दी के मध्य में प्राचीन मेसोपोटामिया में सामने आया। यह पैसा था चाँदी का शेकल।

चाँदी का शेकल सिक्का नहीं था, बल्कि 8.33 ग्राम चाँदी थी। जब हम्मूराबी संहिता ने यह घोषणा की कि किसी ग़ुलाम औरत की हत्या करने वाले श्रेष्ठ जन को उस ग़ुलाम

के मालिक के लिए चाँदी के बीस शेकल का भुगतान करना होगा, तो इसका मतलब था कि उसे 166 ग्राम चाँदी का भुगतान करना था, ना कि बीस सिक्कों का। ओल्ड टेस्टामेंट की ज़्यादातर पैसे सम्बन्धी पदावली का प्रयोग सिक्कों के बजाय चाँदी के सन्दर्भ में किया गया है। जोसेफ़ के भाइयों ने उसे इश्मिलाइट्स के लिए बीस चाँदी के शेकलों में, बल्कि 166 ग्राम चाँदी में बेचा था (ग़ुलाम औरत जितनी ही क़ीमत - आख़िर वह नौजवान था)।

जौ सिला से भिन्न, चाँदी के शेकल का अपने आप में कोई अन्तर्निहित मूल्य नहीं था। आप चाँदी को खा या पी नहीं सकते या उससे अपना तन नहीं ढँक सकते और वह इतनी मुलायम होती है कि उससे उपयोगी औज़ार भी नहीं बनाए जा सकते - चाँदी से बने हल के फलक या तलवारें अल्यूमीनियम फ़ॉइल से बने हल के फलकों या तलवारों जितनी ही तेजी से लचक जाएँगे। चाँदी या सोने का इस्तेमाल जब किया जाता है, तो आभूषण, मुकुट या अन्य प्रतिष्ठा के प्रतीकों को निर्मित करने के लिए किया जाता है - विलासिता की ऐसी वस्तुएँ, जिन्हें किसी संस्कृति-विशेष के सदस्य उच्च सामाजिक हैसियत से जोड़कर देखते हैं। उनका मूल्य पूरी तरह से सांस्कृतिक है।

क़ीमती धातुओं के निर्धारित वज़न ने अन्ततः सिक्कों को जन्म दिया। इतिहास के पहले सिक्के लगभग 640 ईसा पूर्व में पश्चिम अनातोलिया में लीडिया के राजा अलियाटीस द्वारा ईजाद किए गए थे। इन सिक्कों का सोने या चाँदी का एक मानक वज़न हुआ करता था और इन पर एक पहचान-चिह्न मुद्रित होता था। यह चिह्न दो चीज़ों को प्रमाणित करता था। पहली, यह इस बात को दर्शाता था कि सिक्के में मूल्यवान धातु की कितनी मात्रा समाहित है। दूसरी, यह उस अधिकारी की शिनाख़्त करता था, जिसने वह सिक्का ज़ारी किया होता था और जो उसमें निहित मूल्य की गारंटी देता था। आज इस्तेमाल में आने वाले लगभग सारे सिक्के इन्हीं लीडियाई सिक्कों के वंशज हैं।

सिक्के, धातु की बेनिशान सिल्लियों से दो तरह से बेहतर थे। पहला यह कि बेनिशान सिल्लियों को हर लेन-देन के वक़्त तौलना ज़रूरी होता था। दूसरा यह कि सिल्लियों का वज़न कर लेना भर काफ़ी नहीं है। मोची को यह कैसे पता चलेगा कि चाँदी की जो सिल्ली मैं अपने जूतों के बदले ले रहा हूँ, वह असली चाँदी की बनी है या राँगे की बनी है, जिस पर चाँदी का पतला लेप चढ़ा दिया गया है? सिक्के इन समस्याओं को हल करने में मदद करते हैं। उन पर अंकित चिह्न उनके ठीक-ठीक मूल्य को प्रमाणित करता है, जिससे मोची को अपने कैश रजिस्टर के साथ तराज़ू रखने की ज़रूरत नहीं होती। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सिक्के पर अंकित चिह्न किसी अधिकृत राजनैतिक व्यक्ति का हस्ताक्षर होता है, जो सिक्के के मूल्य की गारंटी देता है।

चिह्न के रूप और आकार समूचे इतिहास के दौरान उल्लेखनीय रूप से बदलते रहे, लेकिन उनका सन्देश हमेशा एक जैसा होता था : "मैं, अमुक राजा, व्यक्तिगत रूप से वचन देता हूँ कि धातु की इस सिल्ली में ठीक पाँच ग्राम सोना है। अगर किसी ने इसकी नक़ल में जाली सिक्का बनाने का दुस्साहस किया, तो इसका मतलब होगा कि वह ख़ुद मेरे दस्तख़त की जालसाज़ी कर रहा है, जो कि मेरी प्रतिष्ठा पर धब्बा लगाना होगा। मैं ऐसे गुनाह के लिए कड़ी से कड़ी सज़ा दूँगा"। यही वजह है कि पैसे की जालसाज़ी को

हमेशा धोखाधड़ी के दूसरे कृत्यों से कहीं ज़्यादा गम्भीर अपराध की तरह देखा जाता रहा है। पैसे की जालसाज़ी सिर्फ़ घोखेबाज़ी नहीं है - यह सम्प्रभुता का उल्लंघन है, सत्ता, विशेषाधिकार और व्यक्तिगत रूप से राजा के ख़िलाफ़ भितरघात का कृत्य है। क़ानूनी शब्द है देशद्रोह और आमतौर से इसकी सज़ा यातना और मौत होती थी। चूँकि लोग राजा की सत्ता और सत्यनिष्ठा में भरोसा करते थे, इसलिए वे उसके सिक्कों में भी भरोसा करते थे। नितान्त अजनबी लोग भी रोमन डिनारियस सिक्के के मूल्य पर सहज ही सहमत हो सकते थे, क्योंकि वे उस रोमन सम्राट की सत्ता और सत्यनिष्ठता में भरोसा करते थे, जिसके नाम और तसवीर से वह सिक्का अलंकृत था।

27. ईसा पूर्व सातवीं सदी के लीडिया के इतिहास के प्राचीनतम सिक्कों में से एक।

बदले में, सम्राट की सत्ता डिनारियस पर टिकी थी। ज़रा सोचिए कि इन सिक्कों के बिना रोमन साम्राज्य को क़ायम रखना कितना मुश्किल होता - अगर सम्राट को जौ और गेहूँ की शक्ल में कर वसूल करने पड़ते और वेतन बाँटने पड़ते। जौ की शक्ल में सीरिया से कर इकट्ठे करना, फिर उस सारी निधि को रोम के केन्द्रीय ख़ज़ाने तक ढोकर ले जाना और फिर उसे ब्रिटेन की फ़ौज को वेतन बाँटने के लिए एक बार फिर से ढोकर ब्रिटेन तक ले जाना असम्भव होता। उतना ही मुश्किल साम्राज्य की व्यवस्था को संचालित करना तब होता, अगर स्वयं रोम के निवासी तो उन सोने के सिक्कों में विश्वास करते होते, लेकिन गॉली, ग्रीक, मिस्री और सीरियाई इस विश्वास का तिरस्कार करते हुए कौड़ियों, हाथी दाँत के मनकों या कपड़े के थानों में भरोसा करते होते।

स्वर्ण का महामन्त्र (गॉस्पल)

रोम के सिक्कों में भरोसा इतना ज़बरदस्त था कि साम्राज्य की सरहदों के पार भी लोग खुशी-खुशी डिनारियस में भुगतान लेने को तैयार होते थे। ईसा बाद की पहली सदी में रोमन सिक्के हिन्दुस्तान के बाज़ारों में लेन-देन का स्वीकृत माध्यम थे, इसके बावजूद कि निकटतम रोमन फ़ौज हज़ारों किलोमीटर दूर थी। डिनारियस और सम्राट की छवि में हिन्दुस्तानियों का भरोसा इतना तगड़ा था कि जब वहाँ के स्थानीय शासकों ने अपने ख़ुद

के सिक्के ढाले, तो वे रोमन सम्राट की तसवीर समेत दीनार की बहुत क़रीबी नक़ल हुआ करते थे। 'डिनारियस' नाम सिक्कों के लिए जातिवाचक संज्ञा बन गया था। मुस्लिम ख़लीफ़ाओं ने इस नाम का अरबीकरण करते हुए 'दीनार' जारी किए। दीनार आज भी जॉर्डन, इराक़, सर्बिया, मैसेडोनिया, ट्यूनीशिया और अनेक दूसरे देशों में मुद्रा के लिए प्रयुक्त होने वाला अधिकृत नाम है।

जिस वक़्त लीडियाई शैली के सिक्के भूमध्यसागर से लेकर हिन्द महासागर तक फैल रहे थे, उसी वक़्त चीन ने एक हल्की-सी अलग तरह की मुद्रा-प्रणाली विकसित की, जो काँसे के सिक्कों और चाँदी तथा सोने की बेनिशान सिल्लियों पर आधारित थी। तब भी, इन दोनों मुद्रा-प्रणालियों में इतनी पर्याप्त समानता थी (ख़ास तौर से सोने और चाँदी पर भरोसे के मामले में) कि चीनी क्षेत्र और लीडियाई क्षेत्र के बीच घनिष्ठ मौद्रिक और वाणिज्यिक सम्बन्ध विकसित हो गए थे। मुसलमान और यूरोपीय व्यापारियों और विजेताओं ने लीडियाई प्रणाली और सोने के महामन्त्र को धरती के सुदूर कोनों तक फैलाया। आधुनिक युग के परवर्ती दौर तक आते-आते सारी दुनिया एक एकल मौद्रिक क्षेत्र में बदल चुकी थी, जो पहले तो सोने और चाँदी पर भरोसा करती रही, और बाद में ब्रिटिश पाउण्ड और अमेरिकी डॉलर जैसी कुछ विश्वसनीय मुद्राओं पर।

एकल अन्तरराष्ट्रीय और अन्तर-सांस्कृतिक मुद्रा-क्षेत्र ने अफ़्रो-एशिया और अन्ततः समूचे भूमण्डल के एकल आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र के रूप में एकीकरण की बुनियाद रखी। लोगों ने एक दूसरे के लिए अपरिचित ज़ुबानों में बात करना, अलग-अलग विधानों का पालन करना और अलग-अलग देवताओं पर आस्था रखना जारी रखा, लेकिन ये सभी लोग सोने और चाँदी तथा सोने और चाँदी के सिक्कों पर विश्वास करते थे। इस साझा विश्वास के बिना भूमण्डलीय व्यापार तन्त्रें का अस्तित्व वस्तुतः असम्भव होता। सोलहवीं सदी के विजेताओं को अमेरिका में जो चाँदी और सोना मिला था, उससे यूरोपीय व्यापारी पूर्वी एशिया से रेशम, चीनी मिट्टी के बर्तन और मसाले ख़रीदने और इस तरह आर्थिक विकास के चक्र को यूरोप और पूर्वी एशिया दोनों जगहों पर गतिशील करने में सक्षम हुए। मैक्सिको की खदानों से निकाले गए अधिकांश सोने और चाँदी ने यूरोपीय हाथों से फ़िसलकर चीनी रेशम और पोर्सीलीन (चीनी मिट्टी के बर्तन) निर्माताओं के बटुओं में अपना सम्मानजनक घर बनाया। क्या होता वैश्विक अर्थव्यवस्था का अगर चीनियों को भी वही 'दिल की बीमारी' ना होती, जिससे कोर्तेस और उसके साथी त्रस्त थे - और उन्होंने भुगतान के रूप में सोना और चाँदी लेने से मना कर दिया होता?

तब भी, क्या वजह थी कि चीनी, हिन्दुस्तानी, मुसलमान और स्पेनवासी - जो उन अलग-अलग संस्कृतियों से ताल्लुक रखते थे, जो किसी भी मामले में ज़्यादातर एकमत नहीं थीं - सोने में अपने विश्वास को साझा करते थे? ऐसा क्यों नहीं हुआ कि स्पेनवासी सोने में विश्वास करते, मुसलमान जौ में विश्वास करते, हिन्दुस्तानी कौड़ियों में विश्वास करते और चीनी रेशम के थानों में विश्वास करते? अर्थशास्त्रियों के पास इसका एक तैयारशुदा जवाब है। जैसे ही एक बार व्यापार दो इलाक़ों को आपस में जोड़ देता है, वैसे ही माँग और पूर्ति की शक्तियाँ परिवहनीय वस्तुओं की क़ीमतों को समान स्तर पर लाने की ओर प्रवृत्त होती हैं। ऐसा क्यों होता है, इसे समझने के लिए एक कल्पित मामले पर विचार करें। मान लीजिए कि जब हिन्दुस्तान और भूमध्यसागरीय लोगों के बीच नियमित

कारोबार शुरू हुआ, तब हिन्दुस्तानी लोगों की सोने में कोई दिलचस्पी नहीं थी, इसलिए वह उनके लिए लगभग निरर्थक था, लेकिन भूमध्यसागरीय लोगों के लिए सोना एक अत्यन्त वांछित प्रतिष्ठा का प्रतीक था, इसलिए उन लोगों के लिए उसका बहुत ज़्यादा मूल्य था। तब क्या हुआ होता?

हिन्दुस्तान और भूमध्यसागरीय इलाक़े के बीच यात्रा करने वाले सौदागर सोने के मूल्य के इस फ़र्क़ को लक्ष्य करते। मुनाफ़ा कमाने की दृष्टि से वे हिन्दुस्तान से सस्ते में सोना ख़रीदते और भूमध्यसागरीय इलाक़ों में उसे ऊँची क़ीमत पर बेचते। नतीज़तन, हिन्दुस्तान में सोने की माँग आसमान छूने लगती, उसी तरह उसका मूल्य भी। इसी के साथ भूमध्यसागरीय इलाक़े सोने की भरमार को महसूस करने लगते, जिससे उसका मूल्य गिर जाता। थोड़े-से समय के भीतर ही हिन्दुस्तान और भूमध्यसागरीय इलाक़ों में सोने का मूल्य बिलकुल एक समान हो जाता। भूमध्यसागरीय लोगों का सोने में विश्वास मात्र हिन्दुस्तानियों में भी उसके प्रति विश्वास जगा देता। भले ही सोना अभी भी हिन्दुस्तानियों के लिए किसी ख़ास उपयोग का ना होता, तब भी उसके प्रति भूमध्यसागरीय लोगों की चाह इसके लिए पर्याप्त होती कि हिन्दुस्तानी भी उसे मूल्यवान मानने को बाध्य हो जाते।

इसी तरह, अगर कोई दूसरा व्यक्ति कौड़ियों, डॉलर या इलेक्ट्रॉनिक डेटा में विश्वास करता है, तो यह तथ्य इन चीज़ों में हमारे विश्वास को मज़बूत बनाने के लिए काफ़ी है, भले ही वह व्यक्ति अन्यथा हमारी नफ़रत या मज़ाक़ का पात्र ही क्यों ना हो। ईसाई और मुसलमान जो धार्मिक विश्वासों को लेकर एकमत नहीं हो सकते, वे भी मुद्रा सम्बन्धी विश्वास के मामले में एकमत हो सकते हैं, क्योंकि जहाँ धर्म हमसे किसी चीज़ में आस्था रखने का आग्रह करता है, वहीं पैसा हमसे इस बात पर विश्वास करने को कहता है कि दूसरे लोग किसी चीज़ में विश्वास करते हैं।

हज़ारों सालों तक दार्शनिक, चिन्तक और पैग़म्बर पैसे पर कीचड़ उछालते रहे हैं और उसे सारे पापों की जड़ बताते रहे हैं। जो भी हो, पैसा मानवीय सहिष्णुता की पराकाष्ठा भी है। भाषा, सरकारी क़ानूनों, सांस्कृतिक संहिताओं, धार्मिक आस्थाओं और सामाजिक आचरणों के मुक़ाबले पैसा कहीं ज़्यादा उदार है। पैसा मनुष्य द्वारा रची गई भरोसे की ऐसी एकमात्र व्यवस्था है, जो लगभग कैसे भी सांस्कृतिक अन्तराल को पाट सकती है और जो धर्म, लिंग, नस्ल, उम्र या यौनपरक मनोवृत्ति के आधार पर पक्षपात नहीं करती। यह पैसे की ही बदौलत है कि ऐसे लोग जो एक दूसरे को नहीं जानते और एक दूसरे पर भरोसा नहीं करते, वे भी कारगर ढंग से परस्पर सहयोग कर सकते हैं।

पैसे की क़ीमत

पैसा दो सार्वभौमिक सिद्धान्तों पर आधारित है :

क. सार्वभौमिक परिवर्तनीयता : पैसे को एक कीमियागर के रूप में बरतते हुए उसकी मदद से आप ज़मीन को वफ़ादारी, न्याय को स्वास्थ्य और हिंसा को ज्ञान में बदल सकते हैं।

ख. सार्वभौमिक भरोसा : पैसे को एक मध्यस्थ के रूप में बरतते हुए उसकी मदद

से कोई भी दो लोग किसी भी मुहिम में आपस में सहयोग कर सकते हैं।

इन सिद्धान्तों ने एक दूसरे से अपरिचित लाखों लोगों को व्यापार और उद्योग में कारगर ढंग से परस्पर सहयोग करने में सक्षम बनाया है, लेकिन ऊपरी तौर पर सुहावने लगते इन सिद्धान्तों का एक अँधेरा पक्ष भी है। जब हर चीज़ परिवर्तनीय है और भरोसा साधारण सिक्कों और कौड़ियों पर निर्भर करता है, तो यह स्थानीय परम्पराओं, आत्मीय रिश्तों और मानव मूल्यों का क्षरण कर उनकी जगह आपूर्ति और माँग के भावशून्य नियमों को प्रतिष्ठित कर देता है।

मानव समुदाय और परिवार हमेशा से सम्मान, वफ़ादारी, नैतिकता और प्रेम जैसी 'अनमोल' चीज़ों पर आधारित रहे हैं। ये चीज़ें बाज़ार के अधिकार-क्षेत्र के बाहर की हैं और उन्हें पैसे के बदले में ख़रीदा या बेचा नहीं जाना चाहिए। कुछ काम ऐसे हैं, जिनके लिए भले ही बाज़ार अच्छे दामों की पेशकश करता हो, लेकिन वे किए नहीं जाने चाहिए। अभिभावकों को अपने बच्चों को ग़ुलामी करने के लिए नहीं बेचना चाहिए, एक धर्मपरायण ईसाई को महापाप नहीं करना चाहिए, एक वफ़ादार वज़ीर को अपने राजा के साथ विश्वासघात नहीं करना चाहिए और पूर्वजों के ज़माने की क़बीलाई ज़मीन को पराये लोगों के हाथ नहीं बेचना चाहिए।

पैसे ने हमेशा इन मर्यादाओं का उल्लंघन करने की कोशिश की है, उसी तरह जैसे बाँध की दरारों से पानी रिसता है। अभिभावक अपने कुछ बच्चों का पेट भरने की ख़ातिर अपने कुछ बच्चों को ग़ुलामी के लिए बेचने के स्तर तक गिरते रहे हैं। धर्मपरायण ईसाइयों ने हत्याएँ, चोरियाँ और बेईमानियाँ की हैं - और इन कुकृत्यों से कमाए गए धन का चर्च को भुगतान कर क्षमा प्राप्त की है। महत्त्वाकांक्षी वज़ीर सबसे ऊँची बोली लगाने वाले को अपनी वफ़ादारी नीलाम करते रहे हैं और अपने अनुयायियों की वफ़ादारी नक़द भुगतान कर ख़रीदते रहे हैं। भूमण्डलीय अर्थव्यवस्था में प्रवेश का टिकट ख़रीदने की ख़ातिर क़बीलाई ज़मीनों को दुनिया के दूसरे हिस्से में रहने वाले विदेशियों को बेचा जाता रहा है।

पैसे का एक इससे भी ज़्यादा अँधेरा पक्ष है क्योंकि भले ही पैसा अजनबियों के बीच सार्वभौमिक भरोसा क़ायम करता है, लेकिन इस भरोसे का निवेश मनुष्यों, समुदायों या पवित्र मूल्यों में नहीं किया जाता, बल्कि स्वयं पैसे और उसको सहारा देने वाली अवैयक्तिक व्यवस्था में किया जाता है। हम अजनबी पर भरोसा नहीं करते, या अपने निकट पड़ोसी पर - हम उन सिक्कों पर भरोसा करते हैं, जो उनके हाथ में होते हैं। जैसे-जैसे पैसा समुदाय, धर्म और राज्य के अवरोधों को धराशायी करता जा रहा है, समूची दुनिया एक विशालकाय और किसी हद तक हृदयहीन बाज़ार में बदल जाने के ख़तरे में है।

इसलिए मानव जाति का आर्थिक इतिहास एक तनी हुई रस्सी पर किया गया नाच है। लोग अजनबियों के साथ सहकार को आसान बनाने के लिए पैसे पर भरोसा करते हैं, लेकिन उन्हें भय बना रहता है कि यह मानव मूल्यों और आत्मीय सम्बन्धों को विकृत कर देगा। एक तरफ़ लोग उन साम्प्रदायिक अवरोधों को ख़ुशी-ख़ुशी तोड़ते हैं, जिसने पैसे और वाणिज्य के प्रवाह को इतने लम्बे समय से रोके रखा है, वहीं दूसरी तरफ़ वे समाज, धर्म और पर्यावरण को बाज़ार की ताक़तों की ग़ुलामी से बचाने के लिए नए अवरोध

तैयार करते हैं।

यह आज एक आम विश्वास है कि बाज़ार हमेशा भारी पड़ता है। राजाओं, पुरोहितों और समुदायों द्वारा खड़े किए गए अवरोध पैसे के ज्वार को रोक पाने में समर्थ नहीं हैं। यह बचकाना सोच है। क्रूर योद्धा, धार्मिक कट्टरपन्थी और चिन्तित नागरिक स्वार्थी सौदागरों को लगातार पीटते रहे हैं, और उन्होंने अर्थव्यवस्था को नया आकार भी दिया है। इसलिए मानव-जाति के एकीकरण को विशुद्ध आर्थिक प्रक्रिया की तरह देखना असम्भव है। आज के भूमण्डलीय ग्राम को रचने में हज़ारों अलग-थलग संस्कृतियाँ समय के लम्बे अन्तराल में किस तरह संगठित हुई हैं, इसे समझने के लिए हमें सोने और चाँदी की भूमिका को ध्यान में रखना ज़रूरी है, लेकिन हम इस्पात (स्टील) की उतनी ही निर्णायक भूमिका को नहीं नकार सकते।

11

साम्राज्यवादी आकांक्षाएँ

प्राचीन रोमनों को पराजित होने का अभ्यास था। इतिहास के ज़्यादातर महान साम्राज्यों के शासकों की ही तरह वे एक के बाद एक लड़ाइयाँ हार सकते थे, तब भी युद्ध में जीतते थे। जो साम्राज्य आघात को झेलकर खड़ा नहीं रह सकता, वह वास्तव में साम्राज्य नहीं है। तब भी रोमनों तक को उस ख़बर को पचाना बहुत मुश्किल था, जो ईसा पूर्व दूसरी सदी के मध्य में उत्तरी आइबीरिया से आ रही थी। प्रायद्वीप के मूल निवासी क़ेल्ट्स से आबाद नूमान्तिया नामक एक छोटे, मामूली-से पहाड़ी नगर ने रोमन दासता को अपनी गर्दन से उतार फेंकने का साहस किया था। रोम तब मैसेडोनियाई और सेल्यूसिड साम्राज्यों को पराजित कर चुकने, ग्रीस के गौरवशाली नगर राज्यों को अपने अधीन कर चुकने और कार्थेज को दहकते हुए खण्डहरों में बदल चुकने के बाद समूचे भूमध्यसागरीय बेसिन का निर्विवाद मालिक था। नूमान्तियाइयों के पक्ष में उनके उग्र स्वाधीनता-प्रेम और उस भू-भाग के अलावा कुछ भी नहीं था, जहाँ जाकर बसना बहुत असुरक्षित था। तब भी उन्होंने एक के बाद एक फ़ौजों को आत्मसमर्पण करने या शर्मनाक ढंग से पीछे हटने को मजबूर कर दिया था।

अन्ततः 134 ईसा पूर्व में रोमन धैर्य टूट गया। सीनेट ने नूमान्तियाइयों से निपटने के लिए अपने सर्वश्रेष्ठ जनरल सीपियो एमिलियानुस को भेजने का फ़ैसला किया, उसी आदमी को जिसने कार्थेज को तबाह किया था। उसे 30,000 से ज़्यादा सैनिकों की विशाल सेना सौंपी गई। सीपियो के मन में नूमान्तियाइयों के लड़ाकूपन और दिलेरी की बड़ी इज़्ज़त थी। उसने अनावष्यक लड़ाई में अपने सैनिकों को बरबाद ना करना बेहतर समझा। इसके बजाय उसने नूमान्तिया को चारों तरफ़ से क़िले की दीवार से घेरकर बाहरी दुनिया के साथ इस नगर का सम्पर्क अवरुद्ध कर दिया। भूख ने उसकी मदद की। एक साल से ज़्यादा समय बीतने के बाद खाद्य सामग्री समाप्त हो गई। जब नूमान्तियाइयों ने

पाया कि सारी उम्मीदें समाप्त हो चुकी हैं, तो उन्होंने अपने नगर को जला दिया। रोमन वृत्तान्त के मुताबिक़, उनमें से ज़्यादातर लोगों ने ख़ुद को ख़त्म कर डाला, ताकि उन्हें रोमनों का ग़ुलाम ना बनना पड़े।

नूमान्तिया बाद में स्पेनियों की आज़ादी और साहस का प्रतीक बन गया। डॉन किहोते के लेखक मिगेल दे सर्वान्तीस ने द सीज ऑफ़ नूमान्तिया नामक त्रासदी लिखी थी, जिसका अन्त नगर की तबाही के साथ, लेकिन स्पेन की भावी महानता की परिकल्पना के साथ भी होता है। कवियों ने इसके उग्र रक्षकों की प्रशंसा में गीत लिखे और चित्रकारों ने कैनवासों पर इस घेराबन्दी का भव्य चित्रण किया। 1882 में इसके खण्डहर 'राष्ट्रीय स्मारक' घोषित किए गए और वे स्पेनी देशभक्तों का तीर्थस्थल बन गए। 1950 और 1960 के दशकों में स्पेन की सर्वाधिक लोकप्रिय कॉमिक पुस्तकें सुपरमैन और स्पाइडरमैन के बारे में नहीं होती थीं, बल्कि वे एल जाबातो नामक कल्पित प्राचीन आइबेरियाई योद्धा के साहसिक कारनामों के क़िस्से बताती थीं, जो रोमन आततायियों के ख़िलाफ़ लड़ा था। प्राचीन नूमान्तियाई आज दिन तक वीरता और देशभक्ति के मामले में स्पेन के आदर्श माने जाते हैं और उन्हें देश के नौजवानों के समक्ष अनुकरणीय आदर्शों के रूप में पेश किया जाता है।

तब भी स्पेनी देशभक्त नूमान्तियाइयों की सराहना स्पेनी भाषा में करते हैं - एक रोमांस भाषा, जो सीपियो की लैटिन की वंशज है। नूमान्तियाई सेल्टिक भाषा बोलते थे, जो अब मर चुकी है और लुप्त हो चुकी है। सर्वान्तीस ने द सीज़ ऑफ नूमान्तिया नाटक लैटिन लिपि में लिखा था और यह नाटक ग्रीको-रोमन कलात्मक आदर्शों का अनुसरण करता है। नूमान्तिया की कोई नाट्य कलाएँ नहीं थीं। नूमान्तियाई वीरता की सराहना करने वाले स्पेनी देशभक्त आम तौर से रोमन कैथोलिक चर्च (इसमें पहले शब्द को नज़रअन्दाज़ ना करें) के भी वफ़ादार अनुयायी होते हैं - वह चर्च, जिसके मुखिया का सिंहासन अभी भी रोम में है और जिसका ईश्वर लैटिन में सम्बोधित किया जाना पसन्द करता है। इसी तरह, आधुनिक स्पेनी विधि (लॉ) की उत्पत्ति रोमन विधि में है, स्पेनी राजनीति रोमन बुनियादों पर खड़ी है और स्पेनी पाककला और स्थापत्य आइबेरिया के सेल्टों की विरासत से कहीं ज़्यादा रोमन विरासतों की ऋणी है। खण्डहरों के अलावा नूमान्तिया का वाक़ई कुछ भी शेष नहीं रह गया है। यहाँ तक कि उसकी गाथा भी हम तक रोमन इतिहासकारों की बदौलत पहुँची है। यह गाथा भी उस रोमन श्रोता वर्ग की रुचियों के मुताबिक़ गढ़ी गई थी, जो आज़ादी-पसन्द बर्बरों के क़िस्सों का आनन्द लेते थे। नूमान्तिया पर रोम की जीत इतनी सम्पूर्ण थी कि विजेताओं ने पराजितों की स्मृति तक को अपना बना लिया।

यह हमारी तरह की कहानी नहीं है। हम शोषितों-दलितों को जीतते हुए देखना पसन्द करते हैं, लेकिन इतिहास में कोई न्याय नहीं होता। अतीत की ज़्यादातर संस्कृतियाँ आगे-पीछे किसी बेरहम साम्राज्य की सेनाओं की शिकार हुई हैं, जिसने उन्हें गुमनामी के अँधेरों में धकेल दिया। साम्राज्यों का भी अन्ततः पतन होता है, लेकिन वे अपने पीछे अक्सर एक समृद्ध और टिकाऊ विरासत छोड़ जाते हैं। इक्कीसवीं सदी के लगभग सारे समाज किसी ना किसी साम्राज्य की सन्तानें हैं।

साम्राज्य क्या है?

साम्राज्य एक राजनैतिक व्यवस्था है, जिसके दो महत्त्वपूर्ण लक्षण होते हैं। पहला, इस पद की अर्हता हासिल करने के लिए आपको अच्छी ख़ासी संख्या में ऐसे विभिन्न समाजों पर शासन करना होता है, जिनमें हरेक की अलग संस्कृति, पहचान और उसका स्वतन्त्र अधिकार-क्षेत्र होता है। ठीक-ठीक कितने समाज? दो या तीन पर्याप्त नहीं हैं। बीस या तीस बहुत ज़्यादा हैं। साम्राज्यवाद की दहलीज़ इनके बीच कहीं होती है।

दूसरा, सरहदों का लचीलापन और सम्भावित रूप से असीमित भूख साम्राज्यों की विशेषता होती है। वे अपनी बुनियादी बनावट और पहचान में कोई तब्दीली लाए बग़ैर अधिक से अधिक राष्ट्रों और इलाक़ों को निगल और पचा सकते हैं। आज के अँग्रेज़ी राज्य की पर्याप्त स्पष्ट सरहदें हैं, जिनका विस्तार इस राज्य की बुनियादी संरचना और पहचान में तब्दीली लाए बग़ैर नहीं किया जा सकता। एक सदी पहले धरती का लगभग कोई भी स्थान अँग्रेज़ी साम्राज्य का हिस्सा बन सकता था।

सांस्कृतिक विविधता और प्रभुसत्ता के क्षेत्र का लचीलापन साम्राज्यों को ना सिर्फ़ एक अनूठा चरित्र प्रदान करते हैं, बल्कि वे उन्हें इतिहास में केन्द्रीय भूमिका भी प्रदान करते हैं। ये दो विशेषताएँ ही हैं, जिनकी बदौलत साम्राज्य विविध जातीय समूहों और विविध पारिस्थितिकीय क्षेत्रों को एक राजनैतिक छतरी के नीचे संगठित कर सके और इस तरह मानव प्रजातियों और पृथ्वी ग्रह के बड़े से बड़े हिस्सों को आपस में मिलाने में कामयाब हो सके।

इस बात को विशेष रूप से रेखांकित किया जाना चाहिए कि कोई भी साम्राज्य पूरी तरह से अपनी सांस्कृतिक विविधता तथा लचीली सीमाओं से परिभाषित होता है, ना कि अपने उद्गमों, शासन के अपने ढंग, अपने अधिकार-क्षेत्र के विस्तार या अपनी आबादी की संख्या से। किसी साम्राज्य का युद्ध में विजय प्राप्त कर उभरना आवश्यक नहीं है। एथीनियाई साम्राज्य के जीवन की शुरुआत एक स्वैच्छिक संघ के रूप में हुई थी और हैब्सबॅर्ग साम्राज्य का जन्म वैवाहिक गठबन्धन से हुआ था, चालाकीपूर्ण वैवाहिक गठबन्धनों की एक शृंखला के माध्यम से। ना ही किसी साम्राज्य का किसी निरंकुश सम्राट द्वारा शासित होना ही अनिवार्य है। अँग्रेज़ी साम्राज्य, जो इतिहास का सबसे बड़ा साम्राज्य था, एक लोकतन्त्र से शासित था। अन्य लोकतान्त्रिक (या कम से कम गणतान्त्रिक) साम्राज्यों में आधुनिक डच, फ़्रांसीसी, बेल्जियाई और अमेरिकी साम्राज्यों के साथ-साथ नोवगोराड, रोम, कार्थेज और एथेंस के पूर्वआधुनिक साम्राज्य शामिल हैं। आकार भी वास्तव में मायने नहीं रखता। साम्राज्य बहुत अदने हो सकते हैं। एथीनियाई साम्राज्य अपने सर्वोच्च शिखर पर आज के ग्रीस के आकार और आबादी के मुक़ाबले बहुत छोटा था। एज़्टेक साम्राज्य आज के मैक्सिको से भी छोटा था। तब भी दोनों साम्राज्य थे, जबकि आधुनिक ग्रीस और मैक्सिको नहीं हैं, क्योंकि जहाँ एथेनियाई और एज़्टेक साम्राज्यों ने दर्जनों बल्कि सैकड़ों भिन्न राजतन्त्रों को अपने अधीन बनाया हुआ था, वहीं मैक्सिको या ग्रीस ने वैसा नहीं किया है। एथेंस कोई एक सैकड़ा ऐसे राज्यों पर अपनी प्रभुता का रौब जमाता था, जो पहले स्वाधीन रहे थे, जबकि एज़्टेक साम्राज्य, अगर हम उसके महसूल सम्बन्धी दस्तावेज़ों पर भरोसा कर सकें, तो 371 अलग-अलग

क़बीलों और समाजों पर शासन करता था।

इस तरह के भाँति-भाँति की चीज़ों के इंसानी मिश्रण (ह्यूमन पॉटपुरी) को एक शालीन आधुनिक राज्य के अधिकार-क्षेत्र में ठूँस लेना कैसे मुमकिन हुआ? यह मुमकिन हो सका क्योंकि अतीत में दुनिया में बहुत सारे अलग-अलग जन-समूह थे, जिनमें से हरेक की थोड़ी-थोड़ी आबादियाँ थीं और वे आज के आम जनसमुदायों के मुक़ाबले बहुत छोटे इलाक़ों में रहती थीं। भूमध्यसागरीय क्षेत्र और जॉर्डन नदी के बीच की भूमि ने (जो आज महज़ दो जनसमुदायों की महत्त्वाकांक्षाओं को तुष्ट करने के लिए जूझती है) बाइबल के समय में बहुत आसानी से दर्जनों राष्ट्रों, क़बीलों, छोटी-मोटी बादशाहतों और नगर राज्यों को अपने में समाहित किया हुआ था।

साम्राज्य मानवीय विविधता में ज़बरदस्त कमी के लिए एक प्रमुख कारण थे। साम्राज्यवादी स्टीमरोलर ने धीरे-धीरे बहुत सारे जन-समुदायों (जैसे कि नूमान्तियाई जन-समुदाय) की अनूठी विशेषताओं को ख़त्म कर दिया और उन समुदायों से नए और ज़्यादा बड़े समूह गढ़ दिए।

अशुभ साम्राज्य?

हमारे समय में 'साम्राज्यवादी' राजनैतिक गालियों के शब्दकोशों में सिर्फ़ 'फ़ासिस्टों' के बाद दूसरे नम्बर पर आते हैं। साम्राज्यों की समकालीन आलोचनाएँ आम तौर से दो रूप लेती हैं :

1. साम्राज्य कारगर नहीं होते। अन्ततः, बड़ी संख्या में जीते गए मुल्क़ों पर कारगर ढंग से शासन करना सम्भव नहीं है।
2. अगर यह मुमकिन भी हो, तो ऐसा किया नहीं जाना चाहिए, क्योंकि साम्राज्य विनाश और शोषण के अशुभ यन्त्र हैं। हर मुल्क़ को आत्मनिर्णय का हक़ है और उसे कभी भी किसी दूसरे मुल्क़ की हुकूमत के अधीन नहीं होना चाहिए।

ऐतिहासिक दृष्टि से, पहला कथन साफ़-साफ़ बेवकूफ़ी है और दूसरे के साथ गहरी समस्या है।

वास्तविकता यह है कि साम्राज्य पिछले 2,500 सालों से राजनैतिक व्यवस्थापन का संसार का सबसे सामान्य रूप रहा है। इन ढाई सहस्राब्दियों के दौरान ज़्यादातर मनुष्य साम्राज्यों में रहे हैं। साम्राज्य शासन का बहुत स्थिर रूप भी है। विद्रोहों को कुचलना ज़्यादातर साम्राज्यों के लिए ख़तरनाक ढंग से आसान रहा है। आम तौर से उनका पतन विदेशी आक्रमणों या शासक वर्ग के भीतर आई दरारों की वजह से ही हुआ है। उलटे, जीते गए जनसमुदायों के ख़ुद को अपने साम्राज्यवादी अधिपतियों से आज़ाद कर लेने के कोई बहुत अच्छे कीर्तिमान नहीं रहे हैं। ज़्यादातर जनसमुदाय सैकड़ों सालों तक ग़ुलामी झेलते रहे हैं। आम तौर से, वे विजेता साम्राज्य द्वारा धीरे-धीरे पचा लिए जाते रहे हैं, जब तक कि उनकी विशिष्ट संस्कृतियाँ बेजान नहीं हो गईं।

उदाहरण के लिए, जब 476 ईसवी में पश्चिमी रोमन साम्राज्य आक्रमणकारी जर्मन जनजातियों के हाथों पराजित हो गया, तो नूमान्तियाइयों, अवेर्नियाइयों, हेल्वीशियाइयों,

सामनाइटों, ल्यूसिटेन्याइयों, उम्ब्रियाइयों, इट्रॉस्केनियनों और उन सैकड़ों अन्य विस्मृत समाजों, जिन्हें रोमनों ने सदियों पहले जीता था, में से कोई भी समाज रोमन साम्राज्य के शव की आँतों से उस तरह प्रकट नहीं हुआ जैसे जोनह विशाल मत्स्य के उदर से प्रकट हो गया था। इनमें से कोई भी समाज नहीं बचा था। जो लोग स्वयं को इन देशों के नागरिकों के रूप में पहचानते रहे थे, जो इन देशों की भाषा बोला करते थे, उनके देवताओं को पूजा करते थे और उनकी लोककथाएँ और किंवदन्तियाँ सुनाया करते थे, उनके वंशज अब रोमनों की तरह सोचते, बोलते और उपासनाएँ करते थे।

बहुत सारे प्रकरणों में, एक साम्राज्य के विनाश का शायद ही यह अर्थ रहा है कि उस साम्राज्य की अधीनस्थ जातियाँ स्वतन्त्र हो गईं। इसके बजाय, पुराने साम्राज्य के ध्वस्त हो जाने या पीछे हट जाने से ख़ाली हुई जगह को एक नया साम्राज्य भर देता था। यह स्थिति मध्य पूर्व में जितनी ज़ाहिर रही है, उतनी अन्यत्र कहीं नहीं रही। इस क्षेत्र के ताज़ा राजनैतिक समूह - कमोबेश मज़बूत सरहदों वाली अनेक स्वाधीन राजनैतिक सत्ताओं के बीच शक्ति-सन्तुलन - का कोई समानान्तर उदाहरण पिछली अनेक सहस्राब्दिों में कभी भी देखने में नहीं आया। मध्य पूर्व ने ऐसी स्थिति को अन्तिम बार ईसा पूर्व आठवीं सदी में अनुभव किया था - लगभग 3,000 साल पहले।

ईसा पूर्व आठवीं सदी में नव-असीरियाई साम्राज्य के उदय से लेकर बीसवीं सदी ईसवी के मध्य में अँग्रेज़ी और फ़्रांसीसी साम्राज्यों के ध्वस्त होने तक मध्य पूर्व रिले रेस के बैटन की भाँति एक साम्राज्य से दूसरे साम्राज्य के हाथों में जाता रहा। और जब तक अँग्रेज़ और फ़्रांसीसी इस बैटन को छोड़ते, तब तक असीरियायियों द्वारा जीती गई अर्मेनियाई, अमोनाइट, फ़ीनीशियाई, फ़िलिस्तीनी, मोआबाइट, इडोमाइट और अन्य जातियाँ बहुत पहले लुप्त हो चुकी थीं।

यह सच है कि आज के यहूदी, अर्मेनियाई और जॉर्जियाई किसी हद तक यह उचित दावा करते हैं कि वे प्राचीन मध्य पूर्वी समाजों की सन्तानें हैं, लेकिन यह ऐसे अपवाद हैं, जिनसे सामान्य स्थिति पर कोई अन्तर नहीं पड़ता और ये दावे किंचित अतिरंजित भी हैं। कहना ना होगा कि, उदाहरण के लिए, आधुनिक यहूदियों के राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक आचरण जुडीया की प्राचीन हुकूमत से कहीं ज़्यादा उन साम्राज्यों के ऋणी हैं, जिनके अधीन वे पिछली दो सहस्राब्दियों तक रहे हैं। अगर किंग डेविड अचानक आज के यरुशलम के अति-पारम्परिक सायनागॉग में जा पहुँचें, तो वह लोगों को पूर्वी यूरोपीय वेशभूषाएँ धारण किए, जर्मन बोली (यीदिश) में बतियाते और एक बेबिलोनियाई मज़मून (टेल्मॅड) के अर्थ को लेकर अन्तहीन बहस करते देखकर भौंचक्का रह जाएगा। प्राचीन जुडीया में ना तो सायनागॉग थे, ना टेल्मॅड के ग्रन्थ थे और ना ही टोरा के पट्टे थे।

एक साम्राज्य को खड़ा करने और उसे क़ायम रखने के लिए आमतौर से विशाल आबादियों का क्रूर नरसंहार और बचे रह गए लोगों में से एक-एक का निर्दयतापूर्ण दमन ज़रूरी होता था। एक मानक साम्राज्यवादी टूलकिट में युद्ध, ग़ुलाम बनाना, देशनिकाला और जातिसंहार शामिल थे। जब रोमनों ने 83 ईसवी में स्कॉटलैंड पर हमला किया था, तो उन्हें स्थानीय सेलेडोनियाई जनजातियों के उग्र प्रतिरोध का सामना किया था और प्रतिक्रिया में उस देश को पूरी तरह नष्ट कर दिया था। रोमन शान्ति-प्रस्तावों के जवाब में

क़बीले के सरदार कैलगाकस ने रोमनों को 'दुनिया के गुण्डे' की संज्ञा दी थी और कहा था, "वे लूटमार, नरसंहार और डकैती को साम्राज्य का झूठा नाम देते हैं, वे मरुस्थल तैयार करते हैं और उसे शान्ति का नाम देते हैं"।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि साम्राज्य अपने पीछे कुछ भी मूल्यवान नहीं छोड़ जाते। सारे साम्राज्यों को काला साबित करना और सारी साम्राज्यवादी विरासत को नकारना मानव संस्कृति के ज़्यादातर हिस्से को अस्वीकार करना होगा। साम्राज्यवादी कुलीन जीत का धन सेनाओं और क़िलों में ही नहीं लगाते थे, बल्कि उसे दर्शन, कला, न्याय और जनकल्याण पर भी ख़र्च करते थे। मानव की सांस्कृतिक उपलब्धियों का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा अपने अस्तित्व के लिए पराजित आबादियों के शोषण का ऋणी है। रोमन साम्राज्य द्वारा पैदा किए गए लाभ और समृद्धि ने सिसरो, सेनेका और सेंट ऑगस्टाइन को सोचने और लिखने के लिए मोहलत और साधन मुहैया कराए, मुग़लों द्वारा हिन्दुस्तानी प्रजा के शोषण से इकट्ठा किए गए धन के बग़ैर ताजमहल का निर्माण ना हो सका होता और हैब्सबर्ग साम्राज्य द्वारा स्लाविक, हंगेरियाई और रोमानियाई-भाषी प्रान्तों पर किए गए शासन से हुए मुनाफ़ों से हैडन की तनख़्वाहों और मोत्सार्ट के कमीशनों का भुगतान किया गया था। कैलगाकस के भाषण को भविष्य की पीढ़ियों के लिए किसी सेलेडोनियाई लेखक ने बचाकर नहीं रखा था। इसे हम रोमन इतिहासकार टैसिटस की बदौलत जानते हैं। वस्तुतः, इसे शायद ख़ुद टैसिटस ने गढ़ा था। ज़्यादातर अध्येता आज इस बारे में एकमत हैं कि टैसिटस ने ना सिर्फ़ इस भाषण को गढ़ा था, बल्कि उसने अपने ख़ुद के मुल्क़ के बारे में उच्चवर्गीय रोमनों की धारणा के प्रवक्ता के रूप में बरते जाने के उद्देश्य से सेलेडोनियाई क़बीले के सरदार कैलगाकस को भी काल्पनिक तौर पर गढ़ा था।

यहाँ तक कि अगर हम अभिजात्य संस्कृति और उन्नत कला से परे जाकर जनसाधारण की दुनिया पर ही ध्यान केन्द्रित करें, तो हम अधिकांश आधुनिक संस्कृतियों में साम्राज्यवादी विरासतों को पाते हैं। आज हममें से ज़्यादातर लोग उन साम्राज्यवादी भाषाओं में बोलते, सोचते और सपने देखते हैं, जो हमारे पूर्वजों पर तलवार के बल पर थोपी गई थीं। पूर्वी एशिया के ज़्यादातर लोग हान साम्राज्य की भाषा में सोचते और सपने देखते हैं। अलास्का के बैरो प्रायद्वीप से लेकर मैगेलन के जलडमरूमध्य तक के लगभग सारे निवासी, उनका उद्गम जो भी रहा हो, चार साम्राज्यवादी भाषाओं - स्पेनी, पुर्तगाली, फ़्रांसीसी या अँग्रेज़ी - में से कोई एक भाषा बोलते हैं। आज के मिस्रवासी अरबी बोलते हैं, अपने को अरब मानते हैं और ख़ुद को पूरे मन से उस अरब साम्राज्य के साथ जोड़कर देखते हैं, जिसने सातवीं सदी में मिस्र को जीता था और उन विद्रोहों को तलवार की ताक़त पर कुचला था, जो उसकी हुकूमत के ख़िलाफ़ भड़के थे। दक्षिण अफ़्रीका में लगभग एक करोड़ जुलू उन्नीसवीं सदी के वैभवशाली जुलू युग को याद करते हैं, भले ही उनमें से ज़्यादातर उन जनजातियों के वंशज हैं, जो जुलू साम्राज्य के ख़िलाफ़ लड़ी थीं और जिन्हें रक्तरंजित सैन्य अभियानों के मार्फ़त उस साम्राज्य में समाविष्ट किया गया था।

ये आपके अपने हित में है

जिस प्रथम साम्राज्य के बारे में हमें पक्की जानकारी मिलती है, वह सारगोन द ग्रेट (2250 ईसा पूर्व) का अक्कादिआई साम्राज्य था। सारगोन ने अपने कॅरियर की शुरुआत उस किश के राजा के रूप में की थी, जो मेसोपोटामिया का एक छोटा-सा नगर राज्य था। कुछ ही दशकों के भीतर वह ना सिर्फ़ अन्य मेसोपोटामियाई नगर राज्यों को जीतने में कामयाब रहा, बल्कि मेसोपोटामियाई केन्द्र-स्थल से बाहर के बड़े राज्यों को भी उसने जीत लिया। सारगोन डींग हाँकता था कि उसने सारी दुनिया पर विजय पा ली है। वास्तव में, उसके प्रभुत्व का विस्तार फ़ारस की खाड़ी से लेकर भूमध्यसागर तक था, और उसमें आज के ज़माने के इराक़ और सीरिया के ज़्यादातर भागों के साथ-साथ आधुनिक ईरान और तुर्की के कुछ टुकड़े भी शामिल थे।

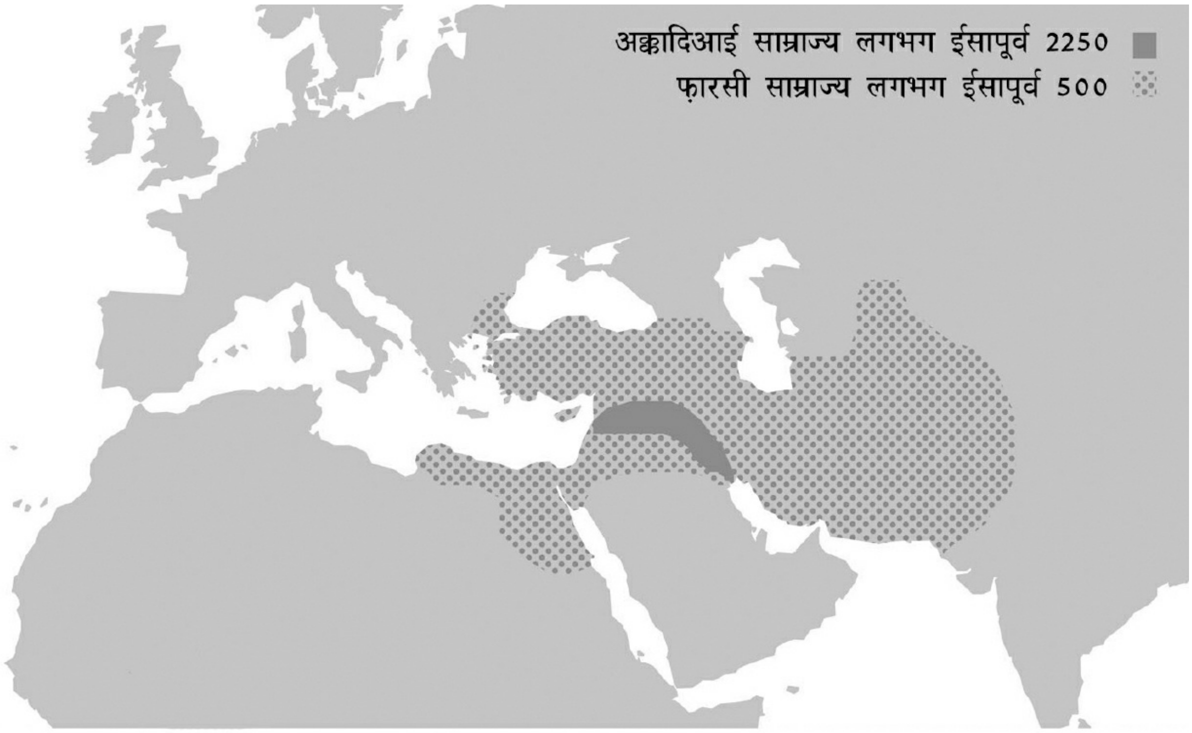
अक्कादिआई साम्राज्य लगभग ईसापूर्व 2250 ■
फ़ारसी साम्राज्य लगभग ईसापूर्व 500 ▨

नक्शा 4. अक्कादिआई साम्राज्य और फ़ारसी साम्राज्य।

अक्कादिआई साम्राज्य इसके संस्थापक की मौत के बाद ज़्यादा समय तक नहीं टिका, लेकिन सारगोन अपने पीछे एक ऐसी प्रभावशाली साम्राज्यवादी भूमिका छोड़ गया, जो शायद ही कभी उपेक्षित रही हो। अगले 1,700 सालों तक असीरियाई, बेबिलोनियाई और हिटाइट राजा सारगोन को एक रोल मॉडल के रूप में अपनाते रहे और वे भी डींगें हाँकते थे कि उन्होंने सारी दुनिया को जीत लिया था। इसके बाद 550 ईसा पूर्व के आस-पास फ़ारस का सायरस द ग्रेट और भी प्रभावशाली डींग के साथ सामने आया।

असीरिया के राजा हमेशा असीरिया के राजा ही बने रहे। तब भी जबकि वे सारी दुनिया पर हुकूमत करने का दावा करते थे, यह बात ज़ाहिर थी कि यह सब वे असीरिया की महिमा की ख़ातिर किया करते थे और इसे लेकर वे शर्मिन्दा नहीं होते थे। दूसरी तरफ़, सायरस महज़ सारी दुनिया पर हुकूमत करने का दावा ही नहीं करता था, बल्कि

ऐसा वह सारे मुल्क़ों की ख़ातिर करता था। यह फ़ारसी कहा करता था कि “हम आपको आपके हित के लिए जीत रहे हैं”। सायरस चाहता था कि जिन लोगों को उसने अपने अधीन बनाया था, वे उससे प्रेम करें और फ़ारस के मातहत होने के नाते ख़ुद को ख़ुशक़िस्मत समझें। अपने साम्राज्य के पूर्ण नियन्त्रण में रह रहे राष्ट्र का अनुमोदन हासिल करने की सायरस की अनूठी कोशिशों की सबसे प्रसिद्ध मिसाल उसका यह फ़रमान था कि बेबिलोनिया में निर्वासित यहूदियों को उनकी जुडीयाई मातृभूमि में लौटने दिया जाए और अपने टेम्पल का निर्माण करने दिया जाए। उसने उन्हें आर्थिक मदद तक देने की पेशकश की थी। सायरस स्वयं को यहूदियों पर हुकूमत करते फ़ारसी शहंशाह के रूप में नहीं देखता था - वह यहूदियों का भी शहंशाह था और इस तरह उनकी बेहतरी के लिए ज़िम्मेदार था।

सारी दुनिया के बाशिन्दों की ख़ातिर सारी दुनिया पर हुकूमत करने का ख़याल चौंकाने वाला था। विकास-प्रक्रिया ने होमो सेपियन्स को, दूसरे सामाजिक प्राणियों की ही भाँति, अज्ञात लोगों से डरने वाला प्राणी बनाया है। सेपियन्स की यह सहज प्रवृत्ति है कि वे मनुष्यता को ‘हम’ और ‘वे’ के दो हिस्सों में बाँटते हैं। हम आपके और मेरी तरह के लोग हैं, जो हमारी भाषा, धर्म और रीति-रिवाज़ों को साझा करते हैं। हम सब एक दूसरे के प्रति ज़िम्मेदार हैं, लेकिन उनके प्रति ज़िम्मेदार नहीं हैं। हम उनसे हमेशा से भिन्न रहे हैं और किसी मामले में उनके ऋणी नहीं हैं। हम उनमें से किसी को भी अपने इलाक़े में नहीं देखना चाहते और उनके इलाक़े में क्या हो रहा है, इसकी हमें रत्ती भर परवाह नहीं है। वे इंसान भी बमुश्किल ही हैं। सूडान के डिंका समाज की भाषा में, ‘डिंका’ का सीधा मतलब ‘लोग’ होता है। जो डिंका नहीं हैं, वे लोग भी नहीं हैं। डिंकाओं के सबसे कट्टर शत्रु हैं नूअर। नूअर भाषा में नूअर शब्द का क्या मतलब है? इसका मतलब है ‘असली लोग’। सूडान के रेगिस्तानों से हज़ारों किलोमीटर दूर अलास्का और उत्तर-पूर्वी साइबेरिया की बर्फ़ानी भूमि में यूपिक रहते हैं। यूपिक भाषा में यूपिक शब्द का क्या मतलब है? इसका मतलब है ‘वास्तविक लोग’।

अन्य के इस प्रजातीय निषेध के विपरीत, सायरस के समय से ही साम्राज्यवादी विचारधारा समावेशी और व्यापक होती गई। भले ही इसने अक्सर शासकों और शासितों के बीच के नस्लपरक और सांस्कृतिक भेदों पर ज़ोर दिया, तब भी इसने समूची दुनिया की बुनियादी एकता, तमाम देशों और कालों को नियन्त्रित करने वाले मूलभूत नियमों के एकल समूह के अस्तित्व और तमाम मनुष्यों के पारस्परिक दायित्वों को मान्यता दी। मानव-जाति को एक विशाल परिवार के रूप में देखा गया : अभिभावकों के सौभाग्य बच्चों की ज़िम्मेदारी और कल्याण से जुड़े हैं।

यह साम्राज्यवादी दृष्टि सायरस और फ़ारसियों के यहाँ से अलेक्ज़ेंडर द ग्रेट तक पहुँची और वहाँ से हेलेनिस्टियाई राजाओं, रोमन सम्राटों, मुसलमान ख़लीफ़ाओं, हिन्दुस्तान राजवंशों और अन्ततः सोवियत प्रधानों और अमेरिकी राष्ट्रपतियों तक पहुँची। इस परोपकारी साम्राज्यवादी दृष्टि ने साम्राज्यों के अस्तित्व का औचित्य स्थापित किया है और ना सिर्फ़ अधीनस्थ लोगों के विद्रोह की कोशिशों को, बल्कि स्वाधीन मुल्क़ों के साम्राज्यवादी विस्तार को प्रतिरोध देने की कोशिशों को भी बेअसर कर दिया।

इसी तरह की साम्राज्यवादी दृष्टियाँ फ़ारसी मॉडल से स्वतन्त्र रूप से दुनिया के दूसरे

हिस्सों में भी विकसित हुईं, जिनमें सबसे उल्लेखनीय हैं मध्य अमेरिका, एंडियाई क्षेत्र और चीन। चीन के पारम्परिक राजनैतिक सिद्धान्त के मुताबिक़, स्वर्ग (तियान) पृथ्वी की सारी वैध सत्ताओं का स्रोत है। स्वर्ग की सत्ता सबसे योग्य व्यक्ति या परिवार को चुनती है और उन्हें स्वर्ग का शासनादेश (मैंडेट ऑफ़ हैवन) प्रदान करती है। इसके बाद यह व्यक्ति या परिवार स्वर्ग के तले के समस्त (तियानज़िया) मुल्क़ों के समस्त निवासियों के हितों की ख़ातिर इन मुल्क़ों पर शासन करते हैं। इस तरह एक वैध सत्ता का अर्थ ही यह है कि वह सार्वभौमिक होती है। अगर किसी शासक को स्वर्ग का शासनादेश प्राप्त नहीं है, तो उसमें एक नगर तक पर शासन करने की वैधता का अभाव है। अगर किसी शासक को यह शासनादेश प्राप्त है, तो वह समूची दुनिया में न्याय और समरसता का विस्तार करने के लिए बाध्य है। स्वर्ग का यह शासनादेश एक साथ कई प्रत्याशियों को नहीं दिया जा सकता था, और नतीज़तन कोई व्यक्ति एक स्वतन्त्र राज्य से ज़्यादा के अस्तित्व को वैधीकृत नहीं कर सकता था।

संयुक्त चीनी साम्राज्य के प्रथम सम्राट चिंग शी हुआंग्दी डींग हाँकता था कि “विश्व की छहों दिशाओं की हर चीज़ सम्राट की है...जहाँ कहीं पर भी मनुष्य के पैरों का निशान है, वहाँ ऐसा कोई नहीं है, जो सम्राट की प्रजा नहीं बन चुका था। उसकी दयालुता बैलों और घोड़ों तक भी पहुँचती है। ऐसा कोई नहीं, जिसका कल्याण नहीं हुआ। हर व्यक्ति अपने ख़ुद के छप्पर तले सुरक्षित है...” चीन के राजनैतिक चिन्तन में, साथ ही चीन की ऐतिहासिक स्मृति में भी, साम्राज्यवादी युगों को इसके बाद से व्यवस्था और न्याय के स्वर्ण-युगों के रूप में देखा गया था। इस आधुनिक पश्चिमी दृष्टिकोण के विपरीत कि एक न्यायसंगत दुनिया स्वतन्त्र राष्ट्र राज्यों से मिलकर बनती है। चीन में राजनैतिक विखण्डन के युगों को अराजकता और अन्याय के अँधेरे युगों के रूप में देखा गया था। चीन के इतिहास के सन्दर्भ में इस समझ के दूरगामी निहितार्थ रहे हैं। जब भी कभी कोई साम्राज्य ध्वस्त होता था, यह प्रभावी राजनैतिक सिद्धान्त सत्ताओं को उकसाता था कि वे तुच्छ क़िस्म की स्वतन्त्र रियासतें ना रह जाएँ, बल्कि पुनः एकीकरण का प्रयास करें। आगे-पीछे ये प्रयास हमेशा सफल होते थे।

जब वे, हम बन जाते हैं

साम्राज्यों ने बहुत-सी छोटी संस्कृतियों को थोड़ी-सी बड़ी संस्कृतियों में एकीकृत करने में निर्णायक भूमिका निभाई है। एक राजनैतिक तौर पर विखण्डित क्षेत्र के बजाय एक साम्राज्य की सरहदों के भीतर विचारों, लोगों, वस्तुओं और प्रौद्योगिकी का प्रसार ज़्यादा आसानी से होता है। अक्सर तो यह स्वयं साम्राज्य ही रहे हैं, जिन्होंने जानबूझकर विचारों, संस्थाओं, रीति-रिवाज़ों और प्रतिमानों का प्रसार किया है। इसकी एक वजह ख़ुद उनकी अपनी ज़िन्दगी को आसान बनाने की रही है। एक ऐसे साम्राज्य पर हुकूमत करना मुश्किल है, जिसमें हर छोटे जनपद के अपने क़ानून, अपनी लिपियाँ, अपनी भाषाएँ और अपनी मुद्रा हो। मानकीकरण सम्राटों के लिए एक वरदान था।

साम्राज्यों द्वारा एक समान संस्कृति का सक्रिय रूप से प्रसार करने के पीछे एक अन्य और उतनी ही महत्त्वपूर्ण वजह वैधता हासिल करने की रही है। कम से कम सायरस और

चिन शी हुआंग्दी के ज़माने से साम्राज्य अपने कृत्यों - चाहे वे कृत्य सड़कें बनवाना रहे हों या रक्तपात करना रहे हों - का औचित्य एक ऐसी उत्कृष्ट संस्कृति के प्रसार की ज़रूरत के तौर पर साबित करते रहे हैं, जिस संस्कृति से विजेताओं से ज़्यादा जीते गए लोग अपने हित साध सकें।

ये हित कभी-कभी बहुत महत्त्वपूर्ण होते थे - क़ानून का प्रवर्तन, नगर योजना, नाप-तौल का मानकीकरण - और कभी-कभी आपत्तिजनक होते थे - कर, जबरन सेना में भर्ती, सम्राट की पूजा, लेकिन ज़्यादातर साम्राज्यवादी कुलीन वर्ग इस बात पर गम्भीरतापूर्वक विश्वास करते था कि वह साम्राज्य के समस्त निवासियों के सामान्य कल्याण के लिए काम कर रहा है। चीन का शासक वर्ग अपने देश के पड़ोसियों और उसकी विदेशी प्रजाओं को ऐसे दयनीय बर्बरों की तरह देखते थे, जिन्हें संस्कृति के लाभ मिलने ज़रूरी थे। सम्राट को दुनिया का शोषण करने के लिए नहीं, बल्कि मनुष्यता को शिक्षित करने की ख़ातिर स्वर्ग के शासनादेश से नवाज़ा गया था। रोमन भी अपने प्रभुत्व को यह तर्क देते हुए उचित ठहराते थे कि वे बर्बरों को सुख-शान्ति, न्याय और परिष्कार प्रदान कर रहे हैं। जंगली जर्मन और रँगे हुए गॉल तब तक गन्दगी और अज्ञान में पड़े थे, जब तक कि रोमनों ने उन्हें क़ानून की मदद से वश में नहीं कर लिया था, उन्हें सार्वजनिक स्नानागारों में नहलाया नहीं था और दर्शन की मदद से उनका बौद्धिक विकास नहीं किया था। ईसा पूर्व तीसरी सदी में मौर्य साम्राज्य ने अज्ञान में डूबी दुनिया में बुद्धि के उपदेशों के प्रचार को अपनी मुहिम बनाया था। मुसलमान ख़लीफ़ाओं को यह पवित्र आदेश मिला था कि वे पैग़म्बर के इलहाम का मुमकिन हो तो शान्तिपूर्वक और अगर ज़रूरी हो तो तलवार की दम पर प्रचार करें। स्पेनी और पुर्तगाली साम्राज्यों ने घोषणा की थी कि वे इंडीज़ और अमेरिका में समृद्ध की तलाश नहीं कर रहे थे, बल्कि सच्चे धर्मावलम्बियों की तलाश कर रहे थे। उदारतावाद और मुक्त व्यापार के दोहरे धर्ममतों के प्रचार के अँग्रेज़ी अभियान के दौरान कभी सूर्यास्त नहीं हुआ था। सोवियत संघ के लोग पूँजीवाद से सर्वहारा की यूटोपियाई तानाशाही की दिशा में इतिहास के अटल अभियान को आसान बनाने को अपने कर्त्तव्य की तरह देखते थे। बहुत से अमेरिकी लोगों की आज ऐसी दृढ़ मान्यता है कि यह उनकी सरकार का एक अनिवार्य नैतिक दायित्व है कि वह तीसरी दुनिया के देशों तक लोकतन्त्र और मानवाधिकारों के लाभ पहुँचाए, भले ही इन चीज़ों को उन तक पहुँचाने में क्रूज़ मिसाइलों और एफ़-16 का सहारा ही क्यों ना लेना पड़े।

साम्राज्य द्वारा प्रसारित सांस्कृतिक विचार अक्सर पूरी तरह से शासक वर्ग के दिमाग़ की उपज नहीं होते थे। चूँकि साम्राज्यवादी कल्पना सार्वभौमिक और समावेशी होती थी, साम्राज्यवादी शासक वर्ग के लिए यह अपेक्षाकृत आसान होता था कि वे किसी एक संकीर्ण परम्परा से कट्टरतापूर्वक चिपके रहने के बजाय जहाँ कहीं से भी मुमकिन होता था, वहाँ से विचारों, मापदण्डों और रिवाजों को अपना लेते थे। जहाँ कुछ सम्राटों ने अपनी संस्कृतियों का शुद्धिकरण करने और उस ओर लौटने की कोशिश की, जिसे वे अपनी जड़ों की तरह देखते थे, वहीं ज़्यादातर साम्राज्यों ने ऐसी मिश्रित सभ्यताओं को जन्म दिया, जिन्होंने बहुत कुछ इन साम्राज्यों के अधीनस्थ समाजों से आत्मसात किया था। रोम की साम्राज्यवादी संस्कृति लगभग उतनी ही ग्रीक थी, जितनी वह रोमन थी। साम्राज्यवादी अब्बसिद संस्कृति आंशिक रूप से फ़ारसी, आंशिक रूप से ग्रीक और

आंशिक रूप से अरबी थी। साम्राज्यवादी मंगोल संस्कृति चीनी अनुकृति थी। साम्राज्यवादी संयुक्त राज्य अमेरिका में केन्याई रक्त वाला अमेरिकी राष्ट्रपति पीत्ज़ा चबाते हुए अपनी पसन्दीदा फ़िल्म, तुर्कों के ख़िलाफ़ अरब विद्रोह पर केन्द्रित अँग्रेज़ी एपिक देख सकता है।

यह नहीं कि इस सांस्कृतिक घालमेल ने सांस्कृतिक समावेशीकरण की प्रक्रिया को परास्त लोगों के लिए आसान बना दिया था। साम्राज्यवादी सभ्यता ने विभिन्न विजित समाजों के असंख्य योगदानों को पचा लिया हो सकता है, लेकिन इससे तैयार हुआ मिश्रण तब भी बहुसंख्यक लोगों के लिए विजातीय था। समावेशीकरण की प्रक्रिया अक्सर तकलीफ़देह और मानसिक आधात पहुँचाने वाली होती थी। एक अन्तरंग और प्रिय स्थानीय परम्परा को त्याग देना आसान नहीं होता, उसी तरह एक नई संस्कृति को समझना और अपनाना मुश्किल और तनाव से भर देने वाला होता है। इससे भी बदतर यह है कि जब अधीनस्थ समाज साम्राज्यवादी संस्कृति को अपनाने में कामयाब भी हो जाते थे, तब भी अगर सदियाँ नहीं तो दशकों लग जाते थे, तब कहीं साम्राज्यवादी प्रभु वर्ग इन समाजों को 'हम' के हिस्से के रूप में स्वीकार कर पाता था। जीत और स्वीकृति के बीच की पीढ़ियाँ अलग-थलग और अकेली पड़ जाती थीं। वे अपनी प्रिय स्थानीय संस्कृति से तो पहले ही हाथ धो बैठी होती थीं, लेकिन साम्राज्यवादी दुनिया में उन्हें बराबरी की हिस्सेदारी करने की छूट नहीं होती थी। इसके विपरीत, उनकी अपनाई गई संस्कृति उन्हें बर्बरों के रूप में देखना जारी रखती थी।

नूमान्तिया के पतन की एक सदी बाद रह रहे एक प्रतिष्ठित आइबेरियाई की कल्पना कीजिए। वह अपने माँ-बाप से अपनी मूल सेल्टिक बोली में बातचीत करता है, लेकिन उसने महज़ हल्के-से स्वराघात के साथ शुद्ध लैटिन भी सीख ली है, क्योंकि उसे अपना क़ारोबार चलाने और अधिकारियों के साथ व्यवहार के लिए इसकी ज़रूरत पड़ती है। उसे बेहद भड़कीले आभूषणों के प्रति अपनी बीवी का रुझान बहुत अच्छा लगता है, लेकिन वह इस बात से किंचित शर्मिन्दगी महसूस करता है कि वह, अन्य स्थानीय स्त्रियों की ही भाँति, इस सेल्टिक अभिरुचि के अवशेष को बरकरार रखे है - उसे कहीं ज़्यादा अच्छा लगता अगर वह रोमन गवर्नर की बीवी द्वारा पहने जाने वाले आभूषणों की सादगी अपनाती। वह ख़ुद रोमन ट्यूनिक पहनता है। पशुओं के सौदागर के रूप में उसकी कामयाबी की बदौलत और रोमन वाणिज्यिक क़ानून की बारीकियों में अपनी पर्याप्त विशेषज्ञता के दम पर उसने रोमन शैली का एक देहाती बँगला भी बनवा लिया है। तब भी, बावजूद इसके कि वह वर्जिल की जॉर्जिक्स की तीसरी पोथी का पाठ कर सकता है, रोमन लोग उसे अभी भी अर्ध-बर्बर मानकर व्यवहार करते हैं। उसे इस बात का हताश अहसास है कि उसे कभी कोई सरकारी नियुक्ति नहीं मिल पाएगी या रंगशाला में वास्तव में कोई ठीक आसन नहीं मिल सकेगा।

उन्नीसवीं सदी के बाद के वर्षों में बहुत-से पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानियों को उनके अँग्रेज़ हुक्मरानों ने ऐसा ही सबक़ सिखाया था। एक प्रसिद्ध क़िस्सा एक महत्त्वाकांक्षी हिन्दुस्तानी के बारे में बताता है, जिसने अँग्रेज़ी ज़ुबान की बारीकियों में महारत हासिल कर ली थी, पश्चिमी शैली का नाच सीख लिया था और वह छुरी-काँटे की मदद से खाने तक का अभ्यस्त हो चुका था। अपने इन नए तौर-तरीक़ों से लैस होकर वह इंग्लैंड गया,

वहाँ उसने यूनिवर्सिटी कॉलेज लन्दन में क़ानून की पढ़ाई की और एक क़ाबिल बैरिस्टर बन गया। तब भी, सूट और टाई पहने, क़ानून में दीक्षित इस नौजवान को दक्षिण अफ़्रीका के अँग्रेज़ी उपनिवेश की ट्रेन से बाहर फेंक दिया गया था क्योंकि वह उस तीसरे दर्ज़े के डिब्बे, जिसमें उस जैसे 'अश्वेतों' से यात्रा करने की अपेक्षा की जाती थी, में बैठने के बजाय प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बैठने की ज़िद कर रहा था। उनका नाम था मोहनदास करमचन्द गाँधी।

कुछ प्रकरणों में सांस्कृतिक मिश्रण और समावेशीकरण की प्रक्रिया ने नवागन्तुकों और पुराने कुलीन वर्ग के बीच के अवरोधों को अन्ततः तोड़ दिया था। जीते गए लोग साम्राज्य को प्रभुत्व की विजातीय व्यवस्था के रूप में देखना बन्द कर चुके थे और विजेता अपने अधीनस्थों को अपनी बराबरी के दर्ज़े पर देखना शुरू कर चुके थे। शासक और शासित दोनों ही 'वे' को 'हम' के रूप में देखने लगे थे। रोम की सारी प्रजा को अन्ततः साम्राज्यवादी हुकूमत की सदियाँ गुज़रने के बाद रोमन नागरिकता प्रदान कर दी गई थी। ग़ैर-रोमन लोग ऊपर उठकर रोमन फ़ौजों के अधिकारी वर्ग के सर्वोच्च पदों तक पहुँच चुके थे और सीनेट में नियुक्त किए जाने लगे थे। 48 ईसवी में सम्राट क्लॉडियस ने सीनेट में उन अनेक ख्यातिप्राप्त गैलिकों को प्रवेश दिया था, जिन्हें, जैसा कि उसने अपने भाषण में उल्लेख किया था, "रीति-रिवाज़ों, संस्कृति और वैवाहिक रिश्तों ने हमारे साथ पूरी तरह मिला दिया था"। नकचढ़े सीनेटरों ने इन पुराने शत्रुओं को रोमन राजनैतिक तन्त्र के केन्द्र में लाने को लेकर विरोध प्रकट किया था। क्लॉडियस ने उन्हें एक असुविधाजनक वास्तविकता का स्मरण कराया था। ख़ुद उनके ज़्यादातर सीनेटोरियल परिवार उन इतालवी जनजातियों के वंशज थे, जो कभी रोमनों के ख़िलाफ़ लड़ी थीं और जिन्हें बाद में रोमन नागरिकता प्रदान कर दी गई थी। यही नहीं, सम्राट ने उन्हें यह भी याद दिलाया था कि ख़ुद उसका परिवार सेबाइन वंश का था।

ईसा की दूसरी सदी के दौरान रोम पर आइबेरिया में जन्मे ऐसे अनेक सम्राटों की हुकूमत रही थी, जिनकी रगों में शायद स्थानीय आइबेरियाई रक्त की कम से कम कुछ बूँदें प्रवाहित रही होंगी। ट्रेजन, हेड्रियन, एंटोनिनस पायस और मार्कस ऑरीलियॅस के शासनों को आम तौर से साम्राज्य के स्वर्ण-युग की रचना करने वाले शासनों की तरह देखा जाता है। इसके बाद, सारे प्रजातीय अवरोध ढहा दिए गए। सम्राट सेप्टीमियस सवेरस (193-211) लीबिया के प्यूनिक वंश का वारिस था। अल्जेबालुस (218-22) एक सीरियाई था। सम्राट फ़िलिप (244-49) को बोलचाल की भाषा में 'फ़िलिप द अरब' के नाम से जाना जाता था। साम्राज्य के नए नागरिकों ने रोमन साम्राज्यवादी संस्कृति को इस उत्साह के साथ अपना लिया था कि स्वयं साम्राज्य के ध्वस्त हो जाने के बाद भी सदियों ही नहीं, बल्कि सहस्राब्दियों तक उन्होंने साम्राज्य की भाषा में बोलना, उस ईसाई ईश्वर में आस्था रखना, जिसे साम्राज्य ने अपने एक लेवेन्ताइन प्रान्त से अपनाया था और साम्राज्य के विधानों पर चलना जारी रखा।

ऐसी ही प्रक्रिया अरब साम्राज्य में भी घटित हुई। जब सत्रहवीं सदी ईसवी में इसकी स्थापना हुई थी, तो यह अरब-मुसलमान शासक वर्ग और उसके अधीनस्थ उन मिस्री, सीरियाई, ईरानी और बर्बरों के बीच के दो-टूक विभाजन पर आधारित था। बर्बर ना तो अरब थे और ना ही मुसलमान। साम्राज्य की बहुत सारी प्रजा ने धीरे-धीरे मुस्लिम धर्म,

अरबी भाषा और एक वर्णसंकर साम्राज्यवादी संस्कृति को अपना लिया। पुराना अरब अभिजात्य वर्ग इन नव-धनाढ्यों को गहरे विद्वेष के भाव से देखता था और अपनी विशिष्ट हैसियत और पहचान के खो जाने को लेकर आशंकित था। हताश धर्मान्तरितों ने साम्राज्य और इस्लाम की दुनिया में अपनी बराबरी की हिस्सेदारी के लिए शोर मचाया। आख़िरकार, उनकी इच्छा पूरी हुई। मिस्रियों, सीरियाइयों और मेसोपोटामियनों को उत्तरोत्तर 'अरबों' के रूप में देखा जाने लगा। वहीं अरब - चाहे वे अरेबिया से आए 'प्रामाणिक' अरब रहे हों या मिस्र और सीरिया के नए टकसाली अरब रहे हो - उत्तरोत्तर ग़ैर-अरब मुसलमानों, ख़ास तौर से ईरानियों, तुर्कों और बर्बरों के अधीनस्थ होते गए। अरब साम्राज्यवादी मुहिम की सबसे बड़ी क़ामयाबी यह थी कि इसने जो साम्राज्यवादी संस्कृति गढ़ी थी, उसे उन बहुत से ग़ैर-अरब लोगों द्वारा पूरे मन से अपना लिया गया, जिन्होंने उसे क़ायम रखना, विकसित करना और प्रसारित करना जारी रखा - तब भी, जबकि मूल साम्राज्य का पतन हो चुका था और एक प्रजातीय समूह के रूप में अरब अपना प्रभुत्व खो चुके थे।

चीन में साम्राज्यवादी परियोजना की क़ामयाबी इससे भी ज़्यादा सम्पूर्ण थी। 2,000 साल से भी ज़्यादा समय तक प्रजातीय और सांस्कृतिक समूहों का एक घालमेल, जिन्हें पहले बर्बर की संज्ञा दी गई थी, क़ामयाब तरीक़े से साम्राज्यवादी चीनी संस्कृति में समाहित हो गए और हान चीनी बन गए (उनका यह नामकरण उस हान साम्राज्य के नाम पर हुआ था, जिसने 206 ईसा पूर्व से 220 ईसवी तक चीन पर शासन किया था)। चीनी साम्राज्य की चरम उपलब्धि यह है कि यह अभी भी जीवित और स्वस्थ है, हालाँकि उसे तिब्बत और शीनज्यांग जैसे इलाक़ों के अलावा एक साम्राज्य के रूप में देखना मुश्किल है। चीन की 90 प्रतिशत से ज़्यादा आबादी स्वयं के द्वारा और दूसरों के द्वारा हान के रूप में देखी जाती है।

उपनिवेशवाद को समाप्त किए जाने की पिछले कुछ दशकों की प्रक्रिया को हम इसी रूप में देख सकते हैं। आधुनिक युग के दौरान यूरोपीय लोगों ने श्रेष्ठ पश्चिमी संस्कृति के प्रसार के नाम पर विश्व के बहुत बड़े हिस्से को जीता था। वे इस क़दर कामयाब रहे थे कि अरबों लोगों ने धीरे-धीरे उस संस्कृति के महत्त्वपूर्ण हिस्सों को अपना लिया। हिन्दुस्तानियों, अफ़्रीकियों, अरबों, चीनियों तथा माओरियों ने फ़्रांसीसी, अँग्रेज़ी और स्पेनी भाषाएँ सीख लीं। उन्होंने मानव अधिकारों और आत्मनिर्णय के सिद्धान्तों में विश्वास करना शुरू कर दिया और उन्होंने उदारतावाद, पूँजीवाद, साम्यवाद, नारीवाद और राष्ट्रवाद जैसी विचारधाराओं को अपनाया।

साम्राज्यवादी चक्र

स्तर	**रोम**	**इस्लाम**	**यूरोपीय साम्राज्यवाद**
एक छोटे समूह द्वारा बड़े	रोमन रोमन साम्राज्य की स्थापना करते हैं	अरब लोग अरब ख़िलाफ़त की	यूरोपीय लोगों द्वारा यूरोपीय साम्राज्य की स्थापना की

साम्राज्य की स्थापना की जाती है		स्थापना करते हैं	जाती है
साम्राज्यवादी संस्कृति गढ़ी जाती है	ग्रीको-रोमन संस्कृति	अरब-मुस्लिम संस्कृति	पश्चिमी संस्कृति
अधीनस्थ प्रजा द्वारा साम्राज्यवादी संस्कृति को अपनाया जाता है	अधीनस्थ प्रजा लैटिन, रोमन क़ानून, रोमन राजनैतिक विचारों इत्यादि को अपनाती है	अधीनस्थ प्रजा अरबी, इस्लाम इत्यादि को अपना लेती है	अधीनस्थ प्रजा अँग्रेज़ी और फ़्रांसीसी, समाजवाद, राष्ट्रवाद, मानवाधिकार इत्यादि को अपना लेती है
अधीनस्थ प्रजा द्वारा साझा साम्राज्यवादी मूल्यों के नाम पर बराबरी की हैसियत की माँग की जाती है	इलीरियाई, गॉल और प्यूनिक साझा रोमन मूल्यों के नाम पर रोमनों के समान हैसियत की माँग करते हैं	मिस्रवासी, ईरानी और बर्बर साझा मुस्लिम मूल्यों के नाम पर अरबों के बराबर की हैसियत की माँग करते हैं	हिन्दुस्तानी, चीनी और अफ़्रीकी राष्ट्रवाद, समाजवाद, मानवाधिकार जैसे पश्चिमी साझा मूल्यों के नाम पर यूरोपीय लोगों के बराबर की हैसियत की माँग करते हैं
साम्राज्य के संस्थापक अपना प्रभुत्व खो देते हैं	एक अनूठे प्रजातीय समूह के रूप में रोमनों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। साम्राज्य का नियन्त्रण नए बहु-प्रजातीय प्रभु वर्ग के हाथों में आ जाता है	मुस्लिम दुनिया पर अरबों का नियन्त्रण समाप्त हो जाता है और वह बहु-प्रजातीय मुस्लिम प्रभुवर्ग के हाथों में आ जाता है	यूरोपीय भूमण्डलीय दुनिया पर अपना नियन्त्रण खो देते हैं और वह नियन्त्रण व्यापक रूप से पश्चिमी मूल्यों और चिन्तन-पद्धति में आस्था रखने वाले बहु-प्रजातीय प्रभु वर्ग के हाथों में आ जाता है
साम्राज्यवादी संस्कृति फलना-फूलना और विकसित होना जारी रखती है	इलीरियाई, गॉल और प्यूनिक अपनाई गई रोमन संस्कृति को विकसित करना जारी रखते हैं	मिस्रवासी, ईरानी और बर्बर अपनाई गई मुस्लिम संस्कृति को विकसित करना जारी रखते हैं	हिन्दुस्तानी, चीनी और अफ़्रीकी अपनाई गई पश्चिमी संस्कृति को विकसित करना जारी रखते हैं

बीसवीं सदी के दौरान, जिन स्थानीय समूहों ने पश्चिमी मूल्यों को अपना लिया था, उन्होंने इन्हीं मूल्यों की दुहाई देते हुए अपने यूरोपीय विजेताओं की बराबरी का दावा किया। अनेक उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्ष आत्मनिर्णय, समाजवाद और मानव अधिकारों के बैनरों तले ही किए गए, जो सारे के सारे पश्चिमी विरासतों के हिस्से थे। जिस तरह मिस्र के लोगों, ईरानियों और तुर्कों ने उस साम्राज्यवादी संस्कृति को अपनाया और उसके साथ सामंजस्य स्थापित कर लिया था, जो उन्होंने मूल अरब विजेताओं से विरासत में प्राप्त की थी, उसी तरह हिन्दुस्तानियों, अफ़्रीकियों और चीनियों ने अपने पूर्व अधिपतियों की साम्राज्यवादी संस्कृति को स्वीकार कर लिया है, और उसको अपनी ज़रूरतों और परम्पराओं के मुताबिक़ ढालने की कोशिश की है।

इतिहास के भले लोग और बुरे लोग

इतिहास को अच्छे लोगों और बुरे लोगों में बाँटने और सारे साम्राज्यों को बुरे लोगों के बीच रखने का लोभ जागता है। आख़िरकार, लगभग सारे साम्राज्य रक्तपात के माध्यम से खड़े किए गए थे और उन्होंने अपनी सत्ता को दमन और युद्ध के माध्यम से क़ायम रखा था। तब भी आज की ज़्यादातर संस्कृतियाँ साम्राज्यवादी विरासतों पर आधारित हैं। अगर साम्राज्य अपने आप में बुरे हैं, तो यह चीज़ हमारे बारे में क्या बताती है?

ऐसे वैचारिक सम्प्रदाय और राजनैतिक आन्दोलन हैं, जो मानव संस्कृति को साम्राज्यवाद के दूषण से मुक्त कर उसको वह शक्ल देना चाहते हैं, जो उनके मुताबिक़ निष्कलंक, शुद्ध, प्रामाणिक सभ्यता होगी। ये विचारधाराएँ अपने बेहतर क्षणों में बचकानी हैं, अपने बदतर क्षणों में वे भौंडे राष्ट्रवाद और कट्टरता के खोखले पाखण्ड की भूमिका निभाती हैं। शायद आप यह तर्क दे सकते हैं कि असंख्य संस्कृतियों में कुछ संस्कृतियाँ ज्ञात इतिहास के उद्भवकाल में अपने शुद्ध, निष्कलंक और दूसरे समाजों की मिलावट से अछूते रूप में प्रकट हुई थीं, लेकिन उस उद्भवकाल की कोई भी संस्कृति ऐसा दावा तर्कसंगत ढंग से नहीं कर सकती, निश्चय ही ऐसी कोई संस्कृति तो नहीं ही कर सकती, जिसका आज पृथ्वी पर अस्तित्व है। तमाम मानव-सभ्यताएँ कम से कम आंशिक रूप से साम्राज्यों और साम्राज्यवादी सभ्यताओं की विरासत हैं, और ऐसी कोई शल्य चिकित्सा नहीं है, जो मरीज़ की हत्या किए बग़ैर इन साम्राज्यवादी विरासतों को काट कर अलग सकती हो।

उदाहरण के लिए, आज के स्वतन्त्र भारतीय गणराज्य और अँग्रेज़ी राज के बीच के प्रेम और नफ़रत के रिश्ते के बारे में सोचिए। हिन्दुस्तान पर अँग्रेज़ों की जीत और उपनिवेशीकरण ने लाखों हिन्दुस्तानियों की जानें लीं और सैकड़ों लाखों हिन्दुस्तानियों को निरन्तर अपमान और शोषण सहना पड़ा। तब भी ऐसे बहुत से हिन्दुस्तानी थे, जिन्होंने धर्मान्तरितों से उत्साह के साथ स्वराज और मानवाधिकार जैसे पश्चिमी विचारों को अपनाया था, और उस वक़्त उन्हें निराशा हुई, जब अँग्रेज़ों ने अपने ही उन स्वघोषित मूल्यों पर टिके रहने से इनकार कर दिया, जिनके तहत उनसे उम्मीद की जाती थी कि वे स्थानीय हिन्दुस्तानियों को अँग्रेज़ प्रजा के समान अधिकार या स्वाधीनता प्रदान करेंगे।

तब भी, आधुनिक हिन्दुस्तानी राज्य ब्रिटिश साम्राज्य की ही एक सन्तान है। अँग्रेज़ों ने इस उपमहाद्वीप के निवासियों की हत्याएँ कीं, उनको आधात पहुँचाए, उन पर अत्याचार किए, लेकिन उन्होंने आपस में लड़ते राजों-रजवाड़ों रियासतों और जनजातियों की विस्मयकारी विविधता में एकत्व लाते हुए एक साझा राजनैतिक चेतना और एक ऐसे देश की भी रचना की, जो कमोबेश एक राजनैतिक इकाई के रूप में काम करता था। उन्होंने हिन्दुस्तानी न्याय-प्रणाली की नींव रखी, उसके प्रशासनिक ढाँचे की रचना की और रेलमार्गों का वह जाल खड़ा किया, जो आर्थिक एकीकरण के सन्दर्भ में निर्णायक महत्त्व रखता था। स्वाधीन भारत ने अपनी शासन-पद्धति के रूप में पश्चिमी लोकतन्त्र के अँग्रेज़ी रूप को अपनाया। अँग्रेज़ी आज भी इस उपमहाद्वीप की सम्पर्क भाषा है, वह मध्यस्थ ज़ुबान जिसे हिन्दी, तमिल और मलयालम भाषी आपसी आदन-प्रदान के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं। हिन्दुस्तानी अत्यन्त गर्मजोश क्रिकेट खिलाड़ी और चाय-प्रेमी हैं। यह खेल और पेय दोनों ही अँग्रेज़ी विरासत हैं। हिन्दुस्तान में चाय की वाणिज्यिक स्तर की खेती की उन्नीसवीं सदी के मध्य में अँग्रेज़ ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा की गई शुरुआत के पहले तक इसका कोई अस्तित्व नहीं था। ये नकचढ़े अँग्रेज़ साहब लोग थे, जिन्होंने समूचे उपमहाद्वीप में चाय पीने का रिवाज़ फैलाया था।

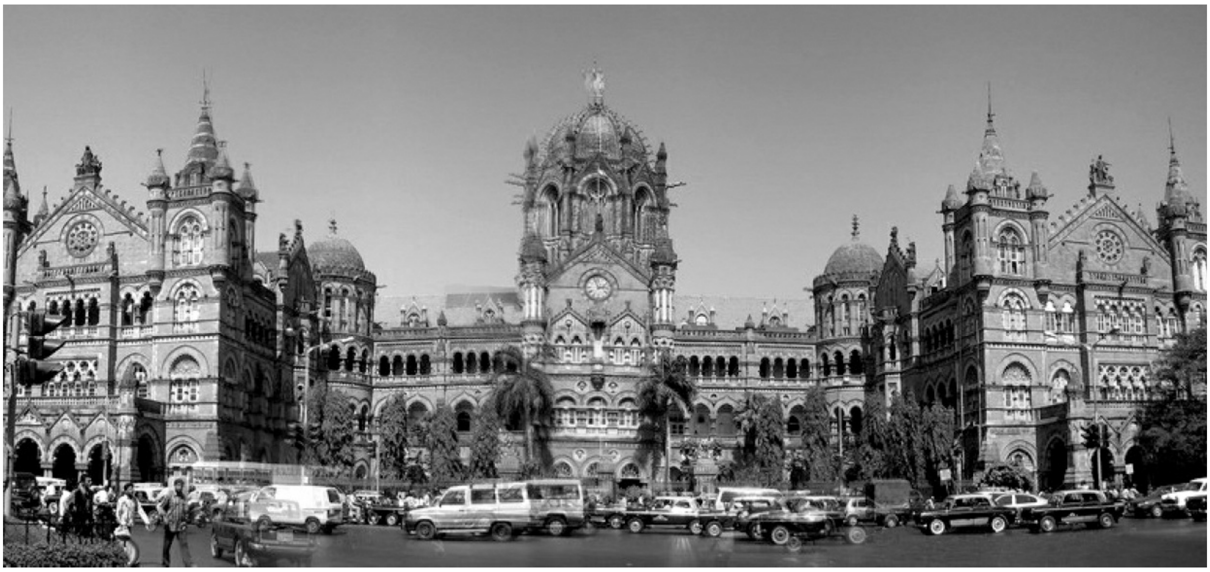

28. मुम्बई का छत्रपति शिवाजी रेलवे स्टेशन। इसने अपने जीवन की शुरुआत विक्टोरिया स्टेशन, बॉम्बे के रूप में की थी। अँग्रेज़ों ने इसका निर्माण नव-गोथिक शैली में किया था, जो उन्नीसवीं सदी के आख़िरी दौर में ब्रिटेन में लोकप्रिय थी। एक हिन्दू राष्ट्रवादी सरकार ने शहर और स्टेशन दोनों के नाम बदल दिए, लेकिन इस आलीशान इमारत को गिराने की कोई प्रबल इच्छा नहीं दर्शाई, बावजूद इसके कि इसका निर्माण विदेशी दमनकर्ताओं ने किया था।

29. ताजमहल। 'प्रामाणिक' भारतीय संस्कृति का उदाहरण या मुस्लिम साम्राज्यवाद की विदेशी रचना?

कितने हिन्दुस्तानी होंगे, जो आज लोकतन्त्र, अँग्रेज़ी, रेलवे नेटवर्क, न्याय-प्रणाली, क्रिकेट और चाय से इस आधार पर छुटकारा पाने के लिए जनमत-संग्रह के पक्ष में होंगे कि ये साम्राज्यवादी विरासतें हैं? और अगर वे ऐसा करते भी हैं, तो क्या इस मुद्दे का फ़ैसला जनमत-संग्रह से कराते हुए वे अपने पूर्व अधिपतियों के प्रति अपने ऋण का प्रदर्शन नहीं कर रहे होंगे?

अगर हम अत्याचारी साम्राज्य की विरासत को इस उम्मीद में पूरी तरह से अस्वीकार भी कर दें कि ऐसा करके हम उसके पहले की 'प्रामाणिक' संस्कृतियों की पुनर्रचना और रक्षा कर रहे होंगे, तो पूरी सम्भावना है कि हम किसी और चीज़ का नहीं, बल्कि उससे भी पहले के और उतने ही अत्याचारी किसी साम्राज्य का बचाव कर रहे हों। जो लोग अँग्रेज़ी राज के हाथों भारतीय संस्कृति को विकृत किए जाने को लेकर असन्तोष जताते हैं, वे अनजाने में ही मुग़ल साम्राज्य और दिल्ली की विजेता सल्तनत का पवित्रीकरण करते हैं। और जो भी कोई लोग इस 'प्रामाणिक भारतीय संस्कृति' को मुस्लिम साम्राज्यों के विजातीय प्रभाव से उबारने की कोशिश करते हैं, वे गुप्त साम्राज्य, कुषाण साम्राज्य और मौर्य साम्राज्य का पवीत्रीकरण करते हैं। अगर कोई कट्टर हिन्दू राष्ट्रवादी अँग्रेज़ आक्रान्ताओं द्वारा छोड़ी गई मुम्बई के मुख्य रेलवे स्टेशन विक्टोरिया टर्मिनस जैसी तमाम इमारतों को नष्ट करने पर उतारू हो जाता है, तो वह मुसलमान आक्रान्ताओं द्वारा छोड़ी

गई ताजमहल जैसी इमारतों का क्या करेगा?

वाक़ई कोई नहीं जानता कि सांस्कृतिक उत्तराधिकार के इस पेचीदा सवाल का हल कैसे निकाला जाए। हम जो भी रास्ता चुनें, पहला क़दम इस दुविधा की पेचीदगी को पहचानना और इस बात को स्वीकार करना होगा कि अतीत को सरलीकृत ढंग से भले लोगों और बुरे लोगों में बाँटना हमें कहीं नहीं ले जाएगा। जब तक हम यह स्वीकार करने के इच्छुक ना हों कि हम आम तौर से बुरे लोगों का अनुसरण करते हैं। ज़ाहिर है हम ऐसा ही करते हैं।

नया भूमण्डलीय साम्राज्य

200 ईसा पूर्व के आस-पास से ही ज़्यादातर मनुष्य साम्राज्यों में रहे हैं। इसकी पूरी सम्भावना प्रतीत होती है कि भविष्य में भी मनुष्य साम्राज्य में ही रहेंगे, लेकिन इस बार यह साम्राज्य सच्चे अर्थों में भूमण्डलीय होगा। समूची दुनिया पर हुकूमत का साम्राज्यवादी सपना आसन्न हो सकता है।

इक्कीसवीं सदी के आगे बढ़ने के साथ ही राष्ट्रवाद बहुत तेज़ी के साथ अपना आधार खोता जा रहा है। लोग उत्तरोत्तर यह विश्वास करने लगे हैं कि सारी मानव-जाति किसी एक ख़ास राष्ट्रीयता की सदस्य होने के बजाय राजनैतिक प्रभुत्व का वैध स्रोत है, और समूची मानव प्रजाति के मानवाधिकारों की हिफ़ाज़त और उसके हितों की रक्षा राजनीति की मार्गदर्शक रोशनी होनी चाहिए। अगर ऐसा है, तो लगभग 200 स्वतन्त्र राज्यों का होना सहयोगी होने के बजाय एक बाधा है। चूँकि स्वीडी, इंडोनेशियाई और नाइज़ीरियाई समान मानवाधिकारों के पात्र हैं, ऐसे में उनकी हिफ़ाज़त करना क्या एक भूमण्डलीय सरकार के लिए ज़्यादा आसान ना होगा?

बर्फ़ की सतहों के पिघलने जैसी बुनियादी भूमण्डलीय समस्याओं का उभरना स्वाधीन राष्ट्र-राज्यों की बची खुची वैधता को धीरे-धीरे नष्ट कर रहा है। कोई भी सम्प्रभु राज्य अपने दम पर ग्लोबल वार्मिंग से निपटने में सक्षम नहीं होगा। चीन को स्वर्ग से मिला शासनादेश स्वर्ग द्वारा मानव-जाति की समस्याओं को हल करने के लिए दिया गया था। स्वर्ग का आधुनिक शासनादेश ओज़ोन की परत में छेद और ग्रीनहाउस गैसों के संचय जैसी स्वर्ग की समस्याओं को हल करने के लिए मानव-जाति द्वारा दिया जाएगा। भूमण्डलीय साम्राज्य का रंग मुमकिन है हरा हो।

यद्यपि दुनिया अभी 2018 में भी राजनैतिक इकाइयों में विभाजित है, लेकिन राज्य बहुत तेज़ी के साथ अपनी स्वाधीनता खोते जा रहे हैं। कोई नहीं है, जो स्वतन्त्र आर्थिक नीतियों को क्रियान्वित कर सकता हो, अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ युद्ध की घोषणा कर सकता हो और युद्ध छेड़ सकता हो, या कि अपने आन्तरिक मामलों को अपने ढंग से संचालित कर सकता हो। राज्य भूमण्डलीय बाज़ारों के कुचक्रों, भूमण्डलीय कम्पनियों तथा ग़ैर सरकारी संगठनों की दख़लन्दाज़ी और भूमण्डलीय जनमत तथा अन्तरराष्ट्रीय न्याय व्यवस्था के निरीक्षण के अधीन होते जा रहे हैं। राज्य वित्तीय व्यवहार, पर्यावरणपरक नीति और न्याय के मामलों में भूमण्डलीय मापदण्डों के मुताबिक़ चलने को बाध्य हैं। पूँजी, श्रम और सूचना के अत्यन्त वेगवान प्रवाह दुनिया को रूपान्तरित कर

रहे हैं और आकार दे रहे हैं। राज्यों की सरहदों और अभिमतों के प्रति अनादर बढ़ता जा रहा है।

हमारी नज़रों के सामने गढ़ा जा रहा भूमण्डलीय साम्राज्य किसी राज्य-विशेष या किसी ख़ास प्रजातीय समूह द्वारा शासित नहीं है। काफ़ी कुछ पूर्व रोमन साम्राज्य की ही तरह यह बहुप्रजातीय कुलीन वर्ग द्वारा शासित है और एक साझा संस्कृति और साझा हितों से बँधा है। समूची दुनिया में ज़्यादा से ज़्यादा उद्यमियों, इंजीनियरों, विशेषज्ञों, अध्येताओं, पैरोकारों और प्रबन्धकों से इस साम्राज्य से जुड़ने का आह्वान किया जा रहा है। उनके लिए इस पर विचार करना ज़रूरी है कि वे इस साम्राज्यवादी पुकार को सुनें या अपने राज्य और समाज के प्रति वफ़ादार बने रहें। इनमें से ज़्यादा से ज़्यादा लोग इस साम्राज्य को चुन रहे हैं।

12

मज़हब का सिद्धान्त

मध्य एशियाई मरु उद्यान में खड़े नगर समरकन्द के मध्ययुगीन बाज़ार में सीरियाई सौदागर महीन चीनी रेशम पर अपना हाथ फेरते थे, घास के मैदानों से आए उग्र आदिवासी सुदूर पश्चिम से लाए गए फीके-पीले बालों वाले ग़ुलामों की ताज़ा खेप का प्रदर्शन करते थे और दुकानदार अजीबोग़रीब लिपियों तथा अज्ञात राजाओं के चित्रों से युक्त चमकीले सोने के सिक्कों को अपनी जेबों में भरते थे। यहाँ, पूरब और पश्चिम, उत्तर और दक्षिण के बीच के उस युग के बड़े चौराहों में से एक चौराहे पर मानव-जाति का एकीकरण एक रोज़मर्रा की चीज़ हुआ करती थी। यही प्रक्रिया घटित होते तब देखी जा सकती थी, जब 1281 में कुबलई खान की फ़ौज जापान पर आक्रमण करने के लिए एकत्र हुई थी। रोमिल खालें पहने मंगोल घुड़सवार बाँस के टोप पहने चीनी पैदल सैनिकों के साथ गप लगाते थे, पियक्कड़ कोरियाइयों की सहायक सेना के सिपाही दक्षिणी चीनी समुद्र के गुदनाधारी नौसैनिकों से झगड़ते थे, मध्य एशिया से अए इंजीनियर भौंचक होकर यूरोपीय साहसिकों के रोमांचक क़िस्से सुनते थे और ये सारे के सारे लोग एक सम्राट के आदेशों का पालन करते थे।

इस बीच, मक्का के पाक काबा में मानवीय एकीकरण की प्रक्रिया दूसरे साधनों से जारी थी। अगर आप मक्का के हज यात्री के रूप में सन् 1300 में इस्लाम के सबसे पवित्र तीर्थस्थल की परिक्रमा कर रहे होते, तो मुमकिन है कि आप मेसोपोटामिया के किसी दल के साथ होते, जिनके लबादे हवा में फरफरा रहे होते, जिनकी आँखें आह्लाद से चमक रही होतीं, और उनकी ज़ुबानें ईश्वर के एक के बाद एक निन्यान्वे नामों को दोहरा रही होतीं। आगे मुमकिन है आपको एशियाई घास के मैदानों से आया कोई मौसम का मारा तुर्क वृद्धि पुरुष छड़ी टेकता और विचारों में डूबा अपनी दाढ़ी सहलाता दिख जाता। एक तरफ़, मुमकिन है स्याह काली चमड़ी पर सोने के आभूषणों की चमक लिए माली

की अफ़्रीकी सल्तनत से आए मुसलमानों का जत्था होता। लौंग, हल्दी, इलायची और समुद्री नमक की मिलीजुली ख़ुशबू ने हिन्दुस्तान या शायद सुदूर पूर्व के रहस्यमय मसालों वाले द्वीपों से आए बन्धुओं की मौजूदगी का अहसास कराया होता।

आज मज़हब को अक्सर भेदभाव, असहमति और फूट के स्रोत के रूप में देखा जाता है, लेकिन, वस्तुतः, धर्म मानव-जाति का एकीकरण करने वाली पैसे और साम्राज्यों के साथ-साथ तीसरी बड़ी शक्ति रही है। चूँकि सारी सामाजिक व्यवस्थाएँ और श्रेणीबद्ध क्रम कल्पित हैं, वे सब नाज़ुक हैं और जितना ही बड़ा कोई समाज होता है, उतना ही वह नाज़ुक होता है। मज़हब की सबसे निर्णायक महत्त्व की ऐतिहासिक भूमिका इन नाज़ुक संरचनाओं को अतिमानवीय वैधता प्रदान करने की रही है। मज़हब इस बात पर ज़ोर देते हैं कि हमारे विधान इंसानी सनक के नतीज़े नहीं हैं, बल्कि वे एक परम, सर्वोच्च सत्ता द्वारा दिए गए आदेश हैं। इससे कम से कम कुछ बुनियादी नियमों को चुनौती से परे रखने और इस तरह समाज की स्थिरता को सुनिश्चित करने में मदद मिलती है।

इस तरह मज़हब को इस रूप में परिभाषित किया जा सकता है कि वह इंसानी मानकों और मूल्यों की ऐसी व्यवस्था है, जो एक अतिमानवीय व्यवस्था में आस्था पर आधारित है। इसमें दो भिन्न कसौटियाँ सामने आती हैं :

1. मज़हब मानता है कि एक अतिमानवीय व्यवस्था है, जो मनुष्यों की मर्ज़ी या समझौतों की उपज नहीं है। व्यावसायिक फ़ुटबॉल कोई मज़हब नहीं है, क्योंकि इसके बहुत से क़ायदों, दस्तूरों और अक्सर अजीबोग़रीब रीति-रिवाज़ों के बावजूद, हर कोई जानता है कि स्वयं मनुष्यों ने फ़ुटबॉल को ईजाद किया है, फ़ीफ़ा किसी भी क्षण गोल के आकार को बढ़ा सकता है या ऑफ़साइड नियम को बदल सकता है।
2. अतिमानवीय व्यवस्था पर आधारित मज़हब ऐसे मानकों और मूल्यों को निर्धारित करता है, जिन्हें वह बन्धनकारी मानता है। बहुत से पश्चिमी लोग आज भूतों, परियों, पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं, लेकिन ये विश्वास नैतिक और आचरणपरक मापदण्डों के स्रोत नहीं हैं। ये अपने आप में मज़हब की रचना नहीं करते।

व्यापक सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्थाओं को वैधीकृत करने की अपनी क्षमता के बावजूद सारे मज़हबों ने इस सम्भावना को चरितार्थ नहीं किया। अपने संरक्षण में इंसानों के पृथक-पृथक समूहों से आबाद किसी क्षेत्र के बहुत बड़े विस्तार को संगठित करने के लिए मज़हब में दो और गुणों का होना ज़रूरी है। इसे एक ऐसी सार्वभौमिक अतिमानवीय व्यवस्था को सहारा देना चाहिए, जो सर्वदा और सर्वत्र सच हो। दूसरे शब्दों में, इसका सार्वभौमिक और प्रचारधर्मी होना अनिवार्य है।

इतिहास के सर्वाधिक सुविख्यात मज़हब, जैसे कि इस्लाम और बौद्ध धर्म, सार्वभौम और प्रचारधर्मी हैं। नतीज़तन, लोग ऐसा मानने की ओर प्रवृत्त होते हैं कि सारे मज़हब इन्हीं के जैसे होते हैं। वस्तुतः, ज़्यादातर प्राचीन मज़हब स्थानीय और विशिष्ट होते थे। इनके अनुयायी स्थानीय देवी-देवताओं और आत्माओं में विश्वास रखते थे और सारी मानव प्रजाति को अपने मज़हब में मिला लेने में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं होती थी। जहाँ तक हमारी जानकारी है, सार्वभौमिक और प्रचारधर्मी मज़हबों के प्रकट होने की

शुरुआत ईसा पूर्व पहली सहस्राब्दी में ही हुई थी। इनका प्रादुर्भाव इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण क्रान्तियों में एक था और इसने मानव-जाति के एकीकरण में महत्त्वपूर्ण योगदान किया, काफ़ी हद तक वैसा ही योगदान, जैसा सार्वभौमिक साम्राज्यों और सार्वभौमिक पैसे के प्रादुर्भाव ने किया था।

मेमनों को ख़ामोश करना

जब जीववाद एक प्रभावी आस्था-पद्धति हुआ करती थी, तब मानवीय मानकों और मूल्यों को बहुत सारी दूसरी सत्ताओं, जैसे कि पशुओं, वनस्पतियों, परियों और भूत-प्रेतों के दृष्टिकोण और हितों को ध्यान में रखना होता था। उदाहरण के लिए, मुमकिन है कि गंगा घाटी के किसी भोजन-खोजी क़बीले ने अंजीर के किसी विशेष बड़े वृक्ष को काटने से लोगों को रोकने का नियम बना रखा हो, क्योंकि उसका मानना हो कि वैसा करने से अंजीर के वृक्ष की आत्मा नाराज़ हो जाएगी और बदला लेगी। सिन्धु घाटी में रह रहे किसी अन्य भोजन-खोजी क़बीले ने मुमकिन है लोगों पर सफ़ेद पूँछ वाली लोमड़ियों का शिकार करने पर रोक लगा रखी हो, क्योंकि एक सफ़ेद पूँछ वाली लोमड़ी ने एक बार एक ज्ञानी वृद्धि महिला के सामने यह रहस्य उजागर किया था कि क़बीले को बहुमूल्य ओब्सीडियन कहाँ पर मिल सकता है।

इस तरह के मज़हबों का दृष्टिकोण बहुत स्थानीय हुआ करता था और ये ख़ास स्थलों, जलवायु और चीज़ों पर ज़ोर दिया करते थे। बहुत सारे भोजन-खोजी अपना समूचा जीवन एक ऐसे इलाक़े में बिता देते थे, जो एक हज़ार वर्गकिलोमीटर से ज़्यादा नहीं होता था। जीवित बने रहने के लिए किसी घाटी विशेष के बाशिन्दों को उनकी घाटी का नियमन करने वाली अतिमानवीय व्यवस्था को समझना और उसके मुताबिक़ अपने आचरण को ढालना ज़रूरी होता था। किसी दूर की घाटी के बाशिन्दों को उन्हीं नियमों पर चलने के लिए राज़ी करने की कोशिश करना व्यर्थ था। सिन्धु घाटी के लोग गंगा घाटी के लोगों को सफ़ेद पूँछ वाली लोमड़ी का शिकार ना करने पर राज़ी करने के लिए वहाँ अपने प्रचारकों को भेजने की परवाह नहीं करते थे।

कृषि क्रान्ति मज़हबी क्रान्ति के साथ आई प्रतीत होती है। शिकारी-भोजन-संग्रहकर्ता जिन वनस्पतियों को इकट्ठा करते थे और जिन जानवरों का पीछा करते थे, उन्हें हैसियत में होमो सेपियन्स की बराबरी पर रख कर देखा जा सकता है। यह तथ्य कि मनुष्य भेड़ का शिकार करता था, भेड़ को मनुष्य से हीनतर नहीं बना देता था, ठीक उसी तरह से जैसे कि शेर द्वारा मनुष्य का शिकार किया जाना मनुष्य को शेर से हीनतर नहीं बना देता था। प्राणी एक दूसरे के साथ सीधे सम्पर्क क़ायम करते थे और अपने साझा आवास-स्थल को नियन्त्रित करने वाले नियमों को आपस में मिलजुल कर तय करते थे। इसके विपरीत, किसान वनस्पतियों और जानवरों पर स्वामित्व क़ायम करते थे और उन्हें अपनी अँगुलियों पर नचाते थे। वे अपने स्वामित्व की वस्तुओं के साथ समझौता वार्ता करके अपने को नीचे नहीं गिरा सकते थे। इस तरह कृषि क्रान्ति का पहला धार्मिक प्रभाव वनस्पतियों और जीवों को वार्ता की आध्यात्मिक गोल मेज़ पर बैठे बराबरी के सदस्यों की हैसियत से बेदख़ल कर उन्हें सम्पत्ति में बदल देना था।

लेकिन इसने एक बड़ी समस्या खड़ी कर दी। किसान भले ही अपनी भेड़ों पर पूर्ण नियन्त्रण की इच्छा रखते रहे हों, लेकिन वे अच्छी तरह से जानते थे कि उनका यह नियन्त्रण सीमित था। वे भेड़ों को बाड़े में बन्द करके रख सकते थे, नर भेड़ों को बधिया कर सकते थे और चुनिन्दा ढंग से मादा भेड़ों का प्रजनन करा सकते थे, तब भी वे यह सुनिश्चित नहीं कर सकते थे कि भेड़ें स्वस्थ मेमनों का गर्भधारण कर उनको ही जन्म दें, ना ही वे संघातक महामारियों के प्रकोप को रोक सकते थे। तब फिर झुण्ड की उत्पादकता की हिफ़ाज़त कैसे की जाती?

देवताओं के उद्भव की एक प्रमुख परिकल्पना यह तर्क पेश करती है कि देवताओं ने इसलिए महत्त्व हासिल किया क्योंकि उन्होंने इस समस्या का एक निदान उपलब्ध कराया था। देवताओं, जैसे कि उर्वरता की देवी, आकाश देव और औषधि देव की हैसियत उस वक़्त केन्द्रीय हो उठी, जब वनस्पतियों और पशुओं ने बोलने की अपनी क्षमता खो दी और देवताओं की मुख्य भूमिका मनुष्यों और गूँगी वनस्पतियों तथा जानवरों के बीच मध्यस्थता करने की हो गई। प्राचीन मिथकों का एक बहुत बड़ा हिस्सा वस्तुतः एक वैधानिक अनुबन्ध है, जिसमें मनुष्य वनस्पतियों और जानवरों पर स्वामित्व के बदले देवताओं के प्रति शाश्वत भक्ति का वचन देते हैं - बुक ऑफ़ जैनेसिस के शुरुआती अध्याय इसका एक प्रमुख उदाहरण हैं। कृषि क्रान्ति के बाद हज़ारों सालों तक मनुष्यों द्वारा दैवीय शक्तियों के लिए मेमनों, वाइन और केक की आहुति देना मज़हबी कर्मकाण्ड का मुख्य हिस्सा हुआ करता था, जिसके बदले में ये दैवीय शक्तियाँ भरपूर फ़सलों और उपजाऊ रेवड़ों का आश्वासन देती थीं।

शुरुआत में जीववादी व्यवस्था के अन्य सदस्यों, जैसे कि चट्टानों, झरनों, प्रेतों और दैत्यों पर कृषि क्रान्ति का बहुत थोड़ा-सा प्रभाव था, लेकिन ये भी धीरे-धीरे नए देवताओं के पक्ष में अपनी हैसियत खोते गए। जब तक लोग अपना पूरा जीवन कुछ सौ वर्ग किलोमीटर के सीमित क्षेत्र में बिताते रहे, उनकी ज़्यादातर ज़रूरतें स्थानीय आत्माओं द्वारा पूरी होती रहीं, लेकिन जैसे ही राज्यों और व्यापारिक तन्त्रें का विस्तार हुआ, लोगों को ऐसी सत्ताओं से सम्पर्क बनाने की ज़रूरत पड़ी, जिनकी शक्ति और प्रभुता का विस्तार समूचे राज्य या समूचे व्यापारिक क्षेत्र को समेटता था।

इन ज़रूरतों को पूरा करने की कोशिश में बहुदेववादी मज़हबों का प्रादुर्भाव हुआ (बहुदेववादी = polytheistic, जिसकी व्युत्पत्ति ग्रीक भाषा के poly = बहु और theos = देवता से हुई है)। ये मज़हब दुनिया को शक्तिशाली देवताओं, जैसे कि उर्वरता की देवी, वर्षा का देवता और युद्ध का देवता के एक समूह द्वारा नियन्त्रित दुनिया के रूप में देखते थे। मनुष्य इन देवताओं से फ़रियाद कर सकते थे और अगर इन देवताओं को भक्ति और चढ़ावा प्राप्त हुआ, तो वे वर्षा, विजय और आरोग्य प्रदान करने की कृपा करते थे।

बहुदेववाद के आगमन के साथ जीववाद पूरी तरह से लुप्त नहीं हो गया था। दैत्य, परियाँ, पवित्र पत्थर, पवित्र झरने और पवित्र वृक्ष लगभग सभी बहुदेववादी मज़हबों के अन्दरूनी हिस्से बने रहे। ये रूहें बड़े देवताओं के मुक़ाबले बहुत कम महत्त्व रखती थीं, लेकिन वे बहुत से साधारण लोगों की दुनियावी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त थीं। जहाँ राजा अपनी राजधानी के नगर में युद्ध के देवता को दर्जनों मोटे-ताजे मेमनों की बलि देते हुए बर्बरों पर अपनी विजय के लिए प्रार्थना करता था, वहीं किसान अपनी

झोंपड़ी में अंजीर-वृक्ष की परी की अर्चना में दीपक जलाकर उससे अपने बीमार बेटे के चंगा होने में सहायता की याचना करता था।

लेकिन महान देवताओं के उद्भव का सबसे बड़ा प्रभाव भेड़ों या दैत्यों पर नहीं, बल्कि होमो सेपियन्स की हैसियत पर पड़ा। जीववादी मानते थे कि मनुष्य दुनिया में वास करने वाले बहुत से प्राणियों में से महज़ एक प्राणी हैं। दूसरी तरफ़, बहुदेववादियों ने दुनिया को उत्तरोत्तर देवताओं और मनुष्यों के रिश्ते के एक प्रतिबिम्ब के रूप में देखा। हमारी प्रार्थनाएँ, हमारी कुर्बानियाँ, हमारे पाप और हमारे सत्कर्म समूची पारिस्थितिकी की नियति को तय करते थे। एक भीषण बाढ़ अरबों चींटियों, टिड्डों, कछुओं, हिरणों, जिराफ़ों और हाथियों को महज़ इसलिए बहा ले जा सकती थी क्योंकि कुछ बेवकूफ़ सेपियन्स ने देवताओं को कुपित कर दिया हो सकता था। इस तरह बहुदेववाद ने ना सिर्फ़ देवताओं की हैसियत, बल्कि मानव-जाति की हैसियत में भी इज़ाफ़ा किया। पुरानी जीववादी व्यवस्था के कम भाग्यशाली सदस्यों ने अपनी महत्ता खो दी और वे देवताओं के साथ मनुष्य के रिश्ते के महान नाटक में या तो एक्स्ट्राओं की भूमिका में आ गए या ख़ामोश सजावट बनकर रह गए।

मूर्तिपूजा के लाभ

दो हज़ार वर्षों के एकेश्वरवाद के नतीज़े में ज़्यादातर पश्चिमी लोग बहुदेववाद को एक जाहिल और बचकानी मूर्तिपूजा के रूप में देखने लगे हैं। ये एक नाजायज़ रूढ़ि है। बहुदेववाद के आन्तरिक तर्क को समझने के लिए बहुत-से देवताओं में आस्था को पुष्ट करने वाले केन्द्रीय विचार को समझना ज़रूरी है।

बहुदेववाद समूची सृष्टि का नियमन करने वाली किसी एक सत्ता या विधान के अस्तित्व का अनिवार्यतः प्रतिवाद नहीं करता। वस्तुतः, बहुत से बहुदेववादी और जीववादी मज़हब भी विभिन्न देवताओं, दैत्यों और पवित्र पत्थरों के पीछे एक सर्वोच्च सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। प्राचीन ग्रीक बहुदेववाद में ज़्यूस, हेरा, अपोलो और उनके साथी एक सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी सत्ता फेट (मोइरा, अनांकी) के अधीन थे। पश्चिम अफ़्रीका के बहुदेववादी मज़हब योरुबा में सारे देवताओं का जन्म सर्वोच्च देवता ओलोड्युमारा से हुआ था और वे सारे देवता उसी के अधीन थे। हिन्दू बहुदेववाद में एक ही आत्मा असंख्य देवताओं और आत्माओं, मानव-जाति, और जैविक और भौतिक जगत को नियन्त्रित करती है। आत्मा समूचे विश्व और प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक वस्तु का शाश्वत सत्त्व है।

बहुदेववाद की बुनियादी अन्तर्दृष्टि, जो इसको एकेश्वरवाद से अलग करती है, वह यह है कि जगत का नियमन करने वाली सर्वोच्च सत्ता किसी भी तरह के स्वार्थों और पूर्वाग्रहों से रहित है, और इसलिए मनुष्यों की लौकिक आकांक्षाओं, सरोकारों और चिन्ताओं से उदासीन है। इससे युद्ध में विजय के लिए, आरोग्य होने के लिए या वर्षा के लिए याचना करना व्यर्थ है, क्योंकि इसके सर्वव्यापी दृष्टिकोण से इसे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि कोई राज्य जीतता है या हारता है, कोई नगर समृद्ध होता है या उसका क्षरण होता है, कोई व्यक्ति स्वास्थ्य लाभ करता है या मरता है। ग्रीक लोग अपनी कोई बलि फेट पर बरबाद

नहीं करते थे, हिन्दुओं ने आत्मा के लिए कोई मन्दिर नहीं बनवाया।

विश्व की सर्वोच्च सत्ता से सम्पर्क स्थापित करने की एकमात्र वजह सारी आकांक्षाओं को त्याग देना और इष्ट के साथ-साथ अनिष्ट को - यहाँ तक कि पराजय, निर्धनता, रोग और मृत्यु को भी - अंगीकार करना ही होगी। इस तरह साधु या संन्यासी कहे जाने वाले कुछ हिन्दू आत्मा के साथ अद्वैत स्थापित करने और इस तरह मोक्ष की प्राप्ति की साधना में अपना पूरा जीवन लगा देते हैं। इस बोध की ख़ातिर कि इस शाश्वत परिप्रेक्ष्य में सारी लौकिक आकांक्षाएँ और भय अर्थहीन और क्षणभंगुर चीज़ें हैं, वे दुनिया को इसी बुनियादी धारणा के दृष्टिकोण से देखने की कोशिश करते हैं।

लेकिन ज़्यादातर हिन्दू साधु नहीं हैं। वे सांसारिक सरोकारों के दलदल में गहरे धँसे हैं, जहाँ आत्मा से कोई ख़ास मदद नहीं मिलती। ऐसे मामलों में सहायता के लिए हिन्दू आंशिक शक्तियों वाले देवताओं की शरण में जाते हैं। मनुष्य इन आंशिक शक्तियों के साथ सौदे करते हैं और युद्ध जीतने और स्वास्थ्य लाभ के लिए उनकी सहायता पर भरोसा करते हैं। ऐसी अपेक्षाकृत छोटी शक्तियाँ अनिवार्यतः बहुत-सी होती हैं, क्योंकि जैसे ही आप एक परम संकल्पना की सर्वव्यापी सत्ता को विभाजित करना शुरू करते हैं, आप अपने को अपरिहार्य रूप से अनेक देवताओं के बीच पाते हैं। इसी में देवताओं की बहुलता है।

बहुदेववाद की यह अन्तर्दृष्टि दूरगामी धार्मिक सहिष्णुता में सहायक है। चूँकि बहुदेववादी एक ओर एक परम और पूरी तरह उदासीन सत्ता में आस्था रखते हैं, और दूसरी ओर अनेक आंशिक और पूर्वाग्रह-युक्त शक्तियों में आस्था रखते हैं, इसलिए किसी एक देवता के भक्तों को दूसरे देवताओं के अस्तित्व और सामर्थ्य को स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होती। बहुदेववाद सहज रूप से उदार और ग्रहणशील है, और वह शायद ही कभी 'काफ़िरों' और 'नास्तिकों' पर अत्याचार करता हो।

जब बहुदेववादियों ने विशाल साम्राज्यों को भी जीत लिया, तब भी उन्होंने अपनी अधीनस्थ प्रजा का धर्मान्तरण करने की कोशिश नहीं की। मिस्रवासियों, रोमनों और एज़्टेकों ने ओसायरस, जूपिटर या ह्युट्ज़िलोपोट्ज़्ली (प्रधान एज़्टेक देवता) की उपासना के प्रचार के लिए दूर देशों में अपने धर्म-प्रचारकों को नहीं भेजा था, और इस अभियान के लिए उन्होंने सेनाएँ तो नहीं ही भेजी थीं। समूचे साम्राज्य की अधीनस्थ प्रजाओं से साम्राज्य के देवताओं और अनुष्ठानों का सम्मान करने की अपेक्षा की जाती थी, क्योंकि ये देवता साम्राज्य की रक्षा और उसका वैधीकरण करते थे, लेकिन उन्हें अपने स्थानीय देवताओं और अनुष्ठानों को त्याग देना ज़रूरी नहीं था। एज़्टेक साम्राज्य में अधीनस्थ प्रजाएँ ह्युट्ज़िलोपोट्ज़्ली के मन्दिर बनवाने के लिए बाध्य हुई थीं, लेकिन ये मन्दिर स्थानीय देवताओं के मन्दिरों के निकट बने थे, उनकी जगह पर नहीं बने थे। बहुत से प्रकरणों में स्वयं साम्राज्यवादी प्रभु वर्ग ने अपनी अधीनस्थ प्रजा के देवताओं और अनुष्ठानों को अपना लिया था। रोमनों ने ख़ुशी-ख़ुशी एशियाई देवी सिबेलि और मिस्र की देवी ईसस को अपनी देवमण्डली में शामिल कर लिया था।

जिस एकमात्र देवता को बर्दाश्त करने से रोमन लम्बे समय तक इनकार करते रहे, वह थे ईसाइयों के एकेश्वरवादी और धर्मान्तरणकारी देवता। रोमन साम्राज्य ने ईसाइयों से अपनी आस्थाओं और अनुष्ठानों को त्याग देने की माँग नहीं की, लेकिन वे उनसे साम्राज्य

के संरक्षक देवताओं और सम्राट की दिव्यता का सम्मान करने की अपेक्षा अवश्य करते थे। इसे राजनैतिक वफ़ादारी की घोषणा की तरह देखा जाता था। जब ईसाइयों ने ऐसा करने से ज़ोरदार ढंग से इनकार कर दिया और उन्होंने समझौते की सारी कोशिशों का तिरस्कार जारी रखा, तो रोमनों ने प्रतिक्रिया-स्वरूप उन लोगों को यातनाएँ दीं, जिन्हें वे राजनैतिक तौर पर विनाशकारी घड़े के रूप में देखते थे। और यह कृत्य भी आधे मन से किया गया था। ईसा को सूली पर चढ़ाए जाने के 300 साल बाद से लेकर सम्राट कोंसटेंटाइन के धर्मान्तरण के समय तक बहुदेववादी रोमन सम्राटों ने ईसाइयों के उत्पीड़न की चार से ज़्यादा पहलें नहीं कीं। स्थानीय प्रशासकों और गवर्नरों ने अपने स्तर पर कुछ ईसाई-विरोधी हिंसाएँ भड़काई थीं। तब भी अगर हम इन सारे उत्पीड़नों के शिकार लोगों की संख्या को जोड़ें, तो पता चलता है कि इन तीन सदियों के दौरान बहुदेववादी रोमनों ने कुछ हज़ार ईसाइयों से ज़्यादा की हत्याएँ नहीं कीं। इसके विपरीत, अगले 1,500 सालों के दौरान ईसाइयों ने प्रेम और करुणा के मज़हब की हल्क़ी-सी भिन्न व्याख्याओं के बचाव की ख़ातिर लाखों ईसाइयों का संहार किया।

सोलहवीं और सत्रहवीं सदियों में कैथोलिकों और प्रोटेस्टेंटों के बीच यूरोप में छिड़े धर्म-युद्ध ख़ास तौर से कुख्यात रहे हैं। इन युद्धों में शामिल सारे लोग ईसा की दिव्यता तथा प्रेम और करुणा के उनके सिद्धान्त में विश्वास रखते थे, लेकिन इस प्रेम के स्वरूप को लेकर वे असहमत थे। प्रोटेस्टेंटों का विश्वास था कि अलौकिक प्रेम इतना महान था कि ईश्वर ने हाड़मांस की काया में अवतार लिया और स्वयं को यातनाएँ दिए जाने और सूली पर चढ़ाए जाने की छूट दी। ऐसा करके उन्होंने उनमें आस्था रखने वाले तमाम लोगों को मूल पाप से छुटकारा दिलाकर उनके लिए स्वर्ग के द्वार खोले। कैथोलिकों का मानना था कि आस्था अनिवार्य तो है, लेकिन पर्याप्त नहीं है। स्वर्ग में प्रवेश पाने के लिए आस्थावानों को चर्च के अनुष्ठानों में भाग लेना और सत्कर्म करना ज़रूरी है। प्रोटेस्टेंटों ने इस बात को मानने से इनकार करते हुए तर्क दिया कि यह प्रतिदान ईश्वर की महानता और प्रेम के महत्त्व को घटाता है। जो भी कोई यह मानता है कि स्वर्ग में प्रवेश उसके अपने सत्कर्मों पर निर्भर करता है, वह अपने महत्त्व को बढ़ा-चढ़ा कर देखता है और यह संकेत देता है कि सूली पर झेली गई ईसा की यातना और ईश्वर का प्रेम मानव-जाति के लिए पर्याप्त नहीं है।

इन मज़हबी विवादों ने इस क़दर हिंसक रूप ले लिया कि सोलहवीं और सत्रहवीं सदियों के दौरान कैथोलिकों और प्रोटेस्टेंटों ने सैकड़ों हज़ारों की तादाद में एक दूसरे की हत्याएँ कीं। 23 अगस्त, 1572 को सत्कर्मों के महत्त्व पर बल देने वाले फ़्रांसीसी कैथोलिकों ने फ़्रांस के उन प्रोटेस्टेंटों के समुदायों पर हमला कर दिया था, जो मानव-जाति के प्रति ईश्वर के प्रेम पर बल देते थे। सेंट बार्थोलोम्यूज़ डे नरसंहार नामक इस हमले में चौबीस घण्टे से भी कम के वक़्त में 5,000 से 10,000 के बीच प्रोटेस्टेंटों का क़त्लेआम हुआ था। जब रोम में बैठे पोप ने फ़्रांस से आई इस ख़बर को सुना, तो वह इस क़दर आनन्द से भर उठा कि उसने इस अवसर का जश्न मनाने के लिए उत्सवी प्रार्थनाएँ आयोजित कीं और जिओर्जिओ वसारी को वेटिकन के एक कक्ष को इस नरसंहार के भित्तिचित्र से सज्जित करने का काम सौंपा था (फ़िलहाल इस कक्ष में दर्शकों का प्रवेश वर्जित है)। उन चौबीस घण्टों के दौरान उससे कहीं ज़्यादा ईसाई अपने साथी ईसाइयों के

हाथों मारे गए थे, जितने बहुदेववादी रोमन साम्राज्य के अस्तित्व के समूचे कालखण्ड में मारे गए थे।

ईश्वर एक है

समय गुज़रने के साथ बहुदेववादी देवताओं के कुछ अनुयायियों को अपने विशेष रक्षक देवता से इस क़दर प्रेम हो गया कि वे बहुदेववाद की बुनियादी अन्तर्दृष्टि से दूर होते गए। उन्होंने मानना शुरू कर दिया कि उनका देवता ही एकमात्र देवता है, और दरअसल वही सारी सृष्टि का सर्वशक्तिमान है, लेकिन इसी के साथ-साथ उन्होंने उस देवता को प्रयोजनों और पूर्वाग्रहों से युक्त रूप में देखना और यह विश्वास रखना भी जारी रखा कि वे उसके साथ सौदा कर सकते हैं। इस तरह एकेश्वरवादी मज़हबों का जन्म हुआ, जिनके अनुयायी सृष्टि के सर्वशक्तिमान से रोगों से मुक्ति पाने, लॉटरी जीतने और युद्ध में विजय प्राप्त करने में सहायता की याचना करते हैं।

हमारे लिए ज्ञात ऐसा पहला एकेश्वरवादी मज़हब मिस्र में 350 ईसा पूर्व में प्रकट हुआ, जब फ़ैरो आख़्नातेन ने मिस्र के देवमण्डल के एक कम महत्त्वपूर्ण देवता आटिन को सृष्टि का सर्वशक्तिमान नियन्ता घोषित किया था। आख़्नातेन ने आटिन की उपासना को राजकीय मज़हब के रूप में संस्थापित किया और दूसरे तमाम देवताओं की उपासना पर रोक लगाने की कोशिश की, लेकिन उसकी यह मज़हबी क्रान्ति नाकामयाब रही। उसकी मृत्यु के बाद पुराने देवमण्डल के पक्ष में आटिन की उपासना त्याग दी गई।

बहुदेववाद ने जहाँ-तहाँ दूसरे एकेश्वरवादी मज़हबों को जन्म देना जारी रखा, लेकिन ये मज़हब महत्त्वहीन ही बने रहे, ख़ास तौर से इसलिए कि वे अपने ही सार्वभौमिक सन्देश को पचाने में विफल रहे। उदाहरण के लिए, यहूदी मज़हब का तर्क था कि विश्व के सर्वशक्तिमान के अपने स्वार्थ और पूर्वाग्रह हैं, लेकिन उसका मुख्य स्वार्थ एक छोटे-से यहूदी राज्य और इज़रायल की अज्ञात भूमि में ही है। यहूदी मज़हब के पास दूसरे राष्ट्रों को देने लायक़ बहुत कम था, और अपने अस्तित्व के ज़्यादातर वक़्त के दौरान ये एक प्रचारक मज़हब नहीं रहा है। इस अवस्था को 'स्थानीय एकेश्वरवाद' की अवस्था कहा जा सकता है।

बड़ा परिवर्तन आया ईसाइयत के साथ। इस आस्था-पद्धति की शुरुआत एक रहस्यवादी यहूदी पन्थ के रूप में हुई थी, जिसने यहूदियों को यह विश्वास दिलाने की कोशिश की कि नाज़रथ के यीशु वे मसीहा हैं, जिनकी उन्हें लम्बे समय से प्रतीक्षा रही है, लेकिन इस पन्थ के शुरुआती रहनुमाओं में से एक पॉल ऑफ़ थार्सस ने तर्क दिया कि अगर सृष्टि के सर्वशक्तिमान में स्वार्थ और पूर्वाग्रह हैं और उसने मानव-जाति की मुक्ति की ख़ातिर हाड़मांस की काया में अवतार लेने और सलीब पर मरने का कष्ट उठाया है, तो यह सुसमाचार सिर्फ़ यहूदियों को ही नहीं, बल्कि सभी को सुनाई देना चाहिए। इसलिए यह ज़रूरी समझा गया कि यीशु के बारे में इस सुसमाचार - गॉस्पल - का प्रचार सारी दुनिया में किया जाए।

पॉल के इस तर्क के अच्छे परिणाम निकले। ईसाइयों ने समस्त मनुष्यों को लक्ष्य बनाकर मज़हबी प्रचार की व्यापक गतिविधियों के आयोजन शुरू कर दिए। यह इतिहास

की एक सबसे अद्भुत अप्रत्याशित घटना थी कि यह रहस्यवादी यहूदी सम्प्रदाय महाशक्तिशाली रोमन साम्राज्य पर काबिज़ हुआ।

ईसाइयों की इस क़ामयाबी ने उस एक अन्य एकेश्वरवादी मज़हब के लिए अनुकरणीय आदर्श की भूमिका निभाई, जिसका प्रादुर्भाव सातवीं सदी में अरब प्रायद्वीप में हुआ - इस्लाम। ईसाइयत की तरह इस्लाम की शुरुआत भी दुनिया के एक सुदूर कोने में एक छोटे-से पन्थ के रूप में हुई थी, लेकिन यह एक और भी अनूठा और तेजी से घटित ऐतिहासिक चमत्कार था कि यह अरब के रेगिस्तानों की हदों से बाहर निकलकर अटलांटिक महासागर से हिन्दुस्तान तक फैले विशाल साम्राज्य को जीतने में क़ामयाब रहा। इसके बाद से एकेश्वरवाद के विचार ने दुनिया के इतिहास में एक केन्द्रीय भूमिका निभाई।

एकेश्वरवादी बहुदेववादियों के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा धर्मान्ध और प्रचारवादी रहे हैं। जो मज़हब अन्य आस्था-पद्धतियों की वैधता को मान्यता देता है, उसमें यह अन्तर्निहित होता है कि या तो उसका देवता विश्व का सर्वशक्तिमान देवता नहीं है, या उसने ईश्वर से सत्य का एक अंश ही प्राप्त किया है। चूँकि एकेश्वरवादी सामान्यतः यह मानते रहे हैं कि उनके पास एक और एकमात्र ईश्वर का सारा सन्देश है, वे दूसरे तमाम मज़हबों पर अविश्वास करने को बाध्य रहे हैं। पिछली दो सहस्राब्दियों से एकेश्वरवादी लगातार सारे प्रतिद्वन्द्वियों का हिंसक उन्मूलन करते हुए अपने हाथ मज़बूत करते रहे हैं।

यह कारगर रहा। ईसा की पहली सदी की शुरुआत में दुनिया में लगभग कोई एकेश्वरवादी नहीं थे। 500 ईसवी के आस-पास दुनिया का एक सबसे बड़ा साम्राज्य - रोमन साम्राज्य - एक ईसाई राजतन्त्र था और प्रचारकों के दल यूरोप, एशिया और अफ़्रीका के दूसरे हिस्सों में ईसाइयत का प्रसार करने में व्यस्त थे। ईसा की पहली सहस्राब्दी के अन्त तक यूरोप, पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ़्रीका के ज़्यादातर लोग एकेश्वरवादी थे और अटलांटिक महासागर से लेकर हिमालय तक के साम्राज्य एक सर्वोच्च ईश्वर के द्वारा नियुक्त होने का दावा करने लगे थे। सोलहवीं सदी की शुरुआत होते-होते पूर्वी एशिया तथा अफ़्रीका के दक्षिणी हिस्से को छोड़कर अफ़्रो-एशिया के अधिकांश हिस्सों पर एकेश्वरवाद का प्रभुत्व क़ायम हो चुका था और इसने दक्षिण अफ़्रीका, अमेरिका और ओशिएनिया की दिशाओं में अपने लम्बे पंजे फैलाना शुरू कर दिए थे। आज पूर्वी एशिया के बाहर के ज़्यादातर लोग इस या उस एकेश्वरवादी मज़हब के अनुयायी हैं, और विश्व की राजनैतिक व्यवस्था एकेश्वरवाद की बुनियाद पर खड़ी है।

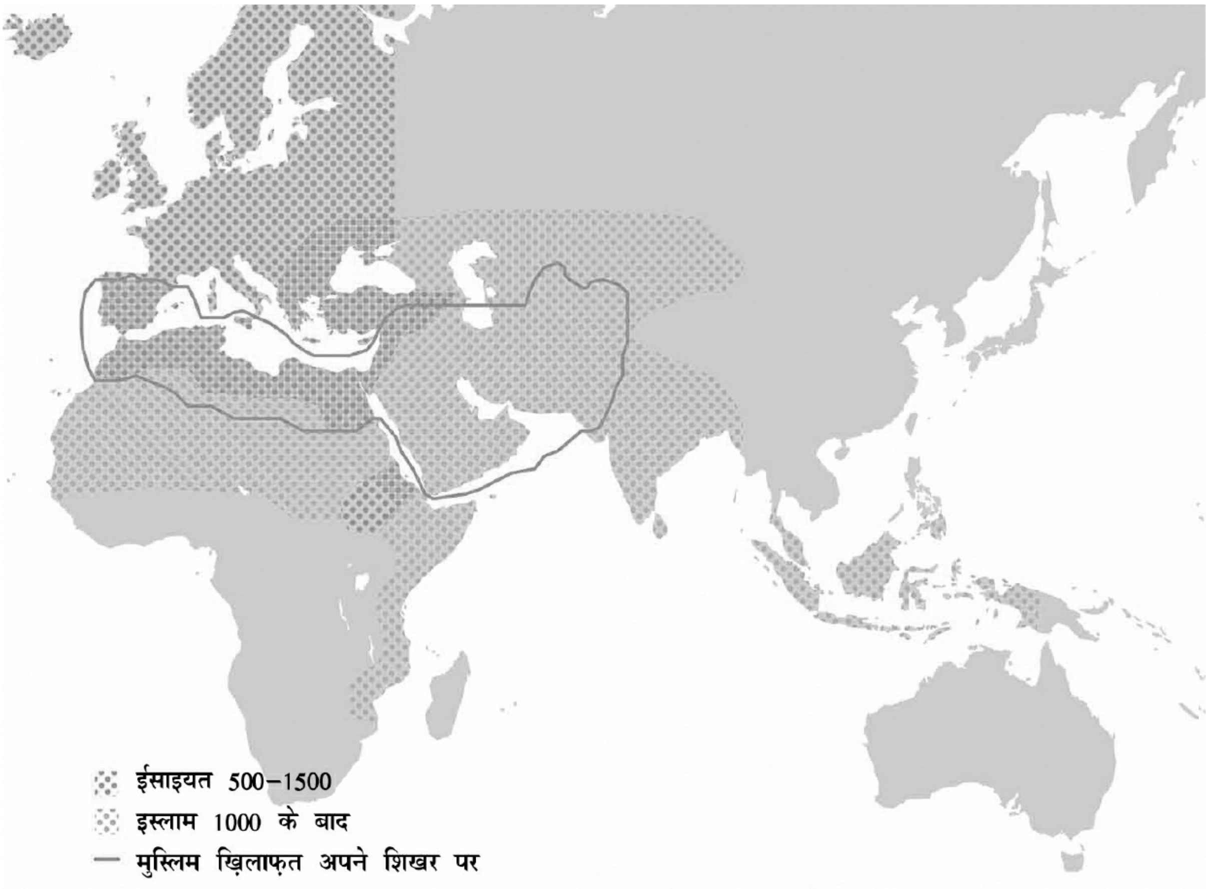

नक़्शा 5. ईसाइयत और इस्लाम का प्रसार।

तब भी जिस तरह जीववाद का अस्तित्व बहुदेववाद के भीतर क़ायम रहा आया था, उसी तरह बहुदेववाद एकेश्वरवाद के भीतर क़ायम रहा आया। सिद्धान्ततः, जैसे ही कोई व्यक्ति यह विश्वास करने लगता है कि विश्व की सर्वोच्च सत्ता के अपने निहित स्वार्थ और पूर्वाग्रह हैं, वैसे ही आंशिक सत्ताओं की उपासना करने का क्या अर्थ रह जाता है? जब आपके लिए राष्ट्रपति का कार्यालय सुलभ हो, तो आप एक निचले ओहदे के नौकरशाह से सम्पर्क क्यों करना चाहेंगे? निश्चय ही, एकेश्वरवादी धर्मसिद्धान्त एक सर्वोच्च ईश्वर के अलावा तमाम देवताओं के अस्तित्व से इनकार करता है, और जो लोग इन देवताओं की उपासना करने का साहस करते हैं, उन पर नर्क की आग और गन्धक बरसाता है।

तब भी धर्मशास्त्रीय सिद्धान्तों और ऐतिहासिक वास्तविकताओं के बीच एक दरार हमेशा से मौजूद रही है। बहुत सारे लोगों को एकेश्वरवाद के विचार को पूरी तरह पचा पाना बहुत मुश्किल रहा है। उन्होंने दुनिया को 'हम' और 'वे' के बीच बाँटना और विश्व की सर्वोच्च सत्ता को अपनी लौकिक ज़रूरतों के सन्दर्भ में एक बहुत दूर की और अजनबी सत्ता के रूप में देखना जारी रखा है। एकेश्वरवादी मज़हबों ने देवताओं को बड़ी धूमधाम के साथ सामने के दरवाज़े से तो बाहर निकाल दिया, लेकिन उन्हें बग़ल की खिड़की से वापस अन्दर कर लिया। उदाहरण के लिए, ईसाइयत ने सन्तों की अपनी एक देवमण्डली विकसित कर ली, जिनकी उपासना पद्धतियाँ बहुदेववादी देवताओं की उपासना-पद्धतियों से बहुत भिन्न नहीं हैं।

जिस तरह जूपिटर देवता ने रोम का बचाव किया था और ह्युट्ज़िलोपोट्ज़्ली ने

एज़्टेक साम्राज्य की रक्षा की थी, उसी तरह हर ईसाई राज्य का अपना एक संरक्षक सन्त हुआ करता था, जो मुश्किलों से उबरने और लड़ाइयाँ जीतने में सहायक होता था। इंग्लैंड सेंट जॉर्ज से रक्षित था, स्कॉटलैंड सेंट एंड्र्यू, हंगरी सेंट स्टीफ़न और फ्रांस सेंट मार्टिन से रक्षित था। नगरों और क़स्बों, व्यवसायों, यहाँ तक हर बीमारी के भी अपने सन्त थे। सेंट एम्ब्रोस मिलान नगर के सन्त थे, तो सेंट मार्क वेनिस की निगहबानी करते थे। सेंट एल्मो चिमनी साफ़ करने वालों की रक्षा करते थे, तो सेंट मैथ्यू विपत्ति की दशा में महसूल इकट्ठा करने वालों की सहायता करते थे। अगर आपका सिर दर्द कर रहा होता था, तो आपको सेंट अगाथियस की प्रार्थना करनी होती थी, लेकिन अगर आपके दाँतों में दर्द होता था, तो सेंट अपोनिया आपकी फ़रियाद सुनने के लिए कहीं बेहतर थे।

ये ईसाई सन्त पुराने बहुदेववादी देवताओं से महज़ मिलते-जुलते ही नहीं थे। अक्सर वे छिपे रूप में वही देवता थे। उदाहरण के लिए, ब्रिजिड ईसाइयत के आगमन के पहले सेल्टिक आयरलैंड की प्रमुख देवी हुआ करती थी। जब आयरलैंड का ईसाईकरण हुआ, तो ब्रिजिड को भी बपतिस्मा दिया गया। वह सेंट ब्रिजिड बन गई, जो आज के दिन तक कैथेलिक आयरलैंड की सर्वाधिक श्रद्धेय सन्त हैं।

शुभ और अशुभ की लड़ाई

बहुदेववाद ने एकेश्वरवादी मज़हबों को ही नहीं, बल्कि द्वैतवादी (डुअलिस्टिक) मज़हबों को भी जन्म दिया। द्वैतवादी मज़हब दो परस्पर विरोधी शक्तियों के अस्तित्व को मानते हैं : शुभ (गुड) और अशुभ (ईविल)। एकेश्वरवाद से भिन्न, द्वैतवाद मानता है कि अशुभ एक स्वतन्त्र सत्ता है, जिसको शुभ ईश्वर ने ना तो रचा है, और ना ही वह उसके अधीन है। द्वैतवाद कहता है कि समूची सृष्टि इन दो शक्तियों का युद्धक्षेत्र है, और दुनिया में जो कुछ भी घटित होता है, वह संघर्ष का हिस्सा है।

द्वैतवाद एक बहुत आकर्षक विश्व-दृष्टि है क्योंकि इसके पास उस प्रसिद्ध अशुभ की समस्या (प्रॉब्लम ऑफ़ ईविल) का एक बहुत संक्षिप्त और सरल जवाब है, जो मानवीय चिन्तन का एक बुनियादी सरोकार रहा है। 'दुनिया में अशुभ क्यों है? दुःख क्यों है? भले लोगों के साथ बुरा क्यों होता है'? यह समझाने के लिए कि एक सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और पूरी तरह से शुभ ईश्वर ने किस तरह संसार में इतने अधिक दुःख के लिए इजाज़त दी है, एकेश्वरवादियों को बौद्धक कसरत करनी पड़ती है। एक जानी-मानी कैफ़ियत यही है कि यह मनुष्य को स्वतन्त्र इच्छा की गुंजाइश देने का ईश्वर का ढंग है। अगर अशुभ ना होता, तो मनुष्य शुभ और अशुभ के बीच चयन ना कर पाता और इस तरह स्वतन्त्र इच्छा का कोई अस्तित्व ही ना होता, लेकिन यह सहज बुद्धि से जन्मा उत्तर नहीं है, जो तत्काल कई सारे सवाल खड़े कर देता है। इच्छा की स्वतन्त्रता मनुष्य को अशुभ को चुनने की गुंजाइश देती है। बहुत-से लोग अशुभ का चयन ही करते हैं और मानक एकेश्वरवादी व्याख्या के मुताबिक़, यह चयन दैवीय दण्ड का कारण बनता है। अगर ईश्वर को पहले से ही पता था कि कोई व्यक्ति अशुभ को चुनने में अपनी स्वतन्त्र इच्छा का उपयोग करेगा, और इसके लिए उसको नर्क में अनन्त यातना की सज़ा भोगनी पड़ेगी, तो ईश्वर ने ऐसे व्यक्ति को जन्म ही क्यों दिया? इस तरह के सवालों के जवाब देने के लिए धर्मशास्त्रियों ने

असंख्य ग्रन्थ लिखे हैं। कुछ लोगों को ये जवाब विश्वसनीय लगते हैं। कुछ को नहीं लगते। जिस बात से इनकार नहीं किया जा सकता, वह यह है कि अशुभ की समस्या से निपटने में एकेश्वरवादियों को बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

द्वैतवादियों के मुताबिक़, अशुभ घटनाएँ भले लोगों तक के साथ घटित होती हैं, क्योंकि संसार एक सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और पूर्णतः शुभ ईश्वर द्वारा नियन्त्रित नहीं है। दुनिया में एक स्वतन्त्र अशुभ शक्ति भी उन्मुक्त विचर रही है। यह अशुभ शक्ति बुरे काम करती है।

इस द्वैतवादी दृष्टिकोण की अपनी ख़ामियाँ हैं। यह सही है कि यह अशुभ की समस्या का एक सरल समाधान पेश करता है, लेकिन यह अनुशासन की समस्या (प्रॉब्लम ऑफ़ ऑर्डर) के सामने कमज़ोर पड़ जाता है। अगर दुनिया में शुभ और अशुभ की दो परस्पर विरोधी सत्ताएँ हैं, तो इन दोनों के बीच के संघर्ष को नियन्त्रित करने वाले नियमों का विधान किसने किया है? दो प्रतिद्वन्द्वी राज्य एक दूसरे से लड़ सकते हैं क्योंकि दोनों का अस्तित्व देश-काल में है, और दोनों ही भौतिकी के समान नियमों का पालन करते हैं। पाकिस्तान की ज़मीन से छोड़ा गया एक प्रक्षेपास्त्र हिन्दुस्तान के इलाक़े के लक्ष्यों पर मार कर सकता है क्योंकि दोनों ही मुल्क़ों पर भौतिकी के समान नियम लागू होते हैं। जब शुभ और अशुभ आपस में लड़ते हैं, तो वे कौन-से नियम हैं, जिनका वे दोनों पालन करते हैं और इन नियमों का विधान किसने किया था?

इसके विपरीत, एकेश्वरवादी अनुशासन की समस्या को तो अच्छी तरह से स्पष्ट कर पाते हैं, लेकिन अशुभ की समस्या की उनके पास कोई कैफ़ियत नहीं है। इस पहेली को सुलझाने का एक तर्कसंगत तरीक़ा है : यह तर्क कि एक ही सर्वशक्तिमान ईश्वर है, जिसने विश्व की रचना की है - और वह एक अशुभ ईश्वर है, लेकिन इस तरह का विश्वास करने वाला इतिहास में कोई नहीं रहा।

द्वैतवादी मज़हब एक हज़ार साल से ज़्यादा समय तक फलते-फूलते रहे। 1500 ईसा पूर्व और 1000 ईसा पूर्व के बीच कभी ज़ोरोआस्टर (ज़रथुष्ट्र) नामक एक पैग़म्बर मध्य एशिया में कहीं सक्रिय था। उसका धर्ममत एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक तब तक आगे बढ़ता रहा, जब तक कि वह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण द्वैतवादी मज़हब नहीं बन गया - ज़रथुष्ट्रवाद। ज़रथुष्ट्रवादियों ने दुनिया को शुभ देवता अहुरा माज़्डा और अशुभ देवता ऐंग्रा मेनियू के बीच जागतिक युद्ध के रूप में देखा। इस लड़ाई में मनुष्यों को शुभ देवता की मदद करनी होती थी। ज़रथुष्ट्रवाद अख़ीमेनिड फ़ारसी साम्राज्य (550-330 ईसा पूर्व) के दौरान एक महत्त्वपूर्ण मज़हब था और बाद में सासानिड फ़ारसी साम्राज्य (224-651) का अधिकृत मज़हब बन गया था। इसने बाद के लगभग सारे मध्य पूर्वीय और मध्य एशियाई मज़हबों पर बहुत प्रभाव डाला और इसने रहस्यवाद (नॉस्टिसिज़्म) तथा मैनिक़ियनवाद जैसे अनेक अन्य द्वैतवादी मज़हबों को प्रेरित किया।

ईसा की तीसरी और चौथी सदी के दौरान मैनिक़ियन धर्ममत चीन से लेकर उत्तरी अफ़्रीका तक फैल गया था और पल भर को ऐसा लगता था कि यह रोमन साम्राज्य पर प्रभुत्व हासिल करने के मामले में ईसाइयत को पछाड़ देगा, लेकिन मैनिक़ियन ईसाइयत के हाथों रोम की आत्मा को हार गए। ज़रथुष्ट्रवाद सासानिड साम्राज्य का तख़्ता

एकेश्वरवादी मुसलमानों द्वारा पलट दिया गया, और द्वैतवाद की लहर थम गई। आज हिन्दुस्तान और मध्य पूर्व में मुट्ठी भर द्वैतवादी समुदाय बचे हैं।

तब भी, एकेश्वरवाद की उठती हुई लहर द्वैतवाद को वास्तव में बहाकर नहीं ले गई। यहूदी, ईसाई और मुस्लिम एकेश्वरवाद ने अनेक द्वैतवादी विश्वासों और दस्तूरों को आत्मसात कर लिया, और जिसे हम 'एकेश्वरवाद' कह कर पुकारते हैं, उसकी ज़्यादातर बुनियादी धारणाएँ दरअसल अपने उद्गम और मूल भावना में द्वैतवादी हैं। असंख्य ईसाई, मुसलमान और यहूदी एक अपार बलशाली अशुभ शक्ति में विश्वास करते हैं - जैसे कि एक वह है, जिसे ईसाई डेविल या शैतान कहते हैं - जो स्वतन्त्र ढंग से काम कर सकती है, शुभ ईश्वर के ख़िलाफ़ लड़ सकती है, और ईश्वर की इजाज़त के बग़ैर तबाही मचा सकती है।

कोई एकेश्वरवादी ऐसी द्वैतवादी आस्था का समर्थन कैसे कर सकता है (जो, वैसे भी, ओल्ड टेस्टामेंट में कहीं नहीं है)? तर्कतः, यह नामुमकिन है। या तो आप एक सर्वशक्तिमान ईश्वर में विश्वास करते हैं या दो ऐसी परस्पर विरोधी शक्तियों में विश्वास करते हैं, जिनमें से कोई भी सर्वशक्तिमान नहीं है। तब भी, अन्तर्विरोधों में विश्वास करने की मनुष्यों में अद्भुत क्षमता होती है। इसलिए इस पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि लाखों मज़हबी ईसाई, मुसलमान और यहूदी एक साथ और एक ही समय में एक सर्वशक्तिमान ईश्वर और एक स्वतन्त्र शैतान दोनों में विश्वास कर लेते हैं। अनगिनत ईसाइयों, मुसलमानों और यहूदियों ने तो इस हद तक कल्पना कर डाली है कि शैतान के ख़िलाफ़ लड़ने में शुभ ईश्वर को हमारी ज़रूरत पड़ती है, और इसने दूसरी चीज़ों के साथ-साथ जिहादों और धर्मयुद्धों (क्रुसेड्स) को प्रेरित किया है।

एक अन्य द्वैतवादी अवधारणा, ख़ास तौर से रहस्यवाद और मैनिक़ियनवाद में, देह और आत्मा (सोल) के बीच, पदार्थ और चैतन्य (स्पिरिट) के बीच दो-टूक विभाजन की है। रहस्यवादियों और मैनिक़ियनवादियों का तर्क था कि शुभ देवता ने आत्मा और चैतन्य की रचना की है, जबकि पदार्थ और देह अशुभ देवता की रचनाएँ हैं। इस दृष्टिकोण के मुताबिक़, मनुष्य शुभ आत्मा और अशुभ देह के बीच रणभूमि की भूमिका निभाता है। एकेश्वरवादी दृष्टि से यह एक मूर्खतापूर्ण धारणा ठहरती है - देह और आत्मा, या पदार्थ और चैतन्य के बीच ऐसा दो-टूक विभाजन क्यों? और ऐसे तर्क का क्या औचित्य है कि देह और पदार्थ अशुभ हैं? आख़िरकार, हर चीज़ उसी एक ही शुभ ईश्वर द्वारा तो रची गई है, लेकिन एकेश्वरवादी इन द्वैतवादी विसंगतियों के मोह में पड़ने से बच नहीं सके, सिर्फ़ इसलिए क्योंकि ये विसंगतियाँ अशुभ की समस्या का सामना करने में उनकी मदद करती हैं, इसलिए इस तरह के विरोधी युग्म अन्ततः ईसाई और मुस्लिम चिन्तन की आधारशिला बन गए। स्वर्ग (शुभ देवता का अधिकार-क्षेत्र) और नर्क (अशुभ देवता का अधिकार-क्षेत्र) में विश्वास भी अपने उद्गम में द्वैतवादी है। इस विश्वास का कोई नामो-निशान ओल्ड टेस्टामेंट में नहीं है, जो कभी यह दावा भी नहीं करता कि देह की मृत्यु के बाद लोगों की आत्माएँ जीवित बनी रहती हैं।

वस्तुतः, एकेश्वरवाद, इतिहास में उभरते अपने रूप में, एकेश्वरवादी, द्वैतवादी, बहुदेववादी और जीवात्मवादी विरासतों का कलाइडस्कोप है, जहाँ ये सब एक दैवीय छत्र के तले आपस में गड्डमड्ड हैं। एक औसत ईसाई एकेश्वरवादी ईश्वर में आस्था रखता है,

लेकिन इसी के साथ-साथ वह द्वैतवादी शैतान, बहुदेववादी सन्तों और जीवात्मवादी प्रेतों में भी आस्था रखता है। विभिन्न स्रोतों से लिए गए इन भिन्न-भिन्न और परस्पर विरोधी विचारों के एक साथ कथन के लिए और अनुष्ठानों तथा परम्पराओं के इस मिश्रण के लिए मज़हब के अध्येताओं ने एक नाम दिया हुआ है। यह नाम है समन्वयवाद (सिंक्रेटिज़्म)। समन्वयवाद, वस्तुतः, एक महान वैश्विक मज़हब हो सकता है।

प्रकृति का नियम

अब तक हमने जितने भी मज़हबों की चर्चा की है, वे सब एक महत्त्वपूर्ण विशेषता साझा करते हैं : वे सब देवताओं तथा अन्य अलौकिक सत्ताओं में आस्था पर केन्द्रित हैं। यह पाश्चात्य लोगों के लिए ज़ाहिर-सी बात प्रतीत होती है, जो मुख्यतः एकेश्वरवादी और बहुदेववादी धर्ममतों से परिचित हैं, लेकिन दरअसल दुनिया का मज़हबी इतिहास मुख्यतः देवताओं का इतिहास नहीं है। ईसा पूर्व पहली सहस्राब्दी के दौरान अफ़्रो-एशिया में नितान्त नए क़िस्म के मज़हबों का प्रसार शुरू हुआ था। इन नवागन्तुक मज़हबों, जैसे कि हिन्दुस्तान में जैन धर्म और बौद्ध धर्म, चीन में ताओ धर्म और कन्फ़्यूशियसवाद और भूमध्यसागरीय इलाक़े में निस्पृहतावाद (स्टोइसिज़्म), संशयवाद (सिनिसिज़्म) और सुखवाद (एपीक्यूरियनिज़्म) की विशेषता इनमें देवताओं की अवहेलना थी।

इन धर्ममतों का मानना था कि सृष्टि का नियमन करने वाली अतिमानवीय व्यवस्था किसी दैवीय संकल्प-शक्ति या दैवीय सनक की नहीं, बल्कि कुदरती नियमों की उपज है। इनमें से कुछ कुदरती-नियमवादी मज़हबों ने देवताओं के अस्तित्व में तो विश्वास जारी रखा, लेकिन उनके ये देवता कुदरत के नियमों के उससे कम अधीन नहीं थे, जितने कि मनुष्य, मनुष्येतर प्राणी और वनस्पतियाँ थीं। पारिस्थितिकी के भीतर देवताओं की उसी तरह अपनी जगह थी, जिस तरह हाथियों और साहियों की थी, लेकिन वे प्रकृति के नियमों को उससे ज़्यादा नहीं बदल सकते थे, जितना कि, मसलन, हाथी बदल सकते थे। इसका एक प्रमुख उदाहरण है बौद्ध धर्म, प्राचीन कुदरती-नियमों पर केन्द्रित धर्मों में एक सबसे महत्त्वपूर्ण आस्था-पद्धति, जो आज भी एक बड़ी आस्था-पद्धति है।

बौद्ध धर्म की केन्द्रीय शख़्सियत कोई देवता नहीं, बल्कि एक मनुष्य है, सिद्धार्थ गौतम। बौद्ध परम्परा के मुताबिक़, गौतम 500 ईसा पूर्व के आस-पास एक छोटे-से हिमालयी राज्य के उत्तराधिकारी थे। यह नौजवान राजकुमार अपने चारों ओर व्याप्त दुःख को देखकर गहरे विचलित हुआ। उसने देखा कि स्त्री और पुरुष, बच्चे और बूढ़े, तमाम लोग ना केवल युद्ध और प्लेग जैसी जब-जब आने वाली विपदाओं को भोगते हैं, बल्कि बेचैनी, हताशा और असन्तोष के शिकार भी बने रहते हैं और ये सारी चीज़ें मानव परिस्थिति का अविभाज्य अंग प्रतीत होती हैं। लोग दौलत और सत्ता के पीछे भागते हैं, ज्ञान और परिग्रह इकट्ठा करते हैं, पुत्रों और पुत्रियों को जन्म देते हैं और भवन और महल खड़े करते हैं, लेकिन वे कुछ भी क्यों ना हासिल कर लें, वे कभी सन्तुष्ट नहीं होते। जो लोग निर्धनता में रह रहे होते हैं, वे समृद्ध का सपना देखते रहते हैं। जिनके पास दस लाख होते हैं, वे बीस लाख की कामना करते हैं। जिनके पास बीस लाख होते हैं, वे एक करोड़ की कामना करते हैं। दौलतमन्द और प्रसिद्ध लोग भी शायद ही कभी सन्तुष्ट होते

हों। वे भी तब तक अनवरत दायित्वों और चिन्ताओं से ग्रस्त बने रहते हैं, जब तक कि बीमारी, बुढ़ापा और मृत्यु उनका दारुण अन्त नहीं कर देते। मनुष्य का सारा बटोरा गया परिग्रह धुएँ की माफ़िक उड़ जाता है। जीवन एक व्यर्थ की चूहा दौड़ है, लेकिन इससे छुटकारा कैसे पाया जाए?

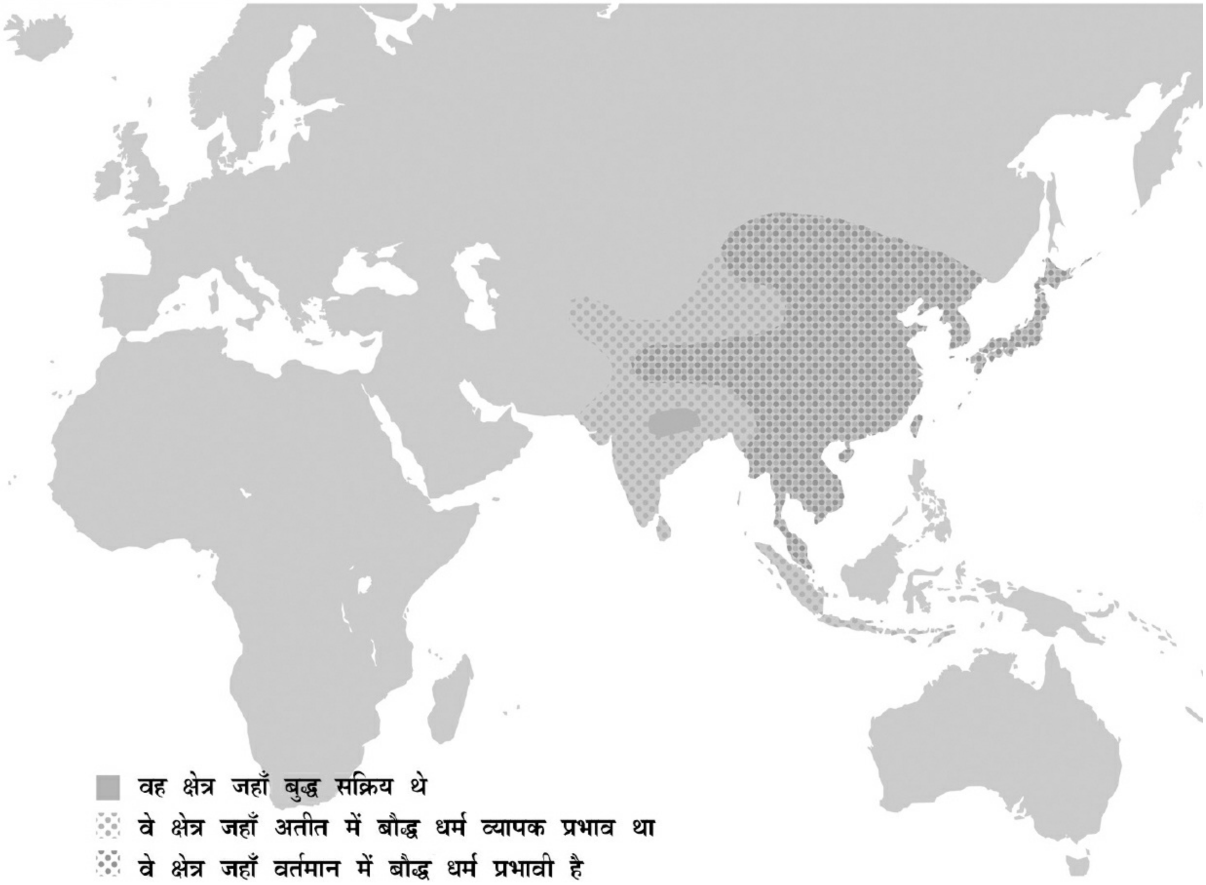
वह क्षेत्र जहाँ बुद्ध सक्रिय थे
वे क्षेत्र जहाँ अतीत में बौद्ध धर्म व्यापक प्रभाव था
वे क्षेत्र जहाँ वर्तमान में बौद्ध धर्म प्रभावी है

नक़्शा 6. बौद्ध धर्म का प्रसार।

उन्तीस साल की उम्र में गौतम अपने परिवार और सम्पत्ति को छोड़कर आधी रात के समय राजमहल से निकल गए। वे दुःख से मुक्ति के रास्ते की खोज करते हुए एक बेघर ख़ानाबदोश की तरह समूचे उत्तर भारत में भटकते रहे। वे कई आश्रमों में गए और अनेक गुरुओं के चरणों में बैठे, लेकिन उन्हें किसी भी चीज़ ने पूरी तरह मुक्ति का अहसास नहीं कराया - कुछ ना कुछ असन्तोष हमेशा बना ही रहता था। वे हताश नहीं हुए। उन्होंने संकल्प किया कि जब तक उन्हें पूर्ण मुक्ति का कोई तरीक़ा हासिल नहीं हो जाता, तब तक वे दुःख के कारणों की पड़ताल करते रहेंगे। उन्होंने मनुष्य के सन्ताप के मर्म, कारणों और निदान पर चिन्तन करते हुए छह वर्ष बिताए। अन्त में उन्हें बोध हुआ कि दुःख का कारण दुर्भाग्य, सामाजिक अन्याय या ईश्वर की मर्ज़ी नहीं है। इसके बजाय, व्यक्ति की अपनी मनोवृत्ति ही दुःख का कारण है।

गौतम की अन्तर्दृष्टि यह थी कि मस्तिष्क कुछ भी क्यों ना अनुभव करता हो, उसकी प्रतिक्रिया तृष्णा की होती है और तृष्णा में सदा असन्तोष निहित होता है। जब मस्तिष्क कुछ अप्रिय अनुभव करता है, तो वह उससे उत्पन्न क्रोध से छुटकारा पाने की तृष्णा

करता है। जब मस्तिष्क कुछ प्रीतिकर अनुभव करता है, तो वह उससे उत्पन्न सुख के बने रहने तथा प्रगाढ़ होने की तृष्णा करता है। इसलिए मस्तिष्क हमेशा असन्तुष्ट और व्याकुल बना रहता है। यह बात उस वक़्त बहुत स्पष्ट होती है, जब हम अप्रिय चीज़ों, जैसे कि पीड़ा का अनुभव करते हैं। जब तक पीड़ा जारी रहती है, तब तक हम असन्तुष्ट बने रहते हैं और उससे बचने के सारे सम्भव उपाय करते हैं, लेकिन जब हम प्रीतिकर चीज़ों को अनुभव करते हैं, तब हम कभी सन्तुष्ट नहीं होते। हमें या तो उस सुख के समाप्त हो जाने का भय सताता रहता है, या फिर हम उसके और प्रगाढ़ होने की लालसा करते रहते हैं। लोग बरसों प्रेम हासिल करने का सपना देखते रहते हैं, लेकिन जब वह उन्हें प्राप्त हो जाता है, तो वे शायद ही सन्तुष्ट होते हैं। कुछ लोगों को यह आशंका घेरे रहती है कि उनका प्रेम-पात्र उन्हें छोड़कर ना चला जाए, कुछ को लगता रहता है कि उन्होंने सस्ते में सन्तोष कर लिया है और वे उससे बेहतर हासिल कर सकते थे। हम सब ऐसे लोगों को जानते हैं, जो दोनों ही काम कर लेते हैं।

महान देवता हमें बारिश भेज सकते हैं, सामाजिक संस्थाएँ न्याय और अच्छी चिकित्सा उपलब्ध करा सकती हैं और सौभाग्यशाली संयोग हमें करोड़पति बना सकते हैं, लेकिन इनमें से कोई भी चीज़ हमारी बुनियादी दिमाग़ी बनावट को नहीं बदल सकती। इसीलिए बड़े से बड़े सम्राट चिन्तित बने रहने को अभिशप्त होते हैं, और हमेशा और बड़े सुख का पीछा करते हुए लगातार दुःखी और सन्तप्त बने रहते हैं।

गौतम ने पाया कि इस दुष्चक्र से बाहर निकलने का एक रास्ता है। जिस समय मस्तिष्क किसी प्रिय या अप्रिय चीज़ का अनुभव करे, उस समय यदि वह उन चीज़ों को उनके यथार्थ रूप में समझ ले, तो कोई दुःख नहीं होगा। अगर आप उदासी को उस उदासी के मिट जाने की तृष्णा से मुक्त होकर अनुभव करते हैं, तो आप उदासी तो अनुभव करते रहेंगे, लेकिन उसकी पीड़ा नहीं भोगेंगे। उदासी में भी वास्तव में समृद्ध मुमकिन है। अगर आप आनन्द को उसके बने रहने और प्रगाढ़ होने की तृष्णा से मुक्त होकर अनुभव करते हैं, तो आप अपनी मानसिक शान्ति गँवाए बग़ैर उस आनन्द को महसूस करते रह सकते हैं।

लेकिन तृष्णा के बिना आप चीज़ों को उनके यथार्थ रूप में स्वीकार करने के लिए अपने मस्तिष्क को कैसे तैयार करें? उस उदासी को उदासी की तरह, आनन्द को आनन्द की तरह, पीड़ा को पीड़ा की तरह स्वीकार करने के लिए कैसे तैयार करें? गौतम ने ध्यान की ऐसी अनेक तकनीकें विकसित कीं, जिससे मस्तिष्क तृष्णा का शिकार हुए बिना यथार्थ को उसके मूल रूप में अनुभव कर सके। ये साधनाएँ मस्तिष्क को अपना पूरा ध्यान इस एक प्रश्न पर केन्द्रित करने के लिए प्रशिक्षित करती हैं कि “मैं इस समय क्या अनुभव कर रहा हूँ”? बजाय इसके कि “इसके बजाय मैं क्या अनुभव कर रहा होता”? मस्तिष्क की ऐसी अवस्था को हासिल करना मुश्किल है, लेकिन असम्भव नहीं है।

गौतम ने इन ध्यान तकनीकों को ऐसी अनेक आचारपरक विधियों पर आधारित किया, जिनका उद्देश्य लोगों के लिए वास्तविक अनुभव पर ध्यान केन्द्रित करने और तृष्णाओं और कोरी कल्पनाओं का शिकार होने से बचने की प्रक्रियाओं को आसान बनाना था। उन्होंने अपने अनुयायियों को हत्या, स्वच्छन्द सम्भोग और चोरी से बचने के निर्देश दिए, क्योंकि इस तरह के कृत्य अनिवार्यतः (सत्ता, इन्द्रिय विषयक सुख और धन

की) लालसा की आग भड़काते हैं। जब ये लपटें पूरी तरह बुझ जाती हैं, तो लालसा की जगह पूर्ण सन्तोष और पूर्ण प्रशान्ति की वह अवस्था ले लेती है, जिसे निर्वाण कहा जाता है (जिसका शाब्दिक अर्थ है 'आग का बुझ जाना')। जिन्होंने निर्वाण प्राप्त कर लिया होता है, वे दुःख से पूरी तरह मुक्ति पा जाते हैं। वे यथार्थ को कोरी कल्पनाओं और भ्रांतियों के दाग़-धब्बों से मुक्त उसकी अधिकतम स्पष्टता में अनुभव करते हैं। जहाँ इसकी पूरी सम्भावना है कि वे अब भी अप्रियताओं और पीड़ाओं का सामना करते रहते हों, वहीं इस तरह के अनुभव उन्हें कोई दुःख नहीं पहुँचाते। जिस व्यक्ति में तृष्णा नहीं है, वह दुःख नहीं उठा सकता।

बौद्ध परम्परा का मानना है कि गौतम ने स्वयं निर्वाण प्राप्त कर लिया था और वे दुःख से पूरी तरह मुक्त हो चुके थे। इसके बाद से वे 'बुद्धि' के रूप में जाने जाते थे, जिसका अर्थ है "वह जिसने बोध प्राप्त कर लिया है"। बुद्धि ने अपना बाक़ी जीवन दूसरे लोगों के समक्ष अपनी उपलब्धियों को स्पष्ट करते हुए बिताया, ताकि वे भी दुःख से मुक्त हो सकें। उन्होंने अपनी सीखों को एक ही नियम में समाहित किया था : तृष्णा दुःख का मूल है(दुःख से पूरी तरह मुक्ति पाने का एकमात्र उपाय तृष्णा से पूरी तरह मुक्ति पा लेना है और तृष्णा से पूरी तरह मुक्ति पाने का एकमात्र उपाय मस्तिष्क को इस तरह प्रशिक्षित करना है कि वह यथार्थ को उसके मूल रूप में अनुभव कर सके।

इस नियम को, जिसे धर्म या धम्म के नाम से जाना जाता है, बौद्धों द्वारा प्रकृति के सर्वव्यापी नियम के रूप में देखा गया है। यह बात कि "तृष्णा दुःख का मूल है", सर्वदा और सर्वत्र सत्य है, उसी तरह जैसे आधुनिक भौतिकी में E हमेशा mc^2 के बराबर है। बौद्ध वे लोग हैं, जो इस नियम में विश्वास करते हैं और जो इस नियम को अपनी सारी गतिविधियों का आधार बनाते हैं। दूसरी ओर, देवताओं में विश्वास उनके लिए बहुत कम महत्त्व रखता है। एकेश्वरवादी मज़हबों का पहला सिद्धान्त है, 'ईश्वर का अस्तित्व है। वह मुझसे क्या चाहता है'? बौद्धों का पहला सिद्धान्त है, 'दुःख का अस्तित्व है। मैं इससे कैसे मुक्ति पाऊँ'?

बौद्ध धर्म देवताओं के अस्तित्व से इनकार नहीं करता - उन्हें ऐसी शक्तिशाली ताक़तों के रूप में वर्णित किया गया है, जो वर्षा उत्पन्न करती हैं, विजय दिलाती हैं - लेकिन इस नियम पर उनका कोई प्रभाव नहीं है कि तृष्णा दुःख का मूल है। अगर किसी व्यक्ति का मन सारी तृष्णाओं से मुक्त है, तो कोई देवता उसे दुःखी नहीं बना सकता। इसके विपरीत, जब व्यक्ति के मन में तृष्णा उत्पन्न होती है, तो सृष्टि के सारे देवता मिलकर भी उसे दुःख से नहीं बचा सकते।

तब भी काफ़ी कुछ एकेश्वरवादी मज़हबों की ही तरह बौद्ध धर्म जैसे नैसर्गिक नियम-आधारित पूर्वआधुनिक मज़हब भी अपने को देवताओं की उपासना से वास्तव में मुक्त नहीं कर सके। बौद्ध धर्म ने लोगों से कहा कि उन्हें आर्थिक समृद्ध और राजनैतिक सत्ता जैसे मार्ग में आने वाले पड़ावों के बजाय दुःख से पूर्ण मुक्ति के चरम लक्ष्य पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, लेकिन 99 प्रतिशत बौद्धों ने निर्वाण प्राप्त नहीं किया, और अगर उन्होंने भविष्य में कभी उसकी प्राप्ति की उम्मीद की भी, तो भी उन्होंने अपने जीवन का ज़्यादातर हिस्सा सांसारिक उपलब्धियों की खोज में लगाया। इसलिए उन्होंने विभिन्न देवताओं की उपासना ज़ारी रखी, जैसे कि हिन्दुस्तान में हिन्दू देवताओं की,

तिब्बत में बोन देवताओं की, और जापान में शिन्तो देवताओं की।

इसके अतिरिक्त, समय के गुज़रने के साथ अनेक बौद्ध सम्प्रदायों ने बुद्धों और बोधिसत्वों की देवमण्डलियाँ विकसित कर लीं। ये मानवीय और अ-मानवीय हस्तियाँ हैं, जिनमें दु:ख से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करने की क्षमताएँ हैं, लेकिन जिन्होंने करुणा के चलते इस मुक्ति को त्याग दिया है, ताकि वे दु:ख के चक्र में अभी भी फँसे अनगिनत लोगों की सहायता कर सकें। बहुत से बौद्धों ने देवताओं की उपासना करने के बजाय इन प्रबुद्धि हस्तियों की उपासना शुरू कर दी, जिनसे वे ना सिर्फ़ निर्वाण प्राप्त करने, बल्कि सांसारिक समस्याओं से निपटने में सहायता की याचना करते थे। इस तरह हमें समूचे पूर्वी एशिया में ऐसे अनेक बुद्धि और बोधिसत्व मिलते हैं, जो प्रार्थनाओं, रंगीन पुष्पों, अगरबत्तियों और चावल तथा मिठाइयों के चढ़ावे के बदले बारिश लाने, महामारियाँ रोकने और रक्तरंजित युद्धों को जीतने तक में अपना वक़्त बिताते हैं।

मनुष्य की उपासना

पिछले 300 वर्षों को अक्सर विकासशील सेक्युलरिज़्म के युग के रूप में चित्रित किया जाता है, जिसमें मज़हब उत्तरोत्तर अपना महत्त्व खोते गए हैं। अगर हम ईश्वरवादी मज़हबों की बात कर रहे हैं, तो यह व्यापक तौर पर सही है, लेकिन अगर हम प्राकृतिक नियम पर आधारित मज़हबों को विचारणीय बनाते हुए बात करें, तो आधुनिकता प्रचण्ड धार्मिक जोश, धर्मप्रचार के बेमिसाल उद्यमों और इतिहास के सबसे ज़्यादा रक्तरंजित मज़हबी युद्धों का युग साबित होती है। आधुनिक युग उदारतावाद, साम्यवाद, पूँजीवाद, राष्ट्रवाद और नाज़ीवाद जैसे प्राकृतिक नियम-आधारित अनेक नए मज़हबों का साक्षी रहा है। ये पन्थ मज़हब कहलाना पसन्द नहीं करते और स्वयं को विचारधाराएँ कहते हैं, लेकिन यह महज़ एक अर्थ सम्बन्धी क़वायद है। अगर मज़हब ऐसे मानवीय मानकों और मूल्यों की प्रणाली है, जो एक अति मानवीय व्यवस्था में विश्वास पर आधारित होती है, तो सोवियत साम्यवाद इस्लाम के मुक़ाबले कमतर मज़हब नहीं था।

इस्लाम निश्चय ही साम्यवाद से भिन्न है, क्योंकि इस्लाम विश्व का नियमन करने वाली इस अतिमानवीय व्यवस्था को एक सर्वशक्तिमान सर्जक देवता के आदेश के रूप में देखता है, जबकि सोवियत साम्यवाद देवताओं में विश्वास नहीं करता था, लेकिन देवताओं को तो बौद्ध धर्म भी बहुत कम महत्त्व देता है, जबकि हम उसे आमतौर से मज़हब की कोटि में ही रखते हैं। बौद्धों की तरह ही साम्यवादी भी मनुष्य को राह दिखाने वाले प्राकृतिक और अपरिवर्तनीय नियमों की अतिमानवीय व्यवस्था में विश्वास करते थे। जहाँ बौद्धों का मानना था कि प्रकृति के नियम की खोज सिद्धार्थ गौतम ने की थी, वहीं साम्यवादी मानते हैं कि प्रकृति के नियम की खोज कार्ल मार्क्स, फ़्रैड्रिक ऐंजिल्स और व्लादिमीर इल्यीच लेनिन ने की थी। दूसरे मज़हबों की तरह साम्यवाद की भी, कार्ल मार्क्स की दास कैपिटल जैसी अपनी पवित्र पोथियाँ और पैग़म्बरी ग्रन्थ हैं, जिन्होंने भविष्यवाणी की हुई थी कि सर्वहारा की अपरिहार्य विजय के साथ इतिहास का जल्द ही अन्त होगा। साम्यवाद के अपने पवित्र दिन और त्यौहार थे, जैसे मई दिवस और अक्टूबर क्रान्ति की वर्षगाँठ। मार्क्सवादी द्वन्द्व वाद के इसके अपने विशेषज्ञ धर्मशास्त्री हैं, सोवियत

फ़ौज की हर इकाई का अपना एक पुरोहित (चैप्लिन) हुआ करता था, जिसे कमिसार कहा जाता था, जो फ़ौजियों और अधिकारियों की मज़हबी निष्ठा पर नज़र रखता था। साम्यवाद में शहीद, धर्मयुद्ध और ट्रॉट्स्कीवाद जैसी विधर्मिताएँ थीं। सोवियत साम्यवाद एक कट्टरपन्थी और प्रचारधर्मी मज़हब था। एक मज़हबी साम्यवादी के ईसाई या बौद्ध होने पर मनाही थी। उससे अपनी जान की क़ीमत पर भी मार्क्स और लेनिन के सुसमाचार का प्रचार करने की अपेक्षा की जाती थी।

कुछ पाठक इस तर्क-शैली से असहज महसूस कर सकते हैं। अगर आप इससे बेहतर महसूस करते हों, तो आप साम्यवाद को मज़हब कहने के बजाय एक विचारधारा कहने को स्वतन्त्र हैं। इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। हम सम्प्रदायों को देवता-केन्द्रित मज़हबों और उन देवता-रहित विचारधाराओं में बाँट सकते हैं, जो प्राकृतिक नियमों पर आधारित होने का दावा करती हैं, लेकिन तब हमें, तर्कसंगति की ख़ातिर बौद्धों, ताओवादियों और निस्पृहतावादियों (स्टॉइक) के कम से कम कुछ पन्थों को मज़हबों के बजाय विचारधाराओं की कोटि में रखना होगा। इसके विपरीत, हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसी भी कई आधुनिक विचारधाराएँ हैं, जिनमें देवताओं में आस्था बनी हुई है और इनमें से कुछ विचारधाराएँ, जिनमें सबसे ज़्यादा उल्लेखनीय उदारतावाद है, इस आस्था के बिना कोई मायने नहीं रखतीं।

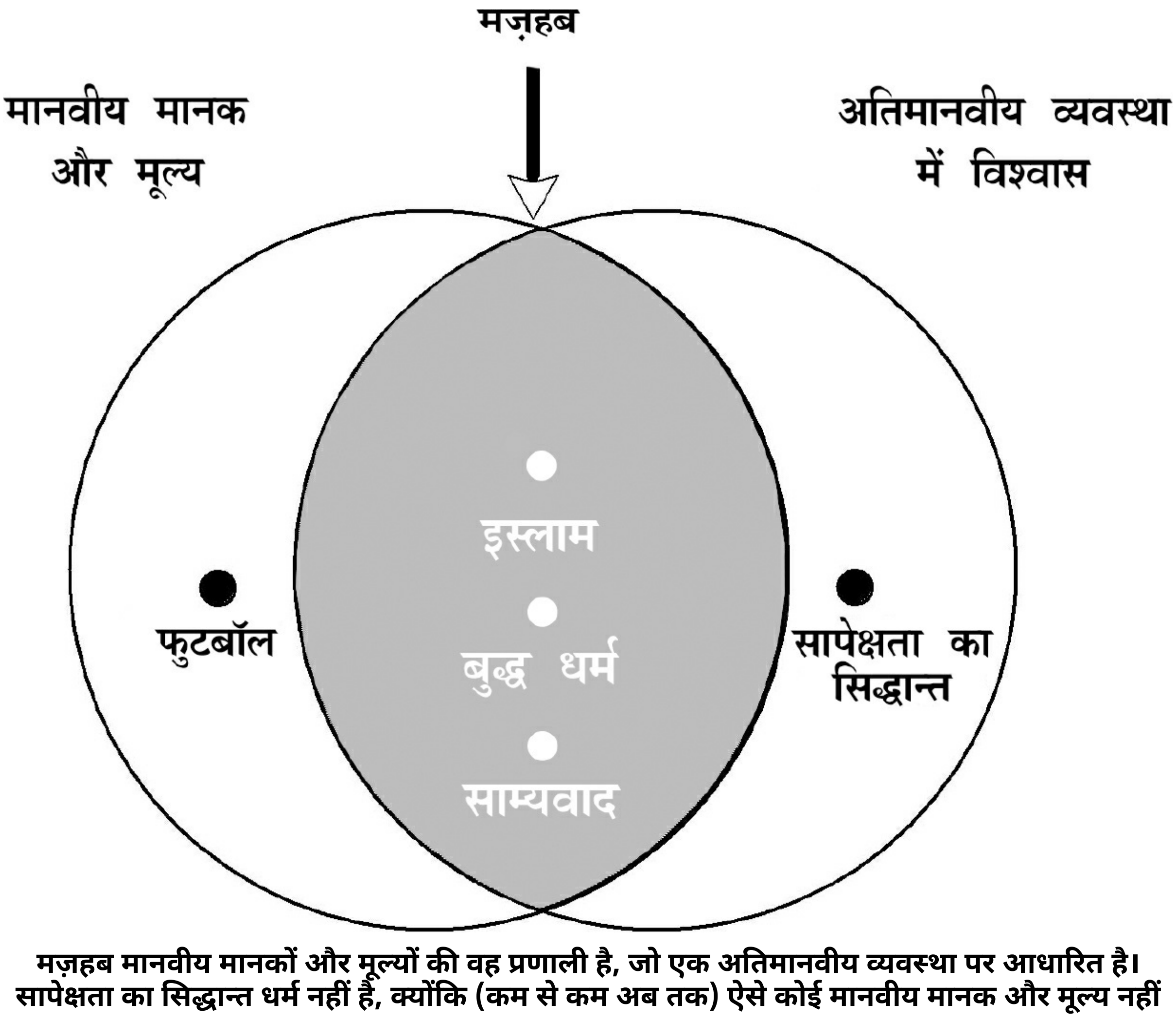

मज़हब मानवीय मानकों और मूल्यों की वह प्रणाली है, जो एक अतिमानवीय व्यवस्था पर आधारित है। सापेक्षता का सिद्धान्त धर्म नहीं है, क्योंकि (कम से कम अब तक) ऐसे कोई मानवीय मानक और मूल्य नहीं

हैं, जो इस पर आधारित हों। फ़ुटबॉल धर्म नहीं है क्योंकि कोई नहीं कहता कि इसके नियम अतिमानवीय आदेशों को प्रतिबिम्बित करते हैं। इस्लाम, बौद्ध धर्म और साम्यवाद सभी मज़हब हैं, क्योंकि ये सभी उन मानवीय मानकों और मूल्यों की प्रणालियाँ हैं, जो एक अतिमानवीय व्यवस्था में विश्वास पर आधरित हैं। (‘अतिमानवीय’ और ‘अतिप्राकृतिक’ के फ़र्क़ पर ध्यान दें। बौद्ध धर्म के प्रकृति के नियम और मार्क्सवाद के इतिहास के नियम अतिमानवीय हैं, क्योंकि उनका विधान मनुष्यों द्वारा नहीं किया गया था। तब भी वे अतिप्राकृतिक नहीं हैं।)

यहाँ इतिहास के सारे नए आधुनिक पन्थों का सर्वेक्षण असम्भव होगा, ख़ास तौर से इसलिए कि उनके बीच कोई स्पष्ट सीमारेखाएँ नहीं हैं। वे एकेश्वरवाद और लोकप्रिय बौद्ध धर्म के मुक़ाबले कम समन्वयात्मक नहीं हैं। जिस तरह एक बौद्ध हिन्दू देवी-देवताओं का उपासक हो सकता है, और जिस तरह एक एकेश्वरवादी शैतान के अस्तित्व में विश्वास रख सकता है, उसी तरह आज के समय का एक सामान्य अमेरिकी एक साथ राष्ट्रवादी भी है (वह इतिहास में एक विशेष भूमिका निभाने के लिए वचनबद्ध अमेरिकी राष्ट्र में आस्था रखता है), मुक्त-बाज़ारी पूँजीवादी भी है (उसका विश्वास है कि मुक्त प्रतिस्पर्धा और निजी हित का अनुसरण एक समृद्ध समाज के निर्माण के सबसे अच्छे रास्ते हैं) और उदार मानवतावादी भी है (उसका मानना है कि मनुष्य को उसके रचयिता ने कुछ अविच्छेद्य अधिकारों से नवाज़ा है)। राष्ट्रवाद की चर्चा अध्याय 18 में की जाएगी। पूँजीवाद - आधुनिक मज़हबों में सबसे ज़्यादा कामयाब मज़हब - एक पूरा अध्याय, अध्याय 16, घेरता है, जिसमें इसके मुख्य सिद्धान्तों और अनुष्ठानों की विस्तार से चर्चा की गई है। इस अध्याय के बाक़ी बचे पन्नों में मैं मानववादी मज़हबों की चर्चा करूँगा।

ईश्वरवादी मज़हब देवताओं की उपासना पर केन्द्रित हैं। मानवतावादी मज़हब मानवता या और भी सही ढंग से कहें तो, होमो सेपियन्स के उपासक हैं। मानवतावाद यह आस्था है कि होमो सेपियन्स की एक अनूठी और पवित्र प्रकृति है, जो तमाम दूसरे प्राणियों की प्रकृति और सृष्टि की तमाम दूसरी रचनाओं की प्रकृति से बुनियादी तौर पर भिन्न है। मानवतावादी मानते हैं कि होमो सेपियन्स की यह अनूठी प्रकृति संसार की सबसे महत्त्वपूर्ण चीज़ है और यह विश्व में होने वाली हर घटना के अर्थ का निर्धारण करती है। सर्वश्रेष्ठ कल्याण होमो सेपियन्स का कल्याण है। बाक़ी सारी दुनिया और दूसरी सत्ताओं का अस्तित्व पूरी तरह से इसी प्रजाति के हित के लिए है।

सारे मानवतावादी मानवता के उपासक हैं, लेकिन मानवता की परिभाषा को लेकर वे एकमत नहीं हैं। मानवतावाद तीन प्रतिद्वन्द्वी पन्थों में विभाजित है, जो ‘मानवता’ की सटीक परिभाषा को लेकर लड़ते रहते हैं, ठीक उसी तरह जिस तरह ईसाइयों के पन्थ ईश्वर की सटीक परिभाषा को लेकर लड़ते थे। आज, मानवतावादियों का सबसे महत्त्वपूर्ण पन्थ उदार मानवतावाद है, जिसका विश्वास है कि ‘मानवता’ विशिष्ट (इंडविजुअल) मनुष्यों का एक गुण है और यह कि व्यक्तियों की स्वतन्त्रता इसीलिए परम पवित्र वस्तु है। उदारतावादियों के मुताबिक़, मनुष्यता की पवित्र प्रकृति का वास हर वैयक्तिक होमो सेपियन्स के अन्दर है। इन विशिष्ट मनुष्यों का आन्तरिक मर्म संसार को अर्थ प्रदान करता है और समस्त नैतिक और राजनैतिक प्रभुता का स्रोत है। अगर हम किसी नैतिक या राजनैतिक दुविधा में फँसे हों, तो हमें अपने अन्दर झाँक कर अपनी आन्तरिक आवाज़ को - मानवता की आवाज़ को - सुनना चाहिए। उदार मानवतावाद के मुख्य धर्मादेशों (कमांडमेंट्स) का उद्देश्य इस आन्तरिक आवाज़ की किसी भी तरह के

अतिक्रमण या क्षति के विरुद्ध रक्षा करना है। इन धर्मादेशों को सामूहिक तौर पर 'मानव अधिकारों' के नाम से जाना जाता है।

उदाहरण के लिए, उदारतावादी इसी वजह से यातना या मृत्यु-दण्ड का विरोध करते हैं। आधुनिक यूरोप के शुरुआती दौर में हत्याओं को विश्व-व्यवस्था का उल्लंघन करने और उसका सन्तुलन बिगाड़ने वाले कृत्यों के रूप में देखा जाता था। विश्व को उसके सन्तुलन में वापस लाने की ख़ातिर अपराधियों को यातना देना और सार्वजनिक रूप से फाँसी देना आवश्यक समझा जाता था, ताकि हर कोई व्यवस्था को फिर से स्थापित होते देख सकता। शेक्सपियर और मौलियर के ज़माने में फाँसी के वीभत्स दृश्यों के सार्वजनिक प्रदर्शनों में शामिल होना लन्दनवासियों और पेरिसवासियों का प्रिय मनोरंजन हुआ करता था। आज के यूरोप में हत्या को मानवता की पवित्र प्रकृति के उल्लंघन के रूप में देखा जाता है। इस व्यवस्था को फिर से क़ायम करने के लिए आज के यूरोपीय लोग अपराधियों को यातना और फाँसी नहीं देते। इसके बजाय वे हत्यारे को उस ढंग से दण्डित करते हैं, जिसे वे सर्वाधिक सम्भव 'मानवीय' ढंग के रूप में देखते हैं और इस तरह वे अपराधी की मानवीय पवित्रता की हिफ़ाज़त ही नहीं, बल्कि उसकी पुनर्स्थापना भी करते हैं। हत्यारे की मानवीय प्रकृति का सम्मान करते हुए हर किसी को मानवता की पवित्रता का स्मरण कराया जाता है, और व्यवस्था को बहाल किया जाता है। हत्यारे का बचाव करते हुए हम उस भूल को सुधारते हैं, जो हत्यारे ने की होती है।

इसके बावजूद कि उदार मानवतावाद मनुष्यों का दैवीकरण करता है, तब भी वह ईश्वर के अस्तित्व से इनकार नहीं करता, और वस्तुतः, वह एकेश्वरवादी आस्थाओं पर आधारित है। प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्र और पवित्र प्रकृति में उदारतावादी आस्था स्वतन्त्र और शाश्वत आत्माओं में पारम्परिक ईसाई आस्था की सीधी विरासत है। शाश्वत आत्माओं और सृष्टा ईश्वर को हटा दें, तो उदारतावादियों के लिए यह समझा पाना शर्मनाक ढंग से मुश्किल हो जाता है कि वैयक्तिक सेपियन्स में ऐसी कौन-सी ख़ास बात है।

एक अन्य पन्थ है समाजवादी मानवतावाद का। समाजवादी मानते हैं कि 'मानवता' वैयक्तिक नहीं, बल्कि सामूहिक है। वे प्रत्येक व्यक्ति की अन्दरूनी आवाज़ को नहीं, बल्कि समग्र रूप से होमो सेपियन्स को पवित्र मानते हैं। जहाँ उदारतावादी मानवतावाद प्रत्येक मनुष्य के लिए अधिकतम सम्भव स्वतन्त्रता का आग्रह करते हैं, वहीं समाजवादी मानवतावाद सारे मनुष्यों के बीच समानता का आग्रह करते हैं। समाजवादियों के मुताबिक़, असमानता मनुष्यता की पावनता के ख़िलाफ़ सबसे बड़ी ईश-निन्दा है, क्योंकि यह मनुष्यों के सार्वभौमिक सत्व पर उनके महत्त्वहीन गुणों को वरीयता देती है। उदाहरण के लिए, जब दौलतमन्दों को निर्धनों पर वरीयता दी जाती है, तो इसका मतलब होता है कि हम पैसे को सारे मनुष्यों के उस सार्वभौमिक सत्व से ज़्यादा मूल्यवान मानते हैं, जो दौलतमन्दों और निर्धनों में समान रूप से मौजूद है।

उदार मानवतावाद की ही तरह सामाजिक मानवतावाद एकेश्वरवादी बुनियादों पर खड़ा है। यह धारणा कि सारे मनुष्य बराबर हैं, इस एकेश्वरवादी मान्यता का सुधरा हुआ संस्करण है कि ईश्वर के समक्ष सारी आत्माएँ बराबर हैं। जो एकमात्र मानवतावादी पन्थ पारम्परिक एकेश्वरवाद से वास्तव में मुक्त है, वह है विकासवादी मानवतावाद, जिसके

सबसे प्रसिद्ध प्रतिनिधि हैं नाज़ी। जो चीज़ नाज़ियों को दूसरे मानवतावादी पन्थों से अलग करती थी, वह थी मनुष्यता की एक भिन्न परिभाषा, वह परिभाषा, जिस पर विकासवाद के सिद्धान्त का गहरा असर था। अन्य मानवतावादियों के विपरीत नाज़ी मानते थे कि मानव-जाति कोई सार्वभौमिक और शाश्वत चीज़ नहीं है, बल्कि एक परिवर्तनीय प्रजाति है, जो विकसित भी हो सकती है या विकृत भी हो सकती है। मानव विकसित होकर अतिमानव (सुपरमैन) भी बन सकता है या विकृत होकर निकृष्ट मानव (सबह्यूमन) भी बन सकता है।

नाज़ियों की प्रमुख महत्त्वाकांक्षा मानव-जाति को विकृति से बचाने और उसकी प्रगतिशील विकास-प्रक्रिया को बढ़ावा देने की थी। यही वजह है कि नाज़ी कहते थे कि आर्य नस्ल, जो उनके मुताबिक़ मनुष्यता का सबसे उन्नत रूप था, की रक्षा की जानी चाहिए और उसे मज़बूत बनाया जाना चाहिए, जबकि यहूदियों, जिप्सियों, समलैंगिकों और दिमाग़ी तौर पर बीमारों जैसे विकृत क़िस्म के होमो सेपियन्स को ना केवल अलग-थलग दड़बों में रखा जाना चाहिए, बल्कि उन्हें ख़त्म कर देना चाहिए। नाज़ियों की कैफ़ियत थी कि स्वयं होमो सेपियन्स का आविर्भाव तब हुआ था, जब प्राचीन मानवों की एक 'श्रेष्ठतर' आबादी विकसित हुई थी, जबकि निएंडरथल्स जैसी 'निकृष्ट' आबादियाँ लुप्त हो गई थीं। ये अलग-अलग आबादियाँ शुरू में विभिन्न नस्लों से ज़्यादा कुछ नहीं थीं, बल्कि अपने-अपने विकासपरक रास्तों पर चलती हुई स्वतन्त्र रूप से विकसित हुई थीं। यह प्रक्रिया दोबारा भी घटित हो सकती है। नाज़ियों के मुताबिक़, होमो सेपियन्स पहले ही अनेक अलग-अलग नस्लों में विभाजित हो चुके थे, जिनमें से प्रत्येक नस्ल के अपने विशिष्ट गुण थे। इनमें से एक नस्ल, आर्य नस्ल, में सर्वश्रेष्ठ गुण मौजूद थे - तर्कशीलता, सौन्दर्य, ईमानदारी, कर्मठता। इसलिए आर्य नस्ल में मानव को अतिमानव में बदल देने की सम्भावनाएँ निहित थीं। यहूदियों और कालों जैसी दूसरी नस्लें आज के ज़माने के निएंडरथल्स थे, जिनमें निचले दर्ज़े के गुण थे। अगर इन्हें प्रजनन करने की इजाज़त दी जाती, और ख़ास तौर से आर्यों के साथ अन्तरविवाह करने की, तो ये सारी मानव आबादी को भ्रष्ट कर देते और होमो सेपियन्स को विलुप्त हो जाने के लिए अभिशप्त कर देते।

जीव वैज्ञानिक अब तक नाज़ियों की नस्लपरक परिकल्पना को ध्वस्त कर चुके हैं। ख़ास तौर से 1945 के बाद किए गए आनुवांशिक अनुसन्धानों ने यह दर्शाया है कि मनुष्य की विभिन्न वंशावलियों के बीच के भेद नाज़ियों द्वारा कल्पित भेदों की तुलना में बहुत-बहुत कम थे, लेकिन ये निष्कर्ष अपेक्षाकृत नए हैं। 1933 के वैज्ञानिक ज्ञान को देखते हुए नाज़ियों के विश्वासों को शायद ही कोई अस्वीकार्य या कुतर्कपूर्ण मान पाता होगा। मनुष्य की विभिन्न नस्लों का अस्तित्व, गोरी नस्ल की श्रेष्ठता और इस श्रेष्ठ नस्ल की रक्षा करने और उसको उन्नत करने की ज़रूरत पश्चिम के अधिकांश प्रभु वर्ग के बीच व्यापक रूप से मान्य विश्वास रहे हैं। पश्चिम के सर्वाधिक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में काम कर रहे अध्येताओं ने तत्कालीन रूढ़िवादी वैज्ञानिक पद्धतियों का इस्तेमाल करते हुए ऐसे अध्ययन प्रकाशित किए थे जो कथित रूप से इस बात को साबित करते थे कि गोरी नस्ल के लोग अफ़्रीकियों या हिन्दुस्तानियों के मुक़ाबले ज़्यादा बुद्धिमान, ज़्यादा नैतिक और ज़्यादा दक्ष होते हैं। उदाहरण के लिए, वाशिंगटन, लन्दन और कैनबरा में बैठे राजनेता यह मानकर ही चलते थे कि संयुक्त राज्य अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया जैसे 'आर्य' मुल्क़ों में

चीन या इटली तक से लोगों के प्रवेश को रोकते हुए गोरी नस्ल को अपमिश्रण और क्षरण से बचाना उनका कर्तव्य था।

मानवतावादी मज़हब - वे मज़हब, जो मानवता के उपासक हैं

उदारतावादी मानवतावाद	**समाजवादी मानवतावाद**	**विकासवादी मानवतावाद**
होमो सेपियन्स की एक विशिष्ट और पवित्र प्रकृति है, जो तमाम दूसरे प्राणियों और संघटनाओं की प्रकृति से बुनियादी तौर पर भिन्न है। सर्वोच्च कल्याण ही मनुष्यता का कल्याण है।		
‘मनुष्यता’ व्यक्तिवादी है और प्रत्येक वैयक्तिक होमो सेपियन्स के भीतर निवास करती है	‘मनुष्यता’ सामूहिक है और समग्र होमो सेपियन्स प्रजाति के भीतर निवास करती है	‘मनुष्यता’ एक परिवर्तनीय प्रजाति है। मनुष्य क्षय का शिकार होकर अवमानव (सबह्यूमन) में बदल सकते हैं या विकसित होकर अतिमानव में बदल सकते हैं
प्रत्येक वैयक्तिक होमो सेपियन्स के आन्तरिक मर्म और उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा सर्वोच्च धर्मादेश है	होमो सेपियन्स प्रजाति की समानता की रक्षा सर्वोच्च धर्मादेश है	क्षय का शिकार होकर अवमानव में बदलने से मनुष्य की रक्षा करना और उसे विकसित होकर अतिमानव बनने के लिए प्रोत्साहित करना सर्वोच्च धर्मादेश है

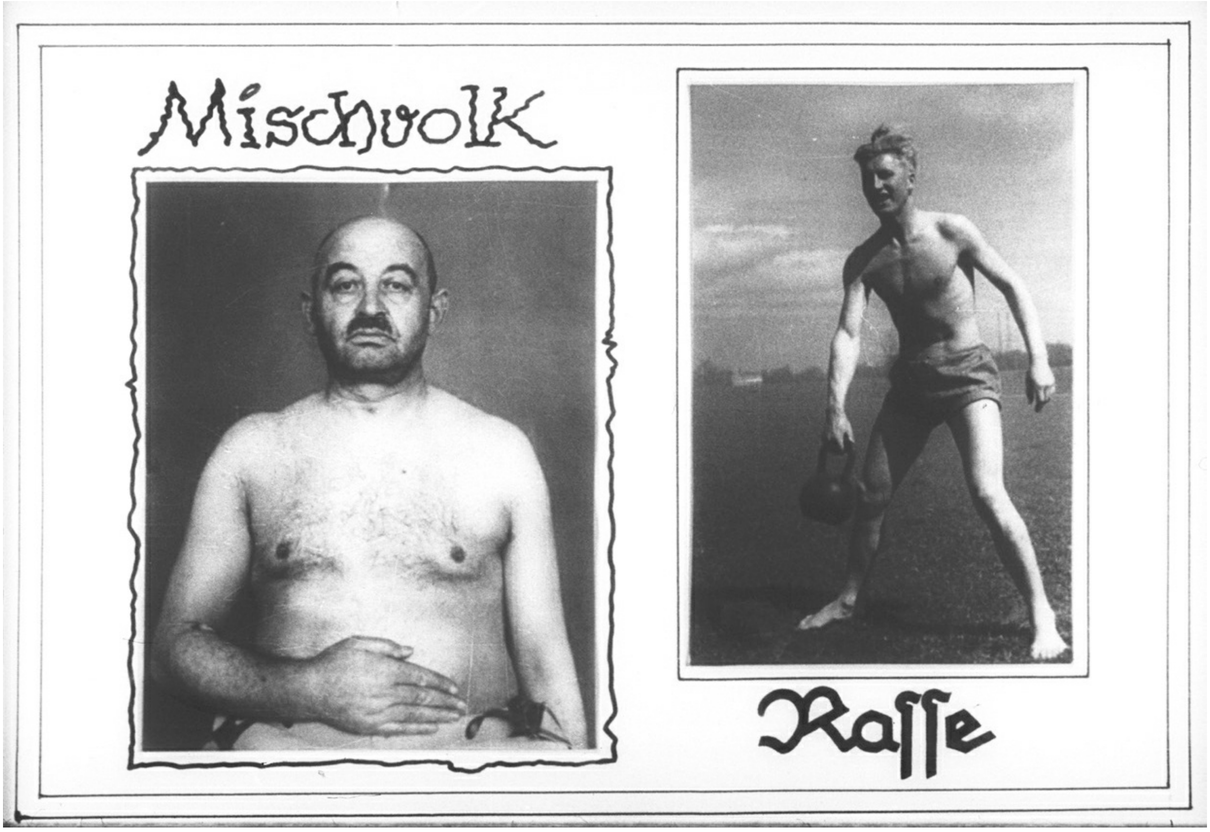

30. एक नाज़ी प्रचार पोस्टर, जिसमें दायीं तरफ़ एक 'नस्लपरक दृष्टि से शुद्ध आर्य' को और बायीं तरफ़ एक 'वर्णसंकर' को दर्शाया गया है। मनुष्य की देह के प्रति नाज़ियों का सराहना-भाव स्पष्ट है, उतना ही स्पष्ट ख़ौफ़ भी कि नस्लें मनुष्यता को प्रदूषित कर सकती हैं और उसके क्षय का कारण बन सकती हैं।

इन दृष्टिकोणों में बदलाव महज़ इसलिए नहीं आया था कि नए वैज्ञानिक अध्ययन प्रकाश में आ गए थे। समाजवैज्ञानिक और राजनैतिक घटनाक्रम बदलाव के कहीं ज़्यादा सशक्त कारक थे। इस अर्थ में, हिटलर ने सिर्फ़ अपनी ही क़ब्र नहीं खोदी थी, बल्कि नस्लवाद-मात्र की क़ब्र भी खोदी थी। जब उसने द्वितीय विश्व युद्ध का आग़ाज़ किया था, तो उसने अपने दुश्मनों को 'हम' और 'उन' के बीच दो-टूक भेद करने पर मज़बूर कर दिया था। बाद में, सिर्फ़ इसलिए ही कि नाज़ी विचारधारा बेहद नस्लवादी थी, नस्लवाद ने पश्चिम में अपनी साख खोई थी, लेकिन इस बदलाव ने वक़्त लिया। गोरों की श्रेष्ठता अमेरिकी राजनीति में 1960 के दशक तक मुख्य विचारधारा बनी रही। ऑस्ट्रेलिया में अश्वेत लोगों के आगमन पर रोक लगाने वाली गोरी ऑस्ट्रलिया नीति 1973 तक प्रभावी बनी रही। 1960 के दशक तक ऑस्ट्रेलिया के मूल निवासियों को बराबरी के राजनैतिक अधिकार नहीं मिले थे और उनमें से ज़्यादातर पर चुनावों में मतदान करने पर प्रतिबन्ध था क्योंकि उन्हें नागरिकों के रूप में काम करने के लिहाज़ से अयोग्य माना जाता था।

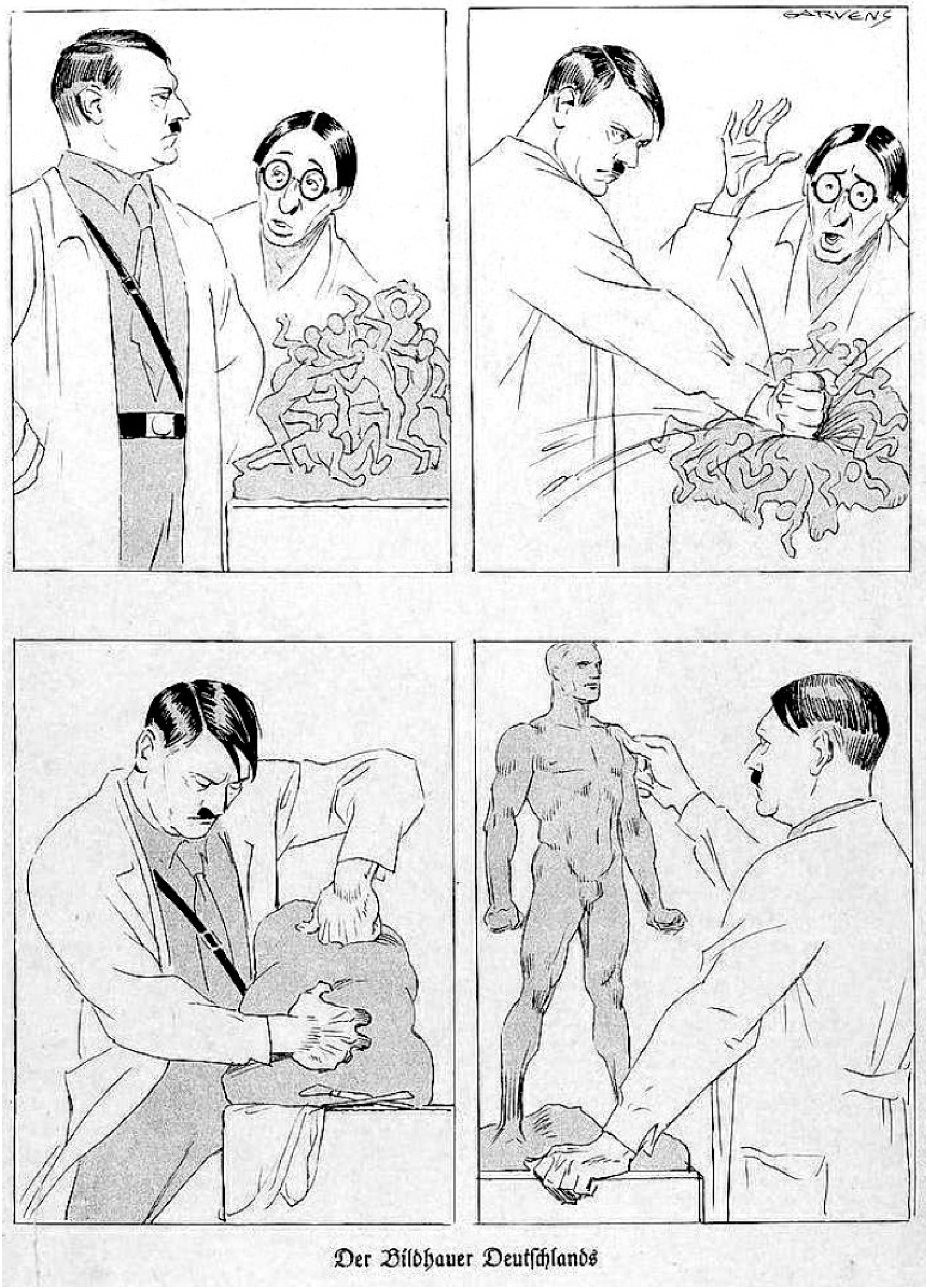
GARVENS
Der Bildhauer Deutſchlands

31. 1933 का एक नाज़ी कार्टून। हिटलर को एक ऐसे मूर्तिकार के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो अतिमानव को गढ़ता है। एक ऐनकधारी उदार बुद्धिजीवी अतिमानव को गढ़ने के लिए आवश्यक हिंसा से भयभीत है।

नाज़ी मनुष्यता से घृणा नहीं करते थे। वे उदार मानवतावाद, मानव अधिकारों और

साम्यवाद के ख़िलाफ़ सिर्फ़ इसलिए लड़े थे क्योंकि वे मनुष्यता की इज़्ज़त करते थे और मानव प्रजाति की महान सम्भावना में विश्वास करते थे।

लेकिन डार्विन के विकासवाद का अनुसरण करते हुए उनका तर्क था कि प्राकृतिक वरण को इस बात की इजाज़त मिलनी चाहिए कि वह अक्षम व्यक्तियों को उखाड़ फेंके और केवल सक्षम व्यक्तियों को ही जीवित रहने और वंशवृद्धि करने के लिए बचने दे। कमज़ोरों की सहायता करते हुए उदारतावाद और साम्यवाद ने अक्षम व्यक्तियों को ना सिर्फ़ ज़िन्दा बने रहने की गुंजाइश दी थी, बल्कि उन्होंने उन्हें वंशवृद्धि करने का अवसर और इस तरह प्राकृतिक वरण का उन्मूलन करने का भी अवसर उपलब्ध कराया था। ऐसी दुनिया में सबसे ज़्यादा सक्षम मनुष्यों का अक्षम विकृत व्यक्तियों के समुद्र में डूब जाना अपरिहार्य होता। मानव-जाति हर पीढ़ी के गुज़रने के साथ कम से कम सक्षम होती जाती - और यह प्रक्रिया उसको विलुप्ति की ओर ले जा सकती थी।

1942 की जर्मन जीव-विज्ञान की एक पाठ्यपुस्तक का ‘प्रकृति के नियम और मानव-जाति’ नामक अध्याय बताता है कि प्रकृति का सबसे बड़ा नियम यह है कि सारे जीव जीवित बने रहने के क्रूर संघर्ष में लगे हैं। किस तरह वनस्पतियाँ इलाक़े के लिए संघर्ष करती हैं और किस तरह गुबरैले संसर्ग के लिए अपने साथी को हासिल करने के संघर्ष में लगे हैं। यह सब बताने के बाद यह पाठ्यपुस्तक निष्कर्ष देती है :

> अस्तित्व में बने रहने की लड़ाई कठिन और निर्मम है, लेकिन जीवन को क़ायम रखने का यही एकमात्र तरीक़ा है। यह संघर्ष उस हर चीज़ को मिटा देता है, जो जीवित बने रहने के योग्य नहीं है और उस हर चीज़ का वरण करता है, जो जीवित बने रहने के क़ाबिल है... प्रकृति के ये नियम अकाट्य हैं; जीवित जन्तु अपने जीवित बने रहने के माध्यम से इन नियमों को प्रदर्शित करते हैं। ये निर्मम हैं। जो इन्हें प्रतिरोध देगा, वह मिट जाएगा। जीव-विज्ञान हमें ना सिर्फ़ प्राणियों और वनस्पतियों के बारे में बताता है, बल्कि हमें वे नियम भी दर्शाता है, जिनका हमें अपने जीवन में अनुसरण करना चाहिए और इन नियमों के मुताबिक़ जीने और संघर्ष करने की हमारी संकल्प-शक्ति को मज़बूत करता है। वह व्यक्ति सावधान रहे, जो इन नियमों के विरोध में जाने का पाप करता है।

इसके बाद मइन कम्फ़ से एक उद्धरण दिया गया है : “जो व्यक्ति प्रकृति के कठोर न्याय के विरोध की कोशिश करता है, वह इस तरह उन नियमों का भी विरोध करता है, जिनके प्रति उसको एक मनुष्य के रूप में अपने जीवन के लिए कृतज्ञ होना चाहिए। प्रकृति के विरुद्ध लड़ना अपने ख़ुद के विनाश का कारण बनना है”।

आज तीसरी सहस्राब्दी के उदय-काल में विकासवादी मानवतावाद का भविष्य अस्पष्ट है। हिटलर के ख़िलाफ़ लड़े गए युद्ध की समाप्ति के साठ वर्षों तक मानवतावाद को विकास की प्रक्रिया से जोड़कर देखना और होमो सेपियन्स को ‘पदोन्नत’ करने के लिए जीववैज्ञानिक पद्धतियों के इस्तेमाल की पैरवी करना एक वर्जित कर्म बना रहा है, लेकिन आज इस तरह के अभियान एक बार फिर से फ़ैशन में हैं। कमतर नस्लों या हीन समुदायों का विनाश करने की बात कोई नहीं करता, लेकिन बहुत से लोग हैं, जो अतिमानवों की रचना के लिए मनुष्य की जैविकी के हमारे बढ़ते हुए ज्ञान का उपयोग करने के बारे सोचते हैं।

इसी के साथ, उदार मानवतावाद के सिद्धान्तों और जैविक विज्ञानों की ताज़ा उपलब्धियों के बीच एक बहुत बड़ी खाई पैदा हो रही है, एक ऐसी खाई, जिसे हम ज़्यादा समय तक नज़रअन्दाज़ नहीं कर सकते। हमारे उदार राजनैतिक और न्यायिक तन्त्र इस

विश्वास पर खड़े हैं कि हर व्यक्ति में एक पवित्र आन्तरिक प्रकृति निहित है, जो कि अविभाज्य और अपरिवर्तनीय है, जो दुनिया को अर्थ प्रदान करती है, और जो समूची नैतिक और राजनैतिक प्रभुता का स्रोत है। यह उस पारम्परिक ईसाई आस्था का नया अवतार है, जिसके मुताबिक़ हर व्यक्ति के भीतर स्वतन्त्र और शाश्वत आत्मा का वास है, लेकिन पिछले 200 सालों में जैविक विज्ञानों ने इस विश्वास को पूरी तरह उन्मूलित कर दिया है। मनुष्य की ऐन्द्रिक रचना की आन्तरिक क्रियाशीलता का अध्ययन कर रहे वैज्ञानिकों को वहाँ कोई आत्मा दिखाई नहीं दी है। वे लगातार यह तर्क देते रहे हैं कि मनुष्य का व्यवहार स्वतन्त्र संकल्प से नहीं, बल्कि हार्मोनों, जीनों और सिनैप्सों से निर्धारित होता है - वही शक्तियाँ, जो चिंपांज़ियों, भेड़ियों और चींटियों के व्यवहार को निर्धारित करती हैं। हमारे न्यायिक और राजनैतिक तन्त्र इस तरह की असुविधाजनक खोजों को आम तौर से बुहारकर ग़लीचे के नीचे दबाने की कोशिश करते हैं, लेकिन ईमानदारी से बात करें, तो हम जीव-विज्ञान विभाग को विधि और राजनीति विज्ञान के विभागों से अलग करने वाली दीवार को कब तक बरकरार रख पाएँगे?

13

सफलता का रहस्य

वाणिज्य, साम्राज्य और सार्वभौमिक मज़हब अन्ततः प्रत्येक महाद्वीप के लगभग प्रत्येक सेपियन्स को उस भूमण्डलीय जगत में ले आए थे, जिसमें हम आज रहते हैं। यह नहीं कि विस्तार और एकीकरण की यह प्रक्रिया एकरैखिक या निर्बाध रही, लेकिन व्यापक तसवीर को ध्यान में रखें, तो अनेक छोटी संस्कृतियों से थोड़ी-सी बड़ी संस्कृतियों और अन्ततः एक एकल भूमण्डलीय समाज में प्रवेश शायद मानव इतिहास की गति का एक अपरिहार्य परिणाम था।

लेकिन यह कहना कि एक भूमण्डलीय समाज अपरिहार्य है, यह कहने के बराबर नहीं है कि अन्तिम नतीज़ा उसी तरह के भूमण्डलीय समाज के रूप में आना अपरिहार्य था, जिसमें आज हम रह रहे हैं। हम निश्चय ही दूसरी तरह के नतीज़ों की भी कल्पना कर सकते हैं। क्या कारण है कि आज अँग्रेज़ी का इतना व्यापक विस्तार है और डैनिश भाषा का नहीं है? क्या कारण है आज दुनिया में लगभग 2 अरब ईसाई और 1.25 अरब मुसलमान हैं, लेकिन 150,000 ज़रथुष्ट्रवादी हैं और एक भी मैनिक़ियाई नहीं है? अगर हम 10,000 साल पहले के समय में वापस जा सकें और प्रक्रिया को, हर बार, फिर से आरम्भ करें, तो क्या हम हमेशा एकेश्वरवाद के उत्थान और द्वैतवाद के पतन का दर्शन करेंगे?

हम इस तरह का प्रयोग नहीं कर सकते, इसलिए हम वाक़ई नहीं जानते कि क्या होगा, लेकिन इतिहास के दो निर्णायक महत्त्व के लक्षण हमें कुछ सुराग़ मुहैया करा सकते हैं।

1. पश्चात-दृष्टि भ्रांति

इतिहास का हर मुक़ाम एक चौराहा है। जिस किसी भी एक रास्ते पर चला गया होता है, वह अतीत से वर्तमान की ओर जाता है, लेकिन भविष्य की दिशा में अनगिनत राहें खुलती हैं। इनमें से कुछ रास्ते ज़्यादा चौड़े, समतल और बेहतर ढंग से दिशा-निर्देशों से युक्त होते हैं और इस तरह उन्हें अपनाए गए होने की ज़्यादा सम्भावना होती है, लेकिन कभी-कभी इतिहास अप्रत्याशित मोड़ ले लेता है - या वे लोग अप्रत्याशित दिशा अपना लेते हैं, जो इतिहास का निर्माण करते हैं।

ईसा की चौथी सदी की शुरुआत में रोमन साम्राज्य के सामने मज़हबी सम्भावनाओं का एक व्यापक क्षितिज खुला था। वह अपने पारम्परिक और बहुरंगी बहुदेववाद से चिपका रह सकता था, लेकिन लगता है कि इसके सम्राट कोंसटेंटाइन ने गृह युद्ध की चिड़चिड़ी सदी की ओर पीछे मुड़कर देखने के बाद सोचा कि स्पष्ट सिद्धान्त ये युक्त एक मज़हब प्रजातीय विविधता से युक्त उसके साम्राज्य को एकीकृत करने में उसकी मदद कर सकता है। वह अनेक समकालीन उपासना-पद्धतियों में से किसी भी पद्धति को अपने राष्ट्रीय मज़हब के रूप में चुन सकता था - मिथ्राइज़्म, ईशस या सिबेलि की उपासना-पद्धतियाँ, ज़रथ्रुष्टवाद, जुडाइज़्म और यहाँ तक कि बौद्ध धर्म में से सारे के सारे विकल्प उपलब्ध थे। उसने ईसा को ही क्यों चुना? क्या ईसाई देव-विद्या में ऐसा कुछ था, जिसने उसे व्यक्तिगत तौर पर आकर्षित किया था या इस आस्था-पद्धति का कोई ऐसा पक्ष था, जिसकी वजह से उसने सोचा हो कि वह इस आस्था-पद्धति का अपने प्रयोजन के लिए बेहतर ढंग से इस्तेमाल कर सकेगा? क्या उसे कोई मज़हबी तर्ज़ुबा था, या उसके किन्हीं सलाहकारों ने उसे यह सुझाया था कि ईसाइयों को बहुत तेज़ी से अनुयायी मिल रहे हैं और इसलिए उनकी गाड़ी में सवार हो जाना सबसे अच्छा होगा? इतिहासकार अटकलें लगा सकते हैं, लेकिन कोई निश्चित जवाब उपलब्ध नहीं करा सकते। वे यह तो बयान कर सकते हैं कि ईसाइयत ने किस तरह रोमन साम्राज्य को अपने क़ब्ज़े में लिया, लेकिन वे यह कैफ़ियत नहीं दे सकते कि यही ख़ास सम्भावना क्यों साकार हुई।

'किस तरह' का बयान करने और 'क्यों' की कैफ़ियत देने में क्या अन्तर है? 'किस तरह' का बयान करने का मतलब होता है कि उन विशिष्ट घटनाओं का नए सिरे से संयोजन करना, जो एक मुक़ाम से दूसरे मुक़ाम तक ले गई थीं। 'क्यों' की कैफ़ियत देने का मतलब है उन कारक सूत्रों का पता लगाना, जो घटनाओं की तमाम दूसरी शृंखलाओं को छोड़कर उनकी इस ख़ास शृंखला के उपस्थित होने के लिए ज़िम्मेदार हैं।

कुछ अध्येता बेशक ईसाइयत के उदय जैसी घटनाओं की निश्चयात्मक कैफ़ियतें उपलब्ध कराते हैं। वे मानव इतिहास को जैविक, पारिस्थितिकीय या आर्थिक शक्तियों की क्रियाशीलताओं में संकुचित करने की कोशिश करते हैं। वे तर्क देते हैं कि रोमन भूमध्यसागर के भूगोल, जेनेटिक्स या अर्थव्यवस्था में ऐसी कोई चीज़ थी, जिसने एकेश्वरवादी मज़हब के उद्भव को अपरिहार्य बनाया, लेकिन ज़्यादातर इतिहासकार इस तरह की निश्चयात्मक परिकल्पनाओं को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। एक अकादमिक अनुशासन के रूप में इतिहास का यह एक विभेदक लक्षण है - किसी ख़ास ऐतिहासिक युग को आप जितना ही ठीक से जानते हैं, उतना ही मुश्किल हो जाता है इस बात को समझाना कि घटनाएँ एक ही तरह से घटित क्यों हुईं और दूसरी तरह से क्यों नहीं हुईं। जिन्हें किसी ख़ास युग की महज़ सतही जानकारी होती है, वे केवल उसी सम्भावना पर

ध्यान केन्द्रित करने की ओर प्रवृत्त होते हैं, जो साकार हुई होती हैं। वे एक सटीक ढंग से गढ़ा गया क़िस्सा पश्चात बुद्धि के साथ यह समझाने के लिए पेश करते हैं कि वह परिणाम क्यों अपरिहार्य था। जो लोग उस युग के बारे में गहरी जानकारी रखते हैं, वे ना अपनाए गए रास्तों को लेकर कहीं ज़्यादा समझ रखते हैं।

वस्तुत:, जो लोग उस युग से सबसे अच्छी तरह से वाकिफ़ थे - जो उस वक़्त जीवित थे - वे सबसे ज़्यादा अनभिज्ञ थे। कोंसटेंटाइन के एक औसत रोमन के लिए भविष्य कुहासे में ढँका हुआ था। ये इतिहास का एक कठोर नियम है कि पश्चात बुद्धि से जो चीज़ अपरिहार्य प्रतीत हो रही है, वह अपने समय में उतनी ही अस्पष्ट हुआ करती थी। आज भी स्थिति भिन्न नहीं है। क्या हम भूमण्डलीय आर्थिक संकट से बाहर हैं या बदतर स्थिति अभी भी आने को है? क्या चीन का विकास एक प्रमुख महाशक्ति बनने तक जारी रहेगा? क्या संयुक्त राज्य अमेरिका अपना वर्चस्व खो देगा? एकेश्वरवादी कट्टरता का उभार एक भविष्य की ओर फैलती लहर है या एक तात्कालिक भँवर है, जिसका कोई ख़ास दीर्घकालिक प्रभाव नहीं होगा? हम पारिस्थितिकीय आपदा की ओर बढ़ रहे हैं या प्रौद्योगिकीय स्वर्ग की ओर बढ़ रहे हैं? इन तमाम सम्भावनाओं के बारे में अच्छे तर्क दिए जा सकते हैं, लेकिन निश्चित तौर पर जानने का कोई तरीक़ा नहीं है। कुछ ही दशकों बाद लोग पीछे मुड़कर देखेंगे और सोचेंगे कि इन तमाम सवालों के जवाब तो ज़ाहिर थे।

इस बात पर बल देना विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है कि जो सम्भावनाएँ समकालीनों को बहुत असम्भाव्य प्रतीत होती हैं, वे ही अक्सर घटित होती हैं। जब कोंसटेंटाइन ने 306 में सिंहासन सँशला था, तब ईसाइयत लगभग एक गुह्य पूर्वी सम्प्रदाय ही था। अगर आपने उस समय यह कहा होता कि यह भविष्य में रोमनों का राजकीय मज़हब बन जाएगा, तो आपकी बात को उसी तरह हँसी में उड़ा दिया गया होता, जिस तरह आज उड़ा दिया जाएगा अगर आज आप यह कहें कि 2050 तक हरे कृष्णा पन्थ संयुक्त राज्य अमेरिका का राजकीय मज़हब बन जाएगा। अक्टूबर 1913 में बोल्शेविक रूस का एक छोटा-सा उग्रवादी धड़ा हुआ करता था। उस वक़्त किसी भी अक़्लमन्द व्यक्ति ने यह भविष्यवाणी ना की होती कि महज़ चार सालों के भीतर वे देश को अपने क़ब्ज़े में ले लेंगे। 600 ईसवी में यह धारणा और भी हास्यास्पद समझी जाती कि रेगिस्तानों में भटकने वाला अरबों का एक क़बीला जल्दी ही अटलांटिक महासागर से लेकर हिन्दुस्तान तक फैले विस्तार को जीत लेगा। निश्चय ही, अगर बिज़ेंटाइन फ़ौज शुरुआती आक्रमण को रोकने में कामयाब रही होती, तो इस्लाम शायद एक ऐसी अज्ञात उपासना-पद्धति बनी रह गई होती, जिसके बारे में मुट्ठी भर मर्मज्ञों को ही जानकारी होती। अध्येताओं को तब यह समझा पाना बहुत आसान होता कि मक्का के एक अधेड़ व्यापारी के समक्ष हुए दैवीय रहस्योद्घाटन पर आधारित एक आस्था-पद्धति क्यों लोकप्रिय नहीं हो सकी थी।

यह नहीं कि हर चीज़ मुमकिन है। भौगोलिक, जैविक और आर्थिक शक्तियाँ बाधाएँ डालती हैं। तब भी ये बाधाएँ ऐसे विस्मयकारी घटनाक्रमों के लिए भरपूर गुंजाइश छोड़ती हैं, जो किन्हीं भी निश्चयात्मक नियमों से बँधे प्रतीत नहीं होते।

यह निष्कर्ष उन बहुत से लोगों को निराश करने वाला है, जो चाहते हैं कि इतिहास निश्चयात्मक हो। निश्चयात्मकतावाद आकर्षक लगता है क्योंकि इसमें यह संकेत निहित होता है कि हमारी दुनिया और हमारे विश्वास इतिहास के स्वाभाविक और अपरिहार्य फल

हैं। यह स्वाभाविक और अपरिहार्य है कि हम राष्ट्र राज्यों में रहते हैं, अपनी अर्थव्यवस्था को पूँजीवादी सिद्धान्तों के आधार पर नियोजित करते हैं, और मानवाधिकारों में उत्साहपूर्वक विश्वास रखते हैं। यह स्वीकार करना कि इतिहास निश्चयात्मक नहीं होता, यह स्वीकार करना है कि यह महज़ एक संयोग है कि आज लोग राष्ट्रवाद, पूँजीवाद और मानवाधिकारों में विश्वास रखते हैं।

इतिहास को ना तो निश्चयात्मक मानकर समझाया जा सकता है, ना ही उसका पूर्वानुमान किया जा सकता है क्योंकि वह अराजक होता है। बहुत सारी शक्तियाँ क्रियाशील हैं और उनकी परस्पर क्रियाएँ इतनी पेचीदा हैं कि इन शक्तियों के बल और उनकी परस्पर क्रिया के ढंग में निहायत ही मामूली-सा फेरबदल भी परिणामों में बहुत बड़े बदलाव ला सकता है। सिर्फ़ यही नहीं, बल्कि इतिहास वह है, जिसे 'दूसरे स्तर' की अराजक व्यवस्था कहा जाता है। अराजक व्यवस्थाएँ दो रूपों में सामने आती हैं। पहले स्तर की अराजकता वह अराजकता है, जो उसके बारे में किए गए पूर्वानुमानों पर प्रतिक्रिया नहीं करती। उदाहरण के लिए, मौसम पहले स्तर की अराजक व्यवस्था है। यद्यपि वह अनेक कारकों से प्रभावित होती है, तब भी हम ऐसे कम्प्यूटर मॉडल तैयार कर सकते हैं, जो इन कारकों को उत्तरोत्तर लेखे में लेते हुए मौसम के बारे में उत्तरोत्तर बेहतर पूर्वानुमान प्रस्तुत कर सकते हैं।

दूसरे स्तर की अराजकता वह अराजकता है, जो उसके बारे में किए गए पूर्वानुमानों पर प्रतिक्रिया करती है और इसलिए जिसके बारे में कभी भी सटीक पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, बाज़ार दूसरे स्तर की अराजक व्यवस्था है। अगर हम कोई ऐसा कम्प्यूटर प्रोग्राम विकसित कर लें, जो तेल की कल की क़ीमत के बारे में 100 प्रतिशत सटीकता के साथ भविष्यवाणी करता हो, तो क्या होगा? तेल की क़ीमतें तुरन्त उस भविष्यवाणी पर प्रतिक्रिया करेंगी, और नतीज़े में वह भविष्यवाणी सही साबित नहीं हो पाएगी। यदि तेल की मौजूदा क़ीमत प्रति बैरल $90 है और अचूक कम्प्यूटर प्रोग्राम पूर्वानुमान प्रस्तुत करता है कि कल वह $100 होगी, तो व्यापारी तेल ख़रीदने के लिए दौड़ पड़ेंगे, ताकि वे क़ीमत की इस पूर्वानुमानित वृद्धि से मुनाफ़ा कमा सकें। नतीज़े में, क़ीमतें आने वाले कल के बजाय आज ही उछल कर $100 हो जाएँगी। तब कल क्या होगा? कोई नहीं जानता।

राजनीति भी ऐसी ही दूसरे स्तर की अराजकता है। बहुत-से लोग सोवियत-विशेषज्ञों की इस बात के लिए आलोचना करते हैं कि वे 1989 की क्रान्तियों का पूर्वानुमान नहीं कर सके और मध्य पूर्व के विशेषज्ञों को इस बात के लिए फटकारते हैं कि वे 2011 की अरब स्प्रिंग क्रान्तियों का पूर्वानुमान नहीं कर सके। ये नाजायज़ है। क्रान्तियों का मतलब ही यह है कि उनके बारे में पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता। पूर्वानुमानित क्रान्ति कभी घटित नहीं होती।

क्यों नहीं? कल्पना कीजिए कि यह 2010 है और कुछ अत्यन्त प्रतिभाशाली राजनीति विज्ञानियों ने एक कम्प्यूटर विशेषज्ञ के साथ मिलकर एक ऐसा अचूक ऐल्गरिदम विकसित किया है, जिसे एक आकर्षक इंटरफ़ेस से संयुक्त करके क्रान्ति का पूर्वानुमान करने वाले उपकरण के रूप में बाज़ार में उतारा जा सकता है। ये लोग मिस्र के राष्ट्रपति होस्नी मुबारक़ को एक बहुत बड़े नक़द भुगतान के बदले अपनी सेवाएँ उपलब्ध

कराने की पेशकश करते हुए मुबारक़ से कहते हैं कि उनके पूर्वानुमान के मुताबिक़, आने वाले साल के दौरान मिस्र में एक क्रान्ति निश्चय ही घटित होगी। इस पर मुबारक़ किस तरह की प्रतिक्रिया करेंगे? पूरी सम्भावना है कि वे तुरन्त करों में कटौती कर देते हैं, नागरिकों में लाखों डॉलर की ख़ैरात बाँट देते हैं - और सावधानी के तौर पर अपने ख़ुफ़िया पुलिस बल को और मज़बूत कर देते हैं। ये पहले से बरती गई सावधानियाँ कारगर साबित होती हैं। अगला साल आता है और चला जात है, और आश्चर्य कि कोई क्रान्ति नहीं होती। मुबारक़ अपना पैसा वापस माँगते हैं। वे वैज्ञानिकों पर चिल्लाते हैं, 'आपका ऐल्गरिदम निकम्मा है! वह सारा का सारा पैसा बाँट देने के बजाय अन्त में मैंने एक और महल बनवा लिया होता'! वैज्ञानिक अपने बचाव में कहते हैं, "लेकिन क्रान्ति नहीं हुई, इसकी वजह यह है कि हमने उसका पूर्वामान किया था"। मुबारक़ उन्हें पकड़ने के लिए अपने सुरक्षाकर्मियों को इशारा करते हुए टिप्पणी करते हैं, "क्या भविष्यवक्ता जिन चीज़ों का पूर्वानुमान करते हैं, वे घटित नहीं होतीं? मैंने तो उन्हें काहिरा के बाज़ार से कौड़ियों के मोल ख़रीद लिया होता"।

तब फिर इतिहास का अध्ययन क्यों किया जाए? इतिहास इस मामले में भौतिकशास्त्र या अर्थशास्त्र से भिन्न है कि वह सटीक पूर्वानुमानों का साधन नहीं है। हम इतिहास का अध्ययन भविष्य जानने के लिए नहीं करते, बल्कि अपनी समझ के दायरे का विस्तार करने के लिए करते हैं, यह समझने के लिए कि हमारी वर्तमान स्थिति ना तो स्वाभाविक है और ना ही अपरिहार्य और इसीलिए हमारे पास उससे कहीं ज़्यादा सम्भावनाएँ मौजूद हैं, जितने की हमने कल्पना कर रखी है। उदाहरण के लिए, यह अध्ययन कि यूरोपीय लोगों ने अफ़्रीकियों पर किस तरह प्रभुत्व स्थापित किया, हमें यह समझने में सक्षम बनाता है कि नस्लीय ऊँच-नीच के क्रम में कुछ भी स्वाभाविक और अपरिहार्य नहीं है और दुनिया बिलकुल अलग तरह से व्यवस्थित हो सकती थी।

2. चयन का प्रश्न

हम इतिहास द्वारा चुने गए विकल्पों की कैफ़ियत नहीं दे सकते, लेकिन हम उनके बारे एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात कह सकते हैं : इतिहास द्वारा चुने गए विकल्प मनुष्यों के हित के लिए नहीं होते हैं। इसका नितान्त कोई सबूत नहीं है कि ऐसी संस्कृतियाँ जो मनुष्य के हित में होती हैं, उनका कामयाब होना और फैलना अवश्यम्भावी होता है, जबकि कम हितकारी संस्कृतियाँ लुप्त हो जाती हैं। इसका कोई सबूत नहीं है कि ईसाइयत मैनिक़ियनवाद के मुक़ाबले में बेहतर चयन था या अरब साम्राज्य सासानिड फ़ारसियों के साम्राज्य के मुक़ाबले ज़्यादा कल्याणकारी था।

इसका कोई प्रमाण नहीं है कि इतिहास मनुष्यों के हित के लिए काम कर रहा है क्योंकि हमारे पास ऐसा कोई वस्तुपरक पैमाना नहीं है, जिससे हम इस तरह के हित को माप सकते हैं। अलग-अलग संस्कृतियाँ कल्याण को अलग-अलग तरीक़े से परिभाषित करती हैं और इनमें से कौन-सी परिभाषा सही है, यह जाँचने का कोई वस्तुनिष्ठ पैमाना हमारे पास नहीं है। विजेता निश्चय ही हमेशा यह मानते हैं कि उनकी परिभाषा सही है, लेकिन हम विजेताओं पर भरोसा क्यों करें? ईसाई मानते हैं कि मैनिक़ियनवाद पर

ईसाइयत की जीत मानव-जाति के हित में थी, लेकिन अगर हम ईसाई विश्वदृष्टि को स्वीकार ना करें तो उनकी बात पर भरोसा करने की कोई वजह नहीं है। मुसलमान मानते हैं कि सासानिड साम्राज्य का उनके हाथों हुआ पतन मानव-जाति के हित में था, लेकिन ये हित तभी ज़ाहिर होंगे अगर हम मुस्लिम विश्वदृष्टि को स्वीकार करें। यह क़तई मुमकिन है कि अगर ईसाइयत और इस्लाम को भुला दिया गया होता या वे पराजित हो गए होते, तो हम बेहतर स्थिति में होते।

अध्येता संस्कृतियों को उत्तरोत्तर एक क़िस्म के दिमाग़ी छूत या परजीवी के रूप और मनुष्यों को उससे बेख़बर उसके मेज़बानों (होस्ट) के रूप में देखने लगे हैं। वायरस जैसे जैविक परजीवी अपने मेज़बानों के शरीर के भीतर डेरा डाले रहते हैं। वे अपनी तादाद बढ़ाते हुए एक मेज़बान से दूसरे मेज़बान में फैलते रहते हैं, अपने मेज़बानों को कमज़ोर बनाते हुए और कभी-कभी उन्हें मार डालते हुए उनके शरीरों पर पलते रहते हैं। जब तक ये मेज़बान इस हद तक जीवित बने रहते हैं कि वे परजीवी को आगे बढ़ते रहने दें, तब तक वह अपने मेज़बान की हालत की कोई परवाह नहीं करता। ठीक इसी तरह, सांस्कृतिक विचार मनुष्यों के दिमाग़ के भीतर डेरा डाले रहते हैं। वे अपनी तादाद बढ़ाते हुए एक मेज़बान दिमाग़ से दूसरे मेज़बान दिमाग़ तक फैलते रहते हैं और इस प्रक्रिया में कभी-कभी अपने मेज़बान को कमज़ोर बनाते रहते हैं और यहाँ तक कि उसे मार तक डालते हैं। एक सांस्कृतिक विचार - जैसे कि बादलों से परे स्थित ईसाई स्वर्ग या पृथ्वी पर साम्यवादी स्वर्ग में विश्वास - किसी मनुष्य को अपनी जान की क़ीमत पर भी उस विचार के प्रचार में अपना पूरा जीवन लगा देने को बाध्य कर सकता है। मनुष्य मर जाता है, लेकिन विचार फैलता रहता है। इस दृष्टिकोण के मुताबिक़, संस्कृतियाँ दूसरों का फ़ायदा उठाने के लिए कुछ लोगों द्वारा रचे गए षड्यन्त्र नहीं हैं (जैसा मार्क्सवादी सोचते हैं), बल्कि संस्कृतियाँ वे मानसिक परजीवी हैं, जो संयोग से उत्पन्न होती हैं, जिसके बाद वे अपनी छूत से प्रभावित हुए लोगों का फ़ायदा उठाती हैं।

इस दृष्टिकोण को कभी-कभी 'मेमेटिक्स' का नाम दिया जाता है। इसका मानना है कि जिस तरह जैविक विकास 'जीन' नामक जैविक सूचना इकाइयों के प्रजनन पर आधारित है, उसी तरह सांस्कृतिक विकास 'मेमे' नामक सांस्कृतिक सूचना इकाइयों के प्रजनन पर आधारित है। सफल संस्कृतियाँ वे होती हैं, जो इन 'मेमे' के प्रजनन में अग्रणी भूमिका निभाती हैं और ऐसा करते हुए वे इस बात की कोई परवाह नहीं करतीं कि उनके मेज़बान मनुष्यों को इसके लिए क्या क़ीमत चुकानी पड़ती है या वे इससे कितने लाभान्वित होते हैं।

मानविकी के ज़्यादातर अध्येता 'मेमेटिक्स' की उपेक्षा करते हैं और उसे सांस्कृतिक प्रक्रियाओं को फूहड़ क़िस्म की जीववैज्ञानिक उपमाओं के सहारे समझाने की अपरिपक्व कोशिशों के रूप में देखते हैं, लेकिन इन्हीं में से कई अध्येता 'मेमेटिक्स' की जुड़वां बहन उत्तरआधुनिकता के अनुयायी हैं। उत्तरआधुनिक विचारक संस्कृति के मूल घटकों (बिल्डिंग ब्लॉक्स) के रूप में 'मेमे' के बजाय विमर्शों (डिस्कोर्सेस) की बात करते हैं, लेकिन वे भी संस्कृतियों को देखते इसी रूप में हैं कि वे मानव-जाति के हित की परवाह किए बग़ैर अपना प्रसार करती हैं। उदाहरण के लिए, उत्तरआधुनिक विचारक राष्ट्रवाद को उन्नीसवीं और बीसवीं सदियों के दौरान सारी दुनिया में फैली एक ऐसी घातक महामारी के

रूप में देखते हैं, जो युद्ध, दमन, घृणा और जातिसंहार का कारण बनी। जिस पल एक देश के लोग इसकी चपेट में आए, उसी पल पड़ोसी मुल्क़ों के लोगों के भी इस वायरस का शिकार होने की सम्भावनाएँ पैदा होती गईं। राष्ट्रवाद के वायरस ने ख़ुद को मानवजाति के लिए हितकारी होने के रूप में पेश किया था, लेकिन ये मुख्यतः ख़ुद के लिए ही हितकारी साबित हुआ।

इसी तरह के तर्क सामाजिक विज्ञानों में गेम थ्योरी के अधीन दिए जाते हैं। गेम थ्योरी बताती है कि किस तरह अनेक खिलाड़ियों वाली व्यवस्थाओं में दृष्टिकोण और व्यवहार के वे सारे ढंग, जो हालाँकि तमाम खिलाड़ियों को नुक़सान पहुँचाने वाले होते हैं, अपनी जड़ें जमा लेते हैं और फैलते रहते हैं। हथियारों की होड़ एक जाना-माना उदाहरण है। हथियारों की ज़्यादातर होड़ शक्ति के सैन्य-सन्तुलन में वास्तव में कोई बदलाव लाए बग़ैर उसमें हिस्सा लेने वालों को दिवालिया कर देती है। जब पाकिस्तान उन्नत क़िस्म के विमान ख़रीदता है, तो हिन्दुस्तान भी जवाब में वैसा ही करता है। जब हिन्दुस्तान परमाणु बम बनाता है, तो पाकिस्तान भी उसका अनुसरण करता है। जब पाकिस्तान अपनी नौसेना का विस्तार करता है, तो हिन्दुस्तान भी जवाबी कार्रवाई करता है। इस सिलसिले के अन्त में शक्ति-सन्तुलन पहले जैसा ही बना रह सकता है, लेकिन इस बीच जिन अरबों डॉलर का निवेश शिक्षा और स्वास्थ्य में किया जा सकता था, वे हथियारों पर ख़र्च कर दिए गए होते हैं। 'हथियारों की होड़' आचरण का एक ऐसा पैटर्न है, जो जीवित बने रहने और अपनी सन्तति बढ़ाने के विकासवादी मापदण्ड के अधीन, एक मुल्क़ से दूसरे मुल्क़ तक ख़ुद को वायरस की तरह फैलाता हुआ हरेक को नुक़सान पहुँचाता है, लेकिन ख़ुद को लाभान्वित करता है। (इस बात पर ध्यान दें कि जीन की ही तरह हथियारों की होड़ में कोई जागरूकता नहीं होती - वह जीवित बने रहने और अपनी सन्तति बढ़ाने की कोई सचेतन कोशिश नहीं करती। इसका प्रसार एक शक्तिशाली बल का अविचारित परिणाम होता है)।

इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि आप इसे क्या नाम देते हैं - गेम थ्योरी, उत्तरआधुनिकता या 'मेमेटिक्स' - इतिहास की गति मनुष्य के कुशलक्षेम में वृद्धि की ओर उन्मुख नहीं है। यह सोचने का कोई आधार नहीं है कि इतिहास की सबसे क़ामयाब संस्कृतियाँ होमो सेपियन्स के लिए अनिवार्यतः उत्तम रही हैं। विकासवाद की तरह इतिहास भी अलग-अलग जीवधारियों के सुख की परवाह नहीं करता। और अलग-अलग मनुष्य, अपने स्तर पर इतने अज्ञानी और कमज़ोर होते हैं कि वे इतिहास के प्रवाह को अपने हित में नहीं मोड़ सकते।

इतिहास एक जंक्शन से दूसरे जंक्शन की ओर बढ़ता हुआ, किन्हीं रहस्यमय वजहों से पहले एक रास्ता पकड़ता है, फिर दूसरा। 1500 ईसवी के आस-पास इतिहास ने अपना सबसे अहम विकल्प चुना था, जिसने ना सिर्फ़ मनुष्य की नियति को बदल दिया, बल्कि तर्कसंगत रूप से पृथ्वी के समूचे जीवन की नियति को भी बदल दिया। इसे हम वैज्ञानिक क्रान्ति की संज्ञा देते हैं। इसकी शुरुआत पश्चिमी यूरोप में, अफ़्रो-एशिया के पश्चिमी सिरे के एक बड़े प्रायद्वीप पर हुई थी, जिसने तब तक इतिहास में कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं निभाई थी। वैज्ञानिक क्रान्ति सारी जगहों को छोड़कर आख़िर वहीं क्यों शुरू हुई, चीन या

हिन्दुस्तान में क्यों नहीं हुई? यह दो सदियों बाद या तीन सदियों पहले शुरू होने के बजाय आख़िर ईसा की दूसरी सहस्राब्दी के मध्य में ही क्यों शुरू हुई? हम नहीं जानते। अध्येताओं ने दर्जनों परिकल्पनाएँ प्रस्तुत की हैं, लेकिन उनमें से कोई भी ऐसी नहीं है, जो क़ायल करने वाली हो।

इतिहास में सम्भावनाओं का एक व्यापक फलक मौजूद होता है और बहुत-सी सम्भावनाएँ कभी चरितार्थ नहीं हो पातीं। ऐसे इतिहास की कल्पना मुमकिन है, जिसमें वह वैज्ञानिक क्रान्ति को दरकिनार करते हुए पीढ़ी दर पीढ़ी गुज़रता चला गया हो, ठीक उसी तरह जैसे ईसाइयत से रहित, रोमन साम्राज्य से रहित, सोने के सिक्कों से रहित इतिहास की कल्पना मुमकिन है।

भाग-IV

वैज्ञानिक क्रान्ति

8.0 SEC.
N
100 METERS

32. अलामोगोर्डो। 16 जुलाई, 1945, 05:29:53. पहले परमाणु बम का विस्फोट होने के आठ सेकेंड बाद। परमाणु भौतिकीविद ओपेनहाइमर ने विस्फोट को देखने के बाद भगवद्गीता को उद्धरित किया था : “मैं महाकाल हूँ, लोकों का संहारक”।

14

अज्ञान की खोज

अगर, फ़र्ज़ करें, 1000 ईसवी में सोया कोई स्पेनी किसान 500 साल बाद नीना, पिन्ता और सान्ता मारिया में सवार होते कोलम्बस के नाविकों के शोरगुल को सुनकर जागता, तो मुमकिन है, उसे दुनिया ख़ासी जानी-पहचानी लगती। टेक्नोलॉजी, तौर-तरीक़ों और राजनैतिक सरहदों में आ चुके बहुत सारे बदलावों के बावजूद यह मध्ययुगीन रिप वैन विंक़ल सहज और आत्मीय महसूस करता, लेकिन अगर कोलम्बस के किसी एक नाविक की ऐसी ही झपकी लग गई होती और फिर इक्कीसवीं सदी के आईफ़ोन की रिंगटोन सुनकर उसकी नींद टूटती, तो उसने अपने आपको एक ऐसी दुनिया में पाया होता, जो पूरी तरह से उसकी समझ से परे होती। बहुत संभव है कि उसने ख़ुद से सवाल किया होता कि 'क्या यह स्वर्ग है? या फिर - नर्क'?

पिछले 500 वर्ष मानवीय शक्ति में एक असाधारण और अपूर्व वृद्धि के साक्षी रहे हैं। वर्ष 1500 में दुनिया में लगभग 50 करोड़ होमो सेपियन्स थे। आज 7 अरब हैं। वर्ष 1500 में मानव-जाति द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का कुल मूल्य आज के डॉलर में लगभग $250 अरब था। आज एक वर्ष के मानवीय उत्पादन का मूल्य $6000 अरब है। 1500 में मनुष्यता प्रतिदिन ऊर्जा की लगभग 13000 अरब कैलोरी का उपभोग करती थी। आज हम एक दिन में 15 लाख अरब कैलोरी का उपभोग करते हैं। (इन आँकड़ों पर एक बार फिर से नज़र डालें - मनुष्यों की आबादी में चौदह गुना, उत्पादन में 240 गुना और ऊर्जा के उपभोग में 115 गुना वृद्धि हुई है)।

कल्पना कीजिए की एक आधुनिक जंगी जहाज़ कोलम्बस के ज़माने में भेज दिया जाता है। यह कुछ सेकेंड में नीना, पिन्ता और सान्ता मारिया को पानी में बहती लकड़ियों में बदल सकता है और उस वक़्त की तमाम महान विश्व-शक्तियों की नौसेनाओं को डुबा सकता है, और इस जंगी जहाज़ में सवार लोगों को एक खरोंच भी नहीं आएगी। पाँच

आधुनिक मालवाहक पोतों ने सारी दुनिया के व्यापारियों के जहाज़ी बेड़ों में भरे माल को अपने भीतर समा लिया होता। एक आधुनिक कम्प्यूटर मध्य युग के प्रत्येक पुस्तकालय की सारी पाण्डुलिपियों और चिट्ठों के एक-एक शब्द और अंक को स्टोर कर सकता था और तब भी उसमें पर्याप्त जगह बची रहती। आज के किसी भी बड़े बैंक में दुनिया की आधुनिकता-पूर्व की सारी हुकूमतों के कुल पैसे से ज़्यादा पैसा है।

1500 में ऐसे बहुत थोड़े से नगर थे, जिनमें 100,000 से ज़्यादा बाशिन्दे थे। ज़्यादातर इमारतें गारा, लकड़ी और फूस से निर्मित थीं; तिमंज़िला इमारत गगनचुम्बी इमारत मानी जाती थी। पहियों की गड्ढेदार लीकों से युक्त मिट्टी के रास्ते ही सड़कें हुआ करती थीं, जो गर्मियों में धूल और बारिश में कीचड़ से भरी होती थीं और उन पर पैदलों, घोड़ों, बकरियों, मुर्गों और थोड़ी-से छकड़ों का आवागमन हुआ करता था। ज़्यादातर आम शहरी शोर में इंसानों और जानवरों की आवाज़ों के साथ-साथ कभी-कभार हथौड़े और आरे की आवाज़ें शामिल होती थीं। सूर्यास्त होने के साथ-साथ ही नगर अँधेरे में डूब जाते थे, सिर्फ़ कभी-कभार किसी मोमबत्ती या मशाल की झिलमिलाहट अँधेरे में दिखाई दे जाती थी। अगर ऐसे किसी नगर का कोई निवासी आधुनिक टोक्यो, न्यू यॉर्क या मुम्बई को देखता, तो वह क्या सोचता?

सोलहवीं सदी के पहले किसी मनुष्य ने जलमार्ग से पृथ्वी का भ्रमण नहीं किया था। इस स्थिति में बदलाव आया 1522 में जब मैगेलन का जहाज़ 72,000 किलोमीटर की यात्रा करने के बाद स्पेन लौटा। इसने तीन वर्ष का समय लिया और इस अभियान में शामिल मैगेलन समेत लगभग सभी यात्रियों को अपनी जान की क़ीमत चुकानी पड़ी। 1873 में जूल्स वर्न कल्पना कर सके कि एक दौलतमन्द अँग्रेज़ साहसिक यात्री फ़िलिएस फ़ॉग मात्र अस्सी दिनों में दुनिया की परिक्रमा कर सकता था। आज मध्यवर्गीय आय वाला कोई भी व्यक्ति मात्र अड़तालीस घण्टे में पूरे भूमण्डल का सुरक्षित और आसानी से चक्कर लगा सकता है।

1500 में मनुष्य पृथ्वी की सतह तक सीमित थे। वे मीनारें खड़ी कर सकते थे और पर्वतारोहण कर सकते थे, लेकिन आकाश परिन्दों, फ़रिश्तों और देवताओं के लिए आरक्षित था। 20 जुलाई 1969 को इंसान चन्द्रमा पर जा उतरे। यह महज़ एक ऐतिहासिक उपलब्धि नहीं थी, बल्कि एक विकासवादी और ब्रह्माण्डीय करतब भी था। विकास-प्रक्रिया के पिछले 4 अरब वर्षों के दौरान कोई प्राणी पृथ्वी के वातावरण से भी बाहर नहीं जा सका था और निश्चय ही किसी भी प्राणी ने चन्द्रमा पर अपने पैर या पंजे का निशान नहीं छोड़ा था।

ज़्यादातर इतिहास के दौरान मनुष्यों को इस ग्रह के 99.99 प्रतिशत जीवों - अर्थात सूक्ष्मजैविकी - के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। ऐसा इसलिए नहीं था कि वे हमारे लिए कोई महत्त्व नहीं रखते थे। हम में से हर कोई अपने भीतर अरबों की तादाद में एक-कोषीय जीवों को धारण किए हुए है, और महज़ निरपेक्ष सवारों के रूप में नहीं। वे हमारे सबसे अच्छे दोस्त और प्राणघातक दुश्मन हैं। इनमें से जहाँ कुछ हमारा भोजन पचाते हैं और हमारी आँतों को साफ़ करते हैं, वहीं कुछ दूसरे हैं, जो बीमारियों और महामारियाँ पैदा करते हैं। तब भी यह 1674 में ही मुमकिन हो सका कि इंसानी निगाह ने पहली बार एक सूक्ष्मजीव को देखा, जब एंटन वान लीवेनहोक ने अपने घर में बनी ख़ुर्दबीन से झाँक

कर देखा और वह चमत्कृत रह गया, जब उसने देखा कि एक बूँद भर पानी में सूक्ष्म जन्तुओं की एक समूची दुनिया कुलबुला रही थी। बाद के 300 सालों के दौरान मनुष्यों ने बड़ी तादाद में ख़ुर्दबीन से देखी जा सकने वाली प्रजातियों से परिचय क़ायम किया है। हम उनके द्वारा पैदा की जाने वाली छूत की अनेक प्राणघातक बीमारियों को पराजित करने में कामयाब रहे हैं और हमने सूक्ष्मजैविकी को चिकित्सा और उद्योगों के काम में जोता है। आज हम औषधियों के निर्माण, जैव-ईंधन तैयार करने और परजीवियों को मारने के लिए बैक्टीरिया की इंजीनियरी करते हैं।

लेकिन पिछले 500 सालों का अकेला सबसे बड़ा और चरमोत्कर्ष का क्षण 16 जुलाई, 1945 को सुबह 05:29:45 बजे आया। ठीक इस क्षण में अमेरिकी वैज्ञानिकों ने अलामोगोर्डो, न्यू मैक्सिको में पहले एटम बम का विस्फोट किया। इस क्षण के बाद से मनुष्य ना सिर्फ़ इतिहास की दिशा को मोड़ने, बल्कि उसका अन्त कर देने की भी सामर्थ्य से लैस हो गया।

जो ऐतिहासिक प्रक्रिया अलामोगोर्डो और चन्द्रमा तक ले गई उसे वैज्ञानिक क्रान्ति के नाम से जाना जाता है। इस क्रान्ति के दौरान मानव-जाति ने वैज्ञानिक अनुसन्धान के क्षेत्र में संसाधनों का निवेश कर विपुल मात्रा में नई शक्तियाँ हासिल की हैं। यह एक क्रान्ति है क्योंकि लगभग 1500 ईसवी तक सारी दुनिया में मनुष्यों को नई चिकित्सकीय, सैन्य और आर्थिक शक्तियाँ हासिल करने की अपनी क्षमता पर सन्देह बना हुआ था। जब सरकार और दौलतमन्द सरपरस्त शिक्षा और अनुसन्धान में पैसा लगाते थे, तो सामान्य तौर पर उद्देश्य नई क्षमताएँ हासिल करने के बजाय मौजूदा क्षमताओं का संरक्षण करना होता था। आधुनिकता-पूर्व युग का एक आम शासक पुरोहितों, दार्शनिकों और कवियों को इस उम्मीद में पैसे देता था कि वे उसके शासन पर स्वीकृति की मुहर लगाएँगे और सामाजिक व्यवस्था को क़ायम रखेंगे। वह उनसे नई औषधियों की खोज करने, नए हथियारों को ईजाद करने या आर्थिक उन्नति को बढ़ावा देने की अपेक्षा नहीं करता था।

पिछली पाँच सदियों के दौरान मनुष्यों का यह विश्वास उत्तरोत्तर मज़बूत होता गया कि वे वैज्ञानिक अनुसन्धान में निवेश करके अपनी क्षमताओं में वृद्धि कर सकते हैं। यह कोई अन्धविश्वास नहीं था - यह बात बार-बार अनुभव के स्तर पर साबित हुई थी। जितने ही ये सबूत बढ़ते गए, दौलतमन्द लोग और सरकारें उतनी ही बड़ी तादाद में विज्ञान में संसाधनों के निवेश के लिए इच्छुक होते गए। इस तरह के निवेशों के बग़ैर हम कभी चन्द्रमा पर चलने, सूक्ष्मजैविकी की इंजीनियरी करने और परमाणु का विखण्डन करने में सक्षम ना हो पाते। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार ने हाल के दशकों में परमाणु भौतिकी के अध्ययन के लिए अरबों डॉलर का आवंटन किया है। इस अनुसन्धान से उत्पन्न ज्ञान ने उन परमाणु ऊर्जा केन्द्रों के निर्माण को सम्भव किया है, जो उन अमेरिकी उद्योगों को सस्ती बिजली मुहैया कराते हैं, जो संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार को करों का भुगतान करते हैं, जो इन में से कुछ करों का उपयोग परमाणु भौतिकी के और अधिक अध्ययनों को धन मुहैया कराने में करती है।

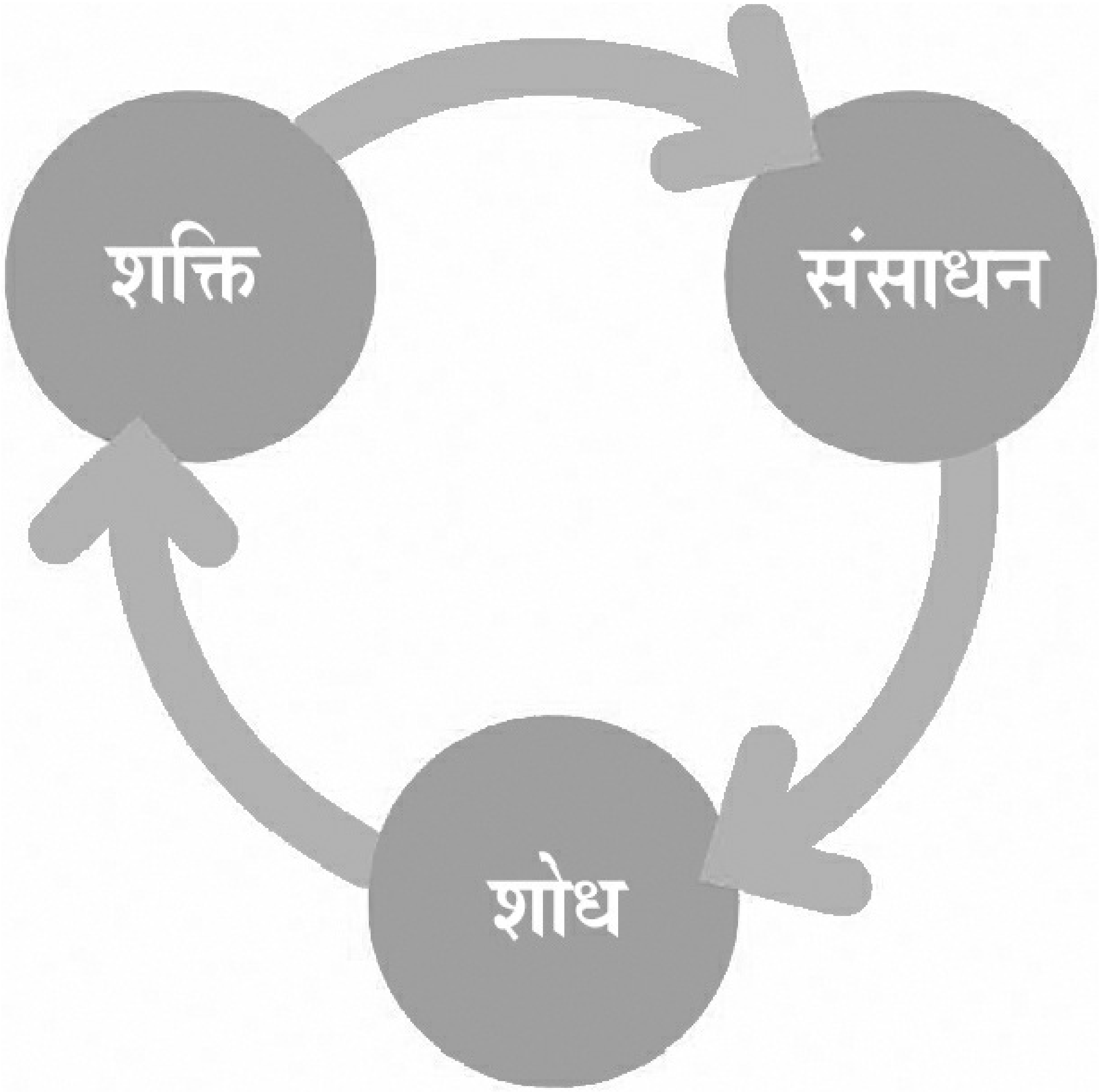

वैज्ञानिक क्रान्ति का प्रतिक्रिया चक्र (फ़ीडबैक लूप)। विज्ञान को प्रगति करने के लिए महज़ अनुसन्धान की नहीं, बल्कि कुछ बातों की ज़रूरत भी होती है। यह प्रगति विज्ञान, राजनीति और अर्थशास्त्र के पारस्परिक सुदृढ़ीकरण पर निर्भर करती है। राजनैतिक और आर्थिक संस्थाएँ वे संसाधन उपलब्ध कराती हैं, जिनके बिना वैज्ञानिक अनुसंधान लगभग असम्भव है। बदले में वैज्ञानिक अनुसन्धान वे नई शक्तियाँ उपलब्ध कराता है, जिनका इस्तेमाल अन्य चीज़ों के साथ-साथ उन नए संसाधनों को हासिल करने में भी होता है, जिनमें से कुछ का पुनर्निवेश अनुसन्धान के लिए किया जाता है।

क्या वजह है कि अनुसन्धान के माध्यम से नई शक्तियाँ हासिल करने में आधुनिक मनुष्यों का विश्वास बढ़ता गया? वह क्या चीज़ है, जिसने विज्ञान, राजनीति और अर्थशास्त्र के बीच इस अनुबन्ध को गढ़ा है? इन सवालों के आंशिक जवाब पाने के लिए यह अध्याय आधुनिक विज्ञान की विशिष्ट प्रकृति को समझने की कोशिश करता है। अगले दो अध्याय विज्ञान, यूरोपीय साम्राज्य और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के बीच के गठबन्धन की रचना का परीक्षण करते हैं।

अज्ञानी

मनुष्य कम से कम संज्ञानात्मक क्रान्ति के वक़्त से विश्व को समझने की कोशिश करते रहे हैं। हमारे पूर्वजों ने प्रकृति की दुनिया को नियन्त्रित करने वाले नियमों को खोजने की कोशिश में बहुत वक़्त लगाया था और बहुत श्रम किया था, लेकिन आधुनिक विज्ञान ज्ञान की सारी पुरानी परम्पराओं से तीन निर्णायक तरीक़ों से भिन्न है :

1. **अज्ञानता को स्वीकार करने की इच्छा।** आधुनिक विज्ञान लैटिन हिदायत ignoramus - ‘हम नहीं जानते’ - पर आधारित है। यह मानकर चलता है कि हम हर चीज़ नहीं जानते। इससे भी ज़्यादा आलोचनात्मक ढंग से, यह स्वीकार करता है कि जिन चीज़ों के बारे में हम सोचते हैं कि हम उनको समझते हैं, वे हमारे और अधिक ज्ञान हासिल करने पर ग़लत साबित हो सकती हैं। कोई भी अवधारणा, विचार या सिद्धान्त परमपावन और चुनौती से परे नहीं है।
2. **पर्यवेक्षण और गणित की केन्द्रीयता।** अज्ञान को स्वीकार करते हुए आधुनिक विज्ञान का लक्ष्य नया ज्ञान हासिल करना होता है। यह काम वह पर्यवेक्षणों को एकत्र कर और फिर गणितीय उपकरणों के सहारे इन पर्यवेक्षणों को आपस में जोड़कर व्यापक सिद्धान्त गढ़ते हुए करता है।
3. **नई शक्तियों का अधिग्रहण।** आधुनिक विज्ञान सिद्धान्तों को गढ़ने मात्र से सन्तुष्ट नहीं होता। वह नई शक्तियाँ हासिल करने और विशेष रूप से नई टेक्नोलॉजियाँ विकसित करने के लिए इन सिद्धान्तों का उपयोग करता है।

वैज्ञानिक क्रान्ति ज्ञान की क्रान्ति नहीं रही है। यह ख़ास कर अज्ञान की क्रान्ति रही है। जिस सबसे महान खोज ने वैज्ञानिक क्रान्ति का आग़ाज़ किया, वह यह खोज थी कि मनुष्य अपने सबसे महत्त्वपूर्ण सवालों के जवाब नहीं जानता।

इस्लाम, ईसाइयत, बौद्ध धर्म और कन्फ़्यूशियसवाद जैसी आधुनिकता-पूर्व की ज्ञान-परम्पराओं का मानना था कि दुनिया के बारे में जानने योग्य, जो भी महत्त्वपूर्ण बातें हैं, वे पहले ही जानी जा चुकी हैं। महान देवता या एक परमेश्वर, या अतीत के ज्ञानी पुरुषों के पास सर्वव्यापी प्रज्ञा थी, जिसे उन्होंने धार्मिक पोथियों और मौखिक परम्पराओं के माध्यम से उजागर कर दिया था। साधारण मनुष्य इन्हीं प्राचीन पोथियों और परम्पराओं में गोता लगाते हुए और उन्हें ठीक से समझते हुए ज्ञान अर्जित करते थे। यह बात कल्पना से परे थी कि बाइबल, कुरान या वेद विश्व के किसी महत्त्वपूर्ण रहस्य को हासिल करने से चूक गए हों - कोई ऐसा रहस्य, जो हाड़-मांस के प्राणियों द्वारा खोजा जाना हो।

प्राचीन ज्ञान-परम्पराएँ केवल दो तरह के अज्ञान को स्वीकार करती थीं। पहला, कोई व्यक्ति किसी महत्त्वपूर्ण चीज़ के बारे में अज्ञानी हो सकता था। आवश्यक ज्ञान हासिल करने के लिए उसे कुल मिलाकर किसी ज्ञानी आदमी की शरण में जाना भर ज़रूरी था। किसी ऐसी चीज़ को खोजने की कोई ज़रूरत नहीं थी, जिसकी जानकारी अब तक किसी व्यक्ति को नहीं थी। उदाहरण के लिए, अगर तेरहवीं सदी के यॉर्कशायर के किसी किसान को यह जिज्ञासा होती कि मानव प्रजाति का उद्गम किस तरह हुआ था, तो वह मानकर चलता था कि ईसाई परम्परा में इसका निश्चित उत्तर उपलब्ध है। उसे सिर्फ़ इतना

भर करने कि ज़रूरत होती थी कि वह स्थानीय पादरी के पास जाकर पूछ लेता।

दूसरा, एक समूची परम्परा ग़ैरमहत्त्वपूर्ण चीज़ों के बारे में अज्ञानी हो सकती थी। महान देवताओं या अतीत के ज्ञानी पुरुषों ने जो कुछ भी हमें बताने की चिन्ता नहीं की, वह की ही इसलिए नहीं थी क्योंकि वह महत्त्वपूर्ण नहीं था। उदाहरण के लिए, अगर हमारा वह यॉर्कशायर का किसान यह जानना चाहता था कि मकड़ियाँ अपना जाल कैसे बुनती हैं, तो इस बारे में पादरी से पूछने का कोई मतलब नहीं था, क्योंकि इसका कोई जवाब किसी ईसाई पोथी में नहीं था, लेकिन इसका मतलब यह नहीं था कि ईसाइयत में कोई कमी थी, बल्कि इसका मतलब था कि मकड़ियाँ अपना जाल कैसे बुनती हैं, यह समझना ग़ैरमहत्त्वपूर्ण था। आख़िरकार, परमेश्वर को तो अच्छी तरह मालूम था कि मकड़ियाँ यह काम कैसे करती हैं। अगर यह कोई महत्त्वपूर्ण जानकारी होती, जो मनुष्य के कल्याण और मुक्ति के लिए आवश्यक होती, तो परमेश्वर ने बाइबल में इसकी तफ़सीली कैफ़ियत शामिल की होती।

ईसाइयत लोगों को मकड़ियों का अध्ययन करने से नहीं रोकती थी, लेकिन मकड़ी-अध्येताओं - अगर मध्ययुगीन यूरोप में ऐसे कोई अध्येता थे तो - को समाज में अपनी सतही भूमिका और ईसाइयत के शाश्वत सत्यों के सन्दर्भ में अपनी खोजों की अप्रासंगिकता को स्वीकार करना ज़रूरी था। कोई अध्येता मकड़ियों या तितलियों या गलापगोस द्वीपों की फिन्चों के बारे में कोई भी खोज क्यों ना कर लेता, वह जानकारी एक लगभग तुच्छ ज्ञान ही थी, जिसका समाज, राजनीति और अर्थशास्त्र की बुनियादी वास्तविकताओं से कोई लेना-देना नहीं था।

दरअसल, स्थितियाँ इतनी आसान भी कभी नहीं थीं। हर युग में, सर्वाधिक धार्मिक और रूढ़िवादी युगों तक में, ऐसे लोग थे, जो तर्क देते थे कि ऐसी बहुत-सी महत्त्वपूर्ण चीज़ें हैं, जिनके बारे में उनकी समूची परम्परा में अज्ञान व्याप्त रहा है, लेकिन इस तरह के लोगों को आम तौर से या तो हाशिए पर धकेल दिया जाता था या उन पर ज़ुल्म ढाए जाते थे - या फिर वे एक नई परम्परा स्थापित कर यह तर्क देना शुरू कर देते थे कि वे वह सब कुछ जानते हैं, जो जानने योग्य है। उदाहरण के लिए, मोहम्मद पैग़म्बर ने अपने मज़हबी जीवन की शुरुआत अपने हमवतन अरबों की इस बात के लिए भर्त्सना करते हुए की थी कि वे दैवीय सत्य को लेकर अज्ञानता में डूबे हैं, लेकिन स्वयं मोहम्मद ने बहुत जल्दी ही यह तर्क देना शुरू कर दिया कि वे सम्पूर्ण सत्य को जानते हैं, और उनके अनुयायियों ने उन्हें 'द सील ऑफ़ द प्रॉफ़ेट' आख़िरी पैग़म्बर कहना शुरू कर दिया था। इसके बाद से, मोहम्मद को हुए इलहामों से परे किन्हीं अन्य इलहामों की ज़रूरत नहीं रह गई थी।

आधुनिक-युग का विज्ञान ज्ञान की एक अनूठी परम्परा है, क्योंकि यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के सन्दर्भ में सामूहिक अज्ञान को सार्वजनिक रूप से स्वीकार करता है। डार्विन ने कभी यह दावा नहीं किया था कि वह 'आख़िरी जीव-विज्ञानी है' और उसने जीवन की गुत्थी को हमेशा के लिए सुलझा दिया है। व्यापक वैज्ञानिक अनुसन्धान की सदियाँ बीत जाने के बाद भी वैज्ञानिक इस बात को स्वीकार करते हैं कि उनके पास अभी भी इस बात की कोई ठीक-ठीक कैफ़ियत नहीं है कि मस्तिष्क चेतना को कैसे उत्पन्न करता है। भौतिकीविद स्वीकार करते हैं कि वे नहीं जानते कि 'बिग बैंग' किस वजह से घटित हुआ था या क़्वांटम मैकेनिक्स का तालमेल जनरल रिलेटिविटी के सिद्धान्त से कैसे

बैठाया जाए।

दूसरे प्रकरणों में, प्रतिस्पर्धाशील वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर लगातार सामने आ रहे नए साक्ष्यों के आधार पर ज़ोरदार बहसें हुई हैं। एक प्रमुख उदाहरण इस बात को लेकर बहस का है कि अर्थव्यवस्था को संचालित करने का सबसे अच्छा तरीक़ा क्या है। अलग-अलग अर्थशास्त्री भले ही यह दावा कर सकते हैं कि उनका तरीक़ा सबसे अच्छा है, लेकिन हर वित्तीय संकट और शेयर बाज़ार के बुलबुले के साथ प्रामाणिकता के दावों में बदलाव आ जाता है, और यह बात सामान्य तौर पर स्वीकृत है कि अर्थशास्त्र के बारे में अन्तिम बात अभी कही जानी बाक़ी है।

कुछ दूसरे प्रकरण ऐसे है, जिनमें कुछ ख़ास परिकल्पनाएँ उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर इस क़दर लगातार अटल बनी हुई हैं कि सारे विकल्प बहुत पहले नाकामयाब हो चुके हैं। इस तरह की परिकल्पनाओं को सत्य मानकर स्वीकार किया जाता है - तब भी इस बात पर हर कोई सहमत है कि अगर ऐसा कोई नया साक्ष्य सामने आया होता, जिसने उस परिकल्पना का खण्डन किया होता, तो उसमें संशोधन किया गया होता या उसको अस्वीकार कर दिया गया होता। इनके अच्छे उदाहरणों में सतह विवर्तनिकी सिद्धान्त (प्लेट टेक्टॉनिक थ्योरी) और विकासवाद का सिद्धान्त शामिल हैं।

अज्ञान को स्वीकार करने की तत्परता ने आधुनिक विज्ञान को ज्ञान की किसी भी पुरानी परम्परा के मुक़ाबले और भी ज़्यादा गत्यात्मक, लचीला और जिज्ञासापूर्ण बनाया है। इस चीज़ ने दुनिया को समझने की हमारी सामर्थ्य और नई प्रौद्योगिकियों को ईजाद करने की हमारी क़ाबिलियत में ज़बरदस्त विस्तार किया है, लेकिन यह हमारे सामने एक ऐसी गम्भीर समस्या खड़ी करती है, जिससे हमारे पूर्वजों को नहीं निपटना पड़ा था। हमारी हाल ही की धारणा है कि हम हर चीज़ नहीं जानते और जो ज्ञान हमारे पास है, वह तक अनिश्चित है। इसका विस्तार उन साझा लोक-विश्वासों (मिथकों) तक है, जो एक दूसरे से अपरिचित लाखों लोगों को कारगर ढंग से परस्पर सहयोग करने में सक्षम बनाते हैं। अगर साक्ष्य यह दर्शाता है कि इनमें से अनेक लोक-विश्वास सन्देहास्पद हैं, तो हम समाज को एकजुट कैसे रख सकते हैं? हमारे समुदाय, मुल्क़ और अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था कैसे काम कर सकते हैं?

समाज-राजनैतिक व्यवस्था को स्थिर रखने के सारे आधुनिक उपक्रमों के पास सिवा इसके और कोई विकल्प नहीं है कि वे इन दो अवैज्ञानिक पद्धतियों में से किसी एक पद्धति पर भरोसा करें :

1. किसी वैज्ञानिक सिद्धान्त को लें, और सामान्य वैज्ञानिक आचरण के विपरीत जाकर घोषणा करें कि यही अन्तिम और परम सत्य है। यह वो पद्धति थी, जिसका उपयोग नाज़ियों द्वारा किया गया था (जिनका दावा था कि उनकी नस्लवादी नीतियाँ जीववैज्ञानिक तथ्यों के स्वाभाविक परिणाम थे) और कम्युनिस्टों द्वारा किया गया था (जिनका दावा था कि मार्क्स और लेनिन ने ऐसे परम अर्थशास्त्रीय सत्यों को समझ लिया था जिनका खण्डन कभी नहीं किया जा सकता था)।
2. विज्ञान को इससे बाहर कर दें और एक अवैज्ञानिक परम सत्य के मुताबिक़ चलना शुरू कर दें। यह उदार मानवतावाद की रणनीति रही है, जो मनुष्यों की अद्वितीय

> मूल्यवत्ता और अधिकारों में कट्टर विश्वास पर खड़ी हुई है - एक ऐसा विश्वास जो होमो सेपियन्स के वैज्ञानिक अध्ययन के साथ शर्मनाक ढंग से असंगत है।

लेकिन हमें इससे आश्चर्य में नहीं पड़ जाना चाहिए। ख़ुद विज्ञान तक को अपने अनुसन्धान का औचित्य साबित करने और आर्थिक प्रबन्ध के लिए मज़हबी और विचारधारात्मक विश्वासों पर निर्भर करना पड़ता है।

तब भी आधुनिक संस्कृति अपने अज्ञान को स्वीकार करने के मामले में पहले की किसी भी संस्कृति के मुक़ाबले ज़्यादा तत्पर रही है। जिस एक चीज़ की वजह से आधुनिक सामाजिक व्यवस्थाएँ संगठित बनी रह सकी हैं, वह है प्रौद्योगिकी और वैज्ञानिक अनुसन्धान की पद्धतियों में लगभग मज़हबी स्तर की आस्था का प्रसार, जिसने किसी हद तक परम सत्यों में विश्वास की जगह ले ली है।

विज्ञान का सिद्धान्त (डॉग्मा)

आधुनिक विज्ञान का कोई अकाट्य सिद्धान्त नहीं है। तब भी इसका उन अनुसन्धान-पद्धतियों का एक सर्वनिष्ठ मर्म अवश्य है, जो अनुभवपरक पर्यवेक्षणों - ऐसे, जिन्हें हम अपनी कम से कम किसी एक इन्द्रिय से अनुभव कर सकते हों - के संग्रह और गणितीय उपकरणों की मदद से किए गए इन पर्यवेक्षणों के संयोजन पर आधारित हैं।

लोगों ने समूचे इतिहास के दौरान अनुभवपरक पर्यवेक्षण एकत्र किए थे, लेकिन इन पर्यवेक्षणों का महत्त्व प्रायः सीमित हुआ करता था। जब हमें पहले से सारे ज़रूरी जवाबों की जानकारी है, तब नए पर्यवेक्षणों को जुटाने पर क़ीमती संसाधनों को क्यों बरबाद किया जाए? लेकिन जैसे ही आधुनिक लोगों ने इस बात को स्वीकारना शुरू किया कि उन्हें कुछ बेहद महत्त्वपूर्ण सवालों के जवाबों की जानकारी नहीं है, वैसे ही उन्हें सर्वथा नए ज्ञान की खोज करना आवश्यक महसूस हुआ। नतीज़तन, आधुनिक युग की प्रभावी अनुसन्धान-पद्धति ज्ञान की अपर्याप्तता को मान कर चलती है। पुरानी परम्पराओं का अध्ययन करने के बजाय ज़ोर आज नए पर्यवेक्षणों और प्रयोगों पर है। जब वर्तमान पर्यवेक्षण अतीत की परम्परा के विरोध में जाता है, तो हम पर्यवेक्षण को प्राथमिकता देते हैं। बेशक, सुदूर आकाशगंगाओं के विस्तार का विश्लेषण करने वाले भौतिकीविद, किसी कांस्य युग के नगर से मिली वस्तुओं का विश्लेषण करने वाले पुरातत्त्वविद और पूँजीवाद के आविर्भाव का अध्ययन करने वाले राजनीति विज्ञानी परम्परा की उपेक्षा नहीं करते। वे अपने अध्ययन की शुरुआत उन्हीं बातों के साथ करते हैं, जो अतीत के ज्ञानियों ने कही और लिखी हैं, लेकिन उदीयमान भौतिकीविदों, पुरातत्त्वविदों और राजनीति विज्ञानियों को उनके कॉलेज के प्रथम वर्ष से ही यह सिखाया जाता है कि उनकी महत्त्वाकांक्षा उससे परे जाने की होनी चाहिए, जो आइंस्टीन, हाइनरिक श्लीमान और मैक्स वेबर जानते थे।

हालाँकि निरे पर्यवेक्षण ज्ञान नहीं हैं। विश्व को समझने के लिए हमें पर्यवेक्षणों को आपस में जोड़कर उन्हें एक विशद सिद्धान्त की शक्ल देने की ज़रूरत होती है। पुरानी परम्पराएँ अपने सिद्धान्तों को सामान्यतः क़िस्सों की पदावली में गढ़ती थीं। आधुनिक विज्ञान गणित का इस्तेमाल करता है।

बाइबल, कुरान, वेदों या कन्फ़्यूशियाई क्लासिक्स में बहुत थोड़े-से समीकरण, रेखाचित्र और गणनाएँ हैं। जब पारम्परिक मिथक और धर्मग्रन्थ नियमों का विधान करते थे, तो इन नियमों को गणितीय रूप के बजाय आख्यानों की शक्ल में पेश किया जाता था। इस तरह मैनिक़ियाई मज़हब का मूलभूत सिद्धान्त दावा करता है कि जगत शुभ और अशुभ के बीच संघर्ष का रणस्थल है। अशुभ शक्ति ने पदार्थ की रचना की है और शुभ शक्ति ने आत्मा की रचना की है। मनुष्य के पास इन्हीं दो शक्तियों के बीच चयन का विकल्प है और उसे अशुभ के बजाय शुभ का चयन करना चाहिए, लेकिन मैनिक़ियाई मज़हब के संस्थापक पैग़म्बर मानी ने कोई ऐसा गणितीय सूत्र सुझाने की कोशिश नहीं की, जिसका इस्तेमाल इन दो शक्तियों की सामर्थ्य का आकलन करते हुए मनुष्य द्वारा चुने जाने वाले विकल्पों के पूर्वानुमान के लिए किया जा सकता। उन्होंने इस तरह की कोई गणना नहीं की कि “मनुष्य पर कार्यरत शक्ति उसकी काया के परिमाण से विभाजित उसकी आत्मा के त्वरण के बराबर होती है”। यह ठीक वो चीज़ है, जिसे वैज्ञानिक साधना चाहते हैं। 1687 में आइजैक न्यूटन ने द मैथामेटिकल प्रिंसिपल्स ऑफ़ नेचुरल फ़िलॉसफ़ी पुस्तक प्रकाशित की थी, जिसे तर्कसंगत ढंग से आधुनिक इतिहास का सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ कहा जा सकता है। न्यूटन ने गति और परिवर्तन का एक सामान्य सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। न्यूटन के सिद्धान्त की महानता इस बात में थी कि वह तीन अत्यन्त सरल गणितीय नियमों के सहारे पेड़ से गिरते सेब से लेकर उल्कापात समेत ब्रह्माण्ड के सारे पिण्डों की गति को समझाने और उसका पूर्वानुमान करने में सक्षम था। ये तीन नियम हैं :

$$1.\ \sum \vec{F} = 0$$

$$2.\ \sum \vec{F} = m\vec{a}$$

$$3.\ \vec{F}_{1,2} = -\vec{F}_{2,1}$$

इसके बाद से जो भी कोई किसी तोप के गोले या किसी ग्रह की गति को समझना और उसका पूर्वानुमान करना चाहता था, उसे सिर्फ़ उस चीज़ के परिमाण, दिशा और गति तथा उस पर कार्यरत बलों के माप लेने भर की ज़रूरत थी। इन संख्याओं को न्यूटन के समीकरणों में रख कर उस वस्तु की भावी स्थिति का अनुमान किया जा सकता था। इसने जादुई ढंग से काम किया। सिर्फ़ उन्नीसवीं सदी के अन्त के आस-पास ही वैज्ञानिकों का सामना कुछ ऐसे पर्यवेक्षणों से हुआ, जो न्यूटन के नियमों में ठीक से फ़िट नहीं बैठते थे और ये भौतिकी की अगली क्रान्ति का कारण बने - सापेक्षता और क़्वांटम मैकेनिक्स का सिद्धान्त।

न्यूटन ने बताया था कि कुदरत की किताब गणित की ज़ुबान में लिखी गई है। कुछ अध्यायों (उदाहरण के लिए) का मुख्य हिस्सा तो स्पष्ट तौर पर समीकरणों में हैं, लेकिन जिन अध्येताओं ने जीव-विज्ञान, अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान को विशुद्ध न्यूटनीय समीकरणों में बाँधने की कोशिश की, उन्होंने पाया कि इन अनुशासनों की जटिलता का स्तर इस तरह की महत्त्वाकांक्षा को व्यर्थ साबित करता है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं था कि उन्होंने गणित को त्याग दिया। वास्तविकता के ज़्यादा जटिल पक्षों से निपटने के

लिए पिछले 200 वर्षों के दौरान गणित की एक नई शाखा विकसित हुई : सांख्यिकी।

1744 में स्कॉटलैंड के दो प्रेसबटेरियाई पादरियों, अलेक्ज़ेंडर वेब्स्टर और रॉबर्ट वालेस ने एक ऐसी जीवन-बीमा निधि स्थापित करने का फ़ैसला किया, जो दिवंगत पादरियों की विधवाओं और अनाथ बच्चों को पेंशन उपलब्ध कराती। उन्होंने प्रस्ताव किया कि उनकी चर्च का हर पादरी अपनी आय का एक छोटा-सा अंश इस निधि के लिए दे, जो इस पैसे का निवेश करेगा। अगर किसी पादरी मृत्यु होती है, तो उसकी विधवा इस निधि से होने वाले मुनाफ़े के अंश प्राप्त करेगी। इससे उसे अपना बाक़ी जीवन चैन से गुज़ारने की गुंजाइश मिलेगी, लेकिन पादरी कितना भुगतान करें, ताकि निधि में इतना पर्याप्त पैसा जमा हो सके, जिससे कि वह अपनी ज़िम्मेदारियों का निर्वाह कर सके, यह तय करने के लिए वेब्स्टर और वालेस के लिए यह अनुमान लगाना ज़रूरी था कि हर साल कितने पादरियों की मृत्यु होगी, वे अपने पीछे कितनी विधवाओं और अनाथ बच्चों को छोड़ जाएँगे और ये विधवाएँ अपने पतियों की मृत्यु के बाद कितने बरस ज़िन्दा रहेंगी।

ध्यान दें कि इन दोनों पादरियों ने क्या नहीं किया। इन सवालों के जवाब हासिल करने के लिए उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना नहीं की। ना ही उन्होंने इसके जवाब पवित्र पोथियों या प्राचीन धर्मशास्त्रियों की कृतियों में खोजे। ना ही वे किसी अमूर्त दार्शनिक वाद-विवाद में संलग्न हुए। स्कॉटलैंड के होने की वजह से वे व्यावहारिक क़िस्म के व्यक्ति थे। इसलिए उन्होंने एडिनबरा विश्वविद्यालय के गणित के एक प्रोफ़ेसर, कॉलिन मैक्लॉरिन से सम्पर्क किया। इन तीनों ने मिलकर लोगों के मरने की उम्र के आँकड़े एकत्र किए और इन आँकड़ों के आधार पर हिसाब लगाया कि किसी भी एक वर्ष में कितने पादरियों की मृत्यु होने की सम्भावना थी।

उनका काम सांख्यिकी और प्राबबिलिटी के क्षेत्र की अनेक ताज़ा खोजों पर आधारित था। इनमें से एक खोज थी जैकब बर्न्यूली की 'लॉ ऑफ़ लार्ज नम्बर्स'। बर्न्यूली ने यह सिद्धान्त गढ़ा था कि जहाँ किसी व्यक्ति विशेष की मृत्यु जैसी किसी एक घटना का निश्चयात्मक तरीक़े से अनुमान लगाना मुश्किल हो सकता है, वहीं एक ही तरह की अनेक घटनाओं के औसत नतीज़े का अत्यन्त सटीकता के साथ अनुमान लगाया जा सकता है। इसका मतलब, जहाँ मैक्लॉरिन गणित का इस्तेमाल यह अनुमान लगाने के लिए नहीं कर सकता था कि वेब्स्टर और वालेस अगले साल मरेंगे या नहीं, वह, उपलब्ध पर्याप्त आँकड़ों के आधार पर वेब्स्टर और वालेस को यह बता सकता था कि स्कॉटलैंड के कितने प्रेसबटेरियाई पादरी लगभग निश्चित तौर पर अगले साल मरेंगे। सौभाग्य से उनके पास तैयारशुदा आँकड़े थे, जिनका वे इस्तेमाल कर सकते थे। एडमंड हैली द्वारा पचास पहले प्रकाशित किए गए एक्चूएरी टेबल्स ख़ास तौर से उपयोगी साबित हुए। हैली ने जर्मनी के ब्रेसलाउ नगर से हासिल किए गए 1,238 जन्मों और 1,174 मौतों के रिकॉर्डों का विश्लेषण किया था। हैली की तालिकाओं के आधार पर देखना मुमकिन हो सका कि, उदाहरण के लिए, किसी प्रदत्त वर्ष में एक बीस साल की उम्र के व्यक्ति की मृत्यु की सम्भावना 1:100 है, लेकिन पचास साल के व्यक्ति की मृत्यु की सम्भावना 1:39 है।

इन संख्याओं का विश्लेषण करके वेब्स्टर और वालेस ने यह निष्कर्ष निकाला कि किसी भी प्रदत्त क्षण में 930 जीवित स्कॉट प्रेसबटेरियाई पादरी होंगे, और औसतन

सत्ताइस पादरियों की मृत्यु हर साल होगी, जिनमें से अठारह अपने पीछे विधवाओं को छोड़ जाएँगे। इनमें से जो पाँच विधवाओं को नहीं छोड़ जाएँगे, वे अनाथ बच्चों को छोड़ जाएँगे, और जो विधवाओं को छोड़ जाएँगे, उनमें से दो पिछली शादियों से हुए उन बच्चों को छोड़ जाएँगे, जो अभी सोलह की उम्र तक नहीं पहुँचे होंगे। इससे आगे उन्होंने यह भी परिगणना की कि विधवाओं की मृत्यु या पुनर्विवाह तक कितना समय बीतेगा (इन दोनों सम्भावित घटनाओं के होने पर पेंशन बन्द हो जाती)। इन आँकड़ों की वजह से वेब्स्टर और वालेस यह निर्धारित करने में सक्षम हो सके कि उनकी निधि में शामिल पादरियों को उनके प्रियजनों को भरण-पोषण उपलब्ध कराने के लिए कितने पैसे का अंशदान करना होगा। एक पादरी सालाना £2 12s. 2d. का भुगतान कर इस बात को सुनिश्चित कर सकता था कि उसकी विधवा बीवी को सालाना कम से कम £10 मिल सकेंगे, जो उन दिनों एक तगड़ी रक़म हुआ करती थी। अगर उसे इतना पैसा पर्याप्त नहीं लगता, तो वह और ज़्यादा, सालाना £6 11s. 3d. तक का अंशदान कर सकता था - जिससे उसकी विधवा को सालाना £25 की और भी ज़्यादा आकर्षक रक़म के मिलने गारंटी होती।

उनके आकलन के मुताबिक़, 1765 का साल आते-आते इस फ़ंड फ़ॉर अ प्रॉवीज़न फ़ॉर द विडो ऐंड चिल्ड्रन ऑफ़ द मिनिस्टर्स ऑफ़ द चर्च ऑफ़ स्कॉटलैंड के पास कुल £58,348 की पूँजी होती। उनका यह आकलन विस्मयकारी ढंग से सटीक साबित हुआ। जब वह साल आया तो निधि की पूँजी £58,347 थी - उनके पूर्वानुमान से मात्र £1 कम! ये हैबेकुक, जेरेमिआ या सेंट जॉन की भविष्यवाणियों तक से बेहतर स्थिति थी। आज वेब्स्टर और वालेस की यह निधि, जिसे सिर्फ़ स्कॉटिश विडोज़ के नाम से जाना है, दुनिया की सबसे बड़ी पेंशन और इंश्योरेंस कम्पनियों में शामिल है। £100 अरब की परिसम्पत्तियों से युक्त यह कम्पनी सिर्फ़ स्कॉटलैंड की विधवाओं का ही बीमा नहीं करती, बल्कि उस हर किसी का बीमा करती है, जो उसकी पॉलिसी लेने को इच्छुक होता है।

इस तरह के प्राबबिलिटी आकलनों ने, जिनका इस्तेमाल स्कॉटलैंड के इन दो पादरियों ने किया था, ना सिर्फ़ उस जीवनांकिकी विज्ञान (एक्चुएरियल साइंस) की नींव रखी, जो कि पेंशन और बीमा व्यापार में केन्द्रीय महत्त्व रखता है, बल्कि जनसांख्यिकी विज्ञान की भी नींव रखी (जिसकी स्थापना एक अन्य पादरी, अँग्रेज़ चर्च के रॉबर्ट मॉल्थस ने की थी)। बाद में जनसांख्यिकी विज्ञान वह आधारशिला बनी, जिस पर चार्ल्स डार्विन ने (जो लगभग अँग्रेज़ पादरी बन गया था) विकासवाद के सिद्धान्त को खड़ा किया था। जहाँ इस तरह के कोई समीकरण नहीं हैं, जो पूर्वानुमान कर सकते हों कि किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में किस तरह के जीव विकसित होंगे, वहीं जेनेटिक्स विज्ञानी प्राबबिलिटी परिगणना का इस्तेमाल करते हुए इस सम्भावना का परिकलन करते हैं कि एक प्रदत्त आबादी में एक ख़ास उत्परिवर्तन का प्रसार होगा। इसी तरह के प्राबबिलिस्टिक मॉडल अर्थशास्त्र, समाजविज्ञान, मनोविज्ञान, राजनीति शास्त्र और अन्य सामाजिक तथा प्राकृतिक विज्ञानों में केन्द्रीय बन चुके हैं। यहाँ तक कि भौतिकी ने भी अन्ततः न्यूटन के पारम्परिक समीकरणों में अनुपूरक के तौर पर क़्वांटम मैकेनिक्स के प्राबबिलिटी क्लाउड्स को शामिल कर लिया।

यह समझने के लिए कि यह प्रक्रिया हमें कहाँ ले गई है, हमें सिर्फ़ शिक्षा के इतिहास पर

नज़र डालने की ज़रूरत है। ज़्यादातर इतिहास के दौरान गणित एक ऐसी गूढ़ विद्या रही है, जिसका अध्ययन शिक्षित लोग तक बहुत कम किया करते थे। मध्ययुगीन यूरोप में तर्क, व्याकरण और अलंकारशास्त्र (रेह्टॉरिक) ही शिक्षा का महत्त्वपूर्ण भाग हुआ करते थे, जबकि गणित की शिक्षा कभी-कभार ही अंकगणित और ज्यामिती के परे जा पाती थी। सांख्यिकी का अध्ययन कोई नहीं करता था। सारे विज्ञानों का निर्विवाद एकछत्र सम्राट धर्मशास्त्र था।

आज बहुत थोड़े-से विद्यार्थी हैं, जो अलंकारशास्त्र का अध्ययन करते हैं, तर्क दर्शनशास्त्र के विभागों तक सीमित है और धर्मशास्त्र सेमिनारों तक, लेकिन गणित के अध्ययन के लिए ज़्यादा से ज़्यादा छात्रें को प्रेरित - बल्कि मज़बूर - किया जाता है। इग्ज़ैक्ट विज्ञानों - जिन्हें उनके द्वारा गणितीय उपकरणों के इस्तेमाल की वजह से 'इग्ज़ैक्ट' विज्ञानों के रूप में परिभाषित किया जाता है - की ओर प्रबल रुझान है। यहाँ तक अध्ययन के वे क्षेत्र, जो पारम्परिक तौर पर मानविकी का अंग हुआ करते थे, जैसे कि मानवीय भाषा का अध्ययन (भाषाविज्ञान) और मानवीय चेतना का अध्ययन (मनोविज्ञान), भी अब उत्तरोत्तर गणित पर निर्भर होते जा रह हैं और स्वयं को 'इग्ज़ैक्ट' विज्ञानों के रूप में पेश करना चाहते हैं। सांख्यिकी के कोर्स आज सिर्फ़ भौतिकी और जीव-विज्ञान की ही नहीं, बल्कि मनोविज्ञान, समाजविज्ञान, अर्थशास्त्र और राजनीति शास्त्र की भी बुनियादी ज़रूरतों का अंग हैं।

स्वयं मेरे विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के कोर्स कैटलॉग में पाठ्यक्रम का पहला ज़रूरी कोर्स 'इंट्रोडक्शन टू स्टेटिस्टिक्स ऐंड मैथेडोलॉजी इन सायकोलॉजिकल रिसर्च' है। मनोविज्ञान के द्वितीय वर्ष के विद्यार्थियों को 'स्टेटिस्टिकल मैथड्स इन सायकोलॉजिकल रिसर्च' लेना अनिवार्य है। कन्फ़्यूशियस, बुद्ध, ईसा और मोहम्मद भौंचक्के रह जाते, यदि आप उनसे यह कहते कि मानव मस्तिष्क को समझने और उसकी बीमारियों का इलाज़ करने के लिए आपको सबसे पहले सांख्यिकी का अध्ययन करना चाहिए।

ज्ञान शक्ति है

ज़्यादातर लोगों के लिए विज्ञान को पचा पाना बहुत मुश्किल होता है क्योंकि इसकी गणितीय भाषा को समझने में हमारे दिमाग़ को कठिनाई होती है और इसके निष्कर्ष अक्सर कॉमन सेंस के विरोध में जाते हैं। दुनिया के 7 अरब लोगों में से कितने हैं, जो सचमुच क़्वांटम मैकेनिक्स, सेल बायोलॉजी या मैक्रोइकोनॉमिक्स को समझते हैं? तब भी विज्ञान की व्यापक प्रतिष्ठा बनी हुई है क्योंकि वह हमें नई शक्तियाँ प्रदान करता है। राष्ट्रपति और जनरल भरे ही परमाणु भौतिकी को नहीं समझते हों, लेकिन वे अच्छी तरह से जानते हैं परमाणु बम क्या कर सकते हैं।

1620 में फ्रांसिस बैकन ने द न्यू इन्स्ट्रूमेंट नाम से एक वैज्ञानिक घोषणा-पत्र प्रकाशित किया था। इसमें उसने दावा किया था कि 'ज्ञान शक्ति है'। 'ज्ञान' की वास्तविक परीक्षा इसमें नहीं होती कि वह सच है या नहीं, बल्कि इसमें होती है कि वह हमारी सामर्थ्य को बढ़ाता है या नहीं। वैज्ञानिक आम तौर से यह मानते हैं कि कोई भी सिद्धान्त

100 प्रतिशत सही नहीं होता। नतीज़तन, सत्य ज्ञान की एक कमज़ोर कसौटी है। उसकी वास्तविक कसौटी है उपयोगिता। ज्ञान की स्थापना उस सिद्धान्त से होती है, जो हमें नया कुछ कर सकने में सक्षम बनाता है।

सदियों के दौरान विज्ञान ने हमें अनेक नए उपकरण उपलब्ध कराए हैं। इनमें से कुछ दिमाग़ी उपकरण हैं, जैसे कि वे जिनका इस्तेमाल मृत्यु दरों या आर्थिक वृद्धि के पूर्वानुमान के लिए किया जाता है। इन से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण हैं टेक्नोलॉजिकल उपकरण। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बीच गढ़ा गया रिश्ता इतना मज़बूत है कि आज लोग दोनों को एक समझ बैठते हैं। हम सोचते हैं कि बिना वैज्ञानिक अनुसन्धान के नई टेक्नोलॉजियों का विकास नामुमकिन है, और ऐसे अनुसन्धान का कोई ख़ास अर्थ नहीं है, जिसके परिणाम नई टेक्नोलॉजियों के रूप में सामने नहीं आते।

वस्तुतः, विज्ञान और टेक्नोलॉजी के बीच का रिश्ता हाल ही की घटना है। 1500 से पहले, विज्ञान और टेक्नोलॉजी पूरी तरह से स्वतन्त्र क्षेत्र थे। जब बैकन ने सत्रहवीं सदी की शुरुआत में दोनों को आपस में जोड़ा, तो वह एक क्रान्तिकारी विचार था। सत्रहवीं और अठारहवीं सदियों के दौरान यह रिश्ता मज़बूत तो हुआ, लेकिन दोनों के बीच गठबन्धन उन्नीसवीं सदी में ही हुआ। यहाँ तक कि 1800 में भी ताक़तवर फ़ौज की इच्छा रखने वाले ज़्यादातर हुक्मरान और कामयाब व्यापार की इच्छा रखने वाले ज़्यादातर रईस व्यापारी भौतिकी, जीव-विज्ञान या अर्थशास्त्र के क्षेत्र में अनुसन्धानों में पैसा लगाने की परवाह नहीं करते थे।

मेरा इरादा यह दावा करने का नहीं है कि इस स्थिति के कोई अपवाद नहीं थे। एक अच्छा इतिहासकार हर चीज़ की मिसालें खोज सकता है, लेकिन उससे भी अच्छा इतिहासकार वह है, जो जानता है कि ये मिसालें कब ऐसे कौतुहलों के सिवा और कुछ नहीं होतीं, जो व्यापक तसवीर को धुँधला कर देती हैं। सामान्य तौर पर बात करें तो पूर्वआधुनिक युग के ज़्यादातर शासक और व्यापारी नई टेक्नोलॉजियाँ विकसित करने के लिए विश्व की प्रकृति के बारे में शोध पर पैसा नहीं लगाते थे, और ज़्यादातर विचारक अपने वैचारिक निष्कर्षों का टेक्नोलॉजिकल युक्तियों में परिवर्तित करने की कोशिश नहीं करते थे। शासक ऐसे शैक्षणिक संस्थानों को पैसा देते थे, जिन्हें शासन की ओर से यह आदेश मिला होता था कि वे मौजूदा व्यवस्था को मज़बूत बनाने के उद्देश्य से पारम्परिक ज्ञान का प्रचार-प्रसार करें।

जहाँ-तहाँ लोग नई टेक्नोलॉजियाँ विकसित करते रहते थे, लेकिन ये विधिवत वैज्ञानिक अनुसन्धान में लगे अध्येताओं द्वारा नहीं, बल्कि आम तौर से अशिक्षित कारीगरों द्वारा प्रयोग और भूल-सुधार की प्रक्रिया से निर्मित होती थीं। बैलगाड़ियाँ तैयार करने वाले कारीगर साल दर साल एक ही तरह की सामग्री का इस्तेमाल करते हुए उसी-उसी तरह की बैलगाड़ियाँ बनाते रहते थे। वे अनुसन्धान और नई बैलगाड़ियों के मॉडल तैयार करने के लिए अपने सालाना मुनाफ़े का एक निश्चित हिस्सा बचाकर नहीं रखते थे। बैलगाड़ियों के डिज़ाइनों में कभी-कभी सुधार ज़रूर होता था, लेकिन ये आम तौर से किसी स्थानीय बढ़ई की कल्पनाशीलता की वजह से होता था, जिसने कभी विश्वविद्यालय में तो क़दम नहीं ही रखा होता था, बल्कि जो पढ़ना तक नहीं जानता था।

यह बात सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों के सन्दर्भ में सही थी। जहाँ आधुनिक

राज्य ऊर्जा से लेकर स्वास्थ्य और कचरे को ठिकाने लगाने तक राष्ट्रीय नीति के लगभग हर क्षेत्र में समाधान उपलब्ध कराने के लिए अपने वैज्ञानिकों को आमन्त्रित करते हैं, वहीं प्राचीन हुकूमतें कभी-कभार ही ऐसा करती थीं। तब और अब के बीच का अन्तर सबसे ज़्यादा हथियारों के मामले में स्पष्ट होता है। जब 1961 में निवर्तमान राष्ट्रपति ड्वाइट आइज़ेनहावर ने सैन्य-औद्योगिक परिसर (मिलिट्री-इंडस्ट्रियल कॉम्प्लैक्स) की बढ़ती हुई ताक़त के बारे में चेतावनी दी थी, तो उन्होंने इस समीकरण के एक हिस्से का ज़िक्र नहीं किया था। उन्हें अपने देश को सैन्य-औद्योगिक-वैज्ञानिक परिसर के बारे में सावधान करना चाहिए था, क्योंकि आज के युद्ध वैज्ञानिक उत्पाद हैं। दुनिया की सैन्य शक्तियाँ मनुष्यता के वैज्ञानिक अनुसन्धान और टेक्नोलॉजिकल विकास के एक बहुत बड़े हिस्से की शुरुआत करती हैं, उन्हें निधि उपलब्ध कराती हैं और उनकी दिशा को निर्धारित करती हैं।

33. जर्मन V.2 रॉकेट दागे जाने के लिए तैयार। इसने मित्र राष्ट्रों को पराजित नहीं किया, लेकिन यह जर्मनी के लोगों को युद्ध के एकदम आख़िरी दिनों तक किसी टेक्नोलॉजिकल चमत्कार की उम्मीद बँधाए रहा।

जब पहला विश्वयुद्ध लंबी चलने वाली मोर्चाबन्दी की खन्दक में जा फँसा था, तो इस गतिरोध को समाप्त करने और राष्ट्र को बचाने के लिए दोनों पक्षों ने वैज्ञानिकों का आह्वान किया था। इन सफ़ेदपोशों ने इस आह्वान का जवाब दिया, और प्रयोगशालाओं से करामाती हथियारों का एक अनवरत प्रवाह फूट पड़ा : युद्धक विमान, ज़हरीली गैस, टैंक, पनडुब्बियाँ और अत्यन्त कारगर मशीन गनें, तोपें, राइफ़लें और बम।

द्वितीय विश्वयुद्ध में विज्ञान ने इससे भी बड़ी भूमिका निभाई थी। 1944 के अन्त के

क़रीब जर्मनी लड़ाई हार रहा था और उसकी पराजय आसन्न थी। एक साल पहले जर्मनों के मित्र इतालवियों ने मुसोलिनी को पदच्युत कर दिया था और मित्र राष्ट्रों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया था, लेकिन जर्मनी ने लड़ना जारी रखा था, बावजूद इसके कि अँग्रेज़, अमेरिकी और सोवियत सेनाएँ क़रीब पहुँचती जा रही थीं। जर्मन सैनिकों और नागरिकों को जिस एक वजह से उम्मीद बँधी थी, वह यह थी कि उन्हें विश्वास था कि जर्मन वैज्ञानिक V.2 रॉकेट और जेट-पॉवर्ड विमानों जैसे करामाती हथियारों की मदद से उनकी क़िस्मत पलट देने वाले थे।

जहाँ जर्मन रॉकेटों और जेटों पर काम कर रहे थे, वहीं अमेरिकी मैनहट्टन प्रोजेक्ट कामयाबी के साथ एटम बम विकसित कर चुका था। अगस्त 1945 के शुरुआती दिनों में इस बम के तैयार होने तक जर्मनी तो आत्मसमर्पण कर चुका था, लेकिन जापान मोर्चे पर डटा था। अमेरिकी सेनाएँ इसके घरेलू द्वीपों पर आक्रमण करने को तैयार थीं। जापानियों ने इस आक्रमण का मुक़ाबला करने और मरते दम तक लड़ते रहने की क़सम खा रखी थी, और ऐसा मानने की पर्याप्त वजहें थीं कि ये कोई खोखली धमकी नहीं थी। अमेरिकी जनरलों ने राष्ट्रपति हैरी एस. ट्रूमन से कहा कि जापान पर आक्रमण की क़ीमत लाखों अमेरिकी सैनिकों की जान से चुकानी पड़ेगी और लड़ाई 1946 तक जारी रहेगी। ट्रूमन ने नए बम का इस्तेमाल करने का निश्चय कर लिया। दो हफ़्तों और दो एटम बमों के बाद जापान ने बिना शर्त समर्पण कर दिया और युद्ध समाप्त हो गया।

लेकिन विज्ञान सिर्फ़ आक्रामक हथियारों के बारे में नहीं है। यह हमारी प्रतिरक्षा में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आज बहुत से अमेरिकी मानते हैं कि आतंकवाद का हल राजनैतिक तरीक़े से नहीं, बल्कि टेक्नोलॉजिकल तरीक़े से निकल सकता है। उनका विश्वास है कि अगर नैनोटेक्नोलॉजी उद्योग के लिए कुछ लाख डॉलर और दिए जाएँ, तो संयुक्त राज्य अमेरिका अफ़गानिस्तान की एक-एक गुफा, यमन के एक-एक क़िले और उत्तरी अफ़्रीका के एक-एक शिविर में बाइओनिक स्पाई-फ़्लाइज़ भेज सकता है। एक बार यह हो गया, तो फिर ओसामा बिन लादेन के वारिस एक कप कॉफ़ी भी बनाएँगे, तो सीआइए के स्पाई-फ़्लाई यह महत्त्वपूर्ण सूचना लैंग्ली के मुख्यालय में भेज देंगे। कुछ और लाख डॉलर मस्तिष्क के अनुसन्धान में लगाएँ, तो हर हवाई अड्डे को अति-परिष्कृत एफ़एमआरआई स्कैनरों से लैस किया जा सकता है, जो लोगों के दिमाग़ में आने वाले क्रोध और नफ़रत से भरे विचारों को तुरन्त पहचान लेंगे। क्या ये वाक़ई करगर होगा? कौन जाने। क्या बाइओनिक फ़्लाइज़ और विचारों को पढ़ने वाले स्कैनर विकसित करना अक़्लमन्दी होगी? ज़रूरी नहीं। जो भी हो, लेकिन जिस वक़्त आप ये पंक्तियाँ पढ़ रहे हैं, उस वक़्त संयुक्त राज्य अमेरिका का रक्षा मन्त्रालय इन और ऐसी ही दूसरी युक्तियों पर काम करने के लिए नैनोटेक्नोलॉजी और मस्तिष्क प्रयोगशालाओं के लिए लाखों डॉलर उपलब्ध करा रहा है।

टैंकों से लेकर एटम बम और स्पाई-फ़्लाइज़ तक सैन्य टेक्नोलॉजी को लेकर यह सनक आश्चर्यजनक रूप से हाल ही की चीज़ है। उन्नीसवीं सदी तक बहुसंख्यक सैन्य क्रान्तियाँ टेक्नोलॉजिकल परिवर्तनों के बजाय संगठनात्मक परिवर्तनों की उपज थीं। जब अजनबी सभ्यताएँ पहली बार मिलती थीं, तो टेक्नोलॉजिकल खाइयाँ कभी-कभी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाया करती थीं, लेकिन ऐसे प्रकरणों में भी बहुत कम लोग हुआ

करते थे, जो इस तरह की खाइयों को जान-बूझकर पैदा करने या चौड़ा करने के बारे में सोचते थे। ज़्यादातर साम्राज्य टेक्नोलॉजिकल दक्षता की वजह से खड़े नहीं हुए थे, और उनके शासक टेक्नोलॉजिकल विकास की कोई ख़ास परवाह नहीं करते थे। अरबों ने सासानिड साम्राज्य को उच्च कोटि के तीरों या तलवारों के बूते परे मात नहीं दी थी, सेल्जुक टेक्नोलॉजी की दृष्टि से बाइजेंटाइनों पर भारी नहीं पड़े थे और मंगोलों ने चीन पर किन्हीं नए चमत्कारी हथियारों की मदद से विजय नहीं पाई थी। वस्तुतः, इन सारे प्रकरणों में पराजित लोगों के पास उच्च कोटि की सैन्य और असैनिक टेक्नोलॉजी हुआ करती थी।

रोमन सेना विशेष रूप से एक अच्छा उदाहरण है। यह अपने ज़माने की सबसे अच्छी फ़ौज थी, तब भी टेक्नोलॉजी की दृष्टि से बात करें, तो रोम की स्थिति कार्थेज, मैसेडोनिया या सेल्यूसिड साम्राज्यों से बेहतर नहीं थी। उसकी श्रेष्ठता कुशल संगठन, सख़्त अनुशासन और जन-शक्ति के विशाल संचय में थी। रोमन सेना ने अनुसन्धान और विकास के लिए कभी कोई विभाग स्थापित नहीं किया था और इसके हथियार सदियों तक लगभग एक जैसे ही बने रहे थे। अगर सीपियो एमिलियनस - वह जनरल, जिसने ईसा पूर्व दूसरी सदी में कार्थेज को पछाड़ा था और नूमान्ताइयों को पराजित किया था - की फ़ौज 500 साल बाद कोंसटेंटाइन द ग्रेट के युग में अचानक प्रकट हो गई होती, तो पूरी सम्भावना है कि सीपियो ने कोंसटेंटाइन को पराजित कर दिया होता। अब ज़रा कल्पना कीजिए कि आधुनिक युग के शुरुआती दौर के किसी जनरल - मान लीजिए कि अल्ब्रेख़्त वान वालेन्स्टाइन, जो 'थर्टी ईयर्स वार' में होली रोमन एम्पायर की सेनाओं का मुखिया था - का क्या हुआ होता अगर उसने समकालीन अमेरिकी आर्मी रेंजर्स की बटालियन के ख़िलाफ़ बन्दूक़धारियों, बरछीधारियों और अश्वारोहियों की अपनी फ़ौज का नेतृत्व किया होता। वालेन्स्टाइन एक विलक्षण रणनीतिकार था और उसके आदमी अपने पेशे में ज़बरदस्त अनुभव रखते थे, लेकिन आधुनिक हथियारों के सामने उनकी सारी दक्षताएँ बेकार साबित होतीं।

जिस तरह रोम के, उसी तरह प्राचीन चीन के भी ज़्यादातर जनरल और दार्शनिक नए हथियारों को विकसित करना अपना कर्तव्य नहीं समझते थे। चीन के इतिहास का सबसे महत्त्वपूर्ण सैन्य आविष्कार बारूद थी, लेकिन हमारी सर्वश्रेष्ठ जानकारी के मुताबिक़ बारूद का आविष्कार निहायत ही इत्तफ़ाक से ताओवादी कीमियागरों द्वारा की जा रही अमृत की खोज के दौरान हुआ था। बारूद का बाद का जीवन और भी ज़ोरदार है। किसी को लग सकता है कि ताओवादी कीमियागरों ने तो चीन को दुनिया का मालिक बना दिया होता। वस्तुतः चीन ने इस नए यौगिक पदार्थ का इस्तेमाल मुख्यतः पटाखों के लिए किया था। मंगोलों के आक्रमण की वजह से सोंग साम्राज्य के ध्वस्त हो जाने पर भी किसी सम्राट ने क़यामती हथियार ईजाद कर साम्राज्य को बचाने के लिए मध्ययुगीन मैनहट्टन प्रोजेक्ट की स्थापना नहीं की। तोपें सिर्फ़ पन्द्रहवीं सदी - यानी बारूद के ईजाद के 600 साल बाद - में जाकर ही अफ़्रो-एशियाई युद्ध-क्षेत्रों में निर्णायक कारक बनीं। क्या करण है कि इस द्रव्य की घातक सम्भावनाओं ने सैन्य उपयोग में आने में इतना लम्बा समय लिया? क्योंकि यह एक ऐसे समय में प्रकट हुआ था, जब ना तो सम्राटों और अध्येताओं और ना ही व्यापारियों ने यह सोचा था कि नई सैन्य टेक्नोलॉजी उनकी रक्षा कर सकती है या उन्हें समृद्ध बना सकती है।

इस स्थिति में बदलाव पन्द्रहवीं और सोलहवीं सदियों में आना शुरू हुआ, लेकिन तब भी 200 साल लगे जब ज़्यादातर शासकों ने नए हथियारों के अनुसन्धान और निर्माण में दिलचस्पी दिखानी शुरू की। टेक्नोलॉजी के बजाय व्यूह-रचना और रणनीति ने ही युद्ध के परिणामों पर अपना कहीं ज़्यादा बड़ा प्रभाव डालना जारी रखा। नेपोलियनीय सैन्य तन्त्र में कमोबेश वही हथियार शामिल थे, जिनका इस्तेमाल लुई XVI ने किया था। इसी सैन्य तंत्र ने ऑस्टरलिट्ज़ में (1805) यूरोपीय शक्तियों की सेनाओं को कुचला था। एक तोपची होने के बावजूद स्वयं नेपोलियन की नए हथियारों में बहुत कम दिलचस्पी थी, बावजूद इसके कि वैज्ञानिकों और आविष्कारकों ने उसे मनाने की कोशिशें की थीं कि वह विमानों, पनडुब्बियों और रॉकेटों को विकसित करने के लिए निधि उपलब्ध कराए।

विज्ञान, उद्योग और सैन्य टेक्नोलॉजी के आपस में गुँथने की शुरुआत पूँजीवादी व्यवस्था और औद्योगिक क्रान्ति के साथ ही हुई, लेकिन जैसे ही एकबारगी यह रिश्ता क़ायम हुआ, इसने बहुत तेज़ी के साथ दुनिया को बदल दिया।

प्रगति का आदर्श

वैज्ञानिक क्रान्ति के पहले तक मानवीय संस्कृतियाँ प्रगति में विश्वास नहीं करती थीं। उन्हें लगता था कि स्वर्ण युग कहीं अतीत में था और यह कि दुनिया की हालत अगर बिगड़ नहीं रही थी, तो कम से कम वह निष्क्रिय तो हो ही चुकी थी। उनका मानना था कि अतीत की प्रज्ञा का सहारा ही शायद अच्छे पुराने वक़्त को वापस ला सकता है और मनुष्य की प्रतिभा ही जीवन के इस या उस पहलू में सुधार ला सकती है, लेकिन दुनिया की बुनियादी समस्याओं पर विजय पाना मनुष्य के ज्ञान और अनुभव के बूते के बाहर की चीज़ समझी जाती थी। अगर मोहम्मद, ईसा, बुद्ध और कन्फ़्यूशियस भी दुनिया को अकाल, महामारी, निर्धनता और युद्धों से निज़ात नहीं दिला सके, तो हम यह करने की उम्मीद कैसे कर सकते हैं, जबकि वे जानने योग्य हर चीज़ को जानते थे।

बहुत-सी आस्था-पद्धतियाँ मानती थीं कि एक दिन आएगा, जब कोई मसीहा प्रकट होगा और सारे युद्धों, अकालों और यहाँ तक मृत्यु तक को ख़त्म कर देगा, लेकिन मानव-जाति नए ज्ञान की खोज और नए उपकरणों के ईजाद की मदद से यह सब कर सकती है, यह धारणा हास्यास्पद होने से भी ज़्यादा बदतर थी - इसे हेकड़ी समझा जाता था। टॉवर ऑफ़ बाबेल के क़िस्से, इकारस के क़िस्से, गोलेम के क़िस्से और ऐसे ही असंख्य मिथकों ने लोगों को यह सीख दी थी कि मानवीय सीमाओं से परे जाने की कोई भी कोशिश अपरिहार्य रूप से निराशा और विनाश की ओर ले जाती है।

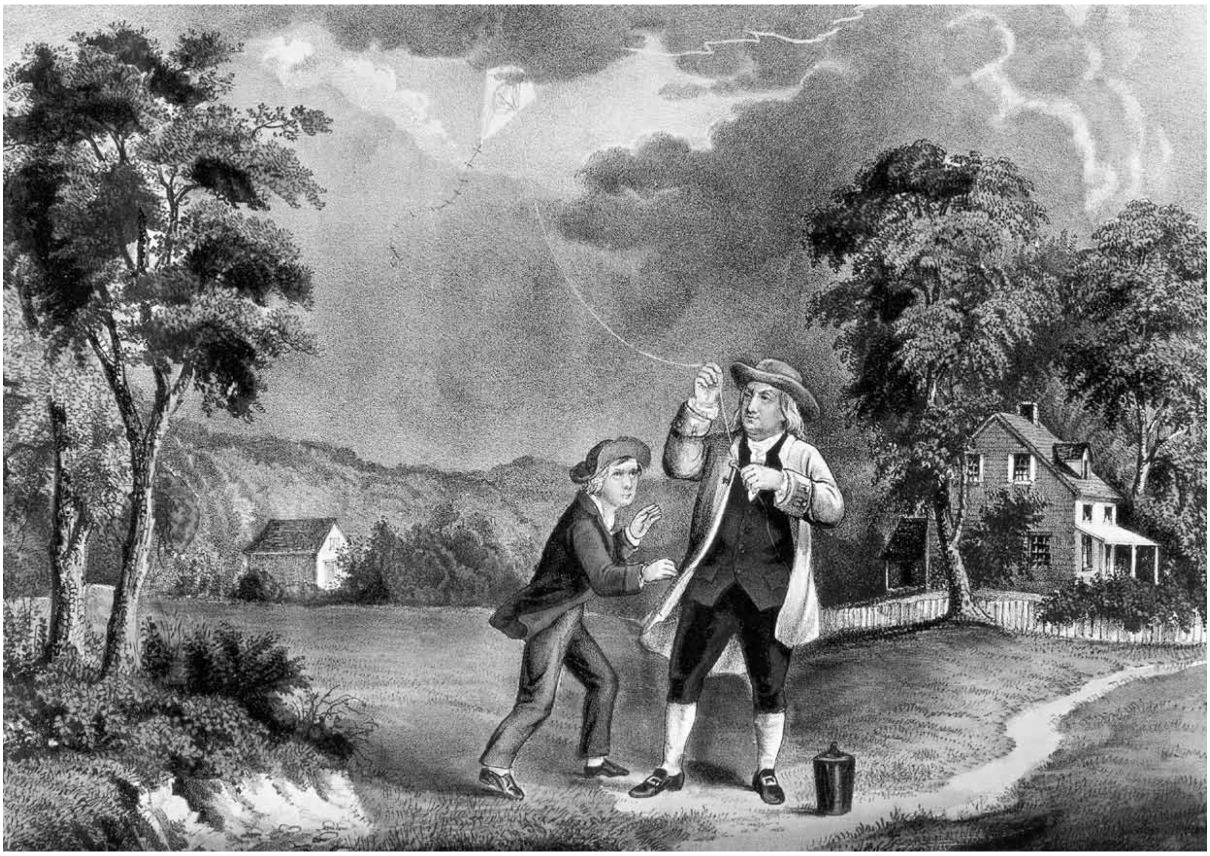

34. बेन्जामिन फ्रेंकलिन देवताओं को निहत्था करते हुए।

जब आधुनिक संस्कृति ने यह स्वीकार किया कि ऐसी बहुत-सी महत्त्वपूर्ण चीज़ें हैं, जो वह अभी भी नहीं जानती और जब अज्ञान की उस धारणा का मिलन इस विचार के साथ हुआ कि वैज्ञानिक खोजें हमें नई शक्तियाँ उपलब्ध कर सकती हैं, तो लोगों को यह लगना शुरू हुआ कि अन्ततः वास्तविक प्रगति मुमकिन है। जब विज्ञान ने एक के बाद एक समाधान से परे मानी जाने वाली समस्याओं को सुलझाने की शुरुआत की, तो बहुत-से लोगों को यक़ीन हो गया कि मानव-जाति नया ज्ञान अर्जित करके और उसका अनुप्रयोग करके किसी भी समस्या पर विजय प्राप्त कर सकती है। ऐसा लगने लगा कि निर्धनता, बीमारी, युद्ध, अकाल, बुढ़ापा और स्वयं मृत्यु भी मानव-जाति की अपरिहार्य नियति नहीं हैं। वे महज़ हमारे अज्ञान के फल हैं।

एक प्रसिद्ध उदाहरण है बिजली गिरना। बहुत-सी संस्कृतियों का विश्वास था कि बिजली का गिरना पापियों को सज़ा देने के लिए इस्तेमाल किए गए नाराज़ देवता के हथौड़े की चोट है। उन्नीसवीं सदी के मध्य में, वैज्ञानिक इतिहास के एक सर्वाधिक मशहूर प्रयोग के तहत, बेन्जामिन फ्रेंकलिन ने इस परिकल्पना के परीक्षण के लिए कि बिजली का गिरना महज़ विद्युत करेंट है, तड़ित झंझावात के दौरान पतंग उड़ाई। फ्रेंकलिन के अनुभवपरक पर्यवेक्षणों तथा विद्युत ऊर्जा के गुणों के बारे में उनके ज्ञान ने उन्हें तड़ित चालक (लाइटनिंग रॉड) का आविष्कार करने का सक्षम बनाया और इस तरह वे देवताओं को भी निहत्था कर सके।

ग़रीबी इसका एक और स्पष्ट उदाहरण है। बहुत-सी संस्कृतियाँ ग़रीबी को इस खोटी दुनिया के अवश्यम्भावी पहलू के रूप में देखती रही हैं। न्यू टेस्टामेंट के मुताबिक़ एक स्त्री

ने ईसा को सूली पर चढ़ाए जाने के कुछ ही पहले उनका 300 डिनारी मूल्य के बेशक़ीमती तेल से अभिषेक किया था। ईसा के शिष्यों ने उस औरत को इस बात के लिए लताड़ा कि उसने इतनी बड़ी रक़म ग़रीबों में बाँटने के बजाय इस तरह बरबाद की, लेकिन ईसा ने यह कहते हुए उसका बचाव किया कि “ग़रीब सदा तुम्हारे साथ रहेंगे और तुम जब भी चाहोगे, उनकी मदद कर सकोगे, लेकिन मैं तुम्हारे लिए हमेशा मौजूद रहने वाला नहीं हूँ” (मार्क 14:7)। आज ऐसे लोगों की संख्या उत्तरोत्तर कम होती जा रही है, जो इस मुद्दे पर ईसा से सहमति रखते हैं। इनमें उत्तरोत्तर कम होते भी ईसाई शामिल हैं। ग़रीबी को उत्तरोत्तर एक ऐसी तकनीकी समस्या के रूप में देखा जाने लगा है, जिसमें हस्तक्षेप कर उससे निपटा जा सकता है। यह एक आम समझ है कि कृषिविज्ञान, अर्थशास्त्र, चिकित्सा विज्ञान और समाजविज्ञान की हाल की खोजों पर आधारित नीतियाँ ग़रीबी का उन्मूलन कर सकती हैं।

और सचमुच ही, दुनिया के बहुत सारे हिस्से हैं, जो अभाव के निकृष्तम रूपों से मुक्त हो चुके हैं। समूचे इतिहास के दौरान समाज दो तरह की ग़रीबियों के शिकार रहे हैं : सामाजिक ग़रीबी, जो कुछ लोगों को उन अवसरों से वंचित रखती है, जो दूसरे लोगों को सुलभ होते हैं; और जैविक ग़रीबी, जो भोजन और आश्रय के अभावों की वजह से व्यक्तियों के जीवन-मात्र को संकट में डालती है। शायद सामाजिक ग़रीबी का उन्मूलन कभी मुमकिन ना हो, लेकिन दुनिया के कई मुल्क़ों में जैविक ग़रीबी अतीत की चीज़ हो चुकी है।

अभी कुछ ही समय पहले तक ज़्यादातर लोग जैविक ग़रीबी-रेखा के आस-पास मँडराया करते थे, जिसके नीचे के व्यक्ति को इतनी कैलोरी भी उपलब्ध नहीं होती कि वह लम्बे समय तक ज़िन्दा रह सके। स्थिति के मामूली-से भी ग़लत आकलन या दुर्भाग्य लोगों को इस रेखा के नीचे भुखमरी का शिकार होने के लिए धकेल सकते हैं। प्राकृतिक आपदाओं और इंसान की पैदा हुई विपत्तियों ने अक्सर पूरी की पूरी आबादियों को नर्क में झोंका है, जिसने लाखों लोगों की जान ली है। आज दुनिया के ज़्यादातर लोगों के पास उनके नीचे फैला एक सुरक्षा-जाल उपलब्ध है। लोग बीमा, राज्य द्वारा प्रायोजित सामाजिक सुरक्षा और ढेरों स्थानीय तथा अन्तरराष्ट्रीय ग़ैरसरकारी संगठनों की मदद से निजी आपदाओं से सुरक्षित हैं। जब किसी पूरे क्षेत्र पर कोई विपत्ति टूट पड़ती है, तो राहत के विश्वव्यापी उद्यम बदतर स्थिति को रोकने में आम तौर से कामयाब होते हैं। लोग अभी भी कई तरह की अधोगतियों, अपमानों और ग़रीबी से जुड़ी बीमारियों के शिकार हैं, लेकिन ज़्यादातर मुल्क़ों में भूख से किसी को नहीं मरना पड़ रहा है। दरअसल, बहुत-से समाजों में तो अधिकतर लोग भूख के बजाय मोटापे से मरने के ख़तरे में हैं।

गिलगमेश परियोजना

मानव-जाति की स्पष्ट तौर पर समाधान से परे समस्याओं में एक समस्या ऐसी है, जो सबसे ज़्यादा खीझ पैदा करने वाली, दिलचस्प और महत्त्वपूर्ण है : स्वयं मृत्यु की समस्या। आधुनिक युग के परवर्ती दौर के पहले ज़्यादातर मज़हब और विचारधाराएँ मानकर चलती थीं कि मृत्यु हमारी अपरिहार्य नियति है। इसके अतिरिक्त, ज़्यादातर

आस्था-पद्धतियों ने मृत्यु को जीवन के अर्थ के मुख्य स्रोत में बदल लिया था। ज़रा इस्लाम, ईसाइयत या मिस्र के प्राचीन मज़हब की मृत्यु-रहित दुनिया में होने की कल्पना करिए। इन मज़हबी पन्थों ने लोगों को सिखाया था कि उन्हें मृत्यु से ऊपर उठने और हमेशा-हमेशा के लिए पृथ्वी पर जीवित बने रहने की कामना करने के बजाय मृत्यु को स्वीकार करना चाहिए और अपनी उम्मीदों को मरणोपरान्त जीवन पर केन्द्रित करना चाहिए। मनीषी लोग मृत्यु को अर्थ देने में लगे हुए थे, ना कि उससे छुटकारा पाने की कोशिश में।

यह उस प्राचीन मिथक की विषय-वस्तु है, जो युगों दूर से हम तक आया है - प्राचीन सुमेर का गिलगमेश मिथक। इसका नायक ऊरुक का राजा गिलगमेश, दुनिया का सबसे मज़बूत और सबसे सक्षम व्यक्ति है, जो युद्ध में किसी को भी हरा सकता था। एक दिन गिलगमेश का अंतरंग मित्र एनकिडू मर जाता है। गिलगमेश कई दिनों तक उसके शव के पास बैठा उसे ध्यान से देखता रहा कि एक दिन उसने अपने इस दोस्त की नाक से एक कीड़े को बाहर निकलते देखा। उस क्षण गिलगमेश ज़बरदस्त दहशत से भर उठा और उसने संकल्प कर लिया कि वह कभी नहीं मरेगा। वह किसी तरह मृत्यु को पराजित करने का तरीक़ा ढूँढ़ निकालेगा। इसके बाद गिलगमेश विश्व के आख़िरी छोर तक की यात्रा पर निकल गया। रास्ते में शेरों को मारता हुआ, वृश्चिक-पुरुषों (स्कॉर्पियन-मेन) से युद्ध करता हुआ वह अन्ततः अधोलोक में जा पहुँचा। वहाँ उसने उर्शानबी के प्रस्तर-दैत्यों और मृतकों की नदी के मल्लाह को टुकड़े-टुकड़े कर दिया और आदि काल के जलप्रलय से बचे रह गए अन्तिम व्यक्ति को ढूँढ निकाला। तब भी गिलगमेश अपनी तलाश में नाकामयाब रहा। वह हमेशा की तरह नश्वर, ख़ाली हाथ वापस लौट आया, लेकिन अब उसे एक नया ज्ञान प्राप्त हो चुका था। गिलगमेश जान चुका था कि जब देवताओं ने मनुष्य की रचना की थी, तो उन्होंने मृत्यु को मनुष्य की अपरिहार्य नियति के रूप में स्थापित कर दिया था और मनुष्य को उसके साथ रहना सीखना चाहिए।

प्रगति के अनुयायी इस पराजयवादी रवैये में विश्वास नहीं करते। वैज्ञानिकों के लिए मृत्यु अपरिहार्य नियति नहीं, बल्कि महज़ एक तकनीकी समस्या है। लोग इसलिए नहीं मरते कि देवताओं का ऐसा आदेश है, बल्कि बहुत सारी तकनीकी विफलताओं की वजह से मरते हैं - हृदयाघात, कैन्सर या कोई इन्फ़ेक्शन। और हर तकनीकी समस्या का एक तकनीकी समाधान होता है। अगर दिल की धड़कन की रफ़्तार तेज़ और अनियमित होती है, तो उसे पेसमेकर की मदद से सन्तुलित किया जा सकता है या उसकी जगह एक नया दिल लगाया जा सकता है। अगर कैन्सर उपद्रव करता है, तो उसे दवाओं या रेडिएशन की मदद से मार दिया जा सकता है। अगर बैक्टीरिया फैलते हैं, तो उन पर एंटीबायोटिक से क़ाबू पाया जा सकता है। सही है कि फ़िलहाल हम हर तकनीकी समस्या को हल करने की स्थिति में नहीं हैं,लेकिन हम उन पर काम कर रहे हैं। हमारे मनीषी मृत्यु को अर्थ देने की कोशिश में अपना वक़्त बरबाद नहीं कर रहे हैं। इसके बजाय, वे बीमारी और बुढ़ापे के लिए ज़िम्मेदार फ़िज़ियोलॉजिकल, हार्मोनल और जेनेटिक प्रणालियों की जाँच-पड़ताल में लगे हैं। वे ऐसी नई औषधियाँ, क्रान्तिकारी चिकित्साएँ और कृत्रिम अंग विकसित करने में लगे हैं, जो हमारे जीवन को लम्बा बनाएँगे और मुमकिन है कि एक दिन स्वयं ‘मृत्यु के साक्षत रूप’ ग्रिम रीपर को पराजित कर दें।

अभी कुछ ही समय पहले तक आपने वैज्ञानिकों या किसी को भी इतने मुँहफट ढंग से बात करते हुए नहीं सुना होगा। वे ज़ोर देकर कहते थे, "मौत को पराजित?! क्या बेवकूफ़ी की बात है! हम तो सिर्फ़ कैन्सर, तपेदिक और अलज़ाइमर्स बीमारी को ठीक करने की कोशिश कर रहे हैं"। लोग मौत के मसले पर बात करने से बचते थे, क्योंकि यह लक्ष्य पकड़ से बाहर प्रतीत होता था। अकारण उम्मीदें क्यों जगाई जाएँ? लेकिन अब हम एक ऐसे मुक़ाम पर हैं, जब हम इस बारे में साफ़गोई बरत सकते हैं। वैज्ञानिक क्रान्ति की मुख्य परियोजना मानव-जाति को शाश्वत जीवन प्रदान करने की है। भले ही मृत्यु को मारना एक दूर की चीज़ प्रतीत होती हो, तब भी हमने ऐसी कुछ उपलब्धियाँ हासिल कर ली हैं, जो कुछ सदियों पहले अकल्पनीय थीं। 1199 में सम्राट रिचर्ड द लॉयनहार्ट को बाएँ कन्धे में एक तीर लग गया था। आज हम कहेंगे कि उसे हल्का-सा ज़ख़्म लगा था, लेकिन 1199 में एंटीबायोटिक्स और स्टेरिलिजेशन की कारगर पद्धतियों के अभाव में मांस पर लगा यह छोटा-सा ज़ख़्म इन्फ़ेक्शन में बदलकर गैंगरीन बन गया था। बारहवीं सदी के यूरोप में गैंगरीन को फैलने से रोकने का एकमात्र तरीक़ा दूषित अंग को काट कर अलग कर देना था, जो कन्धे के दूषित होने की स्थिति में नामुमकिन था। लॉयनहार्ट के पूरे शरीर में गैंगरीन फैल गया और कोई भी व्यक्ति सम्राट की मदद नहीं कर सका। वह भीषण यातना सहता हुआ दो हफ़्ते में मर गया।

अभी उन्नीसवीं तक भी अच्छे से अच्छे डॉक्टर इन्फ़ेक्शन से बचाव और ऊतकों को सड़ने से रोकने के तरीक़े नहीं जानते थे। लड़ाई के मैदानों के अस्पतालों में डॉक्टर सैनिकों को छोटे-मोटे ज़ख़्म होने की स्थिति तक में गैंगरीन के ख़ौफ़ के कारण उनके हाथ-पैर काट देते थे। अंग काटने की ये क्रियाएँ और दूसरी चिकित्सकीय प्रक्रियाएँ (जैसे कि दाँत निकालना) बेहोशी या अंग को सुन्न कर देने की किसी तरह की दवा के बिना सम्पादित की जाती थीं। बेहोशी की पहली दवाओं - ईथर, क्लोरोफ़ॉर्म और मार्फ़ीन - का नियमित इस्तेमाल पश्चिमी चिकित्सा की दुनिया में उन्नीसवीं सदी के मध्य में ही शुरू हुआ था। क्लोरोफ़ॉर्म के आगमन के पहले, जिस दौरान डॉक्टर एक सैनिक का अंग आरे से काट रहे होते थे, उस दौरान उसे चार सैनिक पकड़कर रखते थे। वाटरलू की लड़ाई (1815) के बाद की सुबह लड़ाई के मैदान के अस्पताल के क़रीब कटे हुए हाथों और पैरों का ढेर देखा जा सकता था। उन दिनों में फ़ौज में भर्ती किए गए बढ़ई और कसाइयों को अक्सर चिकित्सा दस्ते में काम करने को भेजा जाता था, क्योंकि शल्य चिकित्सा के लिए वांछित दक्षता चाकू और आरे के इस्तेमाल की दक्षता से थोड़ी ही ज़्यादा होती थी।

वाटरलू के बाद की दो शताब्दियों में स्थितियों में जो बदलाव आया है, वह पहचान के परे है। गोलियाँ, इंजेक्शन और परिष्कृत शल्य-क्रियाएँ उन बीमारियों और ज़ख़्मों की बाढ़ से हमारी रक्षा करती हैं, जो किसी ज़माने में अपरिहार्य मौत की सज़ा साबित होते थे। ये उन राज़मर्रा की तकलीफ़ों और बीमारियों से भी हमारा बचाव करती हैं, जिन्हें पूर्व-आधुनिक लोगों ने जीवन का हिस्सा मानकर स्वीकार कर रखा था। सम्भावित आयु का औसत सारी दुनिया में पच्चीस और चालीस से बढ़कर सड़सठ वर्ष और विकसित दुनिया में अस्सी वर्ष तक पहुँच गया है।

मृत्यु को सबसे बुरी पराजय बाल मृत्यु के रणक्षेत्र में झेलनी पड़ी है। बीसवीं सदी के पहले तक कृषक समाजों के एक चौथाई से एक तिहाई के बीच की संख्या के बच्चे कभी

वयस्कता की उम्र तक नहीं पहुँच पाते थे। ज़्यादातर बच्चे डिप्थीरिया, खसरा और चेचक जैसी बचपन में होने वाली बीमारियों से मर जाते थे। सत्रहवीं सदी के इंग्लैंड में प्रति 1,000 में से 150 शिशु जन्म के पहले साल में ही मर जाते थे और कुल बच्चों में एक तिहाई पन्द्रह की उम्र तक पहुँचने के पहले मर जाते थे। आज 1,000 में से मात्र पाँच अँग्रेज़ शिशु ही अपने जन्म के पहले साल में मरते हैं, और 1,000 में मात्र सात बच्चे पन्द्रह की उम्र के पहले मरते हैं।

सांख्यिकी को एक तरफ़ रखकर कुछ क़िस्सों की मार्फ़त हम इन आँकड़ों के सम्पूर्ण प्रभाव को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं। एक अच्छा उदाहरण है इंग्लैंड के सम्राट एडवर्ड I (1237-1307) और उसकी पत्नी महारानी एलेनोर (1241-90) के परिवार का। उनके बच्चों को मध्ययुगीन यूरोप में सुलभ हो सकने योग्य श्रेष्ठ परिस्थितियाँ और सबसे अच्छा पोषक परिवेश मिला हुआ था। वे महलों में रहते थे, मनमानी मात्रा में खाते-पीते थे, उन्हें भरपूर मात्रा में गर्म कपड़े और भरपूर ईंधन से युक्त अंगीठियाँ सुलभ थीं, पीने को शुद्धतम उपलब्ध पानी था, नौकरों की फ़ौज और सबसे अच्छे चिकित्सक उपलब्ध थे। प्राप्त स्रोतों से मिली जानकारी के अनुसार महारानी ने 1255 और 1284 के बीच सोलह बच्चों को जन्म दिया था :

1. एक बेनाम बेटी, 1255 में जन्मी, जन्म लेते समय ही मर गई।
2. एक बेटी, कैथरीन, एक साल या तीन साल की उम्र में मर गई।
3. एक बेटी, जोआन, छह महीने की उम्र में मर गई।
4. एक बेटा, जॉन, पाँच साल की उम्र में मर गया।
5. एक बेटा, हेनरी, छह साल की उम्र में मर गया।
6. एक बेटी, एलेनोर, उन्तीस साल की उम्र में मरी।
7. एक बेनाम बेटी पाँच महीने की उम्र में मर गई।
8. एक बेटी, जोआन, पैंतीस साल की उम्र में मरी।
9. एक बेटा, अल्फ़ांसो, दो साल की उम्र में मर गया।
10. एक बेटी मार्ग्रेट, अट्ठावन साल की उम्र में मरी।
11. एक बेटी, बेरेंजेरिया, दो साल की उम्र में मर गई।
12. एक बेनाम बेटी जन्म लेने के कुछ ही समय बाद मर गई।
13. एक बेटी, मेरी, तिरेपन साल की उम्र में मरी।
14. एक बेनाम बेटा जन्म लेने के कुछ ही समय बाद मर गया।
15. एक बेटी, एलिज़ाबेथ, चौंतीस साल की उम्र में मरी।
16. एक बेटा, एडवर्ड।

सबसे छोटा बेटा एडवर्ड बचपन के उन ख़तरनाक वर्षों से बचकर निकल सका पहला लड़का था, और अपने पिता की मृत्यु के बाद वह सम्राट एडवर्ड II के रूप में राजसिंहासन पर पहुँचा। दूसरे शब्दों में, एलेनोर को एक अँग्रेज़ महारानी की बुनियादी मुहिम पूरी करने में, यानी अपने पति को एक मर्द वारिस मुहैया कराने में सोलह बार कोशिशें करनी पड़ीं। एडवर्ड II की माँ असाधारण धीरज और साहस रखने वाली स्त्री रही होगी। वैसी स्त्री नहीं, जिसे एडवर्ड ने अपनी बीवी के रूप में चुना था - फ़्रांस की इज़ाबेला। उसने एडवर्ड की उस वक़्त हत्या करवा दी थी, जब वह तैंतालीस वर्ष का था।

हमारी श्रेष्ठतम जानकारी के मुताबिक़, एलेनोर और एडवर्ड I स्वस्थ दम्पति थे और ऐसी कोई घातक आनुवंशिक बीमारी नहीं थी, जो उनकी मार्फ़त उनके बच्चों तक पहुँची हो। तब भी सोलह में से दस - 62 प्रतिशत - बच्चों की मृत्यु उनके बचपन में ही हो गई

थी। केवल छह बच्चे ही किसी तरह ग्यारह की उम्र पार कर पाए और मात्र तीन - 18 प्रतिशत - चालीस से ऊपर तक जी सके। इन जन्मों के अलावा पूरी सम्भावना है कि एलेनोर ने कई बार और गर्भ धारण किए हों, जिनका अन्त गर्भपात में हुआ हो। औसतन, एडवर्ड और एलेनोर ने हर तीन साल में एक बच्चा खोया और एक के बाद एक दस बच्चे खोए। आज के ज़माने के किसी अभिभावक के लिए इतनी बड़ी क्षति की कल्पना करना लगभग असम्भव है।

गिलगमेश परियोजना - अमरता की खोज - को पूरा होने में कितना समय लगेगा? सौ साल? पाँच सौ साल? एक हज़ार साल? जब हम यह याद करते हैं कि मानव शरीर के बारे में 1900 में हम कितना कम जानते थे और एक सदी के भीतर ही हमने कितना ज्ञान अर्जित कर लिया है, तो आशावादी होने की वजह दिखाई देती है। जेनेटिक इंजीनियरों ने हाल ही में काईऩोर्हेब्डीटीज एलिगेंस कीड़ों की औसत जीवन-सम्भावना को छह गुना बढ़ा दिया है। क्या वे यही काम होमो सेपियन्स के सन्दर्भ में भी कर सकते हैं? नैनोटेक्नोलॉजी के विशेषज्ञ लाखों ऐसे नैनो-रोबोट्स से निर्मित एक बाइओनिक इम्यून सिस्टम को विकसित करने में लगे हैं, जो हमारे शरीरों में रहा करेंगे, अवरुद्ध रक्त नलिकाओं को खोलेंगे, वायरसों और बैक्टीरियाओं से लड़ेंगे, कैन्सर-कोशिकाओं को नष्ट करेंगे और उम्र बढ़ने की प्रक्रिया तक को उलट देंगे। थोड़े-से गम्भीर अध्येताओं का कहना है कि 2050 तक कुछ मनुष्य अ-नश्वर (अ-मॉर्टल) बन जाएँगे (अमर 'इम्मॉर्टल' नहीं, क्योंकि किसी दुर्घटना की वजह से वे तब भी मर सकेंगे, लेकिन अ-नश्वर, जिसका मतलब है कि किसी जानलेवा आघात के अभाव में उनका जीवन अनन्त काल तक खिंचता चला जाएगा)।

गिलगमेश परियोजना कामयाब हो या ना हो, लेकिन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में यह देखना बहुत दिलचस्प है कि आधुनिक इतिहास के परवर्ती दौर के ज़्यादा मज़हब और विचारधाराएँ मृत्यु और मरणोपरान्त जीवन को पहले ही समीकरण से बाहर निकाल चुके हैं। अठारहवीं सदी तक मज़हब मृत्यु और उसके परिणाम को जीवन के अर्थ के सन्दर्भ में केन्द्रीय महत्त्व देते थे। अठारहवीं सदी की शुरुआत के साथ मज़हबों और उदारतावाद, समाजवाद और नारीवाद जैसी विचारधाराओं ने मरणोपरान्त जीवन में सारी दिलचस्पियाँ खो दीं। एक साम्यवादी का उसके मरने के बाद ठीक-ठीक क्या होता है? पूँजीपति का क्या होता है? एक नारीवादी का क्या होता है? इन सवालों के जवाब मार्क्स, एडम स्मिथ या सिमोन द बोवा के लेखन में खोजना व्यर्थ है। एकमात्र विचारधारा, जो अभी भी मृत्यु को केन्द्रीय भूमिका प्रदान करती है, वह है राष्ट्रवाद। अपने सबसे काव्यात्मक और हताश क्षणों में राष्ट्रवाद आश्वासन देता है कि जो भी कोई राष्ट्र के हित में जान का बलिदान करेगा, वह उसकी सामूहिक स्मृति में हमेशा ज़िन्दा रहेगा, लेकिन यह आश्वासन इतना धुँधला है कि जो सबसे ज़्यादा राष्ट्रवादी हैं, उन तक को भी इसका मतलब समझ में नहीं आता।

विज्ञान पर धन वर्षा

हम एक तकनीकी युग में रह रहे हैं। बहुत सारे लोग यह माने हुए हैं कि विज्ञान और टेक्नोलॉजी के पास हमारी सारी समस्याओं के समाधान मौजूद हैं। हमें सिर्फ़ वैज्ञानिकों और तकनीशियनों को अपना काम करने देना चाहिए, और वे पृथ्वी पर स्वर्ग का निर्माण कर देंगे, लेकिन विज्ञान कोई ऐसा उद्यम नहीं है, जो बाक़ी सारी इंसानी गतिविधियों के ऊपर किसी श्रेष्ठ नैतिक या आध्यात्मिक स्तर पर खड़ा हो। हमारी संस्कृति के तमाम दूसरे अंगों की ही तरह इसका रूपाकार भी आर्थिक, राजनैतिक और मज़हबी हितों से तय होता है।

विज्ञान बहुत ही ख़र्चीला मामला है। इंसान के प्रतिरक्षी तन्त्र (इम्यून सिस्टम) को समझने की कोशिश में लगे एक जीव-विज्ञानी को प्रयोगशाला सहायकों, इलेक्ट्रीशियनों, प्लम्बरों और क्लीनरों की ज़रूरत तो होती ही है, प्रयोगशालाओं, टेस्ट ट्यूबों, रसायनों और इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपों की भी ज़रूरत होती है। क्रेडिट मार्केट्स का मॉडल तैयार करने की कोशिश में लगे एक अर्थशास्त्री को कम्प्यूटर ख़रीदना, विशाल डेटा बैंक खड़ा करना और जटिल क़िस्म के डेटा-प्रोसेसिंग प्रोग्राम विकसित करना अनिवार्य होता है। आदिम शिकारी-भोजन-संग्रहकर्ताओं के व्यवहार को समझने के इच्छुक पुरातत्त्वविद को दूर देशों की यात्राएँ करना, प्राचीन खण्डहरों की खुदाई करना और जीवाश्मीकृत अस्थियों और वस्तुओं का काल निर्धारित करना अनिवार्य होता है। इस सब में पैसा लगता है।

पिछले 500 सालों के दौरान वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिए ज़्यादातर सरकारों, व्यापारिक घरानों, फ़ाउंडेशनों और निजी दानदाताओं द्वारा अरबों डॉलर की आपूर्ति जारी रखने की तत्परता की बदौलत आधुनिक विज्ञान ने विस्मयकारी उपलब्धियाँ हासिल की हैं। इन लाखों डॉलरों ने ब्रह्माण्ड की रूपरेखा तैयार करने, ग्रहों के मानचित्र तैयार करने और प्राणियों के साम्राज्य का कैटलॉग तैयार करने की दिशा में उससे कई गुना ज़्यादा काम किया है, जितना गैलिलियो गैलिली, क्रिस्टोफ़र कोलम्बस और चार्ल्स डार्विन ने किया था। अगर ये ख़ास विलक्षण प्रतिभाएँ कभी पैदा ना हुई होतीं, तो इनकी अन्तर्दृष्टियाँ शायद दूसरे लोगों के माध्यम से सामने आई होतीं, लेकिन अगर समुचित निधियाँ उपलब्ध नहीं रही होतीं, तो कोई विलक्षण बौद्धिक प्रतिभा इसकी भरपाई ना कर सकी होती। उदाहरण के लिए, अगर डार्विन कभी पैदा ना हुआ होता, तो आज हम विकासवाद के सिद्धान्त का श्रेय अल्फ्रेड रसेल वालेस को देते, जो डार्विन से स्वतन्त्र रूप में प्राकृतिक वरण के रास्ते विकास-प्रक्रिया का विचार लेकर आया था, लेकिन अगर यूरोपीय शक्तियों ने सारी दुनिया में भौगालिक, जीववैज्ञानिक और वनस्पतिशास्त्रीय अनुसन्धानों में धन ना लगाया होता, तो डार्विन या वालेस में से किसी को भी विकासवाद का सिद्धान्त गढ़ने के लिए आवश्यक अनुभवपरक आँकड़े उपलब्ध ना होते। पूरी सम्भावना है कि उन्होंने ऐसा सिद्धान्त गढ़ने की कोशिश ही ना की होती।

क्या वजह है कि सरकारों और व्यापारिक घरानों की तिज़ोरियों से ये अरबों डॉलर बहकर प्रयोगशालाओं और विश्वविद्यालयों में पहुँचे? अकादमिक समुदाय में ऐसे बहुत-से लोग हैं, जो इतने भोले हैं कि वे शुद्ध विज्ञान में विश्वास करते हैं। उनका मानना है कि सरकार और व्यापारिक घराने उन्हें उनकी मनमर्ज़ी के मुताबिक़ अनुसन्धान करने के लिए निःस्वार्थ भाव से पैसा देते हैं, लेकिन यह वैज्ञानिक फ़ंडिंग की असल हकीक़तों को शायद

ही बयान करती हो।

ज़्यादातर वैज्ञानिक अध्ययनों को निधि इसलिए उपलब्ध कराई जाती है क्योंकि किसी को यह विश्वास होता है कि ये अध्ययन किन्हीं राजनैतिक, आर्थिक या मज़हबी लक्ष्यों को हासिल करने में मदद कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, सोलहवीं सदी में सम्राटों और बैंकरों ने सारी दुनिया में भौगोलिक खोज-अभियानों को धन मुहैया कराने के लिए अपार संसाधनों के रास्ते खोल दिये थे, लेकिन बाल मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए वे एक पैसा भी नहीं देते थे। ऐसा इसलिए था कि सम्राटों और बैंकरों का अनुमान था कि नए भौगोलिक ज्ञान की खोज उन्हें नए मुल्क़ों को जीतने और व्यापारिक साम्राज्य खड़े करने में सक्षम बनाएगी, जबकि बाल मनोविज्ञान को समझने में उन्हें कोई लाभ दिखाई नहीं देता था।

1940 में अमेरिका और सोवियत यूनियन की सरकारों ने जलमग्न पुरातत्त्व (अंडरवाटर ऑर्कियोलॉजी) के बजाय परमाणु भौतिकी के अध्ययन के लिए विपुल संसाधनों के रास्ते खोल दिए थे। उनका अनुमान था कि परमाणु भौतिकी का अध्ययन उन्हें परमाणु हथियार विकसित करने में सक्षम बनाएगा, जबकि जलमग्न पुरातत्त्व से युद्ध जीतने में मदद मिलने की कोई सम्भावना नहीं थी। वैज्ञानिक ख़ुद उन राजनैतिक, आर्थिक और मज़हबी स्वार्थों के प्रति सजग नहीं होते, जो पैसे के प्रवाह को नियन्त्रित करते हैं।

ज़्यादातर वैज्ञानिक तो दरअसल विशुद्ध बौद्धिक जिज्ञासा के कारण काम करते हैं, लेकिन ऐसा बहुत कम होता है कि वैज्ञानिक कार्यसूची को वैज्ञानिक तय करते हों।

यहाँ तक कि अगर हम राजनैतिक, आर्थिक और मज़हबी स्वार्थों से अप्रभावित विशुद्ध विज्ञान में पैसा लगाना भी चाहें, तो ये शायद असम्भव होगा। हमारे संसाधन भी तो आख़िर सीमित हैं। अमेरिकी कांग्रेस के किसी सदस्य से बुनियादी अनुसन्धान के लिए नेशनल साइंस फ़ाउंडेशन को अतिरिक्त दस लाख डॉलर देने को कहिए, और वह उचित ही यह सवाल पूछेगा कि क्या उस पैसे का बेहतर उपयोग यह नहीं होगा कि उसे अध्यापकों के प्रशिक्षण में लगाया जाए या उसके जिले की एक मुश्किलों में फँसी फ़ैक्ट्री के लिए ज़रूरी टैक्स राहत देने में लगाया जाए। ‘ज़्यादा महत्त्वपूर्ण क्या है’? और ‘और बेहतर क्या है’? और ये वैज्ञानिक सवाल नहीं हैं। विज्ञान यह समझा सकता है कि दुनिया में किस चीज़ का अस्तित्व है, चीज़ें किस तरह काम करती हैं और भविष्य में क्या हो सकता है। स्वभावतः यह जानने की उसकी कोई महत्त्वाकांक्षाएँ नहीं होतीं कि भविष्य में क्या होना चाहिए। सिर्फ़ मज़हब और विचारधाराएँ ही इस तरह के सवालों के जवाब तलाशते हैं।

ज़रा इस असमंजस पर विचार करें : एक ही विभाग के, एक ही तरह की पेशेवर क़ाबिलियतों वाले दो जीव विज्ञानियों ने अपनी ताज़ा अनुसन्धान परियोजनाओं के वास्ते दस लाख डॉलर मंज़ूर किए जाने के लिए आवेदन किया है। प्रोफ़ेसर स्लगहॉर्न उस बीमारी का अध्ययन करना चाहते हैं, जिसका संक्रमण गायों के थनों में होता है, जिसके कारण दूध के उत्पादन में 10 प्रतिशत की कमी आ रही है। प्रोफ़ेसर स्प्राउट इस बात का अध्ययन करना चाहती हैं कि गायों से उनके बछड़ों को अलग कर दिए जाने पर क्या गायों को मानसिक यन्त्रणा झेलनी पड़ती है। अगर यह मान लें कि उपलब्ध पैसे की मात्रा

सीमित है और दोनों अनुसन्धान परियोजनाओं को धन मुहैया कराना असम्भव है, तो किस परियोजना के लिए पैसा दिया जाए?

इस सवाल का कोई वैज्ञानिक जवाब नहीं है। इसके केवल राजनैतिक, आर्थिक और मज़हबी जवाब हैं। आज की दुनिया में यह ज़ाहिर-सी बात है कि स्लगहॉर्न को पैसा मिलने की ज़्यादा सम्भावनाएँ हैं। इसलिए नहीं कि थनों की बीमारी वैज्ञानिक दृष्टि से गाय की मनःस्थिति के मुक़ाबले ज़्यादा दिलचस्प है, बल्कि इसलिए कि डेरी उद्योग का राजनैतिक और आर्थिक रुतबा पशुओं के हक़ों से जुड़े जनमत से कहीं ज़्यादा है। डेरी उद्योग के इस अनुसन्धान से लाभान्वित होने की सम्भावना है।

शायद एक सख़्त हिन्दू समाज, जहाँ गायें पूज्य मानी जाती हैं या पशुओं के हक़ों के लिए प्रतिबद्ध किसी समाज में प्रोफ़ेसर स्प्राउट के लिए बेहतर गुंजाइश हो सकती है, लेकिन अगर वे एक ऐसे समाज में रहती हैं, जो दूध की वाणिज्यिक सम्भावनाओं और अपने इंसानी नागरिकों के स्वास्थ्य को गायों के जज़्बातों से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण मानता है, तो बेहतर होगा कि वे अपने अनुसन्धान का प्रस्ताव इस तरह लिखें कि वह इन धारणाओं के अनुरूप बैठता हो। उदाहरण के लिए, वे इस तरह लिख सकती हैं कि "उदासी दूध के उत्पादन में कमी लाती है। अगर हम डेरी की गायों की मानसिक दुनिया को समझ लें, तो हम ऐसी साइक्याट्रिक दवाएँ तैयार कर सकते हैं, जो गायों की मनःस्थिति में सुधार ला सकती हों और इस तरह जिसकी वजह से दूध के उत्पादन में 10 प्रतिशत तक की बढ़ोत्तरी हो सकेगी। मेरा आकलन है कि गायों की साइक्याट्रिक दवाओं के लिए $2500 मिलियन का सालाना वैश्विक बाज़ार उपलब्ध है"। विज्ञान अपनी स्वयं की प्राथमिकताओं को तय करने में असमर्थ है। वह इस बात का निर्धारण करने में असमर्थ कि वह अपनी खोजों के साथ क्या करे। उदाहरण के लिए, पूरी तरह से वैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह बात अस्पष्ट है कि जेनेटिक्स की हमारी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई समझ का हमें क्या उपयोग करना चाहिए। इस ज्ञान का उपयोग हमें कैन्सर की चिकित्सा के लिए करना चाहिए, जेनेटिक परिवर्तन से निर्मित सुपरमैन की प्रजाति गढ़ने में करना चाहिए, या बड़े-बड़े थनों वाली डेरी गायें तैयार करने में करना चाहिए? ज़ाहिर है कि एक उदारतावादी सरकार, एक साम्यवादी सरकार, एक नाज़ी सरकार और एक पूँजीवादी औद्योगिक कॉर्पोरेशन इस एक ही वैज्ञानिक खोज का इस्तेमाल पूरी तरह से अलग-अलग उद्देश्यों के लिए करेंगे, और किसी एक उपयोग को दूसरे उपयोगों पर वरीयता देने की कोई वैज्ञानिक वजह नहीं है। संक्षेप में, वैज्ञानिक अनुसन्धान किसी मज़हब या विचारधारा के साथ गठबन्धन करके ही फल-फूल सकता है। अनुसन्धान की लागत का औचित्य विचारधारा तय करती है। बदले में, यह विचारधारा वैज्ञानिक कार्यसूची पर प्रभाव डालती है और यह तय करती है कि उसकी खोज का क्या इस्तेमाल किया जाए। इसलिए यह समझने के लिए कि मनुष्य - असंख्य वैकल्पिक गन्तव्यों में से - अलामोगोर्डो और चन्द्रमा तक किस तरह पहुँचा है, भौतिकीविदों, जीवविज्ञानियों और समाजशास्त्रियों की उपलब्धियों का सर्वेक्षण भर काफ़ी नहीं है। इसके लिए हमें उन विचारधारात्मक, राजनैतिक और आर्थिक शक्तियों को भी लेखे में लेना ज़रूरी है, जिन्होंने भौतिकी, जीवविज्ञान और समाजविज्ञान की शक्ल गढ़ते हुए उन्हें कुछ ख़ास दिशाओं की ओर धकेला है और दूसरी दिशाओं को अनदेखा किया है।

दो शक्तियाँ ख़ास तौर से ऐसी हैं, जिनकी ओर हमें ध्यान देना आवश्यक है : साम्राज्यवाद और पूँजीवाद। विज्ञान, साम्राज्य और पूँजी का प्रतिक्रिया-चक्र (फ़ीडबैक लूप) पिछले 500 सालों में तर्कसंगत ढंग से इतिहास का मुख्य इंजन रहा है। आगामी अध्याय इसी इंजन की कार्यप्रणाली का विश्लेषण करते हैं। सबसे पहले हम इस ओर नज़र डालेंगे कि विज्ञान और साम्राज्य के इन दो टर्बाइनों को किस तरह एक दूसरे से जोड़ा गया, और फिर यह समझेंगे कि किस तरह दोनों को पूँजीवाद के मनी पम्प के स्तर तक ऊपर उठाया गया।

15

विज्ञान और साम्राज्य का गठबन्धन

सूर्य पृथ्वी से कितनी दूरी पर है? यह वो सवाल है, जो आधुनिक युग के शुरुआती दौर के अनेक खगोलविदों की जिज्ञासा का विषय हुआ करता था, ख़ास तौर से तब के बाद से जब कोपरनिकस ने यह प्रतिपादित कर दिया था कि सृष्टि के केन्द्र में पृथ्वी नहीं, बल्कि सूर्य है। अनेक खगोलविदों और गणितज्ञों ने इस दूरी की गणना करने की कोशिश की, लेकिन उनकी पद्धतियों ने व्यापक तौर पर अलग-अलग नतीज़े पेश किए। अन्ततः इसे नापने का एक विश्वसनीय तरीक़ा अठारहवीं सदी में उपलब्ध कराया गया। हर कुछ वर्षों के अन्तराल से शुक्र ग्रह सीधा सूर्य और पृथ्वी के बीच से होकर गुज़रता है। इसके गुज़रने की अवधि में उस वक़्त फ़र्क़ पैदा होता है, जब इसे पृथ्वी की सतह के अलग-अलग बिन्दुओं से देखा जाता है। इसकी वजह उस कोण का मामूली-सा फ़र्क़ होता है, जिस कोण से उसे देखा गया होता है। अगर विभिन्न महाद्वीपों से उसके गुज़रने की एक ही प्रक्रिया के कई पर्यवेक्षण किए जाते, तो सूर्य से हमारी ठीक-ठीक दूरी की गणना के लिए सरल-सी त्रिकोणमिति (ट्रिग्नोमेट्री) भर की ज़रूरत थी।

तब खगोलविदों ने पूर्वानुमान लगाया कि शुक्र अगली बार 1761 और 1769 में सूर्य और पृथ्वी के बीच से होकर गुज़रेगा। इसलिए गुज़रने की इस प्रक्रिया का यथासम्भव ज़्यादा से ज़्यादा अलग-अलग बिन्दुओं से अवलोकन करने के लिए यूरोप से दुनिया के चार कोनों में अभियान-दल भेजे गए। 1761 में वैज्ञानिकों ने गुज़रने की इस प्रक्रिया का पर्यवेक्षण साइबेरिया, उत्तरी अमेरिका, मैडागास्कर और दक्षिण अफ़्रीका से किया। जब 1769 का गुज़रने की प्रक्रिया का वक़्त क़रीब आया, तो यूरोप के वैज्ञानिक समुदाय ने तब तक के सबसे बड़े उद्यम की योजना बनाई और वैज्ञानिकों को सुदूर कनाडा और कैलिफ़ोर्निया (जो तब एक बीहड़ था) तक भेजा गया। द रॉयल सोसायटी ऑफ़ लंदन फ़ॉर द इम्प्रूवमेंट ऑफ़ नेचुरल नॉलेज ने निष्कर्ष निकाला कि इतना काफ़ी नहीं है।

एकदम सटीक परिणाम हासिल करने के लिए किसी खगोलविद को दक्षिण-पश्चिम प्रशान्त महासागर तक भेजना अनिवार्य था।

रॉयल सोसायटी ने एक प्रख्यात खगोलविद चार्ल्स ग्रीन को टहीटी भेजने का फ़ैसला किया, और इसके लिए आवश्यक उद्यम तथा पैसे के मामले में कोई कसर नहीं रख छोड़ी, लेकिन चूँकि वह इतने ख़र्चीले अभियान पर पैसे लगा रही थी, इस अभियान का उपयोग मात्र एक खगोलीय पर्यवेक्षण के लिए करना कोई ख़ास मायने नहीं रखता था। इसलिए अलग-अलग अनुशासनों से जुड़े आठ अन्य वैज्ञानिकों के एक दल को भी ग्रीन के साथ भेजा गया, जिस दल का नेतृत्व वनस्पति-विज्ञानी जोसेफ़ बैंक्स और डैनियल सोलेंडर ने किया। इस दल में कुछ कलाकारों को भी शरीक़ किया गया, जिन्हें उन नए स्थलों, वनस्पतियों, जीव-जन्तुओं और लोगों के चित्र बनाकर लाने की ज़िम्मेदारी सौंपी गई, जिनसे इन वैज्ञानिकों की मुलाक़ात निश्चित रूप से होनी थी। बैंक्स और रॉयल सोसायटी के लिए जितने उन्नत क़िस्म के वैज्ञानिक उपकरण ख़रीद पाना सम्भव था, उतने उन्नत उपकरणों से इस अभियान-दल को लैस कर इसकी कमान कैप्टन जेम्स कुक को सौंपी गई, जो एक अनुभवी नाविक होने के साथ-साथ दक्ष भूगोलविद और नृवंश विज्ञानी भी था।

अभियान-दल 1768 में इंग्लैंड से रवाना हुआ, इसने 1769 में टहीटी से शुक्र के गुज़रने की प्रक्रिया का पर्यवेक्षण किया, प्रशान्त महासागर के अनेक द्वीपों की खोज की, ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड की यात्रा की और 1971 में इंग्लैंड लौट आया। ये अपने साथ बहुत बड़ी तादाद में खगोलीय, भौगोलिक, मौसमवैज्ञानिक, वानस्पतिक, जीववैज्ञानिक और नृवंश वैज्ञानिक आँकड़े लेकर आया। इसकी खोजों ने अनेक अनुशासनों में महत्त्वपूर्ण योगदान किया, दक्षिण प्रशान्त महासागर के विस्मयकारी क़िस्सों ने यूरोपीय लोगों की कल्पना को भड़काया और प्रकृतिविज्ञानियों तथा खगोलविदों की भावी पीढ़ियों को प्रेरणा दी।

कुक अभियान-दल से लाभान्वित होने वाला एक क्षेत्र चिकित्सा का था। उस ज़माने में सुदूर तटों के सफ़र पर निकलने वाले जहाज़ों को मालूम होता था कि उनके चालक दल के आधे से ज़्यादा सदस्य सफ़र के दौरान मर जाएँगे। इन मौतों की वजह नाराज़ स्थानीय निवासी, दुश्मनों के युद्धपोत या घर की याद नहीं होती थी। वजह थी वह रहस्यमय बीमारी, जिसे स्कर्वी के नाम से जाना जाता था। इस बीमारी के शिकार लोग सुस्त और उदास हो जाया करते थे और उनके मसूड़ों तथा दूसरे कोमल ऊतकों से ख़ून आने लगता था। जैसे-जैसे बीमारी बढ़ती जाती थी, उनके दाँत झड़ने लगते थे, उनके शरीर में फोड़े निकलने लगते थे, वे हरारत और पीलिया से ग्रस्त रहने लगते थे, और अपने अंगों पर से नियन्त्रण खोने लगते थे। अनुमान है कि सोलहवीं से अठारहवीं सदी के बीच स्कर्वी ने लगभग बीस लाख नाविकों की जान ले ली थी। इस बीमारी की वजह कोई नहीं जानता था और किसी भी तरह की चिकित्सा कर ली जाए, लेकिन नाविकों का बड़ी तादाद में मरना जारी रहता था। क्रान्तिकारी परिवर्तन आया 1747 में, जब एक अँग्रेज़ चिकित्सक जेम्स लिंड ने इस बीमारी के शिकार नाविकों पर एक नियन्त्रित प्रयोग किया। उसने उन्हें कई समूहों में बाँटा और हर समूह का अलग-अलग तरह से उपचार किया। एक समूह को नीबू-सन्तरा जैसे खटरस फल खाने के निर्देश दिए, जो स्कर्वी की आम

चिकित्सा मानी जाती थी। इस समूह के लोग जल्दी ही चंगे हो गए। लिंड नहीं जानता था कि इन खटरस फलों में वह कौन-सी चीज़ थी, जिसकी कमी इन नाविकों के शरीर में होती थी, लेकिन हम जानते हैं कि यह विटामिन सी है। उस ज़माने के आम जहाज़ी भोजन में उपलब्ध चीज़ों में उल्लेखनीय रूप से इस अनिवार्य पोषक तत्त्व का अभाव हुआ करता था। इन लम्बी यात्राओं के दौरान नागरिक आमतौर से बिस्किटों और सूखे गोमांस पर गुज़ारा करते थे और फल या सब्ज़ियाँ लगभग नहीं खाते थे।

शाही नौसेना (रॉयल नेवी) को लिंड के प्रयोग पर यक़ीन नहीं था, लेकिन जेम्स कुक को था। उसने इस डॉक्टर को सही साबित करने का निश्चय कर लिया। उसने अपनी नाव में बड़ी तादाद में खट्टी गोभी लदवाई और अपने नाविकों को आदेश दिया कि जब भी अभियान-दल किसी तट पर उतरे, तो सारे नाविक भरपूर फल और सब्ज़ियाँ खाएँ। कुक का एक भी नाविक स्कर्वी का शिकार होकर नहीं मरा। बाद के दशकों में दुनिया की सारी नौसेनाओं ने कुक के इस जहाज़ी भोजन को अपनाया और इस तरह असंख्य नाविकों और समुद्री यात्रियों की जानें बच सकीं।

लेकिन कुक के अभियान का एक और भी नतीज़ा निकला, जो बहुत कम हितकारी था। कुक सिर्फ़ एक अनुभवी नाविक और भूगोलविद ही नहीं था, बल्कि नौसेना का एक अधिकारी भी था। रॉयल सोसायटी ने इस अभियान के एक बड़े हिस्से के लिए धन मुहैया कराया था, लेकिन स्वयं जहाज़ शाही नौसेना द्वारा उपलब्ध कराया गया था। नौसेना ने जहाज़ पर हथियारों से सुसज्जित पचासी नाविक और नौसैनिक भी नियुक्त किए थे और जहाज़ को तोपों, बन्दूकों, बारूद और अन्य हथियारों से लैस किया था। इस अभियान-दल द्वारा एकत्र की गई ज़्यादातर जानकारी - ख़ास तौर से खगोलवैज्ञानिक, भौगालिक, मौसमवैज्ञानिक और मानविकीय सूचनाओं - का स्पष्ट राजनैतिक और सैन्य महत्त्व था। स्कर्वी के कारगर इलाज़ की खोज ने दुनिया के महासागरों पर अँग्रेज़ों के नियन्त्रण और दुनिया के दूसरी तरफ़ के हिस्से में अँग्रेज़ी सेनाएँ भेजने में बहुत बड़ा योगदान किया। कुक ने ब्रिटेन के लिए उनमें से अनेक द्वीप और मुल्क़, ख़ास तौर से ऑस्ट्रेलिया उपलब्ध कराए, जिनकी उसने ‘खोज’ की थी। कुक अभियान ने दक्षिण-पश्चिम प्रशान्त महासागर पर अँग्रेज़ों के क़ब्ज़े के लिए, ऑस्ट्रेलिया, तस्मानिया और न्यूज़ीलैंड की जीत के लिए, इन नए उपनिवेशों में लाखों यूरोपीय लोगों को बसाने के लिए और इन उपनिवेशों की मूल संस्कृतियों और वहाँ की अधिकांश स्थानीय आबादियों के विनाश के लिए नींव रखी।

कुक अभियान के बाद की सदी में ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड की ज़्यादातर उपजाऊ ज़मीनें इन यूरोपीय उपनिवेशियों द्वारा उनके पिछले निवासियों से छीन ली गईं। स्थानीय आबादी 90 प्रतिशत तक घट गई और जो लोग बचे रह गए, उन्हें नस्लवादी अत्याचार की कठोर शासन-व्यवस्था के अधीन कर लिया गया। ऑस्ट्रेलिया के मूल निवासियों और न्यूज़ीलैंड के माओरिसों के लिए कुक अभियान एक ऐसी तबाही की शुरुआत थी, जिससे वे कभी नहीं उबर सके।

इससे भी ज़्यादातर बदतर नियति तस्मानिया के मूल निवासियों की हुई। अपने वैभवशाली एकान्त में 10,000 वर्षों तक जीवित बने रहने के बाद वे कुक के आगमन की एक सदी के भीतर ही पूरी तरह नेस्तनाबूत हो गए - उनमें से एक भी पुरुष, स्त्री और बच्चा बचा नहीं रह सका। यूरोपीय आबादियों ने पहले उन्हें द्वीप के सबसे समृद्ध हिस्सों

से खदेड़ा, और फिर, बचे-खुचे उजाड़ों तक को हथियाने के लालच में उन्हें सिलसिलेवार तरीक़े से ढूँढ़-ढूँढ़ कर मार डाला। मुट्ठी भर बचे लोगों को खदेड़कर एक ईसाई बन्दी-शिविर (इवेन्जेलिकल कंसंट्रेशन कैम्प) ले जाया गया, जहाँ नेकनीयत, लेकिन सर्वथा अनुदार मिशनरियों ने उन्हें आधुनिक दुनिया के तौर-तरीक़ों में दीक्षित करने की कोशिश की। तस्मानियों को पढ़ना और लिखना सिखाया गया, उन्हें ईसाइयत और विभिन्न क़िस्म की 'उत्पादक दक्षताओं', जैसे कि कपड़े सिलना और खेती करना का प्रशिक्षण दिया गया, लेकिन उन्होंने सीखने से इनकार कर दिया। वे और भी अवसादग्रस्त होते गए, उन्होंने बच्चे पैदा करना बन्द कर दिया, जीवन के प्रति उनकी सारी दिलचस्पियाँ समाप्त हो गईं और अन्ततः उन्होंने विज्ञान और प्रगति से निकल भागने का रास्ता चुना - मौत।

आह! विज्ञान और प्रगति ने मरने के बाद भी उनका पीछा नहीं छोड़ा। अन्तिम तस्मानियों के शव विज्ञान के नाम पर मानवशास्त्रियों और संग्राहकों द्वारा ज़ब्त कर लिए जाते। उनकी चीरफाड़ की जाती, उन्हें नापा-तौला जाता और विद्वत्तापूर्ण लेखों में उनका विश्लेषण किया जाता। इसके बाद उनकी खोपड़ियाँ और कंकाल संग्रहालयों और मानविकीय संग्रहों में प्रदर्शित की जातीं। 1976 में जाकर ही तस्मानियन म्यूज़ियम ने अन्तिम मूल तस्मानियाई ट्रुगानिनी का कंकाल दफ़नाए जाने के लिए सौंपा था, जिसकी मृत्यु सौ साल पहले हुई थी। इंग्लिश रॉयल कॉलेज ऑफ़ सर्जन्स उसकी चमड़ी और बालों के नमूनों को 2002 तक रखे रहा।

कुक का जहाज़ सैन्य बल द्वारा संरक्षित एक वैज्ञानिक अभियान था या एक ऐसा सैन्य अभियान था, जिसमें थोड़े-से वैज्ञानिक पुछल्ले की तरह शामिल थे? यह उसी तरह का सवाल है कि आपका पेट्रोल टैंक आधा ख़ाली है या आधा भरा है। वह अभियान दोनों ही तरह का था। वैज्ञानिक क्रान्ति और आधुनिक साम्राज्यवाद अविभाज्य थे। कैप्टन जेम्स कुक और वनस्पतिविज्ञानी जोसेफ़ बैंक्स जैसे लोग विज्ञान और साम्राज्यवाद के बीच शायद ही अन्तर कर सकते थे। ना ही यह अन्तर बदक़िस्मत ट्रुगानिनी कर सकते थे।

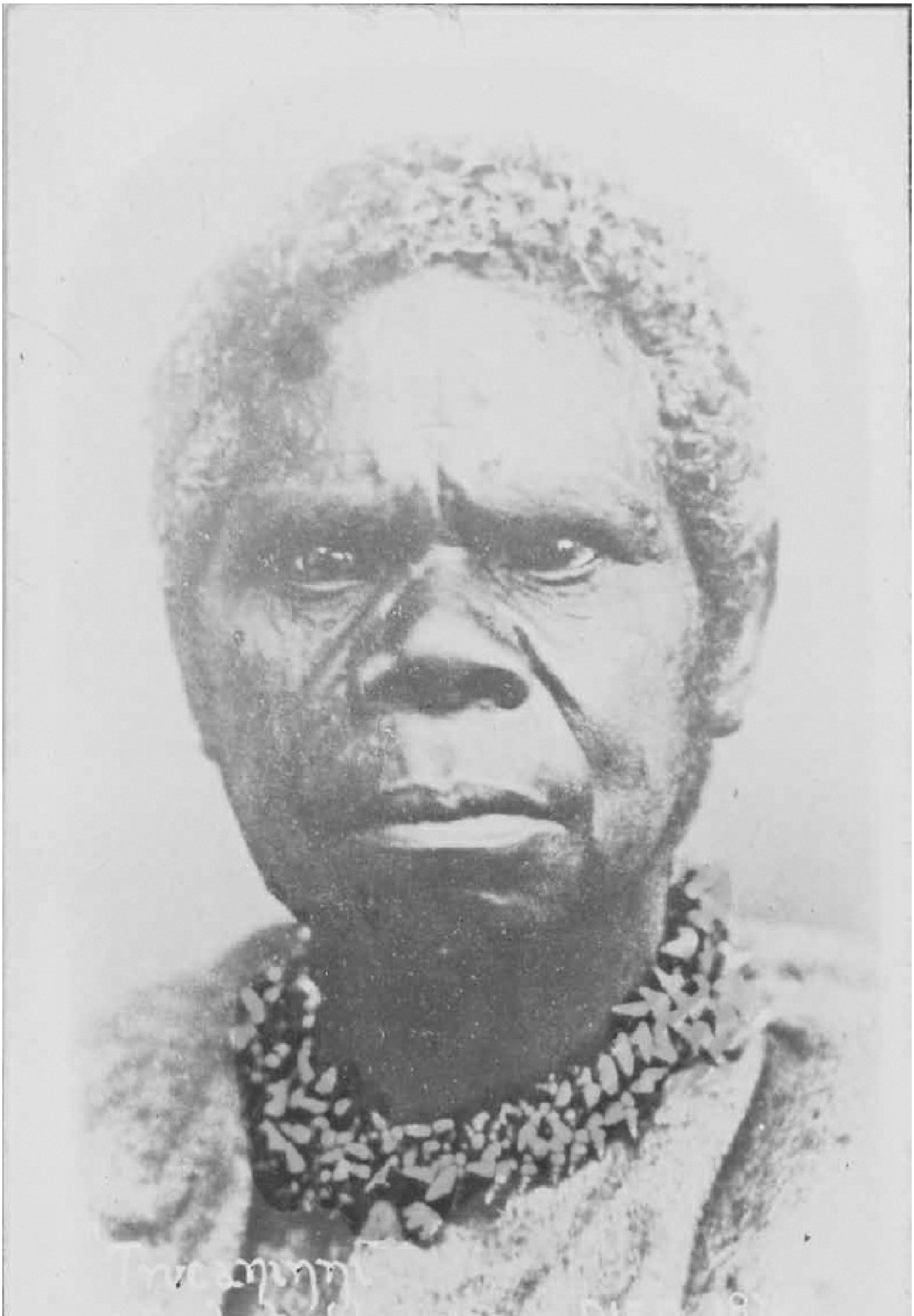

35. ट्रुगानिनी, अन्तिम तस्मानियाई मूल निवासी।

यूरोप क्यों?

उत्तरी अटलांटिक के विशाल द्वीप के लोगों ने ऑस्ट्रेलिया के दक्षिण के एक विशाल द्वीप को जीत लिया, यह इतिहास की एक अत्यन्त विचित्र घटना है। कुक के अभियान के पहले तक ब्रिटिश टापू और सामान्य तौर पर पश्चिमी यूरोप भूमध्यसागरीय दुनिया के सुदूर पिछड़े हुए क्षेत्रों से ज़्यादा कुछ नहीं थे। यहाँ कभी ऐसा कुछ नहीं हुआ था जिसे महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता। यहाँ तक कि पूर्वआधुनिक युग के एकमात्र महत्त्वपूर्ण यूरोपीय साम्राज्य रोमन साम्राज्य ने भी अपनी ज़्यादातर सम्पत्ति अपने उत्तरी अफ़्रीकी, बाल्कन और मध्य पूर्वी प्रान्तों से हासिल की थी। रोम के पश्चिमी यूरोपीय प्रान्त एक दरिद्र वाइल्ड वेस्ट थे, जो खनिजों और ग़ुलामों के सिवा और कोई ख़ास योगदान नहीं करते थे। उत्तरी यूरोप इतना उजाड़ और बर्बर था कि वह जीतने लायक़ भी नहीं था।

सिर्फ़ पन्द्रहवीं सदी के अन्त में जाकर ही यूरोप महत्त्वपूर्ण सैन्य, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक घटनाओं का ‘हॉटहाउस’ बना था। 1500 और 1750 के बीच पश्चिमी यूरोप ने गति पकड़ी और ‘बाहरी दुनिया’, यानी दो अमेरिकी महाद्वीपों और महासागरों का मालिक बना। तब भी यूरोप का एशिया की महाशक्तियों के साथ कोई मुक़ाबला नहीं था। यूरोपीय लोग अमेरिका को जीत सके और समुद्र पर प्रभुत्व हासिल कर सके तो, मुख्यतः इसलिए कि एशियाई शक्तियों ने उनमें बहुत कम दिलचस्पी दिखाई थी। शुरुआती आधुनिक युग भूमध्यसागर में ऑटोमन साम्राज्य के लिए, फ़ारस में साफ़विड साम्राज्य के लिए, हिन्दुस्तान में मुग़ल साम्राज्य के लिए, और चीनी मिंग तथा च्निंग राजवंशों के लिए स्वर्ण युग हुआ करता था। इन्होंने अपने प्रभुत्व-क्षेत्र का ख़ासा विस्तार किया था और अभूतपूर्व जनसांख्यकीय और आर्थिक विकास किया था। 1775 में एशिया दुनिया की अर्थव्यवस्था के 80 प्रतिशत की शगीदार हुआ करती थी। अकेले हिन्दुस्तान और चीन की संयुक्त अर्थव्यवस्थाएँ वैश्विक उत्पादन के दो-तिहाई हिस्से का प्रतिनिधित्व करती थीं। इनके मुक़ाबले, यूरोप एक आर्थिक बौना था।

शक्ति का वैश्विक केन्द्र खिसककर यूरोप में पहुँचा 1750 और 1850 के बीच, जब यूरोपीय लोगों ने एक के बाद एक युद्धों में एशियाई शक्तियों को नीचा दिखाया और एशिया के व्यापक हिस्सों को जीत लिया। 1900 तक आते-आते यूरोपीय लोगों ने विश्व की अर्थव्यवस्था और इसके ज़्यादातर इलाक़ों पर अपना नियन्त्रण मज़बूत कर लिया। 1950 में पश्चिमी यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका मिलकर वैश्विक उत्पादन के आधे से ज़्यादा के हिस्सेदार थे, जबकि चीन का अनुपात पाँच प्रतिशत पर सिमट चुका था। यूरोप के अधीन ही एक भूमण्डलीय व्यवस्था और भूमण्डलीय संस्कृति उभरकर सामने आई। आज सारे के सारे मनुष्य वेशभूषा, विचारों और अभिरूचियों में उससे कहीं ज़्यादा यूरोपीय हैं, जितना वे आमतौर से स्वीकार करना चाहते हैं। अपनी शब्दों की लफ़्फ़ाजी में वे उग्र यूरोप-विरोधी हो सकते हैं, लेकिन पृथ्वी का लगभग हर व्यक्ति राजनीति, चिकित्सा, युद्ध और अर्थतन्त्र को यूरोपीय निगाहों से देखता है, और यूरोपीय भाषाओं के शब्दों में यूरोपीय शैलियों में लिखे गए संगीत को सुनता है। यहाँ तक कि आज की लहलहाती हुई चीनी अर्थव्यवस्थाभी उत्पादन और वित्तीय प्रबन्धन के यूरोपीय मॉडल पर

खड़ी है। मुमकिन है चीन जल्दी ही अपनी भूमण्डलीय श्रेष्ठता वापस हासिल कर ले।

यह कैसे मुमकिन हो सका कि यूरेशिया के ये ठण्ड से अकड़ी अँगुलियों वाले लोग भूमण्डल के एक सुदूर कोने से बाहर आकर समूची दुनिया को जीतने में कामयाब हो गए? इसका ज़्यादातर श्रेय अक्सर यूरोप के वैज्ञानिकों को दिया जाता है। ये एक निर्विवाद तथ्य है कि 1850 के बाद से यूरोप का वर्चस्व काफ़ी हद तक सैन्य-औद्योगिक-वैज्ञानिक संश्लेष (कॉम्प्लैक्स) और टेक्नोलॉजिकल दक्षता पर टिका रहा है। परवर्ती आधुनिक दौर के तमाम कामयाब साम्राज्यों ने टेक्नोलॉजिकल नवाचारों की उपलब्धि की उम्मीद में वैज्ञानिक अनुसन्धानों पर काम किया और ज़्यादातर वैज्ञानिकों ने अपना सबसे ज़्यादा वक़्त अपने साम्राज्यवादी मालिकों के लिए हथियारों, दवाओं और मशीनों पर काम करने में लगाया। अफ़्रीकी शत्रुओं का सामना करते यूरोपीय सैनिकों के बीच प्रचलित एक आम कहावत थी, "जो भी समस्या होगी, हम निपट लेंगे, हमारे पास मशीनगनें हैं, उनके पास नहीं हैं"। असैनिक टेक्नोलॉजी भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। डिब्बाबन्द भोजन सैनिकों का पेट भरता था, रेलमार्ग और स्टीमरों के माध्यम से सैनिकों और उनकी रसद का परिवहन किया जाता था, वहीं दवाओं का एक नया शस्त्रागार सैनिकों, नाविकों और इंजन चलाने वाले इंजनियरों की चिकित्सा करता था। अफ़्रीका पर यूरोप की जीत में मशीनगन से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण भूमिका इन प्रबन्धकीय उन्नतियों ने निभाई थी।

लेकिन 1850 के पहले स्थिति यह नहीं थी। सैन्य-औद्योगिक-वैज्ञानिक संश्लेष अभी भी अपनी शैशवावस्था में था। वैज्ञानिक क्रान्ति के प्रौद्योगिकीय फल पके नहीं थे। यूरोपीय, एशियाई और अफ़्रीकी शक्तियों के बीच का टेक्नोलॉजिकल अन्तराल बहुत कम था। 1770 में जेम्स कुक के पास निश्चय ही ऑस्ट्रेलियाई मूल निवासियों के मुक़ाबले बेहतर टेक्नोलॉजी थी, लेकिन वह तो चीनियों और ऑटोमनों के पास भी थी, लेकिन तब ऑस्ट्रेलिया की खोज और उपनिवेशीकरण जेम्स कुक द्वारा ही क्यों किए गए, कैप्टन वान ज़ेंग्स या कैप्टन हुसैन पाशा द्वारा क्यों नहीं किए गए? इससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण यह कि अगर 1770 में प्रौद्योगिकी के मामले में यूरोपीय लोगों की स्थिति मुसलमानों, हिन्दुस्तानियों और चीनियों से बेहतर नहीं थी, तब फिर वे अगली सदी में ही अपने और बाक़ी दुनिया के बीच इतनी बड़ी खाई पैदा करने में कैसे कामयाब हुए?

सैन्य-औद्योगिक-वैज्ञानिक संश्लेष हिन्दुस्तान के बजाय यूरोप में ही क्यों पनपा? जब ब्रिटेन ने आगे की ओर छलांग लगाई, तब क्या वजह थी कि फ़्रांस, जर्मनी और संयुक्त राज्य अमेरिका ने तो उसका अनुसरण किया, जबकि चीन पीछे घिसटता रह गया? जब औद्योगिक और ग़ैर-औद्योगिक राष्ट्रों के बीच की खाई एक ज़ाहिर आर्थिक और राजनैतिक कारक बन गई थी, तो क्या वजह थी कि रूस, इटली और ऑस्ट्रिया तो उस खाई को पाटने में कामयाब रहे, जबकि फ़ारस, मिस्र और ऑटोमन साम्राज्य इसमें नाकामयाब रहे? आख़िरकार पहली औद्योगिक लहर की टेक्नोलॉजी तुलनात्मक रूप से काफ़ी सरल थी। भाप के इंजन तैयार करना, मशीनगनें बनाना और रेल लाइनें बिछाना क्या चीनियों या ऑटोमनों के लिए मुश्किल काम था?

दुनिया का पहला वाणिज्यिक रेलमार्ग 1830 में ब्रिटेन में व्यापार के लिए खुला था। 1850 तक आते-आते पश्चिमी राष्ट्रों में लगभग 40,000 किलोमीटर रेलमार्गों का जाल

बिछ चुका था, लेकिन समूचे एशिया, अफ़्रीका और लैटिन अमेरिका में मात्र 4,000 किलोमीटर पटरियाँ थीं। 1880 में पश्चिम के पास गर्व करने के लिए 350,000 किलोमीटर रेलमार्ग थे, जबकि बाक़ी दुनिया में महज़ 35,000 किलोमीटर की ट्रेन लाइनें थीं (और इनमें से भी ज़्यादातर अँग्रेज़ों द्वारा हिन्दुस्तान में बिछाई गई थीं)। चीन में पहला रेलमार्ग 1876 में जाकर खुल सका। यह पच्चीस किलोमीटर लम्बा था और इसका निर्माण यूरोपियनों ने किया था - चीनी सरकार ने इसे अगले साल नष्ट कर दिया था। 1880 में चीनी साम्राज्य द्वारा एक भी रेलमार्ग का इस्तेमाल नहीं किया जाता था। फ़ारस में पहला रेलमार्ग 1888 में बन सका और यह तेहरान को उस एक मुस्लिम तीर्थ-स्थल से जोड़ता था, जो राजधानी के दक्षिण में दस किलोमीटर दूर स्थित था। इसका निर्माण और संचालन एक बेल्जियाई कम्पनी करती थी। 1950 में फ़ारस का कुल रेलवे नेटवर्क 2,500 किलोमीटर था, एक ऐसे मुल्क़ में जो आकार में ब्रिटेन से सात गुना बड़ा था।

चीनियों और फ़ारसियों के यहाँ टेक्नोलॉजी के आविष्कारों, जैसे कि भाप के इंजन (जिनकी मुफ़्त नक़ल की जा सकती थी या जिन्हें ख़रीदा जा सकता था) की कमी नहीं थी। कमी थी तो उन मूल्यों, लोक-विश्वासों, न्यायिक प्रणाली और समाज-राजनैतिक संरचनाओं की, जिन्होंने पश्चिम में अपने बनने और परिपक्व होने में सदियों का वक़्त लिया था और जिन्हें फुर्ती से नकल करके अपने आचार-विचार का हिस्सा नहीं बनाया जा सकता था। फ़्रांस और संयुक्त राज्य अमेरिका ने ब्रिटेन का तेजी से अनुसरण किया क्योंकि फ़्रांसीसी और अमेरिकी अँग्रेज़ों के सबसे महत्त्वपूर्ण लोक-विश्वासों और सामाजिक संरचनाओं में पहले से ही साझा करते थे। चीनी और फ़ारसी उतनी तेजी से उसके साथ नहीं हो सके क्योंकि उनके सोचने और अपने समाजों को संगठित करने का ढंग अलग था।

यह तफ़सील 1500 से 1800 के बीच की अवधि पर नई रोशनी डालती है। इस युग के दौरान यूरोप टेक्नोलॉजिकल, राजनैतिक, सैन्य या आर्थिक मामलों में एशियाई शक्तियों के मुक़ाबले में स्पष्ट तौर पर किसी बेहतर स्थिति में नहीं था, तब भी इस महाद्वीप ने एक ऐसी अनूठी सामर्थ्य विकसित कर ली थी, जिसका महत्त्व अचानक 1850 के आसपास उजागर हो उठा। 1750 में यूरोप, चीन और मुस्लिम जगत के बीच ऊपरी तौर पर जो समानता दिखाई दे रही थी, वह एक भ्रम था। ज़रा दो वास्तुशिल्पियों की कल्पना करें, जिनमें से प्रत्येक विशाल मीनारों के निर्माण में व्यस्त है। एक वास्तुशिल्पी लकड़ी और मिट्टी की ईंटों का प्रयोग करता है, जबकि दूसरा इस्पात और कांक्रीट का इस्तेमाल करता है। शुरू में ऐसा लगता है कि दोनों पद्धतियों में कोई ज़्यादा फ़र्क़ नहीं है, क्योंकि दोनों मीनारें समान रफ़्तार से बढ़ती हुई बराबर की ऊँचाई तक पहुँच जाती हैं, लेकिन एकबारगी नाज़ुक दहलीज़ से गुज़रने के बाद लकड़ी और मिट्टी की मीनार दबाव को नहीं झेल पाती और ढह जाती है, जबकि इस्पात और फ़ौलाद की मीनार मंज़िल दर मंज़िल उस ऊँचाई तक उठती जाती है, जहाँ तक आपकी आँखें देख सकती हैं।

शुरुआती आधुनिक दौर में यूरोप ने ऐसी कौन-सी सामर्थ्य विकसित कर ली थी कि वह दुनिया पर अपना वर्चस्व क़ायम करने में सक्षम हो सका? इस सवाल के दो पूरक जवाब हैं : आधुनिक विज्ञान और पूँजीवाद। यूरोपीय लोग किसी तरह की टेक्नोलॉजिकल बेहतरी हासिल करने के पहले से ही वैज्ञानिक और पूँजीवादी ढंग से

सोचने और आचरण करने के अभ्यस्त थे। जब टेक्नोलॉजिकल लूट की शुरुआत हुई, तो यूरोपीय लोग उसका किन्हीं भी दूसरे लोगों के मुक़ाबले बेहतर फ़ायदा उठा सके। इसलिए इसे शायद ही संयोग कहा जा सके कि विज्ञान और पूँजीवाद से मिलकर ही उस सबसे महत्त्वपूर्ण विरासत की रचना हुई है, जिसे यूरोपीय साम्राज्यवाद ने इक्कीसवीं सदी की उत्तर-यूरोपीय दुनिया को वसीयत के रूप में प्रदान किया है। यूरोप और यूरोपीय लोग अब दुनिया पर हुकूमत नहीं करते, लेकिन विज्ञान और पूँजी उत्तरोत्तर ताक़तवर होते जा रहे हैं। पूँजीवाद की जीतों का परीक्षण अगले अध्याय में किया जाएगा। ये अध्याय यूरोपीय साम्राज्यवाद और आधुनिक विज्ञान की प्रेम-कहानी पर केन्द्रित है।

विजय की मानसिकता

आधुनिक विज्ञान यूरोपीय साम्राज्यों में और उनकी वजह से विकसित-समृद्ध हुआ। यह अनुशासन साफ़ तौर पर प्राचीन वैज्ञानिक परम्पराओं का ऋणी है, जिनमें प्राचीन ग्रीस, चीन, हिन्दुस्तान और इस्लाम की वैज्ञानिक परम्पराएँ शामिल हैं, लेकिन इसके अनूठे चरित्र ने आकार लेना शुरू किया आरम्भिक आधुनिक दौर में, और स्पेन, पुर्तगाल, ब्रिटेन, फ़्रांस, रूस और नीदरलैंड्स के साम्राज्यवादी विस्तार के साथ। आधुनिक युग के आरम्भिक कालखण्ड के दौरान चीनियों, हिन्दुस्तानियों, मुसलमानों, अमेरिकी मूल निवासियों और पोलीशियाइयों ने वैज्ञानिक क्रान्ति में महत्त्वपूर्ण योगदान देना जारी रखा था। मुसलमान अर्थशास्त्रियों की अन्तर्दृष्टियों का अध्ययन एडम स्मिथ और कार्ल मार्क्स द्वारा किया गया। मूल अमेरिकी डॉक्टरों द्वारा प्रवर्तित चिकित्साओं ने अँग्रेज़ी चिकित्साविज्ञान की पुस्तकों में जगह बनाई और पोलीनीशियाई गुप्त दूतों से उगलवाई गई सूचनाओं ने पश्चिमी मानव-शास्त्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन किए, लेकिन बीसवीं सदी के मध्य तक जिन लोगों ने इन असंख्य वैज्ञानिक खोजों का सिलसिलेवार संग्रह किया था और इस प्रक्रिया में वैज्ञानिक अनुशासनों की रचना की थी, वे सब के सब भूमण्डलीय यूरोपीय साम्राज्यों के बौद्धिक उच्च वर्ग के लोग थे। सुदूर पूर्व और इस्लाम की दुनिया ने उतने ही प्रतिभाशाली और जिज्ञासु दिमाग़ उत्पन्न किए थे, जितने यूरोप ने किए थे, लेकिन 1500 और 1950 के बीच उन्होंने ऐसा कुछ भी उत्पन्न नहीं किया, जो न्यूटन की भौतिकी या डार्विन के जीव-विज्ञान के क़रीब भी बैठ सकता।

इसका यह मतलब नहीं है कि यूरोप के पास विज्ञान के लिए कोई विशिष्ट जीन है या भौतिकी और जीव-विज्ञान के अध्ययन पर उनका वर्चस्व हमेशा क़ायम रहेगा। जिस तरह से इस्लाम की शुरुआत अरब एकाधिकार के रूप में हुई थी, लेकिन बाद में वह तुर्कों और फ़ारसियों के हाथ में चला गया, उसी तरह आधुनिक विज्ञान की शुरुआत भी यूरोपीय विशेषज्ञता के रूप में हुई थी, लेकिन आज वह बहु-प्रजातीय उद्यम बनता जा रहा है।

वह क्या चीज़ थी, जिसने आधुनिक विज्ञान और यूरोपीय साम्राज्यवाद के बीच ऐतिहासिक अनुबन्ध को गढ़ा था? टेक्नोलॉजी उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में एक महत्त्वपूर्ण कारक थी, लेकिन आधुनिक युग के आरम्भिक दौर में उसका महत्त्व बहुत सीमित था। मुख्य कारक यह था कि वनस्पति की खोज करता वनस्पतिशास्त्री और उपनिवेश की खोज करता नौसेना अधिकारी एक ही तरह की मानसिकता साझा करते

थे। वैज्ञानिक और विजेता दोनों ने अज्ञानता को स्वीकार करने के साथ शुरुआत की थी - उन दोनों ने कहा था, “मैं नहीं जानता कि वहाँ क्या है”। वे दोनों बाहर निकलने और नई खोजें करने के लिए मज़बूर थे। और उन दोनों को उम्मीद थी कि इस तरह हासिल किया गया नया ज्ञान उन्हें दुनिया का मालिक बना देगा।

यूरोपीय साम्राज्यवाद इतिहास के तमाम दूसरे साम्राज्यवादी अभियानों से पूरी तरह भिन्न था। साम्राज्य के पहले के खोजी मानकर चलते थे कि वे दुनिया को पहले से जानते-समझते हैं। विजेता महज़ दुनिया के बारे में अपने दृष्टिकोण का उपयोग करते थे और उसका प्रसार करते थे। मसलन, अगर एक उदाहरण लिया जाए, तो अरबों ने मिस्र, स्पेन या हिन्दुस्तान को इसलिए नहीं जीता था कि वे ऐसा कुछ नया खोजना चाहते थे, जिसके बारे में उन्हें जानकारी नहीं थी। रोमनों, मंगोलों और एज़्टेकों ने नए मुल्क़ों को सत्ता और दौलत के लालच के कारण जीता था - ना कि ज्ञान की ख़ातिर। इसके विपरीत, यूरोपीय साम्राज्यवादी नए इलाक़ों के साथ-साथ नए ज्ञान की तलाश में सुदूर तटों की ओर निकले थे।

इस तरह की सोच रखने वालों में जेम्स कुक पहला खोजी नहीं था। पन्द्रहवीं और सोलहवीं सदी के पुर्तगाली और स्पेनी यात्रियों की सोच भी ऐसी ही रही थी। प्रिंस हेनरी ‘द नैवीगेटर’ और वास्को डी गामा ने अफ़्रीका के तटों की छानबीन की थी, और ऐसा करते हुए उन द्वीपों और बन्दरगाहों को अपने नियन्त्रण में ले लिया था। क्रिस्टोफ़र कोलम्बस ने अमेरिका की ‘खोज’ की और तत्काल ही स्पेन के सम्राटों के पक्ष में इन नए इलाक़ों पर सम्प्रभुता का दावा किया था। फ़र्दिनान्द मैगेलन ने दुनिया की परिक्रमा की और इसी के साथ-साथ फ़िलिपींस पर स्पेनी जीत की बुनियाद तैयार की।

समय के गुज़रने के साथ-साथ ज्ञान की जीत और राज्यों की जीत का आपस में गुँथा हुआ होना और भी सख़्त होता गया। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदियों में यूरोप से सुदूर मुल्क़ों की दिशा में गए लगभग हर अभियान-दल में ऐसे वैज्ञानिक शामिल हुआ करते थे, जो लड़ने के लिए नहीं, बल्कि वैज्ञानिक खोजों के लिए गए होते थे। जब 1798 में नेपोलियन ने मिस्र पर चढ़ाई की थी, तो वह अपने साथ 165 अध्येताओं को लेकर गया था। दूसरे काम करने के साथ-साथ उन्होंने ‘इजिप्टोलॉजी’ नामक ज्ञान के एक पूरी तरह से नए अनुशासन की स्थापना की थी। इसके अलावा मज़हब, भाषाविज्ञान और वनस्पतिशास्त्र के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण योगदान किया था।

1831 में रॉयल नेवी ने दक्षिण अमेरिका के तटों, फ़ाकलैंड्स के द्वीपों और गलापगोस द्वीपों के नक़्शे तैयार करने के लिए ‘एचएमएस बीगल’ नामक जहाज़ भेजा था। नौसेना को इस जानकारी की ज़रूरत इसलिए थी, ताकि वह युद्ध की परिस्थिति के लिए बेहतर ढंग से तैयार हो सकती। जहाज़ का कप्तान एक अप्रशिक्षित वैज्ञानिक था, उसने रास्ते में सम्भावित रूप से मिल सकने वाली भूगर्भीय बनावटों के अध्ययन के लिए अपने अभियान-दल में एक भूगर्भशास्त्री को शामिल करने का फ़ैसला किया। जब कई अनुभवी भूगर्भशास्त्रियों ने उसके निमन्त्रण को ठुकरा दिया, तो कप्तान ने इस काम के लिए एक इक्कीस साल के कैम्ब्रिज के स्नातक चार्ल्स डार्विन को रख लिया। डार्विन ने पढ़ाई तो अँग्रेज़ी चर्च का एक व्यक्ति बनने के लिए की थी, लेकिन उसकी दिलचस्पी

बाइबल से ज़्यादा भूगर्भ विज्ञान और प्राकृतिक विज्ञानों में थी। यात्रा के दौरान कप्तान जब सैन्य नक़्शे तैयार करने में व्यस्त रहता था, उस दौरान डार्विन ने वे आनुभविक सूचनाएँ एकत्र कीं और उन निरीक्षणों को सूत्रबद्ध किया, जो अन्त में जाकर विकासवाद के सिद्धान्त के रूप में सामने आने वाले थे।

20 जुलाई, 1969 को नील आर्मस्ट्रांग और बज़ ऑल्ड्रिन चन्द्रमा की सतह पर उतरे। इस अभियान के पहले के महीनों में अपोलो 11 के अन्तरिक्ष यात्रियों को पश्चिमी संयुक्त राज्य अमेरिका के एक सुदूर चन्द्रमानुमा रेगिस्तान में प्रशिक्षित किया गया था। यह इलाक़ा कई मूल अमेरिकी समुदायों का घर है, और एक क़िस्सा - बल्कि किंवदन्ती - है जो इन अन्तरिक्ष यात्रियों और एक स्थानीय व्यक्ति के बीच की मुलाक़ात को बयान करता है।

प्रशिक्षण के दौरान एक दिन इन अन्तरिक्ष यात्रियों को एक बूढ़ा मूल अमेरिकी मिला। उस आदमी ने उनसे पूछा कि वे लोग वहाँ क्या कर रहे हैं। उन लोगों ने जवाब दिया कि वे उस खोज अभियान के सदस्य हैं, जो जल्दी ही चन्द्रमा के अन्वेषण की यात्रा पर जाने वाला है। जब उस बूढ़े ने यह सुना, तो वह कुछ पल ख़ामोश रहा और फिर उसने उन अन्तरिक्ष यात्रियों से पूछा कि क्या वे उसके लिए एक काम कर सकते हैं।

“तुम क्या चाहते हो”? उन्होंने पूछा।

बूढ़े ने कहा, “मेरे क़बीले के लोगों का विश्वास है कि चन्द्रमा पर पवित्र आत्माएँ निवास करती हैं। मैं सोच रहा था कि क्या आप लोग मेरे क़बीले के लोगों का एक महत्त्वपूर्ण सन्देश उन तक पहुँचा देंगे”।

“क्या सन्देश है”? अन्तरिक्ष यात्रियों ने पूछा।

उस आदमी ने अपनी जनजातीय ज़ुबान में कुछ उच्चारित किया और फिर अन्तरिक्ष यात्रियों से उन शब्दों को बार-बार दोहराने को कहा, ताकि वे उन्हें ठीक से याद हो जाएँ।

“इसका मतलब क्या है”? अन्तरिक्ष यात्रियों ने पूछा।

“ओह, यह मैं आपको नहीं बता सकता। यह ऐसा रहस्य है, जिसे जानने की इजाज़त सिर्फ़ मेरे क़बीले के लोगों और चन्द्रमा पर रहने वाली आत्माओं को ही है”। जब अन्तरिक्ष यात्री अपने अड्डे पर लौटे, तो उन्होंने लगातार किसी ऐसे व्यक्ति की खोज जारी रखी, जो उस जनजातीय भाषा को समझ सकता, और जब उन्हें ऐसा एक व्यक्ति मिल गया, तो उन्होंने उससे उस गुप्त सन्देश का अनुवाद करने को कहा। जब उन्होंने अपनी स्मृति में दर्ज़ उन शब्दों को दोहराया, तो वह अनुवादक बेतहाशा हँसने लगा। जब वह शान्त हुआ, तो अन्तरिक्ष यात्रियों ने उससे उसका मतलब पूछा। उस आदमी ने बताया कि जिस वाक्य को उन लोगों ने इतना सावधानीपूर्वक याद कर रखा था, उसका मतलब था, “ये लोग जो भी कह रहे हैं, उसके एक भी शब्द पर विश्वास मत करना। ये आपकी ज़मीन छीनने आए हैं”।

ख़ाली नक़्शे

आधुनिक ‘खोजो और जीतो’ मानसिकता की बहुत अच्छी व्याख्या विश्व के नक़्शों के विकास से सामने आती है। आधुनिक युग के पहले बहुत-सी संस्कृतियों ने विश्व के नक़्शे

तैयार किए थे। ज़ाहिर है कि इनमें से कोई भी संस्कृति वास्तव में सारी दुनिया से परिचित नहीं थी। कोई भी अफ़्रो-एशियाई संस्कृति अमेरिका के बारे में नहीं जानती थी और कोई भी अमेरिकी संस्कृति अफ़्रो-एशिया के बारे में नहीं जानती थी, लेकिन अपरिचित इलाक़ों को या तो सीधे-सीधे छोड़ दिया जाता था या उन्हें कल्पित दैत्यों और आश्चर्यों से भर दिया जाता था। इससे सारी दुनिया की जानकारी होने का संदेश जाता था।

पन्द्रहवीं और सोलहवीं सदियों के दौरान यूरोपीय लोगों ने ढेर सारी ख़ाली जगहें छोड़ते हुए विश्व के नक़्शे तैयार करने शुरू किए। यह वैज्ञानिक मानसिकता के विकसित होने के साथ ही साथ यूरोपीय साम्राज्यवादी प्रवृत्ति के विकसित होने का एक संकेत था। ये ख़ाली नक़्शे एक मनोवैज्ञानिक और विचारधारात्मक घटना थे, इस बात की स्पष्ट की स्वीकृति कि यूरोपीय लोग दुनिया के बड़े हिस्सों को लेकर अनभिज्ञ थे।

निर्णायक मोड़ 1492 में आया, जब क्रिस्टोफ़र कोलम्बस का जहाज़ पूर्वी एशिया के नए रास्ते की तलाश करता हुआ स्पेन से पश्चिम की ओर बढ़ा। कोलम्बस का विश्वास अभी भी विश्व के पुराने 'पूर्ण' नक़्शों में था। इन नक़्शों का इस्तेमाल करते हुए कोलम्बस ने हिसाब लगाया कि जापान स्पेन के पश्चिम लगभग 7,000 किलोमीटर दूर स्थित होना चाहिए। वस्तुतः 20,000 किलोमीटर से ज़्यादा की दूरी और एक पूरी तरह से अज्ञात महाद्वीप एशिया को स्पेन से अलग करते हैं। 12 अक्टूबर 1492 को रात के लगभग 2 बजे कोलम्बस का अभियान दल इस अज्ञात महाद्वीप से टकराया। 'पिंटा' जहाज़ के मस्तूल से निरीक्षण कर रहे जुआन रोड्रिगेज़ बर्मेजो ने एक द्वीप को देखा और चिल्लाया 'ज़मीन! ज़मीन'! इसे हम आज बहामास के नाम से पुकारते हैं।

कोलम्बस को विश्वास था कि वह पूर्वी एशियाई तट के किसी छोटे द्वीप पर पहुँच गया है। वहाँ उसे जो लोग मिले, उन्हें उसने 'इंडियन' कहा क्योंकि उसका ख़याल था कि वह इंडीज़ - जिसे हम आज ईस्ट इंडीज़ या इंडोनेशियाई द्वीपसमूह कहते हैं - में उतरा है। कोलम्बस अपनी इस ग़लतफ़हमी से अपनी बाक़ी ज़िन्दगी भर चिपका रहा। यह ख़याल कि उसने एक पूरी तरह अज्ञात महाद्वीप को ढूँढ़ निकाला है, उसकी और उसकी पीढ़ी के बहुत-से लोगों की कल्पना के परे था। हज़ारों सालों तक ना सिर्फ़ महान विचारक और अध्येता, बल्कि अचूक धर्मग्रन्थ भी केवल यूरोप, अफ़्रीका और एशिया से परिचित थे। क्या वे सारे के सारे लोग ग़लत हो सकते थे? क्या यह मुमकिन था कि बाइबल को आधी दुनिया की जानकारी ही नहीं रही हो? यह कुछ ऐसी बात होती, जैसे 1969 में चन्द्रमा की ओर जाता हुआ अपोलो 11 पृथ्वी की परिक्रमा कर रहे किसी ऐसे अज्ञात उपग्रह से जा टकराता जिसको पहचानने में पहले के सारे निरीक्षणों से चूक हुई होती। अपनी अज्ञानता को स्वीकार नहीं करने के इस मामले में कोलम्बस अभी भी एक मध्ययुगीन इंसान था। उसे पूरा विश्वास था कि उसे समूची दुनिया की जानकारी थी और उसकी यह अहम खोज भी उसे इस विश्वास से डिगा नहीं सकी।

पहला आधुनिक आदमी था अमेरिगो वेसपूची। वह एक इतालवी समुद्री यात्री था, जिसने 1499-1504 में अमेरिका गए कई अभियानों में हिस्सा लिया था। 1502 और 1504 के बीच इन अभियानों का वर्णन करने वाले दो मज़मून यूरोप में प्रकाशित हुए थे। इनका श्रेय वेसपूची को दिया गया था। इन मज़मूनों का कहना था कि कोलम्बस द्वारा खोजे गए नए भू-भाग पूर्वी एशियाई तट के द्वीप नहीं थे, बल्कि वह एक समूचा महाद्वीप

था, जो धर्मग्रन्थों, प्राचीन भूगोलविदों और समकालीन यूरोपीय लोगों के लिए अज्ञात था। 1507 में इन तर्कों से सहमत होकर मार्टिन वाल्ड्सेमुलर नामक एक प्रतिष्ठित नक़्शानवीस ने विश्व का एक अद्यतन नक़्शा प्रकाशित किया। यह पहला ऐसा नक़्शा था, जो एक स्वतन्त्र महाद्वीप के रूप में उस जगह को दर्शाता था, जहाँ पश्चिम की दिशा में यात्रा पर निकले यूरोप के जहाज़ उतरे थे। इस नक़्शे को तैयार करने के बाद वाल्ड्सेमुलर को इस महाद्वीप को एक नाम देना ज़रूरी था। इस ग़लतफ़हमी के कारण कि इसकी खोज अमेरिगो वेसपूची ने की थी, वाल्ड्सेमुलर ने उसके प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए इस महाद्वीप का नाम अमेरिका रख दिया। वाल्ड्सेमुलर का नक़्शा बहुत लोकप्रिय हुआ और कई नक़्शानवीसों ने उसकी नक़ल तैयार कर उसके द्वारा दिए गए इस महाद्वीप के नाम को प्रसारित कर दिया। इस तथ्य में एक काव्यात्मक न्याय निहित है कि एक चौथाई दुनिया और उसके सात में से दो महाद्वीपों का नामकरण उस अल्पज्ञात इतालवी के नाम पर हुआ, जिसकी प्रसिद्ध का दावा कुल मिलाकर इस बात में निहित है कि उसने यह कहने का साहस किया था कि “हम नहीं जानते”।

36. 1459 का विश्व का एक यूरोपीय नक़्शा। नक़्शा विवरणों से भरा हुआ है। दुनिया के उन हिस्सों का चित्रण भी किया गया है, जो यूरोपीय लोगों के लिए पूरी तरह से अपरिचित थे, जैसे कि दक्षिण अफ़्रीका।

अमेरिका की खोज वैज्ञानिक क्रान्ति की आधारभूत घटना थी। इसने यूरोपीय लोगों को ना सिर्फ़ अतीत की परम्पराओं पर वर्तमान पर्यवेक्षणों को वरीयता देने की सीख दी, बल्कि अमेरिका को जीतने की आकांक्षा ने यूरोपीय लोगों को अन्धाधुन्ध गति से नए ज्ञान की खोज के लिए भी उकसाया। अगर वे वाक़ई इन विशाल नए इलाक़ों को नियन्त्रित करना चाहते थे, तो उन्हें इस नए महाद्वीप के भूगोल, जलवायु, वनस्पतियों, जीव-जगत, भाषाओं, संस्कृतियों और इतिहास के बारे में विपुल मात्रा में सूचनाएँ एकत्र करना ज़रूरी था। ईसाई धर्मग्रन्थ, भूगोल की पुरानी पुस्तकें और प्राचीन मौखिक परम्पराओं से कोई ख़ास मदद मिलने वाली नहीं थी।

इसके बाद से ना सिर्फ़ यूरोपीय भूगोलविदों, बल्कि ज्ञान के लगभग तमाम अन्य क्षेत्रों के यूरोपीय अध्येताओं ने ऐसे नक़्शे तैयार करने शुरू किए, जिनमें भरे जाने के लिए ख़ाली जगहें छूटी हुई थीं। उन्होंने यह स्वीकार करना शुरू किया कि उनके सिद्धान्त अचूक और पूर्ण नहीं थे और ऐसी बहुत-सी महत्त्वपूर्ण चीज़ें थीं, जिनके बारे में वे नहीं जानते थे।

यूरोपीय लोग नक़्शों की इन ख़ाली जगहों की ओर इस तरह आकर्षित थे, जैसे वे जगह चुम्बकें हों और उन्होंने उन जगहों को फ़ुर्ती के साथ भरना शुरू कर दिया। पन्द्रहवीं और सोलहवीं सदियों के दौरान यूरोपीय अभियान-दलों ने जलमार्ग से अफ़्रीका की परिक्रमा की, अमेरिका की छानबीन की, प्रशान्त महासागर और हिन्द महासागर को पार किया, और सारी दुनिया में अपनी गतिविधियों के केन्द्रों और उपनिवेशों का जाल बिछाया। उन्होंने सच्चे अर्थों में पहला भूमण्डलीय साम्राज्य विकसित किया और पहला भूमण्डलीय व्यापारिक जाल बुना। यूरोप के इन साम्राज्यवादी अभियानों ने दुनिया के इतिहास को बदल कर रख दिया : वह अलग-थलग समाजों और संस्कृतियों के इतिहासों की एक शृंखला होने की जगह एक एकल एकीकृत मानव-समाज का इतिहास बन गया।

इन खोजो-और-जीतो के यूरोपीय अभियानों से हम इस क़दर सुपरिचित हैं कि हम अक्सर इसे नज़रअन्दाज़ कर देते हैं कि ये कितने असाधारण थे। इनके जैसा इसके पहले कभी कुछ नहीं हुआ था। सुदूर इलाक़ों को जीतने की मुहिमें कुदरती उपक्रम नहीं हैं। समूचे इतिहास के दौरान मानव समाज स्थानीय टकरावों और पड़ोसियों के साथ लड़ने में ही इस क़दर संलग्न रहे थे कि उन्होंने दूर के मुल्क़ों को खोजने और जीतने के बारे में कभी सोचा भी नहीं था। जैसे कि रोमनों ने रोम की रक्षा की ख़ातिर ईट्रूरिया को जीता (350-300 ईसा पूर्व) था। इसके बाद उनने ईट्रूरिया के बचाव की ख़ातिर पो वैली को जीता (200 ईसा पूर्व) था। इसके बाद उन्होंने पो वैली के बचाव की ख़ातिर प्रोवेंस को (120 ईसापूर्व), प्रोवेंस के बचाव की ख़ातिर गॉल को (50 ईसा पूर्व) और गॉल के बचाव की ख़ातिर ब्रिटेन को (50 ईसवी) जीता था। रोम से लन्दन पहुँचने में उन्होंने 400 साल लग गए थे। ईसा पूर्व 350 में किसी रोमन ने जहाज़ों में सवार होकर सीधे ब्रिटेन पहुँचकर उसको जीतने की कल्पना भी नहीं की होती।

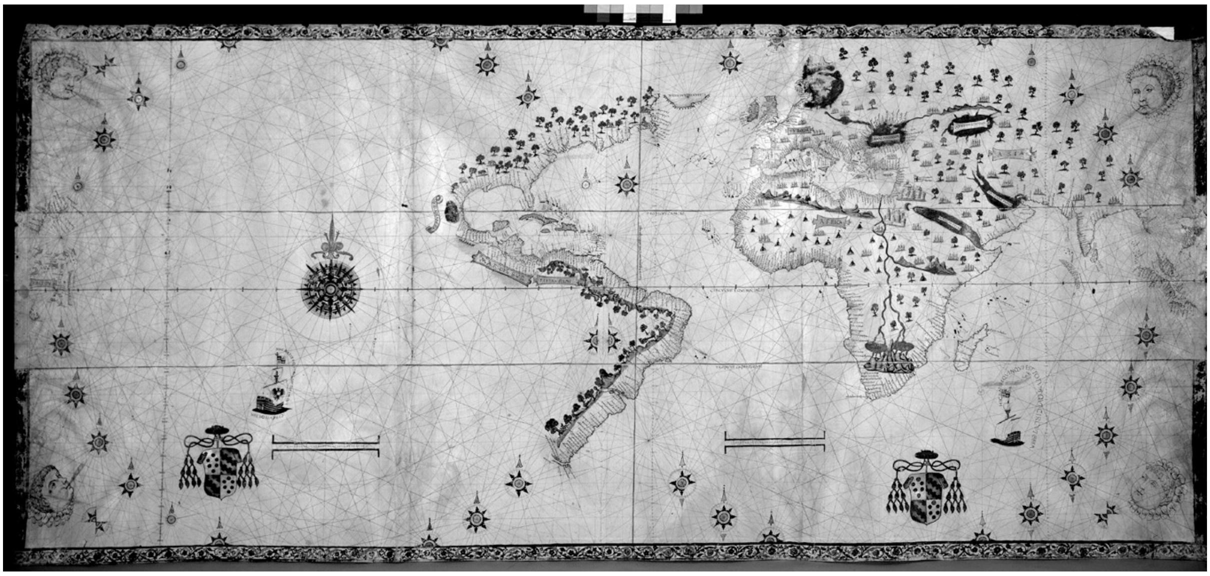

37. विश्व का सिलवियाति नक़्शा, 1525। विश्व का 1459 में तैयार नक़्शा जहाँ महाद्वीपों, द्वीपों और विस्तृत विवरणों से भरा था, वहीं सिलवियाति नक़्शा ज़्यादातर ख़ाली था। ख़ालीपन में खोने से पहले आँखें अमेरिकी समुद्र रेखा पर घूमती रहती हैं। नक़्शे का अवलोकन करने वाला कोई भी व्यक्ति, जो थोड़ी सी जिज्ञासा रखता है, वह यह सवाल पूछने को ज़रूर उत्सुक होता है कि "आख़िर बिंदु के आगे क्या है"? इससे पर्यवेक्षकों को प्रेरणा मिलती है कि वे आगे बढ़ें और पता लगाएँ।

कभी-कभार कोई महत्त्वाकांक्षी शासक या साहसिक यात्री फ़तह की किसी सुदूर मुहिम पर निकलता था, लेकिन इस तरह के अभियान आमतौर से किन्हीं पहले से बरते जाते रहे साम्राज्यवादी या वाणिज्यिक मार्गों का अनुसरण करते थे। उदाहरण के लिए सिकन्दर महान की मुहिमों का नतीज़ा किसी नए साम्राज्य को खड़ा करने के रूप में नहीं निकला, बल्कि एक पहले से मौजूद साम्राज्य - फ़ारसी साम्राज्य - को हड़पने के रूप में निकला। आधुनिक यूरोपीय साम्राज्यों के निकटतम दृष्टान्त थे एथेंस और कार्थेज के मध्ययुगीन नौसेनिक (नेवल) साम्राज्य, और माजापाहित का मध्युगीन नौसैनिक साम्राज्य, जिसके प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार चौदहवीं सदी के ज़्यादातर इंडोनेशिया में था, लेकिन ये साम्राज्य अज्ञात समुद्रों में घुसने का साहस शायद ही कभी करते थे - उनके नौसैनिक पराक्रम आधुनिक यूरोपीय लोगों के भूमण्डलीय साहसिक अभियानों के मुक़ाबले स्थानीय उपक्रम ही ठहरते थे।

बहुत-से अध्येताओं का कहना है कि मिंग राजवंश के एडमिरल झेंग ही की समुद्री यात्राएँ यूरोप की समुद्री खोज-यात्राओं की पूर्वसूचना देने वाली और उन्हें फीका साबित करने वाली थीं। 1405 और 1433 के बीच झेंग ने चीन से हिन्द महासागर के सुदूर विस्तार तक सात विशाल जहाज़ी बेड़ों का नेतृत्व किया था। इनमें सबसे बड़े बेड़े में लगभग 300 जहाज़ और उनमें सवार लगभग 30,000 लोग शामिल थे। इन लोगों ने इंडोनेशिया, श्रीलंका, हिन्दुस्तान, फ़ारस की खाड़ी, लाल सागर और पूर्वी अफ़्रीका की यात्राएँ की थीं। चीनी जहाज़ों ने हेजाज़ के मुख्य बन्दरगाह जेड्डा और केन्याई तट पर मालिन्दी में लंगर डाले थे। कोलम्बस का 1492 का जहाज़ी बेड़ा - जिसमें 120 समुद्री यात्रियों से युक्त तीन छोटे-छोटे जहाज़ शामिल थे, झेंग ही के ड्रैगनों के विशाल समूह के सामने मच्छरों की तिकड़ी जैसे थे।

तब भी एक एक महत्त्वपूर्ण अन्तर था। झेंग ही ने महासागरों की छानबीन की और

चीन-समर्थक शासकों का सहयोग किया, लेकिन वह जिन मुल्क़ों में गया, उन्हें उसने जीतने या उपनिवेश बनाने का प्रयत्न नहीं किया। इसके अलावा, झेंग के अभियान चीनी राजनीति और संस्कृति में गहरे जड़ें जमाए हुए नहीं थे। जब 1430 के दशक के दौरान बीजिंग का शासक गुट बदला, तो नए अधिपतियों ने इस अभियान को एकाएक समाप्त कर दिया। विशाल बेड़ा विघटित कर दिया गया, उसके द्वारा जुटाई गई महत्त्वपूर्ण तकनीकी और भौगोलिक जानकारी लुप्त हो गई और वैसे कद और साधनों वाले किसी भी खोजी ने चीनी बन्दरगाह के बाहर कभी क़दम नहीं रखा। बाद की सदियों के चीनी शासकों ने पिछली सदियों के ज़्यादातर शासकों की ही तरह अपनी दिलचस्पियों और महत्त्वाकांक्षाओं को मिडिल किंगडम के निकटतम पड़ोस तक ही सीमित रखा।

झेंग ही के अभियान साबित करते हैं कि यूरोप को कोई असाधारण क़िस्म की प्रौद्योगिकीय बढ़त हासिल नहीं थी। यूरोपीय लोगों को उल्लेखनीय बनाने वाली चीज़ खोजने और जीतने की उनकी अतुलनीय और कभी तृप्त ना हो सकने वाली महात्त्वाकांक्षा थी। यद्यपि रोमनों के पास सामर्थ्य रही हो सकती थी, लेकिन उन्होंने हिन्दुस्तान या स्कॅडिनेविया को जीतने की कोशिश नहीं की, फ़ारसियों ने कभी मैडागास्कर या स्पेन को जीतने की कोशिश नहीं की और चीन ने कभी इंडोनेशिया या अफ़्रीका को जीतने की कोशिश नहीं की। ज़्यादातर चीनी शासकों ने अपने एकदम क़रीब के जापान तक को हाथ नहीं लगाया। इसमें कुछ भी अनोखा नहीं था। अनूठापन इसमें है कि आरम्भिक आधुनिक यूरोपीय पर एक धुन सवार हुई, जिसने उन्हें सुदूर और पूरी तरह से अज्ञात भू-भागों और सर्वथा अजनबी संस्कृतियों की दिशा में यात्रा करने को धकेला और उनके समुद्र तटों पर क़दम रखते ही तुरन्त यह घोषणा करने को प्रेरित किया कि “मैं इन सारे इलाक़ों पर अपने सम्राट के हक़ का दावा करता हूँ”!

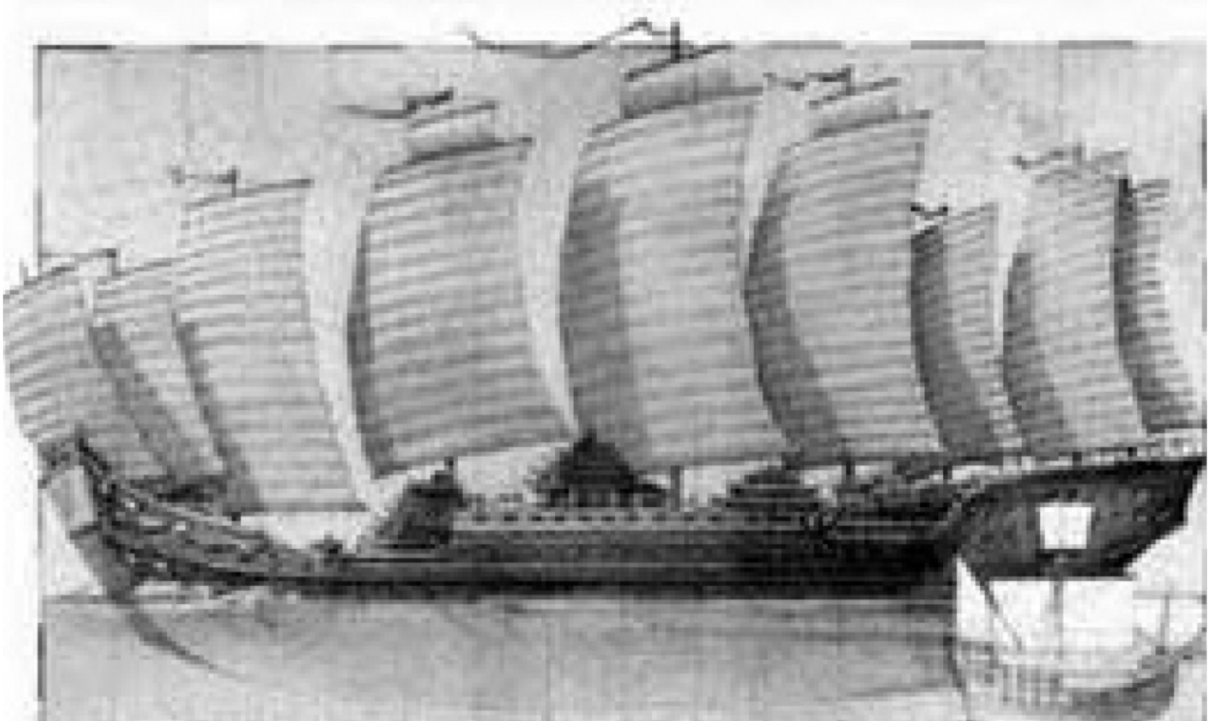

38. कोलम्बस के ध्वज-पोत के बाद झेंग ही का ध्वज-पोत।

बाहरी दुनिया से आक्रमण

1517 के आस-पास कैरिबियाई द्वीपों के स्पेनी उपनिवेशवादियों को मैक्सिको के मुख्य भू-भाग के केन्द्र में कहीं एक शक्तिशाली साम्राज्य की मौजूदगी के बारे में उड़ती-उड़ती-सी अफ़वाहें सुनाई देनी शुरू हुईं। महज़ चार साल बाद, एज़्टेक राजधानी एक सुलगता हुआ खण्डहर थी, एज़्टेक साम्राज्य अतीत की चीज़ बन चुका था और हर्नेन कोर्तेस के आधिपत्य में मैक्सिको पर एक विशाल नए स्पेनी साम्राज्य का क़ब्ज़ा था।

स्पेनी ख़ुद की पीठ ठोंकने या दम लेने को भी नहीं रुके। वे आनन-फानन में हर दिशा में ‘खोजो और जीतो’ की मुहिम पर निकल पड़े। मध्य अमेरिका के पिछले शासकों - एज़्टेक, टोल्टेक, माया - को दक्षिण अमेरिका के अस्तित्व की ना के बराबर जानकारी थी, और पिछले 2,000 सालों के दौरान उन्होंने कभी उसको अपने अधीन बनाने की कोशिश नहीं की थी, लेकिन मैक्सिको पर स्पेन की विजय के दस साल से कुछ ही ज़्यादा समय के भीतर फ़्रांसिस्को पिज़ारो को दक्षिण अमेरिका में इंका साम्राज्य का पता लगा चुका था, जिसे उसने 1532 में फ़तह कर लिया।

अगर एज़्टेक और इंका ने अपने आस-पास की दुनिया में थोड़ी-सी और दिलचस्पी ले होती - और अगर उन्हें पता होता कि स्पेनियों ने अपने पड़ोसियों के साथ क्या किया था - तो मुमकिन है उन्होंने स्पेनियों की फ़तह को अधिक उत्सुकता और कामयाबी के साथ प्रतिरोध दिया होता। कोलम्बस की पहली अमेरिकी यात्रा (1492) और कोर्तेस के मैक्सिको में उतरने (1519) के बीच के वर्षों में स्पेनी लोग ज़्यादातर कैरेबियाई द्वीपों को जीत कर नए उपनिवेशों की एक शृंखला स्थापित कर चुके थे। अधीन बनाए गए लोगों के लिए ये उपनिवेश पृथ्वी पर साक्षात नर्क थे। उन पर इन लालची और निर्लज्ज उपनिवेशवादियों द्वारा अत्याचारपूर्ण तरीक़ों से शासन किया जाता था, जो उन्हें ग़ुलाम बनाकर उनसे खदानों और बाग़ानों में काम कराते थे, और ज़रा भी आनाकानी करने वाले किसी व्यक्ति को मार डालते थे। ज़्यादातर मूल आबादी जल्दी ही मर गई या तो काम की कठोर परिस्थितियों की वजह से या उन ख़तरनाक बीमारियों की वजह से, जो विजेताओं के जहाज़ों में सवार होकर अमेरिका पहुँची थीं। बीस साल के भीतर लगभग समूची मूल कैरेबियाई आबादी का सफ़ाया हो गया। स्पेनी उपनिवेशवादियों ने इस ख़ाली जगह को भरने के लिए अफ़्रीकी ग़ुलामों का आयात करना शुरू कर दिया।

यह जनसंहार एज़्टेक साम्राज्य की ठीक दहलीज़ पर हुआ था, लेकिन जब कोर्तेस साम्राज्य के पूर्वी तट पर उतरा, तब एज़्टेकों को इसके बारे में कोई जानकारी नहीं थी। स्पेनियों का आना पृथ्वी से बाहर की दुनिया से आए अजनबियों के हमले के बराबर था। एज़्टेकों को यक़ीन था कि उन्हें समूची दुनिया की जानकारी थी और वे उसके ज़्यादातर हिस्से पर शासन करते थे। उनके लिए यह बात कल्पना से परे थी कि उनके अधिकार-क्षेत्र से बाहर स्पेनियों जैसी किसी चीज़ का अस्तित्व था। जब कोर्तेस और उसके आदमी आज के ज़माने के वेरा क्रुज़ के तटों पर उतरे, तब यह पहली बार था, जब एज़्टेकों का किन्हीं पूरी तरह से अजनबी लोगों से सामना हुआ था।

एज़्टेक जानते ही नहीं थे कि वे किस तरह प्रतिक्रिया करते। उन्हें यह समझने में

कठिनाई हो रही थी कि ये अजनबी क्या बला थे। तमाम ज्ञात इंसानों से अलग इन अजनबियों की चमड़ी सफ़ेद थी। उनके चेहरों पर ढेरों बाल भी थे। कुछ लोगों के बालों का रंग धूप जैसा था। उनके शरीरों से भयानक बदबू आती थी। (मूल निवासियों की शुचिता, स्पेनी शुचिता से बेहतर थी। जब स्पेनी पहली बार मैक्सिको आए थे, तो वे जहाँ कहीं भी जाते थे, उनके साथ धूपदान थामे मूल निवासियों को भेजा जाता था। स्पेनी इसे दैवीय सम्मान की तरह लेते थे, लेकिन मूल निवासियों के सूत्रों से मिली जानकारी के आधार पर हम जानते हैं कि इन नवागन्तुकों के शरीर की बदबू उनके लिए असहनीय होती थी)।

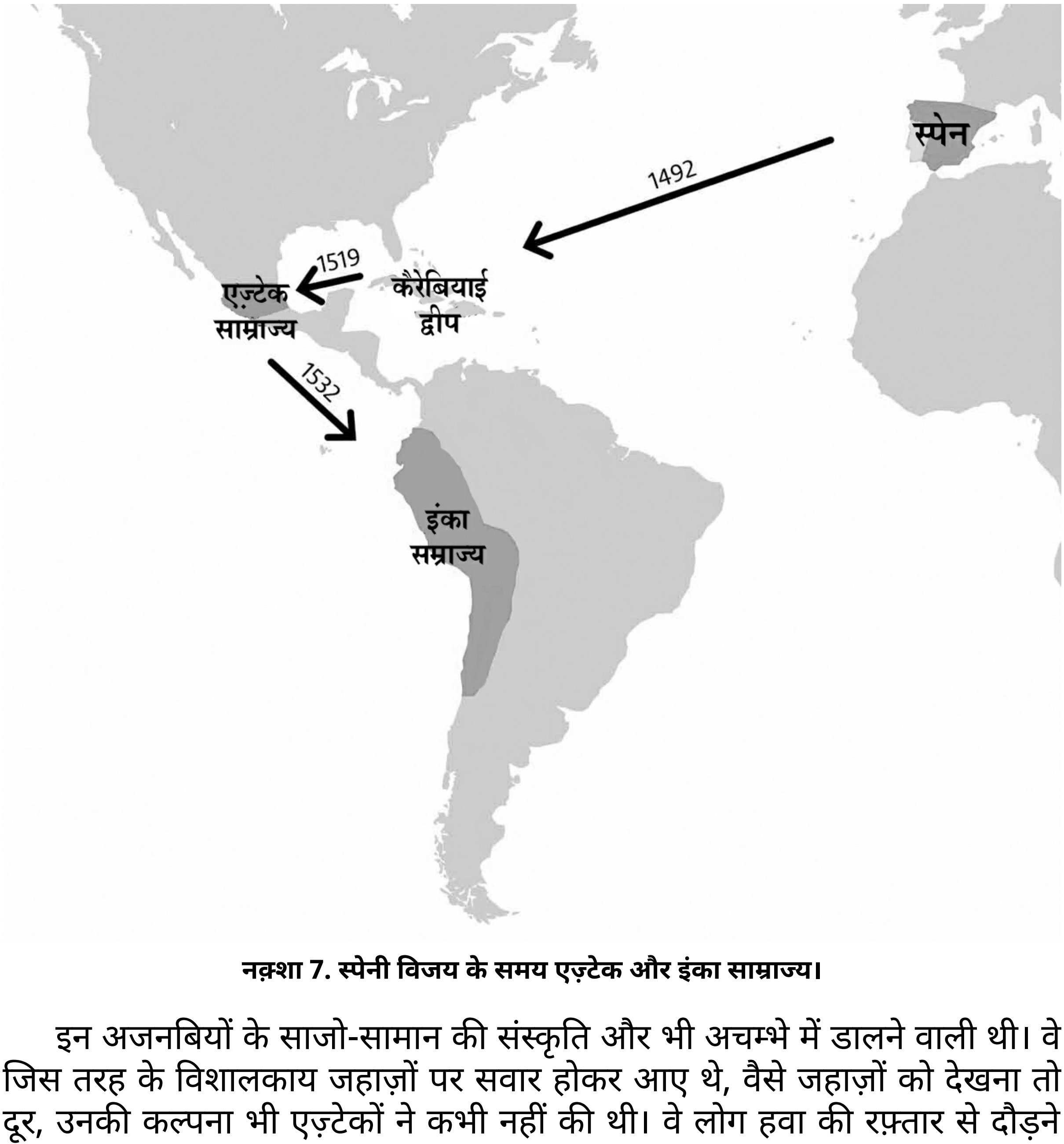

नक़्शा 7. स्पेनी विजय के समय एज़्टेक और इंका साम्राज्य।

इन अजनबियों के साजो-सामान की संस्कृति और भी अचम्भे में डालने वाली थी। वे जिस तरह के विशालकाय जहाज़ों पर सवार होकर आए थे, वैसे जहाज़ों को देखना तो दूर, उनकी कल्पना भी एज़्टेकों ने कभी नहीं की थी। वे लोग हवा की रफ़्तार से दौड़ने वाले विशाल और भयावह जानवरों की सवारी किया करते थे। वे चमकीली धातुई छड़ियों से बिजली और आँधी पैदा कर सकते थे। उनके पास ऐसी चमचमाती लम्बी-लम्बी

तलवारें और अभेद्य बख़्तर थे, जिनके सामने मूल निवासियों की लकड़ी की तलवारें और चकमक पत्थर की नोक वाले भाले किसी काम के नहीं थे।

कुछ एज़्टेक उन्हें देवता समझते थे। कुछ दूसरे उन्हें दैत्य या मृतकों की आत्माएँ या ताक़तवर ओझा कहते थे। एज़्टेक उपलब्ध शक्तियों पर अपना ध्यान केन्द्रित करने और स्पेनियों का सफ़ाया करने के बजाय विचार-विमर्श करते रहे, सुस्त बने रहे और समझौता-वार्ताएँ करते रहे। उन्हें हड़बड़ी की कोई वजह दिखाई नहीं दी। कोर्तेस के साथ 550 स्पेनियों से ज़्यादा लोग नहीं थे। 550 आदमी लाखों के साम्राज्य का आख़िर क्या बिगाड़ सकते थे?

कोर्तेस भी एज़्टेकों के बारे में उतना ही अनभिज्ञ था, लेकिन वह और उसके आदमी अपने प्रतिद्वन्द्वियों के मुक़ाबले में बहुत फ़ायदे की स्थिति में थे। जहाँ एज़्टेकों को इस तरह का कोई अनुभव नहीं था, जो उन्हें इन विचित्र दिखते और बदबू मारते अजनबियों के आगमन के लिए तैयार कर सकता, वहीं स्पेनी जानते थे कि पृथ्वी अज्ञात मानवीय इलाक़ों से भरी पड़ी है और किसी को इस चीज़ की उन जितनी महारत हासिल नहीं है कि वे अजनबी भू-स्थलों में घुसपैठ कर सकें और उन हालात से निपट सकें, जिनसे वे पूरी तरह अपरिचित हैं। आधुनिक यूरोपीय विजेता के लिए आधुनिक यूरोपीय वैज्ञानिक की तरह ही अज्ञात में गोता लगाना उत्तेजना और आनन्द से भर देने वाली चीज़ थी।

इसलिए जब कॉर्तेस ने जुलाई 1519 में धूप से भरे उस तट पर लंगर डाला, उसने हिचकिचाहट नहीं बरती। अपने जहाज़ से विज्ञान-कथा के किसी अन्तरिक्षीय अजनबी की भाँति प्रकट होकर उसने हक्के-बक्के स्थानीय लोगों के सामने ऐलान किया, “हम शान्तिपूर्वक आए हैं। हमें अपने मुखिया के पास ले चलो”। कोर्तेस ने समझाया कि वह स्पेन के महान सम्राट की ओर से आया एक शान्ति-दूत है और उसने एज़्टेक सम्राट मॉन्तेज़ुमा द्वितीय से निजी कूटनीतिक मुलाक़ात का आग्रह किया। (यह एक बेशर्मी से भरा झूठ था। कोर्तेस लालची साहसिक यात्रियों के एक स्वतन्त्र अभियान-दल का नेतृत्व कर रहा था। स्पेन का सम्राट ना तो कोर्तेस को जानता था और ना उसने एज़्टेक के बारे में ही कभी सुना था)। कोर्तेस को एज़्टेक के स्थानीय शत्रुओं ने गाइड, भोजन और कुछ सैन्य सहायता उपलब्ध कराई थी। इसके बाद उसने एज़्टेक राजधानी टेनोटिट्लान के विशाल महानगर की ओर कूच किया।

एज़्टेक लोगों ने इन अजनबियों को राजधानी तक जाने की छूट दी, फिर वे इन अजनबियों को सम्मानपूर्वक सम्राट मॉन्तेज़ुमा से मिलाने ले गए। मुलाक़ात के दौरान कोर्तेस ने इशारा किया और हथियारबन्द स्पेनियों ने मॉन्तेज़ुमा के अंगरक्षकों का वध कर दिया (उन अंगरक्षकों के पास हथियारों के नाम पर सिर्फ़ लकड़ी के डण्डे और पत्थर की तलवारें थीं)। इन सम्मानित मेहमानों ने अपने मेज़बान को क़ैद कर लिया।

कोर्तेस अब एक मुश्किल परिस्थिति में था। उसने सम्राट को तो बन्दी बना लिया था, लेकिन वह दसियों हज़ार प्रचण्ड शत्रु योद्धाओं, लाखों विरोधी नागरिकों और एक ऐसे समूचे महाद्वीप से घिरा था, जिसके बारे में वह वास्तव में कुछ भी नहीं जानता था। उसके हाथ में कुछ सौ स्पेनी थे और सबसे क़रीबी स्पेनी सेना वहाँ से 1,500 किलोमीटर से भी ज़्यादा दूर क्यूबा में थी।

कोर्तेस ने मॉन्तेज़ुमा को महल में बन्दी बनाकर रखा और ऐसा दिखावा किया जैसे

सम्राट आज़ाद और अपने पद पर बना हुआ है और ये 'स्पेनी राजदूत' महज़ मेहमानों की तरह वहाँ मौजूद हों। एज़्टेक साम्राज्य एक अत्यन्त केन्द्रीकृत हुकूमत थी और इस अपूर्व स्थिति ने उसे अशक्त बना दिया। मॉन्तेज़ुमा इस तरह व्यवहार करता रहा, जैसे साम्राज्य पर उसकी हुकूमत जारी थी और एज़्टेक कुलीन वर्ग के लोगों ने उसका हुक्म मानना जारी रखा, जिसका मतलब था कि वे कोर्तेस के आदेशों का पालन कर रहे थे। यह स्थिति कई महीनों तक बनी रही, जिस दौरान कोर्तेस ने मॉन्तेज़ुमा और उसके मुलाज़िमों से पूछताछ की, कई स्थानीय भाषाओं में दुभाषियों को प्रशिक्षित किया और एज़्टेक साम्राज्य तथा उसके अधीन आने वाले विभिन्न क़बीलों, समाजों और नगरों से अच्छी तरह परिचय स्थापित करने के लिए कई छोटे-छोटे स्पेनी अभियान-दल हर दिशा में भेज दिए।

अन्ततः एज़्टेक कुलीन वर्ग ने कॉर्तेस और मोन्तेज़ुमा के ख़िलाफ़ बग़ावत कर दी, एक नया सम्राट नियुक्त किया और स्पेनियों को टेनोटिट्लान से बाहर खदेड़ दिया, लेकिन अब तक साम्राज्य के गढ़ में कई दरारें उभर आई थीं। कोर्तेस ने जो ज्ञान हासिल कर लिया था, उसका इस्तेमाल उसने ताकझाँक कर उन दरारों को और चौड़ा करने और साम्राज्य को अन्दर से तोड़ने में किया। उसने साम्राज्य की अधीनस्थ प्रजा के बहुत से लोगों को एज़्टेक कुलीन वर्ग के ख़िलाफ़ अपने पक्ष में आने को राज़ी कर लिया। इन अधीनस्थ प्रजा जनों ने स्थिति का बहुत ही बुरी तरह से ग़लत आकलन किया। वे एज़्टेकों से नफ़रत ज़रूर करते थे, लेकिन स्पेन के बारे या कैरिबियाई जनसंहार के बारे में कुछ नहीं जानते थे। उन्हें लगा कि स्पेनियों की मदद से वे अपनी गर्दन से एज़्टेक की जकड़ उतार कर फेंक सकेंगे। उनके दिमाग़ में यह बात कभी नहीं आई कि स्पेनी एज़्टेक पर क़ब्ज़ा कर लेंगे। उन्हें यक़ीन था कि अगर कोर्तेस और उसके कुछ सैकड़ा वफ़ादार कोई मुश्किल पैदा करेंगे, तो उन पर आसानी से क़ाबू पा लिया जाएगा। इन बाग़ी प्रजा जनों ने कोर्तेस को दसियों हज़ार स्थानीय सैनिकों की फ़ौज मुहैया कराई, और उस फ़ौज की मदद से कोर्तेस ने टेनोटिट्लान को घेर लिया और नगर को जीत लिया।

इस मुक़ाम पर मैक्सिको में और ज़्यादा स्पेनी सैनिकों और उपनिवेशियों का आगमन शुरू हो गया, जिनमें से कुछ क्यूबा से आ रहे थे और कुछ लम्बा सफ़र करते हुए स्पेन से आ रहे थे। जब तक स्थानीय लोगों को स्थिति का अहसास हुआ, तब तक काफ़ी देर हो चुकी थी। वेरा क्रुज़ पर स्पेनियों के उतरने की एक सदी के भीतर अमेरिका के मूल निवासियों की आबादी लगभग 90 प्रतिशत तक सिकुड़ चुकी थी, जिसकी मुख्य वजह वे अज्ञात बीमारियाँ थीं, जो इन आक्रान्ताओं के साथ अमेरिका पहुँची थीं। जो लोग बचे रह गए, उन्होंने ख़ुद को पूरी तरह से एक ऐसी लालची और नस्लवादी हुकूमत के नियन्त्रण में पाया, जो एज़्टेकों की हुकूमत के मुक़ाबले कई गुना बदतर थी।

कोर्तेस के मैक्सिको में उतरने के दस साल बाद पिज़ारो इंका साम्राज्य के तट पर पहुँचा। उसके पास कोर्तेस से भी कम सैनिक थे - उसके अभियान-दल में मात्र 168 आदमी थे! तब भी पिज़ारो पिछले आक्रमणों से हासिल ज्ञान और अनुभव से लाभान्वित हुआ। इसके विपरीत, इंका को एज़्टेक की नियति के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। पिज़ारो ने कोर्तेस की हूबहू नक़ल की। उसने ख़ुद को स्पेन के सम्राट का शान्तिदूत घोषित किया, इंका के शासक एतावल्पा को कूटनीतिक वार्ता के लिए आमन्त्रित किया

और फिर उसका अपहरण कर लिया। पिज़ारो स्थानीय सहयोगियों की मदद से इस निष्क्रिय हो चुके साम्राज्य को जीतने की ओर बढ़ा। अगर इंका साम्राज्य की अधीनस्थ प्रजाओं को मैक्सिको के निवासियों की नियति की जानकारी रही होती, तो उन्होंने अपनी क़िस्मत इन आक्रान्तों के हाथों में ना लुटाई होती, लेकिन वे जानते नहीं थे।

अमेरिका के मूल निवासी अपनी स्थानीयतावादी मनोवृत्ति की वजह से भारी क़ीमत चुकाने वाले अकेले लोग नहीं थे। एशिया के महान साम्राज्यों - ऑटोमन, साफ़ाविद, मुग़ल और चीनी साम्राज्यों - को भी बहुत जल्दी यह सुनने को मिल गया था कि यूरोपीय लोगों ने कोई बड़ी चीज़ ढूँढ़ निकाली है, लेकिन इन खोजों में उन्होंने बहुत कम दिलचस्पी दिखाई। उन्होंने यह मानना जारी रखा कि दुनिया एशिया के चारों और चक्कर लगाती है, अमेरिका या अटलांटिक और प्रशान्त के नए ओशियानिक मार्गों पर नियन्त्रण के लिए यूरोपीय लोगों के साथ होड़ करने की कोई कोशिश नहीं की। स्कॉटलैंड और डेनमार्क सरीखे अदने से राज्यों तक ने कुछ 'खोजो और जीतो-अभियान-दल' अमेरिका में भेजे थे, लेकिन इस्लामी दुनिया, हिन्दुस्तान या चीन से खोजबीन या फ़तह के लिए ऐसा एक भी अभियान-दल अमेरिका नहीं भेजा गया। जापान पहली ऐसी ग़ैर-यूरोपीय शक्ति थी, जिसने एक सैन्य अभियान-दल अमेरिका भेजने की कोशिश की थी। यह 1942 में हुआ था, जब एक जापानी अभियान-दल ने अलास्का तट के दो छोटे-छोटे द्वीपों किस्का और एट्टू, को जीता था और इस प्रक्रिया में संयुक्त राज्य अमेरिका के दस सैनिकों और एक कुत्ते को क़ैद कर लिया था। जापानी लोग मुख्य भू-भाग के क़रीब कभी नहीं पहुँच सके।

यह तर्क देना बहुत मुश्किल है कि ऑटोमन या चीनी बहुत ज़्यादा दूर थे या उनके पास टेक्नोलॉजिकल, आर्थिक या सैन्य साधनों की कमी थी। जिन संसाधनों ने झेंग ही को 1420 में पूर्वी अफ़्रीका पहुँचा दिया था, वे अमेरिका पहुँचने के लिए पर्याप्त रहे होने चाहिए थे। बात सिर्फ़ यह थी कि चीनियों की कोई दिलचस्पी ही नहीं थी। अमेरिका को दर्शाने वाला पहला चीनी नक़्शा 1602 के पहले तक जारी नहीं हुआ था - और तब भी वह एक यूरोपीय मिशनरी द्वारा जारी किया गया था!

300 सालों तक यूरोपीय लोगों ने अमेरिका और ओशियाना, अटलांटिक और प्रशान्त महासागर में निर्विवाद आधिपत्य का आनन्द उठाया। इस दौरान उन इलाक़ों के एकमात्र उल्लेखनीय संघर्ष विभिन्न यूरोपीय शक्तियों के बीच हुए थे। यूरोपीय लोगों द्वारा बटोरी गई दौलत और संसाधनों ने अन्ततः उन्हें एशिया पर हमला करने, उसके साम्राज्यों को परास्त करने और उसे अपने बीच बाँट लेने में सक्षम बनाया। जब तक फ़ारसी, हिन्दुस्तानी और चीनी जागते और ध्यान देना शुरू करते, तब तक काफ़ी देर हो चुकी थी।

ग़ैर-यूरोपीय संस्कृतियों ने बीसवीं सदी में जाकर ही एक वास्तविक भूमण्डलीय दृष्टि अपनाई। ये उन निर्णायक कारकों में से एक है, जिसने यूरोपीय वर्चस्व का ख़ात्मा किया। इसीलिए अल्जीरियाई स्वाधीनता युद्ध (1954-62) में अल्जीरियाई गुरिल्लों ने तादाद, टेक्नोलॉजी और आर्थिक दृष्टि से ज़बरदस्त बढ़त के साथ फ़्रांसीसी सेना को परास्त किया। अल्जीरियाई इसलिए भारी पड़े क्योंकि उन्हें विश्वस्तरीय उपनिवेशवाद-विरोधी समूह का समर्थन प्राप्त था, और इसलिए कि उन्होंने इस बात की योजना तैयार की कि किस तरह विश्व मीडिया और साथ ही स्वयं फ़्रांस के जनमत को अपने ध्येय के लिए

इस्तेमाल किया जाए। छोटे-से उत्तरी वियतनाम ने भीमकाय अमेरिका को जिस पराजय का स्वाद चखाया था, वह भी ऐसी ही रणनीति पर आधारित थी। गुरिल्ला बलों ने दर्शा दिया था कि अगर एक स्थानीय संघर्ष वैश्विक ध्येय की शक्ल ले लेता है, तो महाशक्तियों को भी पराजित किया जा सकता है। इस पर विचार करना दिलचस्प है कि उस दशा में क्या हुआ होता अगर मॉन्तेज़ुमा स्पेन के जनमत को अपने पक्ष में मोड़ सका होता और स्पेन के प्रतिद्वन्द्वियों - पुर्तगाल, फ़्रांस या ऑटोमन साम्राज्य का सहयोग हासिल कर सका होता।

दुर्लभ मकड़ियाँ और विस्मृत लिपि

आधुनिक विज्ञान और आधुनिक साम्राज्य इस अनवरत अहसास से प्रेरित थे कि उनके ज्ञान के दायरे के परे कोई महत्त्वपूर्ण चीज़ थी, जो उनकी प्रतीक्षा कर रही थी - कोई ऐसी चीज़ जिसे खोजना और अपने नियन्त्रण में ले लेना बेहतर होता। लेकिन विज्ञान और साम्राज्य का रिश्ता और भी गहरा था। साम्राज्य-निर्माताओं की सिर्फ़ प्रेरणा ही नहीं, बल्कि आचरण भी वैज्ञानिकों की प्रेरणाओं और आचरणों से गुँथे हुए थे। आधुनिक यूरोपीय लोगों के लिए साम्राज्य खड़ा करना एक वैज्ञानिक परियोजना थी, वहीं वैज्ञानिक ज्ञान अनुशासन को स्थापित करना एक साम्राज्यवादी परियोजना थी।

जब मुसलमानों ने हिन्दुस्तान को फ़तह किया था, तो वे हिन्दुस्तान के इतिहास का व्यवस्थित अध्ययन करने के लिए पुरातत्त्वविदों को, हिन्दुस्तानी संस्कृति का अध्ययन करने के लिए मानव शास्त्रियों को, हिन्दुस्तानी मिट्टी का अध्ययन करने के लिए भूगर्भशास्त्रियों को या हिन्दुस्तानी जीव-जगत का अध्ययन करने के लिए जीव विज्ञानियों को अपने साथ लेकर नहीं आए थे। जब अँग्रेज़ों ने हिन्दुस्तान को जीता, तो उन्होंने ये सारे काम किए। 10 अप्रैल 1802 को हिन्दुस्तान के महासर्वेक्षण (द ग्रेट सर्वे ऑफ़ इंडिया) का आगाज़ हुआ था। यह साठ सालों तक चला। दसियों हज़ारों स्थानीय मज़दूरों, अध्येताओं और गाइडों की मदद से अँग्रेज़ों ने सावधानीपूर्वक हिन्दुस्तान का नक़्शा तैयार किया, सरहदें खींचीं, दूरियाँ नापीं, यहाँ तक कि पहली बार एवरेस्ट और हिमालय की दूसरी चोटियों की ठीक-ठीक ऊँचाई का हिसाब लगाया। अँग्रेज़ों ने हिन्दुस्तानी प्रान्तों के सैन्य संसाधनों और उनकी सोने की खदानों के स्थलों की छानबीन तो की ही, लेकिन उन्होंने हिन्दुस्तान की मकड़ियों की दुर्लभ प्रजातियों की जानकारी भी इकट्ठा करने, रंग-बिरंगी तितलियों का कैटलॉग तैयार करने, विलुप्त हिन्दुस्तानी भाषाओं के प्रचीन स्रोतों का पता लगाने और विस्मृत खण्डहरों को खोदने का कठिन परिश्रम भी किया।

मोहेनजो-दड़ो उस सिन्धु घाटी सभ्यता का एक प्रमुख नगर था, जो 3000 ईसा पूर्व में फली-फूली थी और ईसा पूर्व 1900 के आस-पास नष्ट हुई थी। अँग्रेज़ों के पहले के हिन्दुस्तान के किसी शासक ने - मौर्यों, गुप्तों, दिल्ली के सुल्तानों और महान मुग़लों ने भी - इन खण्डहरों की ओर दोबारा नज़रें उठाकर नहीं देखा था, लेकिन एक ब्रिटिश पुरातात्त्विक सर्वेक्षण ने 1922 में इस स्थल की ओर ध्यान दिया। तब एक अँग्रेज़ दल ने इसकी खुदाई की और हिन्दुस्तान की पहली महान सभ्यता का पता लगाया, जिसके बारे में किसी हिन्दुस्तानी को जानकारी नहीं थी।

अँग्रेज़ों की वैज्ञानिक जिज्ञासा का एक और प्रभावशाली उदाहरण क्यूनीफ़ॉर्म लिपि का पढ़ा जाना था। यह वह मुख्य लिपि थी, जिसका इस्तेमाल समूचे मध्य पूर्व में लगभग 3,000 सालों तक किया जाता रहा था, लेकिन इसे पढ़ सकने वाला आख़िरी इंसान शायद ईसा की पहली सदी की शुरुआत में कभी मर चुका था। तब के बाद से इस इलाक़े के निवासियों को अक्सर स्मारकों, शिला-स्तम्भों, प्राचीन खण्डहरों और बर्तनों के भग्नावशेषों पर क्यूनीफ़ॉर्म में उकेरी गई इबारतें देखने को मिलती रहती थीं, लेकिन उन्हें कोई जानकारी नहीं थी कि उन विचित्र नुकीली खरोंचों को कैसे पढ़ा जाए और जहाँ तक हमारी जानकारी है, उन्होंने कभी कोशिश भी नहीं की थी। क्यूनीफ़ॉर्म की ओर यूरोपीय लोगों का ध्यान 1618 में गया, जब फ़ारस में स्पेन का राजदूत प्राचीन पर्सीपोलिस के खण्डहरों को देखने गया, जहाँ उसने ऐसी इबारतें अंकित देखीं, जिनका मतलब उसे कोई नहीं समझा सका। इस अज्ञात लिपि की ख़बर यूरोपीय विद्वानों के बीच फैल गई और उसने उनकी उत्सुकता को भड़काया। 1657 में यूरोपीय अध्येताओं ने पर्सीपोलिस के क्यूनीफ़ॉर्म मज़मूनों की पहली प्रतिलिपि प्रकाशित की। इसके बाद एक के बाद एक और भी प्रतिलिपियाँ प्रकाश में आती गईं और कोई दो सदियों तक पश्चिम के अध्येता उन्हें पढ़ने की कोशिश करते रहे। कोई भी कामयाब नहीं हुआ।

1830 में हेनरी रॉलिन्सन नामक एक अँग्रेज़ अधिकारी को फ़ारस के बादशाह की फ़ौज को यूरोपीय शैली में प्रशिक्षित करने फ़ारस भेजा गया। अपने ख़ाली वक़्त में रॉलिन्सन फ़ारस की यात्राएँ करता था, और उसी दौरान एक दिन उसे स्थानीय गाइड ज़ग्रोस पर्वत-शृंखला के एक टीले पर ले गए और वहाँ उन्होंने उसे विशाल बेहिस्टन शिलालेख दिखाया। वह लगभग पन्द्रह मीटर ऊँचा और पच्चीस मीटर चौड़ा था और उसे 500 ईसा पूर्व के आस-पास शहंशाह डारियस के आदेश पर उस टीले के अग्रभाग पर उत्कीर्ण किया गया था। वह क्यूनीफ़ॉर्म लिपि में तीन भाषाओं में लिखा हुआ था : फ़ारसी, इलामाइट और बेबिलोनियन। इस शिलालेख से स्थानीय आबादी भली-भाँति परिचित थी, लेकिन इसे पढ़ कोई नहीं सकता था। रॉलिन्सन को यक़ीन हो गया कि अगर वह उस लिखावट को पढ़ सका, तो इससे वह और अन्य अध्येता उन अनेक शिलालेखों और इबारतों को पढ़ने में सक्षम हो सकेंगे, जिनकी खोज उस समय समूचे मध्य पूर्व में हो रही थी और इस तरह वे एक प्राचीन और विस्मृत दुनिया का दरवाज़ा खोल सकेंगे।

इन अक्षरों को पढ़ने की दिशा में पहले क़दम के तौर पर इनकी एक ऐसी हूबहू नक़ल तैयार करना ज़रूरी था, जिसे यूरोप भेजा जा सकता। रॉलिन्सन ने मौत को चुनौती देते हुए यह काम किया और वह उन विचित्र अक्षरों की नक़ल तैयार करने उस खड़े ढलान पर चढ़ गया। उसने अपनी मदद के लिए कई स्थानीय लोगों को काम पर रखा, जिनमें सबसे उल्लेखनीय एक कुर्द लड़का था, जो शिलालेख के ऊपरी हिस्से की नक़ल तैयार करने टीले के उस हिस्से तक चढ़ गया, जो सबसे ज़्यादा पहुँच से परे था। 1847 में यह अभियान पूरा हुआ, और एक सम्पूर्ण और हूबहू नक़ल यूरोप भेज दी गई।

रॉलिन्सन अपनी इस कामयाबी से सन्तुष्ट होकर नहीं रह गया। एक सैनिक अधिकारी के तौर पर उसे सैन्य और राजनैतिक मुहिमों को भी पूरा करना ज़रूरी था, लेकिन जब भी उसे थोड़ा भी ख़ाली वक़्त मिलता, वह उस लिपि को लेकर माथापच्ची करता रहता। उसने एक के बाद एक कई तरीक़े अपनाए, और अन्त में शिलालेख के पुरानी फ़ारसी में

लिखे गए हिस्से को पढ़ने में कामयाब हो गया। ये सबसे आसान था, क्योंकि पुरानी फ़ारसी उस नई फ़ारसी से बहुत ज़्यादा भिन्न नहीं थी, जिसे रॉलिन्सन बख़ूबी समझता था। शिलालेख के इस पुरानी फ़ारसी वाले हिस्से की समझ ने उसे वह कुंजी उपलब्ध करा दी, जो उसे इलामाइट और बेबिलोनियन हिस्सों के रहस्य का ताला खोलने के लिए ज़रूरी थी। वह विशाल दरवाज़ा एक झटके से खुल गया और उसके अन्दर से प्राचीन किन्तु जीवित स्वरों का एक प्रवाह फूट पड़ा - सुमेरियाई बाज़ारों की हलचल, असीरियाई शहंशाहों के फ़रमान, बेबिलोनियाई नौकरशाहों की बहसें। रॉलिन्सन जैसे आधुनिक यूरोपीय साम्राज्यवादियों के प्रयासों के बग़ैर हमें प्राचीन मध्य पूर्वी साम्राज्यों की नियति के बारे में कोई ख़ास जानकारी ना मिल सकी होती।

एक अन्य उल्लेखनीय साम्राज्यवादी अध्येता था विलियम जोन्स। जोन्स हिन्दुस्तान में सुप्रीम कोर्ट ऑफ़ बंगाल के जज के रूप में काम करने सितम्बर 1783 में हिन्दुस्तान आया था। वह हिन्दुस्तान के आश्चर्यों से इतना सम्मोहित था कि अपने हिन्दुस्तान आगमन के छह महीने के भीतर ही उसने एशियाटिक सोसायटी की स्थापना कर दी थी। यह अकादमिक संगठन एशिया की, और ख़ास तौर से हिन्दुस्तान की संस्कृतियों, इतिहासों और समाजों के अध्ययन के लिए समर्पित था। दो साल के भीतर जोन्स ने द संस्कृत लैंगग्विज प्रकाशित कर दी, जो तुलनात्मक भाषाविज्ञान की नींव स्थापित करने वाली पुस्तक थी।

इस पुस्तक में जोन्स ने संस्कृत, प्राचीन भारतीय भाषा जो हिन्दू अनुष्ठानों की पवित्र भाषा बन चुकी थी, और ग्रीक तथा लैटिन भाषाओं के बीच आश्चर्यजनक समानताओं की ओर, साथ ही इन सारी भाषाओं और गोथिक, सेल्टिक, प्राचीन फ़ारसी, जर्मन, फ़्रांसीसी और अँग्रेज़ी के बीच की समानताओं की ओर संकेत किया है। तदनुसार संस्कृत का माँ के लिए प्रयुक्त शब्द 'मातृ' लैटिन में माँ के प्रयुक्त 'mater' है, और प्राचीन सेल्टिक में 'mathir' है। जोन्स ने अनुमान लगाया कि इन सारी भाषाओं का एक साझा उद्गम होना चाहिए, इन्हें किसी एक ही ऐसी प्राचीन पूर्वज भाषा से विकसित होना चाहिए, जो अब विस्मृत हो चुकी है। इस तरह वह पहला व्यक्ति था, जिसने उस चीज़ की पहचान की, जिसे बाद में इंडो-यूरोपियन भाषा परिवार के नाम से जाना गया।

द संस्कृत लैंगग्विज एक प्रभावशाली अध्ययन था, सिर्फ़ जोन्स की साहसिक (और सटीक) परिकल्पना की वजह से नहीं, बल्कि उस व्यवस्थित पद्धति की वजह से भी, जो उसने भाषाओं की तुलना करने के लिए विकसित की थी। इस पद्धति को दूसरे अध्येताओं ने भी अपनाया, जिससे वे दुनिया की तमाम भाषाओं के विकास का व्यवस्थित अध्ययन करने में सक्षम हुए।

भाषाविज्ञान को उत्साहपूर्ण साम्राज्यवादी समर्थन हासिल हुआ। यूरोपीय साम्राज्यों का विश्वास था कि कारगर ढंग से शासन करने के लिए उन्हें अपनी अधीनस्थ प्रजाओं की भाषाओं और संस्कृतियों का समुचित ज्ञान होना चाहिए। हिन्दुस्तान आने वाले अँग्रेज़ अधिकारियों से अपेक्षा की जाती थी कि वे तीन साल कलकत्ता कॉलेज में बिताएँ, जहाँ उन्हें अँग्रेज़ी क़ानून के साथ-साथ हिन्दू और मुस्लिम क़ानून, ग्रीक और लैटिन के साथ-साथ संस्कृत, उर्दू और फ़ारसी और गणित, अर्थशास्त्र तथा भूगोल के साथ-साथ तमिल,

बंगाली और हिन्दुस्तानी संस्कृति का अध्ययन करना होता था। भाषाविज्ञान का अध्ययन स्थानीय भाषाओं की संरचना और व्याकरण को समझने में अकूत मदद उपलब्ध कराता था।

विलियम जोन्स और हेनरी रॉलिन्सन जैसे लोगों के काम की बदौलत यूरोपीय विजेता अपने साम्राज्यों को बहुत अच्छी तरह से समझते थे। दरअसल, उससे कहीं ज़्यादा बेहतर ढंग से जितना पहले के विजेता समझते थे, या जितना स्वयं स्थानीय आबादी समझती थी। उन्हें अपने से बेहतर ज्ञान का ज़ाहिर तौर पर व्यावहारिक लाभ मिला। इस तरह के ज्ञान के बग़ैर हास्यास्पद रूप से छोटी-सी संख्या में अँग्रेज़ दो सदियों तक सैकड़ों लाखों हिन्दुस्तानियों पर हुकूमत करने, उनका दमन और शोषण करने में कामयाब नहीं हो सके होते। समूची उन्नीसवीं और आरम्भिक बीसवीं सदी के दौरान 5,000 से कम अँग्रेज़ अधिकारी, लगभग 40,000-70,000 अँग्रेज़ सैनिक, और शायद 100,000 अँग्रेज़ व्यापारी, पिछलग्गू, बीवियाँ और बच्चे 3000 लाख हिन्दुस्तानियों पर विजय प्राप्त करने और उन पर शासन करने के लिए पर्याप्त थे।

लेकिन ये व्यावहारिक फ़ायदे एकमात्र वजह नहीं थे, जिससे कि साम्राज्यों ने भाषाविज्ञान, वनस्पतिविज्ञान, भूगोल और इतिहास के अध्ययन के लिए पैसा उपलब्ध कराया था। यह तथ्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं था कि विज्ञान साम्राज्यों को विचारधारात्मक औचित्य उपलब्ध कराता था। आधुनिक यूरोपीय लोगों को यह विश्वास हो गया था कि नया ज्ञान हासिल करना हमेशा अच्छा होता है। साम्राज्यों द्वारा निरन्तर नए ज्ञान के प्रवाह को उत्पन्न करते रहने का तथ्य उन्हें प्रगतिशील और विश्वसनीय उद्यमों की छवि प्रदान करता था। आज भी, भूगोल, पुरातत्त्व और वनस्पतिविज्ञान जैसे विज्ञानों के इतिहास यूरोपीय साम्राज्यों को (कम से परोक्ष रूप से) श्रेय देने से बच नहीं सकते। वनस्पतिविज्ञान के इतिहास के पास ऑस्ट्रेलियाई मूल निवासियों की पीड़ा के बारे कहने के लिए लगभग कुछ नहीं है, लेकिन जेम्स कुक और जोसेफ़ बैंक्स के बारे कहने के लिए उनके पास कुछ ना कुछ ज़रूर होता है।

इसके अतिरिक्त, साम्राज्यों द्वारा एकत्र किए गए नए ज्ञान ने, कम से कम सैद्धान्तिक स्तर पर, यह मुमकिन किया कि जीती गई आबादियों को उससे लाभान्वित किया जा सके और ‘प्रगति’ का लाभ उन्हें मिल सके - उन्हें चिकित्सा और शिक्षा सुलभ कराई जा सके, उनके लिए रेलमार्ग और नहरें बनाई जा सकें, उनके लिए न्याय और समृद्ध सुनिश्चित की जा सके। साम्राज्यवादियों का दावा था कि उनके साम्राज्य महज़ शोषण के विराट उद्यम नहीं हैं, बल्कि ग़ैर-यूरोपीय प्रजातियों की ख़ातिर संचालित की गई परोपकारी परियोजनाएँ हैं - रुडयार्ड किपलिंग के शब्दों में ‘द वाइट मैन्स बर्डन’ :

> टेक अप द वाइट मैन्स बर्डन -
> सेंड फ़ॉर्थ द बेस्ट यी ब्रीड -
> गो बाइंड योर सन्स टु एग्ज़ाइल
> टु सर्व योर कैप्टिव्ज़ नीड;
> टु वेट इन हेवी हार्नेस,
> ऑन फ़्टर्ड फ़्रोक ऐंड वाइल्ड-
> योर न्यू-कॉट, सलन पीपल्स,
> हाफ़-डेविल ऐंड हाफ़ चाइल्ड।

निश्चय ही, वास्तविकताओं ने अक्सर इस मिथक को खोखला सबित किया था। अँग्रेज़ों ने 1764 में हिन्दुस्तान के सबसे समृद्ध प्रान्त बंगाल को जीता था। नए शासकों की दिलचस्पी ख़ुद को सम्पन्न बनाने के अलावा और किसी चीज़ में नहीं थी। उन्हें एक ऐसी विनाशकारी आर्थिक नीति अपनाई थी, जो कुछ साल बाद बंगाल के विराट अकाल का कारण बनी थी। इस अकाल की शुरुआत 1769 में हुई, 1770 में यह विनाशकारी स्तर पर जा पहुँचा, और 1773 तक जारी रहा। लगभग 100 लाख बंगाली, यानी प्रान्त की आबादी के एक-तिहाई लोग इस विपत्ति का शिकार होकर मरे थे।

सच तो यह है कि ना तो दमन और शोषण का आख्यान ही तथ्यों से पूरी तरह से मेल खाता था और ना ही 'वाइट मेन्स बर्डन' का आख्यान। यूरोपीय साम्राज्यों ने बड़े पैमाने पर ऐसा बहुत कुछ भिन्न-भिन्न किया था कि आप उनके बारे में जो कुछ भी कहना चाहें, आप उसके पक्ष में ढेर सारे उदाहरण पा सकते हैं। आपको लगता है कि ये साम्राज्य दुनिया भर में मौत, दमन और अन्याय को फैलाने वाले शैतानी दैत्य थे? आप इनके गुनाहों से एक समूचा विश्वकोश आसानी से भर सकते हैं। आप यह कहना चाहते हैं कि उन्होंने नई मशीनों, बेहतर आर्थिक परिस्थितियों और ज़्यादा सुरक्षा उपलब्ध कराते हुए अपने अधीनस्थ लोगों के हालात सुधारे? आप उनकी उपलब्धियों से एक और विश्वकोश भर सकते हैं। विज्ञान के साथ अपने घनिष्ठ सहयोग के कारण उनके पास इतनी शक्तियाँ थीं और उन्होंने दुनिया को इस हद तक बदल दिया था कि शायद उन पर आसानी से शुभ या अशुभ का लेबल नहीं चिपकाया जा सकता। उन्होंने दुनिया को वह शक्ल दी है, जिस शक्ल में हम उसे जानते हैं, जिसमें वे विचारधाराएँ भी शामिल हैं, जिनकी मदद से हम उन्हें जाँचते हैं।

लेकिन विज्ञान का उपयोग साम्राज्यवादियों द्वारा कहीं ज़्यादा भयावह उद्देश्यों के लिए भी किया गया था। जीवविज्ञानियों, मानव-शास्त्रियों और भाषाविज्ञानियों तक ने इस बात के वैज्ञानिक सबूत उपलब्ध कराए कि यूरोपीय लोग तमाम दूसरी नस्लों से श्रेष्ठ हैं, और इसलिए इन दूसरी नस्लों पर हुकूमत करना उनका (अगर कर्तव्य नहीं तो) हक़ है। विलियम जोन्स की इस स्थापना के बाद कि सारी इंडो-यूरोपियन भाषाएँ एक ही प्राचीन भाषा की वंशज हैं, बहुत-से अध्येता यह पता लगाने को उत्सुक हो उठे थे कि उस भाषा को बोलने वाले लोग कौन रहे थे। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि सबसे शुरुआती संस्कृत-भाषी लोग, जिन्होंने 3,000 साल पहले मध्य एशिया से आकर हिन्दुस्तान पर आधिपत्य स्थापित किया था, ख़ुद को आर्य कहते थे। प्राचीनतम फ़ारसी भाषा बोलने वाले ख़ुद को अइरीया कहते थे। परिणामतः यूरोपीय अध्येताओं ने यह अनुमान लगाया कि संस्कृत और फ़ारसी को (साथ ही ग्रीक, लैटिन, गॉथिक और सेल्टिक को) जन्म देने वाली आद्य भाषा को बोलने वाले लोग निश्चय ही ख़ुद को आर्य कहते होंगे। क्या यह मात्र संयोग हो सकता था कि हिन्दुस्तानी, फ़ारसी, ग्रीक और रोमन जैसी शानदार सभ्यताओं की स्थापना करने वाले सारे के सारे लोग ख़ुद को आर्य कहते थे?

इसके बाद, अँग्रेज़, फ्रांसीसी और जर्मन अध्येताओं ने मेहनती आर्यों से सम्बन्धित भाषावैज्ञानिक सिद्धान्त का प्राकृतिक वरण के डार्विन के सिद्धान्त से मेल कराते हुए यह प्रतिपादित किया कि आर्य महज़ एक भाषाई समूह नहीं था, बल्कि एक जैविक सत्ता - एक नस्ल - थी। और महज़ कोई भी नस्ल नहीं, बल्कि लम्बे, महीन बालों वाले, नीली

आँखों वाले, मेहनती, और अतिशय बुद्धिमान मनुष्यों की एक नस्ल, जो समूची दुनिया में संस्कृति की बुनियाद रखने के लिए उत्तर के धुँधलके से प्रकट हुई थी। खेद की बात यह थी कि जिन आर्यों ने हिन्दुस्तान और फ़ारस पर आक्रमण किया था, उन्होंने इन मुल्क़ों के स्थानीय निवासियों से विवाह कर लिए और इस तरह अपना गौर वर्ण और सुनहरे भूरे बाल और इन्हीं के साथ-साथ अपनी बुद्धि मत्ता और कर्मठता को गँवा दिया। नतीज़तन, हिन्दुस्तान और फ़ारस की सभ्यताओं का क्षरण हुआ। दूसरी तरफ़, यूरोप में आर्यों ने अपनी नस्लीय शुद्धता को बरकरार रखा। यही वजह है कि यूरोपीय लोग दुनिया को जीतने में कामयाब रहे, और यही वजह थी कि वे दुनिया पर हुकूमत करने के क़ाबिल थे - यदि उन्होंने हीन नस्लों के साथ मिश्रित ना होने की सावधानी नहीं बरती होती, तो ऐसा नहीं हो पाता।

इस क़िस्म की नस्लवादी परिकल्पनाएँ, जो कई दशकों तक प्रतिष्ठित और सम्मानित रहीं, वैज्ञानिकों और राजनेताओं के बीच समान रूप से अभिशाप बन गई हैं। लोग नस्लवाद के ख़िलाफ़ वीरतापूर्ण संघर्ष जारी रखे हुए हैं, बिना इस ओर ध्यान दिए कि लड़ाई का मैदान बदल चुका है और साम्राज्यवादी विचारधारा में जो जगह नस्लवाद की हुआ करती थी, वह जगह अब ‘संस्कृतिवाद’ (कल्चरिज़्म) ने ले ली है। इस तरह का कोई शब्द नहीं है, लेकिन इस शब्द का चयन हम अपने वक़्त के लिए कर रहे हैं। आज के अभिजात्य वर्ग में विभिन्न मनुष्य-समुदायों के बीच तुलनात्मक योग्यताओं के बारे में किए जाने वाले दावे नस्लों के बीच के जैविक भेदों के बजाय संस्कृतियों के बीच के ऐतिहासिक भेदों की पदावली का सहारा लेते हैं। अब हम यह नहीं कहते कि “यह तो उनके ख़ून में है”। हम कहते हैं, “यह उनकी संस्कृति में है”।

इस तरह अपने मुल्क़ में मुसलमानों के बसने का विरोध करने वाले यूरोप के दक्षिण पन्थी दल नस्लपरक पदावली से परहेज़ करने का ध्यान रखते हैं। मेग़ीन ले पेन के भाषण लिखने वालों ने अगर यह सुझाव दिया होता कि फ़्रट नेशनल की नेता टेलिविज़न पर जाकर यह घोषणा करें कि “हम नहीं चाहते कि वे हीन सीमाइट (मुसलमान) हमारे आर्य रक्त को पतला करें और हमारी आर्य सभ्यता को बरबाद करें”, तो इन भाषण लिखने वालों को तुरन्त निकाल बाहर कर दिया जाता। इसके बजाय, फ़्रेंच फ़्रट नेशनल, द डच पार्टी फ़ॉर फ़्रीडम, द अलायंस फ़ॉर द फ़्यूचर ऑफ़ ऑस्ट्रिया और इन जैसे दूसरे संगठन यह कहने की कोशिश करते हैं कि यूरोप में विकसित हुई पश्चिमी संस्कृति लोकतान्त्रिक मूल्यों, सहिष्णुता और लैंगिक बराबरी के लिए जानी जाती है, जबकि मध्य पूर्व में विकसित हुई मुस्लिम संस्कृति के लक्षणों में श्रेणीपरक राजनीति, कट्टरतावाद और स्त्री-द्वेष जैसी प्रवृत्तियाँ शामिल हैं। चूँकि ये दोनों संस्कृतियाँ इतनी अलग हैं, और चूँकि ज़्यादातर मुसलमान प्रवासी पश्चिमी मूल्यों को अपनाने को लेकर अनिच्छुक (और शायद असमर्थ) हैं, इसलिए उन्हें देश में घुसने की इजाज़त नहीं दी जानी चाहिए, क्योंकि कहीं ऐसा ना हो कि वे हमारे अन्दरूनी टकरावों को भड़काकर यूरोपीय लोकतन्त्र और उदारतावाद को खोखला कर दें।

इस तरह के संस्कृतिवादी तर्क मानविकी और सामाजिक विज्ञानों के वैज्ञानिक अध्ययनों द्वारा उपलब्ध कराए जाते हैं, जो तथाकथित संस्कृतियों के टकराव और विभिन्न संस्कृतियों के बीच के बुनियादी भेदों पर बल देते हैं। यह सही है कि इस तरह के

तर्कों को सभी इतिहासकार और मानवशास्त्री स्वीकार नहीं करते या इन तर्कों के राजनैतिक इस्तेमाल का समर्थन नहीं करते, लेकिन जहाँ आज के जीव-विज्ञानियों को नस्लवाद को नकारने में कोई कठिनाई नहीं होती, और वे आसानी से यह समझा देते हैं कि आज के समय की इंसानी आबादियों के बीच के जैविक फ़र्क़ बहुत मामूली क़िस्म के हैं, वहीं संस्कृतिवाद को नकारना इतिहासकारों और मानवशास्त्रियों के लिए मुश्किल होता है। आख़िरकार, अगर इंसानी संस्कृतियों के बीच के भेद मामूली हैं, तो हमें उनके अध्ययन के लिए इतिहासकारों और मानवशास्त्रियों को भुगतान क्यों करना चाहिए?

वैज्ञानिकों ने व्यावहारिक ज्ञान, विचारधारात्मक औचित्य और टेक्नोलॉजिकल उपकरणों से युक्त साम्राज्यवादी परियोजना मुहैया कराई है। यह अत्यन्त सन्देहास्पद है कि इस योगदान के बिना यूरोपीय दुनिया को जीत सके होते। विजेताओं ने इस अहसान के बदले वैज्ञानिकों को सूचना और संरक्षण उपलब्ध कराया है, उन्हें तमाम तरह की अजीबो-ग़रीब और आकर्षक परियोजनाओं के लिए धन और संसाधन उपलब्ध कराए हैं और दुनिया के सुदूर कोनों तक सोच-विचार के वैज्ञानिक ढंग का प्रचार-प्रसार किया है। इसमें सन्देह है कि साम्राज्यवादी समर्थन के बिना आधुनिक विज्ञान इतनी तरक्की कर सका होता। ऐसे बहुत गिने-चुने वैज्ञानिक अनुशासन हैं जिन्होंने अपने जीवन की शुरुआत साम्राज्यवादी उन्नति के ग़ुलामों के तौर पर नहीं की थी और जिनकी खोजों, संग्रहों, इमारतों और स्कॉलरशिप के बड़े हिस्से सेना के अधिकारियों, नौसेना के कप्तानों और साम्राज्वादी गवर्नरों की उदारतापूर्ण मदद के ऋणी नहीं हैं।

ज़ाहिर है कि यह पूरा क़िस्सा नहीं है। विज्ञान को सिर्फ़ साम्राज्यों का ही नहीं, बल्कि दूसरी संस्थाओं का समर्थन भी हासिल हुआ था। और यूरोपीय साम्राज्य विज्ञान से इतर दूसरे कारकों की बदौलत भी उत्पन्न और विकसित हुए थे। विज्ञान और साम्राज्य दोनों के ही तेज़ रफ़्तार उत्थान के पीछे ख़ास तौर से एक महत्त्वपूर्ण ताक़त छिपी है : पूँजीवाद। अगर दौलत की तलाश में लगे व्यापारी ना होते, तो कोलम्बस अमेरिका ना पहुँचा होता, जेम्स कुक ऑस्ट्रेलिया ना पहुँचा होता, और नील आर्मस्ट्रांग चन्द्रमा की सतह पर वह छोटा-सा क़दम कभी ना रख पाया होता।

16

पूँजीवादी पन्थ

पैसा साम्राज्यों को खड़ा करने और विज्ञान को प्रोत्साहित करने, दोनों ही के सन्दर्भ में अनिवार्य रहा है, लेकिन क्या पैसा इन उपक्रमों का अन्तिम लक्ष्य है या कहीं वह एक ख़तरनाक अनिवार्यता है?

आधुनिक इतिहास में अर्थशास्त्र की सच्ची भूमिका को समझ पाना आसान नहीं है। इस बारे में ग्रन्थ के ग्रन्थ लिखे गए हैं कि किस तरह पैसे ने राज्यों की स्थापना की और उन्हें तबाह किया, नई सम्भावनाओं को खोला और लाखों लोगों को ग़ुलाम बनाया, उद्योग को गति दी और सैकड़ों प्रजातियों को विलुप्ति की ओर धकेला। तब भी आधुनिक आर्थिक इतिहास को समझने के लिए आपको महज़ एक शब्द को समझने की ज़रूरत है। वह शब्द है वृद्धि। चाहे इससे भला होता हो या बुरा, बीमारी और सेहत दोनों सूरतों में, आधुनिक अर्थव्यवस्था हार्मोन से धुत्त किशोर की भाँति बढ़ रही है। उसके हाथ जो कुछ भी लगता है, वह उसको निगल जाती है और उसका वज़न इस तेज़ी से बढ़ता है कि आप उसका हिसाब नहीं रख सकते।

ज़्यादातर इतिहास के दौरान अर्थव्यवस्था अपने आकार में एक जैसी बनी रही थी। हाँ, वैश्विक उत्पादन में वृद्धि होती थी, लेकिन ऐसा मुख्यतः जनसंख्या में विस्तार और नए भूस्थलों की बसावट की वजह से हुआ करता था। प्रति व्यक्ति उत्पादन जस का तस बना रहता था, लेकिन आधुनिक युग में यह सब बदल गया। 1500 में वस्तुओं और सेवाओं का वैश्विक उत्पादन लगभग $250 अरब के बराबर था, लेकिन आज यह $600 खरब के आस-पास है। इससे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण यह है कि 1500 में सालाना प्रति व्यक्ति उत्पादन का औसत $550 था, जबकि आज प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बच्चा औसतन सालाना $8,800 उत्पादित करता है। इस विलक्षण वृद्धि की क्या कैफ़ियत है?

अर्थशास्त्र एक कुख्यात रूप से पेचीदा मसला है। चीज़ों को आसान बनाने के लिए

हम एक सरल-से उदाहरण की कल्पना करते हैं।

एक चतुर पूँजीपति सैम्युअल ग्रीडी एल डोराडो, कैलिफ़ोर्निया में एक बैंक की स्थापना करता है।

एल डोराडो का एक होनहार कांट्रेक्टर ए ए स्लाइटर अपना पहला ठेका निपटाने के बाद भुगतान के रूप में नक़द $10 लाख प्राप्त करता है। वह इस राशि को मिस्टर ग्रीडी के बैंक में जमा कर देता है। बैंक के पास अब $10 लाख की पूँजी हो जाती है।

इस बीच, एल डोराडो की एक अनुभवी, लेकिन साधनहीन शेफ़ जेन मैक्डॉनिट को एक व्यावसायिक अवसर दिखाई देता है - शहर के जिस हिस्से में वह रहती है, वहाँ सचमुच कोई बेकरी नहीं है, लेकिन उसके पास इतना पर्याप्त पैसा नहीं है कि वह औद्योगिक तन्दूरों, सिंकों, चाकुओं और बर्तनों से लैस एक ठीक-ठाक बेकरी खड़ी सके। वह बैंक जाती है, अपने रोज़गार की योजना ग्रीडी के सामने रखती है और उसे समझाती है कि उसके इस व्यवसाय में निवेश करना फ़ायदेमन्द होगा। ग्रीडी उसके लिए ऋण के रूप में $10 लाख जारी करते हुए यह राशि अपने बैंक के उसके खाते में जमा कर देता है।

अब मैक्डॉनिट अपनी बेकरी खड़ी करने का काम कांट्रेक्टर स्लाइटर को सौंपती है। इस काम के लिए स्लाइटर का मेहनताना $1,000,000 है।

जब वह उसे अपने बैंक खाते के चैक से इस राशि का भुगतान कर देती है, तो स्लाइटर यह पैसा ग्रीडी के बैंक के अपने खाते में जमा कर देता है।

इस तरह स्लाइटर के बैंक खाते में अब कितना पैसा है? ठीक, $20 लाख।

यह सिलसिला यहीं ख़त्म नहीं होता। जैसी कि कांट्रेक्टरों की आदत होती है, बेकरी का काम करते हुए स्लाइटर अब मैक्डॉनिट से कहता है कि अप्रत्याशित मुश्किलों और ख़र्चों की वजह से बेकरी के निर्माण का बिल दरअसल $20 लाख होगा। यह सुनकर श्रीमती मैक्डॉनिट ख़ुश तो नहीं होती, लेकिन अब बीच में बेकरी के इस काम को रोक भी नहीं सकती। इसलिए वह एक बार फिर बैंक जाती हैं, अतिरिक्त ऋण के लिए मिस्टर ग्रीडी को तैयार करती है, और ग्रीडी उसके खाते में $10 लाख की राशि और डाल देता है। वह यह रक़म कांट्रेक्टर के खाते में स्थानान्तरित कर देती है।

अब स्लाइटर के खाते में कितना पैसा है? उसके खाते में $30 लाख हैं।

लेकिन बैंक में वास्तव में कितना पैसा है? अभी भी महज़ $10 लाख। दरअसल ये $10 लाख ही पूरे वक़्त बैंक में रहे हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका का बैंक से सम्बन्धित मौजूदा क़ानून इस क़िस्म की क़वायद को सात बार और दोहराए जाने की इजाज़त देता है। इस तरह उक्त कांट्रेक्टर के खाते में अन्ततः $100 लाख होंगे, भले ही बैंक की तिज़ोरी में तब भी मात्र $10 लाख ही होंगे। बैंकों को उनके पास वास्तव में मौजूद प्रत्येक डॉलर के विरुद्ध $10 का ऋण देने की छूट मिली हुई है, जिसका मतलब है कि बैंक खातों का 90 प्रतिशत वास्तविक सिक्कों और नोटों से सुरक्षित (कवर) नहीं होता। अगर बार्क्लेस बैंक के सारे के सारे खाताधारी अचानक अपने पैसे की माँग कर बैठें, तो बार्क्लेस तुरन्त ध्वस्त हो जाएगा (बशर्ते कि सरकार आगे आकर उसकी रक्षा नहीं करे तो)। यही बात लॉयड्स, डॉचे बैंक, सिटीबैंक और दुनिया के तमाम दूसरे बैंकों के बारे में सही है।

यह एक भीमकाय पोंज़ी स्कीम जैसी चीज़ नहीं लगती? लेकिन अगर यह धोखाधड़ी है, तो सारी की सारी आधुनिक अर्थव्यवस्था एक धोखाधड़ी है। तथ्य यह है कि यह कोई छल नहीं है, बल्कि इंसानी कल्पना की विस्मयकारी क्षमताओं की एक देन है। जो चीज़ बैंकों को - और समूची अर्थव्यवस्था को - जीवित बने रहने और फलने-फूलने में सक्षम बनाती है, वह भविष्य को लेकर हमारा भरोसा है। यह भरोसा ही दुनिया के ज़्यादातर पैसे की एकमात्र प्रतिभूति (बैंकिंग) है।

बेकरी वाले उदाहरण में, कांट्रेक्टर के अकाउंट स्टेटमेंट और बैंक में वास्तव में मौजूद धनराशि के बीच की असंगति श्रीमती मैक्डॉनिट की बेकरी है। ग्रीडी ने बैंक का पैसा इस बेकरी में इस उम्मीद में लगाया है कि एक दिन इससे लाभ कमाया जा सकेगा। बेकरी ने अभी एक भी ब्रेड नहीं पकाई है, लेकिन मैक्डॉनिट और ग्रीडी को उम्मीद है कि साल भर बाद वह हर दिन हज़ारों की संख्या में लोव्स, रोल्स, केक्स, और कुकीज़ बेच रही होगी और इस तरह अच्छा ख़ासा मुनाफ़ा कमा रही होगी। श्रीमती मैक्डॉनिट तब मय ब्याज के अपना ऋण चुका सकेंगी। अगर तब श्रीमान स्लाइटर बैंक से अपना पैसा निकालना चाहेंगे, तो उन्हें भुगतान करने के लिए ग्रीडी के पास नक़दी होगी। इस तरह यह समूचा उद्यम एक कल्पित भविष्य पर भरोसे के ऊपर खड़ा हुआ है - उस भरोसे पर जो व्यवसायी और बैंककर्मी अपने सपने की बेकरी में रखते हैं, साथ ही भुगतान करने की बैंक की भावी क्षमता में कांट्रेक्टर के भरोसे पर भी।

यह हम पहले ही देख चुके हैं कि पैसा एक विस्मयकारी वस्तु है क्योंकि यह असंख्य भिन्न-भिन्न वस्तुओं का प्रतिनिधित्व कर सकता है और किसी भी वस्तु का लगभग किसी भी दूसरी वस्तु के साथ विनिमय कर सकता है, लेकिन आधुनिक युग के पहले उसकी यह क्षमता सीमित थी। ज़्यादातर मामलों में पैसा उन्हीं वस्तुओं का प्रतिनिधित्व और विनिमय कर सकता था, जो वास्तव में मौजूद होती थीं। इसने वृद्धि को सख़्त रूप से सीमित कर रखा था, क्योंकि इसके कारण नए उद्यमों में धन लगाना बहुत मुश्किल होता था।

एक बार फिर बेकरी का उदाहरण लें। अगर पैसा सिर्फ़ वास्तविक रूप से मौजूद वस्तुओं का ही प्रतिनिधित्व करता होता, तो क्या मैक्डॉनिट उस बेकरी को बनवा पाती? नहीं। वर्तमान में उसके मन में बहुत सारे सपने हैं, लेकिन कोई ठोस संसाधन नहीं हैं। वह अपनी बेकरी का निर्माण करा सकती, इसका एकमात्र उपाय एक ऐसे कांट्रेक्टर को ढूँढ़ना होता, जो आज काम करने और कुछ साल बाद तभी उस काम का भुगतान लेने को राज़ी होता, जब बेकरी पैसा कमाने लगती। ऐसे कांट्रेक्टर दुर्लभ हैं। इसलिए हमारी व्यवसायी मुश्किल हालात में है। बिना बेकरी के वह केक नहीं पका सकती। बिना केकों के वह पैसा नहीं कमा सकती। बिना पैसे के वह किसी कांट्रेक्टर को काम पर नहीं लगा सकती। और जब तक कांट्रेक्टर नहीं है, तब तक बेकरी नहीं है।

मानव-जाति इस संकटावस्था में हज़ारों सालों तक फँसी रही थी। नतीज़तन, अर्थव्यवस्थाएँ जड़ और अवरुद्ध बनी रहीं। इस जाल से बाहर निकलने की राह आधुनिक युग में ही खोजी जा सकी, जब भविष्य में भरोसे पर आधारित एक नई व्यवस्था का आविर्भाव हुआ। इस व्यवस्था के अन्तर्गत लोग 'साख' ('क्रेडिट') नामक एक विशेष क़िस्म के पैसे से ऐसी कल्पित वस्तुओं का प्रतिनिधित्व किए जाने पर सहमत हुए, जिनका वर्तमान में कोई अस्तित्व नहीं है। साख हमें भविष्य के मूल्य पर वर्तमान को

खड़ा करने में सक्षम बनाती है। वह इस मान्यता पर आधारित होती है कि हमारे भावी संसाधन निश्चित रूप से हमारे वर्तमान संसाधनों के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा भरपूर होंगे। अगर हम भविष्य की आय का इस्तेमाल करते हुए वर्तमान में चीज़ों का निर्माण कर सकें, तो बड़ी संख्या में नए और अद्भुत अवसर खुल जाते हैं।

अगर साख एक इतनी अद्भुत चीज़ है, तो इसके बारे में पहले किसी ने क्यों नहीं सोचा था? बेशक उन्होंने सोचा था। किसी ना किसी तरह की साख की व्यवस्थाएँ कम से कम प्राचीन सुमेर के ज़माने से सारी ज्ञात मानवीय संस्कृतियों में मौजूद रही हैं। पहले के युगों में समस्या यह नहीं थी कि किसी को इसका इस्तेमाल करने का तरीक़ा नहीं आता था। समस्या यह थी कि लोग बहुत ज़्यादा साख की पेशकश में इसलिए बहुत कम दिलचस्पी लेते थे क्योंकि उन्हें इस बात पर भरोसा नहीं था कि भविष्य वर्तमान के मुक़ाबले बेहतर होगा। वे आम तौर से यह मानते थे कि बीता हुआ वक़्त उनके अपने वक़्त से बेहतर था और भविष्य और भी बदतर होगा, या बहुत से बहुत उनके वर्तमान जैसा ही होगा। इसी बात को आर्थिक पदावली का इस्तेमाल कर कहें तो, वे मानते थे कि सम्पत्ति की कुल मात्रा, अगर वह घट नहीं रही है तो सीमित है। इसलिए यह मानकर चलना कि दस साल के दौरान व्यक्तिगत रूप से वे, या उनका राज्य या सारी दुनिया और ज़्यादा सम्पत्ति उत्पन्न कर लेगी, उन्हें एक ग़लत दाँव खेलने जैसा लगता था। व्यापार एक ऐसा खेल प्रतीत होता था, जिसका हासिल कुल मिलाकर शून्य था। बेशक, किसी एक ख़ास बेकरी का मुनाफ़ा बढ़ सकता था, लेकिन पड़ोस की बेकरी की क़ीमत पर ही बढ़ सकता था। वेनिस फल-फूल सकता था, लेकिन ऐसा वह जिनेवा को दरिद्र बनाकर ही कर सकता था। इंग्लैंड का सम्राट ख़ुद को समृद्ध कर सकता था, लेकिन ऐसा वह फ़्रांस के सम्राट को लूट कर ही कर सकता था। आप कचौड़ी के टुकड़े कई अलग-अलग तरीक़ों से कर सकते थे, लेकिन कचौड़ी का आकार बढ़ने वाला नहीं था।

इसीलिए बहुत सारी संस्कृतियाँ इस नतीज़े पर पहुँचीं कि पैसे के ढेर जमा करना पाप है। ईसा ने कहा था, “एक ऊँट के लिए सुई के छेद से होकर निकलना किसी रईस आदमी के लिए ईश्वर के राज्य में प्रवेश पाने से ज़्यादा आसान है” (मैथ्यू 19:24)। अगर कचौड़ी का आकार स्थिर है, और मेरे पास उसका एक बड़ा हिस्सा है, तो इसका मतलब है कि मैंने किसी दूसरे का टुकड़ा हड़प रखा है। दौलतमन्द लोग अपने पापपूर्ण कृत्यों का प्रायश्चित अपनी अतिरिक्त सम्पत्ति को ख़ैरात के रूप में बाँटकर किया करते थे।

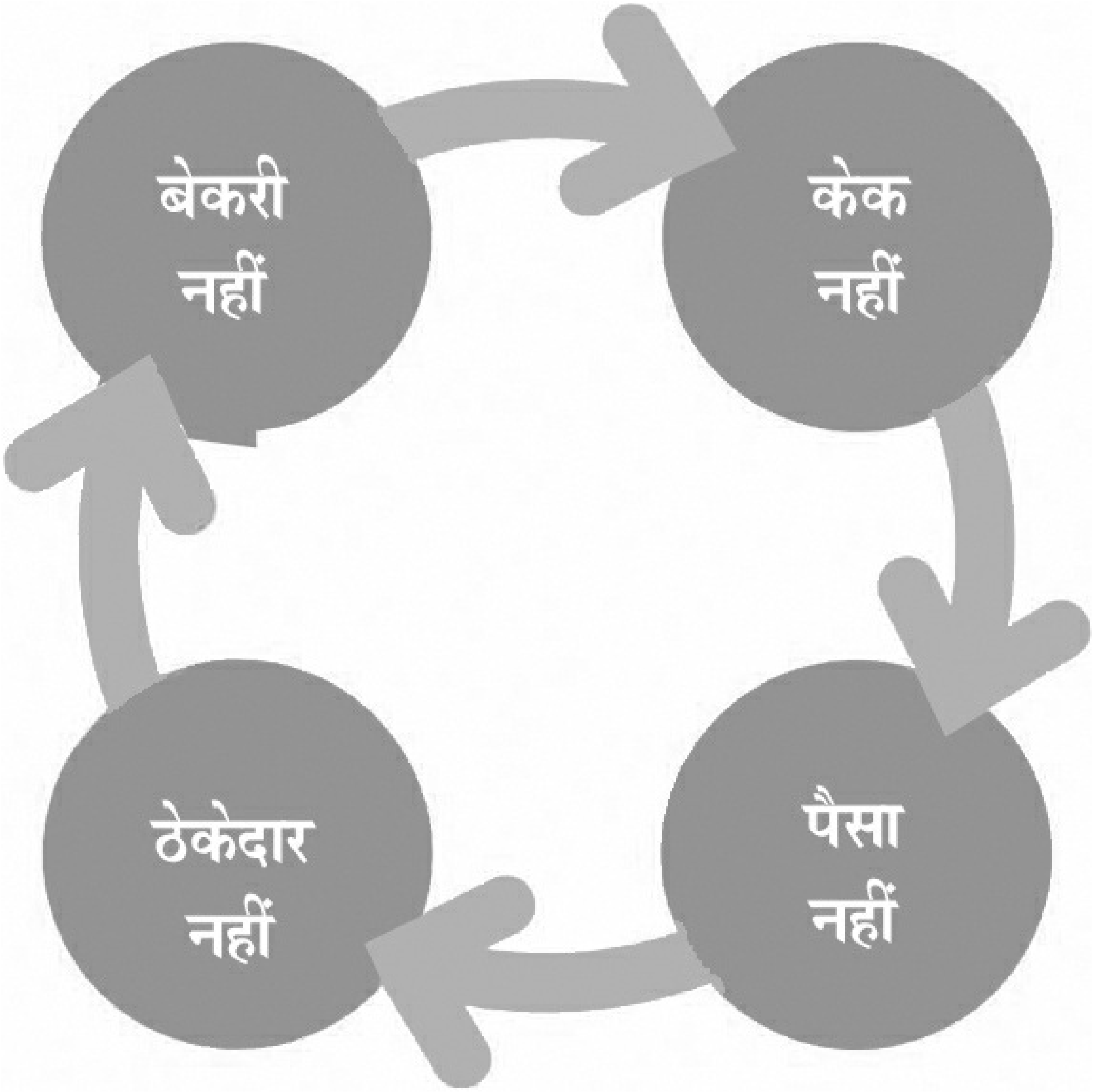

उद्यमी की दुविधा

अगर वैश्विक कचौड़ी का आकार वही बना रहने वाला था, तो साख के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी। साख आज की कचौड़ी और आने वाले कल की कचौड़ी के बीच का फ़र्क़ है। अगर कचौड़ी जस की तस बनी रहनी है, तो फिर साख की पेशकश क्यों की जाए? ये एक अवांछनीय जोख़िम होगा, बशर्ते कि आपको यह विश्वास ना हो कि आपसे पैसे की माँग कर रहा बेकर या सम्राट अपने प्रतिद्वन्द्वी से उसका हिस्सा छीन लेगा। इसलिए पूर्व-आधुनिक युग में क़र्ज़ प्राप्त करना मुश्किल था, और अगर आपको मिल भी जाता था तो वह कम मात्रा में, कम समय के लिए, और ऊँची ब्याज दरों पर ही मिल पाता था। इस तरह नवोदित उद्यमियों के लिए नई बेकरी खोलना मुश्किल होता था और महल खड़े करना चाहने वाले या युद्ध लड़ने की इच्छा रखने वाले बड़े सम्राटों के लिए करों और दरों में बढ़ोत्तरी के माध्यम से निधि खड़ी करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं होता था। सम्राटों के लिए तो यह मुमकिन था (जब तक कि उनकी प्रजा उनकी आज्ञा पर

चलती रहती थी), लेकिन बेकरी खोलकर दुनिया में ऊपर उठने का ख़्वाब देखने वाली बावर्चीख़ाने की नौकरानी सामान्यतः शाही बावर्चीख़ाने का फ़र्श साफ़ करते हुए सम्पत्ति का सपना ही देख सकती थी।

यह एक घाटे की स्थिति थी। चूँकि साख सीमित थी, इसलिए लोगों को नए कारोबारों में धन लगाने में मुश्किल पेश आती थी। चूँकि नए कारोबार बहुत थोड़े-से थे, इसलिए अर्थव्यवस्था में वृद्धि नहीं होती थी। चूँकि उसमें वृद्धि नहीं होती थी, इसलिए लोग मानकर चलते थे कि वह कभी नहीं होगी, और जिनके पास पूँजी होती थी, वे उधार देने को लेकर आशंकित रहते थे। ठहराव की उम्मीद ख़ुद को पूरा करती रहती थी।

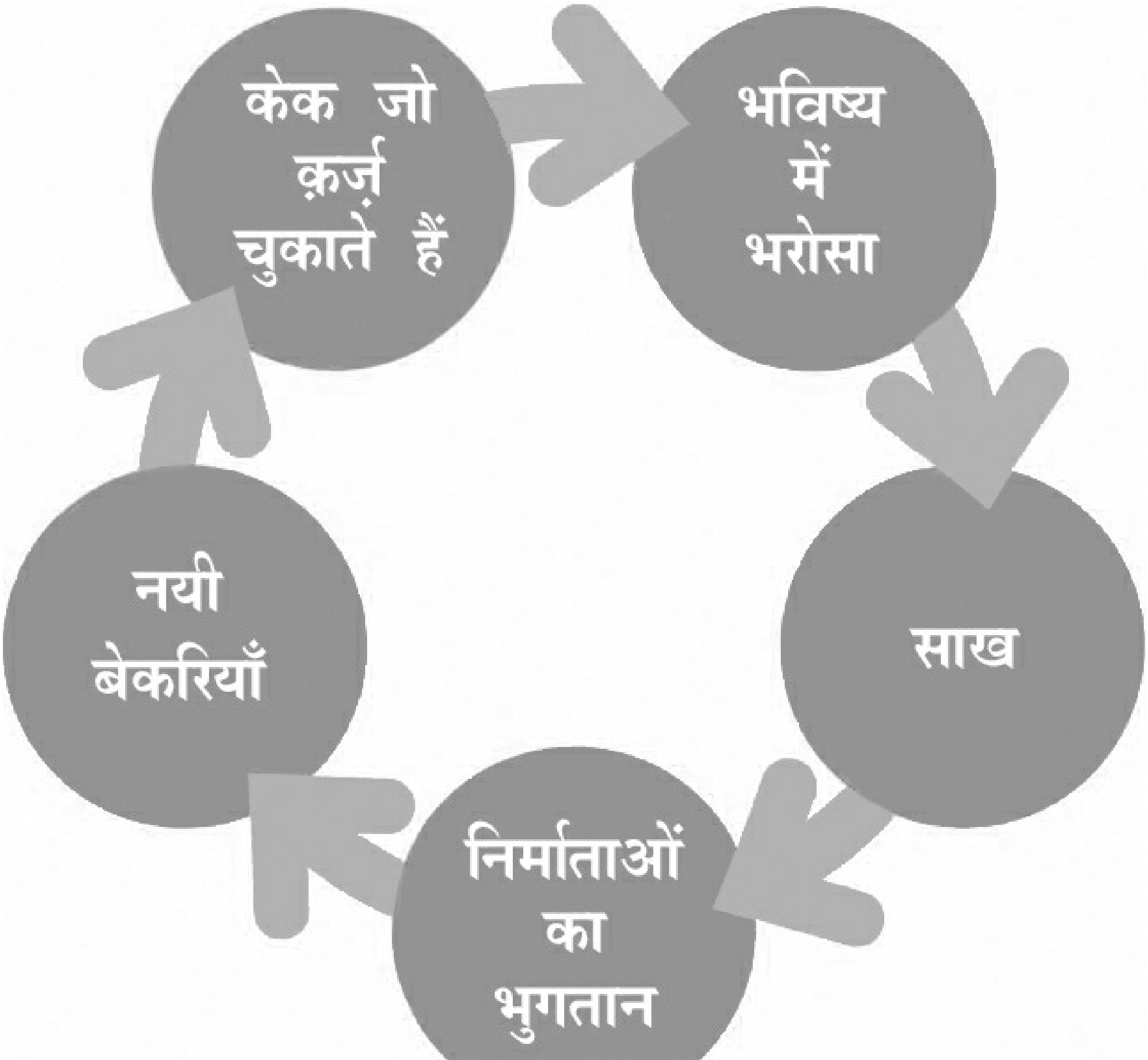

आधुनिक अर्थव्यवस्था का जादुई चक्र

कचौड़ी के आकार में वृद्धि

तब आई वैज्ञानिक क्रान्ति और प्रगति की धारणा। प्रगति का विचार इस धारणा पर खड़ा

है कि अगर हम अपनी अज्ञानता को स्वीकार कर लेते हैं और संसाधनों का निवेश अनुसन्धान में करते हैं, तो स्थितियाँ बेहतर हो सकती हैं। यह विचार जल्दी ही आर्थिक पदावली में रूपान्तरित हो गया। जो भी कोई प्रगति में विश्वास करता है, वह इस बात में विश्वास करता है कि भौगोलिक खोजें, टेक्नोलॉजिकल आविष्कार और संगठनात्मक विकास कुल मानवीय उत्पादन, वाणिज्य और सम्पत्ति में वृद्धि कर सकते हैं। अटलांटिक के नए वाणिज्यिक मार्ग हिन्द महासागर के पुराने मार्गों को बरबाद किए बग़ैर फल-फूल सकते थे। पुरानी चीज़ों के उत्पादन में कमी लाए बग़ैर नई चीज़ों का उत्पादन किया जा सकता था। उदाहरण के लिए, आप ब्रेड बनाने में दक्षता रखने वाली बेकरी को ठप किए बग़ैर चॉकलेट केक और क्रसान्ट में दक्षता रखने वाली नई बेकरी खोल सकते थे। हर कोई नई रुचि विकसित कर लेगा और ज़्यादा खाने लगेगा। आपको निर्धन बनाए बग़ैर मैं रईस हो सकता हूँ, आपको भूख से मरने को बाध्य किए बिना मैं ख़ूब खा-पीकर मोटा हो सकता हूँ।

पिछले 500 सालों के दौरान प्रगति के विचार ने लोगों को भविष्य के प्रति भरोसा रखने को उत्तरोत्तर तैयार किया। इस भरोसे ने साख को जन्म दिया, साख वास्तविक आर्थिक विकास का कारण बनी और आर्थिक विकास ने भविष्य के प्रति भरोसे को मज़बूत किया तथा और अधिक साख का रास्ता खोला। ये रातों-रात नहीं हुआ - अर्थव्यवस्था ने गुब्बारे के बजाय रोलर कोस्टर की तरह ज़्यादा व्यवहार किया, लेकिन समय के बीतने के साथ, जैसे-जैसे मार्ग समतल होता गया, सामान्य दिशा में कोई चूक नहीं आई। आज दुनिया में इतनी ज़्यादा साख है कि सरकारें, व्यापारिक निकाय और निजी उद्यमी बहुत आसानी से बड़ी मात्रा में लम्बे समय के लिए और निचली ब्याज-दरों पर क़र्ज़ ले लेते हैं, जो मौजूदा आय से कहीं ज़्यादा होते हैं।

वैश्विक कचौड़ी के आकार में वृद्धि के प्रति विश्वास अन्ततः क्रान्तिकारी साबित हुआ। 1776 में स्कॉटिश अर्थशास्त्री एडम स्मिथ ने द वेल्थ ऑफ़ नेशन नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया था, जो शायद अब तक का सबसे महत्त्वपूर्ण आर्थिक घोषणा-पत्र है। इस ग्रन्थ के पहले खण्ड के आठवें अध्याय में स्मिथ ने यह अनूठा तर्क पेश किया था : जब किसी भूमिपति, किसी बुनकर या किसी मोची को उससे ज़्यादा मुनाफ़ा होने लगता है, जितने की ज़रूरत उसे अपने ख़ुद के परिवार को चलाने के लिए होती है, तो वह इस अतिरिक्त मुनाफ़े का इस्तेमाल और ज़्यादा सहायकों को रखने के लिए करने लगता है, ताकि वह अपने मुनाफ़े में और अधिक इज़ाफ़ा कर सके। उसके मुनाफ़े में जितना ज़्यादा इज़ाफ़ा होता जाता है, उतने ही ज़्यादा से ज़्यादा सहायकों को वह काम पर रख सकता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि निजी उद्यमियों के मुनाफ़े में वृद्धि सामूहिक सम्पत्ति और समृद्ध का आधार है।

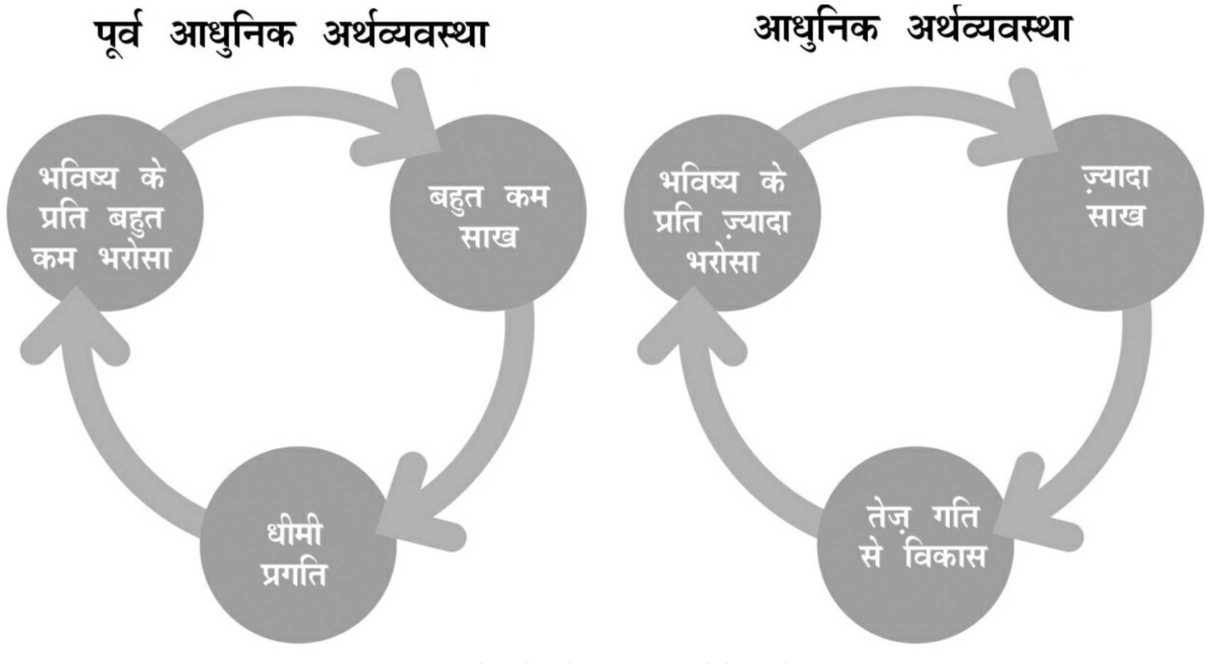
पूर्व आधुनिक अर्थव्यवस्था
भविष्य के प्रति बहुत कम भरोसा
बहुत कम साख
धीमी प्रगति
आधुनिक अर्थव्यवस्था
भविष्य के प्रति ज़्यादा भरोसा
ज़्यादा साख
तेज़ गति से विकास

अत्यन्त संक्षेप में दुनिया का आर्थिक इतिहास

हो सकता है कि यह तर्क आपको बहुत मौलिक ना लगे, क्योंकि आज हम एक ऐसी पूँजीवादी दुनिया में रहते हैं, जो अब स्मिथ के तर्क का सही मूल्य नहीं समझती। हमें हर रोज़ के समाचारों में इस थीम के तरह-तरह के रूप देखने-सुनने को मिलते हैं। तब भी स्मिथ का यह दावा कि निजी मुनाफ़े में इज़ाफ़े की स्वार्थपूर्ण मानवीय आकांक्षा सामूहिक सम्पत्ति का आधार है, अपने आप में मानव इतिहास का अत्यन्त क्रान्तिकारी विचार है - क्रान्तिकारी सिर्फ़ आर्थिक परिप्रेक्ष्य में ही नहीं, बल्कि उससे कहीं ज़्यादा नैतिक और राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में। स्मिथ दरअसल यह कह रहा है कि लालच एक अच्छी चीज़ है, और यह कि दौलतमन्द होकर मैं सिर्फ़ ख़ुद के लिए ही नहीं, बल्कि हर किसी को लाभ पहुँचाता हूँ। स्वार्थ परमार्थ है।

स्मिथ ने लोगों को सिखाया कि वे अर्थव्यवस्था को 'सबका हित करने वाली स्थिति' के रूप में देखें, जिसमें मेरे फ़ायदे में आपका भी फ़ायदा है। सिर्फ़ यही नहीं कि हम दोनों एक ही वक़्त में कचौड़ी के एक बड़े हिस्से का आनन्द ले सकते हैं, बल्कि आपके हिस्से का इज़ाफ़ा मेरे हिस्से में इज़ाफ़े पर निर्भर करता है। अगर मैं ग़रीब हूँ, तो आप भी ग़रीब होंगे क्योंकि मैं आपकी वस्तुएँ या सेवाएँ नहीं खरीद सकूँगा। अगर मैं सम्पन्न हूँ, तो आप भी सम्पन्न होंगे क्योंकि अब आप मुझे कुछ बेच सकते हैं। स्मिथ ने सम्पत्ति और नैतिकता के बीच के पारम्परिक विरोध का खण्डन किया, और दौलतमन्दों के लिए स्वर्ग के द्वार खोल दिए। दौलतमन्द होने का अर्थ नैतिक होना हो गया। स्मिथ के क़िस्से में, लोग अपने पड़ोसी को लूट कर नहीं, बल्कि कचौड़ी के कुल आकार में वृद्धि करके दौलतमन्द बनते हैं। और जब कचौड़ी का आकार बढ़ता है, तो उसका फ़ायदा हर किसी को मिलता है। इस प्रकार, दौलतमन्द लोग समाज के सबसे ज़्यादा उपयोगी और हितैषी लोग हैं, क्योंकि वे उन्नति के पहियों को हर किसी के हित में घुमाते हैं।

लेकिन यह सब इस पर निर्भर करता है कि दौलतमन्द लोग अपने मुनाफ़ों को अनुत्पादक गतिविधियों में बरबाद करने के बजाय उनका इस्तेमाल नए कारख़ानों को

खोलने और नए कर्मचारियों को नौकरी पर रखने में करें। इसीलिए स्मिथ ने इस सूत्र को मन्त्र की तरह दोहराया कि “जब मुनाफ़े में इज़ाफ़ा होगा, तो भूमिपति या बुनकर और ज़्यादा सहायकों को नौकरी पर रखेंगे” ना कि ‘जब मुनाफ़े में इज़ाफ़ा होगा, तो कंजूस उसे अपनी तिज़ोरियों में भर लेगा और अपने सिक्कों की गिनती करने के लिए ही उसको तिज़ोरी से बाहर निकाला करेगा”। आधुनिक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का निर्णायक महत्त्व का एक पक्ष उस नई नैतिकी का आविर्भाव था, जिसका यह कहना था कि मुनाफ़ों का पुनर्निवेश उत्पादन में होना चाहिए। इससे मुनाफ़े में और ज़्यादा इज़ाफ़ा होता है, जिसका पुनर्निवेश फिर से उत्पादन में किया जाता है, जिससे और ज़्यादा मुनाफ़ा होता है, और यह सिलसिला अन्तहीन रूप से जारी रहता है। निवेश कई तरह से किया जा सकता है : कारख़ानों को बड़ा करके, वैज्ञानिक अनुसन्धानों का संचालन करके, नए उत्पाद विकसित करके, लेकिन इन सारे निवेशों को किसी ना किसी रूप में उप्तादन में इज़ाफ़ा कर सकना चाहिए और बड़े मुनाफ़ों में रूपान्तरित हो सकना चाहिए। नए पूँजीवादी मज़हब का पहला और सबसे पवित्र फ़रमान यह है : “उत्पादन से होने वाले मुनाफ़ों का पुनर्निवेश उत्पादन को बढ़ाने में किया जाए”।

इसीलिए पूँजावाद को ‘पूँजीवाद’ कहा जाता है। पूँजीवाद ‘पूँजी’ (कैपिटल) को ‘सम्पत्ति’ (वेल्थ) से अलग करता है। पूँजी में पैसा, वस्तुएँ और वे संसाधन समाहित होते हैं, जिनका उत्पादन में निवेश किया गया होता है। दूसरी तरफ़ सम्पत्ति ज़मीन में दबी होती है या अनुत्पादक गतिविधियों में बरबाद की गई होती है। एक फ़ैरो जो संसाधनों को अनुत्पादक पिरामिड में फूँक देता है, वह पूँजीपति नहीं है। एक जलदस्यु जो स्पेन के ख़ज़ानों से भरे जहाज़ी बेड़े को लूटकर उस ख़ज़ाने को किसी कैरिबियाई द्वीप के तट पर दफ़ना देता है, वह पूँजीपति नहीं है, लेकिन किसी कारख़ाने में काम करने वाला एक मेहनती व्यक्ति जो अपनी आय के एक हिस्से का शेयर बाज़ार में निवेश करता है, वह पूँजीपति है।

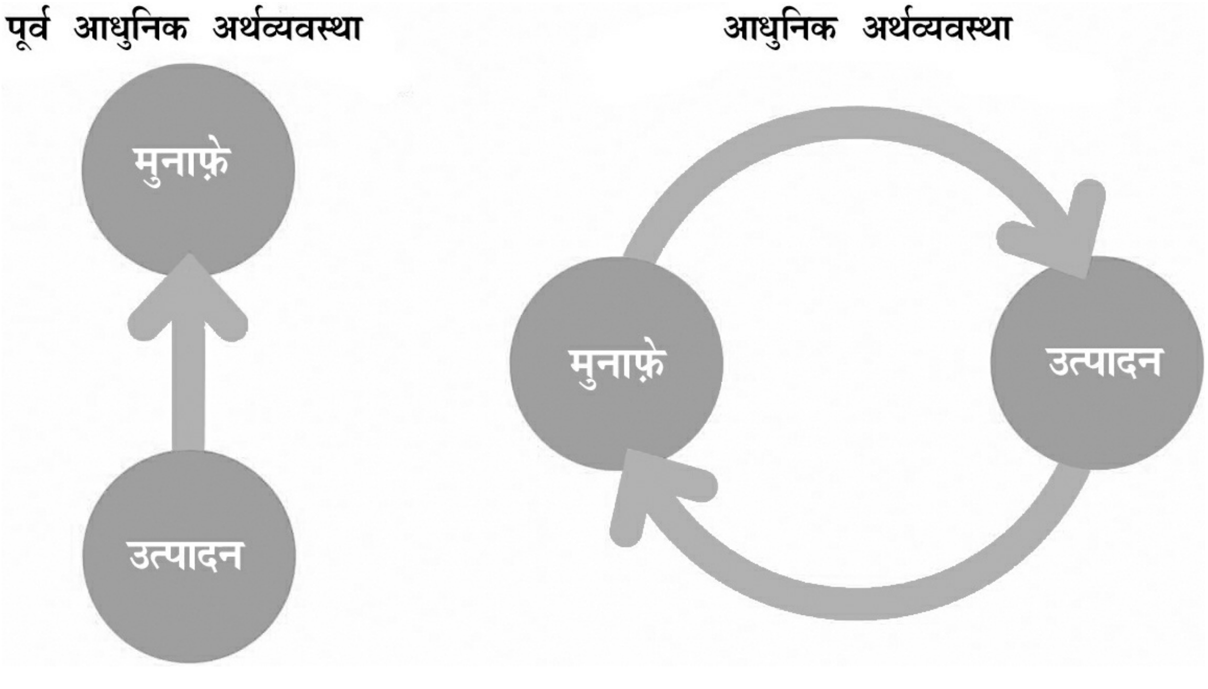
पूर्व आधुनिक अर्थव्यवस्था

आधुनिक अर्थव्यवस्था

यह धारणा साधारण-सी प्रतीत होती है कि “उत्पादन से होने वाले मुनाफ़ों का पुनर्निवेश उत्पादन को बढ़ाने में किया जाना चाहिए”, तब भी समूचे इतिहास के दौरान लोग इससे अनजान बने रहे। पूर्व-आधुनिक युगों में लोगों का मानना था कि उत्पादन की मात्रा कमोबेश स्थिर बनी रहती है। और अगर आप चाहें कुछ भी कर लें, उत्पादन में ख़ास बढ़ोत्तरी नहीं होनी है, तो फिर अपने मुनाफ़ों का निवेश उत्पादन के लिए किया ही क्यों जाए? इस तरह मध्य युग के अभिजात्य पुरुषों ने उदारता और विशिष्ट उपभोग का एक नीतिशास्त्र अपना रखा था। वे अपनी आमदनी टूर्नामेंटों, दावतों, महलों के निर्माण और युद्धों और ख़ैरात तथा भव्य गिरजाघरों के निर्माण पर ख़र्च करते थे। बहुत थोड़े-से लोग थे, जो अपने मुनाफ़ों का पुनर्निवेश अपनी जागीर को बढ़ाने, उत्तम कोटि का गेहूँ विकसित करने या नए बाज़ारों की तलाश के लिए करते थे।

आधुनिक युग में, इस अभिजात्य वर्ग की जगह एक नए विशिष्ट वर्ग द्वारा ले ली गई है, जिसके सदस्य पूँजीवादी मज़हब के सच्चे अनुयायी हैं। यह नया पूँजीवादी विशिष्ट वर्ग ड्यूकों और मार्कियों से मिलकर नहीं बना है, बल्कि बोर्ड ऑफ़ चेयरमैन, शेयर व्यापारियों और उद्योगपतियों से मिलकर बना है। ये अमीर लोग मध्ययुग के कुलीनों के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा सम्पन्न हैं, लेकिन असंयमित उपभोग में उनकी बहुत कम दिलचस्पी होती है, और वे अपने मुनाफ़े का बहुत छोटा-सा हिस्सा अनुत्पादक गतिविधियों में ख़र्च करते हैं।

मध्ययुग के कुलीन सोने और रेशम के रंग-बिरंगे लबादे पहनते थे, और अपना ज़्यादातर समय दावतों, जश्नों और भव्य टूर्नामेंटों में बिताया करते थे। उनकी तुलना में आधुनिक युग के सीईओ सूट नामक फीके क़िस्म की वेशभूषाएँ धारण करते हैं, जिनमें वे अपनी ही धुन में मस्त एक ही थैली के चट्टे-बट्टे लगते हैं, और जश्नफ़रोशी के लिए उनके पास बहुत कम समय होता है। एक आम उद्यमी पूँजीपति एक कारोबारी बैठक से दूसरी कारोबारी बैठक की ओर भागता हुआ, यह समझने की कोशिश में लगा रहता है कि उसे अपनी पूँजी का निवेश कहाँ करना चाहिए और पूरे समय शेयर बाज़ार और प्रतिभूतियों के चढ़ाव-उतार पर ध्यान लगाए रहता है। यह सही है कि उसका सूट वर्साचे का कम्पनी का हो सकता है और हो सकता है कि वह निजी जेट विमान में यात्रा करता हो, लेकिन यह ख़र्च उस पैसे के मुक़ाबले कुछ नहीं होते, जिसका निवेश वह इंसानी ज़रूरत के उत्पादनों की वृद्धि के लिए करता है।

ये सिर्फ़ वर्साचेधारी कारोबारी मुग़ल ही नहीं हैं, जो उत्पादकता में वृद्धि के लिए निवेश करते हैं, बल्कि साधारण लोग और सरकारी एजेंसियों की सोच भी इसी दिशा में चलती है। डिनर पार्टियों की कितनी सारी चर्चाएँ ऐसी होती हैं, जो आगे-पीछे इन कभी नहीं खत्म होने वाली बहसों में उलझ जाती हैं कि अपनी बचत का पैसा शेयर मार्केट या प्रतिभूतियों या ज़ायदाद ख़रीदने में लगाना ठीक होगा या नहीं? सरकारें ख़ुद भी करों से प्राप्त अपनी आय को ऐसे उत्पादक उद्यमों में लगाने का प्रयत्न करती हैं, जिनसे उनकी भविष्य की आमदनी बढ़ सके - उदाहरण के लिए एक नया बन्दरगाह खड़ा करने से कारख़ानों को अपने माल का निर्यात करना आसान हो सकता है, जिससे उनकी कर योग्य आय में वृद्धि हो सकती है, और इस तरह सरकार की भावी आय बढ़ सकती है। कोई दूसरी सरकार इस आधार पर शिक्षा के क्षेत्र में निवेश करना पसन्द कर सकती है कि शिक्षित लोग ऐसे लाभप्रद हाई-टेक उद्योगों के लिए बुनियाद तैयार करते हैं, जो विस्तृत

बन्दरगाहों की सुविधाओं के बिना भी बड़ी तादाद में करों का भुगतान करते हैं।

पूँजीवाद की शुरुआत इस एक सिद्धान्त के रूप में हुई थी कि अर्थव्यवस्था किस तरह काम करती है। यह सिद्धान्त वर्णनात्मक भी था और निर्देशात्मक भी था - यह इस बात का एक विवरण पेश करता था कि पैसा किस तरह काम करता है, और इस विचार को प्रोत्साहित करता था कि मुनाफ़ों का उत्पादन में निवेश तीव्र आर्थिक विकास की ओर ले जाता है, लेकिन पूँजीवाद धीरे-धीरे महज़ एक आर्थिक सिद्धान्त से ज़्यादा कुछ बनता गया। अब यह अपने विस्तार में एक नीतिशास्त्र को समेटे हुए है - वह इस बारे में कई सीखों को समेटे हुए हुए है कि लोगों को किस तरह व्यवहार करना चाहिए, अपने बच्चों को किस तरह शिक्षा देनी चाहिए, यहाँ तक कि किस तरह सोचना चाहिए। इसकी मुख्य नीति यह है कि आर्थिक वृद्धि सबसे बड़ा हित या कम से कम सबसे बड़े हित का प्रतिनिधि है, क्योंकि न्याय, स्वतन्त्रता, यहाँ तक कि सुख भी आर्थिक उन्नति पर निर्भर करते हैं। किसी पूँजीपति से पूछिए कि जिम्बाब्वे या अफ़गानिस्तान जैसी जगह में राजनैतिक स्वतन्त्रता किस तरह लाई जाए, और इसकी पूरी सम्भावना है कि आपको इस बारे में एक भाषण सुनने को मिले कि किस तरह आर्थिक प्रचुरता और ख़ुशहाल मध्यवर्ग टिकाऊ लोकतान्त्रिक संस्थाओं के लिए अनिवार्य चीज़ें हैं, और इसलिए ज़रूरी है कि अफ़गान आदिवासियों को मुक्त उद्यम, किफ़ायत और आत्मनिर्भरता के मूल्यों के महत्त्व के बारे में समझाया जाय।

इस नए मज़हब का निर्णायक प्रभाव आधुनिक विज्ञान के विकास पर भी पड़ा। वैज्ञानिक अनुसन्धानों को आम तौर से सरकारों या निजी व्यापारिक घरानों से पैसा मिलता है। जब पूँजीवादी सरकारें और व्यापारिक घराने किसी ख़ास वैज्ञानिक परियोजना में निवेश करने पर विचार करते हैं, तो पहला सवाल आम तौर से यह होता है कि "क्या यह परियोजना हमें उत्पादन और मुनाफ़ों में वृद्धि के लिए सक्षम बनाएगी? क्या इससे आर्थिक उन्नति होगी"? जो परियोजना इन बाधाओं को पार नहीं कर सकती, उसे कोई प्रायोजक मिलने की बहुत कम सम्भावना है। आधुनिक विज्ञान का कोई भी इतिहास पूँजीवाद को परिदृश्य से बाहर नहीं छोड़ सकता।

इसके विपरीत, विज्ञान को लेखे में लिए बग़ैर पूँजीवाद का इतिहास बोधगम्य नहीं है। अनवरत आर्थिक उन्नति में पूँजीवाद का विश्वास विश्व की लगभग हर उस चीज़ के ख़िलाफ़ जाता है, जो हमें ज्ञात है। भेड़ियों के किसी समाज का यह विश्वास नितान्त मूर्खतापूर्ण होगा कि भेड़ों की आपूर्ति में अनन्तकाल तक वृद्धि जारी रहेगी। मानवीय अर्थव्यवस्था में तब भी समूचे आधुनिक युग के दौरान किसी तरह बेइन्तिहा वृद्धि होती रही, जिसके पीछे वजह यह थी कि वैज्ञानिक हर कुछ सालों के अन्तराल में एक नई खोज या युक्ति लेकर आते रहे - जैसे कि अमेरिकी महाद्वीप, इंटरनल कम्बश्चन इंजन, या जेनेटिक ढंग से गढ़ी गई भेड़। बैंक या सरकारें पैसा छापती हैं, लेकिन ये वैज्ञानिक ही हैं, जो उन पैसों में मूल्य पैदा करते हैं।

पिछले कुछ सालों से बैंक और सरकारें पागलों की तरह पैसे छाप रहे हैं। हर कोई घबराया हुआ है कि मौजूदा आर्थिक संकट अर्थव्यवस्था की उन्नति को रोक सकता है। इसलिए वे बिना किसी ठोस आधार के खरबों डॉलर, यूरो और येन छापकर अर्थव्यवस्था

में सस्ती साख फूँक रहे हैं, और उम्मीद कर रहे हैं कि गुब्बारा फूटने के पहले वैज्ञानिक, तकनीशियन और इंजीनियर वास्तव में कोई बड़ा चमत्कार पैदा कर सकेंगे। सब कुछ प्रयोगशालाओं में काम कर रहे लोगों पर निर्भर है। उम्मीद की जा रही है कि बायोटेक्नोलॉजी और नैनोटेक्नोलॉजी जैसे क्षेत्रों की नई खोजें नितान्त ऐसे नए उद्योगों की रचना कर सकती हैं, जिनसे होने वाले मुनाफ़े उन खरबों खोखले पैसों में जान फूँक सकेंगे, जिन्हें बैंक और सरकारें सन 2008 से छापे जा रहे हैं। अगर गुब्बारा फूटने से पहले प्रयोगशालाएँ इन उम्मीदों को पूरा नहीं करतीं, तो हम बहुत बुरे वक़्त की ओर बढ़ रहे हैं।

निवेशक की तलाश करता कोलम्बस

पूँजीवाद ने ना सिर्फ़ आधुनिक विज्ञान के उदय, बल्कि यूरोपीय साम्राज्यवाद के आविर्भाव में भी निर्णायक भूमिका अदा की। और अव्वल तो यह यूरोपीय साम्राज्यवाद था, जिसने पूँजीवादी साख व्यवस्था की रचना की थी। बेशक साख आधुनिक यूरोप में ईजाद नहीं हुई थी। इसका अस्तित्व लगभग तमाम कृषक समाजों में रहा था, और शुरुआती आधुनिक दौर में यूरोपीय पूँजीवाद का आविर्भाव एशिया के आर्थिक विकास से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ था। यह भी याद रखें कि अठारहवीं सदी के परवर्ती दौर तक एशिया दुनिया का आर्थिक 'पॉवरहाउस' हुआ करता था, जिसका मतलब था कि यूरोपीय लोगों के पास चीनियों, मुसलमानों या हिन्दुस्तानियों के मुक़ाबले बहुत कम पूँजी थी।

लेकिन चीन, हिन्दुस्तान और मुस्लिम जगत की सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्थाओं में साख सिर्फ़ दोयम दर्ज़े की भूमिका ही निभाती थी। इस्ताम्बुल, इस्फ़हान, दिल्ली और बीजिंग के बाज़ारों के सौदागर और साहूकार भले ही पूँजीवादी सोच रखते हों, लेकिन राजमहलों और क़िलों में बैठे सम्राट और सेनापति सौदागरों और वाणिज्यिक सोच से नफ़रत करते थे। शुरुआती आधुनिक युग के ज़्यादातर ग़ैर-यूरोपीय साम्राज्य नुर्हाशी और नादर शाह जैसे महान विजेताओं ने, या जैसा कि चिंग और ऑटोमन साम्राज्यों के मामले में हुआ था, नौकरशाह और सैन्य कुलीन वर्ग ने खड़े किए थे। करों और लूटपाट (दोनों के बीच कोई बारीक़ फ़र्क़ किए बग़ैर) के माध्यम से युद्धों के लिए पैसा जुटाते हुए वे साख व्यवस्थाओं के बहुत कम मोहताज़ होते थे, और वे साहूकारों और निवेशकों के हितों की और भी कम परवाह करते थे।

दूसरी तरफ़, यूरोप में, सम्राट और सेनापति धीरे-धीरे वाणिज्यिक सोच अपनाते गए, जब तक कि सौदागर और साहूकार कुलीन शासक वर्ग में तब्दील नहीं हो गया। दुनिया पर यूरोप की जीत के लिए धन की व्यवस्था उत्तरोत्तर करों के बजाय साख के माध्यम से होती गई, और उत्तरोत्तर उन पूँजीपतियों द्वारा निर्देशित होती गई, जिनकी प्रमुख महत्त्वाकांक्षा अपने निवेशों पर अधिकतम लाभ हासिल करना होता था। फ्राक कोट और टॉप हैट धारी साहूकारों और सौदागरों द्वारा खड़े किए गए साम्राज्यों ने सोने के वस्त्र और चमचमाते बख़्तरबन्द धारण किए सम्राटों और कुलीनों द्वारा स्थापित किए गए साम्राज्यों को पराजित कर दिया। ये वाणिज्यिक सम्राज्य अपनी जीतों में धन लगाने के मामले में

सिर्फ़ ज़्यादा चतुर थे। कर कोई नहीं देना चाहता, लेकिन निवेश करने में हर किसी को ख़ुशी होती है।

1484 में क्रिस्टोफ़र कोलम्बस जब पूर्वी एशिया में व्यापार के लिए नए मार्ग की तलाश में पश्चिम की ओर यात्रा पर जाना चाहता था, तो अपने इस जहाज़ी बेड़े को धन मुहैया कराने का प्रस्ताव लेकर वह पुर्तगाल के सम्राट के पास गया था। इस तरह के अभियान बहुत जोख़िम भरे और महँगे मामले हुआ करते थे। जहाज़ों का निर्माण करने, रसद ख़रीदने, मल्लाहों और सैनिकों को भुगतान करने आदि के लिए ढेरों पैसे की ज़रूरत होती थी - और इस बात की कोई गारंटी नहीं थी कि यह निवेश लाभप्रद ही होगा। पुर्तगाल के सम्राट ने मना कर दिया।

आज के एक नए-नए उद्यमी की तरह कोलम्बस ने हार नहीं मानी। वह अपनी योजना लेकर इटली, फ़्रांस, इंग्लैंड, और एकबार फिर पुर्तगाल में अन्य सम्भावित निवेशकों के पास गया। हर बार उसकी पेशकश को ठुकरा दिया गया। इसके बाद वह नए-नए संगठित हुए स्पेन के शासकों, फ़र्दिनान्द और इज़ाबेला के पास अपनी क़िस्मत आज़माने पहुँचा। वह अपने साथ कुछ अनुभवी पैरोकारों को ले गया, और उनकी मदद से महारानी इज़ाबेला को राज़ी करने में कामयाब रहा। जैसा कि हर स्कूली बच्चा जानता है, इज़ाबेला कामयाब रही। कोलम्बस की खोजों ने स्पेनियों को अमेरिका को जीतने में सक्षम बनाया, जहाँ उन्होंने सोने और चाँदी की खदानों के साथ-साथ गन्ने और तम्बाकू के बाग़ान स्थापित किए, जिन्होंने स्पेन के सम्राटों, साहूकारों और सौदागरों को कल्पनातीत समृद्ध प्रदान की।

सौ साल बाद राजकुमार और साहूकार कोलम्बस के उत्तराधिकारियों के लिए साख उपलब्ध कराने के इच्छुक थे और अमेरिका से बटोरे गए ख़ज़ानों की बदौलत उनके पास और ज़्यादा पूँजी इकट्ठा हो चुकी थी। उतना ही महत्त्वपूर्ण यह था कि राजकुमारों और साहूकारों के मन में खोज-अभियानों की सम्भावनाओं को लेकर और ज़्यादा भरोसा पैदा हुआ, और वे इनमें पैसा लगाने को और ज़्यादा इच्छुक थे। यह साम्राज्यवादी पूँजीवाद का जादुई चक्र था : साख ने नई खोजों को धन उपलब्ध कराया, खोजों के नतीजे में उपनिवेश स्थापित हुए, उपनिवेशों ने मुनाफ़े उपलब्ध कराए, मुनाफ़ों ने भरोसा पैदा किया, और भरोसा और अधिक साख में रूपान्तरित हुआ। नुर्हाशी और नादर शाह का ईंधन कुछ हज़ार किलोमीटर की यात्रा करने के बाद ख़त्म हो गया। पूँजीवादी उद्यमी अपनी वित्तीय गति को एक जीत से दूसरी जीत तक बढ़ाते रहे।

लेकिन ये खोज-अभियान संयोगपरक मामले ही बने रहे, इसलिए साख देने वाले सब कुछ के बावजूद ख़ासे चौकन्ने थे। बहुत सारे अभियान-दल कोई भी मूल्यवान खोज किए बिना ख़ाली हाथ यूरोप लौट आए थे। उदाहरण के लिए अँग्रेज़ों ने आर्कटिक के रास्ते एशिया जाने वाले उत्तर-पश्चिमी मार्ग खोजने की निष्फल कोशिशों में ढेर सारी पूँजी बरबाद कर दी थी। बहुत सारे अभियान-दल तो लौटकर ही नहीं आए। जहाज़ समुद्र के भीतर हिमशैलों से टकरा गए, उष्णकटिबन्धीय तूफ़ानों की वजह से डूब गए या जलदस्युओं के शिकार हो गए। सम्भावित निवेशकों की संख्या बढ़ाने और उनके जोख़िम को कम करने के लिए यूरोपीयों ने लिमिटेड लायबिलिटी ज्वाइंट-स्टॉक कम्पनियों की ओर रुख़ किया। बजाय इसके कि एक निवेशक किसी एक डूबते जहाज़ पर अपने पैसे

को दाँव पर लगाता, ये ज्वाइंट-स्टॉक कम्पनियाँ बहुत सारे निवेशकों से पैसा इकट्ठा करती थीं, जिससे हर निवेशक को अपनी पूँजी का एक छोटा-सा हिस्सा ही जोख़िम में डालना होता था। इस तरह जोख़िमों को कम कर दिया गया, लेकिन मुनाफ़ों की कोई अधिकतम सीमा निर्धारित नहीं की गई। यहाँ तक कि एक सही जहाज़ पर किया गया छोटा-सा निवेश भी आपको लखपति बना सकता था।

दशक दर दशक पश्चिमी यूरोप एक ऐसी परिष्कृत वित्तीय व्यवस्था का साक्षी बनता गया, जो बहुत कम अवधि की सूचना पर निजी उद्यमियों तथा सरकारों को बहुत बड़ी राशि की साख दे सकता था। यह प्रणाली खोज और विजय के अभियानों को किसी भी हुकूमत या साम्राज्य के मुक़ाबले ज़्यादा दक्ष तरीक़े से धन मुहैया कर सकती थी। साख की इस नवोदित शक्ति को स्पेन और नीदरलैंड्स के बीच हुए तीखे संघर्ष में देखा जा सकता है। सोलहवीं सदी में स्पेन यूरोप का सबसे ताक़तवर राज्य था, जिसका एक विशाल वैश्विक साम्राज्य पर आधिपत्य था। इसकी हुकूमत यूरोप के ज़्यादातर हिस्सों, उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के बड़े-बड़े टुकड़ों, फ़िलिपीनियाई द्वीपों और अफ़्रीका तथा एशिया के अनेक तटवर्ती अड्डों पर चलती थी। हर साल, अमेरिकी और एशियाई ख़ज़ानों से लदे जहाज़ी बेड़े सेवील और कैडीज के बन्दरगाहों पर लौटते थे। नीदरलैंड्स नैसर्गिक संसाधनों से वंचित एक छोटा-सा तूफ़ानी दलदल था, स्पेन के उपनिवेशों के सम्राट का एक छोटा-सा कोना।

1568 में इन डचों (नीदरलैंड/हॉलैंड वासियों) ने, जो कि मुख्यतः प्रोटेस्टेंट थे, अपने कैथोलिक स्पेनी अधिपति के ख़िलाफ़ विद्रोह कर दिया। शुरू में तो विद्रोही बहादुरी के साथ अपराजेय पवनचक्कियों को पीटते हुए डॉन क़्विग्ज़ोट की भूमिका निभाते प्रतीत हुए, लेकिन अस्सी साल के भीतर ही डचों ने ना केवल स्पेन से स्वाधीनता हासिल कर ली, बल्कि वे स्पेनियों और उनके पुर्तगाली सहयोगियों को ओशियानिक राजमार्गों के मालिकों के पद से हटाकर एक वैश्विक डच साम्राज्य स्थापित करने और यूरोप का सबसे समृद्ध राज्य बनने में भी कामयाब रहे।

डचों की इस कामयाबी का रहस्य थी साख। डच नागरिक ज़मीनी लड़ाई में बहुत कम दिलचस्पी रखते थे, इसलिए उन्होंने स्पेनियों के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए भाड़े की सेना रखी। इस बीच, डच ख़ुद भी तब तक के सबसे बड़े जहाज़ी बेड़ों के साथ समुद्र में उतर गए। भाड़े की सेनाओं और तोपों से लैस जहाज़ी बेड़े बेहद ख़र्चीले साबित हुए, लेकिन डच लोग अपने सैन्य अभियानों के लिए शक्तिशाली स्पेनी साम्राज्य के मुक़ाबले ज़्यादा आसानी से धन जुटा सके, तो इसलिए कि वे लगातार विकसित होती यूरोपीय वित्त व्यवस्था का भरोसा हासिल करने में एक ऐसे वक़्त सफल हो सके, जब स्पेन के सम्राट की लापरवाही की वजह से उसके ऊपर से इस व्यवस्था का भरोसा कम होता जा रहा था। धनदाताओं ने डचों को सेना और जहाज़ी बेड़े खड़े करने के लिए पर्याप्त ऋण उपलब्ध कराया, और इन सेनाओं और बेड़ों ने डचों को दुनिया के व्यापारिक मार्गों पर नियन्त्रण सुलभ कराया, जिसने बदले में अच्छा-ख़ासा मुनाफ़ा उपलब्ध कराया। इन मुनाफ़ों की वजह से डचों को ऋणों को चुकाने की गुंजाइश मिली, जिससे धनदाताओं का भरोसा मज़बूत हुआ। एम्स्टर्डम बहुत तेजी से ना सिर्फ़ यूरोप के सबसे महत्त्वपूर्ण बन्दरगाहों में से एक बन्दरगाह बनता जा रहा था, बल्कि महाद्वीप का वित्तीय तीर्थस्थल

भी बनता जा रहा था।

डचों ने इस वित्तीय प्रणाली का भरोसा किस तरह जीता था? सबसे पहले तो वे समय पर और पूरा ऋण चुकाने के मामले में पाबन्द थे, जिसकी वजह से ऋणदाताओं का ऋण कमतर जोख़िम की स्थिति में होता था। दूसरे, उनके मुल्क़ की न्याय-प्रणाली स्वाधीन थी और वह निजी हक़ों की - ख़ास तौर से निजी सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारों की - रक्षा करती थी। पूँजी उन तानाशाह राज्यों से धीरे-धीरे ग़ायब होती जाती है, जो व्यक्तियों और उनकी सम्पत्ति का बचाव करने में नाकामयाब रहती है। इसके बजाय वह बहकर उन राज्यों में चली जाती है, जो क़ानून के शासन और निजी सम्पत्ति का समर्थन करती है।

कल्पना करिए कि आप जर्मन वित्तदाताओं के एक मज़बूत परिवार के बेटे हैं। आपके पिता को लगता है कि वे बड़े यूरोपीय शहरों में अपने कारोबार की शाखाएँ खोलकर कारोबार को फैला सकते हैं। वे आपको एम्स्टर्डम और आपके छोटे भाई को मैड्रिड भेजते हैं, और आप दोनों को कारोबार में निवेश करने 10,000-10,000 सोने के सिक्के देते हैं। आपका छोटा भाई अपनी यह शुरुआती पूँजी स्पेन के सम्राट को ब्याज़ पर दे देता है, जिसको इस पैसे की ज़रूरत फ़्रांस के सम्राट से लड़ने अपनी सेना खड़ी करने के लिए है। आप अपनी पूँजी उस डच सौदागर को उधार देने का फ़ैसला करते हैं, जो इस पैसे को मैनहट्टन नामक एक वीरान द्वीप के दक्षिणी छोर पर स्थित झाड़-झंखाड़ों से भरी परती ज़मीन में लगाना चाहता है, क्योंकि उसको विश्वास है कि जैसे ही हडसन नदी एक बड़े व्यापारिक मार्ग में बदलेगी, वैसे वहाँ की ज़मीन की क़ीमतें आसमान छूने लगेंगी। दोनों ऋण एक साल के भीतर ही चुका दिए जाने वाले हैं।

साल बीत जाता है। डच सौदागर वह ज़मीन, जो उसने ख़रीदी थी, अच्छी-ख़ासी बढ़ी हुई क़ीमत पर बेच देता है और जिस ब्याज़ का उसने वादा किया था, उसके साथ वह पूरा ऋण चुका देता है। आपके पिता ख़ुश होते हैं, लेकिन मैड्रिड गया हुआ आपका भाई परेशान है। फ़्रांस के साथ स्पेन का युद्ध तो स्पेन के सम्राट की जीत के साथ ख़त्म हो गया है, लेकिन स्पेन का सम्राट अब तुर्कों के साथ टकराव में उलझ गया है। इस नई लड़ाई के लिए उसे एक-एक पैसे की ज़रूरत है, और उसे यह चीज़ पुराने ऋण चुकाने से कहीं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण लग रही है। आपका भाई राजमहल में कई ख़त भेजता है और राजदरबार से रिश्ता रखने वाले दोस्तों से आग्रह करता है कि वे ऋण लौटाने के लिए सम्राट से उसकी सिफ़ारिश करें, लेकिन इस सब का कोई नतीज़ा नहीं निकलता। आपके भाई को ना सिर्फ़ वह ब्याज़ नहीं मिला है, जिसका उससे वादा किया गया था, बल्कि उसने अपना मूलधन भी गँवा दिया है। आपके पिता इस बात से ख़ुश नहीं हैं।

स्थिति अब और भी बदतर हो जाती है, जब सम्राट ख़ज़ाने के एक कर्मचारी को आपके भाई के पास भेजकर आदेशात्मक ढंग से उतनी ही राशि के एक और ऋण की माँग करता है। आपके भाई के पास उधार देने के लिए पैसा नहीं है। वह अपने पिता को ख़त लिखकर उसे मनाने की कोशिश करता है कि इस बार सम्राट वादे के मुताबिक़ ऋण लौटा देगा। गृहस्वामी अपने इसे छोटे बेटे से कुछ ज़्यादा ही लाड़ करता है, और इसलिए वह भारी मन से उसकी बात मान जाता है। सोने के 10,000 और सिक्के कभी वापस ना आने के लिए स्पेनी ख़ज़ाने में समा जाते हैं। इस बीच एम्स्टर्डम में स्थितियाँ काफ़ी

सकारात्मक दिखाई दे रही हैं। आप उद्यमशील डच सौदागरों को लगातार ऋण देते रहते हैं, और वे समय पर मय ब्याज़ आपका पैसा वापस करते रहते हैं, लेकिन आपकी क़िस्मत अनिश्चित काल तक आपका साथ नहीं देती। आपके हमेशा के एक आसामी का ऐसा अनुमान है कि लकड़ी के तल्ले वाले जूते पेरिस में फ़ैशन में आने वाले हैं, और वह फ़्रांस की राजधानी में जूतों का एक एम्पोरियम स्थापित करने के लिए आपसे कर्ज़ की माँग करता है। आप उसे पैसा उधार दे देते हैं, लेकिन बदक़िस्मती से लकड़ी के तल्ले वाले ये जूते फ़्रांसीसी महिलाओं को आकर्षित नहीं करते, और यह चिड़चिड़ाया हुआ व्यापारी क़र्ज़ वापस करने से मना कर देता है।

आपके पिता ग़ुस्से से बौखला जाते हैं और आप दोनों से वकील लगाने को कहते हैं। आपका भाई मैड्रिड में स्पेनी सम्राट के ख़िलाफ़ मुकदमा दायर कर देता है, और आप एम्स्टर्डम में जूतों के उस व्यापारी के ख़िलाफ़ मुकदमा दायर कर देते हैं। स्पेन में अदालतें सम्राट की चापलूस हैं - न्यायाधीश उसके कृपापात्र हैं और उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ जाने पर सज़ा दिए जाने से डरते हैं। नीदरलैंड्स में अदालतें सरकार की स्वतन्त्र शाखाएँ हैं, वे देश के नागरिकों या राजकुमारों पर निर्भर नहीं हैं। मैड्रिड की अदालत आपके भाई के मुकदमे को ख़ारिज़ कर देती है, जबकि एम्स्टर्डम की अदालत आपके पक्ष में फ़ैसला देती है और जूते के व्यापारी की सम्पत्ति को तब तक के लिए ज़ब्त कर लेती है, जब तक कि वह क़र्ज़ नहीं चुका देता। आपके पिता को सीख मिल जाती है। सम्राटों के साथ लेन-देन करने के बजाय व्यापारियों के साथ लेन-देन करना और मैड्रिड के बजाय हॉलैंड में व्यापार करना बेहतर है।

और आपके भाई की मुसीबतें ख़त्म नहीं हुई हैं। स्पेन के सम्राट को अपनी सेना को भुगतान करने के लिए पैसे की बेहद ज़रूरत है। उसे यक़ीन है कि आपके पिता के पास उसे देने के लिए पैसा है। इसलिए वह आपके भाई के ख़िलाफ़ देशद्रोह का आरोप गढ़ता है। अगर वह फ़ौरन 20,000 सोने के सिक्के लेकर नहीं आया, तो उसे कालकोठरी में बन्द कर दिया जाएगा, जहाँ वह अपने मरने तक सड़ता रहेगा। आपके पिता की सहनशक्ति जवाब दे जाती है। वे अपने प्यारे बेटे के लिए फ़िरौती का भुगतान करते हैं और आइन्दा कभी स्पेन में कारोबार ना करने की क़सम खाते हैं। वे अपने कारोबार की मैड्रिड शाखा को बन्द करते हैं और आपके भाई को व्यापार के लिए रॉटेरडम में भेज देते हैं। अब हॉलैंड में उनकी दो शाखाएँ हो जाती हैं, और उनके मन में कारोबार को लेकर उम्मीद जागती है। उनके सुनने में आता है कि स्पेन के पूँजीपति तक अपनी सम्पत्ति को अपने मुल्क़ से बाहर ले जा रहे हैं। उन्हें भी अहसास हो गया है कि अगर वे अपना पैसा सुरक्षित रखना चाहते हैं और ज़्यादा पैसा कमाना चाहते हैं, तो इस पैसे का निवेश ऐसे मुल्क़ में करना बेहतर होगा, जहाँ न्यायपूर्ण क़ानून का राज्य हो और जहाँ निजी सम्पत्ति की इज़्ज़त होती हो - जैसे कि मसलन नीदरलैंड्स में।

इस तरह स्पेन के सम्राट ने निवेशकों का भरोसा खो दिया, जबकि उसी समय डच व्यापारियों ने उनका भरोसा जीत लिया। और ये डच व्यापारी थे - ना कि डच हुकूमत - जिन्होंने डच साम्राज्य को खड़ा किया था। स्पेन का सम्राट अपनी असन्तुष्ट आबादी पर जनविरोधी कर लादते हुए अपनी जीतों पर पैसा लगाने और उनका रख-रखाव करने की कोशिशों में लगा रहा। डच व्यापारियों ने अपनी विजयों पर धन लगाने के लिए क़र्ज़

हासिल किए और लगातार उन कम्पनियों को अपने शेयर बेचे, जो अपने शेयरधारियों को कम्पनी के मुनाफ़े का हिस्सा देते थीं। सावधान निवेशकों ने अपना पैसा कभी स्पेन के सम्राट को नहीं दिया और उन्होंने डच सरकार को ऋण देने के बारे दो बार सोचा था। उन्होंने ख़ुशी-ख़ुशी अपनी सम्पत्ति का उन डच ज्वाइंट स्टॉक-कम्पनियों में निवेश किया, जो नए साम्राज्य का मुख्य आधार थीं।

अगर आपको लगता कि कोई कम्पनी बड़ा मुनाफ़ा कमाने वाली है, लेकिन उसने अपने सारे शेयर पहले ही बेच दिये हैं, तो आप कुछ शेयर उन लोगों से ख़रीद सकते थे, जिन्होंने वे शेयर ख़रीद रखे थे, भरे ही इसके लिए आपको शायद उससे कुछ ज़्यादा क़ीमत चुकानी पड़ती, जितनी क़ीमत पर उन लोगों ने वे शेयर ख़रीदे थे। अगर शेयर ख़रीदने के बाद आपको पता चलता कि सम्बन्धित कम्पनी ख़तरनाक तंगहाली की स्थिति में है, तो आप कम क़ीमत पर अपने शेयर बेचकर अपना बोझ हलका कर सकते थे। कम्पनियों के शेयरों का यह व्यापार यूरोप के अनेक महानगरों में शेयर बाज़ारों की स्थापना का कारण बना, उन स्थलों पर जहाँ कम्पनियों के शेयरों का लेन-देन हुआ था।

वेरीनिग़डे आउस्टइंडीशे कंपैनी या संक्षेप में वीओसी नामक सबसे प्रसिद्ध डच ज्वाइंट स्टॉक कम्पनी को 1602 में अधिकृत किया गया था, ठीक उस वक़्त जब डच लोग स्पेनी हुकूमत से छुटकारा पा रहे थे और स्पेनी तोपों के धमाके अभी भी एम्स्टर्डम के परकोटों के आस-पास सुनाई दे रहे थे। शेयर बेचकर जो पैसा वीओसी ने इकट्ठा किया था, उसका इस्तेमाल उसने जहाज़ों के निर्माण, उन्हें एशिया भेजने और चीनी, हिन्दुस्तानी और इंडोनेशियाई माल वापस लाने पर ख़र्च किया। इसने प्रतिस्पर्धियों तथा जल दस्युओं के ख़िलाफ़ कम्पनी के जहाज़ों द्वारा की गई सैन्य कार्रवाइयों में भी पैसा लगाया। अन्ततः वीओसी का पैसा इंडोनेशिया की जीत पर भी लगाया गया।

इंडोनेशिया दुनिया का सबसे बड़ा द्वीपसमूह है। इसके हज़ारों द्वीपों पर शुरुआती सत्रहवीं सदी में सैकड़ों राजों-रजवाड़ों, सुल्तानों और क़बीलों का शासन हुआ करता था। जब वीओसी के सौदागर पहली बार 1603 में इंडोनेशिया पहुँचे थे, तो उनके लक्ष्य पूरी तरह से वाणिज्यिक थे, लेकिन अपने वाणिज्यिक हितों को सुरक्षित रखने और शेयरधारियों के मुनाफ़ों में ज़्यादा से ज़्यादा इज़ाफ़ा करने के लिए वीओसी के सौदागरों ने बढ़ा-चढ़ाकर सीमा-शुल्क वसूल करने वाले स्थानीय महाराजाओं और यूरोपीय प्रतिस्पर्धियों से लड़ना शुरू कर दिया। वीओसी ने अपने व्यापारिक जहाज़ों को तोपों से लैस किया, उसने यूरोपीय, जापानी, हिन्दुस्तानी और इंडोनेशियाई भाड़े के सैनिकों को नियुक्त किया और क़िलों का निर्माण किया तथा बड़े स्तर के युद्धों तथा घेराबन्दियों का संचालन किया। ये उपक्रम हमारे लिए कुछ अजीब-सा लग सकता है, लेकिन शुरुआती आधुनिक दौर में निजी कम्पनियों द्वारा ना सिर्फ़ सैनिकों, बल्कि जनरलों और एडमिरलों, तोपों और जहाज़ों के साथ ही यहाँ तक कि समूची मुस्तैद सेना को किराये पर लेना आम बात हुआ करती थी। जब कोई निजी कम्पनी साम्राज्य खड़ा करती थी, तो अन्तरराष्ट्रीय समुदाय इसकी ओर ध्यान नहीं देता था और किसी तरह की नाराज़गी नहीं दिखाता था।

एक के बाद एक द्वीप वीओसी के भाड़े के सैनिकों के सामने समर्पण करते गए और इंडोनेशिया का एक बहुत बड़ा हिस्सा वीओसी का उपनिवेश बन गया। वीओसी ने लगभग 200 सालों तक इंडोनेशिया पर शासन किया। 1800 में जाकर ही इंडोनेशिया

पर डच राज्य का नियन्त्रण क़ायम हो सका, जिसने उसे अगले 150 सालों तक डच राष्ट्र का उपनिवेश बनाकर रखा। आज कुछ लोग चेतावनी देते हैं कि इक्कीसवीं सदी के कॉर्पोरेशन बहुत ज़्यादा ताक़त एकत्र करते जा रहे हैं। शुरुआती आधुनिक इतिहास बताता है कि अगर व्यापारिक घरानों को उनके निजी हितों का अनुसरण करने की बेलगाम छूट दे दी जाती है, तो यह सिलसिला कितनी दूर तक जा सकता है।

जहाँ वीओसी हिन्द महासागर में सक्रिय थी, वहीं डच वेस्ट इंडीज़ कम्पनी या डब्ल्यूआईसी अटलांटिक में व्यस्त थी। महत्त्वपूर्ण हडसन नदी पर व्यापार को नियन्त्रित करने के लिए डब्ल्यूआईसी ने नदी के मुहाने के एक द्वीप पर न्यू एम्स्टर्डम नामक एक बस्ती बसा ली। इस उपनिवेश पर इंडियन्स का ख़तरा मँडराता रहता था और उस पर बार-बार अँग्रेज़ों के हमले होते थे, जिन्होंने अन्ततः उसे 1664 में क़ब्ज़े में ले लिया। अँग्रेज़ों ने इसका नाम बदलकर न्यू यॉर्क कर दिया। अपने उपनिवेश को इंडियन्स और अँग्रेज़ों से बचाने के लिए डब्ल्यूईसी द्वारा खड़ी की गई दीवार के अवशेषों पर आज दुनिया की सबसे प्रसिद्ध सड़क - वाल स्ट्रीट - फैली हुई है।

सत्रहवीं सदी के अन्त पर पहुँचने के साथ ही आत्मतुष्टि और महँगे महाद्वीपीय युद्धों की वजह से डचों ने ना सिर्फ़ न्यू यॉर्क को खो दिया, बल्कि यूरोप की वित्तीय और साम्राज्यवादी मशीन की अपनी हैसियत को भी गँवा दिया। इससे जो जगह ख़ाली हुई उसे भरने के लिए फ़्रांस और ब्रिटेन के बीच उग्र प्रतिस्पर्धा हुई। शुरू में फ़्रांस ज़्यादा मज़बूत स्थिति में दिखाई दिया। वह ब्रिटेन के मुक़ाबले में बड़ा, सम्पन्न, ज़्यादा घनी बसावट वाला था और उसके पास ज़्यादा बड़ी और अनुभवी सेना थी। तब भी ब्रिटेन वित्तीय व्यवस्था का भरोसा जीतने में कामयाब रहा, जबकि फ़्रांस ने ख़ुद को अयोग्य साबित कर दिया। फ़्रांसीसी सम्राट का व्यवहार ख़ास तौर से उस दौरान बदनाम हुआ, जिसे ‘मिसीसिपी बबल’ के नाम से जाना जाता था, जो कि अठारहवीं सदी के यूरोप का सबसे बड़ा वित्तीय संकट था। इस क़िस्से की शुरुआत साम्राज्य-निर्मात्री ज्वाइंट-स्टॉक कम्पनी के साथ भी होती है।

39. मैनहट्टन द्वीप के सिरे पर 1660 में न्यू एम्स्टर्डम। बस्ती की रक्षात्मक दीवार अब वाल स्ट्रीट द्वारा ढँक ली गई है।

1717 में फ़्रांस में अधिकृत की गई मिसीसिपी कम्पनी निचली मिसीसिपी घाटी का उपनिवेशीकरण करने के अभियान पर निकली और इस प्रक्रिया में उसने न्यू ऑर्लियन्स नामक नगर की स्थापना की। अपनी महत्त्वाकांक्षी योजनाओं को धन मुहैया कराने के लिए इस कम्पनी ने पेरिस स्टॉक एक्सचेंज में शेयर बेच दिए। इस कंपनी के सम्राट लुई XV के दरबार में अच्छे सम्पर्क थे। कम्पनी का डायरेक्टर जॉन लॉ सेंट्रल बैंक ऑफ़ फ़्रांस का गवर्नर भी था। इसके अतिरिक्त, सम्राट ने उसे महानियन्त्रक वित्त के पद पर भी नियुक्त कर दिया था, जो मोटे तौर पर आधुनिक युग के वित्त मन्त्री के पद के समतुल्य था। 1717 में निचली मिसीसिपी घाटी का उसके दलदलों और घड़ियालों के अलावा और कोई ख़ास आकर्षण नहीं था, तब भी मिसीसिपी कम्पनी ने मनगढ़न्त सम्पदाओं और अन्तहीन अवसरों के क़िस्से फैलाए। फ़्रांसीसी कुलीन वर्ग, व्यापारी और शहरी बुर्जुआ वर्ग के मन्दबुद्धि लोग इन फ़न्तासियों के बहकावे में आ गए और मिसीसिपी के शेयरों के दाम आसमान छूने लगे। शुरुआत में दाम प्रति शेयर 500 लीव्र थी। 1 अगस्त 1719 को शेयरों का लेन-देन 2,750 लीव्र प्रति शेयर के दाम पर हुआ। 30 अगस्त तक उनकी क़ीमत 4,100 लीव्र हो गई, और 4 सितम्बर को वे 5,000 लीव्र पर पहुँच गए। 2 दिसम्बर को मिसीसिपी के शेयर की क़ीमत 10,000 लीव्र को पार कर गई। पेरिस की सड़कों पर उल्लास छाया हुआ था। मिसीसिपी शेयरों को ख़रीदने के लिए लोगों ने अपनी सारी सम्पत्तियाँ बेच डालीं और भारी क़र्ज़ ले डाले। हर किसी को यक़ीन था कि उन्होंने

समृद्धि का आसान तरीक़ा ढूँढ़ निकाला है।

कुछ दिनों बाद खलबली की शुरुआत हुई। कुछ सट्टेबाज़ों को समझ में आने लगा कि शेयरों की क़ीमतें पूरी तरह से अवास्तविक हैं और टिकने वाली नहीं हैं। उन्होंने हिसाब लगाया कि जब तक शेयरों की क़ीमतें अपने शिखर पर हैं, तब तक उन्हें बेच डालना ही बेहतर होगा। जैसे ही उपलब्ध शेयरों की आपूर्ति बढ़ी, उनकी क़ीमतें गिर गईं। जब दूसरे निवेशकों ने क़ीमतों को गिरते देखा, तो उन्होंने भी जल्दी से छुटकारा पाना चाहा। शेयरों की क़ीमत और भी तेज़ी से गिरती हुई पहाड़ के टूटकर गिरने की चेतावनी देने लगीं। क़ीमतों में स्थिरता लाने के लिए सेंट्रल बैंक ऑफ़ फ़्रांस ने उसके गवर्नर जॉन लॉ के निर्देश पर मिसीसिपी के शेयर ख़रीद डाले, लेकिन ऐसा वह हमेशा तो नहीं करता रह सकता था। अन्ततः उसके पास पैसे ख़त्म हो गए। जब यह हुआ, तो महानियन्त्रक वित्त यानी उसी जॉन लॉ ने अतिरिक्त शेयर ख़रीदने के लिए पैसे छापने का आदेश दिया। इस चीज़ ने समूची फ़्रांसीसी वित्त व्यवस्था को जोख़िम में डाल दिया। और यह वित्तीय ओझागिरी भी हालात को बिगड़ने से नहीं रोक सकी। मिसीसिपी के शेयरों के दाम 10,000 लीव्र से घटकर वापस 1,000 लीव्र पर आ गए। इसके बाद पूरी तरह ध्वस्त हो गए और शेयरों की एक धेला क़ीमत भी नहीं रह गई। हालत यह थी कि सेंट्रल बैंक और शाही ख़ज़ाने के पास मूल्यहीन शेयरों का अम्बार लगा हुआ था और पैसा बिलकुल भी नहीं था। बड़े सटोरिये ज़्यादातर साफ़-साफ़ बचे गए थे। उन्होंने समय रहते शेयर बेच दिए थे। छोटे निवेशकों ने सब कुछ खो दिया और कइयों ने आत्महत्याएँ कर लीं।

'मिसीसिपी बबल' इतिहास की सबसे असाधारण साख-दुर्घटनाओं में से एक था। फ़्रांस की शाही वित्तीय व्यवस्था इस झटके से कभी भी पूरी तरह नहीं उबर पाई। मिसीसिपी कम्पनी ने शेयर की क़ीमतों के मामले में चालाकी बरतने और ख़रीदी के उन्माद को भड़काने के लिए जिस तरह अपने राजनैतिक रसूख का इस्तेमाल किया था, उससे फ़्रांसीसी बैंकिंग प्रणाली और फ़्रांसीसी सम्राट की वित्तीय समझ से जनता का विश्वास उठ गया। लुई XV को साख को बढ़ाना उत्तरोत्तर मुश्किल होता गया। यह समुद्रपार के फ़्रांसीसी साम्राज्य के अँग्रेज़ों के हाथ में चले जाने का एक मुख्य कारण बन गया। जहाँ अँग्रेज़ आसानी से और कम ब्याज़ दरों पर पैसा उधार ले पाते थे, वहीं फ़्रांस को कर्ज़ प्राप्त करना मुश्किल हो गया और जो क़र्ज़ उसे मिलते थे, उनके लिए उसे बहुत ज़्यादा ब्याज़ देना पड़ता था। अपने उत्तरोत्तर बढ़ते क़र्ज़ों से निपटने के लिए फ़्रांस के सम्राट ने उत्तरोत्तर बढ़ती ब्याज़ दरों पर और-और क़र्ज़ लिया। अन्ततः 1780 के दशक में, अपने दादा की मृत्यु के बाद राजसिंहासन सँभालने वाले लुई XVI को समझ में आया कि सालाना बजट का आधा हिस्सा उसके क़र्ज़ों पर लगने वाले ब्याज़ को चुकाने में ख़र्च हो जाता है और यह कि वह दिवालिया होने की ओर अग्रसर है। 1789 में लुई XVI ने इस संकट का समाधान खोज़ने के लिए बेमन से उस एस्टेट जनरल यानी फ़्रांसीसी संसद की बैठक बुलाई, जिसकी बैठक डेढ़ सदी से नहीं हुई थी। इस तरह फ़्रांसीसी क्रान्ति की शुरुआत हुई।

जिस दौरान समुद्रपार का फ़्रांसीसी साम्राज्य ढह रहा था, उसी दौरान ब्रिटिश साम्राज्य तेजी से बढ़ रहा था। उसके पहले के डच साम्राज्य की ही तरह ब्रिटिश साम्राज्य भी व्यापक तौर पर लन्दन स्टॉक एकस्चेंज में स्थित निजी ज्वाइंट-स्टॉक कम्पनियों द्वारा

स्थापित और संचालित हुआ था। उत्तरी अमेरिका के प्रथम उपनिवेश सत्रहवीं सदी के शुरुआती दौर में लन्दन कम्पनी, प्लिमथ कम्पनी, डोरचैस्टर कम्पनी और मैसाचुसेट्स कम्पनी जैसी ज्वाइंट-स्टॉक कम्पनियों द्वारा स्थापित किए गए थे।

भारतीय उपमहाद्वीप को भी ब्रिटिश हुकूमत ने नहीं, बल्कि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के भाड़े के सैनिकों द्वारा फ़तह किया गया था। इस कम्पनी ने वीओसी तक को मात कर दिया था। इस कम्पनी ने लंदन के लैडनहॉल स्ट्रीट स्थित अपने मुख्यालय से कोई एक सदी तक शक्तिशाली हिन्दुस्तानी साम्राज्य पर हुकूमत करते हुए 350,000 सैनिकों तक के विशाल सैन्य-बल को खड़ा किया था, जो ब्रिटिश राजतन्त्र के सैन्य बल से भी अच्छा ख़ासा बड़ा सैन्य बल था। 1858 में जाकर ही ब्रिटिश सम्राट ने कम्पनी की निजी सेना समेत हिन्दुस्तान का राष्ट्रीयकरण किया। नेपोलियन ने अँग्रेज़ों का मज़ाक़ उड़ाते हुए उन्हें दुकानदारों के राष्ट्र की संज्ञा दी थी, लेकिन इन दुकानदारों ने स्वयं नेपोलियन को पराजित किया था और उनका साम्राज्य दुनिया का अब तक का सबसे बड़ा साम्राज्य था।

पूँजी के नाम पर

डच सम्राट द्वारा इंडोनेशिया के राष्ट्रीयकरण (1800) और ब्रिटिश सम्राट द्वारा हिन्दुस्तान के राष्ट्रीयकरण (1858) ने पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के आलिंगन को समाप्त नहीं किया। इसके विपरीत यह रिश्ता उन्नीसवीं सदी के दौरान और मज़बूत होता गया। ज्वाइंट-स्टॉक कम्पनियों को अब निजी उपनिवेशों को स्थापित करने और उन पर शासन करने की ज़रूरत नहीं गई थी। उनके मैनेजर और बड़े शेयरधारक सत्ता की डोर को लन्दन, एम्स्टर्डम और पेरिस में बैठकर खींचते थे और वे राज्य पर भरोसा कर सकते थे कि वह उनके हितों का ख़याल रखे। जैसा कि मार्क्स और दूसरे सामाजिक समालोचक मज़ाक़ उड़ाया करते थे कि पश्चिमी सरकारें पूँजीवादी ट्रेड यूनियनें बनती जा रही थीं।

किस तरह सरकारों ने बड़े पैसे की बोली लगाई, इसका सबसे कुख्यात उदाहरण ब्रिटेन और चीन के बीच लड़ा गया पहला अफ़ीम युद्ध (1840-42) था। उन्नीसवीं सदी के प्रथमार्द्ध में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी और भाँति-भाँति के अँग्रेज़ व्यापारियों ने चीन में ड्रगों (नशीले पदार्थों), विशेष रूप से अफ़ीम का निर्यात कर विपुल ऐश्वर्य इकट्ठा किया था। लाखों चीनियों को इन ड्रगों की लत लग गई, जिसने मुल्क़ को आर्थिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर अशक्त बना दिया। 1830 के दशक के बाद के वर्षों में चीनी सरकार ने ड्रगों के अवैध व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा दिया, लेकिन ड्रगों के अँग्रेज़ व्यापारियों ने इस क़ानून को सीधे-सीधे नज़रअन्दाज़ कर दिया। चीनी प्रशासकों ने ड्रगों की खेपों को ज़ब्त करना और नष्ट करना शुरू कर दिया। ड्रगों के उत्पादकों के वेस्टमिन्स्टर और डाउनिंग स्ट्रीट में क़रीबी ताल्लुक़ात थे। कई सांसदों और कैबिनेट मन्त्रियों के तो दरअसल ड्रग तैयार करने वाली कम्पनियों में शेयर थे, इसलिए उन्होंने अपनी सरकार पर कार्रवाई करने के लिए दबाव डाला।

1840 में 'मुक्त व्यापार' के नाम पर चीन के साथ बाक़ायदा युद्ध की घोषणा कर दी गई। यह एक आसान जीत थी। ज़रूरत से ज़्यादा आत्मविश्वास से भरे चीनी दरअसल

ब्रिटेन के नए करामाती हथियारों जैसे भाप के इंजन वाले जहाज़ों, भारी तोपख़ानों, रॉकेटों और तेज़ राइफ़लों के सामने कहीं नहीं टिकते थे। बाद में हुई शान्ति सन्धि के तहत चीन अँग्रेज़ ड्रग व्यापारियों की गतिविधियों में रुकावट पैदा ना करने और उन्हें चीनी पुलिस द्वारा पहुँचाए गए नुक़सान की भरपाई करने पर राज़ी हो गया। इससे भी आगे, अँग्रेज़ों ने हांग कांग पर नियन्त्रण की माँग की और नियन्त्रण हासिल कर लिया, जिसको उन्होंने ड्रग के अवैध करोबार के एक सुरक्षित अड्डे की तरह इस्तेमाल करना शुरू कर दिया (हांग कांग 1997 तक अँग्रेज़ों के हाथ में बना रहा)। उन्नीसवीं सदी के बाद के वर्षों में लगभग 4 करोड़ चीनियों यानी मुल्क़ की आबादी के दसवें हिस्से को अफ़ीम की लत लग चुकी थी।

मिस्र ने भी ब्रिटिश पूँजीवाद की ताक़त की इज़्ज़त करना सीखा था। उन्नीसवीं सदी के दौरान फ़्रांसीसी और अँग्रेज़ निवेशकों ने मिस्र के हुक्मरानों को भारी तादाद में कर्ज़ दिया था, पहले तो सुएज़ नहर परियोजना में धन लगाने के लिए और बाद में ऐसे उद्यमों में धन लगाने के लिए, जो अपेक्षाकृत कम सफल रहे। मिस्र का ऋण बढ़ता गया, और यूरोपीय ऋणदाता मिस्र के मामलों में उत्तरोत्तर दख़लन्दाज़ी करने लगे। 1881 में मिस्र के राष्ट्रवादियों ने इससे तंग आकर विद्रोह कर दिया। उन्होंने तमाम विदेशी क़र्ज़ों को रद्द किए जाने की एकतरफ़ा घोषणा कर दी। महारानी विक्टोरिया इससे ख़ुश नहीं हुईं। एक साल बाद उन्होंने अपनी सेना और नौसेना को नील की ओर रवाना कर दिया और मिस्र द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद तक अँग्रेज़ों द्वारा नियन्त्रित-संरक्षित राज्य बना रहा।

ये निवेशकों के हित में लड़ी गई एकमात्र लड़ाइयाँ नहीं थीं। दरअसल, युद्ध अपने आप में, अफ़ीम की तरह, एक कमॉडिटी बन सकता है। 1821 में ग्रीकों ने ऑटोमन साम्राज्य के ख़िलाफ़ विद्रोह किया था। ब्रिटेन के उदारतावादी और रोमांटिक दायरों में इस विद्रोह ने ज़बरदस्त सहानुभूति जगाई - कवि लॉर्ड बायरन तो लड़ाई में विद्रोहियों का साथ देने ग्रीस जा पहुँचे थे, लेकिन लन्दन के साहूकारों ने इसमें एक अवसर भी ढूँढ निकाला। उन्होंने विद्रोही नेताओं के समक्ष लन्दन के स्टॉक एक्सचेंज में विक्रय-योग्य ग्रीक रिबेलियन बॉण्ड्स जारी किए जाने का प्रस्ताव रखा। इसके तहत ग्रीकों को यह आश्वासन देना था कि अगर वे स्वाधीनता की अपनी लड़ाई जीत गए, तो वे उसी समय ब्याज़ समेत बॉण्ड्स का भुगतान करेंगे। निजी निवेशकों ने मुनाफ़ा कमाने या ग्रीकों के ध्येय के प्रति अपनी सहानुभूति के कारण या दोनों ही वजहों से बॉण्ड्स ख़रीद लिए। लन्दन के स्टॉक एक्सचेंज में ग्रीक रिबेलियन बॉण्ड्स की क़ीमत हेलास के युद्ध-क्षेत्र में सैन्य कार्रवाई की क़ामयाबी और नाक़ामयाबी की रफ़्तार के मुताबिक़ बढ़ने-घटने लगी। धीरे-धीरे तुर्कों की स्थिति मज़बूत होती गई। विद्रोहियों की पराजय को क़रीब पाकर बॉण्ड-धारकों को अपने कंगाल हो जाने की सम्भावनाएँ दिखाई देने लगीं। चूँकि बॉण्ड-धारकों का हित राष्ट्रीय हित था, इसलिए अँग्रेज़ों ने एक अन्तरराष्ट्रीय जहाज़ी बेड़े की योजना तैयार की, जिसने 1827 में नवारिनो की लड़ाई में मुख्य ऑटोमन बेड़े को डुबा दिया। सदियों की ग़ुलामी के बाद ग्रीस अन्ततः आज़ाद हुआ, लेकिन यह आज़ादी उस विशालकाय क़र्ज़ के साथ हासिल हुई, जिसे चुकाने का कोई तरीक़ा इस नए मुल्क़ के पास नहीं था। ग्रीक अर्थव्यवस्था आने वाले कई दशकों के लिए अँग्रेज़ साहूकारों की बन्धक बनकर रह गई।

पूँजी और राजनीति के इस प्रगाढ़ आलिंगन के साख बाज़ार के लिए दूरगामी निहितार्थ रहे हैं। किसी अर्थव्यवस्था के भीतर साख की मात्रा नए तेल क्षेत्रों के पता लगने या किसी नई मशीन के आविष्कार जैसे विशुद्ध आर्थिक कारकों से तय नहीं होती, बल्कि शासन में बदलाव या अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वाकांक्षी विदेश नीति जैसी राजनैतिक घटनाओं से भी तय होती है। नवारिनो की लड़ाई के बाद अँग्रेज़ पूँजीपति जोख़िमपूर्ण विदेशी सौदों में निवेश के और भी इच्छुक हो उठे थे। वे देख चुके थे कि अगर कोई विदेशी क़र्ज़दार क़र्ज़ लौटाने से इनकार करता है, तो महारानी की सेना उनका पैसा वापस दिला देगी।

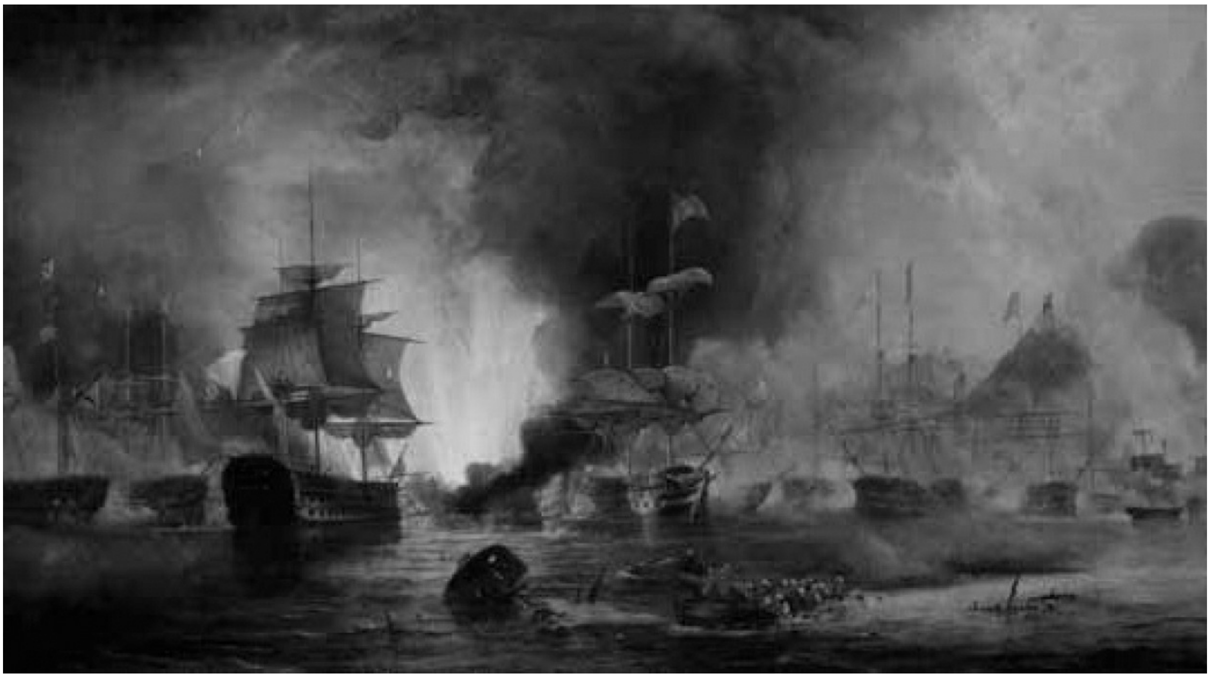

40. नवारिनो की लड़ाई (1827)।

इसीलिए आज किसी मुल्क़ की आर्थिक ख़ुशहाली के सन्दर्भ में उस मुल्क़ की साख का स्तर (रेटिंग) उसके प्राकृतिक संसाधनों से ज़्यादा महत्त्व रखता है। साख के स्तर किसी मुल्क़ द्वारा क़र्ज़ चुका सकने की सम्भावना की ओर संकेत करते हैं। वे विशुद्ध आर्थिक आँकड़ों के अलावा राजनैतिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक कारकों तक को लेखे में लेते हैं। अत्याचारी शासन, अन्दरूनी संघर्षों और भ्रष्ट न्याय-व्यवस्था वाला एक तेल-समृद्ध मुल्क़ आम तौर से साख का निचला स्तर हासिल करेगा। नतीज़तन, उसके अपेक्षाकृत ग़रीब बने रहने की सम्भावना होगी क्योंकि वह अपने तेल भण्डार का पूरा लाभ उठाने के लिए ज़रूरी पूँजी जुटा पाने में अक्षम रहेगा। प्राकृतिक संसाधनों से वंचित, किन्तु आन्तरिक शान्ति, उचित न्याय-व्यवस्था और मुक्त शासन वाले मुल्क़ को साख का ऊँचा दर्ज़ा हासिल होने की सम्भावना होगी। उस रूप में वह एक अच्छी शिक्षा-व्यवस्था को सहारा देने और उच्च तकनीकी उद्योग को मज़बूत बनाने के लिए पर्याप्त मात्रा में सस्ती पूँजी जुटा सकेगा।

मुक्त बाजार की अन्धभक्ति

पूँजी और राजनीति एक दूसरे को इस हद तक प्रभावित करते हैं कि उनके रिश्तों को लेकर अर्थशास्त्रियों, राजनेताओं और आम जनता के बीच समान रूप से ज़ोरदार बहसें होती रही हैं। उत्साही पूँजीवादी यह तर्क देने की ओर प्रवृत्त होते हैं कि पूँजी को राजनीति को प्रभावित करने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया जाना चाहिए, लेकिन राजनीति को पूँजी को प्रभावित करने की छूट नहीं दी जानी चाहिए। उनका कहना है कि जब सरकारें बाज़ार में दख़लन्दाज़ी करने लगती हैं, तो राजनैतिक हित उन्हें मूर्खतापूर्ण निवेश करने को बाध्य करते हैं, जिनके परिणामस्वरूप विकास की गति धीमी पड़ जाती है। उदाहरण के लिए, कोई सरकार उद्योगपतियों पर भारी कर लागू कर सकती है और उस पैसे का उपयोग बेरोज़गारों के लिए ऐसे मुक्त हस्त भत्ते बाँटने में कर सकती है, जो मतदाताओं को लुभाने वाले हैं। बहुत से कारोबारी लोगों की नज़रों में बेहतर यह है कि सरकार पैसे को उनके पास छोड़ दे। उनका दावा है कि वे उस पैसे का इस्तेमाल नए कारख़ानों को खोलने और बेरोज़गारों को नौकरियाँ देने में करेंगे।

इस दृष्टिकोण के मुताबिक़, सबसे अक़्लमन्दीपूर्ण आर्थिक नीति यह है कि राजनीति को अर्थव्यवस्था से दूर रखा जाए, करों और सरकारी नियन्त्रण को न्यूनतम रखा जाए और बाज़ार की शक्तियों को अपने ढंग से काम करने की खुली छूट दी जाए। ग़ैरसरकारी निवेशक राजनैतिक चिन्ताओं से बरी होकर अपने पैसे का निवेश ऐसी जगहों पर करेंगे, जहाँ से उन्हें ज़्यादा मुनाफ़ा मिल सकता होगा, इसलिए आर्थिक वृद्धि को सुनिश्चित करने का तरीक़ा यह है कि सरकार भरसक कम से कम हस्तक्षेप करे, जो उद्योगपतियों और कामगारों सभी के हित में होगी। मुक्त बाज़ार का मत आज पूँजीवादी मज़हब का सबसे लोकप्रिय और प्रभावशाली रूप है। मुक्त बाज़ार के सबसे ज़्यादा उत्साही पैरोकार विदेशी सैन्य अभियानों की उतनी ही तीखी आलोचना करते हैं, जितनी मुल्क़ के अन्दर के कल्याणकारी कार्यक्रमों की करते हैं। वे सरकारों को वही सलाह देते हैं जो ज़ेन गुरु नवदीक्षितों को देते हैं : “सिर्फ़ कुछ मत करो”।

लेकिन मुक्त बाज़ार में आस्था अपने चरम रूप में उतनी ही बचकानी है, जितनी सान्ता क्लाज़ में आस्था है। इस तरह के बाज़ार जैसी दरअसल कोई चीज़ है ही नहीं, जो तमाम राजनैतिक पूर्वग्रहों से मुक्त हो। सबसे महत्त्वपूर्ण आर्थिक संसाधन है भविष्य के प्रति भरोसा और इस संसाधन पर लगातार चोरों और उचक्कों का ख़तरा मँडराता रहता है। बाज़ार अपने आप में धोखाधड़ी, चोरी और हिंसा के ख़िलाफ़ कोई सुरक्षा मुहैया नहीं कराते। ये राजनैतिक व्यवस्था का काम है कि वह धोखेबाज़ों के ख़िलाफ़ दण्डों का विधान कर भरोसे को सुनिश्चित करे और क़ानून का पालन कराने के लिए पुलिस बलों, अदालतों और जेलों की स्थापना कर उनकी व्यवस्था सँभाले। जब सम्राट अपनी ज़िम्मेदारी निभाने और बाज़ारों का समुचित ढंग से नियमन करने में नाक़ामयाब हो जाते हैं, तो यह स्थिति भरोसे के टूटने और साख के घटने तथा आर्थिक मन्दी का कारण बनती है। 1719 के ‘मिसीसिपी बबल’ से यही सीख मिली थी और जो भी कोई इस सीख को भूल गया था, उसे 2007 के संयुक्त राज्य अमेरिका के ‘हाउसिंग बबल’ और उसके परिणामस्वरूप आई साख की गिरावट और मन्दी ने इसकी याद दिला दी थी।

पूँजीवादी नर्क

एक और भी महत्त्वपूर्ण वजह से बाज़ार को खुली छूट नहीं दी चाहिए। एडम स्मिथ ने सिखाया था कि मोची अपनी अतिरिक्त आमदनी का इस्तेमाल और ज़्यादा सहायकों को रोज़गार देने में करेगा। इसमें यह निहित है कि स्वार्थपूर्ण लालच सभी के हित में है, क्योंकि मुनाफ़ों का सदुपयोग उत्पादन को विस्तार देने और ज़्यादा संख्या में कामगारों को रोज़गार देने के लिए किया जाता है।

तब भी, उस वक़्त क्या होता है जब एक लालची मोची अपने कर्मचारियों को कम मेहनताना देकर और उनके काम के घण्टों को बढ़ाकर अपने मुनाफ़े को बढ़ाने लगता है? इसका एक मानक जवाब है कि मुक्त बाज़ार कर्मचारियों का बचाव करेगा। अगर हमारा मोची बहुत कम मेहनताना देता है और बहुत ज़्यादा की माँग करता है, तो स्वाभाविक ही अच्छे कर्मचारी उसे छोड़ देंगे और उसके प्रतिस्पर्धियों के यहाँ जाकर काम करने लगेंगे। इस अत्याचारी मोची के पास या तो घटिया कर्मचारी बचे रह जाएँगे या कर्मचारी ही नहीं बचेंगे। उसे या तो अपना रवैया सुधारना होगा या अपने कारोबार से बाहर हो जाना पड़ेगा। उसका अपना लालच ही उसे अपने कर्मचारियों के साथ ठीक से व्यवहार करने को बाध्य करेगा।

सिद्धान्ततः यह तर्क बुलटप्रूफ़ प्रतीत होता है, लेकिन व्यवहार में गोलियाँ इसको आसानी से पार कर जाती हैं। सम्राटों और पुरोहितों की निगरानी से वंचित एक पूर्णतः मुक्त बाज़ार में लालची पूँजीपति एकाधिकार स्थापित कर सकते हैं या अपने कार्मिक बल के ख़िलाफ़ साँठ-गाँठ कर सकते हैं। अगर किसी मुल्क़ की जूतों की सारी फ़ैक्टरियाँ किसी एक ही कॉर्पोरेशन के नियन्त्रण में हैं, या सारी फ़ैक्टरियों के मालिक एक साथ मिलकर मज़दूरियों को कम करने का साजिश रचते हैं, तब मज़दूर एक जगह से नौकरी छोड़ दूसरी जगह काम करके भी अपना बचाव करने की स्थिति में नहीं रह जाते।

इससे भी बदतर स्थिति यह है कि लालची मालिक अपने कामगारों को क़र्ज़ की मार्फ़त बँधुआ या ग़ुलाम बनाकर उनकी आवाजाही की आज़ादी पर रोक लगा सकते हैं। मध्य युग के अन्त में ग़ुलामी ईसाई यूरोप के लिए लगभग एक अज्ञात चीज़ थी। शुरुआती आधुनिक युग के दौरान यूरोपीय पूँजीवाद के उदय के साथ-साथ अटलांटिक ग़ुलाम व्यापार का उदय हुआ। इस आपदा के लिए अत्याचारी सम्राट या नस्लवादी विचारधाराएँ नहीं, बल्कि बाज़ार की अनियन्त्रित शक्तियाँ ज़िम्मेदार थीं।

जब यूरोपीय लोगों ने अमेरिका को फ़तह किया, तो उन्होंने सोने और चाँदी की खदानें खोदनी शुरू की और गन्ना, तंबाकू और कपास की खेती भी शुरू की। ये खदानें और खेत अमेरिकी उत्पादन और निर्यात का मुख्य आधार बन गए। गन्ने के खेत ख़ास तौर से महत्त्वपूर्ण थे। मध्य युग में चीनी यूरोप में एक दुर्लभ विलासिता हुआ करती थी। इसे बहुत ऊँचे दामों पर मध्य पूर्व से आयात किया जाता था और स्वादिष्ट भोजनों तथा जाली दवाओं में आश्चर्यजनक ढंग से गुप्त घटक के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। जब अमेरिका में बड़े स्तर पर गन्ने के खेत विकसित हो गए, तो चीनी निरन्तर बढ़ती हुई मात्रा में यूरोप पहुँचने लगी। चीनी की क़ीमतें गिर गईं और यूरोप के लोगों में मीठे भोजन की एक ना मिटने वाली भूख पैदा हो गई। उद्यमियों ने इस ज़रूरत को बड़ी मात्रा में

मिठाइयाँ बनाकर पूरा किया : केक, कुकीज़, चॉकलेट, कैंडी और कोको, काफ़ी तथा चाय जैसे मीठे पेय। सत्रहवीं सदी की शुरुआत में जो औसत अँग्रेज़ साल भर में बिलकुल भी चीनी नहीं खाता था, वही अठारहवीं सदी की शुरुआत में सालाना लगभग आठ किलोग्राम चीनी खाने लगा।

लेकिन गन्ने को उपजाना और फिर उसमें से चीनी निकालना एक बेहद श्रमसाध्य काम था। उष्णकटिबन्धीय धूप में मलेरिया से भरे गन्ने के खेतों में कई-कई घण्टे काम करने को बहुत थोड़े-से लोग तैयार होते थे। ठेके के मज़दूर इतने बड़े पैमाने पर जन समूह के उत्पादन के लिए बहुत महँगे साबित होते। बाज़ार की शक्तियों के प्रति संवेदनशील और मुनाफ़ों तथा आर्थिक वृद्धि के लालच से भरे यूरोपीय खेत मालिक ग़ुलामों की ओर मुड़ गए।

सोलहवीं सदी से लेकर उन्नीसवीं सदी तक लगभग 1 करोड़ अफ़्रीकी ग़ुलाम अमेरिका लाए गए। इनमें लगभग 70 प्रतिशत गन्ने के खेतों में काम करते थे। जिन परिस्थितियों में मज़दूरों को काम करना पड़ता था, वे बहुत ख़राब थीं। ज़्यादातर ग़ुलाम छोटा और दर्दनाक जीवन जी पाते थे, और लाखों ग़ुलाम क़ब्ज़े के लिए लड़ी गई लड़ाइयों के दौरान या अफ़्रीका से अमेरिका के तट तक की लम्बी यात्राओं के दौरान मर गए। यह सब कुछ इसलिए हुआ ताकि यूरोपीय लोग मीठी चाय और कैंडी का आनन्द ले सकते - और चीनी का उत्पादन करने वाले सेठ भारी मुनाफ़े कमा सकते।

ग़ुलामों का व्यापार किसी राज्य या सरकार द्वारा नियन्त्रित नहीं था। ये शुद्ध रूप से एक आर्थिक उपक्रम था, जिसे माँग और पूर्ति के नियमों के मुताबिक़ मुक्त बाज़ार द्वारा आयोजित और वित्तपोषित किया गया था। ग़ुलामों का व्यापार करने वाली निजी कम्पनियाँ एम्स्टर्डम, लन्दन और पेरिस के स्टॉक एक्सचेंज में अपने शेयर बेचती थीं। अच्छे निवेश की इच्छा रखने वाले मध्यवर्गीय यूरोपीय ये शेयर ख़रीदते थे। इस पैसे पर निर्भर करते हुए कम्पनियाँ जहाज़ ख़रीदतीं, मल्लाहों और सैनिकों को भाड़े पर रखतीं, अफ़्रीका से ग़ुलामों को ख़रीदतीं और उन्हें अमेरिका भेज देतीं। वहाँ वे इन ग़ुलामों को खेत मालिकों को बेच देती थीं, और इस बिक्री से हुई आय का इस्तेमाल चीनी, कोको, कॉफ़ी, तंबाकू, कपास और रम जैसे माल को ख़रीदने में करती थीं, फिर वे यूरोप लौटतीं, चीनी और कपास को ख़ासी क़ीमतों पर बेचतीं और इस सिलसिले का अगला दौर शुरू करने के लिए वापस ज़हाज़ में बैठकर अफ़्रीका लौट जातीं। शेयरधारक इस व्यवस्था से बहुत ख़ुश थे। समूची अठारहवीं सदी के दौरान ग़ुलाम-व्यापार निवेशों से होने वाला मुनाफ़ा सालाना 6 प्रतिशत हुआ करता था। ये निवेश अत्यन्त फ़ायदेमन्द थे, जैसा कि कोई भी आधुनिक सलाहकार तत्काल स्वीकार करेगा।

यह मुक्त-बाज़ार-पूँजीवाद का सबसे बुरा पक्ष है। यह इस बात को सुनिश्चित नहीं कर सकता कि मुनाफ़ा जायज़ तरीक़े से हासिल किए जाएँगे या उनका वितरण जायज़ तरीक़े से होगा। इसके विपरीत, मुनाफ़ों और उत्पादन को बढ़ाने की लिप्सा लोगों को उनके आड़े आने वाली किसी भी चीज़ के प्रति अन्धा बना देती है। जब विकास दूसरे किन्हीं भी नैतिक सोच-विचारों से अमर्यादित होकर अपने आप में सबसे बड़ा स्वार्थ बन जाता है, तो वह आसानी से विनाश का कारण बन सकता है। ईसाइयत और नाज़ीवाद जैसे कुछ मज़हबों ने ज़बरदस्त घृणा के कारण लाखों लोगों की हत्याएँ की हैं। पूँजीवाद ने लिप्सा से

युक्त भावहीन बेरुख़ी के कारण लाखों लोगों की हत्याएँ की हैं। अटलांटिक ग़ुलाम व्यापार आफ़्रीकियों के प्रति नस्लपरक घृणा से उत्पन्न नहीं हुआ था। शेयर ख़रीदने वाले व्यक्तियों, उन्हें बेचने वाले दलालों और ग़ुलामों का व्यापार करने वाली कम्पनियों के मैनेजरों ने शायद ही कभी अफ़्रीकियों बारे में सोचा हो। ना इसका ख़याल गन्ने के खेतों के मालिकों के मन आता था। बहुत-से मालिक तो इन खेतों से बहुत दूर कहीं रहा करते थे और उन्हें मुनाफ़ों और घाटों के बही-खातों के अलावा किसी और चीज़ से सरोकार नहीं होता था।

यह याद रखना महत्त्वपूर्ण है कि अटलांटिक ग़ुलाम व्यापार एक अन्यथा बेदाग़ इतिहास में हुई एकमात्र चूक नहीं था। बंगाल का भीषण अकाल भी ऐसे ही आचरण का नतीज़ा था, जिसकी चर्चा पिछले अध्याय में की गई है। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी को एक करोड़ बंगालियों से ज़्यादा अपने मुनाफ़ों की चिन्ता थी। वीओसी के इंडोनेशियाई सैन्य अभियानों में उन ईमानदार डच नागरिकों का पैसा लगा था, जो अपने बच्चों को प्यार करते थे, जन-कल्याण के लिए दान करते थे, अच्छा संगीत और अच्छी कला में रुचि लेते थे, लेकिन उन्हें जावा, सुमात्रा और मलक्का के निवासियों की पीड़ाओं की कोई परवाह नहीं थी। ऐसे ही अनगिनत अपराध और दुष्कर्म पृथ्वी के दूसरे हिस्सों में आधुनिक अर्थव्यवस्था के विकास में साथ देते रहे हैं।

उन्नीसवीं सदी भी पूँजीवाद के नीतिशास्त्र में कोई सुधार नहीं ला सकी। जो औद्योगिक क्रान्ति समूचे यूरोप में छा गई थी, उसने साहूकारों और पूँजी-धारकों को तो समृद्ध किया, लेकिन लाखों कामगारों को भयानक ग़रीबी का जीवन जीने के लिए अभिशप्त कर दिया। यूरोपीय उपनिवेशों में तो हालात इससे भी ज़्यादा बदतर थे। 1876 में बेल्ज़ियम के सम्राट लियोपोल्ड II ने एक ग़ैरसरकारी मानवतावादी संगठन स्थापित किया था, जिसका घोषित उद्देश्य मध्य अफ़्रीका का अन्वेषण करना और कांगो नदी के समानान्तर जारी ग़ुलाम व्यापार से लड़ना था। सड़कों, स्कूलों और अस्पतालों का निर्माण कर इस इलाक़े के निवासियों के हालात में सुधार लाने का काम भी इस संगठन को सौंपा गया था। 1885 में यूरोपीय सत्ताएँ इस संगठन को कांगो बेसिन के 20.3 लाख वर्ग किलोमीटर की ज़मीन का नियन्त्रण सौंपने पर राज़ी हो गईं। आकार में बेल्ज़ियम से पचहत्तर गुना बड़े इस क्षेत्र को इसके बाद से कांगो फ़्री स्टेट के नाम से जाना गया। इस क्षेत्र के 2.3 करोड़ निवासियों की राय किसी ने नहीं ली।

कुछ ही समय के भीतर यह मानवतावादी संगठन एक व्यावसायिक उद्यम में बदल गया, जिसका वास्तविक लक्ष्य वृद्धि और मुनाफ़ा था। स्कूल और अस्पताल भुला दिए गए, और इसकी जगह कांगो बेसिन उन खदानों और बाग़ानों से भर गया, जिनका संचालन मुख्यतः उन बेल्ज़ियाई अधिकारियों के हाथों में था, जो स्थानीय आबादी का निर्मम ढंग से शोषण करते थे। रबर बहुत तेज़ी से एक प्रमुख औद्योगिक माल बनता जा रहा था, और रबर का निर्यात कांगो की आय का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन था। रबर एकत्र करने वाले अफ़्रीकी ग्रामीणों से ज़्यादा से ज़्यादा हिस्सा उपलब्ध कराए जाने की अपेक्षा की जाती थी। जो अपने हिस्से का माल उपलब्ध कराने में नाक़ामयाब रहते थे, उन्हें उनके ‘आलसीपन’ के लिए क्रूरतम सज़ाएँ दी जाती थीं। उनके हाथ काट दिए जाते थे

और कभी-कभी पूरे के पूरे गाँव का नरसंहार कर दिया जाता था। सर्वाधिक संयमित आकलन के मुताबिक़ 1885 और 1908 के बीच वृद्धि और मुनाफ़ों की इस तलाश की क़ीमत 60 लाख व्यक्तियों की जान से चुकाई गई (जो कांगो की आबादी का कम से कम 20 प्रतिशत हिस्सा था)। कुछ आकलनों के अनुसार इन मौतों की संख्या 1 करोड़ तक पहुँचती है।

1908 के बाद और विशेष रूप 1945 के बाद, पूँजीवादी लिप्सा पर कुछ हद तक अंकुश लगा है, ख़ास तौर से साम्यवाद के ख़ौफ़ की वजह से। तब भी ग़ैरबराबरियाँ अभी भी क़ाबू से बाहर हैं। 2013 की आर्थिक कचौड़ी 1500 की आर्थिक कचौड़ी के मुक़ाबले बहुत बड़ी है, लेकिन उसका बँटवारा इतना असमान है कि अफ़्रीकी किसान और इंडोनेशियाई कामगार दिन भर की कड़ी मेहनत के बाद उससे कम भोजन कमाकर घर लौटते हैं, जितना उनके पूर्वज 500 साल पहले लेकर लौटते थे। काफ़ी कुछ कृषि क्रान्ति की ही तरह आधुनिक अर्थव्यवस्था का विकास भी एक विराट छल साबित हो सकता है। मानव प्रजाति और भूमण्डलीय अर्थव्यवस्था विकसित होती रह सकती हैं, लेकिन बहुत से व्यक्तियों को भूख और दरिद्रता का जीवन जीना पड़ सकता है।

पूँजीवाद के पास इस आलोचना के दो जवाब हैं। पहला, पूँजीवाद ने एक ऐसी दुनिया की रचना की है, जिसे जारी रखने में एक पूँजीपति के अलावा और कोई सक्षम नहीं है। एक भिन्न तरीक़े से दुनिया का प्रबन्धन करने की एकमात्र गम्भीर कोशिश - साम्यवाद - लगभग हर कल्पनीय ढंग से इतनी ज़्यादा बदतर थी कि उसे दोबारा आज़माने का अब किसी का इरादा नहीं है। 8500 ईसा पूर्व में कृषि क्रान्ति को लेकर कोई आँसू बहा सकता था, लेकिन तब तक कृषि को त्याग देने की दृष्टि से काफ़ी देर हो चुकी थी। इसी तरह हम भरे ही पूँजीवाद को पसन्द ना करते हों, लेकिन अब हम इसके बग़ैर रह नहीं सकते।

दूसरा जवाब यह है कि हमें सिर्फ़ थोड़े-से और धीरज की ज़रूरत है - स्वर्ग, जिसका आश्वासन पूँजीपतियों ने दिया है, बहुत क़रीब है। यह सही है कि ग़लतियाँ हुई हैं, जैसे कि अटलांटिक ग़ुलाम व्यापार और यूरोपीय कामगार वर्ग का शोषण, लेकिन हम सीख ले चुके हैं और अगर हम थोड़ा-सा इन्तज़ार और कर लें और कचौड़ी को थोड़ा और बड़ा होने की गुंजाइश दें, तो हर किसी को उसका ज़्यादा मोटा टुकड़ा हासिल होगा। मुनाफ़े का बँटवारा निष्पक्ष कभी नहीं होगा, लेकिन इतना कुछ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होगा कि हर मर्द, औरत और बच्चा सन्तुष्ट होगा - कांगो तक में।

कुछ सकारात्मक संकेत वाक़ई दिखाई देते हैं। कम से कम जब, तब हम शुद्ध भौतिक मापदण्ड का इस्तेमाल कर रहे होते हैं - जैसे कि जीवन की प्रत्याशा, बाल मृत्यु और पेट के अन्दर जाती कैलोरी की मात्रा - तो पाते हैं कि 2013 में एक औसत आदमी का जीवन स्तर 1913 के मुक़ाबले ऊँचा उठा है और यह मनुष्यों की संख्या में हुई अपार वृद्धि के बावजूद मुमकिन हुआ है।

तब भी क्या आर्थिक कचौड़ी के आकार में असीमित वृद्धि जारी रह सकती है? हर कचौड़ी को कच्चे माल और ऊर्जा की ज़रूरत होती है। क़यामत की भविष्यवाणियाँ करने वालों की चेतावनी है कि आगे-पीछे होमो सेपियन्स पृथ्वी नामक ग्रह की कच्ची सामग्रियों और ऊर्जा को ख़त्म कर डालेंगे। और तब क्या होगा?

17

उद्योग के पहिये

आधुनिक अर्थव्यवस्था का विकास भविष्य के प्रति हमारे भरोसे की वजह से और उत्पादन में अपने मुनाफ़ों का पुनर्निवेश करने की पूँजीपतियों की इच्छा की बदौलत होता है, लेकिन इतना भर काफ़ी नहीं होता। आर्थिक वृद्धि के लिए ऊर्जा और कच्चे माल की भी ज़रूरत होती है और इनकी मात्रा सीमित है। जिस वक़्त और अगर ये ख़त्म हो जाएँगे, तो समूची व्यवस्था ध्वस्त हो जाएगी।

लेकिन अतीत द्वारा उपलब्ध कराया गया साक्ष्य यह है कि ये साधन केवल सैद्धान्तिक रूप से ही सीमित हैं। उम्मीद के विपरीत, जहाँ पिछली कुछ सदियों के दौरान ऊर्जा और कच्चे माल का इंसानी उपयोग तेज़ी से बढ़ा है, वहीं हमारे दोहन के लिए उपलब्ध इनकी मात्रा भी वास्तव में बढ़ी है। जब भी कभी इनमें से किसी भी चीज़ की कमी की वजह से विकास के सिर पर ख़तरा मँडराया है, वैसे ही वैज्ञानिक और टेक्नोलॉजिकल अनुसन्धान में निवेश का ताँता लगता रहा है। इन अनुसन्धानों ने निरपवाद रूप से ना सिर्फ़ उपलब्ध संसाधनों के दोहन के कहीं ज़्यादा कारगर तरीक़े उत्पन्न किए हैं, बल्कि ऊर्जा और कच्चे माल की पूरी तरह से नवीन क़िस्में भी उपलब्ध कराई हैं।

वाहन उद्योग पर ग़ौर करें। पिछले 300 सालों के दौरान मानव जाति ने बैलगाड़ियों और ठेला-गाड़ियों से लेकर रेलों, कारों, सुपरसोनिक जेट विमानों और स्पेस शटलों तक बहुत बड़ी संख्या में वाहनों का निर्माण किया है। किसी को लग सकता था कि इस तरह का अति विशाल उद्यम वाहनों के उत्पादन के लिए उपलब्ध ऊर्जा स्रोतों और कच्चे माल को निःशेष कर देगा और आज हमारे पास तलछट को खँगालने के अलावा और कोई चारा नही होगा, लेकिन स्थिति इसके विपरीत है। जहाँ 1700 में वैश्विक वाहन उद्योग ज़बरदस्त ढंग से लकड़ी और लोहे पर निर्भर था, वहीं आज इसके उपयोग के लिए

प्लास्टिक, रबर, अल्यूमीनियम और टिटेनियम जैसे नए अन्वेषित पदार्थों का भण्डार उपलब्ध है, जिनमें से किसी के भी बारे में हमारे पूर्वजों को जानकारी तक नहीं थी। जहाँ 1700 में बैलगाड़ियाँ मुख्यतः कार्पेंटरों और लोहारों के शारीरिक श्रम से निर्मित होती थीं, वहीं आज टोयोटा और बोइंग फ़ैक्टरियों की मशीनें पेट्रेलियम कम्बश्चन इंजनों और परमाणु पावर स्टेशनों की शक्ति से लैस हैं। ऐसी ही क्रान्ति उद्योग के लगभग तमाम दूसरे क्षेत्रों में घटित हुई है। इसे हम औद्योगिक क्रान्ति कहते हैं।

औद्योगिक क्रान्ति के हज़ारों साल पहले से ही मनुष्य यह जानते थे कि नाना प्रकार की ऊर्जा के स्रोतों का इस्तेमाल कैसे किया जाए। वे लोहे को पिघलाने, घरों को गर्माने और केक पकाने के लिए लकड़ियाँ जलाते थे। जलयात्रा करते समय जहाज़ हवा का उपयोग करते थे और जलचक्कियाँ अनाज पीसने के लिए नदियों के प्रवाह का उपयोग करती थीं, लेकिन इन सारी चीज़ों की स्पष्ट सीमाएँ और समस्याएँ थीं। पेड़ हर कहीं उपलब्ध नहीं होते थे, हवा ज़रूरत के वक़्त हर समय नहीं बहती थी, जल ऊर्जा केवल तभी उपयोगी थी, जब आप नदी के पास रहते हों।

इससे भी बड़ी समस्या यह थी कि लोग यह नहीं जानते थे एक क़िस्म की ऊर्जा को दूसरे क़िस्म की ऊर्जा में किस तरह बदला जाए। वे हवा और पानी के प्रवाह का उपयोग जहाज़ों को प्रवाहित करने और चक्की के पाटों को धकेलने के लिए तो कर सकते थे, लेकिन पानी को गरम करने या लोहे को पिघलाने के लिए नहीं कर सकते थे। इसके विपरीत वे लकड़ी के जलने से उत्पन्न ताप ऊर्जा से चक्की के पाट को गतिशील नहीं कर सकते थे। ऊर्जा को रूपान्तरित करने की ऐसी युक्तियों को निष्पादित करने में सक्षम एक ही मशीन मनुष्य के पास थी : शरीर। मैटाबॉलिज़्म की कुदरती प्रक्रिया में मनुष्यों और दूसरे प्राणियों के शरीर भोजन के नाम से ज्ञात जैव ईंधनों को जलाते हैं और इससे उत्पन्न ऊर्जा को मांसपेशियों की गति में रूपान्तरित कर देते हैं। मर्द, औरतें और पशु अनाज और मांस खा सकते हैं, उनके कार्बोहाइड्रेट्स और फ़ैट्स को जला सकते हैं, और इससे उत्पन्न ऊर्जा का उपयोग रिक्शे को ढोने या हल को खींचने में कर सकते हैं।

चूँकि मनुष्यों और पशुओं के शरीर ऊर्जा को रूपान्तरित कर सकने वाले एकमात्र उपलब्ध साधन थे, इसलिए शारीरिक शक्ति तमाम मानवीय गतिविधियों की कुंजी थी। मनुष्य की मांसपेशियाँ गाड़ियों और मकानों का निर्माण करती थीं, बैलों की मांसपेशियाँ खेतों को जोतती थीं, और घोड़ों की मांसपेशियाँ सामान ढोती थीं। इन जैविक मांसपेशीय मशीनों को परिचालित करने वाली ऊर्जा अन्ततः एक ही स्रोत से प्राप्त होती थी - वनस्पतियों से। वनस्पतियाँ अपनी ऊर्जा सूर्य से प्राप्त करती थीं। प्रकाश-संश्लेषण की प्रक्रिया के सहारे वे सौर ऊर्जा को ग्रहण करती थीं और उसे जैविक काम्पाउण्डों में जमा कर देती थीं। समूचे इतिहास के दौरान लोगों ने जो कुछ भी किया है, वह वनस्पतियों द्वारा ग्रहण की गई और मांसपेशीय शक्ति में रूपान्तरित की गई सौर ऊर्जा से परिचालित रहा है।

नतीज़तन, मानव इतिहास मुख्यतः दो चक्रों के अधीन रहा है : वनस्पतियों के विकास-चक्र और सौर ऊर्जा के परिवर्तनशील चक्र (दिन और रात, ग्रीष्म और शीत ऋतु)। जब सूरज की रोशनी दुर्लभ होती थी और जब गेहूँ के खेत अभी भी हरे होते थे,

तब मनुष्यों के पास बहुत कम ऊर्जा होती थी। अन्न भण्डार ख़ाली पड़े होते थे, महसूल वसूल करने वाले सुस्त पड़े रहते थे, सैनिकों के लिए आगे बढ़ना और लड़ना मुश्किल होता था और सम्राट शान्ति बनाए रखने की ओर प्रवृत्त होते थे। जब सूरज की चमक बढ़ जाती और गेहूँ पक जाता, तो किसान फ़सलों को काटकर अन्नागारों को भर देते थे। महसूल वसूलने वाले अपना हिस्सा लेने को फुर्ती से निकल पड़ते। सैनिक अपनी भुजाओं के बलों का प्रदर्शन करने लगते और अपनी तलवारों की धारों को पैना करने लगते। सम्राट अपनी मन्त्रिपरिषद की बैठक बुलाते और अपने अगले अभियानों की योजनाएँ बनाने लगते। हर कोई उस सौर ऊर्जा से परिचालित होने लगता था, जो गेहूँ, चावल और आलुओं में भरी होती थी।

रसोई में रहस्य

इन समूची लम्बी सहस्राब्दियों के दौरान लोग हर दिन लम्बे-लम्बे समय तक ऊर्जा-उत्पादन के इतिहास के सबसे महत्त्वपूर्ण आविष्कार के आमने-सामने बने रहे - और उसको नोटिस नहीं कर सके। हर बार जब भी कोई गृहिणी या नौकर चाय बनाने के लिए केतली में पानी उबालता या आलुओं से भरा पतीला चूल्हे पर रखता, यह आविष्कार उनकी आँखों में घूरता रहता। जिस क्षण पानी उबलना शुरू करता, केतली या पतीली का ढक्कन उछल पड़ता। ताप गति में रूपान्तरित हो रहा होता था, लेकिन पतीली के ढक्कन का उछलना एक झुँझलाहट पैदा करने वाली चीज़ होती थी, ख़ास तौर तब, जब आप चूल्हे पर रखी पतीली को भूल चुके होते थे और पानी उफनकर बाहर गिरने लगता था। कोई भी इनकी वास्तविक सम्भावना को नहीं पहचानता था।

ताप को गति में बदलने की दिशा में एक आंशिक सफलता उन्नीसवीं सदी के चीन में बारूद के आविष्कार के बाद मिली। शुरुआत में तोप के गोलों को धकेलने के लिए बारूद का उपयोग इस क़दर सहज बुद्धि के विपरीत था कि सदियों तक बारूद का उपयोग मुख्यतः पटाखे बनाने में होता रहा, लेकिन अन्ततः - शायद जब किसी बम विशेषज्ञ ने ओखली में बारूद को कूटने की कोशिश की और उसका मूसल पूरी ताक़त से उछलकर बाहर जा गिरा, तब बन्दूक़ें प्रकट हुईं। बारूद के आविष्कार और कारगर तोपों के विकास के बीच लगभग 600 साल गुज़र गए।

तब भी, ताप को गति में बदलने का विचार इस क़दर सहज बुद्धि के विपरीत बना रहा कि लोगों को उस मशीन का आविष्कार करने में तीन और सदियाँ लग गईं, जो चीज़ों को गोल घुमाने के लिए ताप का उपयोग करती थी। इस नई टेक्नोलॉजी का जन्म अँग्रेज़ों की कोयला खदानों में हुआ। जैसे-जैसे अँग्रेज़ों की आबादी बढ़ती गई, वैसे-वैसे विकसित होती अर्थव्यवस्था को गति देने और मकानों तथा खेतों के लिए जगह बनाने के लिए जंगल काट दिए गए। ब्रिटेन उत्तरोत्तर जलाऊ लकड़ी की कमी का शिकार होता गया। उसने विकल्प के रूप में कोयला जलाना शुरू कर दिया। बहुत-सी कोयले की परतें जलमग्न इलाक़ों में थीं और बाढ़ खदानों में काम करने वालों को खदानों की निचली सतहों तक जाने से रोकती थीं। यह एक समस्या थी जिसे अपने समाधान की प्रतीक्षा थी। 1700 के आस-पास अँग्रेज़ खदानों की सुरंगों के करीब से एक विचित्र-सी आवाज़

गूँजनी शुरू हुई। वह आवाज़ थी - औद्योगिक क्रान्ति की अग्रदूत - शुरुआत में धीमी थी, लेकिन हर दशक के बीतने के साथ वह तब तक तेज़ होती गई, जब तक कि एक दिन उसने समूची दुनिया को बहरा कर देने वाले भीषण शोर से नहीं भर दिया। यह आवाज़ एक भाप के इंजन से निकल रही थी।

भाप के इंजन कई तरह के होते हैं, लेकिन वे सब के सब एक नियम साझा करते हैं। आप किसी तरह का ईंधन, जैसे कि कोयला जलाएँ और उससे उत्पन्न ताप का उपयोग पानी को उबालकर भाप उत्पन्न करने के लिए करें। जैसे ही भाप फैलती है, वह एक पिस्टन को धक्का देती है। पिस्टन गतिशील होता है और जो भी कोई चीज़ पिस्टन के साथ जुड़ी होती है, वह भी उसके साथ गतिशील हो जाती है। आपने ताप को गति में रूपान्तरित कर दिया होता है! अठारहवीं सदी की ब्रिटेन की कोयले की खदानों में पिस्टन उस एक पम्प से जुड़ा हुआ था, जो खदानों की सुरंगों के तल से पानी को खींचता था। शुरुआती इंजन अविश्वसनीय रूप से निकम्मे थे। थोड़ी-सी मात्रा में भी पानी को खींचने के लिए आपको बड़ी मात्रा में कोयला जलाना पड़ता था, लेकिन खदानों में कोयला प्रचुर मात्रा में था और आसान पहुँच में था, इसलिए कोई परवाह नहीं करता था।

बाद के दशकों में ब्रिटेन के उद्यमियों ने भाप के इंजन की दक्षता में सुधार किया, वे उसे खदानों की सुरंगों से बाहर लाए और उसे करघों और बिनौले निकालने वाले यन्त्रों से जोड़ा। इसने कपड़ा उद्योग में क्रान्ति ला दी, जिससे हमेशा के मुक़ाबले बड़ी मात्रा में सस्ते कपड़े का उत्पादन मुमकिन हुआ। पलक झपकते ही ब्रिटेन दुनिया की वर्कशॉप बन गया, लेकिन इससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि भाप के इंजन को खदानों से बाहर लाने ने एक महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक अवरोध को तोड़ दिया। अगर आप करघे को घुमाने के लिए कोयला जला सकते हैं, तो दूसरी चीज़ों, जैसे कि वाहनों को गतिशील बनाने के लिए भी इसी तरीक़े को क्यों अपनाया जाए?

1825 में एक अँग्रेज़ इंजीनियर ने भाप के इंजन को कोयले से भरे खदान के डिब्बों वाली ट्रेन से जोड़ दिया। यह इंजन लोहे की पटरियों के सहारे इन डिब्बों को खदान से क़रीब के बन्दरगाह तक लगभग बीस किलोमीटर तक खींच ले गया। यह भाप की शक्ति से चलने वाला इतिहास का पहला रेल-इंजन था। स्पष्ट था कि जब कोयला ढोने के लिए भाप का इस्तेमाल किया जा सकता था, तो दूसरे सामान के लिए क्यों नहीं? और लोगों को ढोने के लिए भी क्यों नहीं? 15 सितम्बर, 1830 को पहली व्यावसायिक रेलवे लाइन शुरू हुई, जो लिवरपूल को मैनचेस्टर से जोड़ती थी। ट्रेनें उसी भाप की शक्ति से चल रही थीं, जिसने इसके पहले पानी को खींचा था और करघों को घुमाया था। महज़ बीस साल बाद ब्रिटेन के पास दसियों हज़ार किलोमीटर लम्बे रेलमार्ग थे।

इसके बाद से यह विचार लोगों के दिमाग़ पर छा गया कि मशीनों और इंजनों का इस्तेमाल एक तरह की ऊर्जा को दूसरी तरह की ऊर्जा में बदलने के लिए किया जा सकता है। अगर हम सही ढंग की मशीन का आविष्कार कर सकें, तो हम किसी भी तरह की ऊर्जा को दुनिया में कहीं भी अपनी जिस किसी भी ज़रूरत के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं। उदाहरण के लिए जब भौतिकीविदों को अहसास हुआ कि अणुओं के भीतर विपुल मात्रा में ऊर्जा भरी है, तो उन्होंने तुरन्त यह सोचना शुरू कर दिया कि इस ऊर्जा को किस तरह निकाला जा सकता है और किस तरह बिजली उत्पादित करने, पनडुब्बियों

को संचालित करने और नगरों का विनाश करने के लिए उसका इस्तेमाल किया जा सकता है। चीनी कीमियागरों द्वारा बारूद का आविष्कार किए जाने के क्षण और तुर्कों द्वारा कॉन्स्टेंटिनोपल की दीवार को उड़ाए जाने के क्षण के बीच छह सौ साल गुज़र गए थे। जबकि उन दो क्षणों के बीच का वक़्त गुज़रने में मात्र चालीस साल लगे जिनमें पहला क्षण वह था जब आइंस्टीन ने यह निर्धारित किया कि किसी भी तरह के पुंज (मास) को ऊर्जा में रूपान्तरित किया जा सकता है - यानी $E = mc^2$ - और दूसरा क्षण वह था, जब अणु बमों ने हिरोशिमा और नागासाकी को मिटा डाला और परमाणु ऊर्जा के केन्द्र पूरी दुनिया में मशरूम की तरह फैल गए।

एक और महत्त्वपूर्ण खोज इंटर्नल कम्बश्चन इंजन की थी, जिसने मानवीय परिवहन की दुनिया में क्रान्ति लाने और पेट्रोलियम को तरल राजनैतिक शक्ति में बदल देने में एक पीढ़ी से थोड़ा-सा ही ज़्यादा वक़्त लिया। पेट्रोलियम की जानकारी हज़ारों सालों से थी और उसका इस्तेमाल छप्परों को वाटरप्रूफ़ करने और पहियों की धुरियों को चिकनाने के लिए किया जाता था। तब भी मात्र एक सदी पहले तक किसी ने नहीं सोचा था कि यह चीज़ इस सबसे कहीं बहुत ज़्यादा उपयोगी है। तेल की ख़ातिर ख़ून बहाने का विचार तब हास्यास्पद लगता। आप ज़मीन, सोने, काली मिर्च या ग़ुलामों के लिए तो युद्ध लड़ सकते थे, लेकिन तेल के लिए नहीं।

विद्युत का जीवन और भी चौंकाने वाला रहा। दो सदी पहले तक बिजली की अर्थव्यवस्था में कोई भूमिका नहीं थी और उसका इस्तेमाल बहुत से बहुत रहस्यमय वैज्ञानिक प्रयोगों या सस्ते क़िस्म की जादुई करामातों के लिए किया जाता था। आविष्कारों की एक समूची शृंखला ने इसे हमारे वैश्विक चिराग़ के जिन्न में बदल कर रख दिया। हम अपनी अंगुली का हल्क़ा-सा दबाव डालते हैं और यह किताबें छाप देती है और कपड़े सिल देती है, हमारी सब्ज़ियों को ताज़ा रखती है और हमारी आइसक्रीम को जमाए रखती है, हमारा भोजन पकाती है और हमारे अपराधियों को मृत्युदण्ड देती है, हमारे विचारों को दर्ज़ करती है और हमारी मुस्कराहटों को रिकॉर्ड करती है, हमारी रातों को रोशन करती है और असंख्य टेलिविज़न कार्यक्रमों की मार्फ़त हमारा मनोरंजन करती है। हम में से बहुत कम लोग हैं, जो यह समझते हैं कि बिजली यह सब कैसे करती है, लेकिन उनसे भी कम लोग होंगे, जो इसके बिना जीवन की कल्पना कर सकते होंगे।

ऊर्जा का महासागर

वास्तव में औद्योगिक क्रान्ति ऊर्जा रूपान्तरण की क्रान्ति रही है। इसने बार-बार इस बात को दर्शाया है कि हमारे उपयोग के लिए उपलब्ध ऊर्जा की मात्रा की कोई सीमा नहीं है। या और भी स्पष्ट रूप से कहें, तो उसकी एकमात्र सीमा उसके बारे में हमारा अज्ञान है। हर कुछ दशकों में हम ऊर्जा के एक नए स्रोत का पता लगा लेते हैं, ताकि हमारे उपयोग के लिए उपलब्ध ऊर्जा की मात्रा बढ़ती रहे।

क्या कारण है कि बहुत-से लोगों को यह डर सताता रहता है कि हमारी ऊर्जा समाप्त होने को है? वे क्यों यह चेतावनी देते रहते हैं कि अगर हम उपलब्ध जीवाश्म ईंधन को ख़त्म कर डालेंगे, तो तबाह हो जाएँगे? ज़ाहिर है कि दुनिया में ऊर्जा की कमी नहीं है।

कमी इसे अपनी ज़रूरतों के उपयोग में लाने और उसे इन ज़रूरतों के अनुरूप रूपान्तरित करने के ज्ञान की है। पृथ्वी के समस्त जीवाश्म ईंधन में समाहित ऊर्जा उस ऊर्जा के मुक़ाबले कुछ भी नहीं है, जो सूरज हर रोज़ मुफ़्त में बाँटता है। सूरज की ऊर्जा का एक बहुत मामूली-सा हिस्सा हम तक पहुँचता है, तब भी इसकी मात्रा सालाना 3,766,800 एक्साज्यूल ऊर्जा के बराबर होती है (ज्यूल मीट्रिक प्रणाली के अन्तर्गत ऊर्जा की एक इकाई है। जब आप एक सेब को एक गज़ ऊँचाई तक उठाते हैं, तब आप अपनी ऊर्जा की एक ज्यूल मात्रा ख़र्च करते हैं। एक एक्साज्यूल यानी एक अरब अरब ज्यूल - यानी अनन्त सेब)। दुनिया की सारी वनस्पतियाँ मिलकर प्रकाश-संश्लेषण के माध्यम से इन सौर एक्साज्यूल का मात्र लगभग 3,000 ग्रहण करती हैं। अगर सारी मानवीय गतिविधियों और उद्योगों को एक साथ मिला दिया जाए, तो ये सालाना लगभग 500 एक्साज्यूल का उपभोग करते हैं, जो उतनी ऊर्जा के बराबर है, जितनी ऊर्जा पृथ्वी सूर्य से मात्र नब्बे मिनट में प्राप्त करती है। और यह सिर्फ़ सौर ऊर्जा है। इसके अतिरिक्त हम ऊर्जा के अन्य विपुल स्रोतों से घिरे हैं, जैसे कि परमाण्विक ऊर्जा और गुरुत्वाकर्षी ऊर्जा, जिनमें से गुरुत्वाकर्षी ऊर्जा का सबसे बड़ा प्रमाण वे ओशियानिक ज्वार हैं, जो पृथ्वी पर चन्द्रमा के खिंचाव की वजह से उत्पन्न होते हैं।

औद्योगिक क्रान्ति के पहले मनुष्य का ऊर्जा बाज़ार पूरी तरह से वनस्पतियों पर निर्भर था। लोग सालाना 3,000 एक्साज्यूल धारण करने वाले हरित ऊर्जा भण्डार के साथ जीवन बिताते थे, और इस भण्डार से जितना सम्भव हो सकता था, उतनी ऊर्जा खींचने की कोशिश करते थे। औद्योगिक क्रान्ति के दौरान हमें यह बोध हुआ कि हम वास्तव में ऊर्जा के एक विशाल महासागर के क़रीब रह रहे हैं, जिसमें अरबों एक्साज्यूल की शक्ति की सम्भावना समाहित है। हमें सिर्फ़ बेहतर क़िस्म के पम्पों को ईजाद करने की ज़रूरत है, जिनकी मदद से हम इस ऊर्जा को खींच सकें।

ऊर्जा को कारगर ढंग से जोतने और रूपान्तरित करने के ज्ञान ने उस दूसरी समस्या को सुलझाया, जो आर्थिक विकास को धीमा करती है - कच्चे माल की कमी। जब मनुष्य ने सस्ती ऊर्जा की बड़ी मात्रा को जोतने की विधि समझ ली, तो वे कच्चे माल के उन भण्डारों के दोहन की शुरुआत कर सके, जो पहले पहुँच के बाहर हुआ करते थे (उदाहरण के लिए, साइबेरियाई बंजरों में लोहे का उत्खनन), या उन्होंने सुदूर स्थलों से कच्चे माल को ढोकर लाना शुरू कर दिया (उदाहरण के लिए ब्रिटेन के कपड़े के कारख़ाने के लिए ऑस्ट्रेलियाई ऊन की आपूर्ति)। इसी के साथ-साथ नई वैज्ञानिक क़ामयाबियों ने मनुष्य को पूरी तरह से नवीन कच्चे मालों, जैसे कि प्लास्टिक को ईजाद करने और सिलिकॉन तथा अल्यूमीनियम जैसे उन कच्चे मालों को खोजने में सक्षम बनाया, जो पहले अज्ञात थे।

रसायनशास्त्रियों ने 1820 के दशक में ही अल्यूमीनियम का पता लगा लिया था, लेकिन इसके अयस्क से धातु को निकालना बेइन्तिहा मुश्किल और महँगा था। दशकों तक अल्यूमीनियम सोने के मुक़ाबले बहुत महँगा हुआ करता था। 1860 में फ़्रांस के सम्राट नेपोलियन III ने अपने अत्यन्त विशिष्ट मेहमानों की दावत में इस्तेमाल किए जाने के लिए अल्यूमीनियम के छुरी-काँटे तैयार करवाए थे। दावत में शामिल कम महत्त्वपूर्ण मेहमानों को सोने के छुरी-काँटों से काम चलाना पड़ा था,लेकिन उन्नीसवीं सदी के अन्त में

रसायनशास्त्रियों ने सस्ते ढंग से अल्यूमीनियम के अयस्क से अल्यूमीनियम की विपुल मात्रा को निकालने का तरीक़ा ढूँढ़ निकाला, और आज अल्यूमीनियम का वैश्विक उत्पादन सालाना 300 लाख टन है। नेपोलियन III को यह सुनकर आश्चर्य होता कि उसकी प्रजा के वंशज सैंडविचों को लपेटने और उनकी जूठन को लपेटकर फेंकने के लिए सस्ती डिस्पोज़ेबल अल्यूमीनियम पन्नियों का इस्तेमाल करते हैं।

दो हज़ार साल पहले जब लोग भूमध्यसागरीय बेसिन में सूखी त्वचा से परेशान होते थे, तो वे अपने हाथों पर जैतून का तेल चुपड़ लिया करते थे। आज वे हैंड क्रीम की ट्यूब खोलते हैं। नीचे उस सामग्री की एक सूची दी गई है, जो उस साधारण-सी हैंड क्रीम में शामिल होती है, जिसे मैंने एक स्थानीय स्टोर से ख़रीदा था :

> डिआयोनाइज़्ड वाटर, स्टियरिक एसिड, ग्लिसरीन, कैप्रिलिक/कैप्रिक्टिग्लीसराइड, प्रोपिलेन ग्लाइकोल, आइसोप्रोपिल माइरिस्टेट, पेनाक्स जिन्सेंग रूट एक्स्ट्रैक्ट, फ़्रेगरेंस, सेटल अल्कोहल, ट्रिएथेनोलेमाइन, डाइमेटिकोन, आर्क्टोस्टेफ़िलस, उवा-उर्सी लीफ़ एक्स्ट्रैक्ट, मैग्नेशियम एस्कोर्बाइल फ़ास्फ़ेट, इमिडेज़ोलिडिनिल यूरिया, मिथाइल पेराबेन, कैम्फ़र, प्रोपाइल पेराबेन, हाइड्रोऑक्सीसोहेक्ज़ाइल 3-साइक्लोहेक्सीन कार्बोआक्साल्डेहाइड, हाइड्रोआक्सीसिट्रोनेल्लाल, लिनालूल, ब्यूटिलफेनाइल मेथइलप्रॉप्लोनल, सिट्रोनेल्लोल, लिमोनेने, गेरानिओल।

इनमें से लगभग सारी चीज़ों का आविष्कार पिछली दो सदियों के दौरान हुआ था।

पहले विश्वयुद्ध के दौरान जर्मनी को नाकेबन्दी के अधीन रखा गया था और उसने कच्चे माल की गम्भीर कमी को झेला था, ख़ास तौर से शोरा की कमी को जो बारूद और दूसरे विस्फोटकों का एक अनिवार्य घटक है। शोरे के सबसे महत्त्वपूर्ण भण्डार चिली और हिन्दुस्तान में थे, जर्मनी में बिलकुल भी नहीं थे। सही है कि शोरे की जगह अमोनिया का इस्तेमाल किया जा सकता है, लेकिन उसे भी उत्पादित करना महँगा था। जर्मनों की क़िस्मत से उनके एक साथी नागरिक, फ़्रिट्ज़ हेबर नामक एक यहूदी रसायनशास्त्री ने 1908 में लगभग जादुई ढंग से अमोनिया उत्पादित करने की पद्धति खोज निकाली थी। जब युद्ध शुरू हो गया, तो जर्मनों ने विस्फोटकों के औद्योगिक उत्पादन की शुरुआत के लिए हवा का कच्चे माल की तरह इस्तेमाल करते हुए हेबर की खोज का इस्तेमाल किया। कुछ अध्येताओं का मानना है कि अगर हेबर की यह खोज ना होती, तो जर्मनी को नवम्बर 1918 के बहुत-बहुत पहले ही समर्पण कर देना पड़ा होता। इस खोज ने हेबर (जिसने युद्ध के दौरान लड़ाई में ज़हरीली गैस के इस्तेमाल का रास्ता भी खोला था) को 1918 का नोबेल पुरस्कार दिलाया था। रसायन के क्षेत्र का नोबेल पुरस्कार, ना कि शान्ति का।

कन्वेयर बेल्ट पर जीवन

औद्योगिक क्रान्ति ने सस्ती और विपुल ऊर्जा तथा सस्ते और विपुल कच्चे माल का अभूतपूर्व संयोग सुलभ कराया। इसका नतीज़ा मानवीय उत्पादकता में विस्फोट के रूप में सामने आया। इस विस्फोट को सबसे पहले और सबसे ज़्यादा कृषि के क्षेत्र में महसूस किया गया। आम तौर से, जब हम औद्योगिक क्रान्ति के बारे में सोचते हैं, तो हमारे दिमाग़ में धुआँ उगलती चिमनियों से युक्त नगरीय भूदृश्य उभरता है, या धरती की आँतों में पसीना बहाते कोयले की खानों में काम करने वाले शोषण के शिकार मज़दूरों की छवि

उभरती है, लेकिन औद्योगिक क्रान्ति दूसरी तमाम चीज़ों के ऊपर दूसरी कृषि क्रान्ति थी।

पिछले 200 सालों के दौरान औद्योगिक उत्पादन की पद्धतियाँ कृषि का मुख्य आधार बनीं। ट्रैक्टरों जैसी मशीनों ने उन कामों को अपने हाथ में लेना शुरू किया, जो पहले इंसान की मांसपेशियों की ताक़त के सहारे किए जाते थे, या जो किए ही नहीं जाते थे। कृत्रिम खादों, औद्योगिक कीटनाशकों और हार्मोनों तथा दवाओं के एक समूचे शस्त्रागार की बदौलत खेत और पशु अत्यन्त उत्पादक हो उठे। रेफ़्रिजरेटरों, जहाज़ों, वायुयानों ने उत्पादों को महीनों सँजोकर रखना और फुर्ती से तथा बहुत कम ख़र्च में दुनिया के दूसरे कोनों तक पहुँचाना मुमकिन बनाया है। यूरोपवासियों ने अपने भोजन में ताज़ा अर्जेंटीनियाई गोमांस और जापानी सुशी का आनन्द लेना शुरू कर दिया था।

यहाँ तक कि वनस्पतियों और पशुओं को भी यान्त्रिक बना दिया गया। लगभग जिस समय मानवतावादी मज़हबों द्वारा होमो सेपियन्स को दैवीय हैसियत की बुलन्दी प्रदान की जा रही थी, उसी समय खेती के उपयोग में आने वाले जानवरों को पीड़ा और दुःख महसूस कर सकने वाले जीवित प्राणियों के रूप में देखना बन्द किया जा रहा था, और इसके बजाय उन्हें मशीनों की तरह बरतना शुरू किया जा रहा था। आज इन जानवरों का फ़ैक्टरी-नुमा इन्तज़ामों के भीतर बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जा रहा है और उनके शरीरों को औद्योगिक ज़रूरतों के मुताबिक़ आकार दिया जा रहा है। वे अपना समूचा जीवन भीमकाय प्रॉडक्शन लाइन में पहिये के दाँतों की तरह बिताते हैं और उनके अस्तित्व की अवधि और स्वरूप व्यापारिक निगमों के मुनाफ़ों और घाटों से तय होते हैं। जब उद्योग उन्हें जीवित, यथोचित तन्दुरुस्त, और सुपोषित भी रखते हैं, तो इसके पीछे इन पशुओं की सामाजिक और मानसिक ज़रूरतों के प्रति कोई आन्तरिक दिलचस्पी नहीं होती (सिवा उस स्थिति के जब इन चीज़ों का सीधा असर उत्पादन पर पड़ता है)।

उदाहरण के लिए अण्डे देने वाली मुर्गियों की आचरणपरक ज़रूरतों और सहज प्रवृत्तियों की एक पेचीदा दुनिया होती है। उनके भीतर अपने परिवेश की बारीक़ी से छानबीन करने, भोजन तलाशने और चोंच मारने, सामाजिक श्रेणीबद्ध क्रम निर्धारित करने, घोंसले बनाने और अपने पंखों को साफ़ करते रहने की प्रबल इच्छाएँ होती हैं, लेकिन अण्डा-उद्योग मुर्गियों को अक्सर छोटे-टोटे दड़बों में बन्द करके रखता है, और चार मुर्गियों को एक कटघरे में ठूँसना इसके लिए कोई असामान्य बात नहीं है, जिनमें से प्रत्येक कटघरा पच्चीस सेंटीमीटर लम्बा और बीस सेंटीमीटर चौड़ा होता है। इन मुर्गियों को पर्याप्त भोजन मिलता है, लेकिन वे अपना इलाक़ा घेरने, घोंसला बनाने या किन्हीं अन्य स्वाभाविक गतिविधियों में संलग्न होने में असमर्थ होती हैं। दरअसल कटघरा इतना छोटा होता है कि मुर्गियाँ अक्सर अपने पंख फड़फड़ाने या तनकर खड़ी होने में भी असमर्थ होती हैं।

41. एक व्यावसायिक हैचरी में कन्वेयर बेल्ट पर चूज़े। नर चूज़ों और दोषपूर्ण मादा चूज़ों को कन्वेयर बेल्ट पर छाँटा जाता है और उसके बाद उन्हें गैस चैम्बरों में डालकर उनका दम घोंट दिया जाता है या कतरने की स्वचालित मशीनों में डाल दिया है या सीधे कचरे में फेंक दिया जाता है, जहाँ वे कुचल कर मर जाते हैं। इस तरह की हैचरियों में हर साल लाखों चूज़े मरते हैं।

सूअर सबसे ज़्यादा बुद्धिमान स्तनपायी प्राणियों में शामिल हैं, बुद्धिमत्ता में शायद महान वानरों (ग्रेट एप्स) के बाद दूसरे क्रम में आते हैं, लेकिन औद्योगिक सूअरबाड़े सामान्यतः बच्चों का पोषण करने वाली मादा सूअरों को इतने छोटे खाँचों में क़ैद करके रखते हैं कि वे सचमुच मुड़ भी नहीं सकतीं (चलना और भोजन की तलाश करना तो दूर की बात है)। मादा सूअरों को बच्चों को जन्म देने के बाद चार हफ़्तों तक इस तरह के खाँचों में दिन-रात रखा जाता है। इसके बाद उनके बच्चों को मोटा बनाने के लिए उनसे छीन लिया जाता है और मादा सुअरों का बच्चों की अगली खेप के लिए गर्भाधान कर दिया जाता है।

डेरी की बहुत-सी गायें अपना निर्धारित समय एक छोटे-से बाड़े के भीतर बिताती हैं, अपने ही मूत्र और गोबर पर खड़े, बैठे या सोते हुए। वे अपने भोजन, हार्मोनों और दवाओं की मात्रा मशीनों के एक सेट से हासिल करती हैं, और मशीनों के एक दूसरे सेट द्वारा हर कुछ घण्टों में उनका दूध निकाल लिया जाता है। इस दरम्यान गाय को कच्चे माल को अन्दर पहुँचाने वाले छिद्र और एक कमॉडिटी उत्पन्न करने वाले थन की तरह बरता जाता है। पेचीदा भावनात्मक संसार से युक्त जीवित प्राणियों को मशीन की तरह बरतना मुमकिन है, उन्हें ना सिर्फ़ शारीरिक रूप से बेचैन करता हो, बल्कि उन्हें सामाजिक तनाव

और मानसिक हताशा से भर देता हो।

ठीक जिस तरह अटलांटिक ग़ुलाम व्यापार अफ़्रीकियों के प्रति घृणा का नतीज़ा नहीं था, उसी तरह आधुनिक पशु उद्योग भी किसी तरह के वैमनस्य से उत्प्रेरित नहीं है। एक बार पुनः यह बेरुख़ी से परिचालित है। अण्डे, दूध और मांस का उत्पादन तथा उपभोग करने वाले ज़्यादातर लोग शायद ही पल भर ठहरकर उन चूज़ों, गायों या सूअरों की नियति के बारे में सोचते हों, जिनके मांस या दूध का वे भक्षण करते हैं। जो लोग सोचते हैं, वे अक्सर यह तर्क देते हैं कि इस तरह के जानवर लगभग मशीनों जैसे ही होते हैं, जो संवेदनाओं और भावनाओं से वंचित होते हैं और पीड़ा महसूस करने में असमर्थ होते हैं। विडम्बना यह है कि जो वैज्ञानिक अनुशासन हमारी इन दुग्ध मशीनों और अण्डा मशीनों को आकार देते हैं, उन्होंने हाल ही के दिनों में मुनासिब सन्देह से परे इस बात को दर्शाया है कि स्तनपायी जीवों और पक्षियों की एक पेचीदा संवेदनात्मक और भावनात्मक बनावट होती है। वे ना सिर्फ़ शारीरिक पीड़ा को महसूस करते हैं, बल्कि भावनात्मक क्लेश को भी झेलते हैं।

विकासवादी मनोविज्ञान का मानना है कि खेतिहर पशुओं की भावनात्मक और सामाजिक ज़रूरतें नैसर्गिक वातावरण में विकसित हुई थीं, जब वे जीवन और प्रजनन के लिए लिए अनिवार्य थीं। उदाहरण के लिए, एक जंगली गाय के लिए यह जानना ज़रूरी होता था कि दूसरी गायों और बैलों के साथ किस तरह घनिष्ठ रिश्ते क़ायम किए जाएँ, क्योंकि अन्यथा उसका जीवित बने रहना और प्रजनन करना असम्भव होता। आवश्यक दक्षताओं को सीखने के लिए विकास की प्रक्रिया ने बछड़ों में - या दूसरे सामाजिक स्तनपायियों के छोटे बच्चों में - खेलने की प्रबल आकांक्षा विकसित कर दी (खेलना सामाजिक व्यवहार को सीखने का स्तनपायियों का एक ढंग है)। और उसने इससे भी ज़्यादा प्रबल आकांक्षा उनमें अपनी माताओं से जुड़ने की विकसित की, जिनका दूध और परिचर्या उनके जीवित बने रहने के लिए अनिवार्य थी।

तब क्या होता है, जब कोई किसान किसी बछिया को उसकी माँ से अलग कर उसे एक पिंजरे में बन्द कर देता है, उसे भोजन, पानी और बीमारियों से बचाव के लिए टीके लगवाता है, और जब वह पर्याप्त वयस्क हो जाती है, तो बैल के शुक्राणु से उसका गर्भाधान कर देता है? वस्तुपरक दृष्टि से अब इस बछिया को अपने जीवित बने रहने और प्रजनन के लिए ना तो मातृत्व के साथ की ही कोई ज़रूरत रह गई है, ना उसके साथ खेलने वालों की, लेकिन आत्मपरक दृष्टि से यह बछिया अभी भी अपनी माँ के साथ रहने और दूसरे बछड़ों के साथ खेलने की प्रबल इच्छा महसूस करती है। अगर ये इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं, तो वह अत्यंत पीड़ा झेलती है। विकासवादी मनोविज्ञान की यह एक बुनियादी सीख है : जिस ज़रूरत ने नैसर्गिक वातावरण में रूप लिया होता है, वह आत्मपरक स्तर पर निरन्तर महसूस होती रहती है, भरे ही वह जीवित बने रहने या प्रजनन के लिए आवश्यक ना रह गई हो। औद्योगिक कृषि की त्रासदी यह है कि यह पशुओं की वस्तुपरक ज़रूरतों का तो बहुत ख़याल रखती है, जबकि उनकी आत्मपरक ज़रूरतों को नज़रअन्दाज़ करती है।

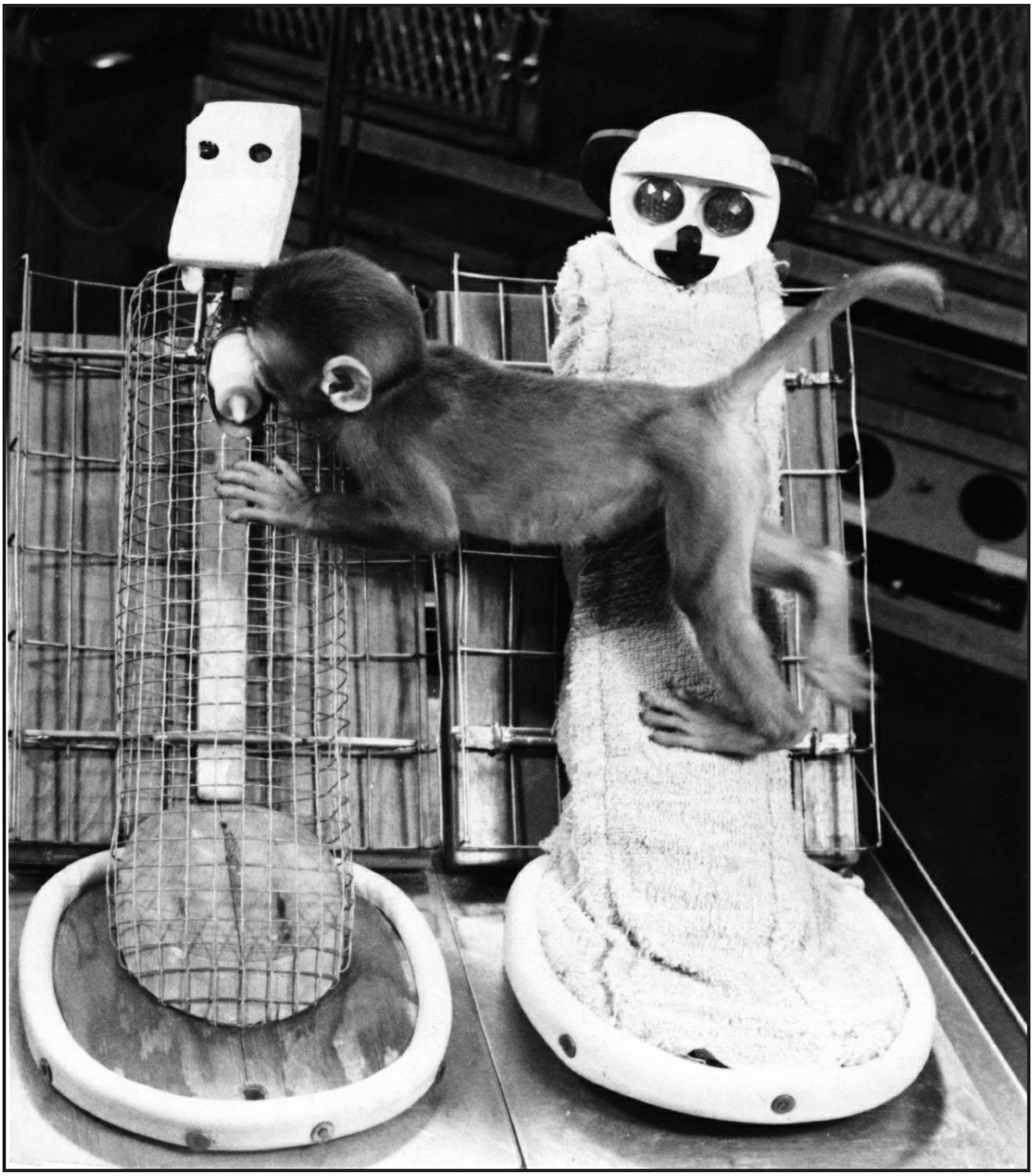

42. हार्लो का एक अनाथ बना दिया गया बन्दर, जो धातु की माँ का दूध पीते हुए भी कपड़े से बनी माँ से चिपका हुआ है।

इस सिद्धान्त की वास्तविकता कम से कम 1950 के दशक से ज्ञात रही है, जब अमेरिकी मनोविज्ञानी हैरी हार्लो ने बन्दरों के विकास का अध्ययन किया था। हार्लो ने शिशु बन्दरों को उनके जन्म के बाद उनकी माताओं से कई घण्टों तक अलग रखा। इन शिशु बन्दरों को एक पिंजरे में बन्द रखा, और फिर नक़ली माताओं के माध्यम से पालन-पोषण कराया। हार्लो ने हर पिंजरे में दो नक़ली माताओं को रखा। एक धातु के तारों से निर्मित थी और उसमें दूध की बोतल फ़िट की गई थी, जिससे शिशु बन्दर दूध पी सकता। दूसरी लकड़ी से निर्मित और कपड़े से ढँकी थी, जिससे वह असली बन्दर माँ जैसी

दिखती थी, लेकिन यह शिशु बन्दर को किसी भी तरह का भौतिक पोषण उपलब्ध नहीं कराती थी। कल्पना की गई थी कि शिशु बिना दूध वाली माँ के बजाय धातु से निर्मित पोषण उपलब्ध कराने वाली माँ से लिपटेंगे।

हार्लो को यह देखकर हैरानी हुई कि शिशु बन्दरों ने कपड़े से बनी माँ के प्रति उल्लेखनीय प्राथमिकता दर्शाई, और उसी के साथ उन्होंने अपना ज़्यादातर वक़्त बिताया। जब दोनों माताओं को पास-पास रख दिया गया, तब शिशु उस वक़्त भी कपड़े की माँ को थामे रहे, जिस वक़्त वे धातु की माँ का दूध पी रहे थे। हार्लो को लगा कि शिशुओं को शायद ठण्ड लग रही हो और इसलिए वे वैसा कर रहे हों। इसलिए उन्होंने तारों से निर्मित माँ में एक बिजली का बल्ब फ़िट कर दिया, जो अब गर्मी पैदा कर रहा था। बहुत छोटे शिशुओं को छोड़कर ज़्यादातर शिशु कपड़े वाली माँ के पास ही बने रहे।

बाद के अनुसन्धानों ने दर्शाया कि हार्लो के अनाथ बना दिए बन्दर सारे ज़रूरी पोषणों के मिलते रहने के बावजूद बड़े होकर भावनात्मक रूप से विचलित थे। वे बन्दरों के समाज के साथ कभी तालमेल नहीं बिठा पाए, उन्हें दूसरे बन्दरों के साथ संवाद क़ायम करने में मुश्किल पेश आई, और वे बहुत ज़्यादा बेचैनी और आक्रामकता के शिकार हुए। निष्कर्ष को नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता था : निश्चय ही बन्दरों की मनोवैज्ञानिक ज़रूरतें और आकांक्षाएँ होती हैं, जो उनकी भौतिक ज़रूरतों के परे बने रहती हैं और अगर उन्हें पूरा नहीं किया गया, तो वे बहुत तक़लीफ़ उठाएँगे। बाद के दशकों में अनेक अध्ययनों ने दर्शाया कि यह निष्कर्ष ना सिर्फ़ बन्दरों पर लागू होता है, बल्कि अन्य स्तनपायी जीवों और पक्षियों पर भी लागू होता है। वर्तमान में पशुगृहों के लाखों जानवर उसी तरह की परिस्थितियों के अधीन रह रहे हैं, जैसी परिस्थितियों के अधीन हार्लो के बन्दर रहे थे, क्योंकि किसान सामान्यतः उनके बच्चों का अलग-थलग पालन-पोषण करने के लिए उन्हें उनकी माताओं से अलग कर देते हैं।

कुल मिलाकर, पशुगृहों के अरबों जानवर यान्त्रिक असेम्बली-लाइन का हिस्सा बनकर रहते हैं और उनमें से लगभग 10 अरब जानवर हर साल काट दिए जाते हैं। इन औद्योगिक पशुपालन पद्धतियों ने कृषि उत्पादन और इंसानी खाद्य भण्डार में तीव्र वृद्धि की है। कृषि के मशीनीकरण के साथ-साथ औद्योगिक पशुपालन समूची आधुनिक सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का आधार है। कृषि के औद्योगिकीकरण के पहले खेतों और पशुशालाओं में उपजाया जाने वाला ज़्यादातर भोजन 'बरबाद' था, वह किसानों और पशुगृहों के जानवरों भर का पेट भरता था। उसका बहुत छोटा-सा हिस्सा ही कारीगरों, अध्यापकों, पुरोहितों और नौकरशाहों का पेट भर पाता था। नतीज़तन, लगभग सारे समाजों में किसान कुल आबादी का 90 प्रतिशत हिस्सा हुआ करते थे। कृषि के औद्योगिकीकरण के बाद किसानों की सिकुड़ती हुई संख्या क्लर्कों और कारख़ानों के मज़दूरों का पेट भरने के लिए काफ़ी थी। आज संयुक्त राज्य अमेरिका में आबादी का मात्र 2 प्रतिशत हिस्सा खेती से अपना जीवनयापन करता है, तब भी यह 2 प्रतिशत हिस्सा ना सिर्फ़ संयुक्त राज्य अमेरिका की समूची आबादी का पेट भरने के लिए काफ़ी है, बल्कि अतिरिक्त उत्पादन का बाक़ी दुनिया के लिए निर्यात करता है। कृषि के औद्योगिकीकरण के बग़ैर नगरीय औद्योगिक क्रान्ति कभी घटित ही ना हुई होती - कारख़ानों और दफ़्तरों में काम करने के लिए पर्याप्त कर्मचारी और दिमाग़ ही ना होते।

जैसे ही उन कारख़ानों और ऑफ़िसों ने अरबों कामगारों और दिमाग़ों को आत्मसात किया, उन्होंने उत्पादों की अपूर्व बाढ़ ला दी। आज इंसान पहले के मुक़ाबले बहुत बड़ी मात्रा में इस्पात का उत्पादन करते हैं, बड़ी मात्रा में कपड़े तैयार करते हैं, ढेरों इमारतें तैयार करते हैं। इसके अलावा वे दिमाग़ को चकरा देने वाली नाना प्रकार की चीज़ें उत्पादित करते हैं, जिनकी इसके पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी - जैसे कि बल्ब, मोबाइल फ़ोन, कैमरे और बर्तन धोने की मशीनें। मनुष्य के इतिहास में पहली बार पूर्ति ने माँग से आगे निकलना शुरू कर दिया। और एक नितान्त नई समस्या उठ खड़ी हुई : ये सारा सामान कौन ख़रीदेगा?

ख़रीदारी का युग

अगर आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था को जीवित बने रहना है, तो उसे उत्पादन में निरन्तर वृद्धि करते रहना अनिवार्य है, उस शार्क मछली की तरह जिसे निरन्तर तैरते रहना अनिवार्य होता है, अन्यथा उसका दम घुट जाता है, लेकिन सिर्फ़ उत्पादन करते रहना ही काफ़ी नहीं है। किसी के हाथों इन उत्पादों का ख़रीदा जाना भी अनिवार्य है, अन्यथा उद्योगपति और निवेशक दोनों ही दिवालिया हो जाएँगे। इस विनाश को रोकने और यह सुनिश्चित करने के लिए कि उद्योग जो भी कोई नया सामान उत्पादित करे, उसे लोग हमेशा ख़रीदते रहें, एक नए क़िस्म के नीतिशास्त्र का जन्म हुआः उपभोक्तावाद।

समूचे इतिहास के दौरान ज़्यादातर लोग तंगी की परिस्थितियों में रहते थे। इसीलिए किफ़ायत उनका नारा हुआ करता था। प्यूरिटनों (अँग्रेज़ प्रोटेस्टेंट) और स्पार्टावासियों के आत्मसंयम के नीतिशास्त्र इसके मात्र दो प्रसिद्ध उदाहरण हैं। एक सत्पुरुष विलासिता की वस्तुओं से परहेज़ करता था, भोजन को कभी फेंकता नहीं था और नई पतलून ख़रीदने के बजाय पुरानी पतलून में पैबन्द लगाकर काम चलाता था। केवल सम्राट और अभिजात्य वर्ग के लोग ही ख़ुद को इस तरह के मूल्यों का सार्वजनिक तिरस्कार करने और खुलेआम अपनी दौलत पर इतराने की छूट दिया करते थे।

उपभोक्तावाद वस्तुओं और सेवाओं के ज़्यादा से ज़्यादा उपभोग को एक सकारात्मक चीज़ की तरह देखता है। यह लोगों को प्रोत्साहित करता है कि वे ख़ुद को आनन्दित करें, ख़ुद को बिगाड़ें और यहाँ तक कि अतिउपभोग करते हुए ख़ुद को ख़त्म कर डालें। किफ़ायत एक बीमारी है, जिसका इलाज़ किया जाना चाहिए। उपभोग के नीतिशास्त्र को क्रियाशील देखने के लिए आपको ज़्यादा दूर जाने की ज़रूरत नहीं है - नाश्ते में इस्तेमाल किए जाने वाले एक सीरियल के डिब्बे के पीछे लिखी इबारत भर को पढ़ लें। पेश है एक इज़रायली फ़र्म थेल्मा द्वारा उत्पादित नाश्ते के मेरे प्रिय सीरियल के डिब्बे से एक उद्धरण :

> कभी-कभी आपको ट्रीट की ज़रूरत होती है। कभी-कभी आपको थोड़ी-सी अतिरिक्त ऊर्जा की ज़रूरत होती है। कभी-कभार तो आपको अपने वज़न पर नज़र रखनी होती है और कभी आपको कुछ ना कुछ खाना ही चाहिए...जैसे ठीक अभी! थेल्मा सिर्फ़ आपके लिए पेश करता है कई तरह के स्वादिष्ट सीरियल - मस्त ट्रीट्स।

इसी पैकेज में हेल्थ ट्रीट्स नामक एक और ब्रांड का विज्ञापन है :

> हेल्थ ट्रीट्स में ढेर-सारे अनाज, फल और सूखे मेवे शामिल हैं, जो एक ऐसा अनुभव देते हैं, जिसमें स्वाद भी है, लुत्फ़ भी है और तन्दुरुस्ती भी है। बीच दिन में एक मज़ेदार ट्रीट, तन्दुरुस्त जीवन-शैली के लिए। बहुत कुछ के अद्भुत स्वाद वाली एक असली ट्रीट (ज़ोर मूल विज्ञापन का)।

बहुत मुमकिन है कि ज़्यादातर इतिहास के दौरान लोग इस क़िस्म की इबारत से आकर्षित होने के बजाय विकर्षित होते। उन्होंने इसे स्वार्थपूर्ण, पतनशील और नैतिक रूप से भ्रष्ट कहा होता। उपभोक्तावाद ने लोकप्रिय मनोविज्ञान (‘इसे करके तो देखिए’!) की मदद से इसके लिए बहुत कड़ी मेहनत की है कि लोगों को यह यक़ीन दिलाया जा सकता कि विलासिता आपके लिए अच्छी चीज़ है, जबकि अल्पव्यय आत्मदमन है।

यह इसमें क़ामयाब रहा है। हम सब अच्छे उपभोक्ता हैं। हम ऐसी असंख्य चीज़ें ख़रीदते हैं, जिनकी हमें वाक़ई ज़रूरत नहीं होती, और जिनके अस्तित्व के बारे में कल तक हमें जानकारी भी नहीं थी। निर्माता जानबूझकर अल्पजीवी चीज़ें तैयार करते हैं और पूरी तरह सन्तोषजनक उत्पादों के ऐसे नए और अनावश्यक मॉडल ईजाद करते रहते हैं, जिनको हमें ‘फ़ैशन में’ बने रहने के नाते ख़रीदना अनिवार्य होता है। ख़रीदारी एक चहेता शग़ल बन गया है और उपभोग की वस्तुएँ परिवार के सदस्यों, दम्पतियों और दोस्तों के बीच के रिश्ते में अनिवार्य बिचौलियों की भूमिका निभाने लगी हैं। क्रिसमस जैसे मज़हबी त्यौहार ख़रीदारी के त्यौहार बन गए हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में तो स्मृति दिवस (मैमोरियल डे) तक, जो कि मूलतः शहीद सैनिकों की याद में मनाया जाने वाला एक संजीदा दिवस हुआ करता था, आज स्पेशल सेल्स का अवसर बन गया है। ज़्यादातर लोग इस दिन को ख़रीदारी के लिए जाकर मनाते हैं, शायद यह साबित करने के लिए कि आज़ादी के लिए लड़ने वालों की शहादत बेकार नहीं गई।

उपभोक्तावादी नीतिशास्त्र का फलना-फूलना सबसे ज़्यादा स्पष्ट ढंग से खाद्य सामग्री के बाज़ार में प्रकट होने से व्यक्त होता है। पारम्परिक कृषक समाज भुखमरी की डरावनी छाया में जीवन बिताते थे। आज की भरीपूरी दुनिया में मोटापा सबसे प्रमुख समस्या है, जो ग़रीबों (जो अपने पेट में हैम्बर्गर और पीत्ज़ा ठूँसते रहते हैं) पर ज़्यादा आसानी से हमला करता है, बजाय अमीरों के (जो ऑर्गेनिक सलाद और फलों का रस खाते-पीते हैं)। संयुक्त राज्य अमेरिका की आबादी हर साल अपने आहार पर उससे ज़्यादा पैसा ख़र्च करती है, जितना बाक़ी दुनिया के भूखे लोगों का पेट भरने के लिए ज़रूरी है। मोटापा उपभोक्तावाद की दोहरी जीत है। बजाय कम खाने के, जो आर्थिक संकुचन का कारण बनेगा, लोग ज़रूरत से ज़्यादा खाते हैं और फिर वज़न घटाने की दवाएँ ख़रीदते हैं - और इस तरह आर्थिक विकास में दोहरा योगदान करते हैं।

हम उपभोक्तावादी नीतिशास्त्र की तुलना उस व्यापारी व्यक्ति के पूँजीवादी नीतिशास्त्र से कैसे कर सकते हैं, जिसके मुताबिक़ मुनाफ़ों को बरबाद नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि उनका निवेश उत्पादन में किया जाना चाहिए? यह आसान है। जिस तरह पुराने युगों में होता था, उसी तरह आज अभिजात्य वर्ग और सामान्य जन-समुदाय के बीच श्रम का विभाजन है। मध्ययुगीन यूरोप में सामन्त वर्ग अपना पैसा विलासिताओं पर लुटाता था, जबकि किसान एक-एक पैसे का ध्यान रखते हुए पूरी किफ़ायत की ज़िन्दगी जीता था। आज स्थितियाँ बदल गई हैं। अमीर लोग अपनी परिसम्पत्तियों और निवेशों का बहुत ध्यान रखते हैं, जबकि कम सम्पन्न लोग उन कारों और टेलिविज़नों को ख़रीदने में क़र्ज़ में

डूब जाते हैं, जिनकी उन्हें वास्तव में ज़रूरत नहीं होती।

पूँजीवादी नीतिशास्त्र और उपभोक्तावादी नीतिशास्त्र एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, दो धर्मादेशों का विलय। अमीर का सबसे बड़ा धर्मादेश है 'निवेश करो'! बाक़ी हम सब का सबसे बड़ा धर्मादेश है 'ख़रीदो'!

पूँजीवादी-उपभोक्तावादी नीतिशास्त्र एक और सन्दर्भ में भी क्रान्तिकारी है। ज़्यादातर पुरानी नैतिक व्यवस्थाएँ लोगों के सामने ख़ासा मुश्किल सौदा पेश करती थीं। उन्हें स्वर्ग का आश्वासन तो दिया जाता था, लेकिन तभी जब वे वासना और क्रोध से ऊपर उठकर और अपने स्वार्थ पर क़ाबू पाकर करुणा और सहिष्णुता के मार्ग पर चलें। यह ज़्यादातर लोगों के लिए बहुत मुश्किल था। नैतिकता का इतिहास उन अद्भुत आदर्शों की दुःखद कहानी है, जिन पर कोई नहीं चल पाता था। ज़्यादातर ईसाइयों ने ईसा का अनुसरण नहीं किया, ज़्यादतर बौद्ध बुद्धि का अनुसरण करने में विफल रहे, और ज़्यादातर कन्फ़्यूशियसवादियों ने कन्फ़्यूशियस को खीझ से भर दिया होता।

इसके विपरीत, आज ज़्यादातर लोग बड़ी क़ामयाबी के साथ पूँजीवादी-उपभोक्तावादी आदर्श पर चलते हैं। यह नया नीतिशास्त्र इस शर्त पर स्वर्ग का आश्वासन देता है कि रईस लोग लालची बने रहें और अपना सारा समय ज़्यादा से ज़्यादा पैसा कमाने में लगाएँ, जन-साधारण अपनी वासनाओं और लालसाओं को खुली छूट दें - और ज़्यादा से ज़्यादा ख़रीदें। यह इतिहास का पहला मज़हब है, जिसके अनुयायी वास्तव में वही करते हैं, जो करने को उनसे कहा जाता है, हालाँकि यह हम कैसे जानते हैं कि बदले में हमें स्वर्ग मिल जाएगा? यह हमने टेलिविज़न पर देखा है।

18

एक स्थायी क्रान्ति

औद्योगिक क्रान्ति ने ऊर्जा के रूपान्तरण और वस्तुओं के उत्पादन के नए रास्ते खोले, और इस तरह व्यापक तौर पर मानव-जाति को उसके आस-पास व्याप्त पारिस्थितिकी पर निर्भरता से मुक्त किया। मनुष्यों ने जंगल काट डाले, दलदलों को सुखा डाला, नदियों पर बाँध बनाए, मैदानों को पानी से भर दिया, हज़ारों किलोमीटर लम्बी रेल की पटरियाँ बिछा दीं और गगनचुम्बी इमारतों से भरे महानगर खड़े कर दिए। जैसे-जैसे दुनिया होमो सेपियन्स की ज़रूरतों के मुताबिक़ ढाली जाती गई, वैसे-वैसे प्राकृतिक आवास नष्ट होते गए और प्रजातियाँ लुप्त होती गईं। हमारा जो ग्रह किसी समय हरा और नीला हुआ करता था, वह कंक्रीट और प्लास्टिक का शॉपिंग सेंटर बनता जा रहा है।

आज पृथ्वी के महाद्वीप लगभग 7 अरब सेपियन्स के घर हैं। अगर आप इन सारे लोगों को लेकर एक विशाल तराजू पर रखें, तो इनके संयुक्त ढेर का वज़न 3000 लाख टन के क़रीब होगा। इसके बाद अगर आप पशुगृहों में रहने वाले हमारे सारे पालतू बना लिए गए जानवरों - गायों, सूअरों, भेड़ों और चूज़ों - को उससे भी बड़े तराजू पर रखें, तो उनके ढेर का वज़न लगभग 7000 लाख टन होगा। इसके विपरीत, साहियों और पेंग्युइनों से लेकर हाथियों और ह्वेलों तक सारे बचे रह गए जंगली जानवरों के संयुक्त ढेर का वज़न 1000 लाख टन से भी कम होगा। हमारी बच्चों की किताबें, हमारी चित्रमालाएँ और हमारे टीवी स्क्रीन अभी भी जिराफ़ों, भेड़ियों और चिंपांज़ियों से भरे पड़े हैं, लेकिन वास्तविक दुनिया में वे बहुत कम बचे हैं। दुनिया में 1.5 अरब मवेशियों की तुलना में लगभग 80,000 जिराफ़ हैं, 4000 लाख पालतू बना लिए गए कुत्तों के मुक़ाबले मात्र 200,000 भूरे भेड़िये हैं, अरबों इंसानों के विपरीत मात्र 250,000 चिंपांज़ी हैं। मानव-जाति ने सचमुच दुनिया पर क़ब्ज़ा कर लिया है।

पारिस्थितिकीय गिरावट की स्थिति संसाधनों की तंगी जैसी ही नहीं है। जैसा कि हमने पिछले अध्याय में देखा है, मानव-जाति के लिए उपलब्ध संसाधनों में निरन्तर इज़ाफ़ा हो रहा है और यह इज़ाफ़ा जारी रहने की सम्भावना है। इसलिए संसाधन की तंगी से जुड़ी क़यामत की भविष्यवाणियाँ शायद बेतुकी हैं। इसके विपरीत, पारिस्थितिकीय गिरावट का ख़ौफ़ ठोस आधार पर टिका है। मुमकिन है कि भविष्य में सेपियन्स प्रचुर मात्रा में नए पदार्थों और ऊर्जा-स्रोतों पर नियन्त्रण हासिल कर ले, जबकि इसी के साथ-साथ बचे-खुचे प्राकृतिक बसेरों को नष्ट कर दे और ज़्यादातर दूसरी प्रजातियों को लोप की ओर धकेल दे।

वस्तुतः पारिस्थितिकीय हलचल स्वयं होमो सेपियन्स के जीवन को ख़तरे में डाल सकती है। भूमण्डल के ताप में इज़ाफ़ा, महासागरों के जलस्तर में वृद्धि और बड़े पैमाने का प्रदूषण, धरती को हम जैसों के लिए कमतर मैत्रीपूर्ण बना सकते हैं, और नतीज़तन भविष्य मानवीय शक्ति और मनुष्य-कृत नैसर्गिक विनाश के बीच तेजी से बढ़ती हुई दौड़ का साक्षी बन सकता है। मनुष्य जिस तरह प्रकृति की शक्तियों का प्रतिकार करने और पारिस्थितिकी को अपनी ज़रूरतों तथा सनक के मुताबिक़ अपने अधीन बनाने के लिए अपनी शक्तियों का इस्तेमाल कर रहे हैं, उसके कारण वे उत्तरोत्तर बड़ी तादाद में अनपेक्षित और ख़तरनाक साइड इफ़ेक्ट्स को उत्पन्न कर सकते हैं। इन्हें नियन्त्रित करना शायद सिर्फ़ पारिस्थितिकी के साथ और भी सख़्त ज़ोर आज़माइशी से मुमकिन हो सकेगा, जिसका परिणाम और भी बदतर अराजकता के रूप में सामने आएगा।

बहुत से लोग इसे 'प्रकृति के विनाश' की संज्ञा देते हैं, लेकिन यह वास्तव में विनाश नहीं है, यह परिवर्तन है। प्रकृति का विनाश मुमकिन नहीं है। साढ़े छह करोड़ साल पहले किसी उल्कापात ने डायनासोरों को मिटा डाला था, लेकिन ऐसा करते हुए उसने स्तनपायी जीवों के लिए आगे का रास्ता खोल दिया था। आज मानव-जाति बहुत-सी प्रजातियों को विलुप्ति की ओर धकेल रही है और मुमकिन है कि वह ख़ुद को भी मिटा डाले, लेकिन दूसरे जीव काफ़ी तरक्की कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, चूहे और कॉक्रोच अपने सुनहरे दौर में हैं। ये अड़ियल जन्तु शायद, अपने डीएनए का विस्तार करने की शक्ति से लैस और तैयार होकर, परमाणु महायुद्ध से तबाह हुई दुनिया के मलबे से भी रेंगते हुए बाहर निकल आएँ। शायद आज से साढ़े छह करोड़ साल बाद बुद्धिमान चूहे पीछे मुड़कर मानव-जाति द्वारा की गई तबाही को कृतज्ञता के भाव से देखें, ठीक उसी तरह जैसे आज हम डायनासोर को तबाह कर देने वाली उल्का का शुक्रिया अदा कर सकते हैं।

तब भी, हमारी अपनी विलुप्ति की अफ़वाहें बचकानी हैं। औद्योगिक क्रान्ति के बाद से दुनिया की मानव आबादी जिस तरह फली-फूली है, वैसा उसके पहले कभी नहीं हुआ था। 1700 में दुनिया 70 करोड़ इंसानों का घर हुआ करती थी। 1800 में हमारी संख्या 95 करोड़ थी। 1900 तक पहुँचते-पहुँचते हमारी संख्या लगभग दुगुनी होकर 160 करोड़ तक पहुँच गई और 2000 तक वह चौगुनी होकर 6 अरब हो चुकी थी। आज सेपियन्स की संख्या 7 अरब को पार कर चुकी है।

आधुनिक समय

जहाँ ये सारे सेपियन्स प्रकृति की मनमौज़ी गति से अप्रभावित बने रहते हुए उत्तरोत्तर अपनी वृद्धि करते रहे, वहीं वे आधुनिक उद्योग और सरकार के हुक्म के पहले से ज़्यादा अधीन होते गए हैं। औद्योगिक क्रान्ति ने सामाजिक अभियान्त्रिकी में प्रयोगों के लम्बे सिलसिले और रोज़मर्रा के जीवन तथा इंसानी मानसिकता में पहले से नहीं सोचे गए परिवर्तनों की लम्बी शृंखला का रास्ता साफ़ किया। इसके अनेक उदाहरणों में से एक उदाहरण पारम्परिक खेती की लय का उद्योग की एकरूप और नियत योजना से विस्थापन है।

पारम्परिक कृषि कुतरती समय के आवर्तनों और जैविक उपज पर निर्भर करती थी। ज़्यादातर समाज समय का ठीक-ठीक मापन करने में असमर्थ तो हुआ ही करते थे, ऐसा करने में उनकी बहुत ज़्यादा दिलचस्पी भी नहीं थी। दुनिया का क़ारोबार घड़ियों और टाइमटेबलों के बिना चला करता था, वह सिर्फ़ सूरज की गतियों और वनस्पतियों की उपज के आवर्तनों के अधीन था। काम के कोई भी दिन एक जैसे नहीं होते थे और मौसम के मुताबिक़ सारी दिनचर्याएँ पूरी तरह से बदल जाती थीं। लोग इतना भर जानते थे कि सूरज कहाँ पर है और बेचैनी के साथ बारिश और फ़सल की कटाई के समय के पूर्वसंकेतों का इन्तज़ार करते रहते थे, लेकिन उन्हें ठीक-ठीक समय की जानकारी नहीं होती थी और ठीक-ठीक वर्ष की परवाह तो वे शायद ही करते थे। अगर किसी विलुप्त समय का कोई यात्री अचानक किसी मध्ययुगीन गाँव में प्रकट होकर किसी राहगीर से पूछता, “यह कौन-सा वर्ष है”, तो वह राहगीर ग्रामीण इस सवाल से उतना ही चकरा जाता, जितना वह उस यात्री की बेतुकी पोशाक को देखकर चकाराया होता।

मध्ययुगीन किसानों और मोचियों के विपरीत आधुनिक उद्योग सूर्य या मौसम की ज़रा भी परवाह नहीं करता। वह सटीकता और एकरूपता की उपासना करता है। उदाहरण के लिए, मध्युगीन कार्यशाला में हर मोची जूतों के तल्लों से लेकर बकसुओं तक एक पूरी जोड़ी बनाया करता था। अगर किसी मोची को काम पर आने में देर हो जाती, तो उसकी जगह दूसरे मोची को वह काम नहीं सौंपा जाता था, लेकिन जूतों के एक आधुनिक कारख़ाने की असेम्बली लाइन में हर कारीगर एक मशीन पर काम करता है, जो जूते का महज़ एक छोटा-सा हिस्सा तैयार करती है, जिसे फिर आगे के हिस्से को तैयार करने के लिए अगली मशीन पर भेज दिया जाता है। अगर 5 नम्बर मशीन पर काम करने वाला कारीगर सुबह देर तक सोया रहा, तो वह सारी दूसरी मशीनों को ठप कर देता है। इस तरह के संकट को टालने के लिए अचूक टाइमटेबल से चिपके रहना ज़रूरी होता है। हर व्यक्ति ठीक एक ही समय पर आता है। हर व्यक्ति को दोपहर के भोजन की छुट्टी एक साथ दी जाती है, चाहे उन्हें भूख लगी हो या नहीं। हर व्यक्ति उस सीटी के बजने पर घर जाता है, जो पारी के समाप्त होने का ऐलान करती है - उस वक़्त नहीं, जब उन्होंने अपना काम पूरा कर लिया होता है।

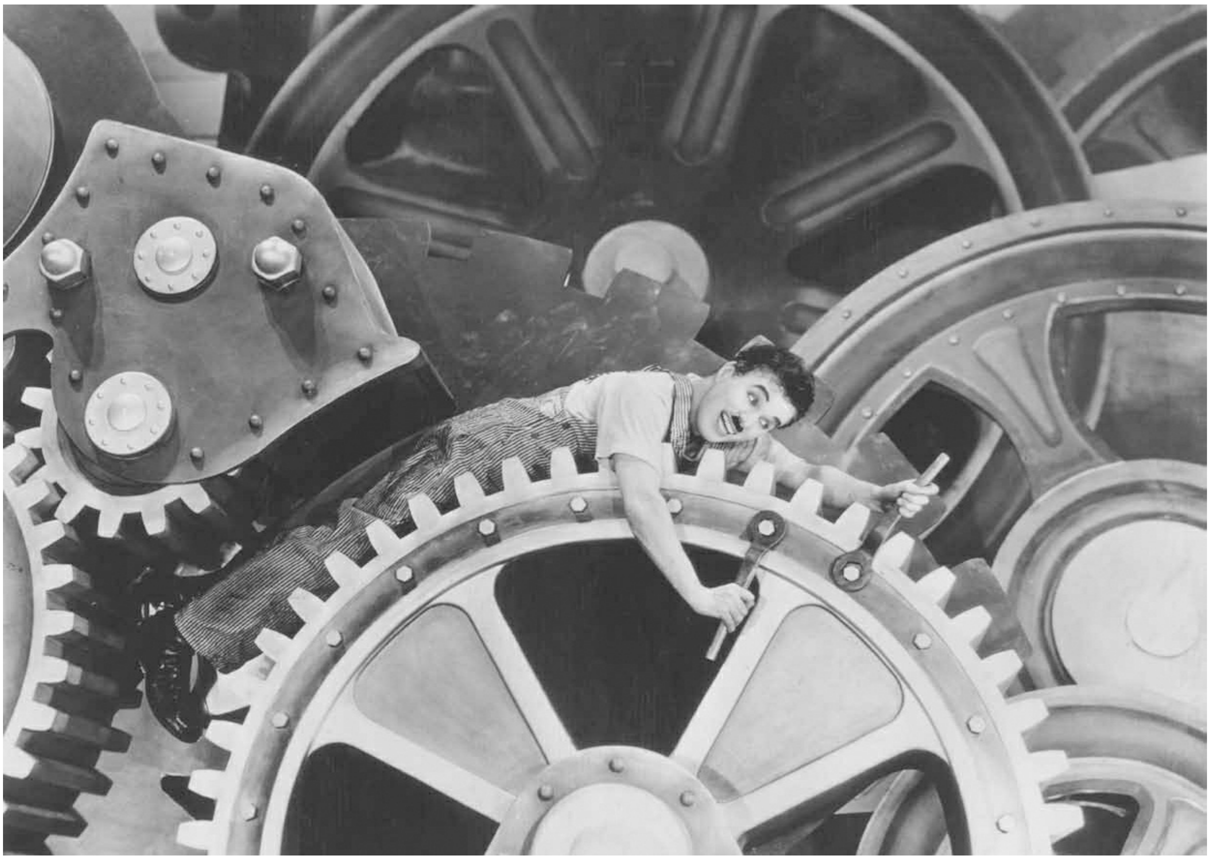

43. मॉडर्न टाइम्स (1936) फ़िल्म का एक दृश्य : औद्योगिक असेम्बली लाइन के चक्र में फँसे एक साधारण कामगार के रूप में चार्ली चैप्लिन।

औद्योगिक क्रान्ति ने लगभग तमाम मानव गतिविधियों को टाइमटेबल और असेम्बली लाइन के साँचे में ढाल दिया है। जब कारख़ानों ने मानव व्यवहार को समय के अपने चौखटे में बाँध दिया, तो उसके कुछ ही समय के भीतर स्कूलों ने भी निश्चित टाइमटेबल अपना लिया और उसके बाद अस्पतालों, सरकारी दफ़्तरों और किराने की दुकानों ने उसका अनुसरण किया। यहाँ तक कि जिन स्थानों पर असेम्बली लाइनें और मशीनें नहीं होतीं, वहाँ भी टाइमटेबल का राज चलने लगा। अगर फ़ैक्टरी की पारी शाम 5 बजे ख़त्म होती है, तो बेहतर है कि स्थानीय कलारी भी अपना कारोबार शाम 5:02 पर शुरू करे।

टाइमटेबल प्रणाली को फैलाने में एक निर्णायक सूत्र सार्वजनिक यातायात व्यवस्था थी। अगर कामगारों को अपनी पारी सुबह 8 बजे शुरू करना ज़रूरी था, तो ट्रेन या बस का सुबह 07:55 तक फ़ैक्ट्री के गेट तक पहुँचना ज़रूरी था। कुछ मिनटों की देरी उत्पादन को घटा देती और शायद देर से पहुँचने वाले बदक़िस्मत कामगारों की बर्ख़ास्तगी का कारण बन जाती। 1784 में ब्रिटेन में बाकायदा प्रकाशित समय-सारिणी के साथ एक घोड़ागाड़ी सेवा की शुरुआत हुई थी। इसके टाइमटेबल में सिर्फ़ प्रस्थान का समय दिया हुआ था, पहुँचने का नहीं। तब, ब्रिटेन के हर नगर और क़स्बे का अपना स्थानीय समय हुआ करता था, जो लन्दन के समय से आधा घण्टे तक भिन्न हो सकता था। जब लन्दन में 12.00 बज रहे होते थे, तब लिवरपूल में 12:20 और कैंटबरी में 11:50 बज रहे हो सकते थे। चूँकि उस समय कोई टेलीफ़ोन, रेडियो या टेलीविज़न नहीं थे, और कोई तेज़ रफ़्तार ट्रेनें भी नहीं थीं - इसलिए किस को पता हो सकता था और किसको परवाह हो

सकती थी?

पहली व्यावसायिक रेल सेवा 1830 में लिवरपूल और मैनचेस्टर के बीच शुरू हुई थी। दस साल बाद, पहला ट्रेन टाइमटेबल ज़ारी किया गया था। ट्रेनों की रफ़्तार पुरानी घोड़ा गाड़ियों से तेज़ थी, इसलिए स्थानीय समयों के बीच का विचित्र-सा अन्तर एक गम्भीर सरदर्द बन गया। 1847 में ब्रिटेन की ट्रेन कम्पनियों ने आपस में सलाह-मशविरा किया और वे इस बात पर एकमत हुईं कि अब के बाद से सारी ट्रेनों के टाइमटेबलों पर लिवरपूल, मैनचेस्टर या ग्लासगोव के समयों के बजाय ग्रीनविच वेधशाला का समय अंकित किया जाएगा। अन्ततः 1980 में अँग्रेज़ सरकार ने यह क़ानून बनाने का अपूर्व क़दम उठाया कि ब्रिटेन के सारे टाइमटेबलों को ग्रीनविच का अनुसरण करना होगा। इस तरह इतिहास में पहली बार किसी मुल्क़ ने एक राष्ट्रीय समय को अपनाया और अपनी जनता को मज़बूर किया कि वह स्थानीय समयों या सूर्योदय-से-सूर्यास्त तक के समय-चक्र के मुताबिक़ अपना जीवन जीने के बजाय एक कृत्रिम घड़ी के मुताबिक़ अपना जीवन जिये।

इस सौम्य शुरुआत ने उन टाइमटेबलों के एक वैश्विक नेटवर्क को जन्म दिया जिनमें एक सेकंड के सूक्ष्मतम हिस्सों तक के स्तर पर समय का तालमेल बैठाया गया। जब प्रसारण माध्यमों - पहले रेडियो और फिर टेलीविज़न - का आगाज़ हुआ,तो उन्होंने टाइमटेबलों की एक दुनिया की शुरुआत की और इसके प्रमुख प्रवर्तक और प्रचारक बन गए। रेडियो स्टेशनों द्वारा प्रसारित की जाने वाली पहली चीज़ों में समय के सिग्नल शामिल होते थे, वे आवाज़ें (बीप्स) जो दूरदराज़ की बस्तियों और समुद्र में तैरते जहाज़ों को अपनी घड़ियाँ मिलाने की सुविधा प्रदान करती थीं। बाद में रेडियो स्टेशनों ने हर घण्टे समाचार प्रसारित करने की परिपाटी डाल ली। आज, हर समाचार-प्रसारण की सबसे पहली चीज़ - कहीं पर युद्ध के शुरू हो जाने के समाचार से भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण - समय की सूचना है। दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान बीबीसी समाचार का प्रसारण नाज़ी कब्ज़े वाले यूरोप में किया जाता था। हर समाचार-कार्यक्रम की शुरुआत बिग बेन ब्रिटेन के घण्टों की आवाज़ - आज़ादी की जादुई आवाज़ - के सीधे प्रसारण के साथ होती थी। प्रतिभाशाली जर्मन भौतिकीविद इस घण्टे के डिंग-डांग के सफ़र के मामूली-से फ़र्कों के आधार पर लन्दन के मौसम की स्थिति का आकलन करने लगे। इस जानकारी ने लुफ़्तवफ़[*] को मूल्यवान मदद उपलब्ध कराई थी। जब ब्रिटेन की सीक्रेट सर्विस को इसका पता चला, तो वे इस सीधे प्रसारण की जगह इस प्रसिद्ध घड़ी की तैयारशुदा रिकॉर्डिंग प्रसारित करने लगे।

टाइमटेबल नेटवर्क को क्रियाशील रखने के लिए सस्ती, किन्तु आसानी से यहाँ-वहाँ ले जाने लायक़ घड़ियाँ हर जगह सर्वव्यापी हो गईं। असीरियाई, सासानिड या इंका नगरों में शायद गिनती की धूपघड़ियाँ रही होंगी। यूरोप के मध्ययुगीन नगरों में आमतौर से एक घड़ी हुआ करती थी - नगर के चौक में एक ऊँची मीनार के चौक पर मढ़ी हुई विशालकाय मशीन। ये मीनार घड़ियाँ साफ़ तौर पर ग़लत वक़्त बताने वाली हुआ करती थीं, लेकिन चूँकि उन्हें ग़लत साबित करने वाली कोई दूसरी घड़ी नगर में नहीं होती थी, इसलिए उनसे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता था। आज एक समृद्ध परिवार में आम तौर से उससे

ज़्यादा घड़ियाँ होती हैं, जितनी मध्ययुग के किसी मुल्क़ में कुल मिलाकर होती थीं। आप अपनी कलाई-घड़ी को देखकर, अपने ऐन्ड्रॉइड पर नज़र डालकर, अपने बिस्तर की बग़ल में रखी अलार्म घड़ी में झाँककर, रसोई की दीवार पर टँगी घड़ी को देखकर, माइक्रोवेव को देखकर, टीवी या डीवीडी पर हल्की-सी नज़र डालकर या अपने कम्प्यूटर के टास्कबार के कोने पर हल्की-सी नज़र घुमाकर समय बता सकते हैं। यह ना जानने के लिए कि कितना बज रहा है, आपको सचेत रूप से कोशिश करनी होती है।

एक आम व्यक्ति इन घड़ियों से दिन में दर्जनों बार मदद लेता है, क्योंकि हम लगभग जो भी करते हैं, वह सब हमें समय पर करना ज़रूरी होता है। अलार्म घड़ी हमें सुबह 7 बजे जगाती है, हम अपनी ठण्डी बेगल ब्रेड को ठीक पन्द्रह सेकेंड तक माइक्रोवेव पर गर्म करते हैं, अपने दाँत तीन मिनट तक साफ़ करते हैं, जब तक कि इलेक्ट्रिक टूथब्रश बीप नहीं करने लगता, काम पर जाने के लिए 7:40 की ट्रेन पकड़ते हैं, जिम में ट्रेडमिल पर तब तक भागते रहते हैं, जब तक कि उसका बीपर ऐलान नहीं कर देता कि आधा घण्टा हो चुका है, अपना पसन्दीदा कार्यक्रम देखने के लिए शाम 7 बजे टीवी के सामने बैठते हैं, पूर्वनिर्धारित समय पर उन विज्ञापनों से बाधित होते हैं, जिनकी क़ीमत $1,000 प्रति सेकेंड होती है, और अन्त में अपनी सारी बेचैनियों को उस थेरेपिस्ट के सामने खोल कर रख देते हैं, जिसने हमारी बकवास को अब थेरेपी के लिए मान्य पचास मिनटों की सीमा तक निर्धारित कर रखा है।

औद्योगिक क्रान्ति ने मानव समाज में दर्जनों बड़े परिवर्तन पैदा किए। औद्योगिक समय का अपनाया जाना उनमें से एक है। दूसरे उल्लेखनीय उदाहरणों में शहरीकरण, कृषक वर्ग का लोप, औद्योगिक सर्वहारा का उदय, सामान्य आदमी का सशक्तिकरण, लोकतन्त्रीकरण, युवा संस्कृति और पितृसत्ता का विघटन शामिल हैं।

लेकिन ये सारे परिवर्तन मानव-जाति के जीवन की अब तक की जिस एक सबसे गम्भीर क्रान्ति के सामने बौने पड़ गए, वह है परिवार और स्थानीय समुदाय का ध्वंस और राज्य और बाज़ार द्वारा उनका स्थान ले लेना। जिस हद तक हम कह सकते हैं कि प्राचीनतम युगों में यानी दस लाख साल से भी ज़्यादा समय पहले मनुष्य छोटे और अन्तरंग समुदायों में रहते थे, जिनके ज़्यादातर सदस्य एक ही परिवार के हुआ करते थे। संज्ञानात्मक क्रान्ति और कृषि क्रान्ति से इस स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया। इन क्रान्तियों ने परिवारों और समुदायों को आपस में जोड़कर क़बीलों, नगरों, राजतन्त्रों और साम्राज्यों की रचना की, लेकिन परिवार और समुदाय मानव-समाज की निर्मिति के बुनियादी घटक बने रहे। दूसरी ओर, औद्योगिक क्रान्ति ने दो सदियों से थोड़े-से ही ज़्यादा वक़्त में इन बुनियादी घटकों को तोड़कर अणुओं में बदल दिया। परिवारों और समुदायों की ज़्यादातर पारम्परिक भूमिकाएँ राज्यों और बाज़ारों को सौंप दी गईं।

परिवार और समुदाय का ढहना

औद्योगिक क्रान्ति से पहले ज़्यादातर मनुष्यों का जीवन तीन प्राचीन चौखटों के भीतर गतिशील हुआ करता था : एकल परिवार पति-पत्नी और उनकी सन्तान, कुटुम्ब, और

स्थानीय अन्तरंग समुदाय (इंटीमेट कम्युनिटी[*])। ज़्यादातर लोग पारिवारिक व्यवसाय - उदाहरण के लिए पारिवारिक खेत या पारिवारिक कार्यशाला - में काम करते थे, या फिर वे अपने पड़ोसियों के पारिवारिक व्यवसाय में काम करते थे। परिवार तब कल्याणकारी व्यवस्था, स्वास्थ्य व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था, निर्माण उद्योग, ट्रेड यूनियन, पेंशन फ़ंड, इंश्योरेंस कम्पनी, रेडियो, टेलिविज़न, अख़बार, बैंक यहाँ तक कि पुलिस की भूमिका भी निभाता था।

जब कोई व्यक्ति बीमार पड़ता था, तो परिवार उसकी देखरेख करता था। जब कोई स्त्री बूढ़ी हो जाती थी, तो परिवार उसे सहारा देता था और उसके बच्चे उसके पेंशन फ़ंड की भूमिका निभाते थे। जब कोई व्यक्ति मर जाता था, तो परिवार उसके अनाथ बच्चों की देखभाल करता था। अगर कोई व्यक्ति झोंपड़ी बनाना चाहता था, तो परिवार उसमें हाथ बँटाता था। अगर कोई व्यक्ति कोई रोज़गार शुरू करना चाहता था, तो परिवार उसके लिए ज़रूरी पैसों का इन्तज़ाम करता था। अगर कोई व्यक्ति शादी करना चाहता था, तो परिवार उसके लिए सम्भावित जीवन-साथी का चुनाव करता था, या कम से ऐसे जीवन-साथी को परखता था। अगर पड़ोसी के साथ झगड़ा हो जाता, तो परिवार उसमें हस्तक्षेप करता था, लेकिन अगर कोई व्यक्ति इतना गम्भीर रूप से बीमार हो जाता कि उसे सँभाल पाना परिवार के बूते के बाहर हो जाता, या कोई क़ारोबार बहुत ज़्यादा पैसे की माँग करने लगता, या पड़ोसी के साथ की तकरार मारपीट के स्तर तक पहुँच जाती, तो इन सारी परिस्थितियों से उबारने के लिए स्थानीय समुदाय आगे आ जाता था।

समुदाय स्थानीय परम्पराओं और उस आपसी अनुग्रह की नीति के आधार पर सहायता उपलब्ध कराते थे, जो मुक्त बाज़ार के माँग और पूर्ति के नियम से बहुत अलग थी। एक पुराने ढंग के मध्ययुगीन समुदाय में जब मेरा पड़ोसी ज़रूरतमन्द होता था, तो मैं उसकी झोंपड़ी बनाने और उसकी भेड़ों की देखभाल करने में उसकी मदद करता था, जिसके लिए मैं उससे बदले में किसी तरह के भुगतान की अपेक्षा नहीं करता था। और जब मैं ज़रूरतमन्द होता था, तो मेरा वह पड़ोसी मेरे उस अहसान का बदला चुकाता था। इसी के साथ-साथ, स्थानीय राजा हम सारे के सारे ग्रामीणों को एक पैसे का भुगतान किए बग़ैर अपना क़िला बनाने के काम में जोत सकता था। बदले में, हम उम्मीद करते थे कि वह डकैतों और बर्बरों से हमारी रक्षा करेगा। ग्रामीण जीवन में लेन-देन बहुत सारे होते थे, लेकिन भुगतान बहुत कम होते थे। बेशक, कुछ बाज़ार थे, लेकिन उनकी भूमिकाएँ सीमित थीं। आप दुर्लभ क़िस्म के मसाले, कपड़े और औज़ार ख़रीद सकते थे और पैसे का भुगतान कर वकीलों और चिकित्सकों की सेवाएँ प्राप्त कर सकते थे, लेकिन सामान्य तौर पर इस्तेमाल में आने वाली वस्तुओं और सेवाओं का दस प्रतिशत से भी कम हिस्सा बाज़ार में आता था। ज़्यादातर इंसानी ज़रूरतों को परिवार और समुदाय पूरा करते थे।

राजतन्त्र और साम्राज्य भी थे, जो युद्ध लड़ने, सड़कों और महलों का निर्माण करने जैसे काम करते थे। इन उद्देश्यों के लिए राजा कर लागू करते थे और कभी-कभार सैनिकों और मज़दूरों की भर्ती किया करते थे। तब भी, कुछ अपवादों को छोड़कर वे परिवारों और समुदायों के रोज़मर्रा मामलों से दूर रहते थे। यहाँ तक कि अगर वे दख़लन्दाज़ी करना भी चाहते थे, तो ज़्यादातर राजाओं को ऐसा करने में बड़ी कठिनाई होती थी। पारम्परिक कृषि अर्थव्यवस्थाओं के पास राजकीय कर्मचारियों, पुलिसकर्मियों,

सामाजिक कार्यकर्ताओं, अध्यापकों और चिकित्सकों का उदरपोषण करने के लिए बहुत थोड़े-से अतिरिक्त साधन होते थे। नतीज़तन, ज़्यादातर शासकों ने जनकल्याण की व्यवस्थाएँ, स्वास्थ्य व्यवस्थाएँ या शिक्षा व्यवस्थाएँ विकसित नहीं की थीं। इस तरह के कामों को उन्होंने परिवारों और समुदायों के ज़िम्मे छोड़ रखा था। यहाँ तक कि कभी-कभार जब शासक कृषक समाज के रोज़मर्रा जीवन में बहुत ज़्यादा दख़लन्दाज़ी करना चाहते थे (जैसा कि चीन के चिन साम्राज्य में हुआ था), तो यह काम वे परिवार के मुखियाओं और समुदाय के बुज़ुर्गों को सरकारी एजेंटों में बदल कर करते थे।

अक्सर ही परिवहन और संचार सम्बन्धी कठिनाइयाँ दूरदराज़ समुदायों के मामलों के दख़लन्दाज़ी को इतना मुश्किल बना देती थीं कि बहुत-से राजतन्त्रों ने अत्यन्त बुनियादी राजकीय विशेषाधिकार - जैसे कर वसूलने या हिंसा पर नियन्त्रण करने के अधिकार - तक समुदायों को सौंप रखे थे। उदाहरण के लिए, ऑटोमन साम्राज्य ने विशाल पुलिस बल को पालने के बजाय रंजिशों को अपना निपटारा ख़ुद करने की छूट दे रखी थी। अगर मेरे चचेरे भाई ने किसी व्यक्ति की हत्या कर दी होती, तो मारे गए व्यक्ति का भाई बदले की मान्य भावना के साथ मेरी हत्या कर सकता था। इस्ताम्बुल में बैठा सुल्तान या प्रान्त का पाशा तक इस तरह की तकरारों में तब तक दख़लन्दाज़ी नहीं करता था, जब तक कि हिंसा मान्य सीमाओं के भीतर बनी रहती थी।

चीन के मिंग साम्राज्य (1368-1644) में आबादी बाओजिया पद्धति के मुताबिक़ संगठित थी। दस परिवारों के समूह से एक जिया बनता था, और दस जिया मिलकर एक बाओ की रचना करते थे। जब किसी बाओ का कोई सदस्य कोई अपराध करता था, तो उस बाओ के दूसरे सदस्यों को इसकी सज़ा दी जा सकती थी, ख़ास तौर से उस बाओ के बुज़ुर्गों को। कर भी बाओ से वसूल किए जाते थे, और ये राजकीय अमले के बजाय बाओ के बुज़ुर्गों की ज़िम्मेदारी होती थी कि वे प्रत्येक परिवार की स्थिति का आकलन कर उसके द्वारा दिए जाने योग्य कर की राशि का निर्धारण करते। साम्राज्य की दृष्टि से इस प्रणाली के बहुत बड़े फ़ायदे थे। राजस्व का आकलन करने और कर वसूल करने वाले हज़ारों कर्मचारियों की व्यवस्था सँभालने के बजाय, जो हर परिवार की आय और ख़र्चों पर निगरानी रखते, यह काम समुदाय के बुज़ुर्गों पर छोड़ दिया गया था। ये बुज़ुर्ग जानते थे कि प्रत्येक ग्रामीण की क्या हैसियत थी और वे साम्राज्य की फ़ौज की मदद लिए बिना आम तौर से कर वसूल कर सकते थे।

बहुत-से राजतन्त्र और साम्राज्य वास्तव में एक बड़े संरक्षण रैकेट जैसे थे। राजा गॉडफ़ादर था, जो संरक्षण धन वसूल करता था और बदले में यह सुनिश्चित करता था कि उसके संरक्षण में रहे लोगों को पड़ोस का कोई अपराधी गिरोह या कोई स्थानीय छुटभैये नुक़सान नहीं पहुँचाएँ।

परिवार और समुदाय के आँचल की छाँव में जीवन आदर्श स्थिति में क़तई नहीं था। परिवार और समुदाय अपने सदस्यों को उतनी ही क्रूरता से उत्पीड़ित कर सकते थे, जितना आधुनिक राज्य और बाज़ार करते हैं, और उनकी आन्तरिक गतिविधियाँ तनावों और हिंसा से भरपूर थीं, लेकिन लोगों के पास कोई विकल्प नहीं था। 1750 के आस-पास जो व्यक्ति अपने परिवार या समुदाय को खो देता था, वह मरे हुए व्यक्ति के ही समान था। उसके पास कोई रोज़गार नहीं होता था, कोई शिक्षा नहीं होती थी और बीमारी

या मुसीबत के समय में कोई सहारा नहीं होता था। अगर वह व्यक्ति मुसीबत में फँस जाता, तो उसे क़र्ज़ देने वाला या उसका बचाव करने वाला कोई नहीं होता था। कोई पुलिस नहीं थी, कोई सामाजिक कार्यकर्ता नहीं थे और कोई अनिवार्य शिक्षा नहीं थी। ज़िन्दा बने रहने के लिए ऐसे व्यक्ति को कोई वैकल्पिक परिवार या समुदाय तलाशना होता था। जो लड़के-लड़कियाँ घर से भाग जाते थे, वे बहुत से बहुत किसी परिवार में चाकर हो जाने की ही उम्मीद कर सकते थे। और बदतर स्थिति में या तो सेना थी, जिसमें वे भर्ती हो सकते थे या वेश्यालय।

पिछली दो सदियों के भीतर इस स्थिति में नाटकीय परिवर्तन आया है। औद्योगिक क्रान्ति ने बाज़ार को अपरिमित नई शक्तियाँ प्रदान की हैं, राज्य को संचार और परिवहन के नए साधन उपलब्ध कराए हैं, और क्लर्कों, अध्यापकों, पुलिसकर्मियों और सामाजिक कार्यकर्ताओं की एक पूरी फ़ौज खड़ी की है, जिससे सरकार काम ले सकती है। सबसे पहले बाज़ार और राज्य ने अपने उस रास्ते को खोला, जिसे उन परिवारों और समुदायों ने रोक रखा था, जिनके मन में किसी तरह की बाहरी दख़लन्दाज़ी के प्रति ज़रा भी लगाव नहीं था। अभिभावक और समुदाय के बुज़ुर्ग बिलकुल नहीं चाहते थे कि नई पीढ़ी को राष्ट्रीयकृत शिक्षा व्यवस्था द्वारा शिक्षित किया जाता, सेना में भर्ती किया जाता या आवारा शहरी सर्वहारा में बदल दिया जाता।

समय के साथ-साथ राज्यों और बाज़ारों ने परिवार और समुदाय के पारम्परिक रिश्तों को कमज़ोर करने में अपनी बढ़ती हुई ताक़त का इस्तेमाल किया। उसने पारिवारिक प्रतिशोधों पर रोक लगाने के लिए पुलिस बल को भेजना शुरू कर दिया और पारिवारिक रंजिशों के निपटारे का काम अदालतों को सौंप दिया। बाज़ार ने लम्बे अर्से से चली आ रही स्थानीय परम्पराओं को समाप्त करने और इन्हें निरन्तर परिवर्तनशील वाणिज्यिक फ़ैशनों से विस्थापित करने अपने फेरीवालों को भेज दिया। तब भी इतना काफ़ी नहीं था। परिवार और समुदाय की ताक़त को सचमुच ख़त्म करने के लिए उनको एक घर के भेदी की ज़रूरत थी।

राज्य और बाज़ार ने लोगों से एक ऐसी पेशकश के साथ सम्पर्क किया, जिससे वे इनकार नहीं कर सकते थे। उन्होंने कहा, “आप व्यक्ति (इंडिविजुअल) बन जाइए। अपने माँ-बाप की इजाज़त लिए बग़ैर जिससे मर्ज़ी हो उससे शादी करिए। जो रोज़गार आपको ठीक लगता हो, वह करिए, और इस मामले में बुज़ुर्गों की त्यौरियों की परवाह मत कीजिए। जहाँ जी चाहे वहाँ रहिए, भरे ही इस वजह से आप हर हफ़्ते फ़ैमिली डिनर में शामिल ना हो पाएँ। अब आप अपने परिवार या समुदाय पर निर्भर नहीं हैं। उनकी जगह हम, यानी राज्य और बाज़ार, आपका ख़याल रखेंगे। हम आपको भोजन, आवास, शिक्षा, चिकित्सा, सामाजिक सुरक्षा और रोज़गार मुहैया करएँगे। हम आपको पेंशन, बीमा और संरक्षण प्रदान करेंगे”।

रोमांटिक साहित्य अक्सर व्यक्ति को एक ऐसे इंसान के रूप में पेश करता है, जो राज्य और बाज़ार के ख़िलाफ़ संघर्ष में उलझा है। इससे ज़्यादा वास्तविकता से दूर कोई दूसरी चीज़ नहीं हो सकती। राज्य और बाज़ार व्यक्ति के पिता और माँ हैं, और व्यक्ति इन्हीं की बदौलत जीवित बना रह सकता है। बाज़ार हमें काम, बीमा और पेंशन सुलभ

कराता है। अगर हम किसी व्यवसाय का अध्ययन करना चाहते हैं, तो वह शिक्षा उपलब्ध कराने के सरकार के स्कूल मौजूद हैं। अगर हम कोई कारोबार शुरू करना चाहते हैं, तो बैंक हमें पैसा उधार देता है। अगर हम मकान बनाना चाहते हैं, तो कोई कंस्ट्रक्शन कम्पनी वह मकान बना देती है और बैंक हमें उसके लिए ऋण दे देता है, जो कुछ मामलों में राज्य द्वारा सब्सिडाइज़्ड या इंश्योर्ड होता है। अगर अचानक हिंसा भड़क उठती है, तो पुलिस हमारी रक्षा करती है। अगर हम कुछ दिनों के लिए बीमार पड़ जाते हैं, तो हमारा हेल्थ इंश्योरेंस हमारी देखभाल करता है। अगर हम महीनों के लिए अशक्त हो जाते हैं, तो सामाजिक सुरक्षा हमारी मदद के लिए आ जाती है। अगर हमें चौबीसों घण्टे की मदद की ज़रूरत होती है, तो हम बाज़ार जाकर कोई नर्स रख सकते हैं - जो आम तौर से दुनिया के किसी दूसरे कोने से आई हुई अजनबी होती है, जो जिस समर्पण-भावना के साथ हमारी देखभाल करती है, जिसकी उम्मीद हम अपने बच्चों तक से नहीं कर सकते। अगर हमारे पास साधन हों, तो हम किसी सीनियर सिटीज़न होम में अपने सुनहरे वर्ष बिता सकते हैं। कर अधिकारी हमें व्यक्तियों की तरह बरतते हैं, और हमसे पड़ोसियों का कर चुकाने की उम्मीद नहीं करते। अदालतें भी हमें व्यक्तियों के रूप में देखती हैं, और हमारे चचेरे भाइयों द्वारा किए गए अपराधों के लिए हमें कभी सज़ा नहीं देतीं।

सिर्फ़ बालिग मर्दों को ही नहीं, बल्कि औरतों और बच्चों को भी व्यक्तियों के रूप में मान्यता प्राप्त है। ज़्यादातर इतिहास के दौरान औरतों को अक्सर परिवार या समुदाय की सम्पत्ति के रूप में देखा जाता था। दूसरी ओर, आधुनिक राज्य औरतों को अपने परिवार और समुदाय से स्वतन्त्र आर्थिक और क़ानूनी अधिकारों का उपभोग करते व्यक्तियों के रूप में देखते हैं। वे अपना ख़ुद का बैंक खाता खोल सकती हैं, इस बात का फ़ैसला कर सकती हैं कि उन्हें किससे शादी करनी है, यहाँ तक कि तलाक़ लेने या अकेले जीवनयापन करने का चयन कर सकती हैं।

लेकिन व्यक्ति की इस मुक्ति के लिए एक क़ीमत चुकानी पड़ी है। हममें से बहुत-से लोग सशक्त परिवारों और समुदायों के लोप पर विलाप करते हैं तथा हमारे जीवन पर अवैयक्तिक राज्य और बाज़ार के नियन्त्रण की वजह से अलगाव और जोख़िम महसूस करते हैं। अपने में अलग-थलग व्यक्तियों से निर्मित राज्य और बाज़ार अपने सदस्यों के जीवन में सशक्त परिवारों और समुदायों से निर्मित राज्यों और बाज़ारों के मुक़ाबले ज़्यादा आसानी से दख़लन्दाज़ी कर सकते हैं। जब किसी गगनचुम्बी अपार्टमेंट में रहने वाले पड़ोसी आपस में इस बात तक पर एकमत नहीं हो सकते कि वे अपने चौकीदार को कितना भुगतान करें, तब हम उनसे राज्य को प्रतिरोध देने की उम्मीद कैसे कर सकते हैं?

राज्यों, बाज़ारों और व्यक्तियों के बीच समझौता एक मुश्किल चीज़ है। राज्य और बाज़ार अपने पारस्परिक अधिकारों और ज़िम्मेदारियों को लेकर एकमत नहीं होते और व्यक्ति शिकायत करते हैं कि दोनों बहुत ज़्यादा की माँग करते हैं और बहुत कम उपलब्ध कराते हैं। बहुत से प्रकरणों में व्यक्तियों का बाज़ार द्वारा शोषण किया जाता है और राज्य उनका बचाव करने के बजाय उन पर अत्याचार करने के लिए अपनी फ़ौजों, पुलिस बलों और नौकरशाही का इस्तेमाल करती है। तब भी यह आश्चर्य की बात है कि यह समझौता हर सूरत में काम करता है - भरे ही ग़लत ढंग से क्योंकि इसने असंख्य पीढ़ियों के मानवीय सामाजिक समझौतों को तोड़ा है। विकास-प्रक्रिया के लाखों वर्षों ने हमें इस

तरह गढ़ा है कि हम समुदाय के सदस्यों के रूप में जीने और सोचने के अभ्यस्त हैं। महज़ दो सदियों के भीतर हम एक दूसरे से अलग व्यक्ति बन गए। संस्कृति की अद्भुत शक्ति का इससे बेहतर प्रमाण और दूसरा नहीं है।

एकल परिवार आधुनिक परिदृश्य से पूरी तरह ग़ायब नहीं हुआ था। जब राज्यों और बाज़ारों ने परिवार से उसकी ज़्यादातर आर्थिक और राजनैतिक भूमिकाएँ अपने हाथ में ले लीं, तब भी उन्होंने उसके पास कुछ महत्त्वपूर्ण भावनात्मक कार्यकलाप छोड़ दिए थे। आधुनिक परिवार से अभी भी ऐसी अन्तरंग ज़रूरतों को पूरा करने की उम्मीद की जाती है, जिन्हें पूरा करने में राज्य और बाज़ार (अभी तक) सक्षम नहीं हैं। तब भी यहाँ परिवार उत्तरोत्तर बढ़ती हुई दख़लन्दाज़ियों के अधीन हैं। बाज़ार बहुत बड़ी हद तक लोगों के रोमांटिक और यौनपरक जीवन को बरतने के ढंग को आकार देता है। जहाँ पारम्परिक परिवार वैवाहिक जोड़ियाँ मिलाने की मुख्य भूमिका निभाता था, वहीं आज यह बाज़ार है, जो हमारी रोमांटिक और यौनपरक प्राथमिकताओं को आकार देता है, और फिर उन्हें उपलब्ध कराने में हाथ बँटाता है - एक मोटी फ़ीस के बदले। पहले दुल्हन और दूल्हा परिवार के बैठक कक्ष में मिला करते थे और पैसा एक पिता से दूसरे पिता के हाथ में जाता था। आज यह मेल-मिलाप बार और कैफ़े में होता है और पैसा प्रेमी युगल के हाथें से वेटरों के हाथों में जाता है। इससे भी ज़्यादा पैसा उन फ़ैशन डिज़ाइनरों, जिम मैनेजरों, डाइटीशियनों, कॉस्मेटीशियनों और प्लास्टिक सर्जनों के बैंक खातों में जाता है, जो हमारी मदद करते हैं कि कैफ़े में पहुँचते हुए हम ज़्यादा से ज़्यादा सुन्दरता के बाज़ार के मानक के अनुरूप दिखें।

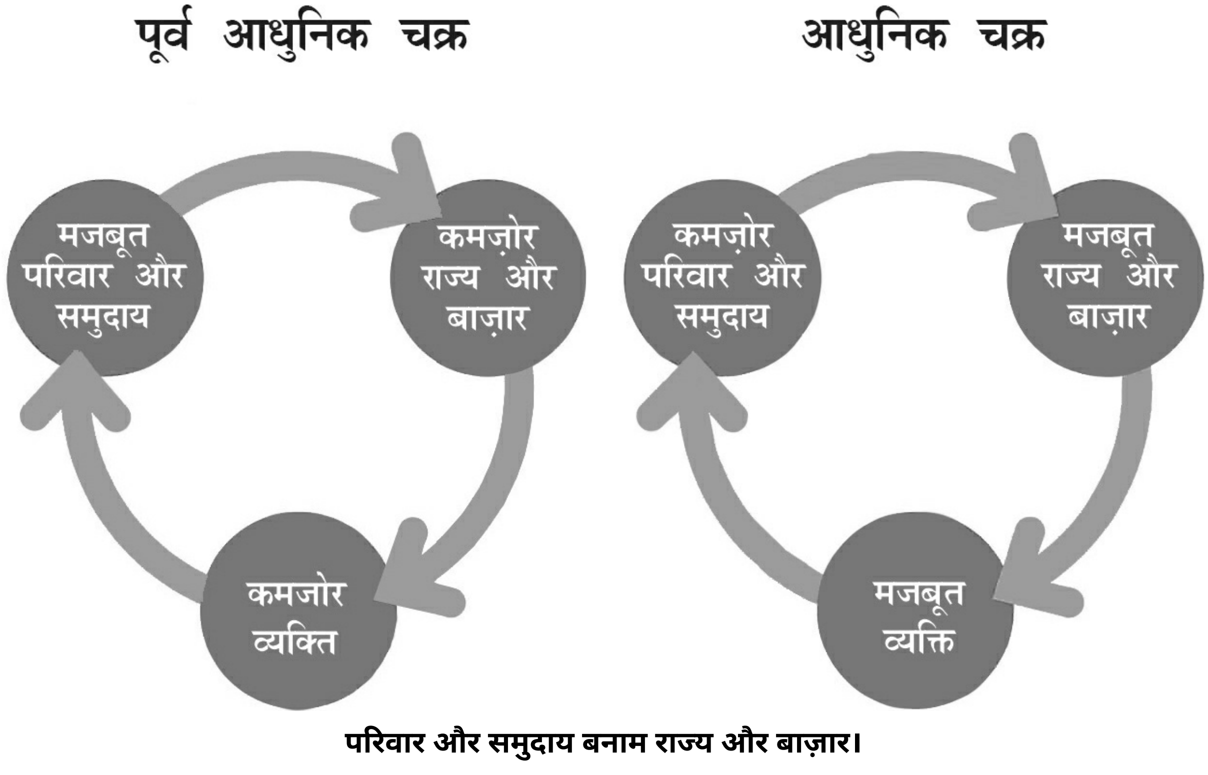
पूर्व आधुनिक चक्र
मजबूत परिवार और समुदाय
कमज़ोर राज्य और बाज़ार
कमजोर व्यक्ति
आधुनिक चक्र
कमज़ोर परिवार और समुदाय
मजबूत राज्य और बाज़ार
मजबूत व्यक्ति

परिवार और समुदाय बनाम राज्य और बाज़ार।

राज्य भी पारिवारिक रिश्तों पर पैनी निगाह रखता है, ख़ास तौर से अभिभावकों और

बच्चों के रिश्तों पर। अभिभावक बाध्य होते हैं कि वे अपने बच्चों को राज्य द्वारा शिक्षित किए जाने के लिए भेजें। ख़ास तौर से जो अभिभावक बच्चों के प्रति दुर्व्यवहार या हिंसा बरतते हैं, उन पर राज्य नियन्त्रण रख सकता है। ज़रूरत पड़ने पर राज्य ऐसे अभिभावकों को जेल भी भेज सकता है या उनके बच्चों को पोषक परिवारों में स्थानान्तरित कर सकता है। अभी बहुत दिन नहीं हुए हैं, जब अगर यह सलाह दी जाती कि अभिभावकों को अपने बच्चों को पीटने या प्रताड़ित करने से रोका जाना चाहिए, तो इस सलाह को बेहूदा और अव्यावहारिक मानकर ख़ारिज़ कर दिया गया होता। ज़्यादातर समाजों में अभिभावकों के प्रभुत्व को अलौकिक समझा जा जाता था। अपने अभिभावकों का आदर करने और उनकी आज्ञा मानने को पवित्रतम मूल्यों में शुमार किया जाता था, और अभिभावक लगभग जो चाहे कर सकते थे, जिसमें नवजात शिशुओं की हत्या, बच्चों को ग़ुलामी करने के लिए बेच देना और बेटियों का उनसे दुगनी उम्र तक के पुरुषों से विवाह कर देना शामिल था। आज यह अभिभावकीय सत्ता तेजी से पीछे हट रह रही है। नौजवानों को अपने बुज़ुर्गों की आज्ञा ना मानने की छूट मिलती जा रही है, वहीं अभिभावकों को उनके बच्चों के जीवन में पैदा होने वाली किसी भी बुराई के लिए ज़िम्मेदार ठहराया जा रहा है। फ्रायडीय अदालत से मम्मी-डैडी के बच निकलने की उतनी ही सम्भावना है जितनी स्तालिन के उन दिखावटी मुकदमों में अपना बचाव करने वालों की होती थी, जहाँ व्यक्ति को पहले से ही अपराधी मान लिया गया होता था।

कल्पित समुदाय

माता-पिता और सन्तान तक सीमित परिवार की ही तरह समुदाय भी किसी तरह के भावनात्मक स्थानापन्न के बिना पूरी तरह से लुप्त नहीं हो सके। बाज़ार और राज्य आज उनमें से ज़्यादतर भौतिक ज़रूरतों को पूरा करते हैं, जिनकी पूर्ति किसी समय समुदाय किया करते थे, लेकिन उन्हें क़बीलाई बन्धनों की पूर्ति करना भी अनिवार्य है।

बाज़ार और राज्य यह काम उन ‘कल्पित समुदायों को प्रोत्साहित कर करते हैं, जिनमें लाखों की तादाद में अजनबी शामिल होते हैं, और जिन्हें राष्ट्रीय और वाणिज्यिक ज़रूरतों के हिसाब से गढ़ा गया होता है। कल्पित समुदाय ऐसे लोगों का समुदाय होता है, जो वाक़ई एक दूसरे को नहीं जानते, लेकिन जो मानते हैं कि वे जानते हैं। इस तरह के समुदाय कोई अनूठा आविष्कार नहीं हैं। राजतन्त्र, साम्राज्य और चर्च सहस्राब्दियों से ऐसे समुदायों की भूमिका निभाते आए हैं। प्राचीन चीन में लाखों लोग ख़ुद को एक परिवार के सदस्य के रूप में, और सम्राट को उस परिवार के पिता के रूप में देखा करते थे। मध्य युग में, लाखों मज़हबी मुसलमान मानते थे कि वे सब इस्लाम के विशाल समुदाय के भीतर आपस में भाई-बहन हैं। तब भी समूचे इतिहास के दौरान इस तरह के समुदायों की हैसियत उन अन्तरंग समुदायों के मुक़ाबले कम महत्त्वपूर्ण होती थी, जिनमें कुछ दर्जन लोग शामिल होते थे, और जो एक दूसरे को भली-भाँति जानते थे। ये अन्तरंग समुदाय अपने सदस्यों की भावनात्मक ज़रूरतों को पूरा करते थे और हर किसी के जीवित बने रहने और उनके कल्याण के लिए अनिवार्य थे। पिछली दो सदियों में ये आत्मीय समुदाय मुरझा कर लुप्त हो चुके हैं, और इससे पैदा हुई रिक्ति को भरने का काम कल्पित समुदायों

के ज़िम्मे छोड़ गए हैं।

इस तरह के कल्पित समुदायों के उदय के दो महत्त्वपूर्ण उदाहरण राष्ट्र और उपभोक्ता वर्ग हैं। राष्ट्र राज्य का कल्पित समुदाय है। उपभोक्ता वर्ग बाज़ार का कल्पित समुदाय है। दोनों ही कल्पित समुदाय हैं, क्योंकि किसी बाज़ार के सारे ग्राहकों को या किसी राष्ट्र के सारे सदस्यों के लिए उस तरह एक दूसरे को जानना असम्भव है, जिस तरह अतीत में किसी गाँव के सारे लोग एक दूसरे को जानते थे। कोई भी जर्मन व्यक्ति जर्मन राष्ट्र के अन्य 8 करोड़ सदस्यों से या यूरोपीय साझा बाज़ार (जो पहले यूरोपीय समुदाय के रूप में विकसित हुआ और अन्ततः यूरोपियन यूनियन बन गया) के अन्य 50 करोड़ ग्राहकों से आत्मीय रूप से परिचित नहीं हो सकता।

उपभोक्तावाद और राष्ट्रवाद हमसे यह कल्पना करवाने के लिए अतिरिक्त श्रम करते हैं कि लाखों अजनबी उसी समुदाय का हिस्सा हैं, जिसका हिस्सा हम हैं, हमारा एक साझा अतीत है, साझा हित हैं और एक साझा भविष्य है। यह कोई झूठ नहीं है। यह एक कल्पना है। पैसे की ही भाँति मर्यादित दायित्व वाली कम्पनियाँ और मानव अधिकार, राष्ट्र और उपभोक्ता वर्ग ऐसी वास्तविकताएँ हैं, जिनमें अनन्त दिमाग़ साझा करते हैं। इनका अस्तित्व सिर्फ़ हमारी सामूहिक कल्पना में है, तब भी इनकी शक्ति अपरिमित है। जब तक लाखों जर्मन लोग एक जर्मन राष्ट्र के अस्तित्व में विश्वास करते रहेंगे, जर्मनी की राष्ट्रीय प्रतीकों को देखकर उत्साहित होते रहेंगे, जर्मनी की राष्ट्रीय लोक-गाथाओं को दोहराते रहेंगे, जर्मन राष्ट्र की ख़ातिर धन, समय और अंगों की कुर्बानी देने को तैयार रहेंगे, तब तक जर्मनी दुनिया की सबसे ताक़तवर शक्तियों में से एक शक्ति बना रहेगा।

राष्ट्र अपने कल्पित स्वरूप को छिपाने का भरसक प्रयत्न करता है। बहुत-से राष्ट्र यह कहते हैं कि वे कुदरती और शाश्वत सत्ताएँ हैं, जिनकी रचना किसी आदिम युग में मातृभूमि की मिट्टी में लोगों का रक्त मिलने से हुई थी, लेकिन इस तरह के दावे आम तौर से अतिरंजित होते हैं। सुदूर अतीत में राष्ट्रों का अस्तित्व था ज़रूर लेकिन उनका महत्त्व आज की तुलना में बहुत कम हुआ करता था क्योंकि राज्य का महत्त्व बहुत कम था। मध्ययुगीन न्यूरेम्बर्ग की कोई निवासी जर्मन राष्ट्र के प्रति कुछ वफ़ादारी महसूस कर सकती थी, लेकिन उससे ज़्यादा वफ़ादारी वह अपने परिवार और स्थानीय समुदाय के प्रति महसूस करती थी, जो उसकी ज़्यादातर ज़रूरतों को पूरा करते थे। इसके अलावा, प्राचीन राष्ट्रों का जो भी कोई महत्त्व रहा हो, उनमें से बहुत थोड़े-से राष्ट्र ही बचे रह सके। आज के ज़्यादातर राष्ट्र औद्योगिक क्रान्ति के बाद ही विकसित हुए हैं।

मध्य पूर्व इसके ढेरों उदाहरण उपलब्ध कराता है। सीरियाई, लेबनानी, जोर्डनियाई और इराक़ी राष्ट्र उन फ़्रांसीसी और अँग्रेज़ राजनयिकों द्वारा खींची गई बेतरतीब सरहदों की पैदाइश हैं, जिन्होंने स्थानीय इतिहास, भूगोल और अर्थव्यवस्था को नज़रअन्दाज़ किया था। इन राजनयिकों ने 1918 में यह तय किया कि कुर्दिस्तान, बग़दाद और बसरा के लोग अबके बाद से 'इराक़ी' कहलाएँगे। ये मुख्यतः फ़्रांसीसी थे, जिन्होंने यह तय किया था कि कौन लोग सीरियाई कहलाएँगे और कौन लेबनानी कहलाएँगे। सद्दाम हुसैन और हाफ़िज़ अल-असद ने अपनी आँग्ल-फ़्रांसीसी-गढ़न वाली राष्ट्रीय चेतनाओं को प्रोत्साहित करने और उसे शक्तिशाली बनाने की पुरज़ोर कोशिश की, लेकिन कथित रूप से शाश्वत इराक़ी और सीरियाई राष्ट्रों के बारे में उनके आडम्बरपूर्ण भाषण खोखले

साबित हुए।

कहना ना होगा कि राष्ट्रों को हवा में खड़ा नहीं किया जा सकता था। जिन लोगों ने इराक़ और सीरिया को निर्मित करने का कठोर परिश्रम किया था, उन्होंने उस वास्तविक ऐतिहासिक, भौगोलिक और सांस्कृतिक कच्चे माल का इस्तेमाल किया था, जिसमें कुछ हज़ारों साल पुराना था। सद्दाम हुसैन ने अब्बासिड ख़िलाफ़त और बेबिलोनियाई साम्राज्य की विरासत को सहयोजित किया था, यहाँ तक कि वह अपनी एक अत्यन्त दक्ष बख़्तरबन्द टुकड़ी को हम्मूराबी डिविज़न कहा करता था, लेकिन इस चीज़ ने इराक़ी राष्ट्र को एक प्राचीन सत्ता में नहीं बदल दिया। अगर मैं उस आटे, चीनी और तेल को मिलाकर एक केक पकाता हूँ, जो पिछले दो साल से मेरे रसोई-भण्डार में रखे हुए थे, तो इसका मतलब यह नहीं है कि मेरा केक दो साल पुराना है।

हाल के दशकों में राष्ट्रीय समुदाय उत्तरोत्तर उन उपभोक्ता वर्गों द्वारा निष्प्रभावी बनाए जाते रहे हैं, जो एक दूसरे को अन्तरंग रूप से नहीं जानते, लेकिन जो उपभोग की समान आदतें और दिलचस्पियाँ साझा करते हैं और इसलिए जो ख़ुद को उसी उपभोक्ता वर्ग का हिस्सा महसूस करते हैं - और इसी रूप में ख़ुद को परिभाषित करते हैं। ये बहुत अजीब-सी बात लगती है, लेकिन हम इसके उदाहरणों से घिरे हुए हैं। वे ख़ुद को व्यापक तौर पर ख़रीदारी के माध्यम से परिभाषित करते हैं। वे मैडोना कन्सर्ट के टिकट, सीडियाँ, पोस्टर, कमीज़ें और रिंग टोन ख़रीदते हैं, और इस तरह परिभाषित करते हैं कि वे कौन हैं। मैनचेस्टर यूनाइटेड की श्क्त-मण्डली, शाकाहारवादी और पर्यावरणवादी इसके अन्य उदाहरण हैं। वे भी अन्ततः ख़ुद को उस चीज़ से परिभाषित करते हैं, जिसका वे उपभोग करते हैं। ये उनकी पहचान का आधार हैं। ज़्यादा मुमकिन यही है कि एक जर्मन शाकाहारी किसी जर्मन मांसभक्षी के बजाय एक फ़्रांसीसी शाकाहारी से शादी करना पसन्द करे।

मोबाइल हमेशा के लिए

पिछली दो सदियों में आईं क्रान्तियाँ इतनी तेज़ रफ़्तार और आधारभूत रही हैं कि उन्होंने सामाजिक व्यवस्था के सर्वाधिक बुनियादी चरित्र को ही बदल डाला है। पारम्परिक तौर पर सामाजिक व्यवस्था कठोर और अनम्य थी। 'व्यवस्था' में स्थायित्व और निरन्तरता निहित है। ये तेज़ रफ़्तार सामाजिक क्रान्तियाँ अनूठी थीं और ज़्यादातर सामाजिक रूपान्तरण अनगिनत छोटी-छोटी प्रक्रियाओं के घटित होने का नतीज़ा थे। मनुष्य यह माना करते थे कि सामाजिक संरचना में कोई लोच नहीं होता और वह शाश्वत होती है। परिवार और समुदाय व्यवस्था के भीतर अपनी जगहें बदलने का संघर्ष कर सकते थे, लेकिन यह विचार सर्वथा बेगाना था कि आप व्यवस्था का बुनियादी ढाँचा बदल सकते हैं। लोग यथास्थिति के साथ तालमेल बैठाए रखने की कोशिश करते थे। वे यह घोषणा करते थे कि "ऐसा हमेशा से था, और ऐसा ही हमेशा बना रहेगा"।

पिछली दो सदियों के दौरान परिवर्तन की रफ़्तार इतनी तेज़ हो गई है कि सामाजिक व्यवस्था ने एक गतिशील और लचीली प्रकृति अख़्तियार कर ली है। यह अब स्थायी रूप से परिवर्तनशील अवस्था में है। जब हम आधुनिक क्रान्तियों की बात करते हैं, तो हम

आम तौर से 1789 (फ़्रांसीसी क्रान्ति), 1848 (उदारतावादी क्रान्तियाँ) या 1917 (रूसी क्रान्ति) के बारे में सोचते हैं, लेकिन तथ्य यह है कि आजकल हर वर्ष क्रान्तिकारी होता है। आज, एक तीस साल का व्यक्ति भी ईमानदारी के साथ अविश्वास से भरे हुए किशोरों से कह सकता है कि "जब मैं जवान था, तब दुनिया बिलकुल अलग थी"। उदाहरण के लिए, इंटरनेट, बमुश्किल बीस साल पहले 1990 के दशक की शुरुआत में ही व्यापक इस्तेमाल में आया था। आज हम इसके बग़ैर दुनिया की कल्पना भी नहीं कर सकते।

इसलिए, आधुनिक समाज के लक्षणों को परिभाषित करने का कोई भी प्रयत्न गिरगिट के रंग को परिभाषित करने जैसा है। इसके जिस एकमात्र लक्षण के बारे में हम निश्चित तौर पर कह सकते हैं, वह है अनवरत बदलाव। लोगों को अब इसकी आदत पड़ चुकी है और हममें से ज़्यादातर लोग सामाजिक व्यवस्था को लचीला मानकर चलने लगे हैं, जिसे हम मनचाहे ढंग से गढ़ और सँवार सकते हैं। पूर्वआधुनिक युग के शासकों का मुख्य आश्वासन परम्परागत व्यवस्था की रक्षा करना या किसी खोए हुए स्वर्ण-युग तक वापस लौटने का होता था। पिछली दो सदियों में राजनीति का दस्तूर यह बन गया है कि यह पुरानी दुनिया को नष्ट करने और उसकी जगह उससे बेहतर एक नई दुनिया का निर्माण करने का आश्वासन देती है। नितान्त रूढ़िवादी राजनैतिक दल भी महज़ यथास्थिति को क़ायम रखने का वादा नहीं करते। हर कोई सामाजिक सुधार, शैक्षणिक सुधार, आर्थिक सुधार का आश्वासन देता है - और वे अक्सर इन आश्वासनों को पूरा भी करते हैं।

ठीक जिस तरह भूगर्भशास्त्री उम्मीद करते हैं कि पृथ्वी की सतह की हलचलें भूकम्पों और ज्वालामुखियों के फूट पड़ने का कारण बनेंगी, उसी तरह हम उम्मीद कर सकते हैं कि आमूलचूल सामाजिक हलचलें हिंसा के ख़ूनी विस्फोट में फलित होंगी। उन्नीसवीं और बीसवीं सदियों के इतिहासों का वर्णन अक्सर घातक युद्धों, नरसंहार और क्रान्तियों की शृंखला के रूप में किया जाता है। जिस तरह नए जूते पहने हुए कोई बच्चा पानी भरे एक गड्ढे से दूसरे गड्ढे के बीच उछलता चलता है, उसी तरह यह नज़रिया इतिहास को एक हत्याकाण्ड से दूसरे हत्याकाण्ड तक, पहले विश्वयुद्ध से दूसरे विश्वयुद्ध और दूसरे विश्वयुद्ध से शीतयुद्ध तक, अर्मेनियाई जातिसंहार से यहूदियों के जातिसंहार तक और यहूदियों के जातिसंहार से रवांडियनों के जातिसंहार तक, रॉब्सपियेर से लेनिन और लेनिन से हिटलर तक के बीच की मेंढक कूद के रूप में देखता है।

इसमें वास्तविकता है, लेकिन विपदाओं की यह बेहद जानी-पहचानी फ़ेहरिस्त किसी क़दर गुमराह करने वाली है। हम पानी से भरे गड्ढों पर तो ज़रूरत से ज़्यादा ध्यान देते हैं, लेकिन उनके बीच की सूखी ज़मीन को भूल जाते हैं। आधुनिक युग का परवर्ती दौर सिर्फ़ हिंसा और सन्त्रास के अपूर्व स्तरों का ही नहीं, बल्कि अमन और प्रशान्ति के अपूर्व स्तरों का भी साक्षी रहा है। चार्ल्स डिकंस ने फ़्रांसीसी क्रान्ति के बारे में लिखा था कि "यह सबसे अच्छा समय था, यह सबसे बदतर समय था"। यह बात सिर्फ़ फ़्रांसीसी क्रान्ति के बारे में ही सही नहीं हो सकती, बल्कि उस समूचे युग के बारे में भी सही कही जा सकती है, जिसकी अगुआई फ़्रांसीसी क्रान्ति ने की।

यह बात ख़ास तौर से उन सात दशकों के बारे में सही है, जो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद

गुज़रे हैं। इस कालखण्ड के दौरान मानव-जाति ने पहली बार सम्पूर्ण आत्मविनाश की सम्भावना का सामना किया है और ख़ासी तादाद में वास्तविक लड़ाइयाँ और जातिसंहार देखे हैं, लेकिन ये दशक मानव-इतिहास का सबसे ज़्यादा शान्तिपूर्ण काल भी रहे हैं - और लम्बे-लम्बे अर्से तक। ये आश्चर्य में डालने वाली बात है क्योंकि इन्हीं दशकों ने किसी भी पिछले युग के मुकाबले सबसे ज़्यादा आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तनों को अनुभव किया है। इतिहास की भूगर्भीय परतें उन्मत्त गति से सरक रही हैं, लेकिन ज्वालामुखी ज़्यादातर शान्त हैं। नई लोचदार व्यवस्था किसी तरह के हिंस्र टकराव में ध्वस्त हुए बिना आमलचूल ढाँचागत परिवर्तनों को समाहित करने में ही नहीं, बल्कि उनकी पहल करने तक में सक्षम प्रतीत होती है।

हमारे वक़्त में शान्ति

पिछली ज़्यादातर लोग इस बात की सराहना नहीं करते कि जिस युग में रह रहे हैं, वह कितना शान्तिपूर्ण है। हज़ार साल पहले हममें से कोई जीवित नहीं था, इसलिए हम इस बात को आसानी से भुला देते हैं कि दुनिया कितनी हिंसक हुआ करती थी। जैसे-जैसे युद्ध ज़्यादा विरले होते गए हैं, वैसे-वैसे वे ज़्यादा ध्यान खींचने लगे हैं। बहुत-से लोग आज अफ़गानिस्तान और इराक़ में जारी जंगों के बारे में तो सोचते हैं, लेकिन वे उस शान्ति के बारे में नहीं सोचते, जिसमें ब्राज़ीलियाई और हिन्दुस्तानी रह रहे हैं।

इससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण यह है कि हम समूची आबादियों की पीड़ाओं के बजाय व्यक्तियों की पीड़ाओं को ज़्यादा आसानी से समझ लेते हैं, लेकिन वृहत-ऐतिहासिक प्रक्रियाओं को समझने के लिए हमें व्यक्तिगत क़िस्सों के बजाय जनसमूह के आँकड़ों को जाँचना ज़रूरी है। वर्ष 2000 में युद्धों की वजह से 310,000 व्यक्तियों की मौतें हुईं, और हिंसक अपराधों ने 520,000 और लोगों को मारा। मरने वाले हर व्यक्ति के साथ एक दुनिया नष्ट हुई है, एक परिवार तबाह हुआ है, उसके दोस्तों और रिश्तेदारों के मन पर हमेशा-हमेशा के लिए घाव का एक निशान छूट गया है। तब भी एक वृहत परिप्रेक्ष्य में देखें, तो युद्ध और हिंसा के शिकार हुए ये 830,000 व्यक्ति उन 5 करोड़ 60 लाख लोगों का 1.5 प्रतिशत हैं, जो वर्ष 2000 में मरे थे। उस साल 12.6 लाख लोग कार दुर्घटनाओं में मरे थे (कुल मौतों का 2.25 प्रतिशत) और 815,000 लोगों ने आत्महत्याएँ की थीं (1.45 प्रतिशत)।

2002 के आँकड़े और भी आश्चर्य में डालने वाले हैं। 5 करोड़ 70 लाख मृतकों में से मात्र 172,000 लोग युद्धों में और 569,000 लोग हिंसक अपराधों में मरे थे (इंसानी हिंसा के कुल 741,000 शिकार)। इसके विपरीत 873,000 लोगों ने आत्महत्याएँ कीं। पता चलता है कि 9/11 के हमलों के बाद के साल में आतंकवाद और युद्ध की तमाम चर्चाओं के बावजूद एक औसत व्यक्ति की किसी आतंकवादी, सैनिक या ड्रग डीलर के हाथों मारे जाने की सम्भावना के बजाय ख़ुद के हाथों मारे जाने की सम्भावनाएँ ज़्यादा थीं।

दुनिया के ज़्यादातर हिस्सों में लोग बिना इस ख़ौफ़ के सोने चले जाते हैं कि आधी रात को पड़ोसी क़बीला उनके गाँव को घेरकर हर किसी का क़त्ल कर सकता है। ब्रिटेन

के दौलतमन्द नागरिक रोज़ शेरवुड फ़ॉरेस्ट के रास्ते नॉटिंघम से लन्दन की यात्रा बिना इस ख़ौफ़ के करते हैं कि हरी पोशाकों वाले ख़ुशमिजाज़ लुटेरों का गिरोह घात लगाकर उन पर हमला कर देगा और ग़रीबों में बाँटने के लिए उनका पैसा छीन लेगा (या बहुत मुमकिन है कि उनकी हत्या कर पैसा ख़ुद ही रख ले)। किसी छात्र को अपने अध्यापकों की छड़ियों की मार नहीं झेलनी पड़ती, बच्चों में यह ख़ौफ़ नहीं है कि जब उनके माँ-बाप अपने बिलों का भुगतान करने में असमर्थ हो जाएँगे, तो उन्हें ग़ुलामी करने के लिए बेच देंगे, और औरतें जानती हैं कि क़ानून उनके पतियों को उन्हें पीटने और उन्हें जबरन घर पर बनाए रखने से रोकता है। ये अपेक्षाएँ सारी दुनिया में उत्तरोत्तर पूरी हो रही हैं।

हिंसा में कमी व्यापक तौर पर राज्य के उदय की वजह से आई है। समूचे इतिहास के दौरान, ज़्यादातर हिंसाओं के पीछे परिवारों और समुदायों के बीच की स्थानीय अदावतें हुआ करती थीं। (यहाँ तक कि आज भी, जैसा कि ऊपर दिए गए आँकड़े संकेत करते हैं, स्थानीय अपराध अन्तरराष्ट्रीय युद्धों के मुक़ाबले ज़्यादा घातक हैं)। जैसा कि हमने देखा है कि शुरुआती दौर के किसान अनियन्त्रित हिंसा के शिकार हुआ करते थे। उनकी दुनिया में स्थानीय समुदायों से बड़े कोई राजनैतिक संगठन नहीं थे। जैसे-जैसे राजतन्त्र और साम्राज्य मज़बूत होते गए, उन्होंने समुदायों पर नियन्त्रण किया और हिंसा घटती गई। मध्ययुगीन यूरोप के विकेन्द्रीकृत राजतन्त्रों में प्रत्येक 100,000 की आबादी पर हर साल बीस से चालीस लोगों की हत्याएँ हो जाती थीं। हाल के दशकों में, जब राज्य और बाज़ार सर्वशक्तिमान हो गए हैं और समुदाय लुप्त हो चुके हैं, हिंसा की दर और भी घट गई है। आज वैश्विक औसत प्रति 100,000 की आबादी पर मात्र नौ हत्याओं का है और इनमें से भी ज़्यादातर हत्याएँ कमज़ोर राज्यों, जैसे कि सोमालिया और कोलम्बिया में होती हैं। यूरोप के केन्द्रीकृत राज्यों में औसतन प्रति 100,000 लोगों में एक हत्या होती है।

निश्चय ही ऐसे प्रकरण हैं, जहाँ राज्य अपने ही नागरिकों की हत्या के लिए अपनी ताक़त का इस्तेमाल करते हैं और ये हमारी स्मृति में ख़ौफ़ जगाते हुए दर्ज़ हो जाते हैं। बीसवीं सदी के दौरान अगर हज़ारों लाख नहीं, तो दसियों लाख लोग अपने ही देश के सुरक्षा बलों के हाथों मारे गए हैं। तब भी, व्यापक परिप्रेक्ष्य में, राज्य-संचालित न्यायालयों और पुलिस बलों ने शायद सारी दुनिया में सुरक्षा के स्तर में वृद्धि की है। यहाँ तक कि उत्पीड़क तानाशाहियों में भी पूर्व-आधुनिक समाजों के मुक़ाबले एक औसत आधुनिक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति के हाथों मारे जाने की कम सम्भावना होती है। 1964 में ब्राज़ील में सैन्य तानाशाही स्थापित हुई थी। इसने 1985 तक देश पर हुकूमत की थी। इन बीस सालों के दौरान इस हुकूमत के हाथों हज़ारों ब्राज़ीलियाई मारे गए थे। हज़ारों दूसरे लोगों को जेलों में डाल दिया गया था और यातनाएँ दी गई थीं। इसके बावजूद इन बदतर सालों में भी रियो डि जिनेरो में एक औसत ब्राज़ीलियाई की इंसानी हाथों से मारे जाने की सम्भावना उससे कम थी जितनी वह एक औसत वाओरानी, अरावेते या यानोमामो की थी। वाओरानी, अरावेते और यानोमामो मूल निवासी हैं, जो किसी सेना, पुलिस या जेलों के बिना अमेज़ॉन के जंगल की गहराइयों में रहते हैं। मानविकीय अध्ययनों ने संकेत किया है कि इनके एक चौथाई से लेकर आधे मर्द आगे-पीछे सम्पत्ति, औरतों या प्रतिष्ठा के मुद्दों पर होने वाली तकरारों में मारे जाते हैं।

साम्राज्यवादी रिटायरमेंट

यह मुद्दा शायद बहस का विषय है कि 1945 के बाद से राज्यों के भीतर हिंसा में कमी आई है या नहीं, लेकिन जिस बात से कोई व्यक्ति इनकार नहीं कर सकता, वह यह है कि अन्तरराष्ट्रीय हिंसा में किसी भी समय के मुक़ाबले कमी आई है। सम्भवतः इसका सबसे स्पष्ट उदाहरण यूरोपीय साम्राज्य का ध्वस्त होना है। समूचे इतिहास के दौरान साम्राज्य विद्रोहों को क्रूरता के साथ कुचलते रहे थे और जब किसी साम्राज्य का अन्त समय आता था, तो वह अक्सर रक्तपात में ध्वस्त होते हुए अपनी पूरी ताक़त ख़ुद को बचाने में झोंक देता था। उसके अन्त का आख़िरी क्षण अक्सर अराजकता और उत्तराधिकार की लड़ाइयों की ओर ले जाता था। 1945 के बाद से ज़्यादातर साम्राज्यों ने शान्तिपूर्ण ढंग से समय से पहले रिटायरमेंट लेने का विकल्प चुना। उनके पतन की प्रक्रिया अपेक्षाकृत फुर्तीली, शान्त और अनुशासित हो गई थी।

1945 में ब्रिटेन एक चौथाई भूमण्डल पर राज्य करता था। तीस साल बाद उसका शासन महज़ थोड़े-से छोटे-छोटे द्वीपों तक सीमित रह गया। बीच के दशकों में वह एक के बाद एक उपनिवेशों से पीछे हटता गया और इस प्रक्रिया में उसने बहुत थोड़े-से गोले दागे, कुछ हज़ार सैनिकों को खोया और बहुत ज़्यादा लोगों की हत्याएँ नहीं कीं। महात्मा गाँधी पर उनकी अहिंसा की नीति के लिए आम तौर से सराहना का जो अम्बार लगाया जाता है, उसका कम से कम कुछ श्रेय अँग्रेज़ी साम्राज्य को जाता है। इस साम्राज्य की जगह अनेक स्वतन्त्र राज्यों ने ले ली, जिनमें से ज़्यादातर उसके बाद से मज़बूत सरहदों के भीतर रह रहे थे और ज़्यादातर वे अपने-अपने पड़ोसियों के साथ शान्तिपूर्वक रहते आए थे। यह सही है कि हज़ारों लोग संकटापन्न अँग्रेज़ी साम्राज्य के हाथों मारे गए और कई संवेदनशील स्थलों पर उसकी वापसी नस्लपरक टकरावों का कारण बनी, जिन्होंने लाखों लोगों की जानें ले लीं (ख़ास तौर से हिन्दुस्तान में)। तब भी, दीर्घकालिक ऐतिहासिक औसत से तुलना करें, तो अँग्रेजों की वापसी शान्ति और व्यवस्था का एक आदर्श था। उसके मुक़ाबले फ़्रांसीसी साम्राज्य ज़्यादा अड़ियल था। इसके पतन में वियतनाम और अल्ज़ीरिया को रक्तरंजित रियरगॉर्ड एक्शन की लपेट में ले लिया था, जिसमें सैकड़ों हज़ारों लोगों की जानें गई थीं। तब भी फ़्रांसीसी भी अपने बाक़ी उपनिवेशों से जल्दी और शान्तिपूर्वक वापस लौट गए और अपने पीछे अराजक टकरावों के बजाय अनुशासित राज्यों को छोड़ गए।

1989 में हुआ सोवियत पतन बाल्कन्स, काकेसस और मध्य एशिया में उभरे नस्लपरक संघर्षों के बावजूद ज़्यादा शान्तिपूर्ण था। इसके पहले कोई भी शक्तिशाली साम्राज्य इतनी तेज़ी और ख़ामोशी के साथ नदारद नहीं हुआ था। सोवियत साम्राज्य को, अफ़गानिस्तान को छोड़कर, कोई सैन्य पराजय, कोई बाहरी आक्रमण, कोई विद्रोह नहीं झेलने पड़े, यहाँ तक कि सविनय अवज्ञा के मार्टिन लूथर किंग-शैली के बड़े पैमाने के किन्हीं आन्दोलनों को भी नहीं झेलना पड़ा। सोवियतों के पास उस वक़्त भी लाखों की तादाद में सैनिक थे, दसियों हज़ार टैंक और वायुयान थे और इतनी पर्याप्त मात्रा में परमाणु हथियार थे कि वह समूची मानव-जाति को कई बार नेस्तनाबूत कर सकता था। रेड आर्मी और वारसॉ सन्धि की अन्य सेनाएँ वफ़ादार बनी हुई थीं। अगर अन्तिम

सोवियत शासक मिख़ाइल गोर्बाचेव ने आदेश दे दिया होता, तो रेड आर्मी ने अधीनस्थ जनसमुदाय पर गोले बरसाने शुरू कर दिए होते।

तब भी सोवियत कुलीन वर्ग और कम्युनिस्ट हुकूमत ने ज़्यादातर पूर्वी यूरोप में (रोमानिया और सर्बिया के अपवादों को छोड़कर) इस अपार सैन्य-शक्ति के मामूली से भी अंश का इस्तेमाल नहीं किया। जब इसके सदस्यों को अहसास हो गया कि साम्यवाद दिवालिया हो चुका है, तो उन्होंने बलप्रयोग को त्याग दिया, अपनी नाक़ामयाबी को स्वीकार कर लिया, अपने सूटकेस पैक किए और वापस घर के लिए रवाना हो गए। गोर्बाचेव और उनके साथियों ने संघर्ष किए बग़ैर ना सिर्फ़ दूसरे विश्वयुद्ध की सोवियत उपलब्धियों में जीते गए भू-भागों को त्याग दिया, बल्कि उससे बहुत पहले ज़ार के ज़माने में जीते गए बाल्टिक, उक्रेन, काकेसस और मध्य एशिया के भू-भागों को भी त्याग दिया। यह सोचकर कँपकँपी छूट जाती है कि अगर गोर्बाचेव ने सर्बियाई नेताओं की तरह व्यवहार किया होता, या उस तरह का आचरण किया होता, जैसा फ़्रांसीसियों ने अल्ज़ीरिया में किया था, तो क्या हुआ होता।

पैक्स एटॉमिका

इन साम्राज्यों के बाद आए स्वतन्त्र राज्यों की युद्ध में उल्लेखनीय रूप से कोई दिलचस्पी नहीं थी। बहुत थोड़े-से अपवादों को छोड़कर, 1945 के बाद से राज्यों ने दूसरे राज्यों को जीतने और निगलने के लिए उन पर हमले नहीं किए। इस तरह की जीत अनन्त काल से राजनैतिक इतिहास की रोज़मर्रा की ज़रूरतें रही थीं। ज़्यादातर विशाल साम्राज्य इसी तरह खड़े हुए थे, और ज़्यादातर शासक और आबादियाँ स्थितियों के इसी तरह बने रहने की उम्मीद करते थे, लेकिन विजय के उस तरह के अभियान जैसे रोमनों, मंगोलों और ऑटोमनों ने चलाए थे, आज दुनिया में कहीं भी मुमकिन नहीं हैं। 1945 के बाद से संयुक्त राष्ट्र द्वारा मान्य कोई भी स्वाधीन देश दूसरों द्वारा जीत कर नक़्शे से मिटाया नहीं गया है। सीमित अन्तरराष्ट्रीय युद्ध अभी भी जब-तब होते रहते हैं, और युद्धों में अभी भी लाखों लोग मारे जाते हैं, लेकिन युद्ध अब मानक नहीं रह गए हैं।

बहुत से लोगों का मानना है कि अन्तरराष्ट्रीय युद्ध का लोप पश्चिमी यूरोप के समृद्ध लोकतन्त्रों की ही विशेषता है। तथ्य यह है कि शान्ति यूरोप में दुनिया के दूसरे हिस्सों में व्याप्त होने के बाद ही पहुँची है। इस तरह दक्षिण अमेरिकी देशों के बीच हुए अन्तिम गम्भीर युद्धों में 1941 का पेरू-इक्वाडोर युद्ध और 1932-35 का बोलीविया-पैराग्वे युद्ध शामिल हैं। और उसके पहले 1879-84 के बाद से, जब एक तरफ़ चिली था और दूसरी तरफ़ बोलीविया और पेरू थे, दक्षिण अमेरिकी देशों के बीच कोई गम्भीर युद्ध नहीं हुआ था।

हम शायद ही कभी अरब जगत को ख़ास तौर से शान्तिपूर्ण मानते हों। जब से अरब मुल्क़ों ने स्वाधीनता हासिल की है, तब से सिर्फ़ एक बार उनमें से एक ने दूसरे पर बड़े पैमाने का आक्रमण किया है (1990 में कुवैत पर इराक़ी हमला)। थोड़ी-बहुत सरहदी झड़पें (जैसे कि 1970 की सीरिया बनाम जॉर्डन), एक के मामलों में दूसरे के सैन्य हस्तक्षेप (जैसे कि सीरिया में लेबनान का), अनेक गृहयुद्ध (अल्ज़ीरिया, यमन, लीबिया)

और बड़ी तादाद में तख़्तापलट और विद्रोह ज़रूर होते रहे हैं, लेकिन खाड़ी युद्ध को छोड़कर अरब राज्यों के बीच बड़े पैमाने के अन्तरराष्ट्रीय युद्ध नहीं हुए हैं। यहाँ तक कि अगर हम परिदृश्य को और विस्तार देते हुए उसमें समूचे मुस्लिम जगत का समावेश करें, तो सिर्फ़ एक और उदाहरण इसमें जुड़ता है, ईरान-इराक़ युद्ध। कोई तुर्की-ईरान युद्ध नहीं हुआ, कोई पाकिस्तान-अफ़गानिस्तान युद्ध, या इंडोनेशिया-मलेशिया युद्ध नहीं हुआ।

अफ़्रीका में स्थितियाँ काफ़ी कम उज्जवल हैं, लेकिन वहाँ भी ज़्यादातर तकरारें गृहयुद्ध और तख़्तापलट की ही हैं। चूँकि अफ़्रीकी राज्यों ने 1960 और 1970 के दशकों में स्वाधीनता प्राप्त की थी, इसलिए बहुत कम ऐसे देश रहे, जिन्होंने जीत की उम्मीद में एक दूसरे पर आक्रमण किया।

इसके पहले ऐसे कालखण्ड रहे हैं, जिनमें अपेक्षाकृत शान्ति रही, जैसे कि उदाहरण के लिए यूरोप में 1871 और 1914 के बीच, और इनका अन्त हमेशा बुरी तरह हुआ, लेकिन इस बार स्थिति अलग है क्योंकि वास्तविक शान्ति युद्धों का ना होना नहीं है। वास्तविक शान्ति युद्ध का ऐसा विरोधाभास है, जिस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। यह वास्तविक शान्ति दुनिया में कभी नहीं रही। 1871 और 1914 के बीच यूरोपीय युद्ध एक सम्भाव्य घटना बना रहा और युद्ध की प्रत्याशा सेनाओं, राजनेताओं और साधारण नागरिकों के दिमाग़ पर प्रभावी बनी रही। यह अपशकुन इतिहास के तमाम दूसरे शान्तिपूर्ण कालखण्डों के सन्दर्भ में भी सही था। अन्तरराष्ट्रीय राजनीति के एक क्रूर नियम का आदेश था कि “हर दो निकटवर्ती राज्यतन्त्रों के सन्दर्भ में एक ऐसा सम्भाव्य परिदृश्य है, जो साल भर के भीतर उन्हें एक दूसरे के ख़िलाफ़ युद्ध के लिए विवश कर देगा”। जंगल का यह नियम उन्नीसवीं सदी के यूरोप, मध्ययुगीन यूरोप, प्राचीन चीन और प्राचीन ग्रीस में प्रभावी हुआ करता था। अगर 450 ईसा पूर्व में स्पार्टा और एथेंस के बीच शान्ति थी, तो इस बात का सम्भाव्य परिदृश्य मौजूद था कि वे 449 ईसा पूर्व में आपस में युद्ध कर रहे होंगे।

आज मानव-जाति ने जंगल के इस नियम को तोड़ दिया है। आज कम से कम वास्तविक शान्ति है, और यह महज़ युद्ध की अनुपस्थिति नहीं है। ज़्यादातर राज्यतन्त्रों के लिए ऐसा कोई सम्भाव्य परिदृश्य मौजूद नहीं है, जो उन्हें सम्पूर्ण युद्ध में झोंक देने वाला हो। ऐसा क्या है, जो अगले साल जर्मनी और फ़्रांस के बीच युद्ध का कारण बन सकता हो? या चीन और जापान के बीच? या ब्राज़ील और अर्जेंटीना के बीच? कुछ छोटी-मोटी सरहदी तकरारें हो सकती हैं, लेकिन सिर्फ़ कोई सचमुच की सर्वनाश की भविष्यवाणी से उभरने वाला परिदृश्य ही ब्राज़ील और अर्जेंटीना को 2019 में पुरानी चाल के उस सम्पूर्ण युद्ध के लिए प्रेरित कर सकता है, जिसमें अर्जेंटीना के बख़्तरबन्द डिवीज़न रियो के फाटकों की ओर तेजी से बढ़ रहे हों, और ब्राज़ील के बमवर्षक ब्यूनस आयर्स के आस-पास के इलाक़ों को ढेर कर रहे हों। इस तरह के युद्ध अभी भी कई राज्यों के बीच हो सकते हैं, जैसे कि इज़रायल और सीरिया के बीच, इथियोपिया और इरिट्रिया के बीच, या संयुक्त राज्य अमेरिका और ईरान के बीच, लेकिन ये ऐसे अपवाद हैं, जो सामान्य स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं डालते।

यह स्थिति निश्चय ही भविष्य में बदल जा सकती है, और उस भविष्य के पक्ष से सोचने पर आज की दुनिया अविश्वसनीय रूप से भोली-भाली लग सकती है, लेकिन

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें, तो हमारा यह भोलापन आकर्षक है। इसके पहले शान्ति इतनी प्रभावी कभी नहीं रही कि लोग युद्ध की कल्पना भी ना कर सकते हों।

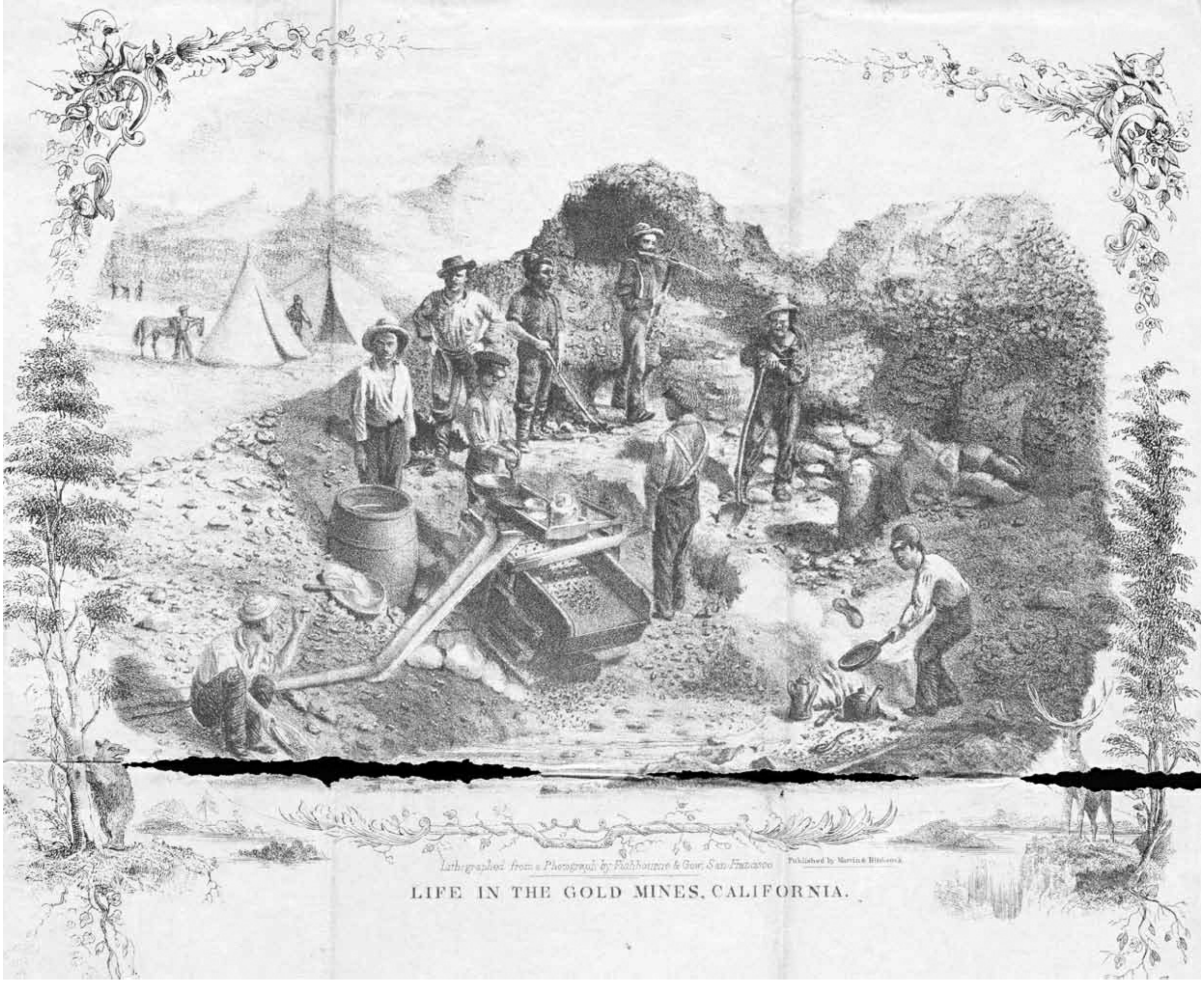
Lithographed from a Photograph by Fishbourne & Gow, San Francisco
Published by Marvin & Hitchcock
LIFE IN THE GOLD MINES, CALIFORNIA.

अध्येताओं ने इस सुखद स्थिति को अपार पुस्तकों और लेखों में स्पष्ट करने की कोशिश की है, और उन्होंने इस स्थिति में योगदान करने वाले अनेक कारकों की पहचान की है। इनमें पहला और अग्रणी कारक यह है कि युद्ध की क़ीमत असाधारण रूप से बढ़ गई है। तमाम नोबेल शान्ति पुरस्कारों में सबसे महत्त्वपूर्ण पुरस्कार रॉबर्ट ओपेनहाइमर और अणु बम के उसके साथी निर्माताओं को दिया जाना चाहिए था। परमाणु हथियारों ने महाशक्तियों के बीच के युद्ध को सामूहिक आत्महत्या की सम्भावना में बदल दिया है, और हथियारों के बल पर दुनिया पर आधिपत्य स्थापित करने की कोशिश को असम्भव बना दिया है।

दूसरे, जहाँ युद्ध की क़ीमत बेइन्तिहा बढ़ गई है, वहीं उससे होने वाले मुनाफ़े में गिरावट आई है। ज़्यादातर इतिहास के दौरान राज्यतन्त्र शत्रुओं के इलाक़ों को लूटकर या उन्हें हड़पकर ख़ुद को समृद्ध कर सकते थे। ज़्यादातर सम्पत्ति में खेत, गोधन, ग़ुलाम और सोने जैसी चीज़ें शामिल होती थीं, इसलिए उसे लूटना या उस पर क़ब्ज़ा करना आसान होता था। आज सम्पत्ति में मुख्यतः मानवीय पूँजी, तकनीकी अनुभव और बैंक जैसी पेचीदा सामाजिक-आर्थिक संरचनाएँ शामिल हैं। नतीज़तन, उसे जीतना या उसे

अपने राज्य क्षेत्र में समाविष्ट कर लेना मुश्किल काम है।

44. और 45. 1849 में कैलिफ़ोर्निया ने सोने के आधार पर अपनी दौलत खड़ी की थी। आज कैलिफ़ोर्निया अपनी दौलत सिलिकॉन के बूते खड़ा करता है, लेकिन जहाँ 1849 में सोना वास्तव में कैलिफ़ोर्निया की मिट्टी में मौजूद था, वहीं सिलिकॉन वैली का असली ख़ज़ाना हाई-टेक कर्मचारियों के दिमाग़ के भीतर बन्द है।

कैलिफ़ोर्निया को लें। इसकी सम्पत्ति शुरुआत में सोने की खदानों पर आधारित थी, लेकिन आज यह सिलिकॉन और सेल्यूलॉइड पर टिकी है - सिलिकॉन वैली और हॉलीवुड की सेल्यूलॉइड हिल। क्या होगा अगर चीन कैलिफ़ोर्निया पर सैन्य आक्रमण कर दे, सैनफ़्रांसिस्को पर दस लाख सैनिक उतार दे और द्वीप पर हमला बोल दे? उन्हें बहुत थोड़ा-सा हासिल होगा। सिलिकॉन वैली में सिलिकॉन की कोई खदानें नहीं हैं। सारी सम्पत्ति गूगल के इंजीनियरों के दिमाग़ और हॉलीवुड के पटकथा-लेखकों, निर्देशकों और स्पेशल इफ़ेक्ट जादूगरों के दिमाग़ में भरी है, जो चीनी टैंकों के सनसेट बोलेवार्ड में घूमना शुरू करने से बहुत पहले हवाई जहाज़ से बेंगलुरु या मुम्बई के लिए रवाना हो चुके होंगे। यह संयोग नहीं है कि जो थोड़े-से बड़े पैमाने के युद्ध अभी भी दुनिया में होते हैं, जैसे कि कुवैत पर इराक़ का हमला, वे उन जगहों पर होते हैं, जहाँ सम्पत्ति पुराने ढर्रे की भौतिक सम्पत्ति होती है। कुवैत के शेख़ देश छोड़कर भाग सकते थे, लेकिन तेल के क्षेत्र अपनी जगह पर बने रहने वाले थे।

जब युद्धों से मुनाफ़ा कम होने लगता है, तो शान्ति किसी भी वक़्त के मुक़ाबले ज़्यादा फ़ायदेमन्द हो उठती है। पारम्परिक कृषिपरक अर्थव्यवस्थाओं में लम्बी दूरी के व्यापार और विदेशी निवेश बहुत कम महत्त्व रखते थे। नतीज़तन, शान्ति से कोई ख़ास मुनाफ़ा नहीं होता था, सिवा इसके कि युद्ध पर होने वाले ख़र्चों से बचा जा सकता था। अगर, मान लीजिए, 1400 में इंग्लैंड और फ़्रांस के बीच शान्ति क़ायम होती, तो फ़्रांस को युद्ध के भारी-भरकम दाम नहीं चुकाने पड़ते और अँग्रेज़ों के विनाशकारी आक्रमण को

नहीं झेलना पड़ता, लेकिन इसके अलावा उसके ख़ज़ाने के लिए और कोई मुनाफ़ा नहीं होता। आधुनिक पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में विदेशी व्यापार और निवेश बेहद महत्त्वपूर्ण हो उठे हैं। इसलिए शान्ति अनूठे लाभ पहुँचाती है। जब तक संयुक्त राज्य अमेरिका और चीन के बीच अमन क़ायम है, चीनी अपने उत्पादों को संयुक्त राज्य अमेरिका में बेचकर, वॉल स्ट्रीट में कारोबार कर और संयुक्त राज्य अमेरिका के निवेशों को हासिल कर फल-फूल सकता है।

अन्तिम, लेकिन उतनी ही महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वैश्विक राजनैतिक संस्कृति की अन्दरूनी संरचना में बदलाव आया है। उदाहरण के लिए, हूण सरदार, वाइकिंग कुलीन वर्ग और एज़्टेक पुरोहित युद्ध को एक कल्याणकारी चीज़ के रूप में देखते थे। दूसरे लोग उसे एक गम्भीर, किन्तु ऐसी अपरिहार्य बुराई के रूप में देखते थे, जिसे हमें अपने हित में बदल लेना ही बेहतर था। हमारा समय इतिहास में पहला ऐसा समय है, जब दुनिया उन शान्तिप्रेमी कुलीन वर्गों - राजनेताओं, कारोबारियों, बुद्धिजीवियों, कलाकारों के प्रभाव में है, जो युद्ध को एक गम्भीर और टालने योग्य बुराई के रूप में देखते हैं। (अतीत में भी अमनपसन्द लोग थे, जैसे कि शुरुआती दौर के ईसाई, लेकिन गाहे-ब-गाहे जब उनके पास शक्ति रही, तब वे 'दूसरा गाल आगे कर देने' की अपनी ज़रूरत को भूल जाया करते थे)।

इन चारों कारकों के बीच क्रिया-प्रतिक्रिया का एक सकारात्मक वृत्त बनता है। परमाणु विभीषिका का ख़तरा शान्तिप्रियता को प्रोत्साहित करता है, जब शान्तिप्रियता की भावना का प्रसार होता है, तो युद्ध पीछे हटता है और कारोबार फलता-फूलता है और कारोबार शान्ति के मुनाफ़ों और युद्ध की क़ीमत दोनों में इज़ाफ़ा करता है। समय बीतने के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया का यह वृत्त युद्ध के समक्ष एक और बाधा खड़ी करता है, जो अन्ततः सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण साबित हो सकती है। अन्तरराष्ट्रीय रिश्तों का कसता हुआ जाल ज़्यादातर देशों की स्वाधीनता को कमज़ोर करता हुआ इस बात के अवसर कम कर देता है कि उनमें से कोई भी देश अकेले दम पर युद्ध को भड़क जाने की गुंजाइश दे सके। ज़्यादातर देश अब बड़े पैमाने की लड़ाइयों में महज़ इसलिए संलग्न नहीं होते क्योंकि वे अब स्वाधीन नहीं रह गए हैं। भले ही इज़रायल, इटली, मैक्सिको या थाईलैंड के नागरिक स्वाधीन होने का भ्रम पाले हों, लेकिन तथ्य यह है कि इनकी सरकारें स्वाधीन ढंग से आर्थिक या विदेशी नीतियों को संचालित नहीं कर सकतीं, और वे निश्चय ही अपने दम पर किसी बड़े पैमाने के युद्ध की पहल करने और उसे संचालित करने में अक्षम हैं। जैसा कि दूसरे अध्याय में स्पष्ट किया गया है कि हम भूमण्डलीय साम्राज्य की उत्पत्ति के साक्षी बन रहे हैं। पहले के साम्राज्यों की तरह यह भी अपनी सरहदों के भीतर बलपूर्वक शान्ति क़ायम करता है। और चूँकि इसकी सरहदें समूचे भूमण्डल को घेरती हैं, इसलिए यह वैश्विक साम्राज्य कारगर ढंग से विश्व-शान्ति को अंज़ाम देता है।

तब, क्या आधुनिक युग उन अन्धी हत्याओं, युद्ध और दमन का युग है, जिनके प्रतीकों में प्रथम विश्वयुद्ध, हिरोशिमा पर छाया परमाणु का गुबार और हिटलर तथा स्तालिन के रक्तरंजित उन्माद शामिल हैं? या यह शान्ति का युग है, जिसके प्रतीकों में दक्षिण अमेरिका में कभी ना खोदे गए खन्दक, मॉस्को और न्यू यॉर्क के आसमान पर कभी ना

छाए परमाणु के गुबार, और महात्मा गाँधी तथा मार्टिन लूथर किंग के प्रशान्त व्यक्तित्व शामिल हैं?

इसका जवाब समय पर निर्भर करता है। यह समझना समझदारी की बात होगी कि किस तरह अक्सर अतीत के बारे में हमारा दृष्टिकोण पिछले कुछ सालों की घटनाओं से विकृत हो जाता है। अगर यह अध्याय 1945 या 1962 में लिखा गया होता, तो यह शायद बहुत कुछ उदासी से भरा होता। चूँकि यह 2012 में लिखा गया था, इसलिए यह आधुनिक इतिहास के प्रति एक अपेक्षाकृत प्रफुल्लित रुख़ अख़्तियार करता है।

आशावादियों और निराशावादियों दोनों को सन्तुष्ट करने के लिए हम यह कहते हुए इस अध्याय का समापन कर सकते हैं कि हम एक साथ स्वर्ग और नर्क दोनों की दहलीज़ पर खड़े हैं और घबराए हुए से एक के प्रवेश-द्वार और दूसरे के गलियारे के बीच आवाजाही कर रहे हैं। इतिहास ने अभी भी यह फ़ैसला नहीं किया है कि अन्ततः हम कहाँ जाएँगे और संयोगों की एक शृंखला हमें किसी भी दिशा की ओर लुढ़का सकती है।

---

[*] द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जर्मनी की वायुसेना शाखा। (अनुवादक)

[*] 'स्थानीय अन्तरंग समुदाय' (इंटीमेट कम्युनिटी) उन लोगों का समूह होता है, जो एक दूसरे से भलीभाँति परिचित होते हैं और जीवित बने रहने के लिए एक दूसरे पर निर्भर करते हैं।

19

और उसके बाद वे हमेशा सुखपूर्वक रहे

पिछले 500 साल क्रान्तियों की एक विस्मयकारी शृंखला के साक्षी रहे हैं। पृथ्वी एक ही पारिस्थितिकीय और ऐतिहासिक पिण्ड में संघटित कर दी गई है। अर्थव्यवस्था का अपरिमित विकास हुआ है और मानव-जाति आज ऐसी सम्पदा का उपभोग कर रही है, जैसी सम्पदा कभी सिर्फ़ परीकथाओं में देखने को मिला करती थी। विज्ञान और औद्योगिक क्रान्ति ने मानव-जाति को लगभग असीम ऊर्जा से भर दिया है। सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह रूपान्तरित हो चुकी है, उसी तरह राजनीति, रोज़मर्रा जीवन और मानवीय मनोविज्ञान भी।

लेकिन क्या हम पहले के मक़ाबले सुखी हैं? मानव-जाति ने पिछली पाँच सदियों में जो सम्पदा एकत्र की है, क्या वह किसी नव-अन्वेषित सन्तुष्टि में रूपान्तरित हो सकी है? क्या अक्षय ऊर्जा की खोज ने हमारे सामने आनन्द का अक्षय भण्डार खोल दिया है? और भी पीछे जाकर बात करें, तो क्या संज्ञानात्मक क्रान्ति के बाद से अशान्ति से भरी लगभग सत्तर सहस्राब्दियों ने दुनिया को जीने योग्य बेहतर जगह बनाया है? क्या दिवंगत नील आर्मस्ट्रांग, जिसके पैरों के निशान अभी भी हवा-रहित चन्द्रमा पर सुरक्षित बने हुए हैं, क्या उस अनाम शिकारी-भोजन-संग्रहकर्ता से ज़्यादा सुखी था, जिसने 30,000 साल पहले शॉवे की गुफा में अपने हाथों का निशान छोड़ा था? अगर नहीं, तो फिर कृषि, नगर, लेखन, मुद्राएँ, साम्राज्य, विज्ञान और उद्योग विकसित करने का क्या फ़ायदा था?

इतिहासकार इस तरह के सवाल अक्सर नहीं पूछते। वे यह नहीं पूछते कि क्या उरुक और बेबीलोन के नागरिक अपने भोजन-खोजी पूर्वजों से ज़्यादा सुखी थे, क्या इस्लाम के उदय से मिस्रवासियों को अपना जीवन ज़्यादा सुखद लगने लगा था या अफ़्रीका में यूरोपीय साम्राज्यों के पतन ने किस तरह असंख्य लाखों लोगों के सुख में वृद्धि की थी। तब भी ये ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं, जो हम इतिहास से पूछ सकते हैं। ज़्यादातर ताज़ा

विचारधाराएँ और राजनैतिक कार्यक्रम मानवीय सुख के वास्तविक स्रोत से ताल्लुक रखने वाली अपेक्षाकृत छिछली धारणाओं पर आधारित हैं। राष्ट्रवादियों का मानना है कि राजनैतिक आत्मनिर्णय हमारे सुख के लिए अनिवार्य है। कम्युनिस्ट इसे स्वयंसिद्ध मानकर चलते हैं कि सर्वहारा की तानाशाही के अधीन हर कोई परम आनन्द की अवस्था में होगा। पूँजीवादियों का दृढ़ विश्वास है कि सिर्फ़ मुक्त बाज़ार ही आर्थिक विकास और भौतिक प्रचुरता की स्थिति निर्मित कर और लोगों को आत्मनिर्भर और उद्यमशील बनने की सीख देकर अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख को सुनिश्चित कर सकता है।

अगर कोई गम्भीर अध्ययन इन परिकल्पनाओं को ख़ारिज़ कर दे, तब क्या होगा? अगर आर्थिक विकास और आत्मनिर्भरता लोगों को सुखी नहीं बनाते, तो फिर पूँजीवाद का क्या फ़ायदा है? तब क्या होगा अगर यह पता चले कि बड़े साम्राज्यों के अधीन रहने वाले लोग स्वाधीन राज्यों के नागरिकों के मुक़ाबले आम तौर से ज़्यादा सुखी होते हैं, और यह कि, मसलन, अल्ज़ीरियाई लोग अपने शासन के मुक़ाबले फ़्रांसीसी शासन के अधीन ज़्यादा सुखी थे? यह स्थिति उपनिवेशवाद से मुक्ति की प्रक्रिया के बारे में और राष्ट्रीय आत्मनिर्णय के मूल्य के बारे में क्या बताएगी?

ये सब परिकल्पनात्मक सम्भावनाएँ हैं, क्योंकि अब तक इतिहासकार इन सवालों को उठाने से बचते रहे हैं - इनका जवाब देना तो दूर की बात है। उन्होंने लगभग हर चीज़ के इतिहास का शोध किया है, जैसे राजनीति, समाज, अर्थतन्त्र, लिंग, बीमारियाँ, कामतत्त्व, भोजन और वेशभूषा, लेकिन उन्होंने शायद ही कभी रुक कर यह सवाल उठाया हो कि ये चीज़ें मनुष्य के सुख को किस तरह प्रभावित करती हैं।

हालाँकि बहुत थोड़े-से लोगों ने सुख के दीर्घकालिक इतिहास का अध्ययन किया है, तब भी लगभग हर अध्येता और सामान्य आदमी के मन में इसे लेकर एक पूर्वाग्रह विद्यमान है। एक आम धारणा यह है कि समूचे इतिहास के दौरान मानवीय क्षमताओं में वृद्धि हुई है। चूँकि मनुष्य आम तौर से अपनी क्षमताओं का इस्तेमाल अपने दु:खों को कम करने और अपनी लालसाओं को पूरा करने में करते हैं, इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि हमें अपने मध्ययुगीन पूर्वजों की तुलना में ज़्यादा सुखी होना चाहिए, और हमारे वे पूर्वज प्रस्तर युग के शिकारी-भोजन-संग्रहकर्ताओं से ज़्यादा सुखी रहे होंगे।

लेकिन यह प्रगतिशील हिसाब क़ायल करने वाला नहीं है। जैसा कि हम देख चुके हैं ज़रूरी नहीं है कि नए रुझान, व्यवहार और दक्षताएँ बेहतर जीवन को सम्भव बनाते हों। जब इंसानों ने कृषि क्रान्ति के दौरान खेती करना सीखा, तो अपने पर्यावरण को तराषने की उनकी सामूहिक शक्ति में वृद्धि हुई थी, लेकिन ढेरों व्यक्ति पहले ज़्यादा निष्ठुर हो गए थे। किसानों को कम विविधतापूर्ण और कम पोषक भोजन से अपना निर्वाह करना पड़ता था, और रोग तथा शोषण का शिकार होने की उनकी सम्भावनाएँ बढ़ गई थीं। इसी तरह, यूरोपीय साम्राज्यों के विस्तार ने विचारों, टेक्नोलॉजियों और फ़सलों का प्रसार करके और वाणिज्य के नए रास्ते खोलते हुए मानव-जाति की सामूहिक शक्ति में ज़बरदस्त वृद्धि की थी, लेकिन लाखों अफ़्रीकियों, स्थानीय अमेरिकी लोगों और ऑस्ट्रेलियाई आदिवासियों के लिए कोई अच्छी ख़बर नहीं थी। ताक़त के ग़लत इस्तेमाल की मनुष्य की सिद्ध प्रवृत्ति को देखते हुए ऐसा मानना भोलापन लगता है कि लोगों के पास जितना ज़्यादा रुतबा होगा, उतने ही ज़्यादा वे सुखी होंगे।

इस धारणा के कुछ विरोधी पूरी तरह से विपरीत दृष्टिकोण अपनाते हैं। वे मानवीय क्षमताओं और सुख के बीच एक विपरीत सहसम्बन्ध की बात करते हैं। उनका कहना है कि ताक़त भ्रष्ट करती है और जैसे-जैसे मानव-जाति शक्ति हासिल करती गई, वैसे-वैसे वह एक ऐसी संवेदनहीन यान्त्रिक दुनिया गढ़ती गई, जो हमारी वास्तविक ज़रूरतों से मेल नहीं खाती थी। विकास-प्रक्रिया ने हमारे मस्तिष्कों और शरीरों को शिकारी-भोजन-संग्रहकर्ताओं के जीवन में ढाला था। पहले कृषि और फिर उद्योग में संक्रमण ने हमें एक ऐसे अप्राकृतिक जीवन जीने के लिए अभिशप्त कर दिया, जो हमारी सहज अभिरूचियों और प्रवृत्तियों को पूरी तरह अभिव्यक्त नहीं कर सकते और इसलिए हमारी अन्तरतम आकांक्षाओं को तुष्ट नहीं कर सकते। शहरी मध्यवर्ग की आरामदेह ज़िन्दगियों में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो उस अनियंत्रित उत्तेजना और निपट आनन्द की बराबरी कर सकता हो, जो किसी मैमथ का कामयाब शिकार करने के बाद भोजन-खोजियों के एक झुण्ड को मिला करता था। हर नया आविष्कार हमारे और गार्डन ऑफ़ ईडन के बीच एक और मील की दूरी बढ़ा देता है।

लेकिन हर आविष्कार के पीछे एक अँधेरी छाया देखने वाला यह रोमानी हठ उतना ही कट्टरपन्थी है, जितना कट्टरपन्थी प्रगति की अपरिहार्यता में विश्वास है। हम शायद अपने अन्दर बैठे शिकारी-भोजन-संग्रहकर्ता के सम्पर्क में नहीं हैं, लेकिन यह बहुत बुरा नहीं है। उदाहरण के लिए, पिछली दो सदियों से भी ज़्यादा समय से आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान ने बाल-मृत्यु की दर को 33 प्रतिशत से घटाकर 5 प्रतिशत कर दिया है। क्या कोई इस बात पर सन्देह कर सकता है कि इसने ना सिर्फ़ उन बच्चों के सुख में, जो अन्यथा स्थिति में मर गए होते, बल्कि उनके परिवारों और दोस्तों के सुख में भी अपार योगदान किया है?

एक अपेक्षाकृत बारीक़ फ़र्क़ करने वाला दृष्टिकोण बीच का रास्ता अपनाता है। वैज्ञानिक क्रान्ति के पहले तक शक्ति और सुख के बीच कोई स्पष्ट पारस्परिक सम्बन्ध नहीं था। मध्ययुग के किसान निश्चय ही अपने शिकारी-भोजन-संग्रहकर्ता पूर्वजों के मुक़ाबले ज़्यादा दयनीय हालत में रहे हो सकते हैं, लेकिन पिछली दो सदियों के दौरान मनुष्यों ने अपनी क्षमताओं का कहीं ज़्यादा अक़लमन्दी के साथ इस्तेमाल करना सीखा है। आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान की जीत महज़ एक उदाहरण है। अन्य अपूर्व उपलब्धियों में हिंसा में आई अत्यधिक कमी, अन्तरराष्ट्रीय युद्धों का वास्तविक लोप और बड़े पैमाने के अकालों का लगभग ख़ात्मा शामिल हैं।

लेकिन यह भी एक अतिसरलीकरण है। प्रथमतः इसलिए कि यह अपने आशावादी आकलनों को बहुत छोटे-से कालखण्ड पर आधारित करता है। ज़्यादातर इंसानों ने आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान के फलों को 1850 से पहले चखना शुरू नहीं किया था और बालमृत्यु दर में आई ज़बरदस्त कमी बीसवीं सदी की घटना है। बड़े पैमाने के अकाल ज़्यादातर मनुष्यता का बीसवीं सदी के मध्य तक विनाश करते रहे। कम्युनिस्ट चीन के 1958-61 के 'ग्रेट लीप फ़ारवर्ड' के दौरान 1 करोड़ से 5 करोड़ के बीच मनुष्य भूख से मर गए थे। अन्तरराष्ट्रीय युद्ध 1945 के बाद ही दुर्लभ हुए हैं, जिसके पीछे व्यापक तौर पर परमाणु सर्वनाश का ख़तरा रहा है। इसलिए, यद्यपि पिछले कुछ दशक मनुष्यता के लिए अपूर्व स्वर्ण युग साबित हुए हैं, लेकिन यह अवधि इस बात को समझने के लिहाज़

से बहुत छोटी है कि यह स्वर्ण युग इतिहास के प्रवाह में आए किसी बुनियादी बदलाव का द्योतक है या सौभाग्य का एक क्षणभंगुर भँवर मात्र है। जब हम आधुनिकता का आकलन करते हैं, तो इक्कीसवीं सदी के मध्यवर्गीय पश्चिमी व्यक्ति का दृष्टिकोण अपनाने का बहुत लालच जागता है, लेकिन हमें कोयले की खदान में काम करने वाले उन्नीसवीं सदी के वेल्स वासी, चीनी अफ़ीमची या तस्मानियाई मूलनिवासी के दृष्टिकोणों को नहीं भूल जाना चाहिए। ट्रुगानिनी, होमर सैम्प्सन से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

दूसरे इसलिए कि यह भी मुमकिन है कि पिछली आधी सदी के संक्षिप्त स्वर्ण युग ने ही भावी विनाश के बीज बो दिए हों। पिछले कुछ दशकों के दौरान हम अपने ग्रह के पारिस्थितिकीय सन्तुलन को बेशुमार तरीक़े से बिगाड़ते रहे हैं, जिसके ख़तरनाक नतीज़े निकलने की आशंका प्रतीत होती है। ऐसे ढेरों प्रमाण हैं, जो संकेत करते हैं कि हम अविचारित उपभोग के अतिरेक के कारण मानवीय खुशहाली की बुनियादों को खोखला कर रहे हैं।

अन्त में, हम आधुनिक सेपियन्स की अपूर्व उपलब्धियों के लिए एक ही शर्त पर ख़ुद को शाबाशी दे सकते हैं कि हम दूसरे प्राणियों की नियति को पूरी तरह से नज़रअन्दाज़ कर दें। जिस भौतिक सम्पदा पर हमें बहुत गर्व है और जो बीमारियों और अकाल से हमारा बचाव करती है, उसका ज़्यादातर हिस्सा लैबोरेटरी बन्दरों, डेरी की गायों और कन्वेयर-बेल्ट चूज़ों की क़ीमत पर जमा किया गया है। पिछली दो सदियों से ज़्यादा समय से इनमें से अरबों प्राणियों को उस औद्योगिक शोषण की हुकूमत के अधीन रखा गया है, जिसकी क्रूरता का कोई दूसरा दृष्टान्त पृथ्वी के इतिहास में नहीं मिलता। अगर पशुओं के हक़ों के लिए लड़ने वाले कार्यकर्ताओं के दावों का दसवाँ हिस्सा भी स्वीकार करें, तो आधुनिक औद्योगिक कृषि इतिहास का सबसे बड़ा अपराध साबित हो सकती है। वैश्विक सुख का मूल्यांकन करते समय सिर्फ़ उच्च वर्गों, यूरोपीय लोगों या पुरुषों के सुख को गिनना ग़लत है। शायद सिर्फ़ मनुष्यों के सुख को लेखे में लेना भी ग़लत है।

सुख की गणना

अभी तक हमने सुख की चर्चा कुछ इस तरह की है, जैसे यह व्यापक तौर पर स्वास्थ्य, खुराक और सम्पदा जैसे भौतिक कारकों की उपज हो। अगर लोग सम्पन्न और तन्दुरुस्त हैं, तो वे निश्चय ही सुखी भी होंगे, लेकिन क्या यह वाक़ई इतनी ज़ाहिर-सी बात है? दार्शनिक, धर्माचार्य और कवि हज़ारों सालों से सुख की प्रकृति पर विचार करते रहे हैं, और इनमें से बहुत-से लोग इस नतीजे पर पहुँचे हैं, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक कारक हमारे सुख पर उतना ही ज़्यादा प्रभाव डालते हैं,जितना भौतिक परिस्थितियाँ डालती हैं। शायद समृद्ध समाजों के लोग अपनी समृद्धि के बावजूद अलगाव और अर्थहीनता के बोध से बहुत ज़्यादा दुःख उठाते हैं। और शायद हमारे कम ख़ुशहाल पूर्वजों को समुदाय, मज़हब और प्रकृति के साथ अपने प्रगाढ़ रिश्ते से कहीं ज़्यादा सन्तोष मिला करता था।

हाल के दशकों में मनोविज्ञानियों और जीवविज्ञानियों ने इस बात का वैज्ञानिक अध्ययन करने की चुनौती स्वीकार की है कि वह क्या चीज़ है, जो लोगों को वाक़ई सुखी

बनाती है। क्या ये पैसा हे, परिवार है, जेनेटिक्स है या सदाचार है? पहला क़दम उस चीज़ को परिभाषित करना है, जिसे मापा जाना है। सुख की आम तौर से मान्य परिभाषा है 'व्यक्तिनिष्ठ ख़ुशहाली (सब्जेक्टिव वेल-बीइंग)'। इस दृष्टिकोण के मुताबिक़, सुख वह चीज़ है जिसे मैं अपने भीतर महसूस करता हूँ, एक तात्कालिक आनन्द का बोध या जीवन जिस ढंग से चल रहा है उसको लेकर एक दीर्घकालिक सन्तोष का भाव। अगर यह एक ऐसी चीज़ है, जो अन्दर महसूस होती है, तो फिर उसे बाहर से कैसे मापा जा सकता है? सम्भवतः यह काम हम लोगों से यह पूछकर कर सकते हैं कि वे कैसा महसूस करते हैं। इसलिए जो मनोविज्ञानी या जीवविज्ञानी यह आकलन करना चाहते हैं कि लोग किस तरह सुख को महसूस करते हैं, वे उन्हें एक प्रश्नावली देकर उसके जवाब देने को कहते हैं और फिर जो जवाब उन्हें मिलते हैं, उनका हिसाब लगाते हैं।

व्यक्तिनिष्ठ ख़ुशहाली से ताल्लुक रखने वाली एक सामान्य प्रश्नावली के सन्दर्भ में इंटरव्यू देने वालों से आग्रह किया जाता है कि वे शून्य से लेकर दस अंकों तक के बीच के किसी अंक के तहत इस तरह के कथनों के प्रति अपनी सहमति ज़ाहिर करें कि 'मैं जैसा हूँ, उससे प्रसन्न हूँ', 'मुझे लगता है कि जीवन बहुत कल्याणकारी है', 'मैं भविष्य को लेकर आशावादी हूँ', और 'जीवन अच्छा है'। शोधकर्ता इसके बाद सारे जवाबों को मिलाकर जवाब देने वाले की व्यक्तिनिष्ठ ख़ुशहाली के सामान्य स्तर का हिसाब लगाता है।

इस तरह की प्रश्नावलियों का इस्तेमाल सुख और विभिन्न वस्तुनिष्ठ (ऑब्जेक्टिव) कारकों के बीच आपसी रिश्ता क़ायम करने के लिए किया जाता है। इस तरह का कोई अध्ययन ऐसे एक हज़ार लोगों से, जो सालाना $100,000 कमाते हैं, उन एक हज़ार लोगों की तुलना कर सकता है, जो सालाना $50,000 कमाते हैं। अगर अध्ययन से पता चलता है कि पहले समूह की औसत ख़ुशहाली का स्तर 8.7 है, वहीं बाद वाले का औसत 7.3 है, तो शोधकर्ता तर्कसंगत ढंग से यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि सम्पत्ति और व्यक्तिनिष्ठ ख़ुशहाली के बीच एक सकारात्मक रिश्ता होता है। इसे और भी सरल भाषा में कहें तो पैसे से ख़ुशहाली आती है। यही पद्धति इस बात को जाँचने के लिए अपनाई जा सकती है कि क्या लोकतन्त्रों में रहने वाले लोग तानाशाहियों के अधीन रहने वाले लोगों से ज़्यादा सुखी होते हैं, और यह कि क्या विवाहित लोग अविवाहित, तलाक़शुदा या विधवा/विधुर लोगों से ज़्यादा सुखी होते हैं।

यह चीज़ इतिहासकारों को आधार उपलब्ध कराती है, जो अतीत की सम्पत्ति, राजनैतिक स्वतन्त्रता और तलाक़ की दरों का परीक्षण कर सकते हैं। अगर लोग लोकतन्त्रों में ज़्यादा सुखी हैं और विवाहित लोग तलाक़शुदा लोगों के मुक़ाबले ज़्यादा सुखी हैं, तो इतिहासकारों को यह कहने का आधार उपलब्ध हो जाता है कि पिछले कुछ दशकों की लोकतन्त्रीकरण की प्रक्रिया ने मानव-जाति के सुख में योगदान किया है, जबकि तलाक़ों की बढ़ती हुई दर इसके विपरीत प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है।

सोचने का यह ढंग दोषरहित नहीं है, लेकिन इसकी कुछ कमियों की ओर संकेत करने के पहले निष्कर्षों पर विचार करना उचित होगा।

एक दिलचस्प निष्कर्ष यह है कि पैसा सचमुच ख़ुशहाली लाता है, लेकिन सिर्फ़ एक सीमा तक ही, और उस सीमा के आगे इसका बहुत कम महत्त्व रह जाता है। जो लोग आर्थिक सीढ़ी के सबसे निचले पायदान पर अटके हैं, उनके लिए ज़्यादा पैसे का मतलब

ज़्यादा सुख है। अगर आप अमेरिका में रहने वाली एक तलाक़शुदा माँ हैं और आप घरों की सफ़ाई का काम करती हुई सालाना $12,000 कमाती हैं और अचानक आप लॉटरी में $500,000 जीत जाएँ, तो शायद आप अपनी व्यक्तिनिष्ठ ख़ुशहाली में एक महत्त्वपूर्ण और दीर्घकालिक लहर महसूस करेंगी। आप और ज़्यादा क़र्ज़ में डूबे बिना अपने बच्चों का पेट पाल सकेंगी और उनका तन ढँक सकेंगी, लेकिन अगर आप सालाना $250,000 कमाने वाले एक आला दर्ज़े के एक्ज़ीक्यूटिव हैं और आप लॉटरी में $10 लाख जीत जाते हैं, या आपकी कम्पनी का बोर्ड अचानक आपकी तनख़्वाह दुगुनी कर देने का फ़ैसला कर लेता है, तो आपकी ख़ुशी की लहर के कुछ ही हफ़्तों तक टिकने की सम्भावना है। अनुभवपरक निष्कर्षों के मुताबिक़, यह चीज़ लगभग निश्चित तौर पर बहुत लम्बे समय के लिए आपके महसूस करने के ढंग में कोई बड़ा फ़र्क़ पैदा करने वाली नहीं है। आप एक अत्याधुनिक और आकर्षक कार ख़रीद लेंगे, किसी आलीशान घर में रहने लगेंगे, कैलिफ़ोर्निया कैबरने वाइन के बजाय शातो पेत्रुस वाइन पीने लग जाएँगे, लेकिन यह सब जल्दी ही रोज़मर्रा और सामान्य चीज़ लगने लगेगी।

एक और दिलचस्प निष्कर्ष यह है कि बीमारी थोड़े वक़्त के लिए सुख को कम कर देती है, लेकिन यह उसी सूरत में दीर्घकालिक तक़लीफ़ का स्रोत होती है अगर किसी व्यक्ति की हालत लगातार बिगड़ती जा रही हो या बीमारी की वजह से निरन्तर और उत्तरोत्तर दुर्बल बनाते जाने वाली पीड़ा हो रही हो। जिन लोगों को डायबिटीज़ जैसी लम्बे समय की बीमारी होने का पता चलता है, वे आम तौर से थोड़ी देर के लिए मायूस ज़रूर हो जाते हैं, लेकिन अगर उनकी बीमारी किसी बदतर हालत में नहीं पहुँच जाती, तो वे अपने हालात के साथ तालमेल बैठा लेते हैं और ख़ुद को तन्दुरुस्त लोगों जितना ही सुखी अनुभव करते हैं। कल्पना करिए कि लूसी और ल्यूक मध्यवर्गीय जुड़वां हैं, जो व्यक्तिनिष्ठ ख़ुशहाली के अध्ययन में हिस्सा लेने को राज़ी हो जाते हैं। साइकोलॉजी लैबोरेटरी से लौटते समय लूसी की कार एक बस से टकरा जाती है और लूसी की कई हड्डियाँ टूट जाती हैं तथा वह एक पाँव से हमेशा के लिए लँगड़ी हो जाती है। ठीक जिस वक़्त बचाव दल के लोग उसे कार के मलबे से निकालने की कोशिश में लगे हुए हैं, उसी वक़्त फ़ोन की घण्टी बजती है और ल्यूक चिल्लाता है कि उसने लॉटरी का $10,000,000 जैकपॉट जीत लिया है। दो साल बाद, लूसी लँगड़ाकर चल रही होगी और ल्यूक बहुत धनाढ्य होगा, लेकिन जब वह मनोविज्ञानी आगे के अध्ययन के सिलसिले में आता है, तो इस बात की पूरी सम्भावना है कि दोनों मनोवैज्ञानिक के सवालों के वही जवाब दें, जो उन्होंने उस दुर्घटना वाली सुबह दिए थे।

परिवार और समुदाय हमारे सुख पर पैसे और तन्दुरुस्ती से कहीं ज़्यादा प्रभाव डालते लगते हैं। मज़बूत परिवारों वाले जो लोग संगठित और मददगार समुदायों में रहते हैं, वे उन लोगों की तुलना में ख़ासे सुखी होते हैं, जिनके परिवार निष्क्रिय हो चुके हैं और जिनको कभी किसी समुदाय का हिस्सा बनने का अवसर नहीं मिला (या उन्होंने इसकी कोशिश नहीं की)। विवाह विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। बार-बार दोहराए गए अध्ययनों से पता चला है कि अच्छे विवाहों और उच्च स्तरीय व्यक्तिनिष्ठ ख़ुशहाली के बीच तथा बुरे विवाहों और दुःख के बीच बहुत क़रीबी आपसी सम्बन्ध होता है। इस वास्तविकता पर आर्थिक, यहाँ तक कि शारीरिक परिस्थितियों का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्यार करने

वाले जीवन-साथी, अनुरागी परिवार और स्नेही समुदाय से घिरा एक निर्धन अपंग व्यक्ति किसी अलगावग्रस्त अरबपति के मुक़ाबले बेहतर महसूस कर सकता है, बशर्ते कि उस अपाहिज व्यक्ति की निर्धनता बहुत दारुण ना हो और उसकी बीमारी उसे लगातार कमज़ोर करती जाने वाली या पीड़ादायी ना हो।

इससे यह सम्भावना उभरती है कि पिछली दो सदियों के दौरान भौतिक परिस्थितियों में जो अपरिमित सुधार हुआ है, वह परिवार और समुदाय के ध्वस्त होने से हुए नुक़सान की भरपाई है। अगर ऐसा है, तो मुमकिन है एक औसत व्यक्ति आज उससे ज़्यादा सुखी ना हो, जितना वह 1800 में हुआ करता था। यहाँ तक कि जिस स्वतन्त्रता को हम इतना महत्त्व देते हैं, वह मुमकिन है हमारे ख़िलाफ़ जाती हो। हम अपने जीवन-साथी, दोस्त या पड़ोसी चुन सकते हैं, लेकिन वे चाहें तो हमें छोड़कर जा सकते हैं। एक ऐसे समय में जब व्यक्ति जीवन के अपने ख़ुद के रास्ते को चुनने की अपूर्व शक्ति का इस्तेमाल करता है, वचनबद्ध होना हमारे लिए उत्तरोत्तर मुश्किल होता जा रहा है। इस तरह हम उधड़ते हुए समुदायों और परिवारों की उत्तरोत्तर अकेली होती जाती दुनिया में रह रहे हैं।

लेकिन सारे निष्कर्षों का सार यह है कि सुख वास्तव में ना तो सम्पत्ति और आरोग्य की वस्तुपरक परिस्थितियों पर निर्भर करता है और ना ही समुदाय की। इसके बजाय यह वस्तुनिष्ठ परिस्थितियों और व्यक्तिनिष्ठ अपेक्षाओं के पारस्परिक सम्बन्ध पर निर्भर करता है। अगर आप एक बैलगाड़ी चाहते हैं और आपको बैलगाड़ी मिल जाती है, तो आप सन्तुष्ट हो जाते हैं। अगर आप एक एकदम नई फ़ेर्रारी चाहते हैं और आपको सेकंड हैंड फ़िएट मिल पाती है, तो आप वंचित महसूस करते हैं। यही वजह है कि लॉटरी जीतने का समय बीतने के साथ लोगों पर वही प्रभाव पड़ता है, जो अपाहिज़ बना देने वाली कार दुर्घटना का पड़ता है। जब स्थितियाँ बेहतर होती हैं, तो उम्मीदें गुब्बारे की तरह फूल जाती हैं, और तब वस्तुनिष्ठ परिस्थितियों में ज़बरदस्त सुधार भी हमें असन्तुष्ट छोड़ दे सकता है। जब हालात बिगड़ जाते हैं, उम्मीदें सिकुड़ जाती हैं, और तब एक गम्भीर बीमारी के बावजूद आप उतने ही सुखी बने रह सकते हैं, जितने आप पहले थे।

आप कह सकते हैं कि इतनी-सी बात को जानने के लिए हमें मनोविज्ञानियों और उनकी प्रश्नावलियों की क्या ज़रूरत है। भविष्यवक्ताओं, कवियों और दार्शनिकों को हज़ारों साल पहले इस बात का अहसास हो गया था कि जो कुछ आपके पास पहले से है, उससे सन्तुष्ट होना कहीं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है, बजाय इसके जो आप चाहते हैं, उसे हासिल करने के। तब भी यह अच्छा है जब आधुनिक अनुसन्धान ढेर सारी संख्याओं और तालिकाओं की मदद से उन्हीं नतीज़ों पर पहुँचते हैं, जिन पर प्राचीन लोग पहुँचे थे।

सुख के इतिहास को समझने के लिए मानवीय अपेक्षाओं के निर्णायक महत्त्व के दूरगामी निहितार्थ हैं। सुख अगर सम्पत्ति, आरोग्य और सामाजिक सम्बन्धों पर निर्भर करता होता, तो उसके इतिहास की पड़ताल करना अपेक्षाकृत आसान होता, लेकिन यह निष्कर्ष कि यह व्यक्तिनिष्ठ उम्मीदों पर निर्भर करता है, इतिहासकारों के काम को कहीं ज़्यादा मुश्किल बना देता है। हम आधुनिकों के पास तनाव और दर्द से मुक्ति दिलाने वाली दवाओं का एक समूचा ज़ख़ीरा मौजूद है, लेकिन शान्ति और आनन्द की हमारी अपेक्षाएँ और असुविधाओं और कष्ट के प्रति हमारी असहनशीलता इस क़दर बढ़ चुकी है

कि पीड़ा का असर हम पर उससे कहीं ज़्यादा हो सकता है, जितना हमारे पूर्वजों को होता था।

सोचने के इस ढंग को स्वीकार करना मुश्किल है। समस्या उस भ्रान्त तर्क की है, जो हमारी मानसिकता में गहरे बैठा हुआ है। जब हम इस बात का अनुमान या कल्पना करने की कोशिश करते हैं कि आज दूसरे लोग कितने सुखी हैं या अतीत के लोग कितने सुखी थे, तो हम अपरिहार्य रूप से ख़ुद को उनकी जगह पर रखकर देखते हैं, लेकिन यह ढंग कारगर नहीं है क्योंकि यह हमारी अपेक्षाओं को दूसरे लोगों की भौतिक परिस्थितियों से संलग्न कर देता है। आधुनिक समृद्ध समाजों में लोग आमतौर से हर दिन नहाकर कपड़े बदलते हैं। मध्ययुग के किसान महीनों बिना नहाए रहते थे और अपने कपड़े शायद ही कभी बदलते थे। गन्दे ढंग से और बदबू मारते हुए उस तरह रहने का विचार मात्र हमारे लिए जुगुप्सा से भर देने वाला है, लेकिन मध्ययुग के किसान इस पर कोई ध्यान देते नहीं लगते थे। उन्हें लम्बे समय से बिना धुली कमीज़ के स्पर्श और गन्ध की आदत पड़ चुकी थी। ऐसा नहीं था कि वे कपड़े बदलना तो चाहते थे, लेकिन बदल नहीं पाते थे - उनके पास वह सब होता था, जो वे चाहते थे। इसलिए, जहाँ तक कपड़ों का सवाल है, वे सन्तुष्ट थे।

जब आप इसके बारे में सोचते हैं, तो यह इतनी आश्चर्य की बात नहीं लगती। आख़िरकार हमारे चचेरे भाई-बहन चिंपांज़ी गाहे-ब-गाहे ही नहाया करते थे और कपड़े तो कभी बदलते ही नहीं थे। ना ही हमें इस बात से कोई घृणा होती है कि हमारे पालतू कुत्ते और बिल्लियाँ रोज़ नहाते नहीं हैं या अपने कपड़े नहीं बदलते। हम इसके बावजूद उन्हें दुलारते, गले लगाते और चूमते हैं। समृद्ध समाजों के बच्चे भी प्रायः नहाना ना पसन्द करते हैं और वे कथित रूप से आकर्षक इस दस्तूर को अपना लें, इसके लिए वर्षों की शिक्षा और अभिभावकीय अनुशासन ज़रूरी होता है। यह पूरा का पूरा अपेक्षाओं का मसला है।

अगर सुख अपेक्षाओं से निर्धारित होता है, तो हमारे समाज के दो स्तम्भ - जनसंचार माध्यम और विज्ञापन उद्योग - अनजाने ही भूमण्डल के सन्तोष के भण्डार को ख़ाली करने में लगे हो सकते हैं। अगर आप 5,000 साल पहले के किसी छोटे-से गाँव के अठारह साल के एक नौजवान होते, तो शायद आपको लगता आप सुन्दर दिखते हैं क्योंकि उस गाँव में आपके अलावा पचास और पुरुष होते और उनमें से ज़्यादातर बूढ़े, घावों के निशानों और झुर्रियों से युक्त होते, या फिर उनमें से ज़्यादातर अभी बच्चे होते, लेकिन अगर आप आज के समय के एक किशोर हैं, तो इस बात की बेहद सम्भावना है कि आप ख़ुद को अधूरा महसूस करें। अगर आपके स्कूल के दूसरे सारे बच्चे बदसूरत भी होंगे, तो भी आप अपनी तुलना उनसे करने के बजाय उन फ़िल्मी सितारों, एथलीटों और सुपरमॉडलों से करेंगे, जिन्हें आप रोज़ टेलिविज़न, फ़ेसबुक और सड़कों-चौराहों पर लगे विशालकाय विज्ञापनों में देखते हैं।

इसलिए, मुमकिन है कि तीसरी दुनिया के असन्तोष को भड़काने वाली चीज़ों में सिर्फ़ ग़रीबी, बीमारियाँ, भ्रष्टाचार और राजनैतिक दमन ही नहीं, बल्कि पहली दुनिया के अमीर औद्योगिक देशों के मापदण्डों से महज़ उनका सामना होना भी शामिल हो। होस्नी मुबारक़ के शासन में एक औसत मिस्रवासी की भूख, महामारी या हिंसा से मरने की

सम्भावनाएँ, उसके मुक़ाबले बहुत कम थीं, जितनी वे रेमसेस II या क्लियोपात्रा के ज़माने में हुआ करती थीं। ज़्यादातर मिस्रवासियों की भौतिक परिस्थितियाँ इतनी अच्छी इससे पहले कभी नहीं थीं। आपको लगेगा कि वे 2011 में सड़कों पर नाच रहे होंगे और अपनी ख़ुशक़िस्मती के लिए अल्लाह का शुक्रिया अदा कर रहे होंगे, लेकिन इसकी बजाय वे मुबारक़ का तख़्ता पलटने के लिए उठ खड़े हुए थे। वे अपनी तुलना फ़ैरोओं के अधीन रहे अपने पूर्वजों से नहीं कर रह थे, वे तुलना कर रहे थे ओबामा के अमेरिका में रहने वाले अपने समकालीनों से।

46. मिस्र की क्रान्ति, 2011 मिस्र के लोगों ने मुबारक के शासन के ख़िलाफ़ बग़ावत की, इसके बावजूद कि इस शासन ने उन्हें नील घाटी के इतिहास के किसी भी शासन के मुक़ाबले ज़्यादा सुरक्षित और लम्बा जीवन उपलब्ध कराया था।

अगर मामला यह है, तो अमरता भी असन्तोष की ओर ले जा सकती है। कल्पना कीजिए कि विज्ञान तमाम बीमारियों का निदान, उम्र बढ़ने के ख़िलाफ़ कारगर चिकित्सा-पद्धतियाँ और ऐसे इलाज़ लेकर आ जाता है, जो लोगों को हमेशा नौजवान बनाए रख सकती हैं। पूरी सम्भावना है कि इसके नतीज़े में गुस्से और बेचैनी की अपूर्व महामारी भड़क उठे।

जो लोग इन नई चमत्कारी चिकित्साओं का ख़र्च उठा पाने में असमर्थ होंगे - जिनमें बहुसंख्यक लोग शामिल होंगे - उनके लिए अपने गुस्से को क़ाबू कर पाना असम्भव होगा। समूचे इतिहास के दौरान, ग़रीब और उत्पीड़ित लोग ख़ुद को यह सोचकर सान्त्वना देते आए हैं कि कम से कम मृत्यु किसी तरह का पक्षपात नहीं करती कि अमीर और

ताक़तवर लोग भी मरेंगे। ग़रीब लोग यह सोचकर बेचैन हो उठेंगे कि वे तो मर जाएँगे, जबकि अमीर लोग हमेशा-हमेशा नौजवान और ख़ूबसूरत बने रहेंगे।

लेकिन जो मुट्ठी भर लोग इन नई चिकित्साओं का लाभ उठाने में सक्षम होंगे वे भी उल्लास से नहीं भर उठेंगे। उन्हें परेशान करने वाला भी बहुत कुछ होगा। यद्यपि ये नई चिकित्सा-पद्धतियाँ जीवन और यौवन में वृद्धि करेंगीं, लेकिन वे मुर्दों को ज़िन्दा नहीं कर सकेंगी। यह सोचना कितना भयावह है कि मैं और मेरे प्रियजन हमेशा जीवित बने रह सकते हैं, लेकिन तभी जबकि हमें कोई ट्रक टक्कर ना मार दे या किसी आतंकवादी द्वारा हमारे धुर्रे ना उड़ा दिए जाएँ! सम्भावित तौर पर अमर लोग मामूली से मामूली जोख़िम उठाने को लेकर अनिच्छुक हो जाएँगे और अपने जीवन-साथी, बच्चे या किसी घनिष्ठ मित्र को खो देने की यातना असहनीय हो उठेगी।

रासायनिक सुख

समाजविज्ञानी व्यक्तिनिष्ठ ख़ुशहाली से सम्बन्धित प्रश्नावली बाँटते हैं और उससे प्राप्त नतीजों का आपसी रिश्ता सम्पत्ति और राजनैतिक स्वतन्त्रता जैसे सामाजिक-आर्थिक कारकों से जोड़ने की कोशिश करते हैं। जीवविज्ञानी भी उसी प्रश्नावली का इस्तेमाल करते हैं लेकिन लोग जो जवाब देते हैं उनका रिश्ता जीवरासायनिक और जेनेटिक कारकों से जोड़कर देखते हैं। उनके निष्कर्ष चौंकाने वाले हैं।

जीवविज्ञानियों का मानना है कि हमारी मानसिक और भावनात्मक दुनिया विकास-प्रक्रिया के लाखों सालों के दौरान ढले जीवरासायनिक तन्त्र से अनुशासित होती है। तमाम दूसरी मानसिक अवस्थाओं की तरह ही हमारी व्यक्तिनिष्ठ ख़ुशहाली वेतन, सामाजिक रिश्तों या राजनैतिक अधिकारों जैसे बाहरी मापदण्डों से निर्धारित नहीं होती। इसके बजाय वह स्नायुओं, तन्त्रिका कोशिकाओं, सिनेप्सों और बहुतेरे जीवरासायनिक पदार्थों, जैसे कि सेरोटोनिन, डोपामाइन और ऑक्सीटोसिन से निर्धारित होती है।

लॉटरी जीतने, मकान ख़रीद लेने, पदोन्नति हासिल करने, यहाँ तक कि सच्चा प्रेम पाने से भी कभी कोई सुखी नहीं हुआ। लोग एक और सिर्फ़ एक चीज़ से सुखी होते हैं - शरीर की सुखद अनुभूतियों से। जिस महिला ने अभी-अभी लॉटरी जीती है या सच्चा प्रेम पा लिया है और वह आनन्द से उछल रही है, वह वास्तव में पैसे या प्रेमी को लेकर प्रतिक्रिया नहीं कर रही है। वह दरअसल उसके रक्त-प्रवाह के माध्यम से आनन्द से उन्मत्त हो रहे विभिन्न हार्मोनों और उसके मस्तिष्क के विभिन्न हिस्सों के बीच कौंध रहे विद्युत संकेतों के हंगामे पर प्रतिक्रिया कर रही होती है।

यह पृथ्वी पर स्वर्ग की रचना करने की सारी उम्मीदों का दुर्भाग्य है कि हमारी आन्तरिक जीवरासायनिक प्रणाली कुछ इस तरह निर्मित प्रतीत होती है कि वह सुख के स्तर को अपेक्षाकृत स्थिर बनाए रखती है। अपने आप में सुख के लिए कोई प्राकृतिक वरण नहीं है - एक संन्यासी के उद्विग्न अभिभावकों के जीन जैसे ही अगली पीढ़ी में स्थानान्तरित होंगे, वैसे ही उस संन्यासी की जेनेटिक शृंखला लुप्त हो जाएगी। सुख और दु:ख विकास प्रक्रिया में इसी हद तक भूमिका निभाते हैं कि वे उत्तरजीविता (सर्वाइवल) और प्रजनन को प्रोत्साहित या हतोत्साहित करते हैं। ऐसे में यह आश्चर्य की बात नहीं है

कि विकास-प्रक्रिया ने हमें ना तो बहुत दुःखी होने के लिए ढाला है और ना ही बहुत सुखी होने के लिए। यह हमें सुखद अनुभूतियों के क्षणिक प्रवाह का आनन्द लेने में सक्षम बनाती है, लेकिन ये अनुभूतियाँ कभी भी हमेशा के लिए नहीं बनी रहतीं। आगे-पीछे वे शान्त हो जाती हैं और उनकी जगह अप्रिय अनुभूतियाँ ले लेती हैं।

उदाहरण के लिए, विकास-प्रक्रिया ने उन नरों के लिए पुरस्कार के तौर पर सुखद अनुभूतियाँ उपलब्ध कराई हैं, जो प्रजनन में सक्षम मादाओं के साथ संसर्ग कर अपने जीन फैलाते हैं। अगर इस तरह के आनन्द के साथ काम-भावना जुड़ी हुई ना होती, तो बहुत कम नर इस कर्म में संलग्न होते। इसी के साथ विकास-प्रक्रिया ने यह भी सुनिश्चित किया कि ये सुखद अनुभूतियाँ जल्दी ही ठण्डी पड़ जाएँ। अगर कामोत्तजना की चरम अवस्था हमेशा के लिए बनी रहने वाली होती, तो यही सुखी नर भोजन में रुचि के अभाव की वजह से भूख से मर जाते, और प्रजनन में सक्षम किन्हीं दूसरी मादाओं की ओर देखते भी नहीं।

कुछ अध्येता मनुष्यों की जैवरसायनिकी की तुलना उस वातानुकूलन प्रणाली से करते हैं, जो तापमान को स्थिर बनाए रखती है, चाहे लू चल रही हो या बर्फ़ीली आँधी आ रही हो। घटनाएँ क्षणिक तौर पर तापमान में बदलाव ला सकती हैं, लेकिन वातानुकूलन प्रणाली तापमान को हमेशा निर्धारित बिन्दु पर वापस ले आती है।

कुछ वातानुकूलन प्रणालियाँ पच्चीस डिग्री सेल्सियस पर सेट होती हैं। कुछ बीस डिग्री पर सेट होती हैं। इसी तरह मनुष्य के सुख के अनुकूलन की प्रणालियाँ भी अलग-अलग व्यक्तियों के सन्दर्भ में अलग-अलग होती हैं। एक से दस तक के पैमाने पर कुछ लोग ऐसी ख़ुशमिजाज़ जैवरासायनिकी के साथ पैदा होते हैं, जो उनकी मनःस्थिति को छह और दस के बीच के स्तरों पर डोलते रहने और समय के साथ आठ पर स्थिर होने की गुंजाइश देती है। ऐसा व्यक्ति ख़ासा सुखी रहता है, भले ही वह किसी अलगावग्रस्त महानगर में क्यों ना रहता हो, उसने स्टॉक एक्सचेंज की गिरावट में अपना सारा पैसा क्यों ना गँवा दिया हो और उसे मधुमेह की बीमारी क्यों ना हो गई हो, जबकि कुछ लोग ऐसी मायूस कर देने वाली जैवरासायनिकी से अभिशप्त होते हैं, जो तीन और सात के बीच डोलती रहती है और पाँच पर जाकर स्थिर हो जाती है। इस तरह का दुःखी व्यक्ति अवसाद में डूबा रहता है, भरे ही उसे किसी संगठित समुदाय का सहारा मिला हुआ हो, उसने लाखों की लॉटरी जीत ली हो और किसी ओलम्पिक एथलीट जितना तंदुरुस्त क्यों ना हो। निश्चय ही, अगर हमारा यह मायूस दोस्त सुबह-सुबह $50,000,000 की लॉटरी जीत जाए, दोपहर तक उसे एड्स और कैन्सर दोनों बीमारियों के निदान का पता लग जाए, और शाम होते-होते उसे सालों पहले ग़ायब हुआ अपना बच्चा मिल जाए - तब भी वह सात के स्तर के सुख से आगे कुछ भी महसूस कर पाने में असमर्थ होगा। उसके दिमाग़ की बनावट ही ऐसी है कि चाहे कितनी भी बड़ी ख़ुशी उसके जीवन में आ जाए, वह उल्लास का अनुभव नहीं कर सकता।

थोड़ी देर के लिए अपने परिवार और दोस्तों के बारे में सोचिए। आप ऐसे कुछ लोगों को जानते हैं, जो अपेक्षाकृत ज़िन्दादिल बने रहते हैं, भरे ही वे किसी भी मुसीबत में क्यों ना पड़े हों। और फिर ऐसे लोग भी हैं, जिनके क़दमों में दुनिया ने कैसी भी सौगातें क्यों ना बिछा दी हों, वे हमेशा चिड़चिड़े बने रहते हैं। हमें ऐसा लगता है कि अगर हम किसी

दूसरी जगह काम करने लगें, शादी कर लें, अपना उपन्यास पूरा कर लें, नई कार ख़रीद लें या गिरवी की रक़म चुका दें, तो हम बहुत सुखी हो जाएँगे। तब भी, जब हमारी सारी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं, तो भी हम पहले से ज़्यादा सुखी नहीं हो पाते। कार ख़रीद लेने या उपन्यास लिख डालने से हमारी जैवरासायनिकी में बदलाव नहीं आ जाता। ये चीज़ें पल भर के लिए उसे उत्प्रेरित तो कर सकती हैं, लेकिन जल्दी ही वह अपने निर्धारित बिन्दु पर आकर ठहर जाती है।

इस चीज़ की तुलना उन ऊपर उल्लिखित निष्कर्षों से कैसे की जा सकती है कि उदाहरण के लिए, विवाहित लोग औसतन अकेले जीवन गुज़ारने वाले लोगों के मुक़ाबले ज़्यादा सुखी होते हैं? पहली चीज़, ये निष्कर्ष सहसम्बन्ध हैं - कारण-कार्य-सम्बन्ध की दिशा उसके उलट भी हो सकती है, जैसा कि कुछ अध्येता मानकर चलते हैं। यह सही है कि विवाहित लोग अविवाहित या तलाक़शुदा लोगों के मुक़ाबले सुखी होते हैं, लेकिन इसका अनिवार्यतः यह मतलब नहीं है कि विवाह सुख को उत्पन्न करते हैं। यह भी मुमकिन है कि सुख विवाह का कारण हो। या और भी सही यह कहना होगा कि सेरोटोनिन, डोपामाइन और ऑक्सीटॉसिन विवाह को उत्पन्न और पोषित करते हैं। जो लोग ख़ुशमिजाज़ जैवरासायनिकी के साथ पैदा होते हैं, वे आम तौर से सुखी और सन्तुष्ट होते हैं। ऐसे लोग ज़्यादा आकर्षक जीवनसाथी होते हैं, और इसलिए उनके विवाह होने की ज़्यादा सम्भावनाएँ होती हैं। उनके तलाक़ लेने की भी कम सम्भावनाएँ होती हैं क्योंकि एक सुखी और सन्तुष्ट जीवनसाथी के साथ रहना ज़्यादा आसान होता है, बजाय एक अवसादग्रस्त और असन्तुष्ट जीवनसाथी के। नतीज़तन, यह सही है कि विवाहित लोग औसतन अविवाहित लोगों के मुक़ाबले सुखी होते हैं, लेकिन अपनी जैवरासायनिकी की वजह से उदासी की ओर झुकी अकेली स्त्री ज़रूरी नहीं कि किसी पति के साथ बँध जाने के बाद सुखी हो जाए।

इसके अतिरिक्त, ज़्यादातर जीवविज्ञानी कट्टरपन्थी नहीं हैं। वे यह तो मानते हैं कि सुख मुख्यतः जैवरासायनिकी से निर्धारित होता है, लेकिन वे इस बात पर भी सहमत हैं कि इसमें मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कारक भी योगदान करते हैं। हमारी मानसिक वातानुकूलन प्रणाली को पूर्वनिर्धारित सीमाओं के भीतर आवाजाही करने की कुछ स्वतन्त्रता मिली हुई है। ऊपरी और निचली भावनात्मक सीमाओं के बाहर क़दम रखना लगभग असम्भव है, लेकिन इन दोनों के बीच की जगह पर विवाह और तलाक़ अपना प्रभाव डाल सकते हैं। सुख के औसत स्तर के साथ जन्मी कोई स्त्री कभी सड़कों पर पागलों की तरह नहीं नाचेगी, लेकिन एक अच्छा विवाह उसे समय-समय पर सातवें स्तर का स्तर का आनन्द लेने और तीसरे स्तर की मायूसी से बचने की गुंजाइश दे सकता है।

अगर हम सुख के सन्दर्भ में जीववैज्ञानिक दृष्टिकोण को स्वीकार कर लेते हैं, तो इतिहास का महत्त्व बहुत कम हो जाता है, क्योंकि तब ज़्यादातर ऐतिहासिक घटनाओं का हमारी जैवरासायनिकी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इतिहास उन बाहरी उद्दीपनों में बदलाव ला सकता है, जिनकी वजह से सेरोटोनिन का रिसाव होता है, तब भी यह उन उद्दीपनों के कारण पैदा हुए सेरोटोनिन के स्तर में कोई बदलाव नहीं ला सकता, और इसलिए वह लोगों के सुख में इज़ाफ़ा नहीं कर सकता।

एक मध्ययुगीन फ़्रांसीसी किसान की पेरिस के एक आधुनिक बैंककर्मी से तुलना करें। वह किसान एक स्थानीय सूअरबाड़े की ओर खुलती ठण्डी कच्ची झोंपड़ी में रहता था, जबकि यह बैंककर्मी तमाम टेक्नोलॉजिकल उपकरणों से लैस और शाँज़िलीज़ी की ओर खुलते भव्य अपार्टमेंट में रहता है। हम सहज ही उम्मीद करेंगे कि यह बैंककर्मी उस किसान के मुक़ाबले ज़्यादा सुखी होगा, लेकिन कच्ची झोंपड़ी, अपार्टमेंट और शाँज़िलीज़ी वास्तव में हमारी मनःस्थिति को तय नहीं करते। सेरोटोनिन करता है। जब उस मध्ययुगीन किसान ने अपनी कच्ची झोंपड़ी का निर्माण पूरा कर लिया था, तो उसके मस्तिष्क की तन्त्रिका कोशिकाओं से सेरोटोनिन का रिसाव हुआ था, जिससे सेरोटोनिन का स्तर X तक पहुँच गया था। जब 2013 में इस बैंककर्मी ने अपने अद्भुत अपार्टमेंट का अन्तिम भुगतान किया था, तो उसके मस्तिष्क की तन्त्रिका कोशिकाओं ने भी उतने ही सेरोटानिन का रिसाव करते हुए उसके स्तर को उसी X तक पहुँचा दिया था। मस्तिष्क के लिए इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि अपार्टमेंट कच्ची झोंपड़ी के मुक़ाबले ज़्यादा आरामदायक होता है। जो एकमात्र चीज़ मायने रखती है, वह यह है कि फ़िलहाल सेरोटोनिन का स्तर X है। नतीज़तन, यह बैंककर्मी अपने पितामह-के-पितामह-के-पितामह, उस बेचारे मध्ययुगीन किसान से रत्ती भर भी ज़्यादा सुखी नहीं होगा।

यह बात सिर्फ़ निजी ज़िन्दगियों के सन्दर्भ में ही सही नहीं है, बल्कि बड़ी सामूहिक घटनाओं के सन्दर्भ में भी सही है। उदाहरण के लिए फ़्रांसीसी क्रान्ति को ही लें। क्रान्तिकारी व्यस्त थे : उन्होंने सम्राट को मौत के घाट उतार दिया था, ज़मीनें किसानों में बाँट दी थीं, पुरुषों के अधिकारों की घोषणा कर दी थी, कुलीनों के विशेषाधिकार समाप्त कर दिए थे और समूचे यूरोप के ख़िलाफ़ युद्ध छेड़ दिया था, लेकिन इनमें से किसी भी चीज़ ने फ़्रांसीसी जैवरासायनिकी को नहीं बदला। नतीज़तन, क्रान्ति द्वारा पैदा की गई सारी राजनैतिक, सामाजिक, वैचारिक और आर्थिक उथल-पुथल के बावजूद फ़्रांसीसी सुख पर इसका प्रभाव बहुत कम हुआ। जिन लोगों ने जेनेटिक लॉटरी में ख़ुशमिजाज़ जैवरासायनिकी जीत ली थी, वे क्रान्ति के पहले भी उतने ही सुखी थे, जितने क्रान्ति के बाद थे। जिनकी जैवरासायनिकी विषादग्रस्त थी, वे रॉब्सपियर और नेपोलियन को लेकर उतनी ही कड़वाहट से भर कर शिकायतें कर रहे थे, जितनी कड़वाहट के साथ पहले लुई XVI और मैरी अन्तोनेत को लेकर शिकायतें किया करते थे।

अगर ऐसा है तो फ़्रांसीसी क्रान्ति किस तरह से अच्छी थी? अगर लोग ज़रा भी सुखी नहीं हुए, तो फिर उस सारी अराजकता, ख़ौफ़, ख़ूनख़राबे और युद्ध का क्या मतलब था? जीवविज्ञानियों ने कभी भी बास्तील के क़िले पर हमला ना किया होता। लोग सोचते हैं कि यह राजनैतिक क्रान्ति या वह सामाजिक सुधार उन्हें सुखी बना देगा, लेकिन उनकी जीवरासायनिकी उन्हें हर बार धता बता देती है।

सिर्फ़ एक ही ऐसी ऐतिहासिक घटना है जिसका वास्तविक महत्त्व है। आज जब हम अन्ततः समझने लगे हैं कि सुख की कुंजियाँ हमारी जैवरासायनिक प्रणाली के हाथों में हैं, हम राजनैतिक और सामाजिक सुधारों, क्रान्तियों और विचारधाराओं पर अपना वक़्त बरबाद करना बन्द कर सकते हैं, और उस एकमात्र चीज़ पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं जो हमें सचमुच सुखी बना सकती है : अपनी जैवरासायनिकी में जोड़तोड़ करने पर। अगर हम अपने मस्तिष्क की रासायनिकी को समझने और सटीक चिकित्साएँ

विकसित करने पर करोड़ों डॉलर ख़र्च करें, तो हम बिना कोई क्रान्ति लाए लोगों को ज़्यादा सुखी बना सकेंगे। उदाहरण के लिए प्रोज़ेक शासन-व्यवस्थाओं को नहीं बदलती, लेकिन सेरोटोनिन के स्तर में इज़ाफ़ा करके लोगों को उनके अवसाद से उबार लेती है। 'सुख की शुरुआत भीतर से होती है' : नए युग के इस प्रसिद्ध नारे से बेहतर कोई और चीज़ जीववैज्ञानिक तर्क को नहीं पकड़ती। पैसा, सामाजिक हैसियत, प्लास्टिक सर्जरी, ख़ूबसूरत मकान, ताक़तवर पद - इनमें से कोई भी चीज़ आपको सुखी नहीं बनाएगी। टिकाऊ सुख सिर्फ़ सेरोटोनिन, डोपामाइन और ऑक्सीटोसिन से आता है।

आतंक और अत्याचार से भरी दुनिया के बारे में लिखे गए एल्डस हक्सले के उपन्यास 'ब्रेव न्यू वर्ल्ड' में सुख सबसे बड़ा मूल्य है और मानसिक रोगों से सम्बन्धित दवाएँ राजनीति की बुनियाद के तौर पर पुलिस और मतपत्र की जगह ले लेती हैं। यह उपन्यास महामन्दी (ग्रेट डिप्रेशन) की पराकाष्ठा के दौर में 1932 में प्रकाशित हुआ था। हर दिन हर व्यक्ति 'सोमा' ब्रांड की एक ख़ुराक लेता है, जो एक सिन्थेटिक ड्रग कैरिसोप्रोडॉल है। यह लोगों की उत्पादन-क्षमता और दक्षता को नुक़सान पहुँचाए बग़ैर उन्हें सुखी बना देती है। समूचे भूमण्डल पर शासन करने वाले वर्ल्ड स्टेट को युद्धों, क्रान्तियों, हड़तालों या प्रदर्शनों का कभी कोई ख़ौफ़ नहीं सताता, क्योंकि सारे लोग अपनी मौजूदा परिस्थितियों से, चाहे वे परिस्थितियाँ कैसी भी क्यों ना हों, परम सन्तुष्ट हैं। हक्सले की यह भविष्य-दृष्टि जॉर्ज ऑरवेल के उपन्यास नाइटीन ऐटीफ़ोर के मुक़ाबले ज़्यादा विचलित करने वाली है। हक्सले की दुनिया ज़्यादातर पाठकों को दानवीय प्रतीत होती है, लेकिन यह समझ पाना मुश्किल है कि क्यों। हर कोई हर समय सुखी है - इसमें ग़लत क्या हो सकता है?

जीवन का अर्थ

हक्सले की विचलित कर देने वाली दुनिया इस जीववैज्ञानिक पूर्वमान्यता पर आधारित है कि सुख (हैप्पीनेस) आनन्द (प्लेज़र) के बराबर होता है। सुखी होना आनन्ददायी शारीरिक अनुभूतियों को अनुभव करने से ज़्यादा या कम नहीं है। चूँकि हमारी जैवरासायनिकी इन अनुभूतियों की मात्रा और मियाद को सीमित करती है, इसलिए लोगों को लम्बे समय तक सुख के उच्च स्तर को अनुभव कराने का एकमात्र तरीक़ा उनकी जैवरासायनिक प्रणाली को नियन्त्रित करना है।

लेकिन कुछ अध्येता सुख की इस परिभाषा का विरोध करते हैं। अर्थशास्त्र के नोबेल पुरस्कार विजेता डैनियल कानमन ने अपने एक प्रसिद्ध अध्ययन में लोगों से उनके कामकाज़ के एक सामान्य दिन का वर्णन करने को कहा था। उन्होंने उनसे एक के बाद एक प्रसंग का बयान करने और इस बात का मूल्यांकन करने को कहा था कि हर क्षण का उन्होंने कितना आनन्द लिया या उसे कितना नापसन्द किया। उन्हें एक ऐसी चीज़ का पता लगा, जो अपनी ज़िन्दगियों के बारे में ज़्यादातर लोगों को एक विरोधाभास प्रतीत होता है। एक बच्चे के पालन-पोषण से ताल्लुक रखने वाले काम को ही लें। कानमन ने पाया कि एक बच्चे के पालन-पोषण के दौरान आने वाले आनन्द के क्षणों और नीरसता के क्षणों की गणना करने पर यह काम एक अरुचिकर मसला साबित होता है। इसमें

ज़्यादातर बच्चे की लंगोटियाँ बदलने, बर्तन माँजने और बच्चे की चीख़-पुकारों और उछलकूद से निपटने जैसी चीज़ें शामिल होती हैं, जिन्हें कोई पसन्द नहीं करता। तब भी ज़्यादातर अभिभावक कहते हैं कि बच्चे उनके सुख का मुख्य स्रोत हैं। क्या इसका यह मतलब है कि लोगों को वाक़ई इस बात की जानकारी नहीं होती कि उनके लिए अच्छा क्या है?

यह एक विकल्प है। दूसरा यह है कि निष्कर्ष बताते हैं कि सुख अप्रिय क्षणों के मुक़ाबले प्रिय क्षणों का अतिरिक्त होना नहीं है। इसके बजाय सुख जीवन को उसकी समग्रता में अर्थपूर्ण और आनन्ददायी रूप में देखना है। सुख का एक महत्त्वपूर्ण संज्ञानात्मक और नैतिक घटक है। हमारे मूल्य इस बात पर गहरा प्रभाव डालते हैं कि हम ख़ुद को किसी 'शिशु तानाशाह के दयनीय ग़ुलाम' की तरह देखते हैं या 'एक नए जीवन का प्यार भरे ढंग से पोषण करने वाले व्यक्ति' के रूप में देखते हैं। जैसा कि नीत्शे कहते हैं, "अगर आपके पास जीने का एक कारण मौजूद है, तो आप किसी भी तरह के ढंग को सह सकते हैं। एक अर्थपूर्ण जीवन मुसीबतों के बीच भी अत्यन्त सन्तोषजनक हो सकता है, जबकि एक अर्थहीन जीवन भयानक अग्निपरीक्षा होता है, भरे ही वह कितना ही आरामदायक क्यों ना हो।

यद्यपि सारी संस्कृतियों और युगों के लोगों ने एक ही तरह के आनन्दों और पीड़ाओं को महसूस किया है, लेकिन उन्होंने अपने अनुभवों को जो अर्थ प्रदान किए हैं, वे शायद व्यापक रूप से अलग-अलग तरह के हैं। अगर ऐसा है, तो सुख का इतिहास उससे कहीं ज़्यादा उथल-पुथल भरा रहा हो सकता है, जितने की कल्पना जीवविज्ञानी करते हैं। यह वह निष्कर्ष है, जो ज़रूरी नहीं कि आधुनिकता के पक्ष में जाता हो। घड़ी-घड़ी जीवन का मोल आँकते हुए मध्ययुग के लोग उसे कुछ समय के लिए थोड़ा मुश्किल तो बना लेते थे, लेकिन अगर वे इस आश्वासन में विश्वास करते थे कि मृत्यु के बाद का उनका जीवन हमेशा-हमेशा के लिए परम आनन्द भरा होगा, तो मुमकिन है कि वे अपने जीवन को कहीं ज़्यादा अर्थपूर्ण और मूल्यवान मानते हों, जितना आधुनिक सेक्युलर लोग मानते हैं, जो अन्ततः एक सम्पूर्ण और अर्थहीन गुमनामी से ज़्यादा किसी चीज़ की उम्मीद नहीं कर सकते। अगर मध्ययुग के लोगों से पूछा जाता कि 'क्या आप कुल मिलाकर अपने जीवन से सन्तुष्ट हैं'? तो व्यक्तिनिष्ठ ख़ुशहाली की प्रश्नावली में उन्होंने अच्छे ख़ासे अंक हासिल किए होते।

इसलिए हमारे मध्ययुगीन पूर्वज क्या इसलिए सुखी थे क्योंकि वे मरणोपरान्त जीवन को लेकर सामूहिक भ्रम में जीवन का अर्थ पा लेते थे? हाँ। जब तक किसी ने उनकी इन कल्पनाओं में छेद नहीं कर दिया था, तब तक उन्हें यह अर्थ क्यों नहीं पाना चाहिए था? जहाँ तक हम कह सकते हैं, विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण से, मानव जीवन का नितान्त कोई अर्थ नहीं है। मनुष्य उस अन्धी विकास-प्रक्रिया का नतीज़ा हैं, जो बिना किसी लक्ष्य या ध्येय के जारी रहती है। हमारे कर्म किसी अलौकिक ब्रह्माण्डीय योजना का हिस्सा नहीं हैं, और अगर कल सुबह पृथ्वी ग्रह विस्फोट से उड़ जाए, तो विश्व का कार्यकलाप सम्भवतः बदस्तूर जारी रहेगा। जहाँ तक हम इस बिन्दु पर कह सकते हैं, मानवीय व्यक्तिनिष्ठता की कमी महसूस नहीं होगी। इसलिए लोगों द्वारा अपने जीवन के लिए दिया जाने वाला कोई भी अर्थ एक भ्रम है। मध्ययुग के लोग अपने जीवन में जो पारलौकिक

अर्थ देखते थे, वे अर्थ उससे ज़्यादा भ्रामक नहीं थे, जितने भ्रामक वे आधुनिक मानवतावादी, राष्ट्रवादी और पूँजीवादी अर्थ हैं जो आधुनिक लोग देखते हैं। जो विज्ञानी यह कहती है कि उसका जीवन अर्थपूर्ण है क्योंकि वह मानवीय ज्ञान के भण्डार में इज़ाफ़ा करती है, जो सैनिक यह दावा करता है कि उसका जीवन अर्थपूर्ण है क्योंकि वह अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए लड़ता है, और जो उद्यमी एक नई कम्पनी को खड़ा करने में अर्थ देखता है, वे सब अपने उन मध्ययुगीन जोड़ीदारों से कम भ्रान्ति के शिकार नहीं हैं, जो पोथियाँ बाँचने, धर्मयुद्ध में भाग लेने या एक नया उपासनागृह बनवाने में अर्थ देखते थे।

इसलिए सुख का मतलब शायद अर्थ को लेकर अपने निजी भ्रमों का अपने समय के प्रभावी भ्रमों के साथ तालमेल बैठा लेना है। जब तक मेरा निजी क़िस्सा मेरे आस-पास के लोगों के क़िस्सों की संगति में है, तो मैं ख़ुद को यह विश्वास दिला सकता हूँ कि मेरा जीवन अर्थपूर्ण है और इस विश्वास से सुख प्राप्त कर सकता हूँ।

ये ख़ासा हताशाजनक निष्कर्ष है। क्या सुख वाक़ई आत्म-भ्रम पर निर्भर करता है?

स्वयं को जानो

सुख अगर आनन्ददायी अनुभूतियों पर आधारित है, तो और अधिक सुखी होने के लिए हमें अपनी जैवरासायनिक प्रणाली को नए सिरे से गढ़ना ज़रूरी है। अगर सुख इस अनुभूति पर आधारित है कि जीवन अर्थपूर्ण है, तो और ज़्यादा सुखी होने के लिए हमें ख़ुद को अधिक कारगर तरीक़े से भ्रमित करने की ज़रूरत है। क्या कोई तीसरा विकल्प भी है?

उपर्युक्त दोनों दृष्टिकोण इस पूर्वमान्यता को साझा करते हैं कि सुख एक क़िस्म की (आनन्द की या अर्थ की) व्यक्तिनिष्ठ अनुभूति है, और यह कि लोगों के सुख का आकलन करने के लिए हमें कुल मिलाकर उनसे इतना पूछना ज़रूरी है कि वे किस तरह महसूस करते हैं। हम में से बहुत-से लोगों को यह बात तर्कसंगत लगती है क्योंकि हमारे समय का सबसे प्रभावी मज़हब उदारतावाद है। उदारतावाद व्यक्तियों की व्यक्तिनिष्ठ अनुभूतियों का अनुमोदन करता है। वह इन अनुभूतियों को प्रामाणिकता के सबसे बड़े स्रोत के रूप में देखता है। अच्छा क्या है और बुरा क्या है, सुन्दर क्या है और असुन्दर क्या है, क्या उचित है और क्या अनुचित है, ये सारी बातें इससे तय होती हैं कि हममें से हर एक क्या महसूस करता है।

उदारतावादी राजनीति इस विचार पर आधारित है कि मतदाता बहुत अच्छी तरह समझते हैं और यह बताने के लिए किसी बिग ब्रदर की ज़रूरत नहीं कि हमारे लिए हितकर क्या है। उदारतावादी अर्थनीति इस विचार पर आधारित है कि ग्राहक हमेशा सही होता है। उदारतावादी कला यह घोषणा करती है कि सौन्दर्य देखने वाले की निगाह में होता है। उदारतावादी स्कूलों और विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों को ख़ुद के बारे में सोचने की शिक्षा दी जाती है। विज्ञापन हमसे आगह करते हैं, ‘इसे करके तो देखिए’! एक्शन फ़िल्में, नाटक, सोप ऑपेरा, उपन्यास और आकर्षक पॉप सांग हमें लगातार समझाते हैं : ‘वही करिए जो आपको ठीक और उचित लगता हो’, ‘ख़ुद की सुनिए’, ‘अपने दिल की

आवाज़ पर कान दीजिए'। ज़्याँ जैक़ रूसो ने इस दृष्टिकोण को सबसे ज़्यादा उत्कृष्ट ढंग से बयान किया है : "जिसे मैं शुभ समझता हूँ - वही शुभ है। जिसे मैं अशुभ समझता हूँ - वही अशुभ है"।

जो लोग बचपन से ही इस तरह के नारों की ख़ुराक पर पले हैं, वे इस विश्वास की ओर प्रवृत्त होते हैं कि सुख व्यक्तिनिष्ठ अनुभूति है और हर व्यक्ति ही इस बात को सबसे अच्छी तरह समझता है कि वह सुखी है या दुःखी है, लेकिन यह दृष्टिकोण उदारतावाद की ही विशेषता है। समूचे इतिहास के दौरान ज़्यादातर मज़हब और विचारधाराएँ यह कहती रही हैं कि शुभ और सौन्दर्य और औचित्य के पैमाने वस्तुनिष्ठ होते हैं। ये मज़हब और विचारधाराएँ साधारण व्यक्ति की अनुभूतियों और प्राथमिकताओं को सन्देह की नज़र से देखती थीं। डेल्फ़ी में अपोलो के उपासनागृह के प्रवेशद्वार पर तीर्थयात्रियों का स्वागत यह इबारत करती थी : 'ख़ुद को जानो'! इसका अभिप्राय यह था कि औसत व्यक्ति अपने वास्तविक स्वत्व के प्रति अनजान होता है, और इसलिए वह सच्चे सुख के बारे में भी अनजान हो सकता है। फ़्रायड शायद इससे सहमत होते।

और इसी तरह ईसाई धर्मशास्त्री सहमत होते। सेंट पॉल और सेंट ऑगस्तीन अच्छी तरह से जानते थे कि अगर आप लोगों से इसके बारे में पूछें, तो उनमें से ज़्यादातर ईश्वर की प्रार्थना करने के बजाय यौन सुख उठाना पसन्द करेंगे। क्या इससे यह साबित होता है कि यौन संबंध स्थापित करना सुख की कुंजी है? पॉल और ऑगस्तीन के मुताबिक़ नहीं है। इससे सिर्फ़ यही साबित होता है कि मानव-जाति कुदरती तौर पर पापी है, और लोग आसानी से शैतान के बहकावे में आ जाते हैं। एक ईसाई दृष्टिकोण के मुताबिक़, बहुसंख्यक लोग कमोबेश उसी स्थिति में होते हैं, जिसमें हेरोइन की लत में पड़े लोग होते हैं। कल्पना कीजिए कि कोई मनोविज्ञानी नशीले पदार्थों का सेवन करने वालों के बीच जाकर सुख के अध्ययन की शुरुआत करता है। वह उनसे मतदान करवाता है और पाता है कि उनमें से एक-एक व्यक्ति यह घोषणा करता है कि वे तभी सुखी होते हैं, जब वे नशे का इंजेक्शन लेते हैं। क्या यह मनोविज्ञानी इस ऐलान के साथ अपना लेख छपाएगा कि हेरोइन सुख की कुंजी है?

यह विचार कि अनुभूतियों पर भरोसा नहीं किया जाना चाहिए, सिर्फ़ ईसाइयत तक सीमित नहीं है। कम से कम जब बात अनुभूतियों के मूल्य की हो, तो डार्विन और डॉकिन्स सेंट पॉल और सेंट ऑगस्तीन के साथ खड़े हो सकते हैं। सेल्फ़िश जीन थ्योरी के मुताबिक़ प्राकृतिक वरण लोगों को, दूसरे जीवों की ही भाँति, उस चीज़ को चुनने के लिए बाध्य करता है जो उनके जीन्स के प्रजनन के लिए ठीक होती है, भले ही वह चीज़ उनके लिए व्यक्तिगत तौर पर ग़लत क्यों ना हो। ज़्यादातर पुरुष अपना जीवन शान्तिपूर्ण ढंग से आनन्दित रहने के बजाय कठिन परिश्रम करते हुए, चिन्ताएँ करते हुए, प्रतिस्पर्धा करते हुए और लड़ते हुए बिताते हैं, क्योंकि उनका डीएनए अपने स्वार्थपूर्ण लक्ष्यों की ख़ातिर उनसे वैसा करवाता है। शैतान की तरह ही डीएनए भी लोगों को ललचाने और उन्हें अपने वशीभूत करने के लिए क्षणभंगुर सुखों का इस्तेमाल करता है।

इसीलिए ज़्यादातर मज़हबों और दर्शनों ने सुख के प्रति उससे बहुत भिन्न रुख़ अपनाया है, जो उदारतावाद अपनाता है। बौद्ध दृष्टिकोण इसमें ख़ास तौर से दिलचस्प है। बौद्ध धर्म ने सुख के प्रश्न को जितना महत्त्व दिया है, उतना शायद और किसी मज़हब ने

नहीं दिया। 2,500 सालों तक बौद्धों ने सुख के तत्त्व और कारणों का विधिवत अध्ययन किया है, यही वजह है कि उनके दर्शन और ध्यान-पद्धतियों में वैज्ञानिक समुदाय के बीच लगातार दिलचस्पी बढ़ी है।

बौद्ध धर्म सुख के प्रति जीववैज्ञानिक दृष्टिकोण की बुनियादी अन्तर्दृष्टि को साझा करता है, यानी इस चीज़ में कि सुख हमारी कायाओं में घटित होने वाली प्रक्रियाओं का नतीज़ा है, ना कि बाहरी दुनिया की घटनाओं का, लेकिन इस समान अन्तर्दृष्टि से शुरुआत करने के बाद बौद्ध धर्म बहुत अलग निष्कर्षों पर पहुँचता है।

बुद्ध धर्म के मुताबिक़ ज़्यादातर लोग सुख को आनन्ददायी अनुभूतियों से जोड़कर देखते हैं, और दु:ख को अप्रिय अनुभूतियों से जोड़कर देखते हैं। परिणामतः लोग जो अनुभव करते हैं, उसे अत्यन्त महत्त्व देते हुए और अधिक आनन्द को अनुभव करने की लालसा करते हैं और पीड़ा से बचते रहते हैं। अपने पूरे जीवन हम जो कुछ भी करते हैं, चाहे हम अपने पैर खुजला रहे हों, अपनी कुर्सी पर हल्के-हल्के पहलू बदल रहे हों या युद्ध लड़ रहे हों, हम सुखद अनुभूतियों को हासिल करने की कोशिश कर रहे होते हैं।

समस्या बुद्ध धर्म के अनुसार यह है कि हमारी अनुभूतियाँ क्षणभंगुर तरंगों से ज़्यादा कुछ नहीं है, जो महासागर की लहरों की तरह हर पल बदलती रहती हैं। अगर पाँच मिनट पहले मैं आनन्दित और ध्येयपूर्ण महसूस कर रहा था, तो अब ये अहसास जाते रहे हैं, और मैं उदास तथा हतोत्साहित महसूस कर रहा हो सकता हूँ। इसलिए अगर मैं सुखद अनुभूतियाँ महसूस करना चाहता हूँ, तो मुझे अप्रिय अनुभूतियों को परे हटाते हुए लगातार सुखद अनुभूतियों का पीछा करते रहना ज़रूरी है। अगर मैं इसमें कामयाब भी हो जाता हूँ, तो मुझे तुरन्त नए सिरे से इसी सिलसिले की शुरुआत करनी होगी, जबकि मेरी इन कोशिशों का कोई टिकाऊ प्रतिफल मुझे नहीं मिला होगा।

इस तरह के क्षणभंगुर पुरस्कारों को हासिल करने का क्या महत्त्व है? इस क़दर संघर्ष एक ऐसी चीज़ को हासिल करने के लिए क्यों किया जाए, जो लगभग उत्पन्न होते ही ग़ायब हो जाती है? बौद्ध धर्म के अनुसार दु:ख की जड़ ना तो पीड़ा की अनुभूति है, ना उदासी की अनुभूति है, ना ही अर्थहीनता की भी अनुभूति है। इसके बजाय, दु:ख की असली जड़ क्षणभंगुर अनुभूतियों की अन्तहीन और निरर्थक तलाश है, जिसकी वजह से हम निरन्तर तनाव, बेचैनी और असन्तोष की अवस्था में बने रहते हैं। इस तलाश की वजह से मन कभी सन्तुष्ट नहीं होता। यहाँ तक कि आनन्द का अनुभव करते हुए भी वह तृप्त नहीं होता, क्योंकि उसे यह आशंका सताती रहती है कि यह अनुभूति जल्दी ही ग़ायब हो सकती है, और वह उस अनुभूति के बने रहने और घनीभूत होते रहने की लालसा करता रहता है।

दु:ख से लोगों को मुक्ति उस वक़्त नहीं मिलती, जब वे इस या उस क्षणभंगुर आनन्द को अनुभव कर रहे होते हैं, वह मुक्ति तब मिलती है, जब वे अपनी तमाम अनुभूतियों की अनित्य या अस्थायी प्रकृति को समझ लेते हैं और उनकी लालसा करना बन्द कर देते हैं। बौद्ध ध्यान-साधनाओं का यही लक्ष्य है। ध्यान की अवस्था में आप से अपेक्षा की जाती है कि आप अपने चित्त और देह को निकट से देखें, अपनी सारी अनुभूतियों की अनवरत उत्पत्ति और लोप के साक्षी बनें और इस बात को समझें कि इनकी तलाश में लगे रहना कितना अर्थहीन काम है। जब यह तलाश रुक जाती है, तो मन अत्यन्त तनाव-रहित,

स्वच्छ और सन्तुष्ट हो जाता है। तमाम तरह की अनुभूतियाँ - हर्ष, क्रोध, ऊब, काम-वासना - उत्पन्न और लुप्त होती रहती हैं, लेकिन जैसे ही आप किन्हीं ख़ास अनुभूतियों की लालसा करना बन्द कर देते हैं, वैसे ही आप उन्हें उनके यथारूप में स्वीकार करना शुरू कर देते हैं। आप इसका ख़्वाब देखने के बजाय कि भविष्य में क्या हो सकता है, वर्तमान क्षण में रहना शुरू कर देते हैं।

इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली प्रशान्ति इतनी गहन होती है कि सुखद अनुभूतियों की पागलपन से भरी खोज में रहने वाले लोग उस प्रशान्ति की कल्पना भी नहीं कर सकते। यह उस आदमी के जैसी स्थिति होती है, जो दशकों तक समुद्र-तट पर खड़ा कुछ ख़ास 'अच्छी' लहरों को गले लगाता है, साथ ही साथ 'बुरी' लहरों को पास आने देने से रोकने के लिए उन्हें परे धकेलता रहता है। दिन-रात यह आदमी तट पर खड़ा इस निष्फल कोशिश में ख़ुद को पागल बनाता जाता है। अन्त में, वह रेत पर बैठ जाता है और लहरों को उनकी मर्ज़ी के मुताबिक़ आने-जाने देता है। कितनी शान्ति मिलती है!

आधुनिक उदारतावादी संस्कृति के लिए यह विचार इतना अजनबी है कि जब पश्चिम के नए युग के आन्दोलनों का सामना बौद्ध अन्तर्दृष्टियों से हुआ, तो उन्होंने उन्हें उदारतावादी पदावली में रूपान्तरित कर लिया, और इस तरह उन्हें सिर के बल खड़ा कर दिया। नए युग के ये पन्थ अक्सर यह तर्क देते हैं : 'सुख बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर नहीं करता। यह सिर्फ़ हमारी अन्दरूनी अनुभूतियों पर निर्भर करता है। लोगों को सम्पत्ति और हैसियत जैसी बाहरी उपलब्धियों की खोज बन्द कर देनी चाहिए, और इसके बजाय अपनी आन्तरिक अनुभूतियों से नाता जोड़ना चाहिए'। या और भी सारगर्भित ढंग से कहें तो, 'सुख की शुरुआत अन्दर से होती है'। यह ठीक वही बात है, जिसका दावा जीवविज्ञानी करते हैं, लेकिन जो कमोबेश उसके विपरीत है, जो बुद्धि ने कही थी।

बुद्ध के विचार आधुनिक जीवविज्ञान और नए युग के आन्दोलनों से इस मामले में मिलते थे कि सुख बाहरी परिस्थितियों से स्वाधीन होता है, लेकिन इससे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण और इससे ज़्यादा गहन अन्तर्दृष्टि उनकी यह थी कि सच्चा सुख हमारी आन्तरिक अनुभूतियों से भी स्वाधीन होता है। निश्चय ही, जितना ही महत्त्व हम अपनी अनुभूतियों को देते हैं, उतनी ही उनके प्रति हमारी लालसा बढ़ती जाती है, और उतना ही दुःख हमें सहना पड़ता है। बुद्धि की सलाह ना सिर्फ़ बाहरी परिग्रहों की खोज को बन्द कर देने की थी, बल्कि आन्तरिक अनुभूतियों की खोज को बन्द कर देने की भी थी।

संक्षेप में, व्यक्तिनिष्ठ ख़ुशहाली की प्रश्नावली हमारी ख़ुशहाली को हमारी व्यक्तिनिष्ठ अनुभूतियों से जोड़कर देखती है, और सुख की खोज को किन्हीं ख़ास भावनात्मक अवस्थाओं से जोड़कर देखती है। इसके विपरीत बुद्धि धर्म जैसे अनेक मज़हबों और दर्शनों के लिए सुख की कुंजी आपके अपने सत्य को जानने में है - यह समझने में कि आप वास्तव में कौन हैं, या क्या हैं। ज़्यादातर लोग स्वयं को अपनी अनुभूतियों, विचारों, पसन्दों और नापसन्दों का पर्याय मान लेते हैं। जब वे क्रोध का अनुभव करते हैं, तो वे सोचते हैं कि 'मैं क्रोधित हूँ। यह मेरा क्रोध है'। परिणामतः वे जीवन भर कुछ ख़ास तरह की अनुभूतियों से बचते रहते हैं और कुछ दूसरी अनुभूतियों के पीछे भागते रहते हैं। वे कभी नहीं समझ पाते कि वे उनकी अनुभूतियाँ नहीं हैं और कुछ ख़ास अनुभूतियों के

पीछे निरन्तर भागते रहना उन्हें दु:ख के फन्दे में फँसा देता है।

अगर ऐसा है, तो सुख की इतिहास की हमारी पूरी समझ ही दिग्भ्रमित हो सकती है। हो सकता है कि यह उतना महत्त्वपूर्ण ना हो कि क्या लोगों की अपेक्षाएँ पूरी हो जाती हैं या क्या वे सुखद अनुभूतियों का आनन्द ले पाते हैं। मुख्य प्रश्न यह है कि क्या लोग अपने सत्य को जानते हैं। इस बात का हमारे पास क्या प्रमाण है कि इस सत्य को आज के लोग प्राचीन भोजन-खोजियों या मध्ययुगीन किसानों की तुलना में बेहतर ढंग से समझते हैं।

अध्येताओं ने सुख के इतिहास के अध्ययन की शुरुआत कुछ ही वर्षों पहले की है, और हम अभी भी शुरुआती परिकल्पनाओं को सूत्रबद्ध करने और शोध की उपयुक्त पद्धतियों की खोज में लगे हैं। यह बहुत जल्दबाज़ी होगी अगर हम किन्हीं सख़्त निष्कर्षों को अपना लेते हैं और उस बहस को ख़त्म कर देते हैं, जो अभी शुरू ही हुई है। महत्त्वपूर्ण यह होगा कि हम यथासम्भव अनेक विविध दृष्टिकोणों को समझें और सही प्रश्न उठाएँ।

इतिहास की ज़्यादातर पुस्तकें अपना ध्यान महान चिन्तकों के विचारों, योद्धाओं के साहस, सन्तों के उपकार और कलाकारों की रचनात्मकता पर केन्द्रित करती हैं। उनके पास सामाजिक संरचनाओं के निर्माण और विघटन की प्रक्रियाओं के बारे में, साम्राज्यों के उत्थान और पतन के बारे में, टेक्नोलॉजी की खोजों और उनके प्रसार के बारे में कहने के लिए बहुत कुछ है, लेकिन वे इस बारे में कुछ नहीं बतातीं कि इन तमाम चीज़ों ने व्यक्तियों के सुख और दु:ख को किस तरह प्रभावित किया। इतिहास की हमारी समझ की यह एक बहुत बड़ी कमी है। बेहतर है कि हम इस कमी को पूरा करें।

20

होमो सेपियन्स का अन्त

इस पुस्तक की शुरुआत इतिहास को भौतिकी से रसायनशास्त्र और उससे जीव-विज्ञान के सातत्य के अगले सोपान के रूप में प्रस्तुत करते हुए हुई थी। सेपियन्स भी उन्हीं भौतिक शक्तियों, रासायनिक प्रतिक्रियाओं और प्राकृतिक वरण की प्रक्रियाओं के अधीन हैं, जो तमाम दूसरी जीवित सत्ताओं को नियन्त्रित करती हैं। मुमकिन है कि प्राकृतिक वरण ने होमो सेपियन्स को उससे बहुत ज़्यादा बड़ा खेल का मैदान उपलब्ध कराया हो, जितना उसने दूसरे जीवों को उपलब्ध कराया, लेकिन तब भी इस मैदान की सीमाएँ थीं। इसका निहितार्थ यह रहा है कि सेपियन्स के उद्यम और उपलब्धियाँ चाहे जो भी रहे हों, लेकिन वे अपनी जैविक तौर पर निर्धारित सीमाओं का अतिक्रमण करने में अक्षम रहे हैं।

लेकिन इक्कीसवीं सदी के उषाकाल में यह बात सही नहीं है : होमो सेपियन्स उन सीमाओं का अतिक्रमण कर रहा है। वह अब प्राकृतिक वरण के नियमों को तोड़ने और उन्हें बुद्धिमान योजना (इंटेलिजेंट डिज़ाइन) के नियमों से विस्थापित करने की शुरुआत कर रहा है।

कोई 4 अरब वर्षों से ग्रह के प्रत्येक जीव का विकास प्राकृतिक वरण के अधीन हुआ है। इनमें से एक की भी रचना किसी बुद्धिमान सर्जक द्वारा नहीं की गई। उदाहरण के लिए जिराफ़ को उसकी लम्बी गर्दन किसी अति-बुद्धिमान सत्ता की सनक की बदौलत नहीं, बल्कि आदिम जिराफ़ों के बीच जारी रही प्रतिस्पर्धा की बदौलत हासिल हुई थी। जिन आद्य जिराफ़ों की लम्बी गर्दनें हुआ करती थीं, उनकी पहुँच ज़्यादा भोजन तक हो पाती थी और परिणामत: वे छोटी गर्दन वाले जिराफ़ों के मुक़ाबले ज़्यादा सन्तानें पैदा कर पाते थे। किसी ने भी नहीं कहा था, जिराफ़ों ने तो निश्चय ही नहीं कहा था कि “लम्बी गर्दन जिराफ़ों को पेड़ के सबसे ऊपर की पत्तियों को चरने में सक्षम बनाएगी। चलो,

इसको लम्बा किया जाए”। डार्विन के सिद्धान्त की ख़ूबसूरती यह है कि उसे इस बात को समझाने के लिए किसी बुद्धिमान योजनाकार की कल्पना करने की ज़रूरत नहीं पड़ती कि जिराफ़ों की गर्दनें अन्ततः लम्बी कैसे हो गईं।

अरबों सालों तक बुद्धिमत्तापूर्ण योजना कोई विकल्प तक नहीं थी, क्योंकि ऐसी कोई बुद्धिमत्ता ही नहीं थी, जो चीज़ों की योजना बना सकती। सूक्ष्मजीव (माइक्रोऑर्गनिज़्म), जो एकदम हाल ही के समय तक हमारे आस-पास मौजूद एकमात्र जीवित वस्तुएँ हुआ करते थे, अद्भुत करतब दिखाने में सक्षम होते हैं। किसी एक प्रजाति का सूक्ष्मजीव अपनी कोशिका में किसी नितान्त भिन्न प्रजाति के जेनेटिक कोड का समावेश कर सकता है और इस तरह नई क्षमताएँ हासिल कर सकता है, जैसे कि एंटीबॉयोटिक्स के प्रति प्रतिरोध बरतना। तब भी जिस हद तक हम जानते हैं, सूक्ष्मजीवों में कोई चेतना नहीं होती, जीवन के कोई लक्ष्य नहीं होते, और आगे की योजना बनाने की कोई क्षमता नहीं होती।

किसी स्तर पर पहुँचकर जिराफ़, डॉल्फिन, चिंपांज़ी और निएंडरथल्स जैसे प्राणियों ने चेतना और आगे की योजना बनाने की क़ाबिलियत विकसित कर ली, लेकिन अगर एक निएंडरथल किन्हीं इस क़दर मोटे और मन्दगति पक्षियों का ख़्वाब भी देख सकता कि वह जब भी भूखा होगा तो उन पर झपट्टा मार सकेगा, तब भी इस ख़्वाब को वास्तविकता में बदलने का उसके पास कोई तरीक़ा नहीं था। उसकी मज़बूरी थी कि वह उन्हीं पक्षियों का शिकार करता, जो कुदरत ने उसके लिए चुने थे।

इस प्राचीन व्यवस्था में पहली दरार लगभग 10,000 साल पहले कृषि क्रान्ति के दौरान आई। जिन सेपियन्स ने मोटे, मन्दगति चूज़ों का ख़्वाब देखा था उन्होंने यह तरक़ीब खोज निकाली कि अगर किसी सबसे मोटी मुर्गी के साथ सबसे धीमी गति वाले मुर्गे का संसर्ग कराएँ, तो उनके कुछ बच्चे मोटे भी होंगे और धीमे भी होंगे। और फिर अगर आप उन बच्चों का एक दूसरे के साथ संसर्ग कराएँ, तो आप मोटे और धीमे पक्षियों की फ़ौज खड़ी कर सकते हैं। यह प्रकृति के लिए अज्ञात ऐसे चूज़ों की जाति थी, जो किसी देवता की नहीं, बल्कि एक मनुष्य की बुद्धिमत्तापूर्ण योजना से उत्पन्न हुई थी।

तब भी एक सर्वशक्तिमान देवता की तुलना में होमो सेपियन्स के पास योजना बनाने की सीमित क्षमताएँ थीं। सेपियन्स चूज़ों को आमतौर से प्रभावित करने वाली प्राकृतिक वरण की प्रक्रियाओं की बाधाओं से बचने और इन प्रक्रियाओं की गति बढ़ाने के लिए प्रजनन की चुनिन्दा प्रक्रियाओं का उपयोग कर सकते थे, लेकिन वे ऐसे किसी पूरी तरह से नए लक्षण का आविष्कार नहीं कर सकते थे, जो जंगली चूज़ों के जेनेटिक भण्डार में अनुपस्थित था। एक तरह से, होमो सेपियन्स और चूज़ों के बीच का रिश्ता उन बहुत से दूसरे सहजीवी रिश्तों जैसा ही था, जो अक्सर ही खुद-ब-ख़ुद प्रकृति में उत्पन्न हुए हैं। सेपियन्स ने चूज़ों पर वह अनूठा चयनात्मक दबाव डाला, जिसने मोटे और धीमे चूज़ों के बड़ी तादाद में प्रजनन को सम्भव किया, ठीक उसी तरह जैसे पराग छिड़कने वाली मधुमक्खियाँ फूलों का चयन करती हैं जिससे चमकीले रंगों वाले फूलों की बड़ी तादाद में उत्पत्ति होती है।

आज प्राकृतिक वरण की यह 4 अरब साल पुरानी व्यवस्था एक सर्वथा अलग तरह की चुनौती का सामना कर रही है। समूची दुनिया में प्रयोगशालाओं में विज्ञानी जीवित सत्ताओं को गढ़ने में लगे हैं। वे निर्भीक ढंग से प्राकृतिक वरण के नियमों को तोड़ रहे हैं,

किसी जीव की मूलभूत चारित्रिकताओं की परवाह किए बिना भी। ब्राज़ील के जैव-कलाकार एडुआर्दो काक ने 2000 में एक नई कलाकृति रचने का फ़ैसला किया था : एक हरा चमकीला खरगोश। काक ने एक फ़्रांसीसी प्रयोगशाला से सम्पर्क कर उसे एक फ़ीस देने की पेशकश करते हुए उससे अपनी बताई ख़ासियतों के मुताबिक़ एक चमकीला खरगोश गढ़ने को कहा। फ़्रांसीसी वैज्ञानिकों ने एक साधारण खरगोश का भ्रूण लिया और उसके डीएनए में एक चमकीली जैली मछली के जीन का आरोपण कर दिया, और चमत्कार! ले मॉन्सीर के लिए एक चमकीला हरा खरगोश तैयार। काक ने इस खरगोश का नाम अल्बा रखा।

प्राकृतिक वरण के नियमों के माध्यम से अल्बा के अस्तित्व को समझा पाना असम्भव है। वह बुद्धिमान योजना का उत्पाद है। वह आगामी जीवों की अग्रदूत भी है। जिस सम्भावना का संकेत अल्बा देती है, वह अगर पूरी तरह अमल में ले आई जाती है - और अगर इस बीच मानव-जाति ख़ुद को निगल नहीं लेती - तो वैज्ञानिक क्रान्ति स्वयं को एक ऐतिहासिक क्रान्ति से कहीं ज़्यादा बड़ी घटना साबित कर सकती है। यह पृथ्वी पर जीवन के उद्भव के बाद अब तक की सबसे महत्त्वपूर्ण जैविक क्रान्ति साबित हो सकती है। प्राकृतिक वरण के 4 अरब सालों बाद अल्बा उस नए ब्रह्माण्डीय युग के उषाकाल में खड़ी है, जिसमें जीवन बुद्धिमान योजना से नियन्त्रित होगा। अगर यह होता है, तो उस समय तक के समूचे मानवीय इतिहास को, पीछे मुड़कर देखते हुए, जीवन के खेल में आमूलचूल परिवर्तन ला देने वाली प्रयोगधर्मिता और शागिर्दी की प्रक्रिया के रूप में पुनर्व्याख्यायित किया जा सकता है। इस तरह की प्रक्रिया को सहस्राब्दियों के मानवीय परिप्रेक्ष्य में समझने के बजाय अरबों वर्षों के ब्रह्माण्डीय परिप्रेक्ष्य में समझा जाना चाहिए।

सारी दुनिया के जीवविज्ञानी बुद्धिमान योजना के उस आन्दोलन के साथ लड़ने में लगे हैं, जो स्कूलों में डार्विन के विकासवाद की शिक्षा दिए जाने का विरोध करता है और दावा करता है कि जैविक जटिलता इस बात को साबित करती है कि निश्चय ही कोई ऐसा सृष्टा है, जिसने पहले से ही तमाम जैविक विवरणों के बारे में सोच रखा होगा। जीवविज्ञानी अतीत के बारे में जो कहते हैं वह सही है, लेकिन बुद्धिमान योजना के समर्थक, विडम्बनापूर्ण ढंग से, भविष्य के बारे में सही हो सकते हैं।

इस वक़्त जब यह पुस्तक लिखी जा रही है, बुद्धिमान परिकल्पना द्वारा प्राकृतिक वरण का विस्थापन तीन तरह से हो सकता है : जैविक गढ़न, साइबर्ग गढ़न (साइबर्ग वे सत्ताएँ हैं जो जैविक और अ-जैविक हिस्सों के मेल से बनी होती हैं) या अजैव जीवन की गढ़न।

चहे और पुरूष

जैविक गढ़न मनुष्यों द्वारा जैविक स्तर पर जानबूझकर किया जाने वाला हस्तक्षेप है (उदाहरण के लिए जीन का आरोपण), जिसका उद्देश्य किसी जीव के रूपाकार, क्षमताओं, ज़रूरतों या आकांक्षाओं में बदलाव लाना है, ताकि किसी इच्छित सांस्कृतिक विचार, जैसे कि एडुआर्दो काक की कलात्मक अभिरूचि को मूर्त रूप दिया जा सके।

जैविक गढ़न में अपने आप में नया कुछ भी नहीं है। लोग ख़ुद को और दूसरे जीवों को नया आकार देने के लिए इस पद्धति का इस्तेमाल हज़ारों साल से करते आ रहे हैं। इसका एक सरल-सा उदाहरण है बधियाकरण। मनुष्य बैलों की रचना करने के लिए शायद 10,000 साल से साँडों का बधियाकरण करते आ रहे हैं। बैल कम आक्रामक होते हैं और इसलिए उन्हें हल खींचने के लिए प्रशिक्षित करना आसान होता है। मनुष्य ख़ुद अपने नौजवान मर्दों को भी बधिया करते आए हैं, जिसका उद्देश्य आकर्षक आवाज़ वाले गायकों और उन हिजड़ों को तैयार करना होता था, जिन्हें सुरक्षित ढंग से सुल्तान के जनानख़ाने की देखभाल का काम सौंपा जा सकता था।

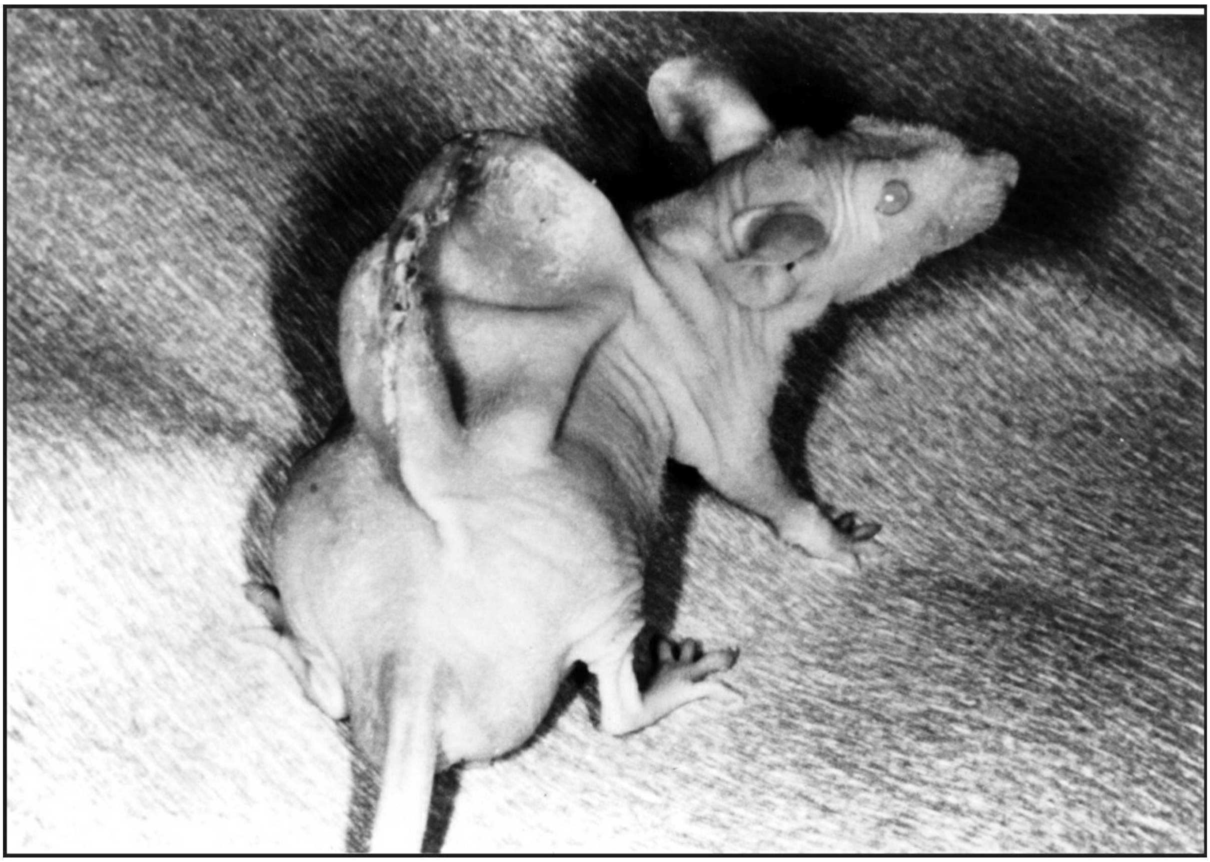

47. एक चूहा, जिसकी पीठ पर विज्ञानियों ने कैटल कार्टिलेज कोशिकाओं से निर्मित 'कान' उत्पन्न किया था। ये स्टाडिल गुफा की नर-सिंह प्रतिमा की एक डरावनी प्रतिध्वनि है। तीस हज़ार साल पहले ही मनुष्य विभिन्न प्रजातियों के मिश्रण का ख़्वाब देख रहे थे। आज वे वास्तव में इस तरह के हैरतंगेज़ जीवों को उत्पन्न कर सकते हैं।

लेकिन जीवजगत के कोशीय और परमाणुविक स्तरों पर काम करने के तरीक़ों के हमारे ज्ञान के क्षेत्र में हुई हाल की तरक्कियों ने ऐसी सम्भावनाओं को खोला है, जिनकी इसके पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। उदाहरण के लिए आज हम किसी मर्द को बधिया ही नहीं कर सकते, बल्कि शल्यक्रियात्मक और हार्मोन सम्बन्धी चिकित्साओं की मदद से उसका लिंग-परिवर्तन भी कर सकते हैं, लेकिन इतना ही नहीं है। उस विस्मय, जुगुप्सा और सनसनी पर विचार कीजिए, जो उस वक़्त पैदा हुई थी, जब 1996 में अख़बारों और टेलिविज़न में यह तसवीर (बाएँ) प्रकट हुई थी :

नहीं। फ़ोटोशॉप का विकास नहीं हुआ था। यह एक अछूती तसवीर है, एक सचमुच के चूहे की, जिसकी पीठ पर विज्ञानियों ने कैटल कार्टिलेज कोशिकाओं का आरोपण किया था। विज्ञानी नए ऊतक की वृद्धि को नियन्त्रित कर सकते थे, और इस प्रकरण में उसे ऐसा रूप दे सकते थे, जो किसी इंसान के कान जैसा दिखता है। यह प्रक्रिया वैज्ञानिकों को जल्दी ही कृत्रिम कान गढ़ने में सक्षम बना सकती है, जिसका फिर मनुष्यों में आरोपण किया जा सकता है।

जेनेटिक इंजीनियरिंग के सहारे इससे भी ज़्यादा असाधारण चमत्कार उत्पन्न किए जा सकते हैं, और यही वजह है कि इससे अनेक नैतिक, राजनैतिक और वैचारिक प्रश्न खड़े होते हैं। और ये महज़ धर्मप्राण एकेश्वरवादी नहीं हैं, जो आपत्ति उठाते हैं कि आदमी को ईश्वर की भूमिका नहीं हड़पनी चाहिए। अनेक पक्के नास्तिकों को भी इस विचार से कम आघात नहीं पहुँचा है कि विज्ञानी प्रकृति की जगह लेने की ओर बढ़ रहे हैं। पशुओं के हक़ों के लिए संघर्षरत कार्यकर्ता जेनेटिक इंजीनियरिंग सम्बन्धी प्रयोगों से प्रयोगशालाओं के प्राणियों को पहुँचने वाली पीड़ा की, और उन पशुपालन-गृहों के जानवरों की पीड़ा की निन्दा करते हैं, जिन्हें उनकी ज़रूरतों और आकांक्षाओं की पूरी तरह परवाह किए बिना मनमाने ढंग से गढ़ा जाता है। मानवाधिकार कार्यकर्ताओं को भय है कि जेनेटिक इंजीनियरिंग का उपयोग उस अतिमानव को रचने के लिए किया जा सकता है, जो बाक़ी हम सब लोगों को ग़ुलाम बना लेगा। भविष्यवक्ता उन जैव-तानाशाहियों द्वारा लाए जाने वाले सर्वनाश की भविष्यवाणियाँ पेश करते हैं, जो क्लोन प्रक्रिया की मदद से निर्भीक सैनिकों और आज्ञाकारी कामगारों के प्रतिरूप रचेंगी। यह अहसास हर ओर व्याप्त है कि बहुत तेज़ी के साथ बहुत सारे अवसर खुल रहे हैं और जीनों में तब्दीलियाँ लाने की हमारी क़ाबिलियत इस दक्षता का विवेकपूर्ण और दूरदर्शी इस्तेमाल कर सकने की हमारी क्षमता को पीछे छोड़ती जा रही है।

इसी सबका यह परिणाम है कि हम फ़िलहाल जेनेटिक इंजीनियरिंग की सम्भावित क्षमताओं के एक बहुत छोटे-से हिस्से का इस्तेमाल कर रहे हैं। इस पद्धति से जिन ज़्यादातर जीवों को गढ़ा जा रहा है, उनमें वे जीव शामिल हैं, जिनके पीछे सबसे कमज़ोर राजनैतिक जनमत है - वनस्पतियाँ, फफूँद, बैक्टीरिया और कीड़े-मकोड़े। उदाहरण के लिए, ई कोली बैक्टीरिया, जो हमारी आँतों में सहजीवी के तौर पर रहता है (और जो जब आँतों से बाहर आ जाता है तो घातक संक्रमण पैदा करने की वजह से अख़बारों की सुर्ख़ियाँ बन जाता है) को जैव ईंधन उत्पन्न करने के लिए जेनेटिक इंजीनियरी की प्रक्रिया से गुज़ारा गया है। इसी तरह की इंजीनियरी करके ई कोली और फफूँद की अनेक प्रजातियों से इंसुलिन भी उत्पन्न किया गया है, और इस तरह मधुमेह की चिकित्सा को सस्ता कर दिया गया है। आर्कटिक मछली से निकाले गए एक जीन को आलुओं में प्रविष्ट कराके पाले के प्रति पौधों की प्रतिरोधक क्षमता में इज़ाफ़ा किया गया है।

कुछ स्तनपायी जीवों को भी जेनेटिक इंजीनियरी की प्रक्रिया के अधीन लाया गया है। हर साल डेरी उद्योग को अरबों डॉलर का नुक़सान उस मस्टाइटिस नामक बीमारी की वजह से उठाना पड़ता है, जो डेरी की गायों के थनों पर हमला करती है। वैज्ञानिक इस समय जेनेटिक इंजीनियरी की मदद से उत्पन्न ऐसी गायों के प्रयोग में लगे हैं, जिनके दूध में लाइसोस्टाफ़िन नामक एक ऐसा जैवरसायन होता है, जो इस बीमारी को पैदा करने

वाले बैक्टीरिया पर आघात करता है। सूअर-मांस उद्योग, जिसकी बिक्री में इसलिए भारी गिरावट आई है क्योंकि उपभोक्ता हैम और बैकन के अस्वास्थ्यकर फ़ैट से परहेज़ करते हैं, ऐसे सूअरों की प्रयोगाधीन नस्ल से उम्मीद लगाए हुए है, जिनमें एक कृमि की जेनेटिक सामग्री का आरोपण किया जा रहा है। इन नए जीनों की मदद से सूअर नुक़सानदेह ओमेगा 6 फ़ैटी एसिड को उसके गुणकारी चचेरे भाई ओमेगा 3 में बदल देता है।

जेनेटिक इंजीनियरी का अगला सोपान अच्छे फ़ैट वाले सूअरों को बच्चों के खेल जैसा आसान बना देगा। जेनेटिक इंजीनियरों ने सिर्फ़ इतना ही नहीं किया है कि उन्होंने कृमियों के औसत जीवन-काल को छह गुना बढ़ा दिया है, बल्कि ऐसे प्रतिभाशाली चूहों को भी गढ़ डाला है, जिनकी स्मरण-शक्ति और सीखने की क्षमताओं में काफ़ी सुधार आया है। मूस (वोल) चूहों से मिलते जुलते, छोटे, स्थूलकाय कुतरने वाले जीव हैं, और मूसों के ज़्यादातर प्रकार स्वच्छन्द सम्भोगी होते हैं, लेकिन इनकी एक प्रजाति ऐसी भी है जिसमें नर और मादा मूस टिकाऊ और एकल वैवाहिक सम्बन्ध बनाते हैं। जेनेटिक इंजीनियरों का दावा है कि उन्होंने इस एकल विवाह के लिए ज़िम्मेदार जीन्स को अलगा लिया है। अगर एक जीन के योग से मूसा डॉन जुआन एक वफ़ादार और प्रेमी पति में बदल सकता है, तो क्या हम ना सिर्फ़ कुतरने वाले प्राणी (और मनुष्यों) की वैयक्तिक क्षमताओं, बल्कि उनकी सामाजिक संरचनाओं को भी जेनेटिक ढंग से गढ़ने से बहुत दूर हैं?

निएंडरथल्स की वापसी

लेकिन जेनेटिक इंजीनियर सिर्फ़ जीवित प्रजातियों को ही रूपान्तरित नहीं करना चाहते। वे लुप्त हो चुके प्राणियों को भी पुनर्जीवित करना चाहते हैं। और सिर्फ़ डायनासोर को ही नहीं, जैसा जुरासिक पार्क में दिखाया गया है। रूसी, जापानी और कोरियाई विज्ञानियों के एक दल ने साइबेरियाई बर्फ़ में जमे प्राचीन मैमथों के जीन समूह का ख़ाका तैयार किया है। अब उनकी योजना है कि वे आज के समय के एक हाथी की निषेचित अण्डा-कोशिका लेंगे, इस हाथी के डीएनए की जगह पुनर्निर्मित मैमथ के डीएनए को रखेंगे, और उस अण्डे का एक हथिनी के गर्भ में आरोपण कर देंगे। उन्हें उम्मीद है कि बाईस महीने के भीतर 5000 साल बाद पहले मैमथ का जन्म हो जाएगा।

लेकिन मैमथों पर ही क्यों रुका जाए? हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर जॉर्ज चर्च ने हाल ही में सुझाव दिया है कि निएंडरथल्स जीन-समूह परियोजना के पूरा होने के साथ ही हम पुनर्निर्मित निएंडरथल के डीएनए का किसी सेपियन्स के डिम्ब में आरोपण कर सकते हैं, और इस तरह 30,000 साल बाद पहला निएंडरथल बच्चा पैदा कर सकते हैं। चर्च का कहना था कि यह काम वे $3 करोड़ की छोटी-सी रक़म के बदले कर सकते हैं। कई स्त्रियाँ पहले ही इसमें कृत्रिम माँ (सरोगेट मदर) की भूमिका निभाने के लिए स्वेच्छापूर्वक आगे आ चुकी हैं।

निएंडरथल्स की ज़रूरत हमें किसलिए है? कुछ लोगों का कहना है कि अगर हम जीवित निएंडरथल्स का अध्ययन कर सकें, तो हम होमो सेपियन्स के उद्गमों और अनूठेपन से सम्बन्धित अर्से से सताते आ रहे कुछ सवालों के जवाब दे सकेंगे।

निएंडरथल की तुलना होमो सेपियन्स के दिमाग़ से करते हुए, और उनकी संरचनाओं के फ़र्क़ का विस्तार से अध्ययन करते हुए शायद हम यह पहचान सकें कि वे कौन-से जैविक परिवर्तन रहे हैं, जिन्होंने उस चेतना को उत्पन्न किया है, जिसे हम अनुभव करते हैं। एक नैतिक वजह भी है - कुछ लोगों ने तर्क दिया है कि अगर निएंडरथल्स के लोप के लिए होमो सेपियन्स ज़िम्मेदार था, तो उनको पुनर्जीवित करना उसका नैतिक दायित्व है। और अगर हमारे आस-पास कुछ निएंडरथल्स रहेंगे तो यह उपयोगी भी होगा। ऐसे बहुत-से उद्योगपति होंगे, जो एक निएंडरथल द्वारा दो सेपियन्स के बराबर घरेलू काम करने के लिए उसे काम पर रखकर खुश होंगे।

लेकिन निएंडरथल्स पर भी क्यों रुका जाए? क्यों ना ईश्वर के ड्राइंग बोर्ड पर वापस जाकर एक बेहतर सेपियन्स को डिज़ाइन किया जाए? होमो सेपियन्स की क्षमताओं, ज़रूरतों और आकांक्षाओं का एक जेनेटिक आधार है और सेपियन्स का जीन-समूह मूसों और चूहों के जीन-समूहों से ज़्यादा जटिल नहीं है। (चूहे के जीन-समूह में लगभग 2.5 अरब न्यूक्लिओबेसिस होते हैं, सेपियन्स के जीन-समूह में 2.9 अरब न्यूक्लिओबेसिस होते हैं - जिसका मतलब है कि सेपियन्स का जीन-समूह मात्र 14 प्रतिशत बड़ा होता है)। सामान्य समय-सीमा के भीतर - शायद कुछ ही दशकों में - जेनेटिक इंजीनियरी और जीववैज्ञानिक इंजीनियरी के दूसरे रूप हमें ना सिर्फ़ हमारी शरीरक्रिया, प्रतिरक्षी तन्त्र और आयु-सीमा में बल्कि, हमारी बौद्धिक और भावनात्मक क्षमताओं में भी व्यापक फेरबदल करने में सक्षम बना सकते हैं। अगर जेनेटिक इंजीनियरी प्रतिभाशाली चूहे उत्पन्न कर सकती है, तो प्रतिभाशाली मनुष्य भी क्यों नहीं पैदा कर सकती? अगर वह एक वैवाहिक रिश्ते में बँधकर रहने वाले मूसों को रच सकती है, तो ऐसे मनुष्यों को क्यों नहीं रच सकती, जिनकी बनावट में ही अपने जीवन-साथी के प्रति वफ़ादारी मौजूद हो?

जिस संज्ञानात्मक क्रान्ति ने होमो सेपियन्स को एक नाचीज़-से वानर से दुनिया के मालिक में बदल डाला था, उसे सेपियन्स की शरीरक्रिया या उसके मस्तिष्क के आकार और बाहरी बनावट तक में किसी तरह के क़ाबिले ग़ौर बदलाव की ज़रूरत नहीं पड़ी थी। समझा जाता है कि इसमें दिमाग़ की अन्दरूनी बनावट में थोड़े-से छोटे-मोटे परिवर्तन भर आए थे। इसी तरह शायद एक और छोटा-मोटा परिवर्तन एक दूसरी संज्ञानात्मक क्रान्ति को उत्प्रेरित करने, एक बिलकुल नई तरह की चेतना को रचने, और होमो सेपियन्स को नितान्त भिन्न किसी चीज़ में बदल देने के लिए पर्याप्त होगा।

यह सच है कि इस चीज़ को हासिल करने की दक्षता अभी हमारे पास नहीं है, लेकिन हमें अतिमानवों को उत्पन्न करने से रोकने वाली कोई ऐसी तकनीकी बाधा दिखाई नहीं देती, जिसको पार ना किया जा सकता हो। मुख्य रुकावटें हैं नैतिक और राजनैतिक आपत्तियाँ, जिन्होंने मनुष्यों पर किए जा रहे शोध की गति को धीमा कर रखा है। और ये नैतिक तर्क कितने भी क़ायल करने वाले क्यों ना हों, ऐसा लगता नहीं कि ये अगले क़दम को लम्बे समय तक रोके रख सकेंगे, ख़ास तौर से तब जबकि मनुष्य के जीवन को अनिश्चितकाल तक खींचने, असाध्य बीमारियों पर विजय पाने और हमारी संज्ञानात्मक और भावनात्मक क्षमताओं को उन्नत करने की सम्भावनाएँ दाँव पर लगी हैं।

उदाहरण के लिए, तब क्या होगा अगर हम अल्ज़ाइमर की बीमारी का ऐसा निदान विकसित कर लें जो, एक अतिरिक्त फ़ायदे के तौर पर स्वस्थ मनुष्यों की स्मृति को

प्रभावशाली ढंग से उन्नत कर सकती हो? क्या किसी में दम होगा कि वह इससे सम्बन्धित अनुसन्धान को रोक सके? और जब यह चिकित्सा विकसित हो जाएगी, तो क्या क़ानून का पालन कराने वाली कोई भी ताक़त इस चिकित्सा को अल्ज़ाइमर के मरीज़ों तक सीमित रखते हुए उन स्वस्थ लोगों को इसका इस्तेमाल करने से रोक पाएगी, जो इसकी मदद से असाधारण स्मृति हासिल करना चाहेंगे?

यह अभी स्पष्ट नहीं है कि जैवअभियान्त्रिकी (बायोइंजीनियरिंग) निएंडरथल्स को पुनर्जीवित कर पाएगी या नहीं, लेकिन इसकी पूरी सम्भावना है कि यह होमो सेपियन्स का पटाक्षेप कर देगी। हमारे जीन्स की छोटी-मोटी मरम्मत हमें अनिवार्यतः मार नहीं डालेगी, लेकिन हम होमो सेपियन्स के साथ इस सीमा तक छेड़छाड़ कर सकते हैं कि हम होमो सेपियन्स नहीं रह जाएँगे।

बायोनिक जीवन

एक और नई प्रौद्योगिकी है, जो जीवन के नियमों को बदल सकती है : साइबर्ग इंजीनियरी। साइबर्ग वे सत्ताएँ हैं, जो जैविक और अ-जैविक हिस्सों के मेल से बनी होती हैं, जैसे बायोनिक हाथों वाला कोई मनुष्य। एक अर्थ में आज लगभग हम सभी लोग बायोनिक हैं, क्योंकि हमारी कुदरती इन्द्रियों और उनके कामों की कमी को पूरा करने में ऐनक, पेसमेकर, ऑर्थोटिक्स जैसे उपकरण मदद करते हैं, यहाँ तक कि कम्प्यूटर और मोबाइल फ़ोन भी (जो हमारे दिमाग़ों को उनके कुछ डेटा स्टोरेज और प्रोसेसिंग के बोझ से मुक्त करते हैं)। हम सच्चे साइबर्ग होने की कगार पर टिके हैं, ऐसी अजैविक विशेषताओं को धारण करने के कगार पर, जो हमारे शरीरों से अलग नहीं किए जा सकेंगे, ऐसी विशेषताएँ जो हमारी क्षमताओं, आकांक्षाओं, व्यक्तित्वों और पहचानों को बदल देंगी।

संयुक्त राज्य अमेरिका का सैन्य अनुसन्धान संस्थान, द डिफ़ेंस एड्वांस्ड रिसर्च प्रोजेक्ट एजेंसी (डीएआरपीए) कीड़ों के माध्यम से साइबर्ग विकसित कर रहा है। इसके तहत मक्खी या काक्रोच के शरीर में इलेक्ट्रॉनिक चिप्स, डिटेक्टर और प्रोसेसर का आरोपण करने की योजना है, जिससे कोई मनुष्य या कोई ऑटोमैटिक ऑपरेटर रिमोट की मदद से उस कीड़े की गतिविधियों को नियन्त्रित कर सकेगा और तत्सम्बन्धी जानकारी को ग्रहण कर उसे सम्प्रेषित कर सकेगा। इस तरह की कोई मक्खी दुश्मन के मुख्यालय की दीवार पर बैठकर ख़ुफ़िया ढंग से अत्यन्त गुप्त वार्तालाप को सुन सकती है, और अगर उसे पहले ही किसी मकड़ी ने नहीं पकड़ लिया, तो दुश्मन की योजना की जस की तस जानकारी दे सकती है। 2006 में संयुक्त राज्य अमेरिका के नेवल अंडरसी वारफ़ेयर सेंटर ने साइबर्ग शार्कों को विकसित करने के अपने इरादे को ज़ाहिर करते हुए घोषणा की थी कि 'एनयूडब्ल्यूसी एक फ़िश टैग विकसित कर रहा है, जिसका लक्ष्य स्नायुविक आरोपणों की मार्फ़त सम्बन्धित जानवरों के व्यवहार को नियन्त्रित करना है। इसे विकसित करने वालों को उम्मीद है कि वे इसके माध्यम से शार्क मछलियों के चुम्बकत्व का पता लगा लेने की कुदरती क्षमताओं (जो मनुष्य-निर्मित डिटेक्टरों की क्षमताओं से श्रेष्ठ होती हैं) का दोहन कर पानी के अन्दर पनडुब्बियों और सुरंगों द्वारा

निर्मित विद्युतचुम्बकीय क्षेत्रों को पहचान सकेंगे।

सेपियन्स भी साइबर्ग में बदले जा रहे हैं। सुनने के यन्त्र के नवीनतम प्रकारों को अक्सर 'बायोनिक इयर्स' कहा जाता है। इस उपकरण में एक ऐसा पुर्जा होता है, जो कान के बाहरी हिस्से में स्थित एक माइक्रोफ़ोन के सहारे ध्वनि को सोख लेता है। पुर्जा उस ध्वनि को फ़िल्टर करता है, मनुष्य की आवाज़ों की पहचान करता है और फिर उन्हें उन विद्युत संकेतों में रूपान्तरित करता है, जो सीधे केन्द्रीय श्रवण तन्त्रिका और वहाँ से मस्तिष्क में भेज दिये जाते हैं।

सरकार द्वारा प्रायोजित रेटिना इम्प्लांट नामक एक जर्मन कम्पनी आँख के पिछले पर्दे से सम्बन्धित एक कृत्रिम अंग विकसित कर रही है, जिसके सहारे अन्धे लोग आंशिक तौर पर देख सकेंगे। इसके तहत मरीज़ की आँख के भीतर एक छोटी माइक्रोचिप का आरोपण किया जाएगा। प्रकाश कोशिकाएँ आँख पर पड़ने वाली रोशनी को सोख लेती हैं और उन्हें विद्युत ऊर्जा में बदल देती हैं, जो आँख के पिछले पर्दे की साबुत तन्त्रिका कोशिकाओं को उद्दीप्त करती है। इन कोशिकाओं के स्नायुविक आवेग मस्तिष्क को उत्प्रेरित करते हैं, जहाँ वे दृश्य में रूपान्तरित हो जाते हैं। फ़िलहाल यह टेक्नोलॉजी मरीज़ों को आस-पास के वातावरण में अपनी स्थिति को समझने, अक्षरों को पहचानने और चेहरों तक पहचानने की गुंजाइश देती है।

एक अमेरिकी विद्युतकर्मी जेसी सलवन ने 2001 में हुई एक दुर्घटना में कन्धों तक अपनी दोनों बाँहें गँवा दी थीं। आज वह रिहेबिलिटेशन इंस्टिट्यूट ऑफ़ शिकागो की कृपा से दो बायोनिक बाँहों का इस्तेमाल करता है। जेसी की नई बाँहों की मुख्य ख़ासियत यह है कि वे सोचने मात्र से काम करती हैं। जेसी के मस्तिष्क से आने वाले स्नायुविक संकेत माइक्रो-कम्प्यूटरों के माध्यम से विद्युतीय निर्देशों में रूपान्तरित होते हैं और बाँहें सक्रिय हो जाती हैं। जब जेसी अपनी बाँह उठाना चाहता है, तो वह वही करता है, जो एक सामान्य व्यक्ति बिना सचेत हुए करता है - और बाँह उठ जाती है। ये बाँहें शारीरिक बाँहों के मुक़ाबले बहुत सीमित हरक़तें कर पाती हैं, लेकिन उनकी मदद से जेसी रोज़मर्रा के सामान्य काम कर लेता है। इसी तरह की एक बायोनिक बाँह हाल ही में क्लॉउडिया मिचेल के शरीर में जोड़ी गई है। मिचेल एक अमेरिकी सैनिक है, जिसने अपनी बाँह एक मोटरसाइकिल दुर्घटना में गँवा दी थी। विज्ञानियों को विश्वास है कि हमारे पास जल्दी ही ऐसी बायोनिक बाँहें होंगी जो ना सिर्फ़ हमारे इच्छा करने मात्र से हरक़त करेंगी, बल्कि जो वापस मस्तिष्क को संकेत भेजने में भी सक्षम होंगी, और इस तरह अपाहिज व्यक्ति स्पर्श संवेदन को फिर हासिल कर सकेंगे!

Rehabilitation Institute of Chicago
www.ric.org

48. जेसी सलवन और क्लाउडिया मिचेल हाथ मिलाते हुए। इनकी बायोनिक बाँहों की विस्मित करने वाली चीज़ यह है कि वे सोचने से क्रियाशील होती हैं।

फ़िलहाल ये बायोनिक बाँहें हमारी मूल शारीरिक बाँहों की साधारण स्थानापन्न हैं, लेकिन उनमें असीमित विकास की सम्भावनाएँ मौजूद हैं। उदाहरण के लिए, इन बायोनिक बाँहों को शारीरिक बाँहों से इतना ज़्यादा ताक़तवर बनाया जा सकता है कि इनके सामने बॉक्सिंग चैम्पियन तक कमज़ोर महसूस करेंगे। इसके अतिरिक्त, बायोनिक बाँहों का यह फ़ायदा है कि उन्हें हर कुछ वर्षों में बदला जा सकता है या शरीर से अलग कर एक दूरी से संचालित किया जा सकता है।

नॉर्थ कैरोलिना के ड्यूक विश्वविद्यालय के विज्ञानियों ने हाल ही में रीसस बन्दरों के साथ इसका प्रदर्शन किया है, जिनके मस्तिष्कों में इलेक्ट्रोड का आरोपण किया गया है। ये इलेक्ट्रोड मस्तिष्क से संकेत ग्रहण करते हैं और उन्हें बाहरी उपकरणों में भेजते हैं। इन बन्दरों को विचारों के माध्यम से उनसे अलग की गई बायोनिक बाँहों और पैरों को नियन्त्रित करने के लिए प्रशिक्षित किया गया है। ॲरोरा नामक एक बन्दर ने एक अलग की गई बाँह को विचारों से नियन्त्रित करने के साथ-साथ अपनी दो शारीरिक बाँहों को हिलाना-डुलाना सीख लिया है। हिन्दुओं की कुछ देवियों की तरह अरोरा की तीन बाँहें हैं, और उसकी बाँहों को अलग-अलग कमरों में - यहाँ तक कि अलग-अलग शहरों में - रखा जा सकता है। वह नॉर्थ कैरोलिना की अपनी प्रयोगशाला में बैठकर एक हाथ से अपनी पीठ खुजला सकती है, दूसरे हाथ से अपना सिर खुजला सकती है, और इसी के साथ-साथ न्यू यॉर्क में एक केला चुरा सकती है (हालाँकि इस चुराए गए फल को एक दूरी से खा पाने की क्षमता अभी एक सपना ही है)। इडोया नामक एक अन्य रीसस बन्दर को 2008 में उस वक़्त प्रसिद्धि मिली थी, जब उसने नॉर्थ कैरोलिना की अपनी कुर्सी पर बैठे-

बैठे क्योटो, जापान में अपने बायोनिक पैरों को विचारों से नियन्त्रित किया था। ये पैर इडोया के वज़न से बीस गुना भारी थे।

लॉक्ड-इन सिंड्रोम वह होता है, जब कोई व्यक्ति अपने शरीर के किसी भी हिस्से को हिलाने-डुलाने की सारी या लगभग सारी क्षमता खो देता है, जबकि उसकी संज्ञानात्मक क्षमताएँ सुरक्षित बनी रहती हैं। इस तरह के लक्षणों वाले मरीज़ अब तक आँख की संक्षिप्त हरक़तों के माध्यम से ही बाहरी दुनिया के साथ संवाद क़ायम करने में सक्षम रहे हैं, लेकिन कुछ मरीज़ ऐसे हैं, जिनके मस्तिष्कों में मस्तिष्कीय संकेत-ग्राही इलेक्ट्रोडों का आरोपण किया गया है। इस तरह के संकेतों को ना सिर्फ़ हरक़तों, बल्कि शब्दों में भी रूपान्तरित करने के प्रयास चल रहे हैं। अगर ये प्रयोग सफल रहे, तो लॉक्ड-इन मरीज़ अन्ततः बाहरी दुनिया के साथ सीधे वार्तालाप कर सकेंगे, और अन्ततः हम इस प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल दूसरे लोगों के दिमाग़ों को पढ़ने के लिए कर सकेंगे।

लेकिन जो तमाम परियोजनाएँ फ़िलहाल विकसित होने की प्रक्रिया में हैं, उनमें सबसे ज़्यादा क्रान्तिकारी उद्यम एक सीधा दोतरफ़ा मस्तिष्क-कम्प्यूटर इंटरफ़ेस तैयार करने का है, जो कम्प्यूटरों को मानवीय मस्तिष्क के विद्युत संकेतों को पढ़ने की गुंजाइश देगा, और दूसरी ओर, इसी के साथ-साथ वह ऐसे संकेत भेज सकेगा जिन्हें मस्तिष्क पढ़ सकेगा। तब क्या होगा यदि इस तरह के इंटरफ़ेसों का इस्तेमाल मस्तिष्क को सीधे इंटरनेट से जोड़ने या कई सारे मस्तिष्कों को सीधे एक दूसरे से जोड़ने में कर दिया जाए, और इस तरह एक क़िस्म के अन्तर-मस्तिष्क-नेट की रचना कर कर दी जाए? उस वक़्त मानवीय स्मृति, मानवीय चेतना और मानवीय पहचान का क्या रूप सामने आ सकता है यदि एक सामूहिक स्मृति-बैंक तक मस्तिष्क की सीधी पहुँच मुमकिन हो जाए? ऐसी स्थिति में, उदाहरण के लिए, एक साइबर्ग दूसरे साइबर्ग की स्मृतियों को निकाल सकेगा - उनके बारे में सुनेगा नहीं, उनके बारे में किसी आत्मकथा में पढ़ेगा नहीं, उनकी कल्पना नहीं करेगा, बल्कि उन्हें सीधे-सीधे इस तरह याद करेगा, जैसे वे उसकी अपनी स्मृतियाँ हों। अगर मस्तिष्क सामूहिक हो जाते हैं, तो आत्म-पहचान या लिंग-अस्मिता जैसी अवधारणों का क्या होगा? उस वक़्त आप ख़ुद को कैसे जान सकेंगे या अपने सपने का अनुसरण कैसे कर सकेंगे, अगर वह सपना आपके दिमाग़ में ना होकर सामूहिक ख़्वाहिशों के किसी कोश में मौजूद हो?

इस तरह का एक साइबर्ग मानवीय या जैविक भी नहीं होगा। यह पूरी तरह से भिन्न कोई चीज़ होगी। यह इस क़दर बुनियादी तौर पर अलग तरह की सत्ता होगी कि हम इसके दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक या राजनैतिक तौर पर सम्भावित परिणामों की कल्पना भी नहीं कर सकते।

एक अन्य जीवन

जीवन के नियमों को बदल डालने का एक तीसरा तरीक़ा अजैविक सत्ताओं की सम्पूर्ण इंजीनियरी है। इसके सबसे स्पष्ट उदाहरण हैं कम्प्यूटर प्रोग्राम और कम्प्यूटर वायरस,जो स्वतन्त्र रूप से विकसित हो सकते हैं।

जेनेटिक प्रोग्रामिंग का क्षेत्र आज कम्प्यूटर साइंस की दुनिया का सबसे दिलचस्प

स्थल है। ये जेनेटिक विकास की पद्धतियों से होड़ करने की कोशिश करता है। बहुत सारे प्रोग्रामर एक ऐसा प्रोग्राम रचने का ख़्वाब देखते हैं, जो अपने रचयिता से पूरी तरह स्वतन्त्र होकर सीख सके और विकसित हो सके। इस प्रकरण में, प्रोग्रामर प्राइमॅम मोबाइल होगा, गति या क्रिया का प्रथम स्रोत, लेकिन उसकी रचना ऐसी दिशाओं में विकसित होने के लिए स्वतन्त्र होगी, जिसकी परिकल्पना ना तो उसे रचने वाले ने की होगी, ना किसी दूसरे इंसान ने।

इस तरह के प्रोगाम के लिए प्रारूप पहले से ही मौजूद है - इसे कम्प्यूटर वायरस कहा जाता है। इंटरनेट के माध्यम से फैलता यह वायरस अपनी लाखों लाख प्रतिकृतियाँ तैयार करता जाता है, जिस दौरान हमलावर एंटीवायरस उसका पीछा करते रहते हैं और वह साइबरस्पेस में जगह बनाने के लिए दूसरे वायरसों के साथ होड़ करता रहता है। एक दिन जब यह वायरस अपनी प्रतिकृति तैयार कर रहा होता है तो एक चूक - एक कम्प्यूटरीकृत तब्दीली - हो जाती है। शायद यह तब्दीली इसलिए घटित होती है क्योंकि इंसानी इंजीनियर ने इस वायरस को बनाया ही इस तरह होता है कि वह प्रतिकृति सम्बन्धी बेतरतीब ग़लतियाँ करे। तब्दीली शायद किसी बेतरतीब चूक की वजह से हुई हो। अगर, संयोग से, यह संशोधित वायरस दूसरे कम्प्यूटरों पर हमला करने की अपनी सामर्थ्य को खोए बग़ैर एंटीवायरस प्रोग्रामों को चकमा देने में बेहतर साबित हुआ, तो ये समूचे साइबरस्पेस में फैल जाएगा। अगर ऐसा हुआ तो वह तब्दीली बरकरार रहेगी और अपना वंश बढ़ाती जाएगी। समय के गुज़रने के साथ साइबरस्पेस ऐसे नए वायरसों से भर चुकी होगा, जिन्हें किसी ने गढ़ा नहीं होगा, और जो अ-अजैविक विकास-प्रक्रिया से गुज़रेंगे।

क्या ये जीवित प्राणी हैं? ये इस पर निर्भर करता है कि 'जीवित प्राणियों' का आप क्या मतलब समझते हैं। ये निश्चय ही एक नई विकास-प्रक्रिया की उपज हैं, जैविक विकास-प्रक्रिया के नियमों और सीमाओं से पूरी तरह स्वाधीन हैं।

एक और सम्भावना की कल्पना करें - मान लीजिए कि आप एक पोर्टेबल हार्ड ड्राइव पर अपने मस्तिष्क का एक बैक अप ले सकें और उसे अपने लैपटॉप पर रन कर सकें। क्या आपका लैपटॉप ठीक सेपियन्स की तरह सोच और महसूस कर सकेगा? अगर ऐसा हुआ, तो वह आप होंगे या कोई और? तब क्या होता अगर कम्प्यूटर प्रोग्रामरों ने एक पूरी तरह नया, लेकिन डिजिटल मस्तिष्क रच दिया होता, ऐसा जो कम्प्यूटर कोड से निर्मित और स्वत्व, चेतना और स्मृति के बोध से परिपूर्ण होता? अगर उस प्रोग्राम को आपने अपने कम्प्यूटर पर रन किया होता, तो क्या वह कोई व्यक्ति होता? अगर आपने उस प्रोग्राम को डिलीट कर दिया होता, तो क्या आप पर हत्या का आरोप लगा होता?

हमें जल्दी ही इस तरह के सवालों के जवाब मिल सकते हैं। 2005 में स्थापित मानव मस्तिष्क परियोजना (ह्यूमन ब्रेन प्रोजेक्ट) को उम्मीद है कि वह कम्प्यूटर के भीतर एक सम्पूर्ण मानव-मस्तिष्क की पुनर्रचना कर लेगी, जिसमें कम्प्यूटर के इलेक्ट्रॉनिक सर्किट मस्तिष्क के स्नायुविक नेटवर्क की बराबरी करेंगे। इस परियोजना के निदेशक का दावा है कि अगर परियोजना को ठीक ढंग से धन मुहैया कराया गया, तो एक-दो दशकों में ही हमारे पास कम्प्यूटर के अन्दर एक ऐसा कृत्रिम मस्तिष्क हो सकता है,जो बहुत कुछ उसी तरह बोल सकेगा और आचरण कर सकेगा जैसा मनुष्य करता है। अगर यह प्रयोग क़ामयाब रहा, तो उसका मतलब होगा कि जीवन जैवकीय यौगिक पदार्थों (ऑर्गेनिक

कम्पाउण्ड्स) की छोटी-सी दुनिया के भीतर 4 अरब बरसों तक चक्कर लगाते रहने के बाद अचानक उससे बाहर निकलकर अजैविक दुनिया के विपुल विस्तार में आ जाएगा, और ऐसी शक्लें अख़्तियार करने को तैयार होगा, जो हमारी बीहड़तम कल्पनाओं से भी परे होंगी। इस बात पर सारे अध्येता एकमत नहीं हैं कि मस्तिष्क उस तरह काम करता है, जिस तरह आज के डिजिटल कम्प्यूटर करते हैं - और अगर वह उस तरह काम नहीं करता, तो आज के समय के कम्प्यूटर उसका अनुकरण नहीं कर पाएँगे, लेकिन इसकी कोशिश करने से पहले ही इस सम्भावना को पूरी तरह ख़ारिज़ कर देना मूर्खता होगी। 2013 में इस परियोजना को यूरोपियन यूनियन से एक अरब यूरो का अनुदान प्राप्त हुआ था।

अद्वितीयता

फ़िलहाल ये नई सम्भावनाएँ आंशिक तौर पर ही चरितार्थ हुई हैं। तब भी 2013 की दुनिया पहले ही एक ऐसी दुनिया बन चुकी है, जिसमें संस्कृति अपने को जैविकी की जंज़ीरों से आज़ाद कर रही है। सिर्फ़ अपने आस-पास की दुनिया को ही नहीं, बल्कि सबसे ऊपर हमारे शरीरों और मस्तिष्कों के भीतर की दुनिया को गढ़ने की हमारी सामर्थ्य अन्धाधुन्ध गति से बढ़ रही है। गतिविधि के ज़्यादा से ज़्यादा क्षेत्रों को उनकी आत्मतुष्ट शैलियों से झाड़कर बाहर लाया जा रहा है। वकीलों को गोपनीयता और पहचान के मुद्दों पर पुनर्विचार करने की ज़रूरत पड़ रही है, सरकारों को स्वास्थ्य और समानता के मसलों पर पुनर्विचार करना पड़ रहा है, खेल संघों और शैक्षणिक संस्थानों को निष्पक्ष व्यवहार और उपलब्धि को फिर परिभाषित करने की ज़रूरत पड़ रही है, पेंशन निधियों और श्रम बाज़ार को उस दुनिया के साथ नए सिरे से तालमेल बैठाना आवश्यक हो गया है, जिसमें रिटायरमेंट की साठ की उम्र नए सिरे से तीस हो सकती है। इस सब को बायोइंजीनियरिंग, साइबर्ग और अजैविक जीवन (इनऑर्गेनिक लाइफ़) के गोरखधन्धों से निपटना अनिवार्य हो गया है।

पहले मानवीय जीन-समूह का ख़ाका तैयार करने में पन्द्रह वर्ष और 3 अरब डॉलर लग गये थे। आज आप किसी व्यक्ति के डीएनए का ख़ाका कुछ हफ़्तों और कुछ सौ डॉलरों की क़ीमत पर तैयार कर सकते हैं। वैयक्तीकृत चिकित्सा-पद्धति (पर्सनलाइज़्ड मेडिसन) - वह चिकित्सा-पद्धति जो डीएनए के इलाज़ से मेल खाती है - का युग शुरू हो चुका है। आपकी पारिवारिक चिकित्सक जल्दी ही आपसे पूरे निश्चय के साथ यह कहने की स्थिति में होगी कि आपको लिवर का कैन्सर होने की भारी आशंका है, और आपको हार्ट अटैक को लेकर ज़्यादा परेशान होने की ज़रूरत नहीं है। वह चिकित्सक यह तय कर सकेगी कि जो लोकप्रिय चिकित्सा 92 प्रतिशत लोगों के लिए मददगार है, वह आपके किसी काम की नहीं है और आपको एक दूसरी गोली लेनी चाहिए, जो बहुत-से लोगों के लिए तो घातक है, लेकिन आपके लिए एकदम ठीक है। क़रीब-क़रीब एकदम सही चिकित्सा का रास्ता आपके सामने खुला हुआ है।

लेकिन चिकित्सकीय ज्ञान में हो रहे सुधारों के साथ नई नैतिक समस्याएँ खड़ी होंगी। नैतिकतावादी और क़ानून के विशेषज्ञ पहले ही डीएनए से ताल्लुक रखने वाली निजता

या गोपनीयता के पेचीदा मुद्दे से जूझ रहे हैं। क्या बीमा कम्पनियों को हमसे हमारा डीएनए स्केन माँगने का हक़ होगा, और अगर उन्हें उससे यह पता चलता है कि आपमें लापरवाह आचरण करने की आनुवांशिक प्रवृत्ति है, तो इस आधार पर उन्हें आपकी प्रीमियम की राशि बढ़ाने का हक़ होगा? क्या हमें अपने सम्भावित नियोक्ताओं (नौकरी देने वालों) के पास अपना बायोडेटा (सीवी) भेजने के बजाय अपना डीएनए फ़ैक्स करना होगा? क्या कोई नौकरी देने वाला इस आधार पर किसी प्रत्याशी का पक्ष लेगा कि उसका डीएनए बेहतर प्रतीत होता है? या क्या हम इस तरह के मामलों में 'आनुवांशिक भेदशव' बरतने के आरोप में मुक़दमा ठोक सकेंगे? क्या किसी नए जन्तु या नए अंग को विकसित करने वाली कोई कम्पनी उसकी डीएनए शृंखलाओं पर एकाधिकार (पेटेंट) रजिस्टर करवा सकेगी? ज़ाहिर है कि कोई व्यक्ति किसी ख़ास चूज़े का मालिक हो सकता है, लेकिन क्या वह एक समूची प्रजाति का मालिक हो सकता है?

इस तरह की दुविधाओं को गिलगमेश प्रोजेक्ट के नैतिक, सामाजिक और राजनैतिक प्रभावों और अतिमानव रचने की हमारी नई सम्भावित क्षमताओं ने बौना कर दिया है। मानवाधिकारों के वैश्विक घोषणा-पत्र, राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा कार्यक्रम और दुनिया भर के राष्ट्रीय संविधान इस बात को मान्यता देते हैं कि मानव समाज को अपने सारे सदस्यों को समुचित चिकित्सा उपलब्ध करानी चाहिए और उन्हें अपेक्षाकृत स्वस्थ रखना चाहिए। यह तब तक तो ठीक था, जब तक कि चिकित्सा-विज्ञान का मुख्य सरोकार बीमारियों की रोकथाम करना और बीमारों को चंगा करना था, लेकिन उस वक़्त क्या स्थिति बन सकती है जब मानवीय क्षमताओं का संवर्धन करना चिकित्सा-विज्ञान की चिन्ता का विषय बन जाएगा? क्या सारे मनुष्यों को इस तरह की संवर्धित क्षमताओं की पात्रता होगी, या फिर एक नया अतिमानवीय कुलीन वर्ग पैदा हो जाएगा?

हमारी परवर्ती आधुनिक दुनिया, इतिहास में पहली बार, सारे मनुष्यों की बुनियादी बराबरी को मान्यता देने पर गर्व करती है, लेकिन वह अब तक के सबसे ज़्यादा ग़ैर बराबरीपूर्ण समाजों को रच सकती है। समूचे इतिहास के दौरान उच्च वर्ग हमेशा निचले वर्गों के मुक़ाबले ज़्यादा चतुर, ज़्यादा मज़बूत और सामान्य तौर पर बेहतर होने का दावा करते रहे थे। वे आम तौर से ख़ुद को भुलावा देते रहे थे। किसी ग़रीब किसान के घर पैदा हुए बच्चे के प्रतिभाशाली होने की उतनी ही सम्भावनाएँ होती थीं, जितनी किसी राजकुमार की होती थीं, लेकिन नए चिकित्सा-विज्ञान की मदद से उच्च वर्गों के ये झूठे दावे जल्दी ही वस्तुनिष्ठ वास्तविकता बन जा सकते हैं।

यह कोई विज्ञान-कथा नहीं है। ज़्यादातर विज्ञान-कथाएँ एक ऐसी दुनिया की तसवीर खींचती हैं, जिसमें सेपियन्स - हमारे जैसे सेपियन्स - प्रकाश की गति वाले अन्तरिक्ष यानों और लैसर बन्दूक़ों जैसी उत्कृष्ट टेक्नोलॉजी का प्रयोग करते हैं। इन कथानकों में केन्द्रीय महत्त्व रखने वाली नैतिक और राजनैतिक दुविधाएँ हमारी अपनी दुनिया से ली गई होती हैं, और वे एक भविष्यवादी पृष्ठिभूमि के विपरीत हमारे भावनात्मक और सामाजिक तनावों की पुनर्रचना भर करते हैं, लेकिन आने वाले समय की टेक्नोलॉजियों की वास्तविक सामर्थ्य हमारे वाहनों और हथियारों मात्र को नहीं, बल्कि हमारी भावनाओं और आकांक्षाओं समेत स्वयं होमो सेपियन्स को बदल देने में है। एक अन्तरिक्ष यान उस शाश्वत रूप से नौजवान साइबर्ग के मुक़ाबले क्या महत्त्व रखता है, जो सीधे-सीधे दूसरे

प्राणियों के साथ विचारों को साझा कर सकता है, जिसकी किसी चीज़ पर ध्यान एकाग्र करने और याद करने की क्षमताएँ हमारी अपनी अपनी क्षमताओं से हज़ार गुना ज़्यादा हैं, और जो ना कभी नाराज़ होता है ना उदास होता है, लेकिन जिसकी भावनाएँ और आकांक्षाएँ हमारी कल्पना से परे हैं?

विज्ञान-कथाएँ इस तरह के भविष्य का नक़्शा शायद ही कभी खींचती हैं, क्योंकि एक अचूक चित्रण स्वभावतः दुरूह होता है। किसी सुपर-साइबर्ग के जीवन के बारे में फ़िल्म प्रस्तुत करना निएंडरथल्स के सामने 'हैमलेट' का प्रदर्शन करने जैसा है। निश्चय ही, दुनिया के भविष्य के मालिक शायद हमारे मुक़ाबले उससे कहीं ज़्यादा भिन्न होंगे, जितना भिन्न हम निएंडरथल्स से हैं। जहाँ हम और निएंडरथल्स कम से कम मनुष्य हैं, वहीं हमारे उत्तराधिकारी देवताओं जैसे होंगे।

भौतिकविज्ञानी 'बिग बैंग' को एक अद्वितीयता के रूप में परिभाषित करते हैं। यह वह मुक़ाम था, जब प्रकृति के तमाम ज्ञात नियमों का कोई अस्तित्व नहीं था। समय का भी अस्तित्व नहीं था। इसलिए यह कहने का कोई अर्थ नहीं है कि 'बिग बैंग' के 'पहले' किसी भी चीज़ का अस्तित्व था। हम बहुत तेज़ी के साथ एक नई अद्वितीयता की ओर बढ़ रहे हो सकते हैं, जब हमारी दुनिया को अर्थ प्रदान करने वाली सारी अवधारणाएँ - मैं, आप, पुरुष, स्त्री, प्रेम, घृणा - अप्रासंगिक हो जाएँगी। उस मुक़ाम के परे घटित हो रही कोई भी चीज़ हमारे लिए अर्थहीन है।

फ़्रैंकेन्स्टाइन भविष्यवाणी

1818 में मेरी शेली ने फ़्रैंकेन्स्टाइन नामक पुस्तक प्रकाशित की थी, जो एक ऐसे विज्ञानी की कहानी थी, जो एक ऐसी कृत्रिम सत्ता की रचना करता है, जो बेक़ाबू होकर तबाही मचा देती है। पिछली दो सदियों के दौरान यह कहानी असंख्य रूपों में बार-बार कही गई है। यह हमारी नई वैज्ञानिक लोक संस्कृति का केन्द्रीय आधार बन चुकी है। पहली नज़र में, फ़्रैंकेन्स्टाइन की कहानी हमें यह चेतावनी देती लगती है कि यदि हमने ईश्वर की भूमिका निभाने और जीवन को गढ़ने की कोशिश की, तो हमें बुरी तरह दण्डित किया जाएगा, लेकिन इस कहानी का और भी गहरा अर्थ है।

फ़्रैंकेन्स्टाइन का मिथक होमो सेपियन्स को इस तथ्य के सामने ला खड़ा करता है कि अन्त के दिन बहुत तेज़ी से आ रहे है। लोगों का कहना है कि अगर इस बीच कोई परमाणु या पारिस्थितिकीय विनाश घटित नहीं हो जाता, तो जिस रफ़्तार से टेक्नोलॉजी का विकास हो रहा है, उसके परिणामस्वरूप बहुत जल्दी होमो सेपियन्स की जगह पूरी तरह से भिन्न ऐसी हस्तियाँ ले लेंगी, जिनकी ना सिर्फ़ क़द-काठी अलग होगी, बल्कि जिनकी संज्ञानात्मक और भावनात्मक दुनियाएँ भी बहुत अलग होंगी। यह एक ऐसी चीज़ है, जो सेपियन्स को सबसे ज़्यादा परेशान करने वाली है। हम यह मानना चाहते हैं कि भविष्य में हमारे जैसे ही लोग तेज़ रफ़्तार अन्तरिक्ष यानों में सवार होकर एक ग्रह से दूसरे ग्रह की यात्राएँ किया करेंगे। हम इस सम्भावना पर विचार नहीं करना चाहते कि भविष्य में हमारे जैसी भावनाएँ और पहचानें रखने वाली सत्ताओं का कोई अस्तित्व नहीं होगा, और हमारी जगह ऐसे अजनबी जीवन-रूपों द्वारा ले ली जाएगी, जिनकी क्षमताओं के सामने

हमारी अपनी क्षमताएँ बौनी पड़ जाएँगी।

हमें किस क़दर इस विचार से राहत मिलती है कि डॉक्टर फ़्रैंकेन्स्टाइन ने एक भयानक दैत्य की रचना की थी, जिसे नष्ट करना हमें अपनी रक्षा करने के लिए ज़रूरी था। हम इस क़िस्से को इस तरह कहना इसलिए पसन्द करते हैं क्योंकि इसमें यह निहित होता है कि हम सर्वश्रेष्ठ हस्तियाँ हैं और यह कि हमसे बेहतर ना कभी कोई था ना आगे होगा। हममें सुधार लाने की कोई भी कोशिश अपरिहार्यतः विफल होगी, क्योंकि हमारी कायाओं में भरे ही कोई सुधार ले आया जाए, लेकिन तब भी आप मनुष्य के अन्तःकरण को नहीं छू सकते।

हमें इस वास्तविकता को निगलने में बहुत मुश्किल पेश आएगी कि वैज्ञानिक अन्तःकरण को भी उसी तरह गढ़ सकते हैं, जिस तरह वे कायाओं को गढ़ सकते हैं, और यह कि भविष्य के फ़्रैंकेन्स्टाइन हमसे श्रेष्ठ कोई हस्ती रच सकते हैं, एक ऐसी हस्ती जो हमारी तरफ़ उसी तरह दया जताने वाले शव से देखेगी जैसे हम निएंडरथल्स की तरफ़ देखते हैं।

हम निश्चित तौर पर नहीं कह सकते कि आज के फ़्रैंकेन्स्टाइन इस भविष्यवाणी को सही कर दिखा पाएँगे या नहीं। भविष्य अज्ञात है, और अगर इस पुस्तक के पिछले कुछ पन्नों में पेश किए गए पूर्वानुमान सही साबित हो जाते हैं, तो यह आश्चर्य की ही बात होगी। इतिहास हमें सिखाता है कि जो चीज़ हमें बहुत क़रीब की नज़र आती है, वह बहुत मुमकिन है कि अप्रत्याशित रुकावटों की वजह से कभी सामने ना आ सके, और यह कि उनकी जगह दूसरी अप्रत्याशित स्थितियाँ सामने आ सकती हैं। जब 1940 में परमाणु युग का विस्फोट हुआ था, तब वर्ष 2000 की भावी परमाणु दुनिया के बारे में कई सारे पूर्वानुमान पेश किए गए थे। जब स्पुतनिक और अपोलो 11 ने दुनिया की कल्पना को दागा था, तो हर किसी ने भविष्यवाणियाँ करनी शुरू कर दी थीं कि सदी के अन्त तक लोग मंगल और प्लूटो पर बसाए गए अन्तरिक्षीय उपनिवेशों में रहने लगेंगे। इनमें से बहुत थोड़े-से पूर्वानुमान ही सच साबित हुए। दूसरी तरफ़, इंटरनेट का पूर्वानुमान किसी ने नहीं किया था।

इसलिए ऐसा बीमा कराने अभी मत भागिए, जो डिजिटल हस्तियों द्वारा दायर किए जाने वाले मुक़दमों के ख़िलाफ़ आपको सुरक्षा प्रदान कर सकेंगे। उपर्युक्त ख़्वाब - या दुःस्वप्न - सिर्फ़ आपकी कल्पना को भड़काने के लिए हैं। जिस विचार को हमें गम्भीरता से लेने की ज़रूरत है, वह यह है कि इतिहास के अगले चरण में ना सिर्फ़ टेक्नोलॉजी और संरचनात्मक रूपान्तरण शामिल होंगे, बल्कि मनुष्य की चेतना और उसकी पहचान में बुनियादी रूपान्तरण भी शामिल होंगे। और ये रूपान्तरण इस क़दर बुनियादी प्रकृति के हो सकते हैं कि वे ‘मनुष्य’ शब्द को ही सन्देहास्पद बना देंगे। इसके लिए कितना वक़्त बचा है? वाक़ई कोई नहीं जानता। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, कुछ लोगों का कहना है कि 2050 तक ख़ासी तादाद में इंसान मृत्यु से परे हो चुके होंगे। कुछ कम अतिवादी भविष्यवाणियाँ अगली सदी या अगली सहस्राब्दी की बात करती हैं, लेकिन सेपियन्स के इतिहास के 70,000 सालों के परिप्रेक्ष्य में देखें, तो कुछ सहस्राब्दियाँ क्या मायने रखती हैं?

अगर सचमुच ही सेपियन्स के इतिहास का पटाक्षेप होने वाला है, तो इसकी अन्तिम पीढ़ियों के सदस्यों के रूप में हमें एक आख़िरी सवाल का जवाब देने पर कुछ समय ज़रूर ख़र्च करना चाहिए : हम क्या बनना चाहते हैं? कभी-कभी मानवीय वृद्धि के प्रश्न (ह्यूमन एन्हांसमेंट क़्वेश्चन) के नाम से जाना जाने वाला यह सवाल उन बहसों को बौना बना देता है, जिन्होंने फ़िलहाल राजनेताओं, दार्शनिकों, अध्येताओं और जन-साधारण को उलझा रखा है। आख़िरकार, इस बात की पूरी सम्भावना है कि आज के मज़हबों, विचारधाराओं, राष्ट्रों और वर्गों के बीच की आज की बहसें होमो सेपियन्स के साथ ही समाप्त हो जाएँगी। अगर हमारे उत्तराधिकारी सचमुच ही चेतना के एक भिन्न स्तर पर काम करते हैं (या उनके पास चेतना से परे की कोई ऐसी चीज़ हुई जिसकी हम कल्पना नहीं कर सकते), तो इसमें सन्देह प्रतीत होता है कि ईसाइयत या इस्लाम में उनकी कोई दिलचस्पी होगी, या उनके सामाजिक संगठन साम्यवादी या पूँजीवादी होंगे, या वे पुल्लिंग या स्त्रीलिंग होंगे।

तब भी इतिहास की महान बहसें महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि इन देवताओं की कम से कम पहली पीढ़ी को इनके इंसानी डिज़ाइनरों के सांस्कृतिक विचारों द्वारा गढ़ा गया होगा। क्या उन्हें पूँजीवाद, इस्लाम या नारीवाद की छवि के अनुरूप गढ़ा जाएगा? इस सवाल का जवाब उन्हें नितान्त भिन्न दिशाओं में धकेल दे सकता है।

ज़्यादातर लोग इस बारे में सोचना नहीं चाहते। यहाँ तक कि जैवनैतिकी का क्षेत्र एक अलग ही सवाल पूछना पसन्द करता है, ‘इसे क्या करने की मनाही है?’ क्या जीवित मनुष्यों पर जेनेटिक प्रयोग करना स्वीकार्य है? गर्भपात वाले भ्रूणों पर? मूल कोशिकाओं पर? और चिम्पांज़ियों पर? और इंसानों के बारे में क्या कहना है? ये सब महत्त्वपूर्ण सवाल हैं, लेकिन यह कल्पना करना भोलापन होगा कि हम एक झटके से ब्रेक लगाकर उन वैज्ञानिक परियोजनाओं को रोक सकते हैं जो होमो सेपियन्स को उन्नत कर एक अलग तरह की हस्ती में बदलने के काम में लगी हैं क्योंकि ये परियोजनाएँ गिलगमेश परियोजना के साथ अविभाज्य रूप से जुड़ी हैं। विज्ञानियों से पूछिए कि वे जीन-समूह का अध्ययन क्यों करते हैं, या किसी मस्तिष्क को कम्प्यूटर से जोड़ने का प्रयत्न क्यों करते हैं, या कम्प्यूटर के अन्दर कोई मस्तिष्क रचने की कोशिश क्यों करते हैं। दस में से नौ बार आपको एक ही बना बनाया जवाब मिलेगा : यह सब हम बीमारियों का निदान करने और मनुष्यों के जीवन की रक्षा के लिए कर रहे हैं। कम्प्यूटर के अन्दर मस्तिष्क रचने के परिणाम भले ही मानसिक बीमारियों का निदान करने से कहीं ज़्यादा बड़े और विस्मयकारी हों, लेकिन यह एक तैयारशुदा तर्क है, जो दिया जाता है, क्योंकि इसके औचित्य को लेकर कोई बहस नहीं कर सकता। इसीलिए गिलगमेश परियोजना विज्ञान के अभियान की अगुआई करने वाली है। चूँकि गिलगमेश को रोकना असम्भव है, इसलिए डॉ. फ़्रैंकेन्स्टाइन को रोकना भी असम्भव है।

जो एकमात्र कोशिश हम कर सकते हैं, वह यह है कि जिस दिशा में ये बढ़ रहे हैं, हम उस दिशा को प्रभावित करें। चूँकि हम जल्दी ही अपनी आकांक्षाओं को गढ़ने में भी सक्षम होंगे, इसलिए हमारे सामने खड़ा असली सवाल यह नहीं है कि ‘हम क्या बनना चाहते हैं?’, बल्कि असली सवाल यह है कि ‘हम क्या आकांक्षा करना चाहते हैं?’ जो इस सवाल से डरे हुए नहीं हैं, उन्होंने शायद इस पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है।

उपसंहार वह प्राणी जो एक ईश्वर बन गया

सत्तर हज़ार साल पहले होमो सेपियन्स महज़ एक नाचीज़ प्राणी हुआ करता था, जो अफ़्रीका के एक कोने में अपने काम में लगा हुआ था। बाद की सहस्राब्दियों में वह समूचे ग्रह के मालिक और पारिस्थितिकीय तन्त्र के लिए एक आतंक में बदल गया। आज वह एक देवता बनने की कगार पर खड़ा है, ना सिर्फ़ एक शाश्वत यौवन हासिल करने, बल्कि सृजन और संहार की दैवीय क्षमताओं को भी हासिल करने के लिए तैयार।

दुर्भाग्य से, पृथ्वी पर सेपियन्स के अब तक के कार्यकाल ने ऐसा बहुत कम उत्पन्न किया है,जिस पर हम गर्व कर सकें। हमने अपने परिवेशों को नियन्त्रित किया है, खाद्यान्न के उत्पादन में इज़ाफ़ा किया है, नगरों का निर्माण किया है, साम्राज्य खड़े किए हैं और व्यापार के व्यापक नेटवर्क तैयार किए हैं, लेकिन क्या हम दुनिया में व्याप्त दुःख की मात्रा को कम कर सके हैं? मनुष्य की शक्ति में अक्सर जो अपरिमित वृद्धि हुई, उसने अनिवार्यतः सेपियन्स की व्यक्तिगत ख़ुशहाली में इज़ाफ़ा नहीं किया, और आम तौर से दूसरे प्राणियों को भारी दुःख पहुँचाया है।

जहाँ तक मानवीय परिस्थिति का सम्बन्ध है, पिछले कुछ दशकों में हमने अकाल, महामारी और युद्ध में कमी लाकर कम से कम कुछ वास्तविक तरक्की की है, लेकिन दूसरे प्राणियों की हालत पिछले किसी भी समय के मुक़ाबले बहुत तेज़ी से बिगड़ रही है, और मनुष्यता के सौभाग्य में हुई वृद्धि इतनी ताज़ा और नाज़ुक है कि उसके टिकाऊपन के बारे में निश्चित तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता।

इसके अलावा, उन विस्मयकारी करतबों के बावजूद जो इंसान कर सकते हैं, हम अपने लक्ष्यों को लेकर अभी भी अनिश्चित हैं और हम हमेशा की तरह असन्तुष्ट बने हुए प्रतीत होते हैं। हमने डोंगी से लेकर लम्बी नाव तक और उससे लेकर भाप से चलने वाले जहाज़ों और अन्तरिक्ष शटल तक प्रगति की है, लेकिन कोई नहीं जानता कि हम कहाँ जा रहे हैं। हम पहले के किसी भी वक़्त के मुक़ाबले ज़्यादा ताक़तवर हैं, लेकिन इस ताक़त का हम क्या करें, इसकी कोई ख़ास योजना हमारे पास नहीं है। इससे भी बदतर स्थिति यह है कि मनुष्य हमेशा से ज़्यादा ग़ैरजिम्मेदार प्रतीत होते हैं। केवल भौतिकी के नियमों को अपने साथ लिए हम ऐसे स्वयम्भू देवता हैं, जो किसी के भी प्रति ज़िम्मेदार नहीं हैं।

नतीज़े में हम अपनी सुख-सुविधाओं और मौज-मस्ती में कुछ और इज़ाफ़े की तलाश में लगे हुए, और कभी सन्तुष्ट ना होते हुए, अपने सहचर प्राणियों और चारों ओर व्याप्त पारिस्थितिकी पर कहर बरसा रहे हैं।

क्या ऐसे असन्तुष्ट और ग़ैरज़िम्मेदार देवताओं से ज़्यादा ख़तरनाक कोई और चीज़हो सकती है, जिन्हें यह भी नहीं मालूम कि वे क्या चाहते हैं?

आभार

परामर्श और सहायता के लिए सराई अहोनी, डोरिट अहरोनोव, ऐमोस अविज़ार, ज़िफ्रिया बार्ज़िलाई, नोआ बेनिंगा, टिर्ज़ा आइज़नबर्ग, आमिर फिंक, बेंजामिन जेड केदार, योसी मोरे, इयाल मिलर, जॉन पर्सेल, श्मुएल रॉस्नर, रामी रॉथाल्ज़, ओफ़र स्टेनिट्ज़, माइकल शेनकर, आइडन शेरर, हाइम वाट्ज़मैन, इट्ज़िक याहव, गाइ ज़ास्लाव्स्की के साथ-साथ यरुशलम की हिब्रू यूनिवर्सिटी के वर्ल्ड हिस्ट्री प्रोग्राम के सभी शिक्षकों और विद्यार्थियों का भी दिल से शुक्रिया।

जैरेड डायमंड, डिएगो होल्स्टीन और डेब्र हैरिस को विशेष रूप से धन्यवाद। श्री डायमंड ने मुझे बड़े परिदृश्य में देखने की शिक्षा दी। श्री होल्स्टीन ने मुझे वृत्तांत लिखने के लिए प्रेरित किया, जबकि श्री हैरिस ने उसका विस्तार से वर्णन करने में मेरी मदद की।

इस अनुवाद के सिलसिले में कई स्थलों पर मूल्यवान परामर्श देने के लिए मैं अपने सुहृद मित्रों मनोहर नोतानी, रुस्तम सिंह और तेजी ग्रोवर का बहुत आभारी हूँ।

-अनुवादक

अनुवादक के बारे में

मदन सोनी हिन्दी के लेखक हैं, जो मुख्यतः साहित्यालोचना के क्षेत्र में सक्रिय हैं। आलोचना पर केन्द्रित उनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हैं तथा उन्होंने विश्व के कई शीर्षस्थ लेखकों और चिन्तकों की रचनाओं के अनुवाद किए हैं, जिनमें शेक्सपीयर, लोर्का, नीत्शे, एडवर्ड बॉण्ड, मार्ग्रेट ड्यूरास, ज़ाक देरीदा, एडवर्ड सईद आदि शामिल हैं। उनके द्वारा अनुवादित उम्बर्तो एको का विश्वविख्यात उपन्यास द नेम ऑफ़ द रोज़ (ख़ाली नाम गुलाब का) ख़ासा चर्चित हुआ है। उनके अन्य अनुवादों में हरमन हेस्स का उपन्यास सिद्धार्थ, विश्व के प्रसिद्ध लेखकों की कहानियों का संचयन चुग़लख़ोर दिल और अन्य कहानियाँ, डैन ब्राउन का उपन्यास द विंची कोड, एस. हुसैन ज़ैदी की पुस्तकें डोगरी टु दुबई (डोगरी से दुबई तक) तथा बायकला टु बैंकॉक (बायकला से बैंकॉक तक) शामिल हैं।

भोपाल स्थित राष्ट्रीय कला-केन्द्र शरत भवन के मुख्य प्रशासनिक अधिकारी के पद से सेवा-निवृत्त सोनी को अनेक सम्मान और पुरस्कार प्राप्त हुए हैं, जिनमें मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, संस्कृति विभाग की वरिष्ठ अध्ययन-वृत्ति और रज़ा फ़ाउण्डेशन पुरस्कार शामिल हैं। वे नान्त (फ़्रांस) के उच्च अध्ययन संस्थान के फ़ैलो भी रहे हैं।